माधुरी

वर्ष २ खंड १

संख्या ४ पूर्ण संख्या १६ नवम्बर १९२३ ई०

संख्या ५ " १७ दिसंबर १९२३ ई०

संख्या " १८ जनवरी १९२४ ई०

वर्ष २ ; खंड १] कार्त्तिक, ३०० तुलसी-संवत [संख्या ४ ; पूर्ण संख्या १६

माधुरी



Lakshmi Narain Upadhyaya
Headmaster [illegible] 28 11/23

संपादक—
श्रीदुलारेलाल भार्गव
श्रीरूपनारायण पांडेय

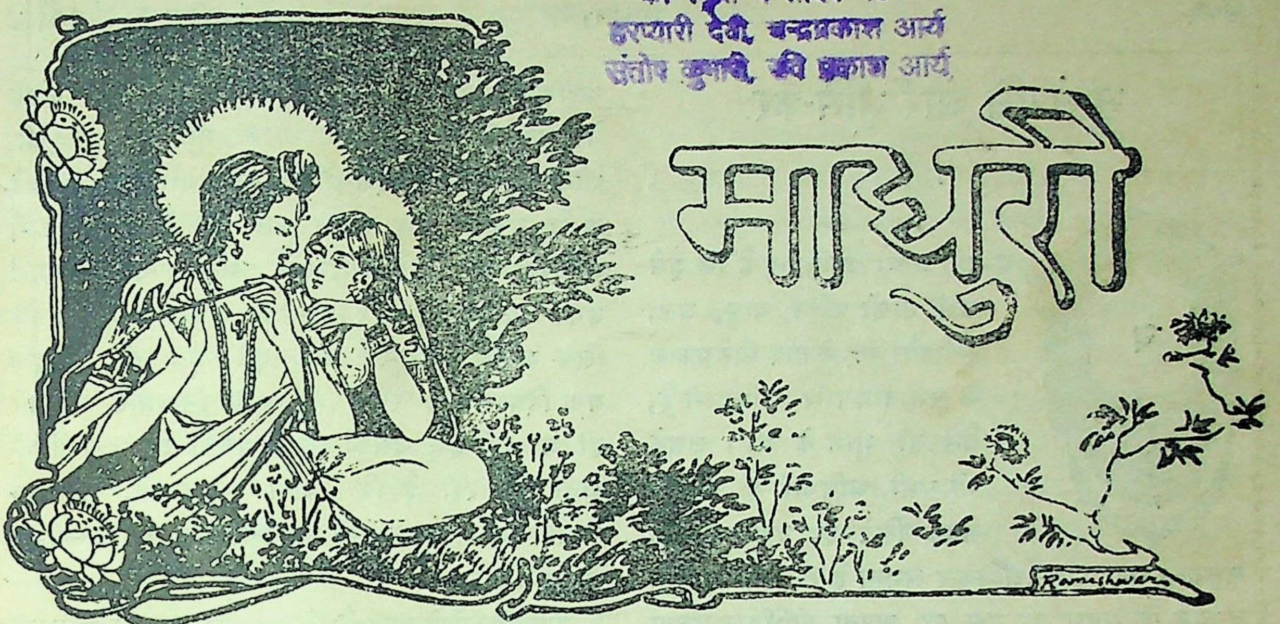
वार्षिक मूल्य ६॥) छमाही मूल्य ३॥)

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ से छपकर प्रकाशित

लेख-सूची

चित्र-सूची

(क) रंगीन



[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र, मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, तिय-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह साहित-माधुरी नव-रस-मयी अनन्य !

वर्ष २ | खंड १ — कार्तिक-शुक्ल ७, ३०० तुलसी-संवत् (१९८० वि०) — १५ नवंबर, १९२३ ई० — संख्या ४ | पूर्ण संख्या १६

अनुरोध

जब इस तिमिरावृत मंदिर में
उषालोक कर चुके प्रवेश,
तब तुम हे मेरे हृदयेश !
हाथ बढ़ाकर इस दीपक की
ज्वाला कर देना निश्शेष ;
यही प्रार्थना है सविशेष ।
जब यह कार्य समाप्त कर चुके
देह होमने के उपरांत,
स्वयं प्रकाशित हो यह प्रांत,
पूर्ण प्रभा में कर निमग्न तब
कर देना प्रदीप यह शांत ;
देर न करना जीवन-कांत !

सियारामशरण गुप्त

कुसुम-चयन

(चतुर्दशपदी)

जो न बने वे विमल लसे विधुमौलि-मौलि पर,
जो न बने रमणीय सज रमा-रमण-कलेवर,
वर वृंदारक-वृंद पूज जो बने न वंदित,
जो न सके अभिनंदनीय को कर अभिनंदित,
जो विमुग्धकर हुए वे न बन मंजुल माला,
जो उनसे सौरभित प्रेम का बना न प्याला,
करके नृप-कुल तिलक-मुकुट-रत्नों को रंजित,
कर न सके जो कलित कुसुम-कुल-महिमा व्यंजित,
जो न सुवासित हुआ तेल उनसे वह आला,
जिसने सुखमय व्यथित जीव-जीवन कर डाला,
जो न गौरवित हुए परस वे गुरु-पद-पंकज,
जो न लोक-हितकरी बनी उनकी सुंदर रज,
तो किसी काल में क्यों करे विकच कुसुम-चय का चयन ;
कर भावुकता-अवमानना भाव-भरा भावुक सुजन ?

अयोध्यासिंह उपाध्याय

भू-संपत्ति और भूमि-कर

(१)

यह बात प्रायः निर्विवाद है कि जैसे सभी प्राणी अग्नि, वायु, जल, सूर्य और चंद्र के ताप और प्रकाश के समान रूप से अधिकारी हैं, वैसे ही भूमि के भी। उसके भी सभी अधिकारी हैं, वह भी सबके लिये है, उस पर भी सबका स्वत्व और अधिकार समान है। फिर यह क्या बात है कि मनुष्य ही उस पर अपना अधिकार जमाए बैठे हैं? उन्होंने उन बड़े-बड़े जंगलों को साफ़ कर दिया, जहाँ किसी समय में वन्य पशु कुलाँचें भरते और आनंद से क्रीड़ा करते थे। आज वहीं हरी-भरी खेती लहराती देख पड़ती है। इतना ही नहीं, वह मानव-जाति-भर की सम्मिलित या समष्टि-गत संपत्ति नहीं रही; लोगों ने उसे अपनी व्यक्ति-गत या वैयक्तिक संपत्ति बना रक्खा है। कहने को तो मनुष्य महाभूत (शरफ़ुल मख़लूक़ात) कहलाता है, पर स्वार्थ की मात्रा उसमें इतनी अधिक आ गई या भरी हुई है कि विजातियों की तो बात ही क्या, वह अपनी ही जातिवालों से दिन-रात मार-काट मचाए रहता है, भाई भाई के रक्त का प्यासा है। जन-श्रुति है कि 'जन, ज़मीन, ज़र, तीनों झगड़े के घर', अर्थात् स्त्री, भूमि और रुपए, ये तीनों झगड़े के कारण हैं। आधुनिक लोभी और रक्त-पिपासु नर-पतियों की तो चाल ही अनोखी हो रही है। उनके ढंग ही निराले देख पड़ते हैं। भूमि तो भूमि, वे समुद्र के लिये भी अपने भाइयों का रक्त बहाते और स्वच्छ समुद्र के जल को मानव-रक्त से कलुषित करते हैं। वह समय भी समीप जान पड़ता है, जब आकाश-गत वायु-मंडल के लिये भी वे परस्पर लड़ेंगे, और विशुद्ध वायु या गगन-मंडल को भी कलुषित करेंगे। यह सब क्यों? स्वार्थ, केवल स्वार्थ! सहस्रों धर्माचार्य हुए, और होते जाते हैं; बुद्ध-देव आए और चले गए; महावीर स्वामी का आविर्भाव और तिरोभाव हुआ; ईसा मसीह आए और यह कहकर चले गए कि 'यदि कोई तुम्हारे बाएँ गाल पर थप्पड़ मारे, तो दाहना भी उसके सामने कर दो।' लोगों ने उनकी शिक्षा ग्रहण की, उनकी मूर्ति बनाकर पूजी, लोगों को उनका उपदेश सुना-सुनाकर बौद्ध, जैन, ईसाई आदि बनाया और बनाते चले जाते हैं; पर हाय री लोकैषणा और वित्तैषणा, तूने उनका पिंड न छोड़ा! उनके उपदेश को, जो स्वार्थ-रूपी अग्नि को बुझाने के लिये शीतल जल-सा था, तूने घृत की आहुति बना दिया। वह स्वार्थ की आग नित्यप्रति दहकती ही जा रही है; उसकी ज्वाला इतनी ब्रह्मांड-व्यापिनी होती जा रही है कि जान पड़ता है, किसी-न-किसी समय वह समस्त मानव-समाज को भस्मीभूत कर देगी।

अब विचारणीय यह है कि 'भू-संपत्ति' कब से मानी जाने लगी? क्या इसका आरंभ मानव-जाति के विकास के साथ हुआ? आदिम मनुष्य तो वन्य पशुओं की भाँति रहते थे, पेड़ों से फूल-फल तोड़कर खाते थे। वे स्वयं पशुओं से डरते थे। पशु पालना तो उन लोगों ने पीछे से सीखा था। फिर बिना पशुओं के वे कृषि कैसे करते थे? वे तो धातुओं से भी अनभिज्ञ थे। इसमें संदेह नहीं कि कृषि-कर्म का आरंभ मानव-जाति ने उस समय किया, जब उसने धातुओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया, और पशुओं को अपने अधीन कर उनको पालने लगी। इतना ही नहीं, उस समय मनुष्य बाल्य-अवस्था को अतिक्रमण कर, घर बनाकर, एक स्थान पर रहने लगे थे। ऋग्वेद में एक मंत्र है। उसे देखने से यह पता चलता है कि सरस्वती-नदी के किनारे नहुष का राज्य था, वहाँ उनकी प्रजा की हरी-भरी खेती लहराती थी, और सरस्वती-नदी उस समय समुद्र में गिरती थी। इससे अनुमान होता है कि उस समय, जहाँ अब राजपूताने की मरु-भूमि है, वहाँ समुद्र लहराता था। समुद्र के सूखकर मरु-भूमि बनने के संबंध में आधुनिक भू-गर्भ-शास्त्र के पंडितों का मत है कि प्रालेय (Glacier Period)-काल के पूर्व ऐसा हुआ था। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि आर्य-जाति में कृषि-कर्म का आरंभ कितने काल से हुआ है। उस समय तो आर्यों ने न केवल कृषि-कर्म की ही उन्नति की थी, बल्कि वे राज-सत्ता भी स्थापित कर चुके थे। उनकी राज-सत्ता उसके बहुत पूर्व उन सब अवस्थाओं को पार कर चुकी थी, जिनको

अन्य जातियों ने पीछे से पार किया, और कितनी ही जातियाँ अब पार कर रही हैं।

महाभारत के शांति-पर्व में 'राज-सत्ता' के विकास के आरंभ के संबंध में, जिसे भू-संपत्ति का आरंभ कहना अनुचित न होगा, इस प्रकार लिखा मिलता है—

"नैव राज्यं न राजासीन्न दंडो न च दंडिकः ;
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षंतिस्म परस्परम् ।"

अर्थात् आरंभ में न तो राज्य था और न कोई राजा, न दंड-विधान था और न कोई दंड देनेवाला ही। सब प्रजाएँ धर्म-पूर्वक एक दूसरे की रक्षा करती थीं। यही मनुष्य-जाति की सभ्यता की आदिम और सर्वोच्च अवस्था है। इसी को लक्ष्य कर, मनुष्य-समाज में जितने निः-स्वार्थ नियम बने हैं, या धर्मों का उपदेश आचार्यों ने किया है, वे सब बनते हैं या बनेंगे, होते हैं या होंगे, बनाए और किए जाते हैं। यही समस्त मानव-जाति का उद्देश है; लक्ष्य है। यही वह स्वर्ग है, जिससे आदम निकाला गया, जिसको पुनः प्राप्त करने के लिये अब तक मनुष्य-जाति ने सहस्रों बलिदान दिए, अनेक चेष्टाएँ और प्रयत्न किए, पर कृतकार्य नहीं हुई, न आगे होने की संभावना है। बुरा हो उस शैतान और उस बीज का, जिसके उकसाने और जिसे खाने से मनुष्य-जाति सदा के लिये स्वर्ग से च्युत हुई। बाइबिल आदि में जिस बात को आलंकारिक रूप से लिखा गया है, उसे हिंदुओं के पुराणों और इतिहासों में स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार वर्णन किया गया है—

"पाल्यमानास्तथान्योन्यं नरा धर्मेण भारत ;
खेदं परमुपाजग्मुस्ततस्तान् मोह आविशत् ।
ते मोहवशमापन्ना मनुजा मनुजर्षभ ;
प्रतिपत्तिविमोहाच्च धर्मस्तेषामनीनशत् ।
नष्टायां प्रतिपत्तौ च मोहवश्या नरास्तथा ;
लोभस्य वशमापन्नाः सर्वे भरतसत्तम ।
अप्राप्तस्याभिमर्षंतु कुर्वंतो मनुजास्ततः ;
कामोनामापरस्तत्र प्रत्यपद्यत वै प्रभो ।
ताँस्तु कामवशं प्राप्तान् रागोनामाभिसंस्पृशत् ;
रक्ताश्च नाभ्यजानंत कार्याकार्ये युधिष्ठिर ।
अगम्यागमनं चैव वाच्यावाच्यं तथैव च ;
भक्ष्याभक्ष्यं च राजेंद्र दोषादोषं च नात्यजन् ।
विप्लुते नरलोके वै ब्रह्म चैवं ननाश ह ;
नाशाच्च ब्रह्मणो राजन् धर्मो नाशमथागमत् ।"

अर्थात् वे लोग एक दूसरे का धर्म-पूर्वक पालन करते हुए रहते थे ; पर कालांतर में जाकर उनमें परस्पर * खिन्नता उत्पन्न हो गई, और खेद के आ जाने से मोह हुआ। मोह-वश होने से उनमें परस्पर की प्रतिपत्ति जाती रही, और प्रतिपत्ति का नाश होने से उनमें लोभ आ गया। फिर उससे काम (कामना), और काम से राग उत्पन्न हुआ। राग उत्पन्न होने से उनका विवेक और अगम्यागमन, वाच्यावाच्य, भक्ष्याभक्ष्य, दोषादोष का विचार जाता रहा ; जिससे ब्रह्म (सम-दर्शिता) का नाश हो गया। ब्रह्म के नष्ट होने से धर्म का नाश हो गया।

फिर तो सब लोग ईर्ष्या-द्वेष के वशीभूत होकर एक दूसरे का नाश करने लगे। महाभारत में लिखा है—

"अराजकाः प्रजाः पूर्वं विनेशुरिति नः श्रुतम् ;
परस्परं भक्षयंतो मत्स्या इव जलेकृशात् ।"

अर्थात् हम सुनते हैं, उस समय कोई राजा नहीं था, और प्रजा, मछली जैसे अपने से दुर्बल मछलियों को खा जाती है, वैसे ही परस्पर एक दूसरे का नाश करने लगी थी, बड़ी अव्यवस्था फैल गई, कोई उनको नियम में चलानेवाला नहीं था। फिर तो सब लोगों ने मिल-कर परस्पर की रक्षा के लिये यह समय (प्रतिज्ञा) किया कि—

"वाक्शूरो दंडपरुषो यश्च स्यात्पारजायिकः ;
यः परस्वमथादद्यात्त्याज्या नस्तादृशा इति ।
तास्तथा समयं कृत्वा समयेनावतस्थिरे ।"

अर्थात् जो मुँहजोर और कठिन अत्याचार करता हो, या पर-स्त्री-गमन करे, जो दूसरे की संपत्ति को ले ले, उससे हम लोग असहयोग करेंगे। यह सबने परस्पर प्रतिज्ञा की।

पर इस प्रकार प्रतिज्ञा करने पर भी वे उस पर स्थिर

---

* जान पड़ता है, आदि में 'खेद' नहीं, बल्कि 'भेद' पाठ था, जिसका अर्थ अपने और पराए में भेद होता है। इसी भेद से मोह आदि की क्रमशः उत्पत्ति हुई।

रह न सके, उनमें अशांति बनी ही रही। वे आप अपनी रक्षा का उपाय न कर सके। निदान उनको प्रजापति के पास जाना पड़ा। वहाँ सबने प्रजापति से अपने दुःख कहे, और उनसे उपाय पूछा। प्रजापति ने उन्हें मनु के पास भेजा। उन लोगों ने जाकर मनु से प्रार्थना की; पर मनु ने उनकी प्रार्थना स्वीकार न करके कहा—

"बिभेमि कर्मणः पापाद्राज्यं हि भृशदुस्तरम्;
विशेषतो मनुष्येषु मिथ्यावृत्तेषु नित्यदा।"

अर्थात् मैं पाप-कर्म से डरता हूँ। राज्य का काम बहुत कठिन है, विशेषकर मनुष्यों का शासन करना; क्योंकि वे सदा मिथ्या वृत्तिवाले होते हैं।

अब तो प्रजा बहुत घबराई, और मनु से बोली—

"तमब्रुवन्प्रजा मा भैः कर्तृनेनो गमिष्यति;
पशूनामधिपं चाशद्धिरण्यस्य तथैव च।
धान्यस्य दशमं भागं दास्यामः कोषवर्द्धनम्;
यं च धर्मं चरिष्यंति प्रजा राज्ञा सुरक्षिताः;
चतुर्थं तस्य धर्मस्य त्वत्संस्थं वै भविष्यति।
तेन धर्मेण महता सुखं लब्धेन भावितः;
पाह्यस्मान्सर्वतो राजन् देवानिव शतक्रतुः।"

अर्थात् पाप अपने करनेवाले ही को लगा करेगा। आपके कोष के लिये हम पशु और हिरण्य (धातु) का पचासवाँ और धान्य का दसवाँ भाग देते रहेंगे। राजा से रक्षित होकर प्रजा जो कुछ धर्मानुष्ठान करेगी, उसका चतुर्थांश फल आपको मिलेगा। उस पुण्य से सुखी रहकर आप हम लोगों की रक्षा कीजिए।

यह तो हिंदुओं के धर्म-ग्रंथों के अनुसार भू-संपत्ति और भूमि-कर का इतिहास हुआ, अब पाश्चात्य अर्थ-नीतिज्ञों की भी सम्मतियों को देखिए कि वे क्या कहते हैं, और इससे उनका कहाँ तक मेल या विरोध देख पड़ता है।

सबसे पहले हम चार्ल्स ज़ीड की सम्मति यहाँ उद्धृत करते हैं। यह फ्रांस-देश के प्रसिद्ध अर्थ-नीतिज्ञ माने जाते हैं। आपके लिखे अर्थ-नीति (Political Economy)-नामक ग्रंथ का अनुवाद अनेक भाषाओं में हो चुका है। अँगरेज़ी में तो इसके दो-दो अनुवाद हो चुके हैं। आप इसी ग्रंथ में लिखते हैं *—

"भू-संपत्ति को सभी क़ानूनों में केवल संपत्ति ही नहीं स्वीकार किया गया, बल्कि वह सर्वोत्कृष्ट संपत्ति मानी जाती है। जब हम साधारणतः संपत्ति-शब्द का व्यवहार करते हैं, तो सब लोग यही समझते हैं कि वक्ता का अभिप्राय संपत्ति-शब्द से भू-संपत्ति है।

यद्यपि इस विषय पर आधुनिक विद्वानों में मत-भेद है, पर यह निर्विवाद है कि 'भू-संपत्ति' को थोड़े ही दिनों से लोग संपत्ति मानने लगे हैं, और यह हो नहीं सकता कि यह बिना कठिनाई के संपत्ति मानी गई हो।

हमें यह जान पड़ता है कि 'भू-संपत्ति' को संपत्ति-पद प्राप्त करने के पहले निम्न-लिखित छः अवस्थाओं को क्रमशः पार करना पड़ा है—

(१) यह स्पष्ट है कि उन लोगों को, जो शिकार पर जीवन-निर्वाह करते हैं, या जो अपने पशुओं के झुंड को लिए ब्रात्य-रूप में विचरते रहते हैं, भू-संपत्ति की कोई आवश्यकता नहीं रहती। इसका आरंभ तो केवल कृषि-कर्म के साथ होता है। कृषि-कर्म भी जब आरंभिक दशा में होता है, तो उस अवस्था में (भी) 'भू संपत्ति'

---

* Not only is private property in land sanctioned by all legislations to-day, but landed property is considered the type of property *par Excellance*. When we speak of property without qualification every one knows that it is landed property, that is meant.

Still we may hold it as certain, in spite of numerous controversies on the subject of late, that property in land is of relatively recent date, and that it was not without difficulty that it was established.

We may distinguish in evolution of landed property six successive stages which we shall briefly indicate:—

(1) It is obvious that landed property has no *renson dolre* among tribes who live by hunting or among pastoral peoples at the nomadic stage. It can come into existence only with agriculture. And even in the early phases of agricultural life, property in

सुप्रतिष्ठित नहीं होती। इसके दो प्रधान कारण हैं—एक तो यह कि उस समय भूमि इतनी अधिक होती है कि किसी को अपने भाग की भूमि अलग करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। दूसरा यह कि कृषि-कर्म उस समय प्रारंभिक अवस्था में होता है, और कृषक अपने खेत को काट लेने के बाद ही छोड़ देते हैं, और दूसरी भूमि खेत के लिये साफ़ करते हैं। [जंगली जातियों में यह देखा जाता है कि वे जंगल काटकर साफ़ करती हैं, और वहाँ खेती करती हैं, दस-पाँच वर्ष के बाद वे उसे छोड़ देती हैं, और जंगल के अन्य भाग को काटकर साफ़ कर खेत बनाती और वहाँ खेती करती हैं। इस प्रकार वे जंगल साफ़ करती, वहाँ खेती करती, और फिर उसे छोड़कर दूसरे भाग को साफ़ करती रहती हैं। नेपाल की तराई में थारुओं के संबंध में इसी प्रकार की बातें सुनी जाती हैं।] उस समय भूमि को यदि इकट्ठा नहीं बोते, तो भी उसका विभाग नहीं किया जाता। वह सब समाज की या जथे-भर की होती है। बोनेवाला केवल उसकी उपज पाता है।

(२) धीरे-धीरे जब लोग आत्य-दशा से शालीन-दशा को प्राप्त होते और एक स्थान पर जमकर रहते हैं। तब आबादी घनी हो जाती है, और लोगों को खेत की उपज बढ़ाने के लिये नए-नए उपायों को काम में लाना पड़ता है। यह मानव-जाति की सभ्यता का दूसरा सोपान है। पहले सोपान को अतिक्रमण कर उसे दूसरे पर पैर रखना पड़ता है। इस अवस्था में भूमि पर नैमित्तिक अधिकार होता है, और यथासमय उसका विभाग होता रहता है। यद्यपि भूमि सदा समाज की संपत्ति होती है, पर उसे गाँव-भर के सब घरों के मुखिए मिलकर परस्पर बराबर-बराबर बाँट लेते हैं। यह बँटवारा सदा के लिये नहीं होता, बल्कि कुछ—परिमित—काल के लिये हुआ करता है। पहल-पहल प्रतिवर्ष इस प्रकार का बँटवारा (बंदोबस्त) हुआ करता है। कारण, कृषि का काम वर्ष भर में आरंभ होकर समाप्त हो जाता है। ज्यों-ज्यों कृषि की प्रणाली विशेष उन्नत होती जाती है, किसानों को अपनी क्रिया का पूर्णतया संपादन करने के लिये विशेष काल की आवश्यकता पड़ती जाती है, त्यों-त्यों क्रमशः अधिक समय तक के लिये उनको एक ही खेत जोतने दिया जाया करता है।

(३) धीरे-धीरे ऐसा समय आ जाता है, जब खेतों के नैमित्तिक संविभाग की प्रथा लुप्तप्राय हो जाती है। ऐसे लोग, जिन्होंने श्रम करके अपने खेतों को अच्छा बना लिया है, उसको फिर मिलाकर विभाग कराने पर राज़ी नहीं होते; क्योंकि यद्यपि फिर बँटवारे की प्रथा गाँववालों के कल्याण के लिये होती है, पर इससे उनकी हानि यह है कि उनको समय-समय पर अपने अतिरिक्त श्रम के फल से वंचित रह जाना पड़ता है। इस प्रकार कुटुंब या कौटुंबिक संपत्ति की प्रथा सुप्रतिष्ठित होती है। उस समय गाँव के प्रत्येक कुटुंब को अपने-अपने अंश

---

land is not an institution. This is due to two causes: first, land is over-abundant, and no one needs to mark off his share; secondly, agricultural methods being as yet primitive, the cultivator leaves his field as soon as it is exhausted for another. Land is cultivated, if not in common, at least without division; it belongs to society as a whole, or rather, to the tribe. The fruits of it only belong to the producer.

(2) Gradually, however, population becomes more sedentary and more closely attached to the soil. It also becomes denser and has to adopt more productive methods of cultivation. The first phase then is succeeded by a second, that of temporary possession together with *periodical redistribution.* The land, though always considered as belonging to society, is divided equally among the heads of families. This division is not final, but only for a certain length of time. At first the period is one year, as this is the ordinary cycle for agricultural operations. As agricultural methods improve and cultivators require more time for maturing of their labours, the periods become gradually longer.........

(3) A time comes when these periodic divisions fall into disuse. Those who have improved their lands do not willingly submit to an operation which, for the good of the community, deprives them at intervals of the surplus value due to their labour. Thus there arises the institution of family ownership, each family

की भूमि के ऊपर पूर्ण स्वत्वाधिकार प्राप्त हो जाता है। वह संपत्ति वैयक्तिक संपत्ति नहीं होती। उसको बेचने आदि का अधिकार स्वामी को नहीं होता, कुटुंब का मुखिया न तो भूमि को बेच सकता है, न उसे किसी को दे सकता है, और न अपने मरने के समय अलग कर सकता है। कारण, वह सम्मिलित या समष्टि-गत संपत्ति मानी जाती है।

(४) यद्यपि यह नियम सर्वत्र के लिये लागू नहीं है, बल्कि आकस्मिक है, पर मानव-समाज के इतिहास के बाहर नहीं है। यह चौथी दशा है—जय और पराजय। संसार में ऐसा कोई देश नहीं मिलेगा, जहाँ दूसरी जातियों ने आकर बल-पूर्वक अपना अधिकार न कर लिया हो। विजेता लोग वहाँ के स्वामी हो जाते हैं, और विजित उनके दास या प्रजा। विजेतागण कृषि करने का श्रम नहीं उठाते। वे केवल भूमि के स्वामी बन जाते और भूमि वहाँ के अधिवासियों को शर्तबंदी पर जोतने को दे देते हैं। यह शर्तबंदी लगभग स्वत्वाधिकार ही के होती है; पर उसमें कुछ शर्तें लगी रहती हैं। जैसे जोतनेवाले को कुछ काम करना पड़ेगा, उसे उसके लिये अधिपति को कुछ कर देना पड़ेगा, और वह बिना अधिपति की आज्ञा लिए उसे अलग न करेगा। इत्यादि।

(५) इस दशा में पहुँचकर व्यक्तित्व और नैतिक साम्य का उदय होता और मांडलिक प्रथा का लोप हो जाता है। इस प्रकार की दशा फ्रांस में उस समय संघटित हुई थी, जब वहाँ राज्यक्रांति हुई थी। इस स्थिति में पहुँचकर भूमि पर 'सामान्य स्वत्व' उत्पन्न हो जाता है, और उसके स्वामी को स्वामी के सब स्वत्व मिल जाते हैं। पर यह सामान्य स्वत्व वह स्वत्व नहीं है, जो स्वामी को अपनी स्थायी संपत्ति पर प्राप्त होता है।

(६) इस अवस्था में पहुँचकर भू-स्वामी को स्थायी संपत्ति के स्वामी के सब स्वत्व या अधिकार प्राप्त हो जाते हैं, और भू-संपत्ति स्थायी संपत्ति बन जाती है। इस स्थिति में किसी को अपनी भूमि पर केवल अधिकार ही नहीं होता, बल्कि वह उसे स्थायी संपत्ति की भाँति इच्छानुसार बेच या अलग भी कर सकता है।

henceforth being the obsolute owner of its share of land. This is not individual property, for the right of disposal does not exist. The head of the family can neither sell the land, nor give it away, nor dispose of it at death, since it is considered collective estate.

(4) The evolution of landed property passes also through a phase which, though accidental in its nature, has never been omitted in the history of human societies I refer to *Conquest.* There is not a single territory on the earth's surface which has not at some time or other been taken by force from the people who inhabited it and appropriated by the conquering race. The conquerors, it is true, just because they were conquerors and masters, did not trouble to cultivate the land. Appropriating simply legal ownership, the "Eminent domain" as it used to be called, they left the actual possession of the soil to the subject population, by way of *tenure* This tenure was more or less akin to veritable ownership, but was always limited by conditions under which it was granted to the cultivator, by the servitudes with which he was burdened, by the dues which he had to pay to his over-lord, and by the fact that he was unable to obviate the land without latter's consent.

(5) The growth of individualism and of Civil equality, and the disappearance of the Tendal system, particularly which came under the influence of the French Revolution, brought about a fifth phase, that marks our own epoch. It is characterised by the final establishment of free ownership of land, with all the attributes which the right of ownership implies. Still, even this free ownership of land is not identical in all points with the ownership of movable property.

(6) To assimilate the ownership of landed property to that of movable property, and to mark the final stage of this evolution, only one step remained. It consisted in making the ownership of land mobile, so that an individual could not only possess land, but dispose of it as easily as movable property

(७) इसके अनंतर सातवीं अवस्था के आने की आशा है। इसमें भू-संपत्ति विभाज्य हो जाती है, और उसके हिस्सेदार होते हैं। यह हिस्सेदारी या तो किसी बही में लिखी जाती है, या इसके लिये उनको सनद अथवा परचे मिलते हैं।"

पूर्वोक्त सात अवस्थाओं में पहली, दूसरी और तीसरी अवस्था स्वाभाविक है। चौथी अवस्था से भूमि-कर आरंभ हो जाता है। हमारे यहाँ के ग्रंथों में इस अवस्था के पूर्व ही भूमि-कर के आरंभ का कारण यह मिलता है कि जब प्रजाओं में परस्पर राग-द्वेष उत्पन्न हुआ, तो उन्हें किसी ऐसे व्यक्ति को अपना राजा बनाने की आवश्यकता पड़ी, जिसे उन लोगों ने भूमि की उपज का एक अंश बलि या पुरस्कार के रूप में देना स्वीकार किया। पाँचवीं और छठी अवस्था एकदेशीय है, सार्वदेशिक नहीं। ये अवस्थाएँ भारतवर्ष में कभी संघटित नहीं हुईं। सातवीं अवस्था, जिसकी संभावना या आशंका 'ज़ीड' महोदय ने की है, अँगरेज़ों की कृपा से भारत-वासियों को विना किसी प्रकार की चेष्टा किए ही प्राप्त हो गई है। बड़ी-बड़ी रियासतें पट्टीदारी या हिस्सेदारी के कारण खंड-खंड हो गईं; बड़े-बड़े ज़मींदार, जो किसी समय में अत्यंत प्रभावशाली या राज-सम्मानित समझे जाते थे, उनकी संतानें इसी अनुग्रह के कारण आज इधर-उधर ठोकरें खाती अथवा दासत्व का पट्टा गले में बाँधे फिरती हैं।

हम आगे चलकर यह दिखलाने का उद्योग करेंगे कि सामंत और ज़मींदारी आदि की प्रथाएँ इस देश में कैसे आरंभ हुईं।

आरंभ में छोटे-छोटे राजा थे, और वे परस्पर युद्ध किया करते थे। उनमें जो बलवान् होता था, वह दूसरे को परास्त कर अपने वश में कर लेता था। ऐसे पराजित राजा उसके सामंत हो जाते थे। इस प्रकार एक-एक राजा के अधीन अनेकानेक सामंत हो गए। फिर कालांतर में इन राजों में भी परस्पर विजयाकांक्षा उत्पन्न होने लगी। तब उनमें जो अत्यंत पराक्रमी हुआ, वह सर्वोपरि गिना जाने लगा। उसे लोग चक्रवर्ती कहते थे, और उसके अधीन राज्य उसके मांडलिक कहलाते थे। इस प्रकार मंडल के अंतर्गत मंडल बनते गए, और प्रत्येक अधीनस्थ राजा अपने से ऊँचे अधिपति को अपने कोश की आय का एक अंश देता गया। इस प्रकार उत्तरोत्तर श्रेष्ठ अधिपतियों के कोश दो प्रकार से बढ़ते गए—एक तो उस कर से, जो उन्हें अपनी प्रजा से मिलता था, दूसरे उस कर से, जो उन्हें अपने अधीनस्थ मांडलिकों और सामंतों से मिलता था। युधिष्ठिर के काल में जो व्यवस्था थी, उसका उल्लेख महाभारत में इस प्रकार है—

"ग्रामस्याधिपतिः कार्यो दशग्राम्यस्तथापरः ;
द्विगुणाया शतस्यैवं सहस्रस्य च कारयेत्।
तत्र ह्यनेकपायत्तं राष्ट्रे भवति भारत ;
शाखानगरमर्हस्तु सहस्रपतिरुत्तमः।"

अर्थात् गाँव का एक अधिपति हो। ऐसे दस ग्रामाधिपों का एक 'दशप'-नामक अधिपति हो। दो दशपों का एक 'विंशतिप' हो। पाँच विंशतिप का एक 'शतप' और दस 'शतप' का एक 'सहस्रप' या 'सहस्राधिप' हो। इस प्रकार राष्ट्र में अनेक अधिपति एक के अधीन दूसरे रहें, और सहस्रपति का प्रधान स्थान किसी शाखा-नगर या क़सबे में रहे।

यहाँ सबसे छोटा जो एक-ग्रामाधिप था, उससे लेकर सहस्रप तक की वृत्ति का प्रबंध इस प्रकार लिखा गया है—

"यानि ग्राम्यानि भोज्यानि ग्रामिकस्तानुपाश्नियात् ;
दशपस्तेन भर्तव्यस्तेनापि द्विगुणाधिपः।
ग्रामं ग्रामशताध्यक्षो भोक्तुमर्हति सत्कृतः।"

अर्थात् गाँव के कर का जो लाभ है, उसे ग्रामिक ले। उसी से—अर्थात् अपने ग्राम के कर से—दशप, और उसी से विंशतिप की जीविका हो। शताध्यक्ष को एक गाँव पूरा मिले।

इससे यह जाना जाता है कि गाँव कभी विभाज्य नहीं माना गया, और किसी 'स्मृति' में 'भू-संपत्ति' ऐसी संपत्ति नहीं मानी गई, जिसको उसका स्वामी बेच सकता, या जिसे उसके मरने पर उसके उत्तराधिकारी बाँट सकते। हाँ, राजा ऐसे शत्रु की निजी संपत्ति को, जो उसकी अधीनता स्वीकार न करता हो,

(7) We might perhaps expect a further stage in this evolution, a stage in which landed property would be represented by a share *i. e.* registered little or even a tittle to bearer.

हराकर अपनी निज की संपत्ति में मिला लेता था; और उसमें से वह दूसरों को दान कर सकता या पुरस्कार में दे सकता था। सारांश यह कि ग्राम के आधिपत्य की प्राप्ति के दो प्रकार थे—

१—राजा से [(क) परंपरा गत, (ख) प्रदत्त]
२—जीतने से

पर यह संपत्ति किसी दशा में 'विभाज्य' या 'देय' नहीं समझी जाती थी। यह प्रथा मुसलमानों के काल तक लगातार चली आई। उस समय भी एक ग्राम का एक ही अधिपति होता था; यह भले ही था कि कई गाँवों का एक ही ज़मींदार होता था; पर एक गाँव के दो ज़मींदार नहीं होते थे। गाँव उस समय विभाज्य या देय नहीं समझा जाता था। न इसकी गणना स्थिर संपत्ति में थी। स्थिर संपत्ति में केवल घर, वाटिका, वृक्ष आदि माने जाते थे। मुसलमान-काल तक गाँव स्थिर संपत्ति नहीं माने गए थे। अँगरेज़ी-राज्य में ही उनकी गणना स्थिर संपत्ति में हुई है।

अब भूमि-कर के संबंध में मीमांसा की जाती है। हमारे धर्म-ग्रंथों में, आरंभ में, भूमि-कर 'धान्य का दशांश' माना गया था। इसके निर्धारण का हेतु केवल रक्षा बतलाई गई थी। पर आगे चलकर इसकी मात्रा में भेद पड़ता गया, और अंत में जाकर वह दशांश से 'तृतीयांश' हो गई। इसी कारण लोक-व्यवहार में शस्य या फ़सल का नाम 'तिहाई' पड़ गया। महाभारत में 'कर' लगाते समय दो बातों पर ध्यान रखने की शिक्षा दी गई है—

"फलं कर्म च संप्रेक्ष्य ततः सर्वं प्रकल्पयेत्;
फलं कर्म च संत्यज्य न कश्चित्संप्रवर्तते।"

अर्थात् फल और कर्म के ऊपर ध्यान रखकर सब प्रकार के कर लगाने चाहिए। फल और कर्म को त्याग-कर कोई काम नहीं करता। सारांश यह कि भूमि-कर या 'लगान' लगाने में कर्म अर्थात् श्रम और उसके लाभ या फल के ऊपर ध्यान रखना चाहिए। जिससे कृषक को अपने कर्म (काम) और लागत का फल मिले।

पाश्चात्य अर्थ-नीतिज्ञों में 'रिकार्डो'-नामक इँगलिस्तान का अर्थ-नीतिज्ञ सबसे प्रधान माना जाता है। इसी ने सबसे पहले 'भूमि-कर' की समस्या के रहस्य का उद्घाटन किया है। योरप के अन्य सब अर्थ-नीतिज्ञ न्यूनाधिक इसी के सिद्धांत के आधार को लेकर चले हैं उसका कथन * है—

"भूमि-कर भूमि की उपज का वह अंश है, जो भू-स्वामी को भूमि की मौलिक और अक्षय शक्ति से काम लेने के बदले में दिया जाता है।

जब किसी देश में लोग पहले-पहल बसते हैं, तो वहाँ उर्वरा भूमि बहुत अधिक रहती है। उस समय वहाँ के अधिवासियों को अपने भरण-पोषण के लिये उसका अत्यंत अल्प भाग कृषि के लिये पर्याप्त होता है; और सचमुच अधिवासियों के पास जो पूँजी होती है, तदनुसार वे उतने ही को जोत-बो सकते हैं। उस समय भूमि-कर नहीं होता, भूमि के लिये कोई कुछ नहीं देता। कारण, भूमि इतनी रहती है कि जो जहाँ चाहे, वहाँ जोत-बो सकता है। उस समय वह किसी की संपत्ति नहीं होती। धीरे-धीरे जन-संख्या बढ़ती जाती है, और लोग मध्यम श्रेणी की भूमि जोतना आरंभ करते हैं। उस समय भूमि-कर की प्रथा का आरंभ होता है, और उत्तम श्रेणी की भूमि पर कर लगता है; अर्थात् उत्तम और मध्यम श्रेणी की भूमियों के गुणों के भेद और बलाबल के आधार पर कर लगाया

* Rent is that portion of the produce of the earth which is paid to the landlord for the use of the original and indestructible powers of the soil.

On the first settling of a country in which there is abundance of rich and fertile land, a very small portion of which is required to be cultivated for the support of the actual population or indeed can be cultivated with the capital which the population can command, there will be no rent, for no one would pay for the use of land when there was an abundant quantity not yet appropriated, and therefore at the disposal of whosoever might chose to cultivate it ....when with the progress of society land of the second degree of fertility is taken into cultivation, rent immediately commences on that of the first quality and the amount of that rent will depend on the difference in the quality of these two portions of

जाता है। फिर जब निकृष्ट श्रेणी की भूमि में भी कृषि होने लगती है, तब मध्यम श्रेणी की भूमि पर कर लग जाता है, और इसके कर का भी आधार मध्यम और निकृष्ट श्रेणी की भूमियों के गुणों का बलाबल ही होता है। उस समय उत्तम श्रेणी की भूमि का कर बढ़ जाता है। ऐसी अवस्था में प्राचीन भूमि पर यथेष्ट धन ख़र्च किया जाता है, और उस पर कर भी लगता है। कारण, कर सदैव उस उपज का अंतर होता है, जो समान श्रम और व्यय से (भूमियों में) हुआ करता है। ऐसी भूमि को, जो सबसे अधिक उपजाऊ होती और जिसमें सब प्रकार की सुविधा पड़ती है, लोग पहले जोतते हैं।"

हिंदू-ग्रंथ देखने से जान पड़ता है कि भूमि-कर पहले उपज का दशांश था। उस समय ६ भाग उपज भूमि को जोतनेवालों के लिये छोड़ दी गई थी। इस कर के स्थापन का कारण 'भूमि की उर्वरा-शक्ति' न थी, जिसके आधार पर 'कर' का लगाया जाना पाश्चात्य विद्वानों ने माना है। उस समय भूमि का कोई स्वामी भी न था, जिसे, भूमि की उर्वरा-शक्ति को काम में लाने के लिये, किसान भूमि की उपज का कोई भाग देते। दशांश तो उन लोगों ने राजा को अपनी रक्षा के बदले में देना स्वीकार किया था। भारतवर्ष के राजा इतने अन्यायी न थे कि भूमि की उर्वरा-शक्ति से लाभ उठाने के बदले में अपनी प्रजा से 'भूमि-कर' लेते, और रक्षा तथा न्याय के मूल्य-स्वरूप कर के बोझे के नीचे दबाकर उनको चकनाचूर कर देते। उस समय के राजा यह बात अच्छी तरह समझते थे कि भूमि यद्यपि परिमित है, फिर भी यह प्रकृति का एक अंग है; इससे लाभ उठाने के सभी वैसे ही अधिकारी हैं, जैसे कि धूप, वायु, अग्नि आदि प्रकृति के अंशों से सब लाभ उठाते हैं। इसी कारण उस समय भूमि का कुछ भी मूल्य न था, और न हिंदू-शास्त्रों में उसे स्थिर संपत्ति और विभाज्य माना गया है। स्थिर संपत्ति तो वह मानी गई, जो भूमि से संलग्न हो, जिसे बिना छिन्न-भिन्न किए कोई स्थानांतर में न ले जा सके; जैसे घर, वाटिका, वृक्ष इत्यादि। वह भी संपत्ति उसी की मानी जाती थी, जिसने उसे लगाया, बनाया या बोया हो। किंतु यदि वे प्राकृतिक हैं, तो उनसे लोग उपयोग-मात्र उठाने के अधिकारी थे। उदाहरण-स्वरूप पर्वत, वन, नदी आदि पर की ऐसी वस्तुएँ राष्ट्र की संपत्ति मानी जाती थीं। इससे यह स्पष्ट है कि हिंदुओं के भू-कर-विधान का आधार पाश्चात्यों के भू-कर-विधान के आधार से नितांत विभिन्न है। यही कारण है कि पाश्चात्य देशों में, या जहाँ पाश्चात्यों का संसर्ग हुआ, प्रजा पर नक़दी का कर लगाया गया है, और उस कर को यथासमय, ज्यों-ज्यों महँगी बढ़ती गई, बढ़ाने का प्रयत्न किया गया है। वहाँ यह मानकर 'कर' की कल्पना हुई है कि भूमि पर भू-स्वामी का वैयक्तिक अधिकार है; भूमि राज्य का अंश नहीं है।

भारतवर्ष में, जैसा कि ऊपर दिखलाया जा चुका है, भूमि-कर पहले उपज का दशांश था। पीछे ज्यों-ज्यों रक्षा का भार बढ़ता गया, और राजों को अपनी प्रजा के लिये विशेष सुख-सामग्री आदि जुटाने के लिये अधिक व्यय की आवश्यकता पड़ती गई, त्यों-त्यों प्रजा कर को बढ़ाती गई। महाभारत के देखने से पता चलता है कि उस समय छठा भाग भूमि-कर था; जिसे बलि कहते थे। व्यासजी युधिष्ठिर से कहते हैं—

"आदाय बलिषड्भागं यो राष्ट्रं नाभिरक्षति,
प्रतिगृह्णाति तत्पापं चतुर्थांशेन भूमिपः।"

अर्थात् षष्ठांश बलि को लेकर जो राजा राष्ट्र की रक्षा नहीं करता, उस राजा को प्रजा के पाप का चतुर्थांश मिलता है।

यह षडंश बलि भी रक्षा के बदले में ली जाती थी— भूमि को जोतने का कर नहीं थी।

मौर्य-काल में यह षड्भाग बलि तृतीयांश और चतुर्थांश हो गई थी। कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र में, कोशाभिसंहरणाध्याय में, लिखा है—

land. When land of the third quality is taken into cultivation, rent immediately commences on the second and it is regulated as before by the difference in productive powers. At the same time the rent of the first quality will rise....... In such case capital will be preferably employed on the old land and will equally create rent, for rent is always the difference between the produce obtained by the employment of two equal quantities of capital and labour........The most fertile and most favourably situated land will be first cultivated.

"कोशमकोशः प्रत्युत्पन्नार्थकृच्छ्रं संगृह्णीयात् । जनपदं महांतमल्पप्रमाणं वा देवमातृकं प्रभूतधान्यं धान्यस्यांशं तृतीयं चतुर्थं वा याचेत यथासारम्। मध्यमवरं वा दुर्ग-सेतुकर्म-वणिक्-पथ-शून्यनिवेश-खनि-द्रव्य-हस्ति-वनकर्मोपकारिणं प्रत्यंतमल्प-प्राणं वा न याचेत। धान्यपशुहिरण्यादि निविशमानाय दद्यात्। चतुर्थमंशं धान्यानां बीजभक्तशुद्धं हिरण्येन क्रीणीयात्। अरण्यजातं श्रोत्रियस्वं च परिहरेत् । × × × × × × चतुर्थमंशं धान्यानां षष्ठं वन्यानां तूल-लाक्षा-क्षौम-वल्कल-कार्पास-रौम-कौशेय-कौषधगंधं पुष्पफलशाकपण्यानां काष्ठ-वेणु-मांस-वल्लूराणां च गृह्णीयुः । दंताजिनस्यार्द्धम् ।"

अर्थात् जब राजा का कोश क्षीण हो, धन का कष्ट हो, उस दशा में वह इस रीति से (धन का) संग्रह करे। जनपद चाहे बड़ा हो या छोटा, यदि वहाँ केवल वर्षा के कारण अन्न की उपज अच्छी होती हो, तो वहाँ उपज का तृतीयांश या चतुर्थांश माँगकर प्रजा से ले। मध्यम * और अवर को तथा दुर्ग † सेतुकर्म, वणिक्पथ, शून्य-निवेश (नई आबादी) खान, द्रव्य-वन और हस्ति-वन के काम में उपकारी (सहायता करनेवालों) और जो सीमा पर रहते हों, या अल्प-प्राण हों, उनसे कुछ न माँगे । नए बसनेवालों को धान्य, पशु और धन (हिरण्य) दे। उपज का जो अंश बीज और भक्त (खाने के लिये जो वर्ष-भर के लिये पर्याप्त हो) अलग कर देने से बचे, उसका चौथा भाग दाम देकर मोल ले। अरण्य में उत्पन्न होनेवाली वस्तु और जो श्रोत्रियों के लिये है, जैसे नीवार आदि, उसको त्याग दे। × × × × धान्य का चतुर्थांश, वन की उपज का षष्ठांश ले। रुई, लाख, क्षौम, वल्कल (वृक्ष की छाल का वस्त्र), कार्पास, रौम, कौशेय, कौषध (औषधि), गंध, पुष्प, फल, शाक आदि (जो बाज़ार में बिकने के लिये हों) तथा काठ, बाँस, मांस और वल्लूर का षष्ठ भाग ले।

इससे यह प्रकट है कि राजा के लिये उपज का तृतीयांश या चतुर्थांश जो कर-स्वरूप लेने का विधान है, वह आपद्धर्म है ; अर्थात् राजा ऐसी अवस्था में अपनी प्रजा से तृतीयांश या चतुर्थांश ले सकता है, जब उसे अर्थ-संकट हो। किंतु उस दशा में भी उसे अपनी प्रजा से याचना करनी चाहिए। इससे यह कभी आशय नहीं निकलता कि तृतीयांश या चतुर्थांश उस समय कर था, बल्कि राज-कर षष्ठांश ही था । राजा षष्ठांश ही ले सकता था। हाँ, आपद्दशा में, जैसे जब अन्य राजों से युद्ध करना होता, या ऐसे ही अन्य कारणों से उसे अर्थ-संकट का सामना करना पड़ता, तब वह अपनी प्रजा से ऐसी भूमि की उपज की चौथाई या तिहाई माँगता था, जिसमें विना सिंचाई किए, केवल वर्षा के जल से, अच्छी फ़सल उपजती थी।

यहाँ पर यह भी दिखला देने की आवश्यकता है कि उस समय गाँवों का प्रबंध क्या था। गाँव उस समय दो प्रकार के थे। एक वे, जो बसे हुए थे, जिन-का प्रबंध उन सामंतों के अधीन था, जो राजा को अपनी आय का भाग देते थे। दूसरे वे, जो नए बसाए जाते थे। पुराने बसे हुए गाँवों के भी दो भेद थे। एक करद, दूसरे अकरद । करद गाँव वे थे, जिनका प्रबंध राजा के अधीन था। और, अकरद वे थे, जिनका प्रबंध उनका स्वामी करता था । अकरद गाँवों में उनके अधिपति को 'भोग' का स्वत्व था, और करद गाँवों में राजा भोग के स्वत्व का भागी था।

गाँव के बसाने के संबंध में कौटिल्य लिखते हैं—

"भूतपूर्वमभूतपूर्वं वा जनपदं परदेशापवाहनेन स्वदेशाभिष्यंदवमनेन वा निवेशयेत् । शूद्रकर्षकप्रायं कुलशतावरं पंचशतकुलपरं ग्रामं क्रोशद्विक्रोशसीमानमन्योन्यारक्षं निवेशयेत्। नदीशैलवनगृष्टिदरीसेतुबंधशाल्मलीशमीक्षीरवृक्षानंतेषु सीम्नां स्थापयेत्। अष्टशतग्राम्या मध्ये स्थानीयं चतुःशतग्राम्या द्रोणमुखं द्विशतग्राम्या खार्वटिकं दशग्रामी संग्रहेण संग्रहणं स्थापयेत् । अंतेष्वंतपालदुर्गाणि जनपदद्वाराण्यंतपालाधिष्ठितानि स्थापयेत् । तेषामंतराणि वागुरिकशबरपुलिंद

* "षंडो मध्यमः । इक्षवः प्रत्यवरं ।" बाग़ की चीज़ें जो लोग अपने काम के लिये बोवें, वे मध्यम हैं । ईख प्रत्यवर या अवर है।

† "शुल्कं दंडः पौतवं नागरिको लक्षणाध्यक्षो मुद्राध्यक्षः सुरा सूनासूत्रं तैलं घृतं क्षारं सौवर्णिकः पण्यसंस्था वेश्या द्यूतं वास्तुकं कारुशिल्पिगणो देवताध्यक्षो द्वारबहिरिकादेयं च दुर्गम् । पुष्पफलवाटषंडकेदारमूलवापाःसेतुः । स्थलपथो वारिपथश्च वणिक्पथः । सुवर्णरजतवज्रमणिमुक्ताप्रवालशंखलोहलवणभूमिप्रस्तररसधातवः खनिः । पशुमृगद्रव्यहस्तिवनपरिग्रहो वनम् ।"

चांडालारण्यचरा रक्षेयुः । ऋत्विगाचार्यपुरोहितश्रोत्रियेभ्यो ब्रह्मदेयान्यदंडकराण्यभिरूपदायकानि प्रयच्छेत्। अध्यक्षसंख्यापकादिभ्यो गोपस्थानिकानीकस्थचिकित्सकाश्वदमकजंघारिकेभ्यश्च विक्रयाधानवर्जम्। करदेभ्यः कृतक्षेत्राण्यैकपुरुषिकाणि प्रयच्छेत्। अकृतानि कृतिभ्यो नादेयात्। अकृषतामाच्छिद्यान्येभ्यः प्रयच्छेत्। ग्रामभृतकवैदेहका वा कृषेयुः। अकृषंतोऽपहीनं दद्युः। धान्यपशुहिरण्यैश्चैनाननुगृह्णीयात्तान्यनुसुखेन दद्युः। अनुग्रहपरिहारौ चैभ्यः कोशवृद्धिकरौ दद्यात्। कोशोपघातकौ वर्जयेत्। अल्पकोशो हि राजा पौरजानपदानेव ग्रसते।"

अर्थात् जहाँ पहले गाँव रहा हो, पर उजड़ गया हो, और जहाँ कभी बस्ती न रही हो, वहाँ दूसरे देश अथवा स्वदेश से, जहाँ बस्ती घनी हो, लोगों को बुलाकर बसाया जाय। ग्राम में दो सौ घर से कम और पाँच सौ घर से अधिक घर न हों, और ये प्रायः शूद्रों और कृषकों के घर रहें, जो एक दूसरे की रक्षा करें। गाँव की सीमा कोस-दो कोस की हो। गाँव की सीमा नदी, पर्वत और वन तक रहे; नहीं तो सीमा पर गृष्टि, दरी, सेतु-बंध, सेमल, शमी या क्षीर-वृक्ष रहें। आठ सौ गाँवों के मध्य एक स्थानीय, चार सौ के मध्य एक द्रोणमुख, दो सौ के मध्य एक खार्वटिक और दस-दस गाँवों में एक संग्रहण बनाए जायँ। जनपद की सीमा पर अंतपालों के दुर्ग रहें। वे अंतपाल जनपद के नाके पर रहें। अंतपालों के बीच में वागुरिक, शबर, पुलिंद, चांडाल और अरण्यचर रक्षार्थ रहें। ऋत्विक्, आचार्य, पुरोहित और श्रोत्रियों को यथायोग्य ब्रह्म-देय दंड और कर-रहित 'दाय' दे। अध्यक्ष, संख्यापक आदि को तथा गोप, स्थानिक, अनीकस्थ, चिकित्सक, अश्वदमक, जंघारिकों को भी दाय दे। यह दाय 'विक्रय और आधान-वर्ज' हों; अर्थात् न बेचे जा सकें और न रिहन हो सकें। जो खेत बन गए हों, उन्हें कर देने-वालों को एक पुरुषक * दिया जाय। जो खेत न बने हों, उन्हें बनानेवालों से न लिया जाय। जो कृषि न करे, उससे खेत लेकर दूसरों को दे दिए जायँ। अथवा वे ग्राम-भृतकों (जैसे नाई, धोबी आदि) और वैदेहकों को जोतने को दे दिए जायँ। जो खेत में कृषि न करे, उससे अपहीन (हर्जाना) लिया जाय। (यदि जोतें तो) उनको धान्य, पशु, हिरण्य अनुग्रह-स्वरूप दिए जायँ, और उनको वे सुख से लौटा दें। यह अनुग्रह (तक़ावी) और परिहार (छूट) ऐसा हो कि कोश बढ़ता रहे। यदि कोश को हानि की आशंका हो, तो न दिया जाय। जिस राजा का कोश अल्प होता है, वह पौरों और जानपदों को निगल जाता है।

यह तो हुई नई बस्ती की बात, अब यह बतलाने की आवश्यकता है कि उस समय आय के कितने द्वार थे।

"समाहर्ता दुर्गं राष्ट्रं खनिं सेतुं वनं व्रजं वणिक्पथं चावेक्षेत।"

इसका मतलब यह है कि समाहर्ता दुर्ग, राष्ट्र, खनि, सेतु, वन, व्रज, वणिक्पथ नामक विभागों का निरीक्षक या बड़ा अफ़सर होता था। इनमें से प्रत्येक विभाग के अनेक भेद थे। दुर्ग-विभाग के शुल्क, दंडादि २० भेद थे। राष्ट्र के सीता, भाग, बलि, कर, वणिक् आदि १२ भेद थे। खनि के सोना आदि भेद और सेतु के पुष्प, फल, वाट, केदार, मूलवाप आदि कई भेद थे। पशुवन, मृगवन, द्रव्यवन, हस्तिवन, ये वन के भेद थे। व्रज के गो, महिष, अज, अविक, खर, उष्ट्र, अश्व, अश्वतर आदि भेद थे। स्थल-पथ और वारि-पथ, ये वणिक्-पथ के भेद थे।

इनमें राष्ट्र के अंतर्गत भाग, बलि और कर-नामक आय थीं, जिनमें भाग नाम की वह आय थी, जो छोटे-छोटे सामंतों से मिलती थी। बलि नाम की आय वह थी, जिसे बड़े-बड़े लोग उपहार-स्वरूप भेजते थे। और, कर नाम की आय वह थी, जो राजा के निज अधिकृत देश से मिलती थी। जहाँ से राजा को कर मिलता था, उसी भूमि को वह अन्यों को दाय में दे सकता था। इसीलिये श्रोत्रिय आदि राज-कर्मचारियों को दंड और कर-रहित भूमि देने का विधान ऊपर किया गया है। ये अकरद कहलाते थे, और अपना काम करते हुए अपने 'भोग' को वहाँ से, जो उस स्थान की परिस्थिति के अनुसार होता था, लेते थे।

अब इस समय उस काग़ज़ के ऊपर भी ध्यान देने की आवश्यकता है, जिसे समाहर्ता तैयार कराता था।

समाहर्ता * जनपद की चार बहियाँ रखता था—ग्रामाग्र, क्षेत्राग्र, गृहाग्र और कुलाग्र।

---

* 'एक-पुरुषक' के यह भी अर्थ होते हैं कि एक पुरुष के साथ बंदोबस्त हो, कुटुंब-भर के साथ नहीं।

* "समाहर्ता चतुर्धा जनपदं विभज्य ज्येष्ठमध्यमकनिष्ठ-विभागेन ग्रामाग्रं परिहारकमायुधीयं धान्यपशुहिरण्यकुप्यविष्टि-करप्रतिकरमिदमेतावदिति निबंधयेत् × × × सीमावरोधेन ग्रामाग्रम्। कृष्टाकृष्टस्थलकेदारारामषंडवाटवनवास्तुचैत्य-

ग्रामाग्र—इसमें गाँवों के भेद (ज्येष्ठ, मध्यम, कनिष्ठ), उनमें कितनी छूट दी गई है, कितने सैनिक हैं, कितना धान्य, पशु, हिरण्य, कुप्य (वन्य उपज), विष्टि (मज़दूर)-कर, प्रतिकर मिल सकता है, यह लिखा रहता था । इसमें गाँवों की सीमा भी लिखी जाती थी।

क्षेत्राग्र—इसमें कितना कृष्ट और कितना अकृष्ट है, कितना स्थल और कितना केदार है, आराम, षंड-वन, वाट-वन, वास्तु, चैत्य, देव-गृह, सेतु, बंध, श्मशान, सत्र, प्रपा, पुण्य-स्थान, विवीति (चरी), पथ आदि की गणना, गाँव की सीमा के क्षेत्रों की मर्यादा, अरण्य और पथ का प्रमाण तथा कितना संप्रदान, विक्रय, अनुग्रह, परिहार दिया गया है, यह सब लिखा जाता था।

गृहाग्र—इसमें कितने घर करद हैं, कितने अकरद, उनमें कितने ब्राह्मण, कितने क्षत्रिय, कितने वैश्य, कितने शूद्र हैं, कितने कृषक, गो-रक्षक, वैदेहक, कारु-कर्म करनेवाले और दास हैं, कितने मनुष्य और कितने चतुष्पद हैं, कितना हिरण्य, कितना विष्टि, कितना शुल्क और कितना दंड से आता है, इत्यादि विवरण रहता था।

कुलाग्र—इसमें कितने कुल हैं, उनमें कितनी स्त्री और कितने पुरुष हैं, कितने बालक और कितने वृद्ध हैं, वे अमुक-अमुक काम करते हैं, उनके चरित्र, आजीव, आय और व्यय का क्या लेखा है, यह सब रहता था।

अर्थ-शास्त्र के देखने से जान पड़ता है कि चंद्रगुप्त के काल ही में ब्रह्म-देय दंड-कर-रहित थे । और, करद को, जो एक पुरुष होता था, विक्रेय और आधान्य माना जा चुका था। पर करद अपने स्वत्व को करद ही के हाथ आधान और विक्रय कर सकते थे, और ब्रह्मदेयिक ब्रह्मदेयिक के हाथ *। अन्यथा उनको पूर्व-साहस-दंड देना पड़ता था। पर ये करद समस्त ग्राम के अधिपति नहीं, एक प्रकार के ठेकेदार होते थे । उनको भूमि के कुछ खेत या टुकड़े, उनके जीवन तक या एक पीढ़ी तक के लिये, दिए जाते थे। गाँव का पूर्ण स्वत्व रखनेवाले भागद और अकरद होते थे । उनको अपने स्वत्व का विक्रय और आधान करने का अधिकार नहीं था । यदि होता, तो इसका उल्लेख अर्थ-शास्त्र में अवश्य होता । इससे यह भी निश्चय होता है कि उस समय कृषक से खेत की उपज का ही अंश लिया जाता था। हाँ, नई बस्ती में, जहाँ एक पुरुष के ठेके की प्रथा करदों के लिये थी, 'हिरण्य' (नक़दी) भले ही लिया जाता था।

ऐसा अनुमान होता है कि मुसलमान-काल के पूर्व तक यही प्रथा प्रचलित थी और, राजा लोग करदों (ठेकेदारों) से हिरण्य और शेष से उपज का षष्ठांश लेते थे।

पृथ्वीराज-दिग्विजय एक ऐतिहासिक काव्य है । उसमें कवि जोनराज ने लिखा है—

"गणनातिगन्युपवनानि वापिका-
स्सरसीः प्रपाश्च दधती वसुंधरा;
दिननायकस्य जगदेकचक्षुषो-
प्युधुनाश्नुते दशमभागदश्यताम् ।"

अर्थात् वसुंधरा पर असंख्य उपवन, वापी, सरोवर आदि हैं ; पर देखो संसार का एक-मात्र चक्षु दिननायक सूर्य अब उसका दशांश रस ग्रहण करता है । इसी प्रकार राजा समृद्ध प्रजा के शस्य का दशांश लेता है।

आईन-अकबरी के देखने से प्रकट होता है कि अकबर के राज्य-काल के आरंभ में और उसके पूर्व यह प्रथा थी कि * समाहर्ता जो इस काम पर नियत होता था, वह देशानुसार अन्नों के भाव को विचार-पूर्वक देखकर उपज के अंश का मूल्य लिया करता था। उस समय भूमि की उपज का तृतीयांश या चतुर्थांश भूमि-कर था । अकबर ने पाँच वर्ष तक तो इस प्रबंध को चलने दिया, पर छठे वर्ष से उसने जिंसवार लिखवाना आरंभ किया, और उन्नीस वर्ष तक उसी रीति से उपज का तृतीयांश और

देवगृहसेतुबंधश्मशानसत्रप्रपापुण्यस्थानविवीतिपथिसंख्यानेन क्षेत्राग्रम् । तेन सीम्नां क्षेत्राणां च मर्यादारण्यपथिप्रमाणसंप्रदानविक्रयानुग्रहपरिहारनिबंधान् कारयेत् । गृहाणां च करदादसंख्यानेन । तेषु चैतावच्चातुर्वर्ण्यमेतावंतः कर्षकगोरक्षकवैदेहकारुकर्मकरदासाश्चैतावच्च द्विपदचतुष्पदमिदं चैषु हिरण्यविष्टिशुल्कदंडस्समुत्तिष्ठतीति । कुलानां च स्त्रीपुरुषाणां बालवृद्धकर्मचरित्राजीवायव्ययपरिमाणं च विद्यात् ।"

* "करदाः करदेष्वाधानं विक्रयं वा कुर्युः । ब्रह्मदेयिका ब्रह्मदेयिकेषु । अन्यथा पूर्वसाहसदंडः ।".

---

* همواره کار دانان آگاه بر نشستی و نرخ غلهاے ممالک
بر گرفتے وژرف نگهي کرده آزان ارزغله گرفتے
آئین اکبری جلد اول صفحه ۳۷۳ ۰ طبعه نولکشور پریس

चतुर्थांश मूल्य लेता रहा। इस प्रकार पचीसवें वर्ष से उसने अपने समस्त साम्राज्य के लिये देश के अनुसार दरबंदी बनवाई, और तब से यह कर नक़दी हो गया। अकबर ने भूमि के चार भेद किए थे—पोलच, परोटी, चचर और बंजर। इन सबमें पोलच पर तो छठे वर्ष से ही नक़दी कर लग गया था; पर पचीसवें वर्ष के बाद अकबर ने आईन बनाकर दस्तूर के लिये यथाशक्य (जिस के अनुसार) कर की दर नियत की, और उसी समय से दरबंदी के अनुसार भारतवर्ष में उपज के स्थान में नक़दी राज-कर लेने की प्रथा चली। अकबर के समय में जो देशानुसार निर्ख़नामा बना था, वह अकबरनामा जिल्द २ के आरंभ में दिया हुआ है। पाठक उसे वहीं देख लें।

जगन्मोहन वर्मा

लाहौर

[उत्तरार्द्ध]

मोराँ की मसजिद

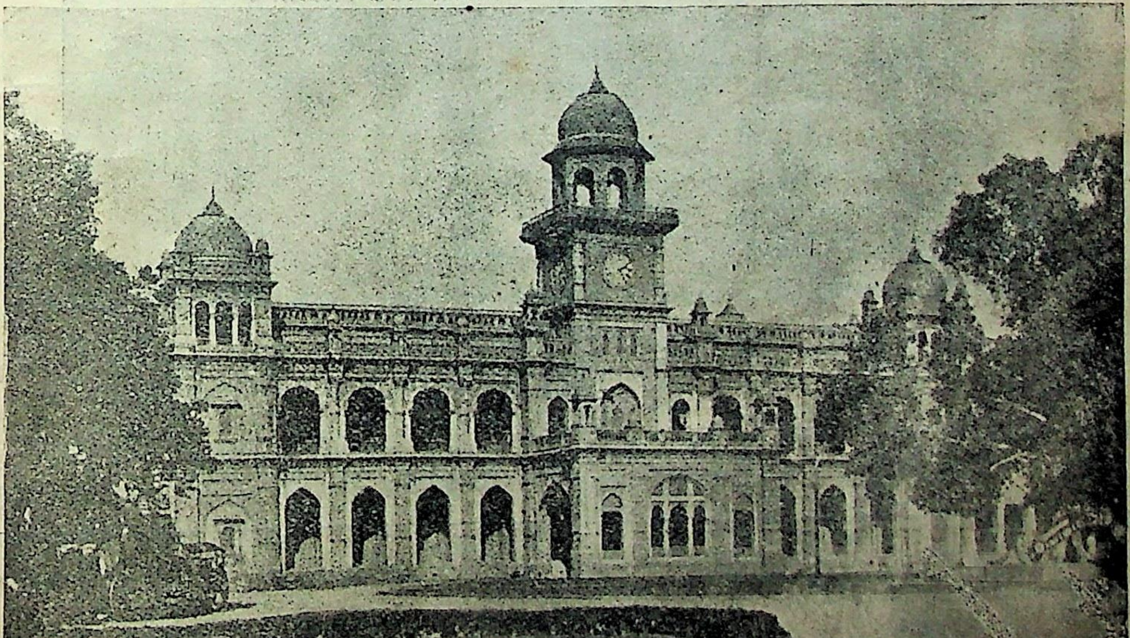
यह मसजिद शाह-आलमी दरवाज़े के अंदर पापड़मंडी बाज़ार में है। मोराँ महाराजा रणजीतसिंह की रखैल एक यवन-सुंदरी थी। उसने महाराज के हृदय पर ऐसा अधिकार प्राप्त कर लिया था कि उससे बड़े-बड़े सरदार भी डरते रहते थे। महाराज स्वयं उसके घर पर आते थे। उसके नाम की मोहर तक थी। उसके नाम की मोहर मोराँ-शाही कहलाती थी। यह मसजिद सन् १८०६ ई० में बनी थी।

बादामी बाग़

यह बाग़ क़िले के उत्तर में है। ब्रिटिश-राज्य के आरंभ में यह सार्वजनिक बाग़ था। अँगरेज़ स्त्री-पुरुष इधर वायु-सेवनार्थ जाया करते थे। इस बाग़ का निरीक्षण पुराने 'लाहौर-क्रॉनिकल'-नामक अँगरेज़ी समाचार-पत्र के संपादक श्रीयुत हेनरी कॉप के अधीन था। बाद को लारेंस-बाग़ के बनने से यह बाग़ उजड़ गया। बादामी बाग़ की नींव महाराज रणजीतसिंह ने रक्खी थी। मस्ती और शेराँवाला दरवाज़ों के बीच 'ग़ल-बादाम' नाम की एक मुसलमान राजकुमारी की क़ब्र थी। उसी के नाम पर इसका नाम बादामी बाग़ पड़ा। अब बाग़ का कोई भी चिह्न नहीं है।

लाहौर के कॉलेज

लाहौर पंजाब में विद्या का केंद्र है। यहाँ पंजाब-



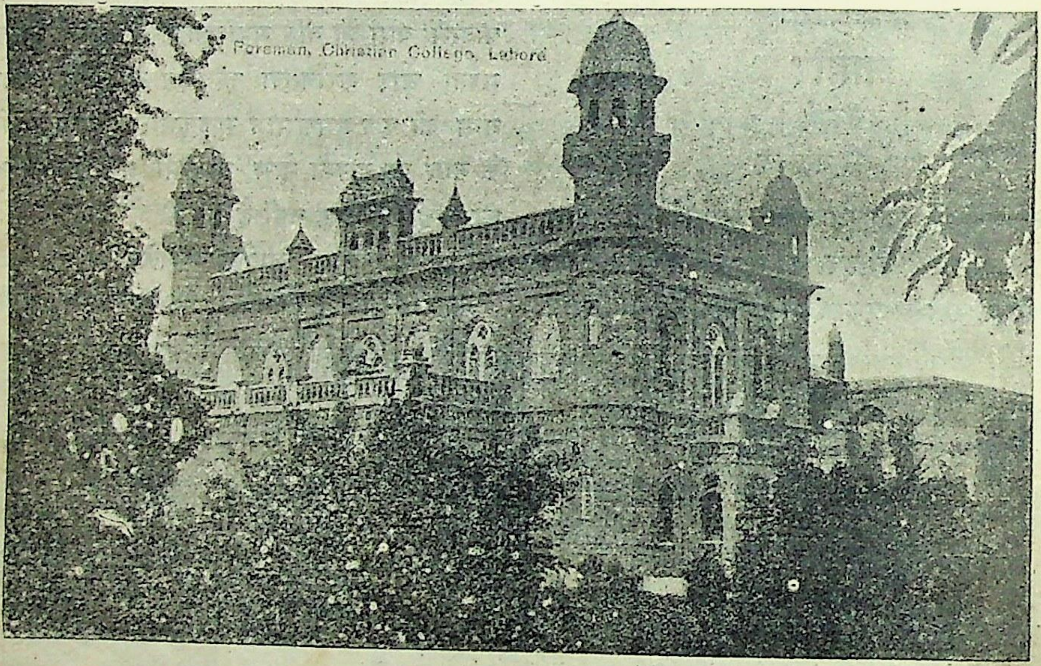
पंजाब-विश्वविद्यालय-भवन

विश्वविद्यालय, ग्यारह कॉलेज और अनेक हाई स्कूल हैं। कॉलेजों के नाम ये हैं—

फ़ोर्मैन-क्रिश्चियन-कॉलेज, दयानंद-एंग्लो-वैदिक-कॉलेज, गवर्नमेंट-कॉलेज, सनातनधर्म-कॉलेज, दयालसिंह-कॉलेज, इसलामिया-कॉलेज, ओरियंटल-कॉलेज, मेडिकल-कालेज, सेंट्रल-ट्रेनिंग-कॉलेज, चीफ़्स कॉलेज, किनर्ड-कॉलेज, और लॉ-कॉलेज।

फ़ोर्मैन-क्रिश्चियन-कॉलेज

सन् १७४९ ई० में अमेरिका के परदेशीय मिशन-समिति के दो सदस्य—पादरी न्यूटन और फ़ॉर्मन—लाहौर आए थे। उन्होंने 'रंग-महल'-नामक भवन में पहला अँगरेज़ी-स्कूल खोला। यही स्कूल उन्नति करते-करते,



फ़ोर्मैन-क्रिश्चियन-कॉलेज

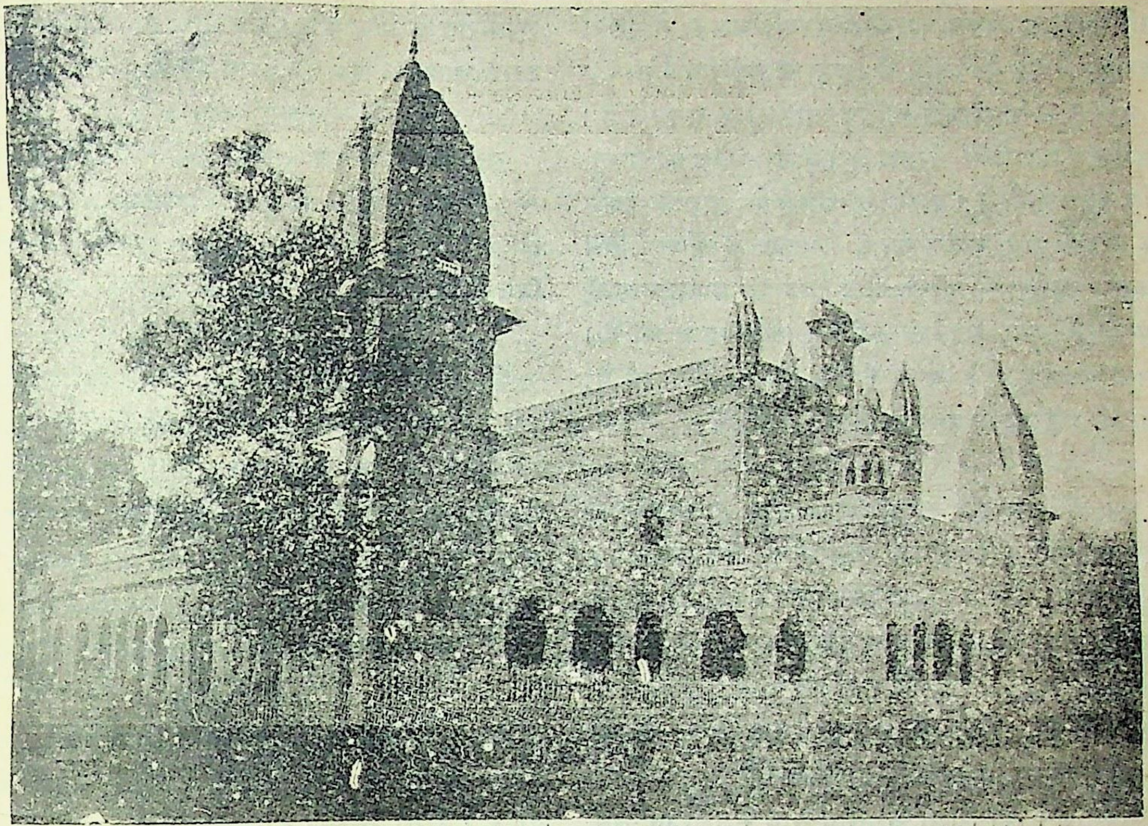
सन् १८८६ ई० में, कॉलेज बन गया। कुछ समय के बाद यह मकान छोटा समझा गया। इसलिये बड़े डाकघर के पास, ठंडी सड़क पर, कॉलेज के लिये नई इमारत बनाई गई। अब यह कॉलेज बहुत रौनक़ पर है।

दयानंद-एंग्लो-वैदिक कॉलेज

दयानंद-एंग्लो-वैदिक-कॉलेज की नींव सन् १८८५ ई० में रक्खी गई थी। पंजाब में आर्यसमाजियों की यह एक महत्त्व-पूर्ण संस्था है। जितने विद्यार्थी इस कॉलेज में शिक्षा पाते हैं, उतने अन्य किसी भी कॉलेज में नहीं। इसकी एक बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ पाश्चात्य शिक्षा के साथ-साथ प्राचीन वैदिक धर्म की भी शिक्षा दी जाती है। युनिवर्सिटी की शैली पर संस्कृत के पठन-पाठन का अच्छा प्रबंध है। कॉलेज ने अपने संचालकों के सुप्रबंध और त्याग के कारण थोड़े ही समय में अच्छी उन्नति कर ली है। इसके नवीन सुंदर भवन को देखते ही मालूम हो जाता है कि यह कोई हिंदू-संस्था है। यहाँ का प्राचीन संस्कृत-खोज-विभाग पं० भगवद्दत्तजी बी० ए० की अध्यक्षता में बड़ा उपयोगी कार्य कर रहा है।

ओरियंटल-कॉलेज

ओरियंटल-कॉलेज का मूल लाहौर की संस्कृत-पाठशाला थी। इसको सन् १८६३ में शिक्षा-सभा ने स्थापित किया था। यह एक प्राइवेट संस्था थी। पीछे से गवर्नमेंट ने भी इसे सहायता देना स्वीकार कर लिया। तब से बढ़ते-बढ़ते यह वर्तमान ओरियंटल-कॉलेज के रूप में परिणत हो गई। पीछे से इसमें अरबी-फ़ारसी की शिक्षा का भी प्रबंध हो गया। सन् १८७० ई० में



श्रीमद्दयानंद-एँग्लो-वैदिक-कॉलेज

युनिवर्सिटी ने इसे कॉलेज बनाकर अपने हाथ में ले लिया। यहाँ संस्कृत, अरबी, फ़ारसी और पंजाबी की उच्च शिक्षा का अच्छा प्रबंध है।

गवर्नमेंट-कॉलेज

गवर्नमेंट-कॉलेज सन् १८६४ ई० में खोला गया था। तब तक पंजाब विश्वविद्यालय की स्थापना नहीं हुई थी,



गवर्नमेंट-कॉलेज

इसलिये इसका संबंध कलकत्ता-विश्वविद्यालय से किया गया। इसमें पदार्थ-विज्ञान की शिक्षा का सर्वोत्तम प्रबंध है।

कॉलेज की पढ़ाई एक गाथिक ढंग के सुंदर भवन में है। उसमें एक बड़ा ऊँचा घंटाघर है। कॉलेज-भवन की वास्तु-भूमि बहुत ऊँची है। क्लासों के कमरों के अलावा इसमें एक बड़ा विशाल परीक्षा-भवन, पुस्तकालय और भौतिक विज्ञान, रसायन-शास्त्र एवं जीव-विद्या की प्रयोग-शालाएँ तथा एक बड़ा जीव-शास्त्र-संबंधी अजायबघर भी है। इसकी इमारत ३½ लाख की लागत से, पाँच वर्ष में, बनी थी। इसके छात्रावास भी बड़े अच्छे हैं।

दयालसिंह-कॉलेज

दयालसिंह-कॉलेज सरदार दयालसिंह मजीठिया की वदान्यता का फल है। इसकी इर्द-गिर्द की नींव सन् १९१० ई० में रक्खी गई थी। यहाँ ब्राह्म-समाज के सिद्धांतों की भी शिक्षा दी जाती है। कॉलेज का भवन निसबत-रोड पर है।

इसलामिया-कॉलेज

इसलामिया-कॉलेज की स्थापना सन् १८९२ ई० में हुई थी। यहाँ प्रायः ९९ फ़ी-सदी विद्यार्थी मुसलमान हैं। विश्वविद्यालय की शिक्षा के साथ-साथ मुसलमानी-धर्म की भी शिक्षा दी जाती है। यहाँ अरबी और फ़ारसी की शिक्षा पर विशेष ज़ोर दिया जाता है। यह ब्रेंडथ और रेलवे-रोड के बीच आठ एकड़ भूमि पर बना हुआ है। इसके साथ जे० ए० वी० क्लास भी है।

सनातनधर्म-कॉलेज

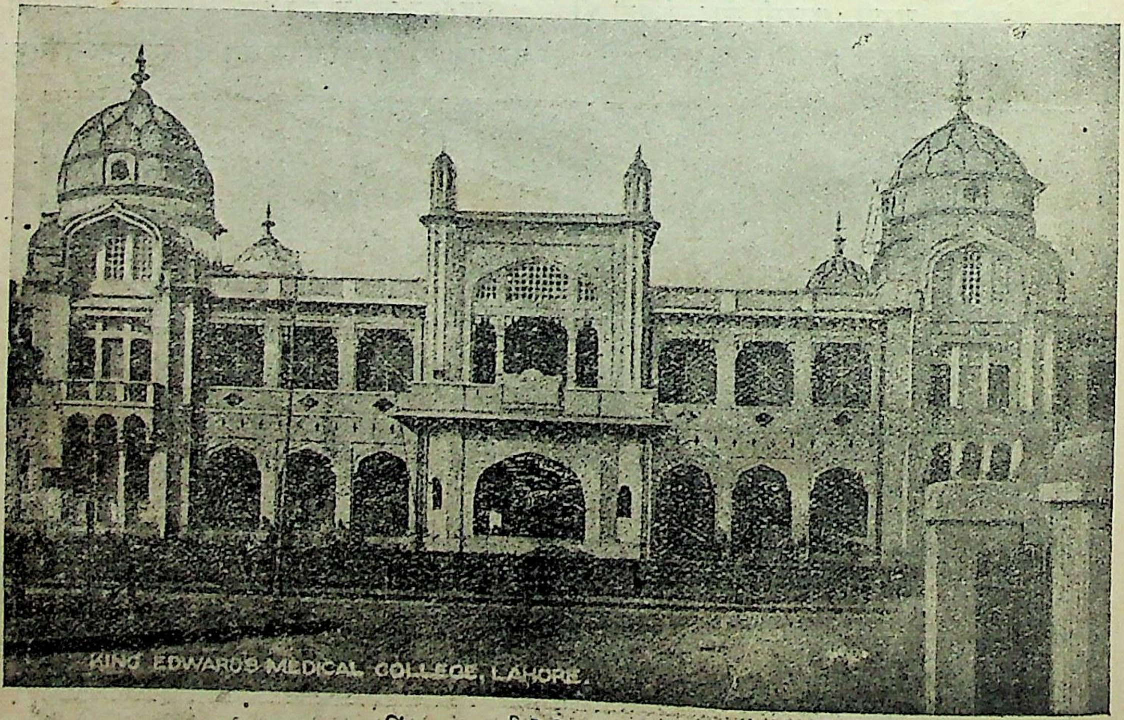
सनातनधर्म-कॉलेज सनातनधर्मावलंबियों के उद्योग से १९ मई, सन् १९१६ ई०, में स्थापित हुआ था। यह लोवर माल पर स्थित है। यहाँ संस्कृत की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

किनर्ड-कॉलेज

किनर्ड-कॉलेज पहले लड़कियों का एक हाई स्कूल था। इस स्कूल की स्थापना सन् १८७९ ई० में हुई थी। सन् १९१३ ई० में इसने कॉलेज का रूप धारण किया। यहाँ लड़कियों के लिये बी० ए० तक की शिक्षा का प्रबंध है। कॉलेज का उद्देश्य स्त्रियों को ईसाई-धर्म पर आश्रित उच्च-शिक्षा देना और उन्हें अच्छी नागरिका बनाना है। इसमें प्रत्येक धर्म की छात्रियाँ भरती हो सकती हैं।

सेंट्रल-ट्रेनिंग-कॉलेज

सेंट्रल-ट्रेनिंग-कॉलेज में शिक्षार्थियों को शिक्षा-दान की विधि सिखलाई जाती है। इसमें सबसे बड़ी श्रेणी बी०-टी० है। उससे उतरकर क्रमशः एस्० ए० वी०, जे० ए० वी०, एस्० वी० और जे० वी० हैं। यह सन् १८८१ ई० में स्थापित हुआ था। इसमें भरती होने के लिये लड़को



किंग एडवर्ड-मेडिकल-कॉलेज

को बड़ा उद्योग करना पड़ता है। यह कॉलेज लड़कों के प्रवेश पर अनावश्यक कड़े बंधन लगाकर अपने महत्त्व को बढ़ाने और देश के नवयुवकों को विद्या से वंचित रखने की निंदनीय चेष्टा कर रहा है।

किंग एडवर्ड-मेडिकल-कॉलेज

किंग एडवर्ड-मेडिकल-कॉलेज की स्थापना सन् १८६० ई० में हुई थी। इसके साथ एक बहुत बड़ा अस्पताल भी है। कुछ वर्ष पहले इसमें भरती होने के लिये विद्यार्थी बड़े लालायित रहते थे। परंतु जब से पंजाब-सरकार ने योग्यता के स्थान में भिन्न-भिन्न धार्मिक संप्रदायों के लिहाज़ से डॉक्टरी नौकरियाँ मिलने का नियम प्रचारित किया, तब से हिंदू-विद्यार्थियों के लिये इसका आकर्षण बहुत कम हो गया है। इस कॉलेज की इमारतें बड़ी ही विशाल और महत्त्व-पूर्ण हैं। यहाँ शस्त्र-चिकित्सा के अत्युत्कृष्ट साधन मौजूद हैं।

लॉ-कॉलेज

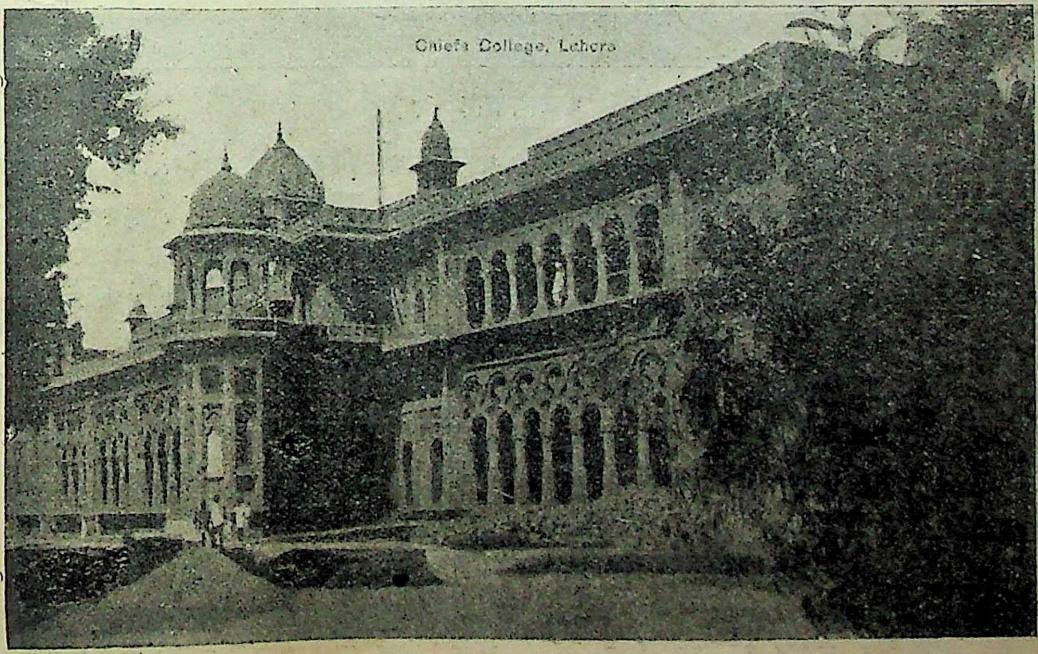
लॉ-कॉलेज लॉ-स्कूल के नाम से सन् १८७० ई० में खोला गया था। इसमें मुख़्तारी और प्लीडरी की शिक्षा दी जाती थी। सन् १९०९ ई० में यह स्कूल कॉलेज बना दिया गया। अब इसका प्रिंसिपल भी सारे समय के लिये रक्खा गया, और यह दूसरे कॉलेजों की तरह नियम-पूर्वक लगने लगा। हाल में गोल-बाग़ के निकट पुराने सेनेट-हॉल के सामने इसका नवीन भवन बनाया गया है।

पंजाब-चीफ़्स कॉलेज

पंजाब-चीफ़्स कॉलेज का उद्देश्य पंजाब के राजों और नवाबों के संबंधियों, अच्छे कुलों के युवकों और कोर्ट-ऑफ़् वार्ड्स की अभिभावकता में अप्राप्त-वयस्कों की शिक्षा है। इसकी इमारतें गवर्नमेंट-हाउस के पास ३,८९,५२० रुपए की लागत से बनी थीं। लार्ड डफ़रिन ने ३ नवंबर, सन् १८८६, को इसकी नींव रक्खी थी। यहाँ पंजाब-विश्व-विद्यालय की मैट्रिक-परीक्षा तक पढ़ाई होती है, पर नाम इसका कॉलेज ही है।

पंजाब-क़ौमी-विद्यापीठ

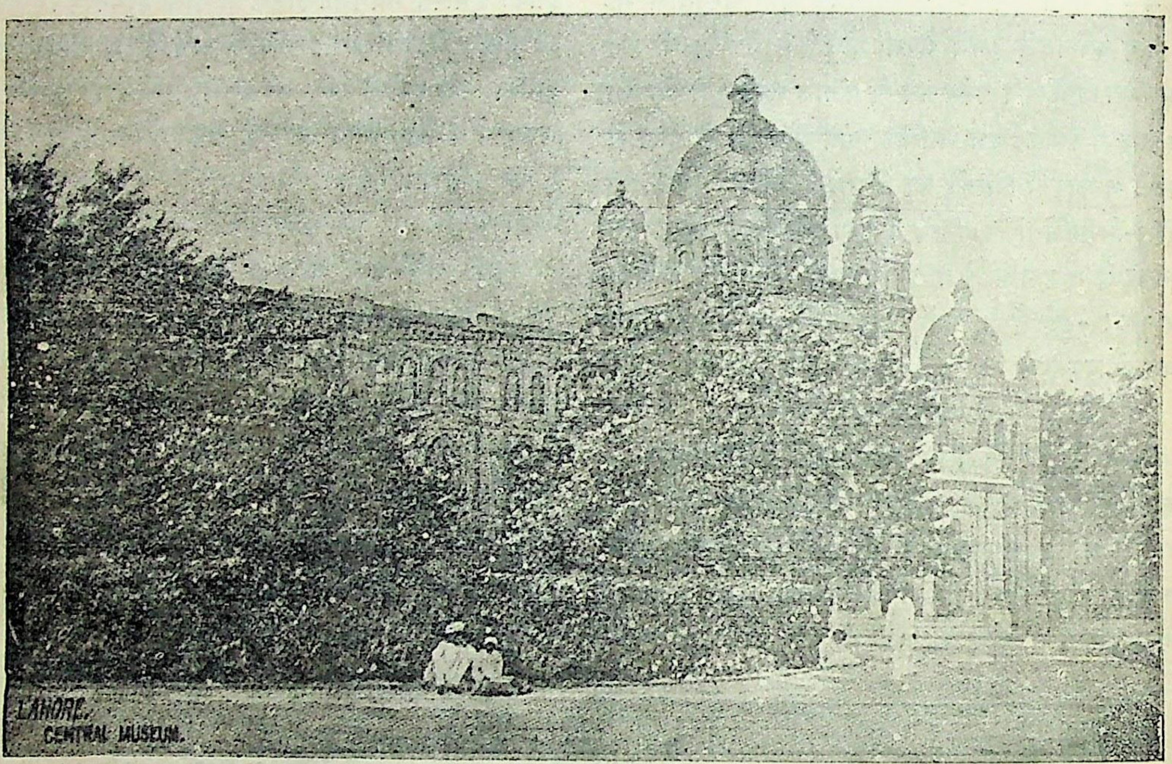
उपर्युक्त कॉलेजों के अतिरिक्त सन् १९२१ ई० में यहाँ एक पंजाब-क़ौमी-विद्यापीठ स्थापित हुआ है। यह राज-नीतिक असहयोग-आंदोलन का फल-स्वरूप है। इसके अधीन एक कॉलेज और एक स्कूल है। स्कूल में औद्योगिक शिक्षा पर ज़ोर दिया जाता है। कॉलेज का उद्देश्य उच्च कोटि के देश-भक्त और त्यागी विद्वान् उत्पन्न करना है। इसका सरकारी विश्वविद्यालय से कुछ भी संबंध नहीं है। महाविद्यालय और विद्यालय प्रसिद्ध जातीय भवन, 'ब्रेडला हॉल' के निकट हैं।



पंजाब-चीफ़्स कॉलेज

केंद्रस्थ अजायबघर

यह अजायबघर पंजाब-सार्वजनिक पुस्तकालय के निकट और नवीन सेनेट-हॉल के सामने है। बड़ी सुंदर और चित्ताकर्षक इमारत है। सन् १८६७ में, लाहौर में, पंजाब की स्वाभाविक और कृत्रिम वस्तुओं की एक प्रदर्शिनी हुई थी। यह इमारत उसी के लिये बनाई गई थी।



अजायबघर

अजायबघर देखने के लिये समय नियत है। भीतर जाने के लिये एक घूमनेवाली चरखी से गुज़रना होता है। यह चरखी दर्शकों की संख्या लिखती जाती है।

भीतर प्रवेश करने पर दाईं ओर के कमरे में खानों, जीवों और वनस्पतियों की कच्ची उपजों के नमूने हैं। इसमें अनेक प्रकार के अंडे, हाथी का सिर, मगर-मच्छ, लोमड़ी, भेड़िए, साँपों के शव और संसार की नाना जातियों के लोगों के चित्र हैं। यहाँ एक तीन इंच के कुत्ते का शव भी सुरक्षित है।

सिंह-द्वार में प्रवेश करते ही सामने के कमरे में पंजाब के ग्राम्य और सामाजिक जीवन के दृश्य, मिट्टी की मूर्तियों द्वारा, दिखलाए गए हैं। किसान कहीं हल और कहीं रहट चला रहे हैं। कहीं विवाह हो रहा है। द्वार के साथ ही लकड़ी के बहुत बढ़िया दरवाज़े हैं। यह कारीगरी के उत्कृष्ट नमूने हैं। सामने दीवारों पर सिख-गुरुओं और वीरों के सुंदर चित्र, प्राचीन हस्त-लेख और कुछ बौद्ध-मूर्तियाँ हैं।

बाईं ओर के लंबे कमरे में प्रांत की प्राचीन अद्भुत वस्तुएँ तथा शिल्प और कारीगरी के उत्कृष्ट नमूने रक्खे गए हैं। इसमें पुराने ढंग की कढ़ी हुई फुलकारियाँ, खेस, छींट आदि कपड़े, मुलतान और बहावलपुर आदि के मिट्टी के बर्तन, काँच की चीज़ें और कोहनूर-नामक हीरे की नक़ल मौजूद है। यहाँ कुछ पुराने शस्त्र, सितार तथा बाजे भी हैं।

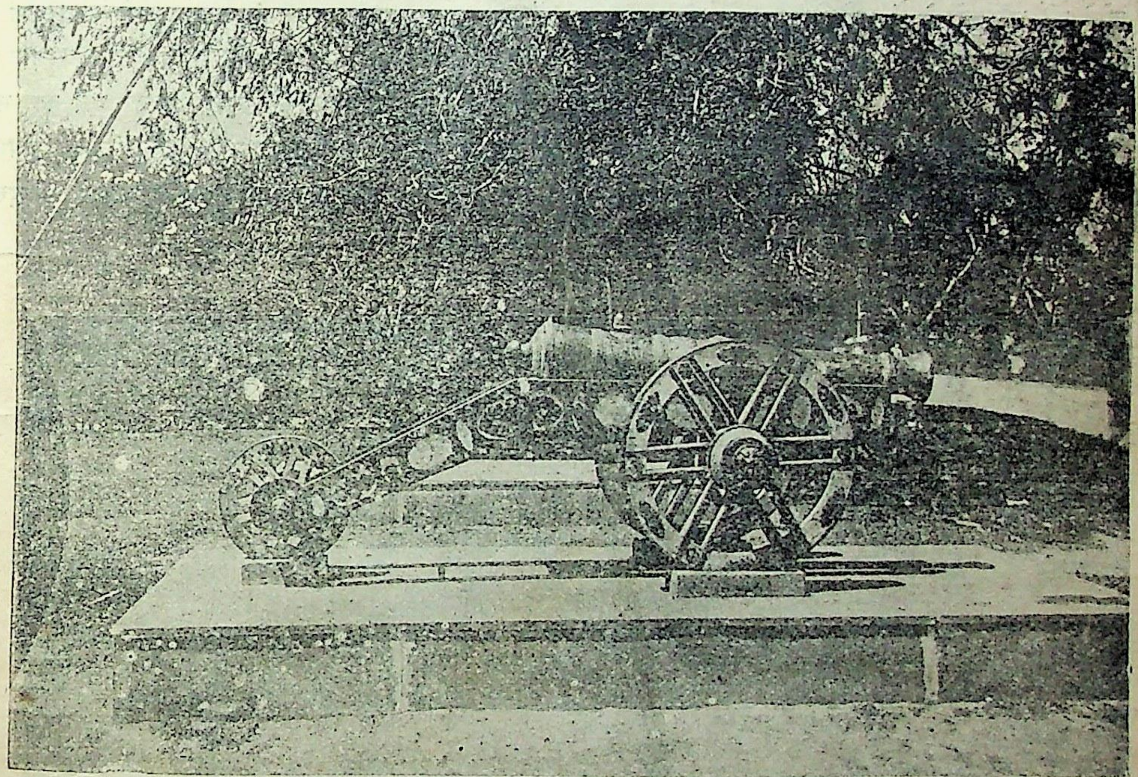
इसके आगे एक और कमरा है। इसमें केवल बौद्ध-मूर्तियाँ ही रक्खी हुई हैं। उनमें बुद्ध-देव के जीवन की अनेक घटनाएँ दिखलाई गई हैं। कुछ मूर्तियाँ मनुष्य के डील से भी बड़ी हैं। इनमें से अनेक खंडित हैं। कहते हैं, बौद्ध मूर्तियों का जैसा उत्तम संग्रह इस अजायबघर में है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं। यहाँ प्राचीन सिक्के भी अधिक संख्या में हैं।

भंगियोंवाली तोप

अजायबघर के बाहर, युनिवर्सिटी-हॉल के सामने, एक उठे हुए चोतरे पर, एक बहुत बड़ी और पुरानी तोप है। इसे भंगियों की तोप कहते हैं। इसका असली नाम ज़मज़मा है। अहमद शाह दुर्रानी के प्रधान मंत्री शाह वली ख़ाँ के आदेशानुसार शाह नज़ीर ने इसे सन् १७५७ ई० में, लाहौर में, ढाला था। यह ताँबे और पीतल के मिश्रण की बनी है। इसके बनाने के लिये—'जज़िये' के रूप में—धातु का एक-एक बर्तन लाहौर के प्रत्येक हिंदू-घर से लिया गया था। अहमद शाह ने सन् १७६१ ई० में, पानीपत की लड़ाई में, इसका उपयोग किया था। काबुल को लौटते समय वह इसे लाहौर में, अपने प्रतिनिधि ख़्वाजा उबेद के पास, छोड़ गया। इसके साथ की दूसरी तोप चनाब-नदी में डूब गई। सन् १७६२ ई० में हरीसिंह भंगी ने ख़्वाजा उबेद पर आक्रमण करके, लाहौर के पास ख़्वाजा-सैद नाम के गाँव में, उसके शस्त्रागार पर अधिकार कर लिया। उस समय ज़मज़मा तोप भी उसके हाथ आई, और तब से उसका नाम भंगियोंवाली तोप हो गया।

यह तोप गूजरसिंह तथा लहनासिंह भंगी, चड़तसिंह, सुकेर चकिया, अहमद ख़ाँ, पीर मुहम्मद ख़ाँ और सरदार झंडासिंह भंगी आदि कई शक्ति-शाली मनुष्यों के हाथ में पड़कर गुजराँवाला, रामनगर, गुजरात और अमृतसर आदि स्थानों में घूमती रही। फिर अमृतसर में, सन् १८०२ ई० में, यह महाराज रणजीतसिंह के हाथ लगी। उन्होंने कसूर, सुजानपुर, वज़ीराबाद और मुलतान में इसका उपयोग किया। सन् १८१८ ई० में, मुलतान की लड़ाई में, यह ख़राब हो गई। तब इसे निकम्मी समझकर लाहौर लाया गया। यह सन् १८७० ई० तक दिल्ली-दरवाज़े के पास पड़ी रही, और फिर वहाँ से अपने वर्तमान स्थान में लाई गई।

तोप के मुँह के गिर्द यह लेख है—



ज़मज़मा या भंगियों की तोप

بامر دوران شه ولی خان وزیر
ساخت توپ زمزمه نام قلعه گیر
عمل شاه نظیر

अर्थ—दुर्री दौराँ शाह वली ख़ाँ की आज्ञा से वज़ीर ने दुर्गों को लेनेवाली यह ज़मज़मा-तोप बनवाई। शाह नज़ीर का काम।

तोप की पीठ पर, मध्य भाग में, एक लंबा फ़ारसी-लेख है। उसमें बताया गया है कि अहमद शाह दुर्रानी की आज्ञा से यह भुजंग के समान भीषण और पर्वत के समान बृहत्काय तोप वज़ीर ने बनवाई। यह आकाश के दुर्ग को भी नष्ट कर देनेवाली है।

यह तोप १४ फ़ीट और ४½ इंच लंबी है। इसके मुख का छिद्र ९½ इंच है।

चिड़ियाघर

चिड़ियाघर मियाँ मीर की सड़क पर, ठंडी सड़क की समाप्ति पर, है। इसमें नाना प्रकार के तोते, मोर, मुर्ग़े, बंदर, जल-पक्षी, लाल रंग की मछलियाँ, ख़रगोश, लोमड़ी, रीछ, बाघ और चीते हैं। इनके अतिरिक्त आफ़्रिका के दो भयंकर सिंह भी हैं। इनके पिंजड़े बहुत ऊँची लोहे की सलाख़ों के हैं। चिड़ियाघर में सुबह-शाम दर्शकों की भीड़ रहती है।

लारेंस-बाग़

चिड़ियाघर के पास ही लारेंस-बाग़ है। यह वायु-सेवन के लिये एक उत्तम स्थान है। यहाँ के मांटगोमरी-हॉल में अँगरेज़ स्त्री-पुरुष नृत्य किया करते हैं।

ठंडी सड़क पर लॉर्ड लारेंस और महारानी विक्टोरिया की मूर्तियाँ हैं। लारेंस के पुतले पर लिखा हुआ है—"तुम लेखनी द्वारा शासित होना चाहते हो, या खड्ग द्वारा।"

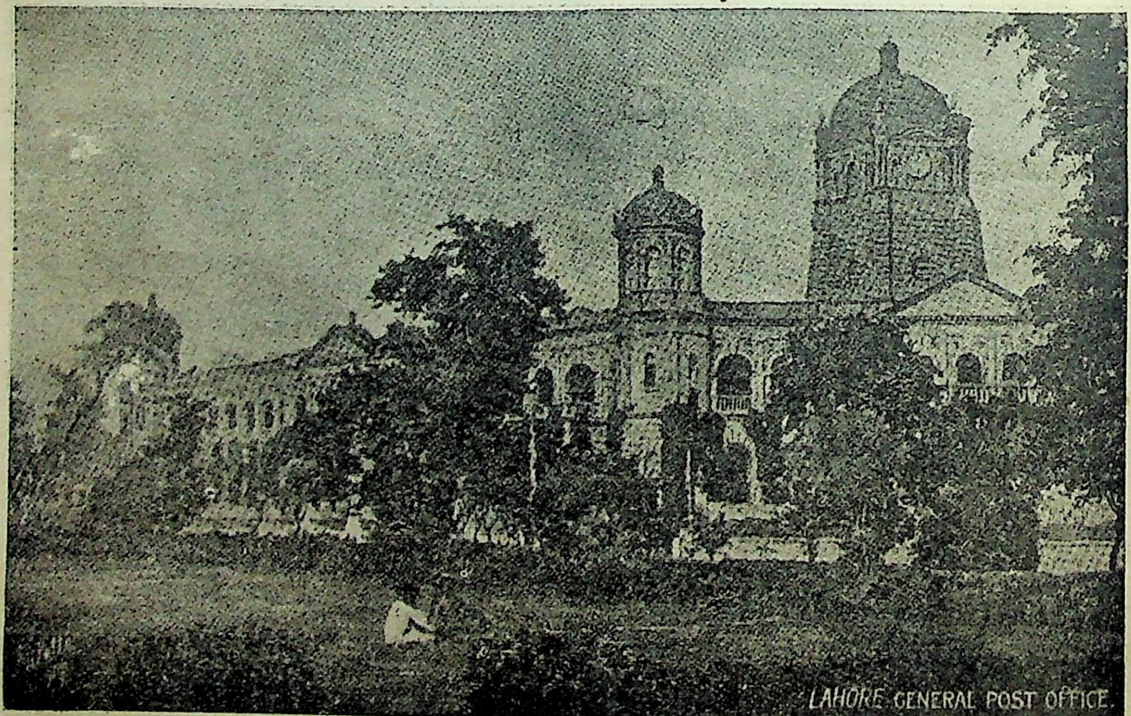
इनके अतिरिक्त लाहौर में वर्तमान काल की और भी अनेक दर्शनीय इमारतें हैं। उनमें से अधिक प्रसिद्ध ये हैं—

बड़ा डाकघर। यह ठंडी सड़क पर है।

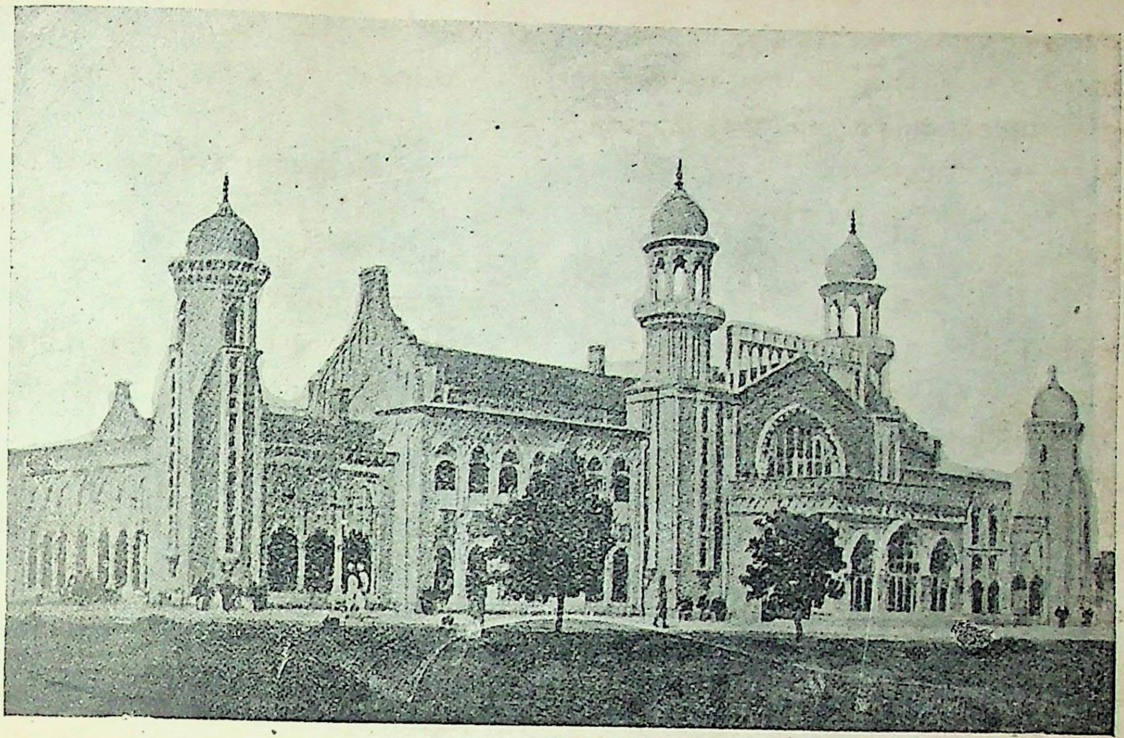
पंजाब-हाईकोर्ट। यह डाकघर के बिलकुल निकट है।

पंजाब-क्लब। यह चिड़ियाघर के सामने विक्टोरिया की मूर्ति के पीछे है।

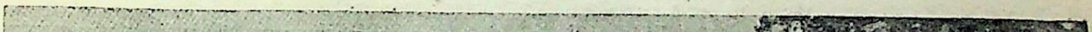
इनके सिवा रोमन केथोलिक ईसाइयों का गिरजा, लाहौर-रेलवे चर्च, नार्थ-वेस्टर्न-रेलवे के दफ़्तर, सेंट्रल मॉडल स्कूल, रावी का नया पुल, रावी की सड़क पर आर्य-प्रतिनिधि-सभा का गुरुदत्त-भवन, ठंडी सड़क पर बड़ा तारघर, नवाँकोट की सड़क पर जनार्दन का नया शालामार-बाग़, पागलख़ाना, सेंट्रल जेल, हवाघर (आबज़र्वेटरी) और टाउन-हॉल आदि इमारतें भी देखने के योग्य हैं।



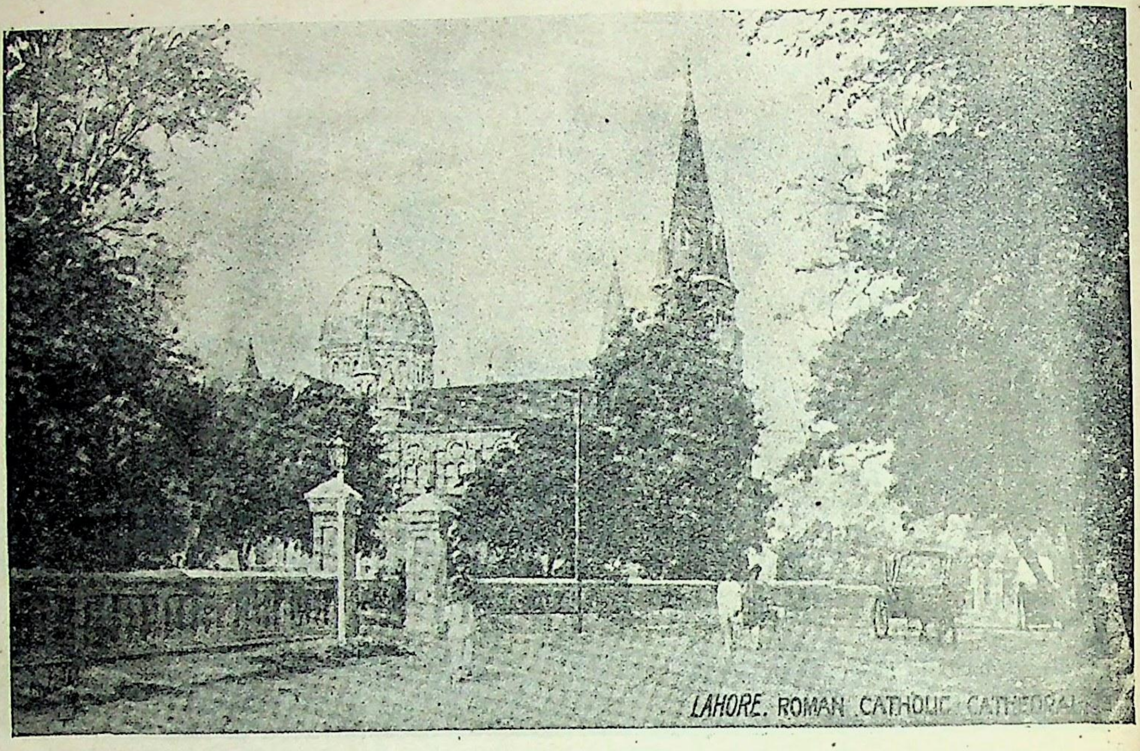
बड़ा डाकघर



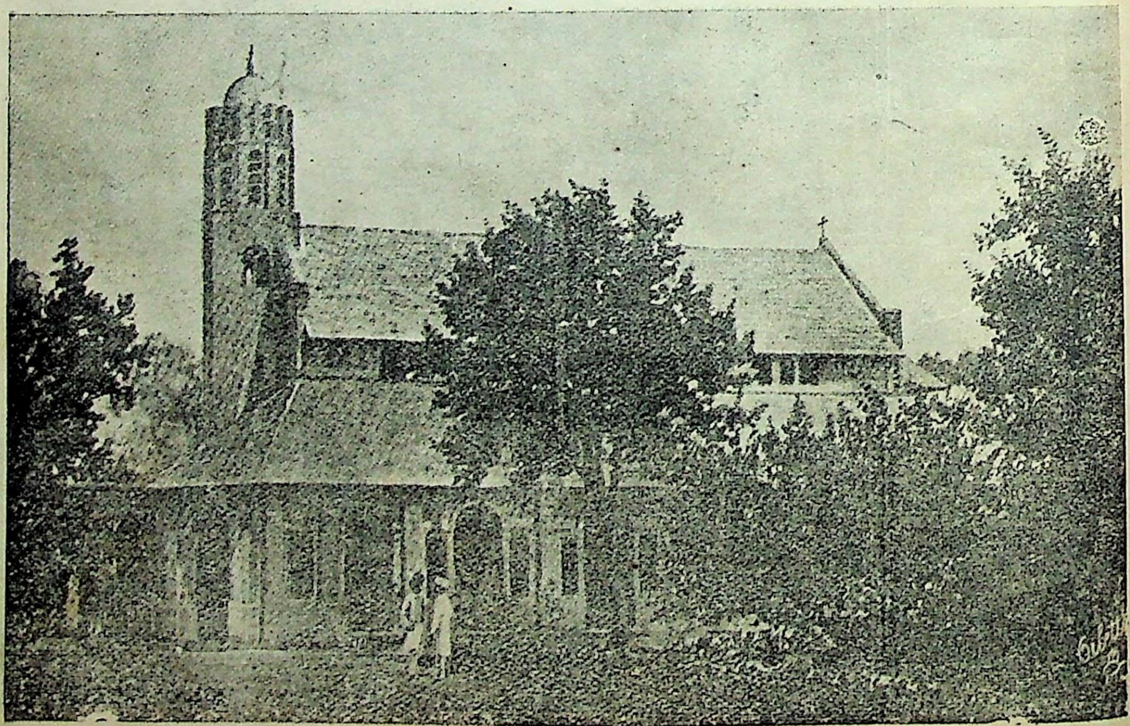
हाईकोर्ट



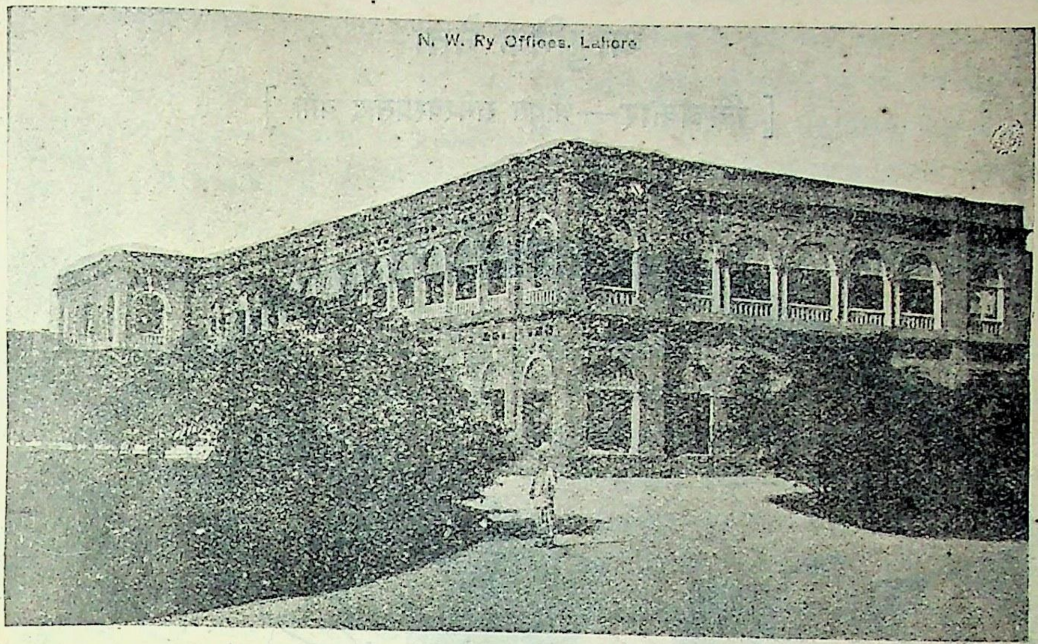
पंजाब-क्लब



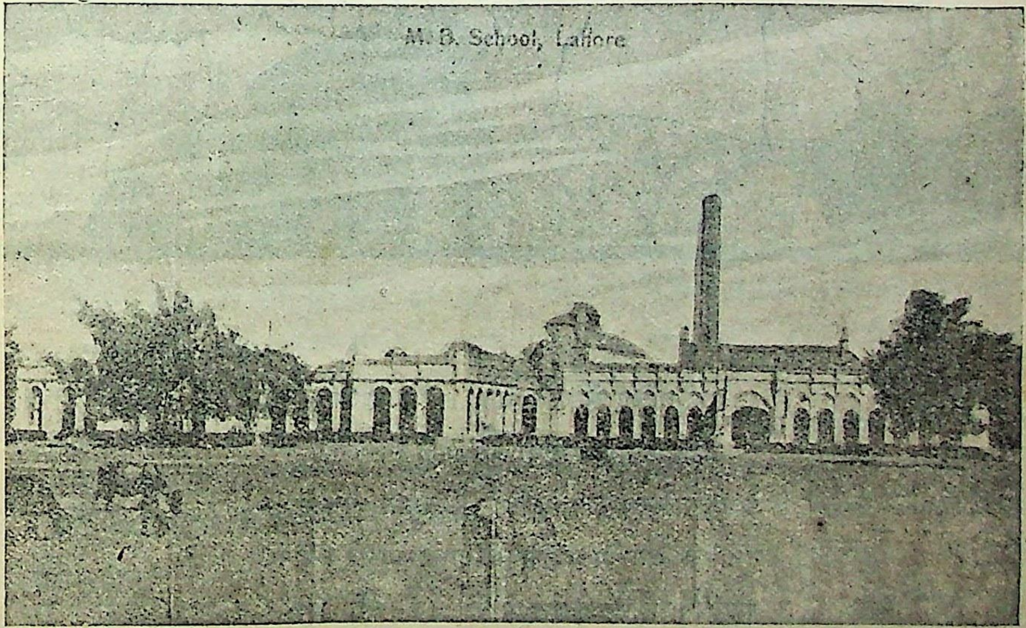
रोमन-केथोलिक-केथड्रल



रेलवे-चर्च



नॉर्थ-वेस्टर्न रेलवे के दफ़्तर



सेंट्रल मॉडल स्कूल

लाहौर में आनेवाले यात्रियों को इस लेख में वर्णित चीज़ों को अवश्य देखना चाहिए; क्योंकि इनसे मनोरंजन के साथ-साथ ऐतिहासिक जानकारी भी प्राप्त होती है।

संतराम

आधुनिक नेता

[चित्रकार—श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा]



गद्दी-तकिए से लगे नेता करते राज्य ;
कष्ट कठिन झेले विना कैसे मिले स्वराज्य ?
कैसे मिले स्वराज्य, कठिन कंटकमय पथ है ;
टूटा पहिया पड़ा, खड़ा ख़तरे में रथ है !
स्वतंत्रता की उछल-कूद है तब तक भद्दी,
जब तक छुटती नहीं गुलगुली सुख की गद्दी ।

अंतिम शब्द

(१)

लाला बद्रीदास एक लंबी साँस लेकर अपने छोटे पुत्र जानकीदास से बोले—बेटा कुछ भी हो, परंतु बुलाकीदास तुम्हारा बड़ा भाई है, इसका ध्यान सदैव रखना।

जानकीदास सिर झुकाकर बोले—यदि आप यह बात न भी कहें, तो भी मुझे इसका ध्यान सदा रहेगा; पर भाई साहब का जैसा स्वभाव है, उससे यह आशा नहीं कि वह शांति-पूर्वक कार्य करेंगे।

बद्रीदास तकिए के सहारे बैठकर बोले—बेटा, मेरी अवस्था इस समय सत्तर बरस के लगभग है। मैंने बीस बरस की अवस्था से पैसा कमाना शुरू कर दिया था। मैंने जिन कष्टों तथा दुःखों से धन एकत्र किया है, उन्हें मैं ही जानता हूँ। मैं तुम्हें अपने समस्त जीवन के अनुभव का निचोड़ बताए देता हूँ कि चाहे सारा संसार तुम्हारा शत्रु क्यों न हो जाय, तुम कभी सच्चा और सीधा मार्ग न छोड़ना, और सदैव नम्र रहना। ऐसा करने से पहले चाहे तुम्हें कष्ट मिले, पर अंत को अवश्य सुख मिलेगा।

जानकीदास—मैं प्राण-पण से आपका उपदेश पालन करने की चेष्टा करूँगा।

बद्रीदास—बड़ी प्रसन्नता की बात है। यदि तुम ऐसा करोगे, तो तुम्हारा विकट-से-विकट शत्रु भी अंत को तुम्हारे आगे सिर झुकावेगा। मेरा तो अब चल-चलाव लग रहा है। मैं अब केवल चार-छः दिन का मेहमान हूँ। इस रोग से मुक्त होने की कोई आशा नहीं। यह रोग मृत्यु का दूत है। मैंने अपने जीवन में सब प्रकार के दुख-सुख देख लिए। मेरे हृदय में किसी बात की इच्छा-अभिलाषा नहीं है। यदि कोई है, तो केवल यह कि मेरे पीछे तुम दोनों भाई सुख-शांति से रहो।

जानकी०—यदि ईश्वर की इच्छा और आपका आशीर्वाद है, तो ऐसा ही होगा।

बद्रीदास—होगा, निश्चय होगा, और वह केवल तुम्हारी ओर से। मुझे विश्वास है कि तुम इस बात की चेष्टा करोगे। इसीलिये मैं तुमसे इतनी बातें कह रहा हूँ। बुलाकीदास से मुझे कोई आशा नहीं। इसी कारण मैंने उससे कुछ नहीं कहा; पर एक बार कहने की इच्छा अवश्य है, मानना न मानना उसका काम है।

जानकी०—मेरी भी इच्छा है कि एक बार आप उनसे भी ये सब बातें कह दें।

बद्रीदास—कहूँगा, अवश्य कहूँगा, बिना कहे मैं सुख से न मर सकूँगा। यह मैं जानता हूँ कि वह मानेगा नहीं। उसने कभी किसी की नहीं मानी; पर कदाचित्—कदाचित् मरते हुए बूढ़े पिता का अंतिम उपदेश उसे याद रहे, इसी आशा से कहूँगा।

जानकीदास नेत्रों में आँसू भरकर बोले—पिताजी, आप बार-बार मृत्यु का नाम न लें। जो कुछ ईश्वर की इच्छा है, वह तो होगी ही, फिर उसे रटने से क्या लाभ? आपका भी चित्त घबराता है, दूसरों को भी दुःख होता है।

बद्रीदास के होठों पर विषाद-युक्त मंद मुसकान की रेखा दौड़ गई। उन्होंने कहा—मेरा चित्त मृत्यु से नहीं घबराता, मैं तो उसका स्वागत करने के लिये तैयार बैठा हूँ। इस प्रकार मरने में भी सुख है, आनंद है—परंतु यदि कोई इस बात का विश्वास दिला दे कि मेरे पीछे मेरे घर में सुख-शांति का वास रहेगा।

जानकी०—जो होगा, होता रहेगा। आप उसके लिये इतने चिंतित क्यों होते हैं?

बद्रीदास—नहीं, चिंता कोई नहीं, केवल यह अभिलाषा है कि मेरा लगाया हुआ वृक्ष हरा-भरा रहे, सूखने न पावे। बस, केवल इतनी ही अभिलाषा है, अंतिम इच्छा है।

जानकी०—अब इच्छाओं-अभिलाषाओं को छोड़िए, और अपना चित्त ईश्वर की ओर लगाइए।

बद्रीदास—ईश्वर का ध्यान तो रहता ही है, वह तो रोम-रोम में बसा हुआ है—वह तो सबका मालिक ही है। इस बुलाकीदास ने * * * हाँ, ईश्वर तो मालिक ही है। हे राम! हे कृष्ण!—

जानकी०—आप भाई साहब की ओर से चिंता मत कीजिए। आपके सामने वह चाहे जो करें, पर मुझे विश्वास है कि आपके बाद वह मुझे अपने पुत्र के समान समझेंगे।

बद्रीदास—समझे तो अच्छा ही है। इससे बढ़कर और कौन बात हो सकती है ? परंतु बेटा, बुलाकी से मुझे इस बात की बहुत कम आशा है। मैं उसका स्वभाव अच्छी तरह जानता हूँ।

जानकी०—जब मैं उनका आज्ञा-पालक रहूँगा, तो वह फिर कुछ न करेंगे।

बद्रीदास—ईश्वर ऐसा ही करें ; परंतु मुझे संतोष नहीं होता। देखो, किसी समय उससे कहूँगा। वैसे तो सैकड़ों बार कहा है, समझाया है ; पर अंतिम बार कहके देखना है।

(२)

लाला बद्रीदास बड़े रईस आदमी हैं। आपकी संपत्ति छः-सात लाख की है। आपकी दो बड़ी-बड़ी मिलें हैं। एक आटा पीसने की, और दूसरी कपास ओटने की। लाला बद्रीदास अपनी जवानी में एक साधारण स्थिति के आदमी थे। अपने बाहु-बल और पराक्रम ही से उन्होंने इतना धन कमाया है।

आजकल बद्रीदास बीमार हैं। केवल बीमार ही नहीं, लोग कहते हैं, सख़्त बीमार हैं। चिकित्सकों तथा उनके इष्ट-मित्रों की धारणा है कि लाला बद्रीदास का अंत-समय उपस्थित है। इस रोग से मुक्त होना यदि असंभव नहीं, तो अत्यंत कठिन अवश्य है। लाला बद्रीदास का भी यही विश्वास है कि अब उनका अंत-समय आ गया। जब से उनको यह विश्वास हुआ, तब से वह बड़े उद्विग्न रहते हैं। उनकी उद्विग्नता मृत्यु-भय के कारण नहीं है। वह इस कारण से उद्विग्न नहीं हैं कि उनके हृदय में संसार-सुख लूटने की अभिलाषा शेष है। वह इसलिये भी दुखी नहीं हैं कि उनके पीछे उनके परिवार की क्या दशा होगी ; क्योंकि अपने परिवार के लिये वह इतना धन छोड़े जा रहे हैं, जो उसे उनके पीछे सुख-पूर्वक रख सकता है। उनके हृदय में यदि कोई चिंता है, तो केवल इस बात की कि उनके पीछे कोई बंधन न रहने से उनका परिवार तितर-बितर न हो जाय। केवल यही एक चिंता उनकी मृत्यु-शय्या को उनके लिये कष्टदायक बनाए हुए है। इस आशंका को हृदय में रखकर वह मरना नहीं चाहते। यदि उनके हृदय से यह काँटा निकाल दिया जाय, तो वह सुख-पूर्वक मर सकते हैं।

जानकीदास से उपर्युक्त बात-चीत होने के दो दिन बाद बुलाकीदास को एकांत में बुलवाकर कहा—बेटा बुलाकी, मेरा तो अंत-समय उपस्थित है ; रात को हूँ, तो दिन की आशा नहीं ; दिन में हूँ, तो रात की आशा नहीं। पता नहीं, किस समय दम निकल जाय।

बुलाकी०—पिताजी, आप व्यर्थ ही ऐसी बातें करते हैं। डॉक्टरों का कहना है कि आपकी दशा कुछ अधिक ख़राब नहीं है, आपका उठ खड़ा होना कुछ कठिन नहीं है।

यह बात बुलाकीदास ने केवल पिता को धैर्य बँधाने के लिये कही, अन्यथा वह अच्छी तरह जानते थे कि अब उनके पिता का अंत-समय अत्यंत निकट है।

बद्रीदास—ये सब कहने की बातें और लोकाचार है। मैं अपनी दशा भली भाँति जानता हूँ—ख़ैर। मैंने तुम्हें इसलिये बुलवाया है कि तुमसे कुछ बातें कहूँ।

बुलाकीदास ने कुछ उत्सुक होकर कहा—कहिए !

बद्रीदास—यदि आज तुम्हारी माता जीवित होती, तो मैं निश्चिंत होकर सुख-पूर्वक मर सकता ; पर भाग्य में तो इस अंत-समय में शांति मिलना बदा नहीं था।

लाला बद्रीदास की आँखें अश्रु-पूर्ण हो आईं। उन्होंने एक दीर्घ निःश्वास ली। तत्पश्चात् बोले—तुम्हारी माता जीवित रहती, तो मेरे बाद वह तुम दोनों भाइयों को एक सूत्र में बाँधे रखती ; परंतु अब कोई ऐसा आधार नहीं है। अतएव अब मुझे केवल तुम दोनों भाइयों की सज्जनता पर ही निर्भर होना पड़ रहा है।

बुलाकीदास अपने पिता का तात्पर्य समझ गए ; पर बात का शीघ्र अंत करने के लिये बोले—तो आप चाहते क्या हैं ?

बद्रीदास—केवल इतना कि मेरे पीछे तुम दोनों भाई मिल-जुलकर रहो। सब काम वैसे ही रहे, जैसे अब है। घर में फूट न हो, सदैव सुख-शांति का साम्राज्य बना रहे। जानकी यद्यपि तुमसे केवल तीन वर्ष छोटा है, पर वह तुमको मेरे बाद मेरे ही स्थान पर समझेगा। उसने मुझे विश्वास दिला दिया है। पर तुम्हारी ओर से अभी मैं निश्चिंत नहीं हुआ। यदि तुम भी मेरे हृदय में यह बात जमा दो, तो मुझे पूर्ण शांति मिल जाय।

बुलाकीदास के मुख पर एक व्यंग्य-पूर्ण मुसकिराहट दौड़ गई। उन्होंने कहा—आप इस चिंता में क्यों पड़े हैं? जो होना होगा, होगा। आप अपना चित्त शांत रखिए।

बद्रीदास—चेष्टा करता हूँ, पर नहीं होता, रात-दिन यही ध्यान रहता है। तुम बच्चे नहीं हो, तुम्हारी अवस्था ३५ वर्ष की है। तुम्हारे पुत्र-पुत्रियाँ भी हैं। तुम एक पिता के हृदय को समझ सकते हो। इसीलिये तुमसे कहता हूँ। मेरे ये अंतिम वाक्य, अंतिम उपदेश, अंतिम प्रार्थना—जो कुछ समझो—यही है। मैं इसके सिवा और कुछ भी नहीं कहना चाहता।

बुलाकीदास सोचने लगे, यह बुड्ढा कितना मोह-जाल में फँसा हुआ है। आप तो मर रहा है, पर भविष्य पर भी अपना सिक्का जमाए रखना चाहता है। मरते हुए आदमी को भविष्य की क्या चिंता?

ज़ाहिरा अपने पिता से कहा—पिताजी, साफ़ बात तो यह है कि मेरी और जानकी की निभना कठिन है; पर मैं आपको इतना विश्वास दिलाता हूँ कि मैं निभाने की पूर्ण चेष्टा करूँगा, और अपनी ओर से कोई ऐसी बात न करूँगा, जिससे आपस में फूट हो।

बद्रीदास ने पुत्र के इस कथन का तात्पर्य समझ लिया। वह जान गए कि बुलाकीदास अपनेको किसी प्रकार बाध्य नहीं करना चाहते। वह नैराश्य की एक लंबी साँस लेकर बोले—ईश्वर को जो मंज़ूर है, वही होगा। मुझे जो कुछ कहना था, कह चुका, अब तुम जानो, तुम्हारा काम। इस अंत-समय में शांति से मरना मेरे भाग्य में बदा नहीं है। ख़ैर, कभी-कभी इस मरते हुए पिता के अंतिम शब्द स्मरण कर लिया करना।

डूबते हुए को तिनके का सहारा भी मिलने से वह अपने बचने की आशा को हृदय से लगाए रहता है। मनुष्य की आशाएँ, चाहे वे मिथ्या हों चाहे सत्य, उसे दुःख झेलने के लिये प्रस्तुत करती हैं। आशा ही को हृदय से लगाकर मनुष्य बड़े-बड़े दुःखों को झेल जाता है।

बद्रीदास को जब चारों ओर निराशा दिखाई पड़ने लगी, तब उन्होंने केवल इस बात पर अपनी आशा को जीवित रक्खा कि मेरे पीछे मेरे अंतिम शब्द याद करने ही से, संभव है, इसके हृदय पर कुछ प्रभाव पड़े। मनुष्य के न रहने पर उसकी और उसकी बातों की स्मृति का अधिक प्रभाव पड़ता है। आशा के इसी छाया-चित्र को बद्रीदास ने अपने सामने रखकर उससे अपने हृदय को, अपनी चंचल और अधीर आत्मा को, शांति देने की चेष्टा की। बद्रीदास ने पुत्र की बात के उत्तर में एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—बेटा, मुझे जो कुछ कहना था, सो कह चुका। अब जो तुम्हारी इच्छा हो, और जो तुम उचित समझो, वह करना।

(३)

लाला बद्रीदास का स्वर्गवास हो गया। इधर उनका दम निकल रहा था, और उधर बुलाकीदास कोठरी में ताला डलवा रहे थे। उनके इस कार्य पर लोगों को आश्चर्य हुआ, दुःख हुआ; पर किसी ने भी उनसे कुछ कहने का साहस नहीं किया। उनके अन्न से पलनेवाला का तो इतना साहस हो ही नहीं सकता था, पर उनके इष्ट-मित्रों ने भी इस पर कोई आपत्ति नहीं की। जानकीदास भी उनके इस कार्य को मौन-व्रत धारण किए देखते और मन-ही-मन हँसते रहे।

पिता का स्वर्गवास होने के पंद्रह दिन बाद बुलाकीदास ने जानकीदास को बुलाकर कहा—क्रिया-कर्म से छुट्टी मिल गई, अब हमारा-तुम्हारा बटवारा हो जाना चाहिए। जानकीदास तो यह समझे ही बैठे थे कि बटवारा शीघ्र ही होगा। रुपए-पैसे की कोठरी में ताला डलवाने का मतलब इसके सिवा और क्या हो सकता था? अतएव उन्होंने बड़े विनम्र-भाव से आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—बटवारा! मेरी समझ में तो बटवारे की कोई आवश्यकता है नहीं।

बुलाकीदास रुखाई से बोले—तुम्हारी समझ में न हो, मेरी समझ में तो है।

जानकीदास—क्यों, ऐसी आवश्यकता क्या है?

बुलाकीदास—इसलिये कि मेरी ऐसी ही इच्छा है।

जानकीदास—पिताजी की तो मरते समय तक यही इच्छा रही कि उनके बाद हम लोग मिल-जुलकर रहें।

बुलाकीदास—हाँ, उनकी ऐसी ही इच्छा थी; पर मैं इसके विरुद्ध हूँ। तुम भी होशियार हो, अपना काम देख-भाल सकते हो, इस कारण यही ठीक है कि हम और तुम अलग-अलग अपना-अपना रास्ता देखें।

जानकीदास—पर मैं तो बटवारा नहीं चाहता।

बुलाकीदास—मगर मैं तो चाहता हूँ।

जानकीदास—पिताजी के अंतिम शब्द याद कीजिए।

बुलाकीदास—वह सब मूर्खता और भावुकता है। उनके जीवन में मैंने कोई कार्य उनकी इच्छा के विरुद्ध नहीं किया, सदैव उनको संतुष्ट रक्खा; परंतु अब उनके पीछे मैं अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने के लिये स्वतंत्र हूँ।

जानकी०—मगर इससे पिताजी की आत्मा को कष्ट होगा।

बुलाकी०—मैं फिर कहता हूँ कि यह सब ढकोसला है; बटवारा अवश्य होगा।

जानकीदास—मैं पिताजी के बाद अब आप ही को पिता की जगह समझता हूँ।

बुलाकीदास—बड़ी प्रसन्नता की बात है। मैं भी तुमको अपने छोटे भाई की ही तरह समझूँगा।

जानकीदास—तो बटवारे की क्या आवश्यकता है?

बुलाकीदास—बटवारा तो अवश्य होगा।

जानकीदास ने देखा, बुलाकीदास उनकी प्रार्थनाओं से रस्सी की तरह और भी अधिक ऐंठे जा रहे हैं। उन्होंने विवश होकर कहा—जैसी आपकी इच्छा। पर इस कार्य से मुझे अत्यंत दुःख होगा।

बुलाकीदास ने जानकीदास की इस बात को जैसे सुना ही नहीं।

(४)

जब से बुलाकीदास ने होश सँभाला, तब से उन्होंने जानकीदास को कभी भ्रातृ-स्नेह-पूर्ण दृष्टि से नहीं देखा। बुलाकीदास की महत्त्वाकांक्षाएँ इतनी बढ़ी-चढ़ी थीं कि उन्होंने अन्य सब भावनाओं को दबा दिया था। जब उनको यह ध्यान आता था कि यदि जानकीदास न होता, तो केवल वही इस सब संपत्ति के स्वामी होते, तब जानकीदास के प्रति उनके हृदय में एक भयानक हिंसा का भाव उत्पन्न हो आता था। इस हिंसा-भाव का उनके ऊपर इतना प्रभाव था कि जिस बात से जानकीदास को कष्ट और दुःख पहुँचता, उसी से उन्हें सुख मिलता था। पिता के मरने के समय कोष में ताला डलवाने के कारणों में से जानकीदास को मानसिक कष्ट पहुँचाना भी एक कारण था। बुलाकीदास ने सोचा था कि यदि क्रिया-कर्म से छुट्टी पाते ही बटवारा न कराया, तो मेरा बुलाकीदास नाम नहीं। इस दुष्ट को भी तो मालूम हो कि कोई भाई मिला था। कैसा ढोंगी है, कितना सज्जन बनता है! कैसा भोलापन दिखलाता है, जैसे कुछ जानता ही नहीं, और पेट में कतरनी चलती है। मैं तो साफ़ आदमी हूँ; जो भीतर है, वही बाहर। मुझे कपट नहीं आता। जिसे हृदय से शत्रु समझूँगा, उसके साथ प्रकट में भी शत्रु ही का-सा व्यवहार करूँगा।

बुलाकीदास जानकीदास से कटु व्यवहार करने पर बड़ा गर्व करते थे। वह समझते थे कि शुद्ध-हृदयता और कपट-शून्यता के अर्थ यही हैं कि जिससे घृणा करे, उसे पग-पग पर कष्ट पहुँचाने की चेष्टा करता रहे। अपने इस स्वभाव को वह बड़ा भारी गुण समझते थे।

बटवारे की बात पक्की हो गई। सरकार की ओर से एक अफ़सर बटवारा करने के लिये नियुक्त हुआ। बटवारा होने में एक सप्ताह लगा। इस अवसर पर जितनी कटुता उत्पन्न की जा सकती थी, उसमें बुलाकीदास ने कुछ क़सर नहीं रक्खी। मगर जानकीदास का व्यवहार बड़ा विनम्र और शिष्ट था। बुलाकीदास के स्वभाव के लिये जानकीदास की नम्रता आग पर घी का काम करती थी। वह समझते थे, जानकीदास अपनी साधुता दिखाकर उन्हें दूसरों की दृष्टि में बुरा बनाना चाहते हैं, और आप अच्छे बनना चाहते हैं।

बटवारे में यह दशा हुई कि जो चीज़ें संख्या में केवल एक थीं, उनके दो-दो टुकड़े किए गए। इस अवसर पर अगर जानकीदास कहते कि भाई साहब, यह चीज़ दो टुकड़े करने से न आपके काम की रहेगी और न मेरे काम की। अतएव इसे आप ही रखिए।, तो बुलाकीदास जल-भुनकर राख हो जाते थे। एक बार तो उन्होंने यहाँ तक कह डाला कि मुझे तुम्हारा भाग गो-मांस के समान है। मैं केवल अपना भाग लूँगा। यह कहकर वह बड़े गर्व से उपस्थित लोगों की ओर देखने लगे। उन्होंने समझा कि उनके इस व्यवहार पर लोग उन्हें न्याय-प्रिय, लोभ-हीन और स्पष्ट-वादी समझकर मन-ही-मन उनकी प्रशंसा करते होंगे। इस प्रकार बटवारा होने पर वह अपनी विजय और जानकीदास की पराजय समझकर मन-ही-मन प्रसन्न थे।

इधर जानकीदास के हृदय में, बड़े भाई के इस व्यवहार से, वैराग्य उत्पन्न हो चला था। वह सोचते थे—

जब सगे भाई का यह व्यवहार है, तब संसार में और किससे अच्छे व्यवहार की आशा की जा सकती है ? बुलाकीदास के इस कार्य पर उनके इष्ट-मित्र मुँह पर तो उनकी प्रशंसा करते थे । कहते थे—यह आपने अच्छा किया, जो बटवारा कर लिया । कुछ ऊँच-नीच हो जाता, तो उसे कोई कुछ न कहता, सब आप ही को दोष देते, वह तो छोटा भाई बनकर छूट जाता । आजकल का समय देखते हुए यही ठीक था । अब उसका भाग अलग हो गया, चाहे रक्खे चाहे खोवे, आपको क्या !

इष्ट-मित्रों की इन बातों से बुलाकीदास ने अपने इस कार्य को बहुत ही उचित समझा । परंतु जब किसी तटस्थ न्याय-प्रिय मनुष्य से बात-चीत होती, तब वे ही इष्ट-मित्र कहते थे—अजी बुलाकीदास न-जाने कैसे आदमी हैं, बेकार ही छोटे भाई से अलग हो गए ! वह बेचारा तो अलग होने को राज़ी न था । बुलाकीदास ने ज़बरदस्ती अलग होकर व्यर्थ ही उससे शत्रुता मोल ली । जानकीदास बड़ा सज्जन आदमी है । इतना सब कुछ हो गया, पर वह अब भी जब बात पड़ती है, तब यही कहता है कि मैं उन्हें अपने पिता के तुल्य समझता हूँ ।

(५)

ऊपर लिखी घटना के बाद छः वर्ष व्यतीत हो गए । इस बीच में बुलाकीदास तथा जानकीदास में उतना ही संबंध रहा, जितना दो साधारण रिश्तेदारों में होता है । यद्यपि जानकीदास चाहते थे कि घनिष्ठता उत्पन्न हो, पर बुलाकीदास ऐसा व्यवहार रखते थे कि घनिष्ठता उत्पन्न ही नहीं हो सकती थी । अतएव, ऐसी दशा में, जानकीदास को भी विवश होकर अपने व्यवहार को परिमित सीमा के भीतर रखना पड़ता था ।

जानकीदास ने कपास ओटने की एक नई मिल खोली थी । कुछ दिन तो वह मिल चली, पर पीछे से ऐसी स्थिति आ पड़ी कि पूँजी की कमी के कारण उसका चलना कठिन हो गया । उस मिल को चलाना बहुत ही ज़रूरी था ; क्योंकि जानकीदास ने अपनी पूँजी का बहुत बड़ा हिस्सा उसमें लगा दिया था । यदि वह बंद कर दी जाती, तो सब पूँजी बट्टे-खाते पड़ी जाती थी । उसको चलाने के लिये रुपयों की आवश्यकता पड़ी । जानकीदास के पास रुपए नहीं थे । वह बड़े असमंजस में पड़ गए । कई दिन तक बड़े चिंतित रहे । अंत को एक दिन अपनी पत्नी से बोले—न हो, एक बार भैया से ही कहूँ । पत्नी मुँह बनाकर बोली—हाँ, भैया तुम्हें रुपए गिन देंगे !

जानकीदास—गिन क्यों न देंगे ? बहुत करेंगे, ब्याज ले लेंगे । इससे अधिक और क्या हो सकता है ।

पत्नी—वह कभी न देंगे । तुम अपने इष्ट-मित्रों से क्यों नहीं ले लेते ?

जानकीदास—मेरे इष्ट-मित्रों में इस समय दो-एक के सिवा किसी की स्थिति ऐसी नहीं है कि इतने रुपए दे सकें । जो दो-एक ऐसे हैं भी कि शायद दे सकें, उनसे माँगने का मेरा साहस नहीं होता । आज तक किसी से माँगा नहीं । सोचता हूँ, अगर माँगा, और किसी ने इनकार कर दिया, तो बड़ी लज्जा मालूम होगी । मेरी तो यही इच्छा है कि एक बार भैया ही से कहूँ । वह इनकार भी कर देंगे, तो कोई चिंता नहीं । वह मेरे बड़े हैं, उनसे क्या लज्जा ?

पत्नी—जब वह तुम्हें अपना छोटा नहीं मानते, तो तुम्हें क्या ग़रज़ पड़ी है कि तुम उन्हें बड़ा मानो ? यह तो वही कहावत हुई कि "मान न मान, मैं तेरा मेहमान ।" कुछ आत्म-गौरव भी होना चाहिए । जब वह तुम्हें कुछ ध्यान में नहीं लाते, तो तुम क्यों चिमटते हो ? जानकीदास कुछ झेंपकर बोले—इसमें आत्म-गौरव को घसीटना व्यर्थ है । आत्म-गौरव ग़ैरों के सामने काम में लाया जाता है, अपनों के—ख़ासकर बड़ों के—सामने आत्म-गौरव नहीं चलता ।

पत्नी—जो चलाना चाहते हैं, वह सभी जगह चलाते हैं । मेरे चाचा ने एक बार अपने पिताजी से दस रुपए माँगे थे । पिताजी ने उत्तर दिया—'क्या मेरे घर में टकसाल है ? जवान हो गए, पढ़-लिख गए, अब कमाओ-धमाओ । मुफ़्त बुड्ढे का मुँह क्यों ताकते हो ?' यह बात मेरे बाबाजी ने वैसे ही हँसकर कह दी थी । इसके बाद वह रुपए देने लगे, पर चाचा ने नहीं लिए । उन्हों-ने बहुतेरा कहा-सुना, चाचा रुपए लेने को किसी तरह राज़ी नहीं हुए । उसके बाद चाचा ने फिर कभी भूलकर बाबा से एक पैसा नहीं माँगा । मरते-मरते मर गए, दुख भोगे, तंगी सही, पर बाबा से कभी नहीं माँगा । जिनमें आत्म-गौरव होता है, वे उसे सब जगह बरतते हैं, चाहे अपना हो चाहे पराया ।

परंतु जानकीदास को यह आदर्श पसंद न आया। उन्होंने उस समय पत्नी से केवल इतना कहकर पिंड छुड़ाया कि अच्छा देखा जायगा।

दूसरे दिन जानकीदास बुलाकीदास के पास गए। बुलाकीदास ने उनको देखकर रुखाई से कहा—कहो, सब कुशल तो है ?

जानकीदास—जी हाँ, सब आपकी कृपा है।

बुलाकीदास अपना काम करने लगे। जानकीदास कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहे। फिर बोले—आपके पास एक काम से आया था।

बुलाकीदास—किस काम से ?

जानकीदास—मैंने एक मिल खोली है—कपास ओटने की—आपने चाहे सुना भी हो।

बुलाकीदास—हाँ, सुना तो है।

जानकीदास—उसको चलाने के लिये इस समय कुछ रुपयों की आवश्यकता थी। मेरे पास इस समय इतने रुपए नहीं हैं।

बुलाकी०—तो फिर मैं क्या करूँ ?

एक प्रकार से बुलाकीदास ने जानकीदास का तात्पर्य समझ लिया, और उसका उत्तर 'तो फिर मैं क्या करूँ' इन शब्दों में दे दिया। परंतु जानकीदास ने इन शब्दों पर ध्यान न देकर कहा—आप रुपयों का प्रबंध कर देते, तो अच्छा था।

बुलाकीदास सूखी हँसी हँसकर बोले—मेरे पास इतने रुपए कहाँ से आए ?

जानकीदास—आप प्रबंध कर सकते हैं।

बुलाकीदास—मैं तुम्हारे लिये भीख माँगूँ, या उधार लूँ ? मुझे इन झगड़ों से क्या मतलब ?

जानकीदास—मैं सूद दे दूँगा।

बुलाकीदास—मगर मुझे सूद लेना हो, तब न ? जब सूद ही देना है, तो दुनिया पड़ी है, चाहे जहाँ से ले आओ।

जानकीदास—दुनिया-भर की दूसरी बात है, आपकी दूसरी। दुनिया-भर से माँगने का मेरा साहस नहीं पड़ता।

बुलाकी०—जब इतने निःस्पृह हो, तो ऐसा काम क्यों करते हो, जो तुम्हारे बूते न हो सके ?

जानकीदास—आपसे तो मुझे बड़ी आशा थी।

बुलाकीदास—यह सब तुम्हारी नासमझी है। मुझसे तुम्हें कोई आशा न रखनी चाहिए।

जानकीदास को यह बात बड़ी बुरी लगी। उन्होंने कुछ आवेश में आकर कहा—अच्छी बात है, देखा जायगा।

यद्यपि 'देखा जायगा', इन वाक्यों से जानकीदास का यह तात्पर्य था कि रुपयों का और प्रबंध कर लिया जायगा, पर बुलाकीदास ने इसका कुछ और ही तात्पर्य समझा। उन्होंने मुँह बनाकर कहा—देखा क्या जायगा, मैं तुम्हारे दरवाज़े पर कभी माँगने न आऊँगा, और जो आऊँ, तो तुम मुझे दुतकार देना।

जानकीदास अपना-सा मुँह लेकर लौट आए। उन्हें पत्नी की बात याद आई। सोचा, उसने ठीक ही कहा था। उसकी बात न मानकर आया, और व्यर्थ ही अपनी बात गँवाई।

(६)

जानकीदास बड़ी विकट स्थिति में पड़ गए। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि उनका सर्वस्व स्वाहा हुआ जाता है। मिल चलाने के लिये रुपए नहीं हैं। अगर मिल नहीं चलाई जाती, तो जो कुछ है, वह भी सब नष्ट हुआ जाता है। अतएव उन्होंने लज्जा को तिलांजलि देकर एक मित्र से अपनी कष्ट-कथा कही। उस मित्र ने उन्हें कुछ सहायता दी। कुछ रुपए उन्होंने स्त्री के क़ीमती गहने गिरों रखकर प्राप्त किए। यद्यपि इन दोनों कार्यों से उन्हें महान् मानसिक क्लेश हुआ, पर करते क्या ? आवश्यकता और स्थिति सब कुछ करा लेती है। थोड़े ही समय में जानकीदास का काम खूब चल निकला। धीरे-धीरे उन्होंने मित्र का ऋण भी चुका दिया, और स्त्री के गहने भी छुड़ा लिए। इसी प्रकार उनकी प्रतिदिन उन्नति होती गई।

इधर काल-चक्र ने बुलाकीदास पर अपना वार किया। उन्होंने अपना काम तो खूब बढ़ा लिया, पर उस काम में उतनी आमदनी नहीं हुई, जितनी की आशा थी। उधर ख़र्च यथेष्ट था। इसका कारण एक यह भी था कि बुलाकीदास किसी का विश्वास न करते थे। सारा संसार उन्हें बेईमान और धूर्त दिखलाई पड़ता था। इसका परिणाम यह हुआ कि जब लोगों ने यह देखा कि उनकी ईमानदारी का मूल्य समझनेवाला ही कोई नहीं, उलटे वे संदेह की दृष्टि से देखे जाते हैं, तो कुछ ने, जो अपने सिद्धांत पर अधिक दृढ़ थे, बेईमानी तो नहीं की, पर काम की ओर अधिक ध्यान देना और परिश्रम करना कम कर दिया। और, कुछ

ने, जो सिद्धांत के पक्के न थे, चिढ़कर बेईमानी शुरू कर दी। उन्होंने सोचा, यह बड़ा सयाना बनता है, और दुनिया-भर को बेईमान समझता है, तो हम भी इस पर क्यों न हाथ साफ़ करें। देखें, यह कितना चालाक है। इन्हीं सब कारणों से ऐसी परिस्थिति हो गई कि बुलाकीदास का दिवाला होने की नौबत आ गई। अब बुलाकीदास बहुत घबराए। उनके हाथ-पैर फूल गए। जो जितना ही अधिक घमंडी और अहंकारी होता है, वह उतना ही असफलता से डरता है, और असफल होने पर उतना ही भीरु तथा कायर हो जाता है। यही दशा बुलाकीदास की भी हुई। उन्होंने स्थिति सँभालने की बड़ी चेष्टा की, बहुत दौड़े-धूपे। जिनसे कभी सीधे मुँह बात नहीं करते थे, उनसे भी उन्होंने सहायता माँगी, पर कोई आशा-जनक बात नहीं हुई।

बुलाकीदास की पत्नी ने उनसे कहा—न हो, जानकी से सहायता लो। वह तो बेचारा सदा तुमसे हेल-मेल रखने की कोशिश में रहता है, तुम्हीं उससे फटे रहते हो। मुझे पूरा भरोसा है कि वह तुम्हारी सहायता करेगा। आजकल उसकी चढ़ती कला भी है।

बुलाकीदास पत्नी की बात सुनकर कुछ क्रोध में आकर बोले – उस नीच से मैं सहायता माँगूँगा ? चाहे मेरा सर्वस्व चला जाय, पर मैं उससे एक पैसा न लूँगा ! जिसको मैंने दुतकार दिया था, उसी से सहायता माँगूँ ? गली-चलतों से मैं सहायता माँगने के लिये तैयार हूँ, पर उससे कुछ न कहूँगा।

मगर बुलाकीदास स्थिति सँभालने का कुछ प्रबंध न कर सके। सब ओर से निराश होकर एक बार उनका ध्यान फिर जानकीदास की ओर गया। सोचा, यदि उस समय उसकी सहायता कर दी होती, तो आज मुझे इतना कष्ट न भोगना पड़ता। यदि मैं जाऊँ, तो मुझे विश्वास है कि वह इनकार नहीं करेगा। वह तो बहुत कुछ लिपटना चाहता है, पर मैं ही उसे मुँह नहीं लगाता।

बहुत कुछ सोच-विचार करने पर बुलाकीदास ने यही स्थिर किया कि चाहे वह दिवालिए ही क्यों न हो जायँ, पर जानकीदास से सहायता के लिये प्रार्थना न करेंगे। इस समय जानकीदास के ऊपर उनका क्रोध और घृणा और भी अधिक हो गई ; क्योंकि जानकीदास की दशा अच्छी थी, और वह इस समय कष्ट में थे।

इधर जानकीदास बुलाकीदास की दशा सुनकर बड़े चिंतित हुए। उन्होंने सारा हाल अपनी पत्नी से कहा। पत्नी ने कुछ हँसकर कहा—तुमसे उन्होंने जो व्यवहार किया था, उसका ईश्वर ने यह बदला दिया है।

जानकीदास—तो इस समय मुझे क्या करना चाहिए ?

पत्नी—करोगे क्या, अपने घर में आराम से बैठे रहो। जब वह तुम्हारे पास आवें, कुछ कहें-सुनें, तब देखा जायगा।

जानकीदास ने कहा—यही ठीक है। मैं भी चाहता हूँ कि उनका अभिमान नष्ट करूँ। यदि उन्होंने मुझसे सहायता माँगी, तो सहायता मैं अवश्य करूँगा ; पर उनका अभिमान भी नष्ट हो जायगा।

दूसरे दिन उन्हें पता लगा कि बुलाकीदास चाहे आत्म-हत्या भले ही कर लें, पर उनसे सहायता न माँगेंगे। यह सुनकर उन्हें बड़ी चिंता हुई। रात-भर इसी उधेड़-बुन में रहे कि क्या करें। वह चाहते थे कि भाई की सहायता की जाय ; पर प्रश्न यह था कि वह उस सहायता को स्वीकार कैसे करेंगे। उन्होंने सोचा, अगर मैं खुद जाकर उनसे कहूँ कि मेरे योग्य जो कार्य हो, बतलाइए, तो ठीक होगा। पर पीछे से उन्हें ध्यान आया कि ऐसा करने से वह और भी अधिक चिढ़ जायँगे। समझेंगे कि यह मुझे लज्जित करने और इस प्रकार अपना बदला लेने के लिये आया है। फिर सोचा, किसी और आदमी के द्वारा सँदेसा भिजवाऊँ ; पर यह भी ठीक नहीं। भैया बड़े हठी हैं, वह इसे भी पसंद न करेंगे। इसी प्रकार बहुत कुछ सोचा, पर कोई बात न सूझी। अंत को ऊबकर उन्होंने कहा—हटाओ भी झगड़ा। यदि उन्हें सौ दफ़े ग़रज़ होगी, तो मुझसे सहायता माँगेंगे। नहीं तो मुझे क्या ? जैसा किया, वैसा भोगें। मेरे ही साथ उन्होंने कौन बड़ी नेकी की है ? पग-पग पर उन्होंने मुझे अपमानित और लज्जित करने की चेष्टा की। अंत को ऐसे समय पर भी, जब मेरा सर्वनाश होने को था, उन्होंने सहानुभूति का एक शब्द कहना तो अलग, उलटे मुझे नासमझ बनाया।

परंतु इस विचार के बाद ही उन्हें पिता के अंतिम शब्द याद आए कि 'बेटा, कुछ भी हो, बुलाकीदास तुम्हारा बड़ा भाई है, इसका ध्यान सदैव रखना।' इन शब्दों के याद आते ही एकदम उनका जी भर आया, और आँखों से अश्रु-पात होने लगा। उन्होंने सोचा,

चाहे जैसे हो, भैया को इस कष्ट से बचाना ही होगा ; परंतु इस युक्ति से कि उनकी सहायता भी हो जाय, और उन्हें यह भी पता न लगे कि किसने सहायता दी है।

(७)

बुलाकीदास अपनी कोठी के कमरे में बैठे चिंता-सागर में मग्न थे। वह सोच रहे थे कि यदि कल तक रुपयों का प्रबंध न हुआ, तो दिवाला निकल जायगा ! सारा मान, सारी मर्यादा मिट्टी में मिल जायगी ! पिता का नाम डूब जायगा ! क्या करूँ, कहाँ जाऊँ ? इस समय ईश्वर भी मुझे भूल गया ! हाय, मैं कैसे लोगों को मुँह दिखाऊँगा !

यह सोचते-सोचते उनकी आँखों से आँसू बहने लगे, हिचकी बँध गई। सोचा, अब आत्महत्या करने के सिवा और कोई उपाय नहीं है। वह बैठे ऐसी ही बातें सोच रहे थे कि कमरे के द्वार पर से नौकर ने कहा—सरकार !

बुलाकीदास ने झटपट रूमाल से आँसू पोंछकर, अपनेको सँभालकर, कहा—क्या है ?

नौकर—सरकार, एक चिट्ठी है।

बुलाकीदास—ले आओ।

नौकर ने आकर एक लंबा और मोटा लिफ़ाफ़ा दिया। बुलाकीदास ने लिफ़ाफ़ा खोला। लिफ़ाफ़े के अंदर से ८० हज़ार रुपए के नोट और एक छोटा-सा पत्र निकला। पत्र में लिखा था—

"श्रीमन्, मुझे पूर्ण आशा है कि आप इस तुच्छ भेंट को स्वीकार करेंगे।

आपका एक परम हितैषी"

बुलाकीदास के शरीर में बिजली दौड़ गई। वह तुरंत खड़े हो गए, और नोटों को काँप रहे हाथों से लिफ़ाफ़े में रखते हुए बोले—यह पत्र कौन लाया है ?

नौकर—एक आदमी।

बुलाकीदास—उसे तुरंत मेरे सामने लाओ।

नौकर बाहर चला गया, और लौट आकर बोला—सरकार, वह तो चला गया।

बुलाकी०—एँ, चला गया ?

नौकर—हाँ सरकार।

बुलाकी०—तुम उसे पहचानते हो ?

नौकर—नहीं सरकार, मैं नहीं पहचानता। आज ही उसे देखा, बिलकुल नया आदमी था।

बुलाकीदास अवाक् रह गए। बड़ी देर तक सोचते रहे। अनुमान लगाते रहे कि यह काम किसका हो सकता है ? पर कुछ समझ में न आया। अंत को हँसकर बोले—यह ईश्वर की दी हुई सहायता है। अब क्या, अब तो पौ-बारह हैं !

(८)

दूसरे दिन जानकीदास बुलाकीदास के पास आए। बुलाकीदास ने उन्हें देखते ही भौंहें चढ़ा लीं। जानकीदास ने कहा—भैया, मैंने सुना—

जानकीदास इतना ही कह पाए थे कि बुलाकीदास कड़ककर बोले—जो कुछ सुना, ठीक सुना। यह सब शत्रुओं की चाल थी। पर मैं ऐसा-वैसा आदमी नहीं हूँ। उड़ती चिड़िया पहचानता हूँ। मैंने पहले ही से प्रबंध कर लिया था। अब आज सबके मुँह धुआँ हो जायँगे। तुम शायद इसलिये आए होगे कि कदाचित् मैं तुमसे कुछ सहायता माँगूँ। पर याद रक्खो, बुलाकीदास अपनी बात का पक्का है। मैं फिर तुमसे कहता हूँ कि ऐसा अवसर कभी न आवेगा कि तुम्हें मेरी सहायता करनी पड़े।

जानकी०—भैया, मैं इस योग्य ही नहीं कि आपकी कुछ सहायता कर सकूँ।

बुलाकी०—दुनियादारी की बातें न बघारो। मैं तुम्हें खूब समझता हूँ। तुम ऊपर से 'म्याऊँ-म्याऊँ' करते हो, पर तुम्हारे पेट में छुरी चलती है। मेरे सर्वनाश का दृश्य देखकर अपनी आँखें ठंडी करने आए होगे। क्यों ?

जानकीदास—भैया ऐसा मत कहिए। ईश्वर ऐसा न करे। आप तो व्यर्थ ही मेरे संबंध में ऐसे-ऐसे विचार बना लिया करते हैं। मैं तो आपको सदा पिता के तुल्य समझता हूँ, और समझता रहूँगा।

बुलाकी०--बड़े साधु हो ! क्या कहने हैं ! अच्छा तो अब देख-सुन लिया। यह विश्वास रक्खो कि बुलाकीदास का कभी बाल भी बाँका नहीं हो सकता।

जानकीदास—ईश्वर न करे।

थोड़ी देर में जानकीदास उठकर चल दिए। यद्यपि बड़े भाई का व्यवहार पहले की अपेक्षा और भी अधिक कटु था, परंतु फिर भी उनके मुख पर प्रसन्नता तथा मुसकिराहट थी, और हृदय में संतोष।

विश्वंभरनाथ कौशिक

प्रभात

[१]

प्रकृति-नटी का पट-परिवर्तन
हुआ प्रभात पुनीत ;
वसुंधरा के तप-निकुंज में
छिड़ा विकल संगीत ।

[२]

हुआ सुनहरी रवि-किरणों से
पूरित विश्व-कुटीर ;
चलने लगी शांति को देती
शीतल मंद समीर ।

[३]

पूर्व-दिशा के शुष्क अधर पर
दौड़ गई मुसकान ;
फिर तो लगीं दिशाएँ हँसने
सभी बनीं अम्लान ।

[४]

जगत निरखने लगा उषा का
वंकिम भ्रुकुटि-विलास ;
करने लगी देखकर रवि को
नलिनी किंचित् हास ।

[५]

मधु मकरंद लगे बरसाने
मुख खोले अरविंद ;
छुटे कमलिनी के कारा से
बंदी रसिक मलिंद ।

[६]

किया नियति ने अंध जगत् को
शुचि प्रकाश का दान ;
विश्व-विपिन में छिड़ा पक्षियों
का कलकल कल-गान ।

[७]

जुड़ने लगी पास कलिका के
भक्त भ्रमर की भीर ;
लतिकाएँ लहलहा उठीं फिर
पाकर जीवन नीर ।

[८]

मिला विरह-विधुरा चकई का
चकवा—जीवन-प्राण ;
दुख की घोर काल-रजनी का
हुआ सुखद अवसान ।

"कुसुम"

फूल

फूल किसको प्यारे नहीं लगते ? उन्हें देखते ही किसकी हृदय-कली नहीं खिल उठती ? उनकी रंग-विरंगी—श्वेत, नीली, पीली, लाल—पँखड़ियों को देखकर किसका हृदय गद्गद नहीं हो उठता ? उनकी सुवास किसके मन में नहीं बस जाती ? उनकी शोभा निहारकर जब अकवि की भी चित्त-वृत्तियाँ कवित्व-संपन्न-सी भासित होने लगती हैं, तब सूक्ष्म भावों के प्रकट करनेवाले शक्ति-संपन्न सुकवियों का क्या कहना है ? सच पूछिए, तो कवियों को जितना मसाला फूलों से मिला है, और मिलता है, उतना शायद ही और कहीं से मिला हो, या मिलता हो। संस्कृत की कविता और तदनुरूप भाषा की कविता कमल की उपमाओं से भरी है। पद-पद्म-पराग, कर-कमल, पुंडरीकाक्ष, नीलोत्पल-दल-श्याम, मुखाब्ज, हृत्पंकज आदि की भरमार तो है ही, कुमुदिनी, चंपक, केतकी, कुंद, जपा, प्रियंगु, किंशुक आदि की उपमाएँ भी स्थल-स्थल पर अत्यंत हृदय-ग्राहिणी हैं । फ़ारसी-उर्दूवालों ने भी 'गुलो बुलबुल' से अपनी भाषा को और भी सरस बना दिया है । अँगरेज़ी में भी इस बात की कमी नहीं है।

आदमियों की बात जाने दीजिए, देवता भी फूलों से अत्यंत संतुष्ट होते हैं। यथा—

"मल्लिकादिसुगंधीनि मालत्यादीनि वै प्रभो !
मयाऽऽहृतानि पूजार्थं पुष्पाणि प्रतिगृह्यताम् ।"

"हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयोः—"

मूर्ति-पूजा का नाम सुनकर नाक-भौं सिकोड़नेवाले लोग भी मज़ारों और मक़बरों पर फूलों की मालाएँ चढ़ा आते हैं।

फूलों की ऐसी क़दर क्यों होती है? इसके लिये अदृष्ट कारण जो कुछ हो, हम नहीं जानते; परंतु दृष्ट कारण तो यही है कि उनकी सुषमा से नयनेंद्रिय की तृप्ति होती है, उनकी सुवास से घ्राणेंद्रिय की परम तृप्ति होती है, उनके कोमल, स्निग्ध स्पर्श से त्वचा को सुख मिलता है, और उनके सुस्वादु मकरंद से रसनेंद्रिय को हर्ष होता है। चार-चार इंद्रियों को एकसाथ मुग्ध करनेवाला गुण पुष्प से अधिक और कहाँ मिलता है?

साधारण रीति से तो हम कह सकते हैं कि परमात्मा ने फूल हमारे लिये या अपने लिये बनाए हैं; क्योंकि फूलों को हम सूँघते हैं, उनसे गुलक़ंद आदि दवाएँ बनाते हैं, उनका अर्क़ और इतर निकालते हैं, अगस्त, गोबी आदि को खाने के काम में लाते हैं, और देवतों पर चढ़ाते हैं। परंतु सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय, तो फूल प्रधानतः उन पौदों की भलाई के लिये हैं, जिनमें वे लगते हैं। फूल फल का पूर्व रूप है; फल का गर्भ फूल में रहता है। जैसे कोई अमूल्य, कोमल पदार्थ रुई या रेशम में लपेटकर पेटी के भीतर रक्खा जाता है, वैसे ही पौदे का अत्यंत आवश्यक भाग, अर्थात् भावी फल का गर्भ, कोमल पँखड़ियों में लपेटकर 'ढोंढ़ी' के भीतर सुरक्षित रहता है।

आइए, प्रथमावस्था से लेकर फूल की परीक्षा करें। पहले नन्ही-सी ढोंढ़ी, हरे रंग की, कुछ गोलाकार, हर तरफ़ से ढकी निकलती है। इस हरी चादर से उसकी रक्षा होती है। पानी, ओस, पाला आदि उसके भीतरी अवयवों को नहीं सता सकते, ढुलककर नीचे गिर जाते हैं। धूप का प्रभाव एकाएक उन भीतरी अवयवों पर नहीं पड़ता। कीड़े-मकोड़े भी उन्हें शीघ्र नहीं का[...] सकते। ज्यों-ज्यों भीतर वृद्धि होती जाती है, यह ऊपरी हरी चादर मुख के पास से हटती जाती है, और कली की मुसकिराहट शुरू हो जाती है। शनैः-शनैः ओढ़ने की हरी चादर बिछाने की चादर बन जाती है, पँखड़ियाँ खिलने लगती हैं और भीतर के आवश्यकीय अवयव दिखलाई देने लगते हैं।

अब इन आंतरिक अवयवों में जगत्कर्ता की कारीगरी देखिए। कोई फूल उठाकर निरीक्षण कीजिए, तो उसमें आपको केसर के पतले लच्छे मिलेंगे। ये लच्छे भी दो तरह के होंगे। किनारे-किनारेवाले एक तरह के, और बीचवाला दूसरे तरह का। यह बीचवाला लच्छा किनारेवाले लच्छों से या तो कुछ बड़ा होगा, या कुछ छोटा। इन लच्छों को केसर कहते हैं। किनारेवाले लच्छे पराग-केसर कहलाते हैं; क्योंकि इन्हीं से पराग या पुष्प-धूलि निकलती है। वह पीले रंग के चूर्ण के समान पुष्प पर झड़ती है। यह पराग ही पुष्प का वीर्य है। इसी के द्वारा पुष्प में गर्भ-स्थिति होती है। इसके पैदा करनेवाले पराग-केसर के लच्छे पुरुष या नर हैं। बीच का लच्छा स्त्री है और वह गर्भ-केसर कहलाती है। इसी के निचले भाग में गर्भ रहता है। वहीं बीज, अर्थात् फल की उत्पत्ति होती है। जैसे चल जीवों में गर्भाधा[...]

के लिये पुरुष और स्त्री का समागम आवश्यक है, वैसे ही पुष्प में भी। यह समागम किस प्रकार होता है?

गर्भ-केसर के लच्छे का ऊपरी भाग कुछ मोटा-सा होता है, अर्थात् उस पर एक चपटा लट्टू-सा लगा रहता है। ध्यान-पूर्वक उँगली से छूकर देखा जाय, तो मालूम होगा कि इस लट्टू पर गोंद या लासे की तरह कोई चिपचिपी चीज़ लगी है। पराग का जो कण इस लट्टू पर पड़ता है, वह चिपक जाता है, और चिपचिपे पदार्थ के रासायनिक गुण के प्रभाव से फूटकर अपना आवश्यक रस, उसी गर्भ-केसर की पतली नली के द्वारा, गर्भ-स्थान तक भेज देता है। वहाँ फल या बीज पुष्ट होकर यथा-समय पकता है।

भीतर ज्यों-ज्यों गर्भ की पुष्टि होती है, त्यों-त्यों बाहर की पँखड़ियाँ म्लान हो-होकर झड़ती जाती हैं, और ठीक समय पर फल, छीमी या दाना बाहर निकल आता है। डंठल के पुष्ट हो जाने पर उसे बाह्य आवरण की आवश्यकता नहीं रहती।

गर्भ-स्थिति के लिये पराग के एक या अनेक कणों की ही आवश्यकता होने पर भी, उसके लाखों कण होते हैं, जो व्यर्थ जाते हैं। परंतु यह सब इसलिये होता है कि पराग की कमी के कारण पुष्प में बंध्यात्व न हो।

गर्भ-केसर के सिरे तक पराग के पहुँचाने का काम मुख्यतः दो प्रकार होता है। एक तो वायु के द्वारा, और दूसरा भ्रमरों, मधुमक्खियों, चींटियों तथा अन्य कीड़ों के द्वारा। वायु से डाली हिलती है, या पराग ही उड़कर गर्भ-केसर पर पड़ जाता है। मक्खियाँ आदि, पुष्पों के रंग-बिरंगेपन से सुगमता के साथ उनका पता पाकर, उनकी सुगंध से आकृष्ट होकर, मधु के लोभ से उनके भीतर घुसती हैं। घुसने में उनके परों, पैरों और मस्तक आदि में पराग के कण लग जाते हैं, और ये ही कण गर्भ-केसर के सिरे पर झड़ या चिपक जाते हैं। किसी-किसी फूल में गर्भ-केसर का सिरा ऐसे स्थान में होता है कि वहाँ तक वायु के द्वारा पराग का पहुँचना कठिन है। वहाँ ये छोटे जंतु ही पराग पहुँचाते हैं।

जब एक पुष्प का पराग उसी पौदे के दूसरे पुष्प की गर्भ-केसर पर, या दूसरे पौदे के फूल की गर्भ-केसर पर पड़ता है, तब फल या दाने में अधिक वृद्धि होती है। वनस्पतियों में भी सगोत्रीय कन्या का विवाह न होने से बहुत उन्नति होती है। चूँकि मक्खियाँ एक फूल से उड़कर दूसरे फूल पर जाती हैं, इसलिये इनके द्वारा असमानगोत्रा-समागम बहुत सरलता से होता है।

यही नहीं, इस विषय में इतनी बारीकियाँ विद्वानों ने मालूम की हैं कि उनके वर्णन में पोथे-के-पोथे तैयार हो गए हैं। यद्यपि ऊपर का वर्णन साधारणतः बहुत प्रकार के फूलों के लिये सही है, तथापि विशेषताएँ भी हैं। जैसे किसी-किसी फूल (कमल) में पराग-केसर की बहुतायत होती है; परंतु गर्भ-केसर नहीं होती। बीच की कर्णिका (बौंड़री) पर ही गर्भ-यंत्र के मुँह रहते हैं। किसी जाति (कुम्हड़े आदि) में एक ही पौदे में दो तरह के फूल होते हैं—नर और मादा। नर-फूलों में फल नहीं होता। मादा-फूलों में होता है। किसी जाति (पपीते आदि) में नर-पौदे अलग और मादा-पौदे अलग होते हैं, और किसी जाति (मकई) में फल या भुट्टा, अर्थात् कुकड़ी। जो मादा है, वह

नीचे लगती है, और पराग पैदा करनेवाले ज़ीरे की वाली पौदे की चोटी पर लगती है। कुकड़ी के चारों ओर जो रेशम के-से केश होते हैं, वे ही इस पौदे की गर्भ-केसर हैं। इस प्रकार विचित्रताओं का अंत नहीं मिलता।

यद्यपि मक्खियाँ सेवा-भाव से प्रेरित होकर फूलों में नहीं जातीं, किंतु स्वार्थ-वश—रस पीने के लिये, शहद इकट्ठा करने के लिये—जाती हैं, तथापि उनसे पौदों का बड़ा काम निकलता है। और, स्वार्थ म भी परार्थ करनेवाले इन जीवों के प्रलोभन के लिये ही पुष्प में मकरंद होता है, विविध रंग की पँखड़ियाँ होती हैं तथा सुवास होती है। एक बात यह भी देखने के योग्य है कि श्वेत पुष्प प्रायः रात्रि को खिलते हैं। कवियों ने चंद्रमा का नाम कुमुद-बांधव रक्खा है; क्योंकि रात्रि को चंद्रमा का उत्कर्ष होता है, और रात्रि ही में कुमुदिनी फूलती है। बेला, चमेली आदि अन्य श्वेत पुष्प भी प्रायः रात्रि ही में खिलते हैं। रात्रि में रंगदार फूलों का रंग नहीं दिखलाई देता; परंतु श्वेत पुष्प दिखलाई देते हैं। अतः मक्खियाँ आदि उनसे आकृष्ट होकर रात्रि में उनका रस लेने जाती हैं।

हम फूलों के विषय में जहाँ तक निरीक्षण और विचार करते हैं, उस बड़े कारीगर की कारीगरी ही देखते हैं, और उस कारीगरी का अंत न पाकर सहसा यही सोचने के लिये विवश हो जाते हैं कि "परमात्मन्, तेरे बिना इस कला-कौशल की अनंतता और किसमें हो सकती है!"

चंद्रमौलि सुकुल

महाकवि भास

रूपक अर्थात् दृश्य-काव्य के लेखकों में महाकवि भास का आसन बहुत ऊँचा है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि इनसे पहले भारतीय संस्कृत-कवियों में से किसी ने नाटक आदि लिखे ही नहीं, किंतु इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज इनसे प्राचीन किसी कवि का लिखा कोई रूपक उपलब्ध नहीं है। भास की अतिप्राचीनता के कारण और उनके ग्रन्थों का विलोप या तिरोभाव हो जाने के कारण संस्कृतज्ञ विद्वानों में भी आज बहुत कम लोग उनसे परिचित हैं। श्रीयुक्त गणपति शास्त्री के परिश्रम से यद्यपि भास के कुछ ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, परन्तु संस्कृत के पण्डितों में अब भी बहुत कम लोगों ने उनके ग्रन्थों का अनुशीलन किया है। आज हम इन्हीं महाकवि के सम्बन्ध की कुछ बातें पाठकों की भेंट करना चाहते हैं।

भास के अनन्तरवर्ती प्राचीन कवियों ने उन्हें 'मुनि' कहा है; जो उनकी प्राचीनता और पूज्यता का प्रबल प्रमाण है। ईसा की बारहवीं शताब्दी में जयानक के लिखे 'पृथ्वीराज-चरित' के प्रथम सर्ग का तीसरा श्लोक है—

"सत्काव्यसंहारविधौ खलानां दीप्तानि वह्नेरपि मानसानि;
भासस्य काव्यं खलु विष्णुधर्मान् सोऽप्याननात्पारतवन्मुमोच।"

इसकी टीका करते हुए पन्द्रहवीं सदी में जोनराज ने लिखा है—"सोऽग्निरपि भासमुनेः काव्यं विष्णुधर्मान् मुखात् त्यक्तवान् नादहदित्यर्थः।" इस १५वीं सदी के पुस्तक-दाह से मुसलमानों के उस पैशाचिक अत्याचार की भी सूचना मिलती है, जिसमें भारतीय साहित्य का सर्वनाश हुआ था। संभव है, अग्नि-दाह से किसी प्रकार बचे हुए भास मुनि के काव्यों को, किसी सहृदय साधु ने, मुसलमानी प्रभाव से बाहर—दक्षिण भारत में—पहुँचाने का प्रयत्न किया हो। मदरास-प्रान्त के मणिलिकर-मठ में प्राचीन ताल-पत्रों पर लिखे हुए ये काव्य श्रीयुक्त गणपति शास्त्री को मिले हैं। (हमारे पास इसी प्रकार की एक 'भेलसंहिता' की पुस्तक आई है; जिसकी

हिन्दुस्थान-भर में केवल एक खण्डित प्रति ताल-पत्रों पर तेलगू-अक्षरों में लिखी हुई तंजोर के राजकीय पुस्तकालय में रक्खी थी। इसके कहीं दो-दो चार-चार पत्रे खण्डित हैं, कहीं-कहीं अध्याय-के-अध्याय ग़ायब हैं। ये सब साहित्य के भग्नावशेष, बेज़बान के ही, पुराने दिनों की याद दिलाते हैं)।

जिस प्रकार महर्षि वाल्मीकि और व्यास की कृतियों में बहुत-से आर्ष प्रयोग पाए जाते हैं, वैसे ही महाकवि भास के काव्यों में भी पाए जाते हैं। इससे एक बात यह भी सिद्ध होती है कि भास का समय महर्षि पाणिनि से पूर्व है। कालिदास, बाण और भवभूति आदि जो कवि पाणिनि के पीछे हुए हैं, उन्होंने पाणिनीय व्याकरण का अनुसरण किया है। भास के काव्यों को ध्यान-पूर्वक देखने से प्रतीत होता है कि उस समय पाणिनीय व्याकरण का प्रचार नहीं था।

चन्द्रगुप्त आदि कुछ राजों का उल्लेख देखकर ऐतिहासिक लोग पातञ्जल महाभाष्य को ईसा से पूर्व दूसरी शताब्दी में बना बताते हैं। इसके पूर्व पाणिनीय सूत्रों पर 'संग्रह' नाम का विस्तृत ग्रन्थ विद्यमान था। व्याकरण महाभाष्य के देखने से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि 'संग्रह' इस महाभाष्य से भी बहुत बड़ा था। इतने बड़े ग्रन्थ की उत्पत्ति, प्रचार और विलीयमान दशाओं में कम-से-कम दो-तीन सौ वर्ष लगे होंगे। इस 'संग्रह' से पूर्व पाणिनि-सूत्रों पर कात्यायन के वार्तिक पढ़ाए जाते थे। विशेषतः उन्हीं की व्याख्या 'संग्रह' में थी। यदि इन वार्तिकों की उत्पत्ति और प्रचार का काल केवल सौ वर्ष मान लिया जाय, तो भी ईसा से, कम-से-कम, छः सौ वर्ष पूर्व पाणिनि-सूत्रों का निर्माण-काल सिद्ध होता है। भास मुनि का समय उनसे भी पूर्व है। अतः आज से लगभग तीन हज़ार वर्ष पहले भास मुनि का होना निश्चित होता है।

एक बात और भी है। दक्षिण-भारत के शाङ्कर मठों में जो आचार्य-परम्परा के ताम्र-पत्र विद्यमान हैं, उनसे शारीरक मीमांसा-भाष्य के निर्माता आदि भगवान् श्रीशङ्कराचार्य का समय लगभग तेईस सौ वर्ष पूर्व सिद्ध होता है। यद्यपि कुछ ऐतिहासिक लोगों की धारणा है कि शङ्कराचार्य आठवीं सदी में हुए थे; परन्तु यदि इस मत को ठीक मान लें, तो उनकी उत्पत्ति और अलौकिक प्रसिद्धि का कोई विशेष कारण नहीं रह जाता। भगवान् शङ्कर के जीवन की सबसे बड़ी विशेषता है चक्रवर्ती बौद्ध-धर्म का निराकरण करके वैदिक-धर्म को प्रतिष्ठित करना। यदि यह बात उनके जीवन से अलग करके देखा जाय, तो फिर कुछ रह ही नहीं जाता। आठवीं सदी में बौद्ध-धर्म की उतनी प्रबलता और व्यापकता का कोई प्रमाण नहीं मिलता। न तो उस समय बौद्ध-राजों का प्राधान्य था, न प्रजा में बौद्ध-धर्म का एकच्छत्र साम्राज्य था, न उस समय बौद्धों के विहारों का प्राचुर्य था, और न पग-पग पर टक्कर देनेवाले धुरन्धर बौद्ध-विद्वान् मौजूद थे। फिर उस समय शङ्कराचार्य ने शास्त्रार्थों में परास्त किसे किया, उन्होंने दिग्विजय किसका किया, और बौद्ध-धर्म का निराकरण करके वैदिक-धर्म की स्थापना कहाँ की? २१ करोड़ बौद्धों को शुद्ध करके वैदिक-धर्मावलम्बी बनाने की बात उस समय कैसे चरितार्थ हुई? विक्रमादित्य और हर्षवर्धन-जैसे प्रबल प्रतापी हिन्दू-सम्राटों के बाद बौद्ध-धर्म का साम्राज्य किसने स्थापित किया? कालिदास से लेकर श्रीहर्ष के समय (१२वीं शताब्दी) तक के बने काव्यादिकों में हिन्दू-धर्म का ही प्राधान्य पाया जाता है। फिर यह कैसे मान लें कि उस समय बौद्ध-धर्म का प्राबल्य था? यदि यह कुछ नहीं था, तो उस समय भगवान् शङ्कर के अवतार का क्या प्रयोजन? उस समय होकर भी उन्होंने क्या किया? यह अलौकिक प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा कैसे प्राप्त की? वस्तुतः आदि-शङ्कराचार्य तभी अवतीर्ण हुए, जब बौद्ध-धर्म का प्रताप-मार्तण्ड प्रचण्ड दशा में था। इससे दक्षिण के मठों में स्थित ताम्र-पत्रों में निर्दिष्ट समय ही ठीक जँचता है। हाँ, उन्हीं ताम्र-पत्रों से आठवीं शताब्दी में नृसिंह स्वामी या नृसिंहावतार स्वामी नाम के किन्हीं महात्मा का शङ्कराचार्य की गद्दी पर बैठना सिद्ध होता है। इन्होंने दिग्विजय की यात्रा भी की थी। संभव है, इन्हीं की कई बातों के प्रमाण पाकर कुछ ऐतिहासिक जीव इन्हें आदि-शङ्कराचार्य समझ बैठे हों। परन्तु न तो यह आदि-शङ्कराचार्य हैं, न शारीरक-भाष्य के निर्माता ही। भगवान् आदि-शङ्कराचार्य का समय २२ सौ वर्ष से भी अधिक प्राचीन है।

इनके बनाए ब्रह्मसूत्र-भाष्य में महर्षि गोतम-कृत

न्याय-सूत्रों का कई जगह उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि गोतम-सूत्र शङ्कराचार्य से भी प्राचीन हैं, एवं उनके समय में उक्त सूत्रों का प्रचार और प्रतिष्ठा पर्याप्त थी। तब से अब तक इन पर टीका-टिप्पणी होती रही, और पठन-पाठन भी इनका बराबर बना रहा। यदि उक्त सूत्रों के प्रचार का समय दो सौ वर्ष भी मान लें, तो गोतम मुनि का समय कम-से-कम २५ सौ वर्ष प्राचीन सिद्ध होता है। परन्तु महाकवि भास के समय इन सूत्रों की सत्ता नहीं थी। यदि होती, तो जिनका उल्लेख भगवान् शङ्कराचार्य ने भी आदर-पूर्वक किया है, अवसर पड़ने पर, भास मुनि भी उन्हीं का नाम लेते। उन्हें छोड़कर किसी दूसरे न्याय का नाम लेना एकदम अस्वाभाविक है।

भास के 'प्रतिमा-नाटक' में एक परिवर्तित कथा है कि जब रावण तपस्वी का वेष बनाकर सीता-हरण के लिये आश्रम में आया, तब श्रीरामचन्द्रजी वहीं थे। वह दूसरे दिन दशरथ का श्राद्ध करने के लिये सीता से कुछ बात-चीत कर रहे थे। उन्हें अपना परिचय देते हुए उसने कहा कि—

"भोः काश्यपगोत्रोऽस्मि साङ्गोपाङ्गं वेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रम्, माहेश्वरं योगशास्त्रम्, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रम्, **मेधातिथेर्न्यायशास्त्रम्**, प्राचेतसं श्राद्धकल्पं च।"

इससे स्पष्ट है कि भास के समय मेधातिथि का न्याय-शास्त्र प्रचलित था, जो गोतम के न्याय के बाद विलुप्त हो गया। आज पतञ्जलि का बनाया योग-शास्त्र प्रचलित है, उस समय महेश्वर का बनाया विद्यमान था। आज चाणक्य (कौटिल्य) का बनाया अर्थ-शास्त्र मिलता है, तब बृहस्पति का बनाया मौजूद था। प्रचेता का बनाया श्राद्धकल्प भी आज नहीं मिलता। यदि भास की कृपा न होती, तो इन शास्त्रों के नाम भी न सुनाई देते। मानवीय धर्म-शास्त्र के सिवा आज इनमें से कोई शास्त्र उपलब्ध नहीं है (मनुस्मृति के टीकाकार मेधातिथि गोतम के बाद हुए हैं। उन्होंने कोई न्याय-शास्त्र नहीं बनाया)। इन सब बातों से स्पष्ट है कि महाकवि भास गोतम से भी पहले थे और चन्द्रगुप्त के समय में होनेवाले कौटिल्य (चाणक्य) के भी पूर्वज थे। इससे सिद्ध है कि उनका समय लगभग तीन हज़ार वर्ष प्राचीन है।

यह कहना ठीक नहीं है कि महर्षि पाणिनि से पहले यहाँ नाटक आदि दृश्य-काव्य थे ही नहीं। "पाराशर्य-शिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः ४। ३। ११०" यह पाणिनि-सूत्र ही बता रहा है कि उस समय नट-सूत्र अवश्य थे। फिर इन सूत्रों के उदाहरण-रूप नाटक यहाँ न हों, यह कैसे हो सकता है? लक्ष्यों का लक्षणों से पहले होना स्वभाव सिद्ध है। यह और बात है कि उस समय वर्तमान नाट्य-शास्त्र ही प्रचलित था, या और कोई। परन्तु कुछ था अवश्य; क्योंकि भास ने 'नाटक', 'त्रोटक', 'हल्लीश', 'प्रकरण', 'स्थापना', 'विष्कम्भक', 'प्रवेशक' आदि नाट्य-शास्त्र के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है।

बहुत लोगों की धारणा है कि जैसे वाल्मीकि और व्यास श्रव्य-काव्यों के मार्गदर्शी माने जाते हैं, वैसे ही भास दृश्य-काव्यों के मार्गदर्शी हैं। अतएव इनके परवर्ती आचार्यों ने 'मुनि' कहकर इनका उल्लेख किया है। कालिदास-जैसे कविचक्र-चूडामणि ने भी इनके शब्दों और भावों का बहुधा निःसङ्कोच भाव से अनुसरण किया है। श्रीयुक्त गणपति शास्त्री ने प्रतिमा-नाटक के 'उपोद्घात' में ऐसे बहुत-से पद्य उद्धृत किए हैं।

'मालविकाग्निमित्र' के आरम्भ में कालिदास ने नट के द्वारा एक प्रश्न कराया है कि 'भास-जैसे महाकवियों के बनाए नाटकों के होते हुए आज वर्तमान कवि कालिदास की कृति का आदर क्यों किया जाता है? यह प्रश्न ही घोषित कर रहा है कि कालिदास के समय में भास के नाटकों का कितना प्रचार था, लोग उन्हें कितने आदर और महत्त्व की दृष्टि से देखते थे। अस्तु।

अतिप्राचीन भारतीय विद्वान्, आज की भाँति, ग्रन्थों में अपना नाम नहीं लिखा करते थे। उन दिनों 'स्वनाम-नामाऽऽददते न साधवः' का पूरा साम्राज्य था। प्राचीन आर्ष-ग्रन्थों में कहीं भी ग्रन्थकर्ता के नाम का उल्लेख नहीं मिलता। कालिदास ने भी अपने काव्यों में कहीं नाम-निर्देश नहीं किया। लेकिन नाटकों में सूत्रधार के द्वारा कवि का नाम सूचित कर देने की चाल कालिदास से पहले ही चल चुकी थी। शूद्रक और कालिदास आदि ने उसी का अनुसरण किया है। परन्तु भास के समय में इस प्रथा का प्रचार नहीं हुआ था। उन दिनों के आचार्य किसी नाटक-पात्र के द्वारा अपने नाम-धाम के उल्लेख को भी 'टट्टी की ओट में शिकार' समझते थे। वे इसे भी लज्जा-जनक समझते रहे। भास के नाटकों में कहीं कवि के नाम तक का उल्लेख नहीं है। परन्तु महाकवि बाण-भट्ट ने भास के नाटकों की एक विशेषता बताई है।

"सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ;
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ।"

राजशेखर ने सूक्तिमुक्तावली में लिखा है—

"भासनाटकचक्रेपिच्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ;
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ।"

इससे पता चलता है कि 'स्वप्नवासवदत्त' भास का बनाया हुआ है । आज 'स्वप्नवासवदत्त' के साथ जो अन्य रूपक उपलब्ध हुए हैं, उन सबकी लेख-शैली बिलकुल एक है, और बाण की बताई विशेषता इन सबमें मौजूद है, अतः निःसन्देह ये सब महाकवि भास की ही कृति हैं ।

नवीन अलङ्कार-शास्त्र में सूत्रधार और स्थापक के कर्तव्यों का जो निर्देश किया है उसमें—

"रूपकस्य कवेराख्यां गोत्राद्यपि स कीर्तयेत् ।
ऋतुं च कञ्चित्"

यह अंश पीछे जोड़ा गया प्रतीत होता है । प्राचीनतम नट-सूत्रों में संभवतः इतना ही रहा होगा कि—

"पूर्वरङ्गं विधायैव सूत्रधारो निवर्तते ;
प्रविश्य स्थापकस्तद्वत् काव्यमास्थापयेत्ततः ।"

भास के रूपकों में केवल इसी अंश का पालन किया गया है । इनकी अधिकांश स्थापनाओं में एक ही छाया है । साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ कविराज ने भास कवि के रूपक देखे थे या नहीं, इसमें सन्देह है ; क्योंकि उनके लक्षणों से भास की कृतियों का ठीक-ठीक सामञ्जस्य नहीं मिलता ।

महाकवि भास के समय में मन्दिर भी थे, और उनमें मूर्तियों की पूजा भी हुआ करती थी । राजा-महाराजों की मूर्तियाँ भी बनाई जाती थीं, और इतनी उत्तमता से बनाई जाती थीं कि जिनसे असली सूरत का तुरन्त ज्ञान हो जाता था । संभव है, बौद्ध-काल में इसी प्राचीन शिल्प-कला ने बौद्ध-रूप धारण किया हो । उन दिनों ज्योतिष के फलित-भाग के भी लोग क़ायल थे । 'प्रतिमा-नाटक' में लिखा है कि श्रीरामचन्द्रजी के वनवास और राजा दशरथ की मृत्यु के बाद जब भरत को उनके मामा के यहाँ से बुलवाया गया, तो उस समय राजधानी (अयोध्या) में घुसने से पहले एक 'भट' उनके पास पहुँचा और उसने कहा कि—

"उपाध्यायास्तु भवन्तमाहुः । × × × एकनाडिकावशेषः कृत्तिकाविषयः । तस्मात् प्रतिपन्नायामेव रोहिण्यामयोध्यां प्रवेक्ष्यति कुमारः ।"

अर्थात् अभी एक घड़ी कृत्तिका-नक्षत्र बाक़ी है । इसके बाद जब रोहिणी-नक्षत्र आ जाय, तब आप अयोध्या में प्रवेश करें । यह सुनकर भरत ने, समय बिताने के लिये, एक मन्दिर में प्रवेश किया । वहाँ जाकर वह किसी प्रतिमा को प्रणाम करने लगे, तो पुजारी ने उन्हें रोककर कहा कि ये सब क्षत्रिय महाराज हैं । इन्हें देवता न समझिए । यदि आप ब्राह्मण हों, तो इन्हें प्रणाम मत कीजिए । उन्हीं पत्थर की मूर्तियों में एक ओर दशरथ की मूर्ति देखकर भरत ने चौंककर पुजारी से पूछा कि क्या यहाँ जीवित राजों की प्रतिमाएँ भी रक्खी जाती हैं ? पुजारी बोला कि 'नहीं ।' इसके बाद भरत जब कुछ और पूछने लगे, तो उसने कहा कि—

"येन प्राणाश्च राज्यं च स्त्री-शुल्कार्थे विसर्जिताः ;
इमां दशरथस्य त्वं प्रतिमां किं न पृच्छसे ।"

(प्रतिमा-नाटक, ३ अंक, ९ श्लोक)

भास के समय में किसी हद तक पर्दे का रवाज भी था ।

वनवास के समय श्रीरामचन्द्रजी ने सीता से कहा है कि—

"मैथिलि, अपनीयतामवगुण्ठनम्—
'स्वैरं हि पश्यन्तु कलत्रमेतत्
बाष्पाकुलाक्षैर्वदनैर्भवन्तः ;
अदोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो ,
यज्ञे विवाहे व्यसने वने च ।"

(प्रतिमा०, १ अंक, २९ श्लोक)

श्राद्ध, मूर्ति-पूजा और ज्योतिष आदि की ये सब बातें व्यास और वाल्मीकि ने भी कही हैं । जो लोग उन्हें प्रक्षिप्त बताते हैं, उनको भास से कुछ शिक्षा लेनी चाहिए ।

किन्हीं लोगों का ध्यान है कि भास कवि दाक्षिणात्य थे ; क्योंकि उनके 'अविमारक'-नामक नाटक में मामा की लड़की के साथ विवाह का उल्लेख है, जो आज भी महाराष्ट्र आदि में प्रसिद्ध है । परन्तु यह युक्ति ठीक नहीं है । 'अविमारक' की कथा का आधारभूत मातुलकन्या-विवाह उन क्षत्रियों में दिखाया गया है, जिनमें महाभारत के समय भी उत्तर-भारत में वह प्रथा विद्यमान थी । सुभद्रा और अर्जुन का विवाह इसी प्रकार का था ।

'विष्णुसेन' अथवा 'अविमारक' राजा कुन्तिभोज के भानजे थे। कुरङ्गी (कुन्तिभोज की कन्या) के साथ उनका विवाह भी 'सुभद्राहरण' की कोटि का ही था। अतः इस युक्ति के सहारे भास मुनि का दाक्षिणात्य होना सिद्ध नहीं होता। यह ठीक है कि भास के ग्रन्थ दक्षिण-भारत में ही प्राप्त हुए हैं; परन्तु मुसलमानी आक्रमण के कारण उत्तर-भारत में अब प्राचीन ग्रन्थ मिलते ही कहाँ हैं ? कालिदास के समय में जब इनका अभिनय यहाँ होता था, तो उत्तर-भारत में इनका होना भी निर्विवाद सिद्ध है।

संस्कृत में एक प्रसिद्धि है—

"नाटकान्तं कवित्वम् ।"

कविता की चरम सीमा नाटक है। कवित्व-शक्ति की परा काष्ठा की परीक्षा नाटक में होती है। इस उक्ति से स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत में नाटक लिखना कितना कठिन काम समझा जाता है। यहाँ नाटक लिखनेवाले को सबसे पहले अपने कार्य को पाँच अवस्थाओं में बाँटना पड़ता है। १—आरम्भ, २—यत्न, ३—प्राप्त्याशा, ४—नियताप्ति, और ५—फलागम। नाटक में इन अवस्थाओं को इसी क्रम से रखना पड़ता है। इसके बाद कवि जिस इतिहास को नाटक का रूप देना चाहता है, उसे इन पाँच अवस्थाओं में विभक्त करता है। उक्त अवस्थाओं के साथ इतिहास के ठीक-ठीक मिल जाने से यथाक्रम पाँच सन्धियाँ तयार होती हैं। उनके नाम हैं, १—मुख, २—प्रतिमुख, ३—गर्भ, ४—विमर्श, और ५—निबर्हण। इनमें से मुख-सन्धि के १२ अङ्ग होते हैं—१—उपक्षेप, २—परिकर, ३—परिन्यास, ४—विलोभन, ५—युक्ति, ६—प्राप्ति, ७—समाधान, ८—विधान, ९—परिभावना, १०—उद्भेद, ११—करण, और १२—भेद। इसी प्रकार अवशिष्ट चारों सन्धियों के भी अङ्ग होते हैं। इन पूर्वोक्त अवस्थाओं, सन्धियों और उनके अङ्गों के पृथक्-पृथक् लक्षण साहित्य-शास्त्र में वर्णित हैं। इन सब रूपों में से अभीष्ट इतिहास को निकालना पड़ता है। यह सब होने पर भी यदि रस अछूता रह सका, कथा अक्षुण्ण बनी रही और विन्यास में कौतूहल तथा चमत्कार कम न होने पाया, तब तो नाटक ठीक बना समझिए, वरना "सब गुड़ गोबर"। इन सबके सिवा एक बात और है, और वह बड़ी मुशकिल है। नाटक की प्रत्येक बात में स्वाभाविकता का होना निहायत ज़रूरी है। कोई बात अस्वाभाविक हुई कि खटकने लगी। नाटक का कोई पात्र यदि भील है, तो उसकी भाषा से, वेष से, शरीर से, भाव-भङ्गी और रंग-ढंग से, सबसे वही भीलपन झलकना चाहिए। देवर्षि, ब्रह्मर्षि, राजा, रानी, दास, दासी, डाकू, चोर, सेनापति, कोतवाल, मल्लाह और चाण्डाल तक की बोल-चाल तथा मानसिक भाव वैसे ही होने चाहिए, जो बिलकुल स्वाभाविक मालूम हों। यह काम बड़ा कठिन है। जिसकी भावना का वेग इतना तीव्र है कि ज़रा ध्यान करते ही इन्द्र-लोक की समृद्धियों और नारकीय यातनाओं के साङ्गोपाङ्ग चित्र उसकी आँखों के सामने नाचने लगते हैं, जिसका प्रकृति-परिशीलन इतना प्रबल है कि वह बात-की-बात में सम्पूर्ण जड़ और चेतन-जगत् के हृदय में घुसकर उसके छिपे-से-छिपे भाव का स्फुट अनुभव करने लगता है, जिसकी मनीषा उन सबमें से समुचित सार निकाल सकती है, और जिसकी वाणी उसका शब्द-मय चित्र खींचकर सहृदय पुरुषों को रसमय कर सकती है, वही महापुरुष 'कवि' कहलाने योग्य है। जिसकी प्रतिभा स्वतन्त्र और कल्पना स्वयम्भू है, वही 'कवि' हो सकता है। इसी से लोग कालिदास आदि कवियों को योगी कहा करते हैं, और यही कारण है कि वेद में ईश्वर की स्तुति करते हुए 'कवि'-शब्द के साथ कई साभिप्राय विशेषण लगाए हैं। यथा—"कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः।"

भास मुनि में ये सब बातें पूर्ण रूप में पाई जाती हैं। आपके रूपक स्वाभाविकता की मूर्ति हैं। 'बाल-चरित' में नन्द गोप और वसुदेव की बात-चीत लिखने में आपने कमाल किया है। नन्द गोप की प्राकृत भाषा और उनके भोले-भाले सात्त्विक भावों को देखने से मालूम होता है कि उन्हें लिखते समय कवि के हृदय में वस्तुतः नन्द गोप की आत्मा का आवेश हो गया था। इधर वसुदेव के क्षत्रियोचित ओजस्वी भाव और उधर नन्द गोप का भोलापन, दोनों की गङ्गा-यमुना खूब बही है। वसुदेव ने कृष्ण को नन्द गोप के हवाले करके जब यह पूछा कि—

"वयस्य नन्द गोप, अस्य सुतस्य किं करिष्यति भवान् ?"

अर्थात् मित्र नन्द, तुम इस बच्चे का क्या करोगे ? उस जगह आप कहते हैं—

[illegible] सीरं पिबइ, असरिं

गेहे गच्छिअ दधिं भक्खइ, अवरस्सिं गेहे गच्छिअ णवणीदं गिलइ, असस्सिं गेहे गच्छिअ पाअसं भुञ्जइ, इदरस्सिं गेहे गच्छिअ तक्कघटं पलोअदि, किं बहुणा अम्हाणं घोसस्स पदी होइ।"

अर्थात् सुनिए मालिक, यह एक घर में जाके दूध पिएगा। दूसरे में जाके दही खायगा। तीसरे में मक्खन सड़प्प करेगा। चौथे घर में खीर खायगा। औरों में मट्ठे के घड़े देख-देखकर लुढ़कावेगा। अधिक क्या कहूँ, हमारे घोष (गोव्रज) का पति होगा। यदि आजकल का कोई नाटककार इस घटना का उल्लेख करता, तो किसी कॉलेज में कृष्ण को भर्ती कराने की बात ज़रूर कहता। परन्तु उसमें यह स्वाभाविकता कहाँ? इसी 'बालचरित' के दूसरे अङ्क में कंस का व्यामोह, अन्तःपुर में चण्डाल-युवतियों का दिखाई देना एवं शाप की प्रत्यक्ष मूर्ति, इन सबमें भी भास की कल्पना शक्ति का समुज्ज्वल कौशल जगमगा रहा है। यदि आप भास के 'स्वप्नवासवदत्त' के साथ कालिदास के 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' का मिलान करके देखें, तो पता चले कि महाकवि श्रीकालिदास ने भास मुनि का कितना अनुसरण किया है। शूद्रक के 'मृच्छकटिक' में तो भास के 'दरिद्र चारुदत्त' की हू-ब-हू नक़ल पाई जाती है। भास की सरस, मधुर और सरल भाषा को देखकर बहुत-से लोग समझते हैं कि उस समय संस्कृत सर्व-साधारण की भाषा थी। पर इतना तो हम भी मानते हैं कि उन दिनों संस्कृत सर्व-साधारण में समझी अवश्य जाती थी।

जो लोग यह समझते हैं कि संस्कृत में दुःखान्त-नाटक (Tragedy) लिखे ही नहीं जाते थे, उन्हें भास-कृत 'ऊरुभङ्ग' देखना चाहिए। इस रूपक की रचना दुःखान्त हुई है।

पाश्चात्य नाट्य-कला-विशारदों में किसी रूपक के भीतर दूसरे रूपक के सन्निवेश को बड़ा महत्त्व दिया जाता है। अर्वाचीन संस्कृत नाटकों में भवभूति और जयदेव की कृतियों में यह बात विद्यमान है, और भास के अतिप्राचीन 'बालचरित' में भी कृष्ण ने गोपियों के साथ 'हल्लिश' का आयोजन किया है। आज भी नाट्य-शास्त्र में 'हल्लीश' की वही परिभाषा मौजूद है, जो भास के समय में थी—

"हल्लीशे एक एवाङ्कः सप्ताष्टौ दश वा स्त्रियः ;
वागुडाजैकपुरुषः कैशिकी वृत्तिरुज्ज्वला ।
मुखान्तिमौ तथा सन्धी बहुताललयस्थितिः ।"

अभी भास के १३ (बल्कि साढ़े बारह) ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं। इनमें से एक का नाम है पञ्चरात्र। इसमें भास मुनि ने अपनी स्वतन्त्र प्रतिभा और करुणा-पूर्ण हृदय का अपूर्व परिचय दिया है। इससे पता चलता है कि महाभारत के अत्यन्त अनुचित और अन्याय-पूर्ण युद्ध से आपके कोमल हृदय में गहरी चोट लगी थी। आपकी राय में जब पाण्डव लोग १२ वर्ष का वनवास और १ वर्ष का अज्ञातवास पूरा करके लौट आए थे, तब दुर्योधन को उनका आधा राज्य लौटा देना ही उचित था। इसके बाद जो उसने अपनी कुबुद्धि के कारण बात बढ़ाकर महाभारत का युद्ध रचा, वह होना ही नहीं चाहिए था। इसी आधार पर आपने महाभारत की कथा को कुछ बदलकर 'पञ्चरात्र' की रचना की है।

इसकी कथा का संक्षेप यों है—दुर्योधन ने यज्ञ किया, और अन्त में गुरु द्रोणाचार्य से इच्छानुरूप यज्ञ-दक्षिणा लेने का अनुरोध किया। बहुत कहने पर, बात पक्की करके द्रोणाचार्यजी ने कहा कि—

"येषां गतिः क्वापि निराश्रयाणां संवत्सरैर्द्वादशभिर्न दृष्टा ;
त्वं पाण्डवानां कुरु संविभागमेषा च भिक्षा मम दक्षिणा च।"

अर्थात् जिन बेचारे आश्रय-हीन पाण्डवों का बारह बरस से कहीं ठिकाना नहीं है, तुम उनका हिस्सा दे दो, बस यही मेरी भिक्षा है और यही दक्षिणा है। इस पर और सब तो राज़ी हो गए, परन्तु शकुनि ने घोर विरोध किया। अन्त में शकुनि की सलाह से यह तय हुआ कि यदि 'पञ्चरात्र' अर्थात् पाँच रात्रि (यानी पाँच दिन) के अन्दर पाण्डवों का पता लग जाय, तो उन्हें आधा राज्य दिया जा सकता है। इस पर द्रोण ने निराश होकर कहा—

'ये कर्तुकामैश्छलनं भवद्भिः संवत्सरैर्द्वादशभिर्न दृष्टाः ;
ते **पञ्चरात्रेण** मयोपनेया वरं ह्यदत्तं विशदान्तरेण।"

परन्तु उसी समय विराट् के यहाँ से दूत ने आकर कहा कि "सौ कीचकों को किसी ने, बिना किसी शस्त्र के मार डाला है। उनके शोक के कारण राजा विराट् इस यज्ञ में शामिल नहीं हो सके।" यह सुनते ही धीरे से भीष्म ने द्रोण से कहा कि आप 'पञ्चरात्र' की शर्त मंजूर कर लीजिए। पाण्डवों का पता चल गया। बिना शस्त्र लिए सौ कीचकों को मार डालना सिवा भीमसेन के और किसी का काम नहीं है। इधर द्रोणाचार्यजी ने दुर्योधन

की 'पाँच रात्रि'वाली शर्त मंजूर की, और उधर भीष्म के कहने से विराट् के ऊपर दुर्योधन ने चढ़ाई बोल दी। वहाँ घोर युद्ध हुआ, और अर्जुन ने सबके छक्के छुड़ा दिए। पाण्डव लोग पहचान लिए गए, और द्रोणाचार्य बोले कि—

"इत्यर्थं वयमानीताः पञ्चरात्रोपि वर्तते ;
धर्मेणावर्जिता भिक्षा धर्मेणैव प्रदीयताम् ।"

इस पर दुर्योधन ने कहा कि—

"बाढं दत्तं मया राज्यं पाण्डवेभ्यो यथापुरम् ;
मृतेपि हि नराः सर्वे सत्ये तिष्ठन्ति तिष्ठति ।"

अंत में द्रोणाचार्यजी ने—

"हन्त सर्वे प्रसन्नाः स्मः प्रवृद्धकुलसंग्रहाः"

कहकर ग्रन्थ समाप्त किया, और महाभारत का युद्ध गुरु द्रोणाचार्य की कृपा से, होते-होते बच गया। इस घटना से कुछ लोग यह भी कल्पना करते हैं कि द्रोणाचार्य ही जन्मान्तर में भास मुनि हुए थे, और उन्होंने अपने हृद्गत भावों को इस रूप में प्रकाशित किया। जो कुछ भी हो, हम इस पर विवाद बढ़ाना नहीं चाहते।

परन्तु एक बात कहे बिना हम नहीं रह सकते। इसे सुनकर पाठकों को आश्चर्य होगा, और दुःख भी। कोई-कोई भावुक सहृदय मर्मान्तिक वेदना का अनुभव करेंगे। परन्तु समालोचक का कठिन कर्तव्य पालन करने के लिये हमें उसकी चर्चा करनी ही पड़ेगी। पाठकगण धैर्य रखके और जिगर थामके सुनें।

इस पापी कलियुग में एक महाशय ऐसे पैदा हुए हैं, जिन्होंने इन्हीं भास मुनि की पगड़ी उछालने और इज़्ज़त बरबाद करने की क़सम खाई है। आप सत्तू बाँधकर भास के पीछे पड़े हैं और "अपर पञ्चरात्र" नाम का एक "लघु काव्य" लिखकर अपना मनोरथ सफल करना चाहते हैं। आपका परिचय है—"पं० रामदत्त पन्थ (?) साहित्योपाध्याय, प्रोफ़ेसर ऑफ़ संस्कृत, बरेली-कॉलेज।" टाइटिल-पेज से लेकर अनेक जगह दुहराई, तिहराई हुई, आप ही के शब्दों में, आपकी प्रतिज्ञा है कि—

"अत्र किल कौर्माचलः कवी रामदत्तपन्थः पुरो भुवि वाणीविलासचतुराणामन्तरवाणिवराणां भासमुनेः पञ्चरात्रमात्रमुदिश्य सोत्साहं प्रतिजानीते—

कृतं भासोपहासाय धृतमग्रे विपश्चिताम् ;
हसेयुस्तेऽत्र संलक्ष्य तं वा मां वा वचक्रम (?) मिति ।"

अर्थात् भास मुनि के केवल पञ्चरात्र को लक्ष्य करके रामदत्त पन्थ पृथ्वी-भर के समस्त विद्वानों के सामने उत्साह-सहित प्रतिज्ञा करता है कि (मैंने) भास के उपहास के लिये (यह ग्रन्थ) बनाकर विद्वानों के सामने रक्खा है। इसके वचक्रम (?) को देखकर वे लोग (विद्वज्जन) भास का उपहास करेंगे, या मेरा उपहास करेंगे। पुस्तक के आरम्भ में आपने "वञ्चना-शून्य सूचना" लिखी है, जिसमें दो-एक बातों के बाद फिर यही प्रतिज्ञा दुहराई गई है। इसके आगे सूत्रधार की उक्ति का अँगरेज़ी-अनुवाद (Translation of the Sutradhara's speech) जोड़ा है। यह सूत्रधार की 'स्पीच' का अशुद्ध अनुवाद किसी विशेष अभिप्राय से जोड़ा गया प्रतीत होता है।

इसके आगे आपने 'सतामभ्यर्थनाऽग्रतः' (?) लिखी है, जिसमें अपने गुरु के लड़के का बनाया, इसी पुस्तक का, एक लम्बा अशुद्धि-पत्र लगाया है। उसके अनन्तर आपका "दृश्यं लघु काव्यम्" शुरू होता है। इसे आपने सम्राट् पञ्चम जॉर्ज, उनकी एसेंबली (assembly) और उनके अफ़सरों के सामने अवतीर्ण कराया है। इसमें सूत्रधार ने मतलब की (दृश्य-काव्योपयोगी) कोई बात न कहकर पहले तो अँगरेज़ों की तारीफ़ के पुल बाँधे हैं, फिर पन्थजी की राजभक्ति की दुहाई पीटी है। आगे आपकी लिखी ४-४ आनेवाली किताबों का नोटिस दिया है, और साथ ही आपके शब्दों में 'राजद्रोही' (हमारे शब्दों में देशभक्त) लोगों को कोसा भी है।

लेखक का हृदय इस एक घटना से ही स्पष्ट हो जाता है, और ग्रन्थ लिखने का तात्पर्य भी साफ़ समझ में आ जाता है। संभव है, आपकी इस कृति से कुछ देश-द्रोही लोग प्रसन्न हों, और विवेक-हीन नौकरशाही के नौकर इस पुस्तक को 'Original' (मौलिक) समझकर आपके गले में किसी उपाधि का तौक़ लटका दें, अथवा और किसी तरह आपकी पीठ ठोंक दें; परन्तु संस्कृतज्ञ-जनता आपके इस कुकृत्य को सदा गर्हित और नीच-भाव-पूर्ण समझती रहेगी।

हमारा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि हम श्रीयुत रामदत्त पन्थजी को भास या कालिदास से छोटा सिद्ध करें। हम तो कहते हैं कि ईश्वर करे, आप व्यास, वाल्मीकि से भी बढ़कर हो जाएँ; परन्तु हमारा नम्र निवेदन

तो यही है कि न तो पूज्य पुरुषों का उपहास करने से किसी की योग्यता बढ़ सकती है और न शान्त रहने से वह घट सकती है। आज भास और कालिदास का नाम संसार में सूर्य के समान चमक रहा है, यद्यपि उन्होंने अपने किसी पूर्वज का उपहास करने के लिये कोई ग्रन्थ नहीं लिखा। आपमें यदि योग्यता है, तो अच्छे-से-अच्छा ग्रन्थ लिखकर संसार के सामने रखिए। आपका नाम अमर हो जायगा। लेकिन विजातियों, विदेशियों और विधर्मियों को खुश करने के लिये अपने पूज्य पूर्वजों की पगड़ी उछालना कहाँ की बुद्धिमानी है? और वह भी किस क्षुद्र प्रयोजन के लिये? हा, धिक्!!

आपने अपनी 'सतामभ्यर्थनाऽग्रतः' (?) के अन्त में एक पद्य लिखा है, जिसका तात्पर्य यह है कि 'दोष दिखाना खलों का काम है। सज्जन लोग गुण ही देखा करते हैं।' हम आपसे पूछना चाहते हैं कि कविचक्र-चूडामणि श्री-कालिदास तक के पूज्य वृद्ध भास मुनि का उपहास लिखते समय क्या यह पद्य आपको याद था? या अपने दोष छिपाने के लिये ही इससे ढाल का काम लेना चाहते हैं?

आपने अपने काव्य को विद्वन्मण्डली के सामने रखकर और चैलेंज देकर पूर्वोक्त प्रतिज्ञा—'कृतं भासोपहासाय धृतमग्रे विपश्चिताम्'—की है और आशा की है कि—

"साधुत्वे साधुवादो वाऽसाधुत्वे साधुशासनम्;
श्रमापनुत्तये कर्तुः कृत्येऽलंकीर्तिशालिनाम्।"

अर्थात् यदि काम अच्छा हो, तो साधुवाद (शाबाशी) से कर्ता का श्रम दूर होता है, और यदि कुछ बुराई हो तो 'शासन' (हिदायत या तंबीह) से भी वही काम होता है। हम आपकी इसी आज्ञा और आशा के अनुसार आपकी सेवा में कुछ निवेदन करने का साहस करते हैं। बहुत संभव है, आपको हमारी बात सुनने में कड़वी मालूम हो; परन्तु यदि जी कड़ा करके, चिरायते के काढ़े की तरह, आप इसे गले के नीचे उतार गए, तो बुख़ार आपका ज़रूर दूर हो जायगा, और अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाने से आपका हित भी होगा।

कुछ पर्वतीय ब्राह्मणों को हमने अपने नाम के आगे 'पन्त' लिखते देखा है; परन्तु श्रीरामदत्तजी ने इस ग्रन्थ में आद्यन्त अपने को 'पन्थ' लिखा है। क्या हम पूछ सकते हैं कि आप अपने को 'परिपन्थं च तिष्ठति' का उदाहरण क्यों बनाते हैं?

भास ने अपने ग्रन्थ का नाम 'पञ्चरात्र' रक्खा है, और एक विशेष घटना (पूर्वोक्त) का उल्लेख करके उसकी सार्थकता सिद्ध की है, एवं ग्रन्थ के अन्त तक 'पञ्चरात्रोपि वर्तते' कहकर उसका निर्वाह किया है। सभी दृश्य-काव्यों के लेखक अपने ग्रन्थ के नाम को विशिष्ट घटनाओं द्वारा समर्थित करते हैं। हम श्रीयुत 'पन्थ' जी से पूछते हैं कि आपके 'अपर पञ्चरात्र' के 'अपर'-शब्द की उपादेयता का कौन-सी घटना समर्थन करती है? क्या आपकी पुस्तक में एक भी बात ऐसी है, जिससे इस शब्द की उपयोगिता सिद्ध होती हो? यदि नहीं, तब तो फिर यह 'अजागलस्तन' की तरह व्यर्थ ही रहा! कथा तो आपने सब भास ही के यहाँ से उड़ाई है। नई कोई बात है ही नहीं। फिर इस अनाथ 'अपर'-शब्द का समर्थन कौन करेगा? हमारी सम्मति में तो भास का उपहास लिखने से पहले आपको नाटकों के नाम-निर्देश का रहस्य किसी से सीख लेना चाहिए था।

हम आपको चुनौती देते हैं कि आप अपने 'मौलिक'-काव्य में से एक भी ऐसी घटना बताइए, जिसे आपने भास के 'पञ्चरात्र' से चुराया या नक़ल न किया हो। कथा सब आद्यन्त भास के घर की। कल्पना सब भास की। अच्छे पद्य और भाव सब भास से चुराए हुए। यहाँ तक कि नाम भी वही 'पञ्चरात्र'। उस पर नाज़ यह कि 'कृतं भासोपहासाय'!! 'किमाश्चर्यमतः परम्'!!!

पाठकगण, यदि कोई अपने लड़के का नाम 'लघु मनुष्य' रक्खे, तो आप उसे क्या कहेंगे? यद्यपि नवजात शिशु लघु मनुष्य अवश्य है, परन्तु क्या इस नाम से नामकरण करनेवाले को आप बातमीज़ कह सकेंगे? दृश्य-काव्यों के संस्कृत में अनेक भेद होते हैं। साहित्य-शास्त्र की परिभाषाओं के अनुसार कवि लोग 'नाटक', 'प्रकरण', 'नाटिका', 'व्यायोग', 'हल्लीश', 'ईहामृग', 'त्रोटक', 'सट्टक', 'प्रहसन' आदि नाम रखते हैं। परन्तु श्रीयुक्त पन्थजी ने लिखा है—'दृश्यं लघु काव्यम्'। 'लघु मनुष्य' की तरह इस 'लघु काव्यम्' के नाम-निर्देश से ही आपके साहित्य-ज्ञान की योग्यता फटी पड़ती है।

यह संभव था कि यदि भास के 'पञ्चरात्र' में कोई विशेषण लिखा होता, तो आप झटसे उसकी नक़ल कर देते। परन्तु जीर्ण-शीर्ण ताल-पत्रों पर लिखी तीन हज़ार वर्ष की पुरानी इस पुस्तक में वैसा कोई शब्द मिला

नहीं। यद्यपि भास के अन्य ग्रन्थों में 'प्रतिमा-नाटक', 'मध्यम-व्यायोग' आदि शब्द मिलते हैं। अब पन्थजी इसके लिये शब्द लावें, तो कहाँ से? अधिक-से-अधिक आपने साहित्यदर्पण के कुछ लक्षण मिलाए होंगे। उनमें से कोई फ़िट नहीं हुआ। आख़िर बेचारे चुप हो बैठे, और 'लघु काव्यम्' लिखकर सन्तोष किया। क्यों पन्थजी महाराज, क्या इसी बुद्धि-वैभव के भरोसे आप भास का उपहास करने चले हैं?

किसी विषय में दृढ़ संकल्प का नाम 'प्रतिज्ञा' है। महाकवि भास के 'प्रतिज्ञा यौगन्धरायण' में वत्सराज के मन्त्री यौगन्धरायण ने प्रतिज्ञा की है—

"सुभद्रामिव गाण्डीवी नागः पद्मलतामिव ;
यदि तां न हरेद्राज। नास्मि यौगन्धरायणः।
यदि तां चैव तं चैव तां चैवायतलोचनाम्।
नाहरामि नृपं चैव नास्मि यौगन्धरायणः।"

अर्थात् यदि मैं वासवदत्ता आदि को हरण न कर लाऊँ, तो यौगन्धरायण नहीं। इस बात में वक्ता की दृढ़ता और एक कार्य में सर्वतोभावेन उसकी तत्परता पाई जाती है। संसार में कोई प्रतिज्ञा ऐसी नहीं हो सकती, जिसमें प्रतिज्ञा-कर्ता की दृढ़ता किसी एक ओर न पाई जाती हो। अब ज़रा पन्थजी की प्रतिज्ञा का मुलाहिज़ा कीजिए—

"......रामदत्तपन्थः सोत्साहं **प्रतिजानीते**—
कृतं भासोपहासाय धृतमग्रे विपश्चिताम् ;
हसेयुस्तेऽत्र संलक्ष्य **तं वा मां वा** वचक्रमम् इति।"

क्या इस 'तं वा मां वा' को प्रतिज्ञा कहा जा सकता है? जहाँ विकल्प (वा) है, वहाँ दृढ़ता कैसी? और दृढ़ता के विना प्रतिज्ञा कहाँ? यदि कोई कहे कि 'या तो मैं तुम्हें मार लूँगा, या तुम मुझे मार लोगे', तो इसे प्रतिज्ञा कौन कहेगा? 'देवदत्त या तो मर जायगा, या जीता रहेगा' क्या इस वाक्य को कोई प्रतिज्ञा कह सकता है? यदि नहीं, तो फिर श्रीपन्थजी का यह कहना कि—'इस पुस्तक को देखकर लोग या तो भास की हँसी करेंगे, या मेरी'—प्रतिज्ञा कैसे कहा जा सकता है? इस संशयात्मक वाक्य का नाम प्रतिज्ञा क्योंकर हुआ? संशय और निश्चय विरोधी धर्म हैं। प्रतिज्ञा में निश्चय की प्रतीति होती है, और विकल्प में संशय की। ये दोनों एक कैसे हो सकते हैं? श्रीपन्थजी बरेली-कॉलेज के संस्कृत-प्रोफ़ेसर हैं। आप छात्रों को 'प्रतिज्ञा'-शब्द का क्या अर्थ बताते होंगे?

"गर हमी मकतब अस्त हमी मुल्ला ;
कारे तिफ़लाँ तमाम ख़्वाहद शुद।"

आपने उक्त प्रतिज्ञा-पद्य को आरम्भ में ही तीन जगह लिखा है, और आपके 'अशुद्धि-पत्र' में कहीं इसका नाम-निशान तक नहीं है, अतः आप ज़रूर इसे शुद्ध समझते हैं; परन्तु व्याकरण के अनुसार 'वचक्रमम्' अशुद्ध है। यहाँ 'वच' के आगे विसर्ग ('वचःक्रमम्') का होना आवश्यक है। यह तो 'प्रथमग्रासे मक्षिकापातः' हुआ। व्याकरण-सम्बन्धी अन्य अशुद्धियाँ हम आगे दिखावेंगे। यहाँ तक आपके टाइटिल-पेज की बात हुई। इसके आगे आपकी 'वञ्चना-शून्य सूचना' है। इस 'वञ्चना-शून्य' को देखकर हमें उस नोटिस की याद आ गई, जिसमें **"असली काश्मीरी कोक-शास्त्र"** लिखा रहता है। इस सूचना के अन्त में आप फ़रमाते हैं—

'तदित्थं महाकवेरस्य पञ्चरात्रमात्रमुद्दिश्य अपरपञ्चरात्र-मिदं कृतं **भासोपहासाय**......प्रहासोन्मुखा विद्वांसः पञ्च-रात्रे अपरपञ्चरात्रे च निविश्य न पुनस्तस्य महाकवित्वमभि-निविश्य प्रसादं **विषादं** वा समुपलभ्य **हसेयुरुपहसेयु-**रिति मुहुरभ्यर्थयते रामदत्तपन्थः—"

लोगों को 'प्रसाद' (प्रसन्नता) में हँसते सबने देखा होगा; परन्तु श्रीपन्थजी 'विषाद' होने पर भी लोगों से हँसने की प्रार्थना करते हैं! यह है आपके प्रकृति-परिचय की लियाक़त!! इसी के भरोसे आप भास का उपहास करने को उतारू हुए हैं!!!

अब ज़रा आपके 'लघु काव्यम्' की भी बानगी देखिए। भास के काव्यों में 'पञ्चरात्र' को आपने सबसे पोच समझा है। इसीलिये अपनी 'प्रतिज्ञा' और 'सूचना' में कई जगह 'पञ्चरात्र-मात्र' की दुहाई दी है। हम भी आज इन्हीं दोनों (पञ्चरात्र और अपर-पञ्चरात्र) का मुक़ाबिला करके ऊँट को पहाड़-तले से निकालना चाहते हैं।

'नाटकान्तं कवित्वम्' की चर्चा हम पहले कर चुके हैं। नाटक आदि दृश्य-काव्यों का मङ्गलाचरण लिखना भी एक मार्के की बात समझी जाती है। इसमें स्तुति या प्रार्थना इस प्रकार लिखी जाती है, जो प्रस्तुत घटना से अधिक-से-अधिक सम्बन्ध रखती हो। इतना ही नहीं, उस मङ्गलाचरण को सुनकर नाटक की विशेषप

घटनाओं, ख़ासकर पात्रों और आरम्भ तथा अन्त की दशाओं की ओर भी साफ़ इशारा समझ में आना चाहिए। इन सब बातों के होते हुए भी शब्द-रचना जहाँ तक हो सके, सरल, स्पष्ट और थोड़ी होनी चाहिए। साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् इस पहले श्लोक से ही समझ लेते हैं कि कवि ने अपने काम में कहाँ तक सफलता प्राप्त की है। समझदार लोग "पूत के पैर पालने में" ही परख लेते हैं।

भास के 'पञ्चरात्र' की कथा का संक्षेप हम पहले बता चुके हैं। इसमें प्रधान पात्र श्रीद्रोणाचार्यजी हैं। उन्हीं ने अपने उद्योग से पाण्डवों को राज्य दिलाया है। द्रोणाचार्यजी की यह प्रवृत्ति क्यों हुई? इस पर भास मुनि ने उनके मुँह से यह कहलाया है कि—

"धर्ममालम्बमानेन दुर्योधनेनाहमेवानुगृहीतो नाम—
अतीत्य बन्धूनवलङ्घ्य मित्रा-
ण्याचार्यमागच्छति शिष्यदोषः ;
बालं ह्यपत्यं गुरवे प्रदातु-
र्नैवापराधोऽस्ति पितुर्न मातुः।"

अर्थात् यदि दुर्योधन धर्म-पूर्वक आधा राज्य पाण्डवों को दे दे, तो उसका सबसे बड़ा अनुग्रह मुझ पर होगा; क्योंकि शिष्य के दोषों का उत्तरदाता गुरु ही होता है। छोटी उम्र के बच्चे को योग्य गुरु के सिपुर्द करके माता-पिता तो छूट गए। अब यदि उसमें कोई दोष उत्पन्न होता है, तो उसका ज़िम्मेदार गुरु ही होगा। तात्पर्य यह कि दुर्योधन मेरा शिष्य है। यदि उसने कोई अन्याय किया, तो लोग मुझे और मेरी शिक्षा को ही दोष देंगे। यद्यपि धर्मात्मा युधिष्ठिर और वीर अर्जुन के शिक्षक श्रीद्रोणाचार्यजी पर कोई दोष नहीं लग सकता, तथापि उनके इस अत्यन्त उदार विचार और निःस्वार्थ परोपकार के भाव को अङ्कित करके महाकवि भास ने उनके चरित्र को परम पवित्र और उज्ज्वल बना दिया है। यही यहाँ इनके प्रधान-पात्रत्व का कारण है। पात्रों में दूसरा नंबर अर्जुन और भीम का है; जिन्होंने विराट्-नगर में सब कौरवों को परास्त किया। इनके प्रतिद्वन्द्वी कर्ण, शकुनि और दुर्योधन हैं। धर्म-प्रधान पात्रों में भीष्म और युधिष्ठिर हैं। विराट्-नगर में उत्तर ने युद्ध किया है, और अभिमन्यु के साथ उत्तरा का विवाह भी हुआ है। यह सब कथा इस 'पञ्चरात्र' में वर्णित है। अब इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए, आप भास मुनि के मङ्गलाचरण को देखिए। इस एक श्लोक में आपने विराट्-स्वरूप भगवान् कृष्ण का स्मरण करके सूत्रधार के द्वारा, सब लोगों को आशीर्वाद दिलाया है; परन्तु अपनी कथा और पात्रों की सूचना किस सुन्दरता से व्यञ्जित की है, इसे पाठक स्वयं देख लें। सुनिए—

"द्रोणः पृथिव्यर्जुनभीमदूतो
यः कर्णधारः शकुनीश्वरस्य ;
दुर्योधनो भीष्मयुधिष्ठिरः स—
पायाद् विराडुत्तरगोऽभिमन्युः।"

जो "द्रोण" अर्थात् कृष्ण-वर्ण (श्रीकृष्ण) हैं, जो पृथिवी में अर्जुन और भीम के दूत बने, जो 'शकुनीश्वर' (पक्षि-राज=गरुड़) के 'कर्णधार' (नेता) हैं, जिनसे युद्ध करना दुर्घट ('दुर्योधन') है, जो 'भीष्म' (भयानक) और युद्ध में 'स्थिर' (युधिष्ठिर) रहते हैं, जो 'विराट्'-रूप हैं, जो 'ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठाः' इत्यादि श्रुतियों के अनुसार सब संसार में उत्तरगामी ('उत्तरग') हैं, और 'यज्ञो वै विष्णुः' इत्यादि वेद-वाक्यों के अनुसार यज्ञ-रूप ('अभिमन्यु') हैं, वह (भगवान् कृष्ण) आपकी रक्षा करें।

यह तो हुआ इस श्लोक का मङ्गलाचरण-सम्बन्धी अर्थ। अब प्रकृत कथा से सम्बन्ध रखनेवाला अर्थ सुनिए—"द्रोणः पायात्"=द्रोण रक्षा करें, अर्थात् महाभारत-जैसे संहारक संग्राम को रोककर गुरु द्रोण संसार की रक्षा करें। जो द्रोण 'पृथिव्यर्जुनभीमदूतः' पृथिवी के लिये—आधे राज्य के लिये—अर्जुन और भीम के (निःस्पृह धर्मात्मा युधिष्ठिर के नहीं) दूत बने। जो 'शकुनि' और 'ईश्वर' (राजा दुर्योधन) के 'कर्णधार' (नेता) हैं, अथवा जो शकुनि और दुर्योधन का कान पकड़नेवाले ('कर्णधार') हैं। जिन्होंने शकुनि और दुर्योधन के कान पकड़कर सन्धि करा दी।—अथवा जो 'कर्णधार'=कर्ण की रोक-थाम करनेवाले और शकुनि दुर्योधन के कान पकड़नेवाले हैं। जो 'दुर्योधन' (दुर्दम) हैं। जो भीषण युद्ध में स्थिर रहते हैं, अथवा भीष्म और युधिष्ठिर जिनके प्रिय पात्र हैं। 'विराट्' और 'उत्तर' पर जिन्होंने चढ़ाई की एवं पाण्डवों के वनवास से जिनका 'मन्यु' (अनुताप) 'अभि'=वृद्ध हुआ, वह गुरु द्रोण रक्षा करें।

अब इस श्लोक में प्रकृत रूपक के पात्रों का सन्निवेशौचित्य देखिए। प्रधान पात्र द्रोण का नाम सबसे पहले लिया गया। उद्योग का विषय-पृथिवी—उसके बाद आई। दूसरे नंबर के पात्र और गुरु द्रोण के प्रिय पात्र अर्जुन, भीम उसके बाद आए। यद्यपि अर्जुन से भीम आयु में बड़े थे, परन्तु विराट्-नगर के युद्ध में और द्रोण के प्रेम में अर्जुन ने प्राधान्य प्राप्त किया था, अतः भीम से पहले उनका नाम लिया गया। इसके बाद इनके प्रतिद्वन्द्वी सब झगड़ों की जड़—उपद्रवियों के गुट्ट—कर्ण, शकुनि और दुर्योधन का नाम लिया गया। इसके अनन्तर धार्मिक रूप से इस झगड़े का निपटारा सूचित करने के लिये भीष्म और युधिष्ठिर का नाम-कीर्तन किया गया, और आगे एक ही पद—'विराडुत्तरगोऽभिमन्युः' में विराट् के नगर की गड़बड़, उत्तर का युद्ध, अभिमन्यु की वीरता और उत्तरा के साथ उसके विवाह की सूचना दे दी गई।

अब पाठक स्वयं विचार लें कि भास मुनि ने इस छोटे-से पद्य में कितना कमाल दिखाया है। ज़रा-सा श्लोक, जिसमें केवल इने-गिने बारह पद हैं, उसमें इन सब पूर्वोक्त भावों का समावेश, और वह भी कितनी सरल भाषा में, फिर आद्यन्त औचित्य का पालन, क्या यह कोई साधारण बात है? हम इसका फ़ैसला ज्ञान-सम्पन्न सहृदय पाठकों पर ही छोड़ते हैं।

अब भास का उपहास करनेवाले श्रीयुक्त पन्थजी का मङ्गलाचरण सुनिए—

"हरिरेव बली न सावलेपो
न बलिर्येन कदर्थितोऽर्थितश्च ;
असमीक्ष्य यदापदं पतन्तीं
कुरुराजोऽपि कृतेऽत्र पाण्डवानाम् ।१।
सदयोऽपि न चापरः परोऽस्मात्
यदयं वारिणि वारणं जुगोप ;
न समोऽस्य च भक्तवत्सलो यत्—
कुरुराजापनयाद् ररक्ष कृष्णाम् ।२।
क नु वास्य समो भवेद् वदान्यः
यददात् सद्मनि सम्पदः सुदाम्नः ;
गतिरस्तु स चात्र मादृशानाम्
निखिले कर्मणि सर्वतोऽबलानाम् ।३।"

यह किसी नाटक का नान्दी है, या 'गोपालसहस्रनाम' का पाठ? इसे मङ्गलाचरण कहें, या विधवाओं ('सर्वतोऽबलाओं') का विलाप? अच्छे कवि यथाशक्ति नान्दी को छोटा बनाते हैं; परन्तु आपका यह स्तोत्र-पाठ 'शैतान की आँत' की तरह बढ़ता ही चला जा रहा है!! और वह भी बेमतलब, बेउसूल !!! भास मुनि ने जहाँ केवल बारह पद लिखे हैं, वहाँ आपने पूरे 'साठ-एक-इकसठ' पद ठूसे हैं। 'च', 'एव', 'अपि', 'अत्र' आदि शब्दों की निरर्थक भरमार की है; परन्तु जो ख़ूबी छोटे-से पद्य में भास ने पैदा की है, उसका गन्ध भी आपको नहीं छू गया। शायद आप उसे समझे तक नहीं हैं।

आपकी इन बारह पङ्क्तियों में छः वाक्य हैं। पहली दो पङ्क्तियों का एक वाक्य है। इसका अर्थ है, 'हरि' (विष्णु) ही बली हैं। गर्व-युक्त नहीं हैं; क्योंकि इन्होंने राजा बलि को कदर्थित नहीं किया, बल्कि उससे भिख माँगी। सुना आपने? 'हरि' को बली सिद्ध करने के लिये पन्थजी कैसी पाताल से कौड़ी लाए हैं? गर्व-हीन भिख-मंगा होना बली होने की दलील है। क्या आपने पन्थजी के सिवा कोई और भी कवि देखा है, जो ऐसी घटना से किसी को 'बली' साबित कर सके? बलिहारी! बलिहारी!!

आगे चलिए—

"असमीक्ष्य यदापदं पतन्तीं
कुरुराजोऽपि कृतेऽत्र पाण्डवानाम् ।"

इस टुकड़े का अगले-पिछले वाक्यों से कुछ सम्बन्ध नहीं है, अतः इसे एक वाक्य मानना पड़ेगा। परन्तु इसमें क्रिया का कहीं पता नहीं है। शब्द सब बेमेल, बे-जोड़? अब चाहे पाठक भटका करें, चाहे श्रोता सिर पटका करें, पन्थजी ने तो एक पहेली का गोल-मोल पिण्ड बनाकर लोगों के सामने रख दिया। भला कोई बूझे तो सही! जब तक पहले वाक्य से दो-एक शब्द तोड़कर इसमें जोड़े न जायँ, तब तक इसका कोई अर्थ नहीं हो सकता। परन्तु कविता के वाक्य कोई पाणिनि के सूत्र तो हैं ही नहीं, जिनमें आप इच्छानुसार अनुवृत्ति कर लें। आप चाहते तो यह हैं कि "पतन्तीम् आपदम् असमीक्ष्य, पाण्डवानां कृते कुरुराजोऽपि **येन न कदर्थितः अर्थितश्च**" ऐसा वाक्य बने, और पिछले पाँच शब्द पूर्व वाक्य से तोड़कर इसमें जोड़ दिए जायँ; परन्तु जो वाक्य समन्वित होकर निराकाङ्क्ष हो चुका, उससे नोच-नोच-

कर शब्द छुटाना संभव नहीं । निदान, यह दो लाइनों का टुकड़ा असम्बद्ध और निरर्थक ही रहा ।

और सुनिए—

"सदयोऽपि न चापरः परोऽस्मात्
यदयं वारिणि वारणं जुगोप ।"

अर्थात् हरि के सिवा कोई दयावान् भी नहीं है ; क्योंकि इन्होंने पानी में हाथी की रक्षा की । यहाँ 'चापरः परः' लिखकर आपने इस पद्य को बिलकुल 'चापर' ही कर दिया ! "अस्मात्परः सदयोऽपि न" केवल इतना ही अर्थ अभीष्ट है ; परन्तु आपने 'अपरः, परः' ये दोनों समानार्थक शब्द लिखकर अपनी अज्ञता का परिचय दिया है । संस्कृत का साधारण विद्यार्थी भी यह बात समझ सकता है ।

अगले वाक्यों का अर्थ है—"हरि के समान कोई भक्त-वत्सल नहीं ; क्योंकि इन्हों ने दुःशासन के 'अपनय' (?) से द्रौपदी की रक्षा की ।" (अपनय का अर्थ हटाना या अलग करना होता है । पन्थजी ने 'अनय' (अन्याय) के अर्थ में उसका प्रयोग किया है, अतः यहाँ 'अवाचकत्व'-दोष है ।) 'हरि के समान कोई दानी कहाँ होगा ? जो इन्होंने सुदामा के घर में सम्पत्ति दी ।'

पन्थजी महाराज, यह आप 'अपर पञ्चरात्र' की नान्दी बना रहे हैं, या हरि का जीवन-चरित लिख रहे हैं ? आपकी इन अंड-बंड बातों से प्रकृत रूपक की कथा का क्या सम्बन्ध ? बलि के छलन, गज और ग्राह के युद्ध, द्रौपदी के चीर-हरण और सुदामा की सम्पत्ति से 'पञ्चरात्र' की कथा का क्या तअल्लुक़ ? क्या ये सब 'पञ्चरात्र' के पात्र हैं ? यदि नहीं, तो आप यह अनाप-शनाप क्या बक रहे हैं ? यदि आप बुरा न मानें, तो हम आपको नेक सलाह देते हैं कि दृश्य-काव्य लिखने के पहले आप किसी साहित्य-तत्त्वज्ञ विद्वान् से कोई नाटक पढ़ लीजिए, और यह समझने की कोशिश कीजिए कि नाटक के मङ्गलाचरण में क्या-क्या खूबियाँ होनी चाहिए, एवं प्रकृत घटना से उसका सम्बन्ध किस तरह दिखाना चाहिए ? भास-जैसे आदर्श पुरुषों का उपहास करने का तो कभी नाम भी न लीजिए । उस रास्ते की ओर हरगिज़ क़दम न बढ़ाइए । वहाँ 'अंगूर खट्टे' हैं ।

और सुनिए—

"गतिरस्तु स चात्र मादृशानाम्"

और टुकड़ों की तरह इसमें भी 'चात्र' व्यर्थ है । उसके विना वाक्य अच्छा बन सकता है ; परन्तु बेचारे पन्थजी 'चात्र' की चकती जोड़े विना छन्द कैसे पूरा करें ? इस वाक्य में आपने हरि से अपनी 'गति' के लिये प्रार्थना की है ; किन्तु यह स्पष्ट नहीं किया कि आप 'दुर्गति' चाहते हैं या 'सद्गति' ? तो भी हम यही प्रार्थना करते हैं कि ईश्वर आपको 'सद्गति' दे । परन्तु पन्थजी महा-राज, एक बात तो बताते जाइए । 'स मादृशानां गतिरस्तु', यह आपके अन्तिम समय की प्रार्थना हो सकती है । 'अपर पञ्चरात्र' के मङ्गलाचरण में इस मर्सिए का क्या काम ? यहाँ मङ्गल के समय आपने यह अमङ्गल की बात क्यों छेड़ी ? इस बेवक़ की रागिनी से लोग आप-को क्या समझेंगे ? आप ही बताइए कि आपकी यह बेसुरी तान सुनकर लोग आपको हँसेंगे, या भास को ? जो छन्द यहाँ आपने पसन्द किया है, वह गाने की अपेक्षा रोने और विलाप करने में ज़ियादह मौज़ूँ होता है । हमारी राय में तो 'उपहास' की अपेक्षा यदि आप मर्सिया लिखा करें, तो ज़ियादह मुनासिब हो ।

पाठकगण, आप इतने से ही समझ गए होंगे कि श्रीपन्थजी की कविता किस दर्जे की होती है । उसमें कल्पना और भावों की नवीनता का गन्ध तक नहीं होता । संस्कृत की शब्द-रचना नौसिखुए विद्यार्थियों की-सी होती है । आपके इस काव्य से चाहे सम्राट् पञ्चम जार्ज प्रसन्न हों, चाहे उनके ऑफ़िसर लोग गद्गद हो उठें, परन्तु संस्कृतज्ञ विद्वान् आपके और भास के इन मङ्गलाचरणों का मिलान करके ही आगे कुछ न सुनना चाहेंगे । उनकी दृष्टि में तो आपके इन रद्दी पद्यों के साथ भास के पूर्वोक्त मङ्गलाचरण की तुलना करना भी अन्याय होगा । कहाँ राजा भोज, कहाँ भोजा तेली ! !

'पञ्चरात्र' जिस कोटि का रूपक है, उसमें न तो नटी होती है, न नान्दी । केवल मङ्गलाचरण होता है । भास मुनि ने सूत्रधार ही का प्रवेश कराया है, नटी का नाम तक नहीं लिया । न नान्दी लिखा । किन्तु ग्रन्थ के आदि में "नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः" लिखा है । इसमें "नान्द्यन्ते" क्रिया है, जो पात्रों के एक विशेष कार्य की सूचना देती है । परन्तु साहित्य-ज्ञान-शून्य पन्थजी ने इस 'नान्द्यन्ते' को सप्तमी विभक्ति, समझा, और उसकी नक़ल करते हुए 'अपर पञ्चरात्र' में नान्दी लिखने के बाद 'नान्द्यन्ते सूत्रधारः' लिख मारा । आपने इसमें नटी को भी बुलाया

है, और बुरी तरह बुलाया है। ये दोनों बातें आपकी साहित्य-ज्ञान-शून्यता का परिचय देती हैं। मालूम नहीं, आप कैसे 'साहित्योपाध्याय' हैं!

हम पहले कह चुके हैं कि दृश्य-काव्यों में स्वाभाविकता की अत्यन्त आवश्यकता है। पाठकगण, यदि कोई कवि भगवान् रामचन्द्र और योगिराज जनक की सभा में वशिष्ठ, वाल्मीकि आदि महर्षियों के सामने लैटिन, ग्रीक और अँगरेज़ी-भाषा के नाटक खिलवाए, तो लोग उसे पागल कहेंगे, या और कुछ? अब आप ही निर्णय कीजिए कि श्रीयुक्त पन्थजी महाराज ने सम्राट् पञ्चम जार्ज, उनकी एसेम्बली (assembly) और उनके ऑफ़िसर लोगों के सामने जो यह संस्कृत-भाषा का नाटक खिलवाया है, इससे हम क्या समझें? क्या यह मान लें कि ये सब अँगरेज़ लोग संस्कृत के धुरन्धर विद्वान् हैं? या यह समझें कि चापलूसी की पिनक में आपको स्वाभाविकता का यह औचित्य सूझा ही नहीं?

यद्यपि आजकल दर्शकों में बहुत-से ऐसे होते हैं, जो नाटक की भाषा से पूर्ण परिचित नहीं होते, परन्तु जिन प्रधान पुरुषों को कवि अपना दर्शक बनाता है, उन्हें तो उस भाषा का विशेषज्ञ होना ही चाहिए।

आपके सूत्रधार की 'स्पीच' तो बिलकुल तूफ़ाने-बदतमीज़ी की टोकरी है। इसमें सबसे पहले तो अँगरेज़ों की तारीफ़ के पुल बाँधे हैं। फिर पन्थजी की राजभक्ति का बखान और आपकी बनाई ४-४ आनेवाली किताबों की नोटिसबाज़ी है। आगे सूत्रधार कहने लगा कि 'मैं इन अँगरेज़ों की सभा से कुछ कहना चाहता हूँ।' मगर कहने की बात भूल गया। बोला कि 'विज्ञाप्यं तावद् विमृशामि' (कहने की बात सोच लूँ)। परन्तु यह विज्ञाप्य उसे अन्त तक न सूझा। बेसिर-पैर की बहुत-सी अंड-बंड बातें बककर वह 'विज्ञाप्य' को विना बताए ही चलता बना। इसी 'विज्ञाप्य' को सोचते२ वह बोल पड़ा कि 'मैं शराबी की तरह मरा जाता हूँ।' सुनिए—

"विज्ञाप्य-ज्ञापने व्यग्रः श्रव्य-श्रवणविस्मितः;
सस्मितो जोषमास्थाय सुरासेवीव संस्थितः।"

'सम्' पूर्वक 'स्था' धातु का अर्थ है 'मरण'। 'दशकुमारचरित' में 'संस्थिते (मृते) पितरि' लिखा है। और, कवियों ने भी इसी तरह लिखा है। परन्तु श्रीपन्थजी को यह बात नहीं सूझी। सूझे तो तब, जो आपने साहित्य का कोई ग्रन्थ पढ़ा हो। आपने तो 'साहित्योपाध्याय' की पदवी सन् ५७ के ग़दर में लूटी थी।

इसी के आगे आपका शराबी सूत्रधार कहता है कि 'यह कुछ और मुझे खींचे लेता है। इस 'अदृष्ट-पूर्व' दृश्य से मैं 'विमोहित' (यानी बेहोश) हुआ जाता हूँ।'

"इदमन्यत् किमपि बलादाकर्षतीव माम्;
अदृष्टपूर्वेणानेन दृश्येनास्मि विमोहितः।"

शायद पाठक समझते होंगे कि इसके आगे पन्थजी ने कोई अद्भुत सीन दिखाया होगा। कोई ऐसी चमत्कारक सीनरी होगी, जिसे देखकर सब लोग मोहित हो जायँ, और उसे 'अदृष्टपूर्व' (कभी न देखा हुआ) समझें। परन्तु श्रीपन्थजी से ऐसी आशा करना उनकी बुद्धि पर ज़ुल्म करना है।

आपका सूत्रधार जिसे 'अदृष्टपूर्व दृश्य' कहकर वायवैला मचा रहा है, जिससे बेहोश हुआ जा रहा है, वह क्या दृश्य है, इसे पन्थजी के श्रीमुख से ही सुनिए—

"यदायान्ति द्विजाश्चेमे लक्ष्यया लक्ष्यलक्षणाः।"

ज़रा इस 'चे—मे'—का तो मुलाहिज़ा कीजिए! मानों मुर्ग़ी के चूज़े चिचिहा रहे हों। समझे आप? वह अद्भुत दृश्य कौन-सा है? सिर्फ़ 'तीन ब्राह्मण तिलक लगाए हुए आ रहे हैं।'

"बहुत शोर सुनते थे पहलू में दिल का;
जो चीरा तो यक क़तरए ख़ूँ न निकला।"

इस बात को यहीं छोड़कर यह सूत्रधार कुछ कामातुर पुरुषों की-सी बातें ('सविधे दयिता यस्य दवोपि न दवायते' इत्यादि) कहकर नटी को पुकारने लगा, और बोला कि 'ख़बरदार, गाने-बजाने का कुछ काम नहीं ('कृतं कृतं गीतरागाभियोगेन')। नटी ने जब पूछा कि 'आख़िर मैं क्या करूँ', तो आप फ़र्माते हैं कि 'इन्हीं ब्राह्मणों की सूरत देखती रहो।' '...इदमेव दृष्टव्यं (?) तावद् दृश्यताम् यदायान्ति इमे ब्राह्मणाः।'

देखा आपने? यह सूत्रधार की 'स्पीच' है, या 'चूँ-चूँ का मुरब्बा?' व्याकरण के अनुसार 'दृष्टव्यम्' अशुद्ध है। यहाँ 'द्रष्टव्यम्' होना चाहिए। सबसे बड़ा मज़ा तो यह है कि जिन ब्राह्मणों की बाबत आप

इतना शोर-गुल मचा रहे हैं, वे अभी रङ्गभूमि (स्टेज) पर आए ही नहीं हैं। उनका प्रवेश बहुत आगे जाकर होगा। मालूम नहीं कि श्रीपन्थजी ने कभी कोई नाटक देखा भी है, या नहीं ! अच्छा तो यह होता कि आप वहाँ जाकर पात्रों के प्रवेश की कुछ बातें सीख लेते।

पन्थजी ने इन ब्राह्मणों के तिलक का जो वर्णन किया है, ज़रा उसे भी सुन ही लीजिए। कोई सज्जन माथे पर ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाए और सिर पर पगड़ी बाँधे हैं। उन्हें देखकर आप फ़र्माते हैं—

"विशालभाले धृत ऊर्ध्वपुण्ड्रः
प्रविश्य चाधः सितवेष्टनस्य ;
विपश्चितः कस्यचिदत्र वृन्दे
सत्कर्मणां साधुफलोदयाय ।
हिमालयादापततो धरित्र्यां
गङ्गाप्रवाहस्य बिभर्ति लीलाम् ।९।"

अर्थात् सफ़ेद पगड़ी के 'नीचे घुसकर' ('प्रविश्य चाधः') ऊर्ध्वपुण्ड्र हिमालय से गिरती हुई गङ्गा के सदृश मालूम होता है। समझे आप? पन्थजी का हिमालय तो आकाश में अधर लटक रहा है और उसकी दुम में से गङ्गा निकली पड़ती हैं! मुट्ठी-भर की पगड़ी तो हुई हिमालय पहाड़ !!, और दो-ढाई इञ्च का तिलक हुआ १७ सौ मील लंबी गङ्गा की धारा !!! परन्तु तिलक की तो तीन लाइनें होती हैं। एक तो हुई गङ्गा, और बाक़ी दो ? वे क्या हुईं ? संस्कृत-साहित्य में 'हीनोपमा' और 'अधिकोपमा' दोष माने जाते हैं। यदि कोई किसी की कुत्ती को देखकर कहे कि यह तो आपकी प्रत्यक्ष कुल-देवी है—'शुनीयं गृहदेवीव प्रत्यक्षा प्रतिभासते'—तो यह जाति-गत हीनोपमा-दोष होगा। पगड़ी का पहाड़ और तिलक की गङ्गा भी उसी दर्जे की है। यहाँ परिमाण-गत अधिकोपमा है। परन्तु पन्थजी तो साहित्य के तमाम दोषों से मुसतसना हैं। इसीलिये आपने अपने यहाँ सब दोषों को गिन-गिनकर स्थान दिया है।

ज़रा इस श्लोक की बढ़ी हुई टाँगों (चरणों) को तो देखिए। आपने यह छः चरणों का एक श्लोक बनाया है !! इसके आगे '९' की संख्या दी है। आप इसे एक ही समझते हैं। इसके अगले-पिछले श्लोकों में दूसरे छन्द हैं। उनसे इसका सम्बन्ध नहीं हो सकता। इस पुस्तक में और भी अनेक अशुद्ध छन्द हैं। दूसरे अङ्क के १२वें श्लोक में आपने दो छन्दों की क़लम चढ़ाई है। पहले दो चरण ११-११ अक्षरों के हैं, और पिछले दो १२-१२ अक्षरों के !! क्यों पन्थजी महाराज, क्या 'श्रुतबोध' भी भूल गए ? क्या इसी ज्ञान-गरिमा के भरोसे आप भास का उपहास करते चले हैं ?

संस्कृत के नाटकों में विशेषतः स्त्रियाँ तथा अन्य कई पात्र ऐसे होते हैं, जिनकी प्राकृत भाषा होना आवश्यक है। इसका यह मतलब नहीं कि पुराने समय की स्त्रियाँ निरी मूर्ख होती थीं। यदि यह होता, तो वे नाटकों में पुरुषों की संस्कृत-भाषा समझकर उसका उत्तर-प्रत्युत्तर कैसे करतीं ? आवश्यकता पड़ने पर कहीं२ वे प्राकृत बोलते२ संस्कृत भी बोलने लगती हैं। भास के 'पञ्चरात्र' में ही बृहन्नला ने प्राकृत बोलते२ युद्ध की ऊर्जित कथा संस्कृत में कही है। इसी प्रकार नाटकों में चाण्डालों की भाषा चाण्डाली (प्राकृत-भेद), भील आदि की आभीरी, शकार की शकारी, विदूषकों की प्रायः अवन्तिका एवं उच्च कोटि के पात्रों (रानी आदि) की भाषा शौरसेनी प्राकृत होती है। ये नियम केवल स्वाभाविकता के आधार पर बनाए गए थे। आज भी यहाँ शिक्षित पुरुषों की भाषा खड़ी बोली होती है, और घर में स्त्रियाँ उनसे प्रान्तीय भाषा में बात-चीत करती हैं। दोनों दोनों की भाषा समझते हैं; परन्तु बोलते अपनी२ हैं। प्राचीन समय में संस्कृत और प्राकृत में इतना ही भेद था, जितना आज परिष्कृत हिन्दी और प्रान्तीय बोलियों में है। प्राकृत को सरल, कोमल और सुगम समझा जाता था। अतएव नियम था कि—"स्त्रीषु नाऽप्राकृतं वदेत्"—स्त्रियों में प्राकृत-भाषा का ही प्रयोग करे।

पन्थजी प्राकृत के ज्ञान से बिलकुल कोरे मालूम होते हैं। आपने 'पञ्चरात्र' की सब जगह तो नक़ल की, परन्तु प्राकृत-भाषा के अंशों को एकदम उड़ाते गए। रानी, कञ्चुकी, बृहन्नला, दासी और चौकीदारों से भी आपने सर्वत्र संस्कृत बुलवाई है। क्यों पन्थजी महाराज, क्या ये सब-के-सब साहित्योपाध्याय थे ? प्राकृत से प्राण छुड़ाने के लिये आपने दूसरे अङ्क में ब्राह्मणों को दूत बनाकर चपरासियों से उनकी दुर्गति कराई है। आपके 'अपर पञ्चरात्र' में गिने हुए केवल चार अक्षर('अज्जउत्त') प्राकृत के हैं। ये अक्षर नटी ने सूत्रधार से कहे ही थे

कि झट उसने उसका मुँह पकड़ लिया और बोला—"...अभ्यस्ताखिलदर्शनानाम् आदर्शभूतायास्ते नैतदनुरूपम्...यतः—

रसिकानां रसास्वादे सत्पात्रे प्राकृतं वचः ;
प्रपानकरसे हन्त तृणपातायते किल ।"

पन्थजी बिना निरर्थक अव्ययों को ठूसे छोटे-से-छोटा श्लोक भी नहीं बना सकते । इस पद्य में भी 'हन्त' और 'किल' का पेबंद लगा हुआ है । आठ अक्षर का चरण, और चार अक्षर व्यर्थ !! सेर-भर की लोमड़ी, और ढाई सेर की पूँछ !!! आपका सूत्रधार नटी से कहता है कि 'तुम तो समस्त दर्शनशास्त्रियों—फ़िलासफ़रों—की आदर्श हो । (अर्थात् साक्षात् सरस्वती हो) । तुम प्राकृत क्यों बोलती हो ? रसास्वाद में प्राकृत भाषा बहुत खटकती है । 'प्रपानकरस' में कूड़े-करकट की तरह मालूम होती है ।

हम भी मानते हैं कि रसास्वाद में प्राकृत-भाषा खटकती है ; परन्तु उसी को खटकती है, जिसे प्राकृत समझने की तमीज़ नहीं है, और जो नीचे लिखी संस्कृत-टिप्पणी के सहारे प्राकृत का अर्थ किया करता है । इसी तरह हिन्दी में संस्कृत के शब्द भी लोगों को खटकते हैं; परन्तु यह खटकना उन्हीं की मूर्खता का परिचायक है, न कि भाषा-दोष का । संस्कृत के हज़ारों नाटकों में से ऐसा एक भी न मिलेगा, जिसमें नटी तथा अन्य स्त्रियों ने प्राकृत न बोली हो । क्या हम मान लें कि आज तक के सब नाटककार मूर्ख थे, और उन सबकी नटियाँ कुपात्र थीं ? आज पन्थजी ही सच्चे नाटककार पैदा हुए हैं, और यह एक आप ही की नटी 'सत्पात्र' है ? नटी तो हुई 'अभ्यस्ताखिलदर्शनों की आदर्शभूत'= सरस्वती, अब द्रौपदी को पन्थजी कौन-सा पद देंगे ? हमारी सम्मति में तो इन बातों से पन्थजी का प्राकृत भाषा का अज्ञान फूट-फूटकर निकल रहा है । इससे भास का उपहास होता है या पन्थजी का ? हम चाहते हैं कि श्रीपन्थजी हाथ में गङ्गा-जल और कुश लेकर, पूर्व को मुँह करके, जनेऊ पकड़कर, अपनी आँख को अन्दर की ओर करके, अपने हृदय को टटोलकर, अपने प्राकृत-ज्ञान पर ईश्वर को साक्षी मानकर स्वयं इसका निर्णय करें । ईमानदारी से कही हुई आपकी बात को हम शिरोधार्य करेंगे ।

भास के 'पञ्चरात्र' में सूत्रधार की छोटी, किंतु भावपूर्ण प्रस्तावना के बाद तीन ब्राह्मणों का प्रवेश है । पन्थजी ने भी अपने सूत्रधार की लंबी और बेमतलब 'स्पीच' के बाद उसी तरह तीन ब्राह्मणों का प्रवेश कराया है । जिस तरह भास ने इन ब्राह्मणों के द्वारा दुर्योधन के यज्ञ का वर्णन कराया है, पन्थजी ने भी अपनी बोली में उसी की नक़ल की है । भास ने दुर्योधन के यज्ञ में अग्नि लगने की बात इन्हीं ब्राह्मणों के द्वारा चलाई है । श्रीपन्थजी ने भी ख़ूब आग लगाई है । परन्तु यहाँ नक़ल करने में एक भूल हो गई । भास ने अग्नि लगने का कारण बताने और उसका औचित्य निबाहने में जो कुशलता दिखाई थी, पन्थजी को वह नहीं सूझी । आपने बिना कुछ कारण बताए ही आग लगाना शुरू कर दिया, और यहाँ तक आग लगाई कि रानियों के कपड़े जलाए, नौकर-चाकरों के शरीर जलाए, राजों को नंगा करके रास्तों में दौड़ाया, उनसे पानी भरवाया, रनिवास तक जलाया; पर यह न बताया कि आग लगी क्यों ? भास की दो पङ्क्तियों की प्रधान बात को आपने आग लगाने के बाद, इशारे से, बताने की चेष्टा की है; किन्तु आपकी आग में पड़कर वह इस तरह ख़ाक हुई कि किसी काम की न रही । इस पुस्तक के अन्त में, नान्दी की तरह, फिर पन्थजी ने स्तोत्र-पाठ किया है, और "पिता" पञ्चम जार्ज को दुआ देकर उसे समाप्त किया है ।

यदि हमसे कोई पूछे कि इस पुस्तक से भास का उपहास हुआ या नहीं, तो हम तो निःसंकोच होकर यही कहेंगे कि यदि कोई दुधमुहा छोकरा अपना झुनझुना उठाकर भीमसेन की गदा का उपहास कर सकता है, यदि कोई गँवार नक़ली पिस्तौल लेकर अर्जुन के अग्नि-बाणों का उपहास कर सकता है, यदि गंदी मोरी गङ्गा की धारा का उपहास कर सकती है, और यदि कोई काना कौआ पक्षिराज गरुड़ का उपहास कर सकता है, तो यह रद्दी पुस्तक भी भास मुनि का उपहास कर सकती है । लेख बढ़ जाने के कारण इसकी व्याकरण-सम्बन्धी अशुद्धियों की सूची हम यहाँ नहीं देते । यदि पुस्तक शुद्ध करने के अभिप्राय से पन्थजी पूछेंगे, तो हम अवश्य बता देंगे । जिन लोगों ने पन्थजी की यह पुस्तिका देखी हो, उनसे हम अनुरोध करते हैं कि वे भास मुनि का 'पञ्चरात्र' एक बार अवश्य देखें, और फिर अपनी राय क़ायम करें ।

भास की नक़ल आपने किस तरह की है, इस बात को हम कथा के आरम्भ—इसी अग्नि-काण्ड—के एक ही पन्ने (७-८ पृष्ठ) में से दिखावेंगे। पाठकगण यदि चाहें तो इतने से ही सन्तुष्ट हो जायँ, और चाहे इन दोनों पुस्तकों का आद्यन्त मिलान करके स्वयं देख लें। भास ने लिखा है—

"शकटी च घृतापूर्णा सिच्यमानाऽपि वारिणा ;
नारीवोपरता पत्या बालस्नेहेन दह्यते।"

श्रीपन्थजी लिखते हैं—

"सत्रसम्भारशकटी सिच्यमानाऽपि वारिणा ;
सतीव योषिद् विधवा भर्तृस्नेहेन दह्यते।" (पृ० ७, श्लोक२३)

यहाँ आपने पूर्वार्ध में 'शकटी, सिच्यमानापि वारिणा' ये शब्द ज्यों-के-त्यों उठाए हैं। केवल 'घृतापूर्णा' को बदलकर 'सत्रसम्भार' किया है। उत्तरार्ध में 'स्नेहेन दह्यते' फिर ज्यों-का-त्यों उड़ाया है। केवल 'नारी' के स्थान में उसका पर्याय 'योषित्' रख दिया है। परन्तु यहाँ 'योषित्' व्यर्थ हो गया। न तो पुरुष 'सती' होते हैं, न 'विधवा' ही। ये दोनों धर्म स्त्री-मात्र-गामी हैं। फिर इनके साथ 'योषित्' का क्या काम ?

साहित्यज्ञ लोग इन दोनों पद्यों का मिलान करके तारतम्य की परीक्षा करें। भास के पद्य में एक ओर 'शकटी' है, और दूसरी ओर मृतवत्सा नारी। एक घी से भरी है, और दूसरी (नारी) स्नेह से पूर्ण। एक (शकटी) में भौतिक आग लगी है, और दूसरी पुत्र-वियोग के दावानल से धधक रही है। एक ठंडे पानी से सींची जा रही है, और दूसरी को, पति अथवा सम्बन्धियों के द्वारा, फिर पुत्र-प्राप्ति की आशा दिलाकर सान्त्वना दी जा रही है; परन्तु न इसी की आग बुझती है, न उसी की। शकटी की आग न बुझने का कारण घी है, और नारी की दुःखाग्नि शान्त न होने का कारण स्नेह है। यज्ञ में यह शकटी इस तरह जल रही है, जैसे मृतवत्सा नारी हो।

अब पन्थजी का पद्य देखिए। आपने सन्तान की मृत्यु के स्थान में 'योषित्' को 'विधवा' करके जड़ ही साफ़ कर दी है। परन्तु इतना ज्ञान आपको कहाँ, जो यह समझ लें कि आपकी इस 'विधवा' के साथ 'सिच्यमानाऽपि वारिणा' व्यर्थ हुआ जाता है। मृतवत्सा को जैसे दूसरे पुत्र की आशा दिलाकर सान्त्वना दी जाती है, इसी प्रकार विधवा होने पर यदि कोई दूसरे पति की बात, भले आदमियों में, ज़बान पर लावे, तो निःसन्देह पीटा जाय। फिर 'सती' विधवा के साथ इस प्रकार का व्यवहार पन्थजी के सिवा और कौन करेगा ? सती के विधवा होने पर तो किसी सान्त्वना के वचन का अवकाश ही नहीं रह जाता। वहाँ 'सिच्यमानाऽपि वारिणा' का विषय ही नहीं है। सती को तो भौतिक अग्नि की भी आवश्यकता नहीं होती। उसे भस्म करने के लिये तो पति का अनिष्ट-श्रवण ही पर्याप्त है। अतः पन्थजी के परिवर्तन में एक अंश उपमान में न्यून रह जाता है। भास के यहाँ वह सर्वाङ्ग-पूर्ण है। आख़िर चोरी चोरी ही है !! 'स्वाभाविका-कृत्रिममन्यदेव'—परन्तु यहाँ आपकी 'पन्थ'-उपाधि सार्थक हो गई।

पानी से सींचे जाने पर भी जलते रहने का कारण 'घृतापूर्णत्व' है। भास के पद्य में वही सारे भाव की जान है। परन्तु पन्थजी ने चोरी करते समय यही तत्त्व का शब्द ('घृतापूर्णा') छोड़ दिया। रत्न छोड़कर कौड़ियों का ढेर उठा ले गए। कोई आपसे पूछे कि पानी से सींचे जाने पर भी यह 'शकटी' क्यों जली जा रही है ? क्या इसी प्रकार की भद्दी नक़ल और चोरी में आप भास मुनि-जैसे आदर्श, पूज्य पुरुषों का उपहास करेंगे ?

भास ने लिखा है—

"दह्यमानस्य वृक्षस्य सानिलेन मखाग्निना ;
कोटरान्तरदेहस्थाः खगाः प्राणा इवोद्गताः।"

यज्ञ की अग्नि से जलते हुए वृक्ष के कोटर में से घबराकर पक्षी उड़े। इस पर भास मुनि उत्प्रेक्षा करते हैं कि मानों शरीर के भीतर से वृक्ष के प्राण निकल भागे हों। 'प्राणपखेरू' का उड़ना प्रसिद्ध है। यहाँ पक्षियों (पखेरुओं) में प्राणों की उत्प्रेक्षा कितनी मार्मिक है, इस पर किसी टीका-टिप्पणी की आवश्यकता नहीं है।

अब पन्थजी की नक़ल देखिए—

"दह्यमानात्तरोः केचिद् बान्धवा इव पक्षिणः ;
शोचन्तः खेषु निर्यान्ति प्राणिनां गतिरीदशी।"

अर्थात् जलते हुए वृक्ष से कोई (?) पक्षी बान्धवों के सदृश आकाशों ('खेषु') में निकलते हैं। प्राणियों की गति ऐसी ही होती है।

सहृदय सज्जन स्वयं विचार लें कि यहाँ भास की उत्प्रेक्षा और पन्थजी की उपमा में क्या भेद है। आपका मतलब यह है कि जलते हुए बान्धव को छोड़कर सब बान्धव इसी प्रकार चलते बनते हैं। हम तो समझते हैं कि ऐसे बान्धवों को धिक्कार है, जो अपने बान्धव को विपत्ति में पड़ा छोड़कर चलते बनते हैं। यहाँ मरने की या मुर्दा जलाने की तो कोई बात पन्थजी के किसी शब्द से प्रकट नहीं होती। फिर 'तरु' अभी दग्ध भी नहीं हुआ, 'दह्यमान' है। ऐसी दशा में 'बान्धवों' को छोड़कर चल देना नीचता नहीं, तो और क्या है? पन्थजी के सिवा ऐसे बान्धवों की उपमा और कौन देगा? वस्तुतः यहाँ पक्षियों को 'बान्धव' बताना ही ग्राम्यत्व का सूचक है। पन्थजी की आँखों में उँगली डालकर यह कौन बतावे कि पेड़ में आग लगने पर कोई ('केचित्') पक्षी नहीं उड़ा करते, बल्कि सब उड़ जाते हैं। आपके 'खेपु' को तो देखिए। पन्थजी महाराज, अब फिर से तर्कसंग्रह पढ़िए। तब आपको मालूम होगा कि आकाश एक और व्यापक पदार्थ है। 'अशुद्धि-पत्र' में आपने कहीं२ अशुद्ध को और अशुद्ध कर दिया है। उसमें इस 'खेपु' की जगह 'इव' बनाया है; परन्तु 'शोचन्तः' के विसर्ग को नहीं हटाया। पहले तो व्याकरण के अनुसार 'शोचन्तः इव' रह नहीं सकता, दूसरे इस वाक्य में 'इव' पहले से ही 'बान्धवा इव' में मौजूद है। अब यह दूसरा 'इव' किस मर्ज़ की दवा है?

भास ने लिखा है—

"बल्मीकमूलाद् दहनेन भीता-
स्तटोत्करैः पञ्च समं भुजङ्गाः ;
समं विपन्नस्य नरस्य देहाद्
विनिःसृताः पञ्च यथेन्द्रियाणि।"

अर्थात् बल्मीक (बाँबी) के किनारों से एकसाथ पाँच साँप अग्नि से डरकर निकले। मानों मरे हुए आदमी के शरीर से एकसाथ निकली हुई पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ हों। यहाँ बाँबी का ढेर मुर्दे की तरह है, और उसके किनारों पर बने हुए बिल आँख, नाक, कान आदि के छेदों के समान हैं। इनमें रहनेवाली तेजोमय ज्ञानेन्द्रियों से चमकते हुए साँपों की तुलना की गई है।

अब इसी बात को श्रीपन्थजी के मुखारविन्द से सुनिए—

"बिलेभ्यो बहिरायान्ति दग्धशाखस्य शाखिनः ;
शाखाः पुनरिवाहर्तुं पञ्चशीर्षा इवोरगाः। ३२।"

पाठकगण, इसका अर्थ ज़रा ध्यान से सुनिए। 'दग्धशाखस्य'=जिसकी शाखाएँ जल चुकी हैं (उस) 'शाखिनः'=वृक्ष के 'बिलेभ्यः'=बिलों से 'बहिरायान्ति'=बाहर आते हैं "शाखाः पुनरिवाहर्तुम्"=मानों फिर शाखाएँ लाने के लिये 'पञ्चशीर्षा इवोरगाः"=पाँच सिर के साँपों की तरह।

सहृदयगण, यदि आप न समझे हों, तो फिर एक बार पढ़ जाइए, और खूब ध्यान से देखिए कि हमने अर्थ करने में पन्थजी का कोई शब्द छोड़ तो नहीं दिया। आप श्लोक को खूब समझने के बाद हमें बताइए कि 'पाँच सिरवाले साँपों की तरह, शाखाएँ लाने के लिये, जले हुए वृक्ष के बिलों में से', ये कौन बाहर आ रहे हैं? क्या इस श्लोक में कर्ता का कहीं पता है? क्या इस पद्य का कुछ अर्थ हो सकता है? यह कविता है, या बावले की बड़? भास ने "पञ्चसमं भुजङ्गाः" लिखा था। उसकी नक़ल करते हुए आपने 'पञ्चशीर्षा इवोरगाः' यह वाल्मीकीय रामायण का टुकड़ा ज्यों-का-त्यों चुराकर चिपका दिया। परन्तु यह आपको नहीं सूझा कि यहाँ 'इव' ने 'सब गुड़ गोबर' कर दिया। यह बात गाँव के गँवार भी जानते हैं कि 'बिल' पृथ्वी में हुआ करते हैं; परन्तु पन्थजी वृक्षों में बिल बनाते हैं। शायद अमरकोप के भरोसे आप कविता करने बैठे हैं।

'पुनः शाखाः आहर्तुमिव' इस उत्प्रेक्षा का अवलम्ब क्या है? वह कौन-सी बात है, जिसे देखकर आपने यह समझा है कि शाखाओं को फिर से वापस लावेंगे? हाँ, यह तो बताइए कि पाँच सिर के साँपों की उपमा आपने किसे दी है? ये शेष-नाग के नाती-पोते क्यों इकट्ठे किए हैं? भास ने तो पाँच इन्द्रियों से पाँच साँपों की समता दिखाई है, परन्तु आपके ये पाँच सिर किससे जोड़े जायँगे?

नदी के किनारे एक ढाक का पेड़ है। उसकी एक शाखा पानी की ओर झुकी हुई है। उस शाखा का एक पत्ता पानी के ऊपर वायु से चञ्चल हो रहा है। इस पर भास मुनि उत्प्रेक्षा करते हैं—

"अवनतविटपो नदीपलाशः
पवनवशाच्चलितैकपर्णहस्तः ;
दववहनविपन्नजीविताना—
मुदकमिवैष करोति बान्धवानाम् ।"

पाठकगण, इसके शब्दों और अर्थ की ओर ध्यान-पूर्वक दृष्टि दीजिए। देखिए, कैसा सुन्दर चित्र खींचा है। भास मुनि कहते हैं कि यह शाखा नहीं, बल्कि अपनी इच्छा से पानी की ओर झुके हुए इस पेड़ की बाहु है, और यह पत्ता नहीं बल्कि इसका हाथ है। पानी के ऊपर, वायु लगने से जो पत्ता हिल रहा है, सो मानो यह वृक्ष अपने जले हुए कुटुम्बियों का जल-दान कर रहा है। इस उत्कृष्ट कल्पना पर टिप्पणी व्यर्थ है। अब ज़रा पन्थजी का भी जल-दान देख लीजिए—

"तरुर्विगतबान्धवो निपततां दलानामयं
बहिर्निपततस्तनोर्मदविकारनामाम्भसः ;
छलेन च रुदन् यथा विदधदम्बुदानक्रियां
विभाति न सचेतनाः कथमिमे तरूणां गणाः ।"

भास मुनि की कविता में इतना प्रसाद-गुण होता है कि वह सुनते ही हृदयङ्गम हो जाती है ; परन्तु पन्थजी के श्लोकों को देखने से मालूम होता है, मानो कबड़िए की दूकान में बेमेल चीज़ें एक जगह ठूस दी हों। जब तक शब्दों को इधर-उधर करके ज़बर्दस्ती जोड़ा न जाय, तब तक वे किसी मतलब के नहीं। फिर आप छोटे-से-छोटा पद्य भी विना व्यर्थ शब्द ठूसे पूरा नहीं कर सकते। इस पद्य की भी वही दुर्दशा है। पेड़ों में से टपकनेवाले पानी को 'मद' कहते हैं। आपने उसके लिये एक ढाई मील लम्बा व्यर्थ शब्द बनाया "मदविकारनामाम्भसः"। इसमें 'विकार' और 'नाम' तो एकदम ग्राम्यत्व के सूचक हैं। 'यथा'-शब्द का किसी से सम्बन्ध ही नहीं बनता। फिर यह दूसरा चरण 'व्रीडाव्यञ्जक अश्लील' है। 'शरीर में से टपकता हुआ मद के विकार का पानी' क्या हुआ करता है, इस बात को पन्थजी ज़रा अपनी आँखें बन्द करके सोचें तो सही। वृक्षों के लिये 'तनु'-शब्द का प्रयोग करना भी अज्ञान का सूचक है। पहले चरण में जो 'निपतताम् दलानाम्' है, उसका सम्बन्ध तीसरे चरण में जाकर 'छलेन' के साथ है। मतलब यह कि 'विगत-बान्धव तरु' गिरते हुए पत्तों और मद के बहाने रोता हुआ ('निपततां दलानां, तनोर्बहिर्निपततः मदविकारनामाम्भसश्चच्छलेन रुदन्') जल-दान करता हुआ मालूम होता है ('अम्बुदानक्रियां विदधद् विभाति')। इसके आगे आप फ़र्माते हैं कि—'इमे तरूणां गणाः सचेतनाः कथं न ?' अर्थात् ये वृक्षगण चेतन कैसे नहीं हैं ? आपका मतलब यह है कि जब मरे हुए बान्धवों को रोते और उनका जल-दान करते हैं, तो चेतन क्यों नहीं ? परन्तु पन्थजी महाराज, यह बेचारा श्लोक तो आप ही की जान को रो रहा है। इसे तो आपने जल-दान के योग्य ही न छोड़ा। गिरते हुए पत्तों और टपकते हुए मद को तो आपने 'छलेन रुदन्' से आँसू बताया है, और कुछ सामग्री है नहीं, तब यह जल-दान (अम्बुदान-क्रिया) काहे से करेगा ? भास के सदृश न तो आपके यहाँ कहीं नदी का नाम-निशान है, न बाहु और हाथ का कोई ज़िक्र। न भास की तरह आपके यहाँ कोई ऐसी विशेष-क्रिया है, जिससे जल-दान सूचित हो। है तो सिर्फ़ रोना-ही-रोना—जो एक प्रकार से धर्मशास्त्र में निषिद्ध है। फिर यह जल-दान का रूपक आप किसके बल पर खड़ा करने चले हैं ? लम्बाई में तो आपने भास से दूना श्लोक कर दिया ; पर व्यर्थ शब्दों से उसे लाद दिया। मतलब की एक बात भी न कह सके। उस पर निर्लज्जता यह कि "समस्त संसार के विद्वानों को चैलेंज देकर भास मुनि का उपहास करने पर तुले हुए हैं।" यदि यों ही पूज्य, आदर्श पुरुषों का उपहास हो जाया करे, तब तो—

"लीलालुण्ठितशारदापुरमहासम्पन्नराणां पुरो
विद्यासद्मविनिर्गलत्कणमुषो वल्गन्ति चेत्पामराः ;
अद्यश्वः फणिनां शकुन्तशिशवो दन्तावलानां वृकाः
सिंहानां च सुखेन मूर्धसु पदं धास्यन्ति शालावृकाः ।"

अन्त में हम श्रीयुक्त पन्थजी से सादर सविनय सबहुमान प्रार्थना करते हैं कि वह अपने टाइटिल-पेज के इस पद्य को फिर से पढ़ लें—

"साधुत्वे साधुवादो वाऽसाधुत्वे साधुशासनम् ;
श्रमापनुत्तये कर्तुः कृत्येऽलंकीर्तिशालिनाम् ।"

शालग्राम शास्त्री (साहित्याचार्य)

समुद्री बीमा

(भाग २, संख्या ४ से आगे)

(२)

लॉयड्स का इक़रारनामा बीमा-संसार में बड़ा व्यापक है। उससे बीमा इक़रारनामा-संबंधी सभी शर्तों का ज्ञान अच्छी तरह हो जाता है। आजकल लॉयड्स का इक़रारनामा प्रामाणिक माना जाता है, और सब समितियाँ थोड़ा-बहुत उसका अनुकरण करती हैं। लॉयड्स-संघ तथा उसके सदस्यों के अलावा अन्यान्य समितियाँ भी, जिनके संचालक लॉयड्स-संघ के सदस्य नहीं हैं, अपने संगठन की परिस्थिति के अनुसार लॉयड्स के इक़रारनामे को घटा-बढ़ाकर अपने निज का इक़रारनामा तैयार करती हैं। भारत के एक परतंत्र देश होने के कारण उसका जहाज़ी बेड़ा और बीमा-समितियाँ होना दुर्लभ है। जिन लोगों ने थोड़ी-बहुत इस ओर चेष्टा की है, वे विपत्ति में फँसे हुए हैं। अभी ये बातें भारतवर्ष के लिये कठिन हैं। इस श्रेणी के व्यापार का अधिकार तो भारत को उस समय प्राप्त होगा, जब वह स्व-शासित देश होगा। जब तक भारतवासियों को आर्थिक स्वाधीनता, सेनाधिकार और विदेशों में समानता का पद नहीं प्राप्त होता, तब तक इन व्यवसायों पर विदेशियों का अधिकार होना स्वाभाविक है। परंतु समय परिवर्तनशील है। भारतीय अपने जन्म-सिद्ध अधिकार किसी-न-किसी प्रकार प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं, और व्यापारिक क्षेत्र में स्वातंत्र्य प्राप्त करने के लिये दिन-पर-दिन उनका क़दम आगे बढ़ रहा है। व्यापारिक स्वत्व प्राप्त होने पर ही देश स्वतंत्र हो सकता है। बिना आर्थिक स्वाधीनता के देश की सच्ची स्वाधीनता कोसों दूर है। भारत का अंतरराष्ट्रीय व्यापार उसके स्व-शासित होने पर ही, लाभ के साथ सब देशों के साथ होगा, और उस समय उसका जहाज़ी बेड़ा और समुद्री बीमा-समितियाँ उसी प्रकार विभिन्न देशों के साथ व्यवसाय करने के लिये संगठित होंगी, जिस प्रकार आज अँगरेज़ी समितियाँ इस व्यवसाय को चला रही हैं।

अब हम पुनः अपने मुख्य विषय पर आने के लिये लॉयड्स-इक़रारनामे की शर्तों पर विस्तृत रूप से विचार करेंगे। उसके प्रत्येक जुमले पर विचार करना उपयुक्त होगा। लॉयड्स के इक़रारनामे में मुख्य वाक्य निम्न-लिखित हैं—

१—बीमा करानेवाले एक व्यक्ति का तथा एक से अधिक व्यक्तियों का नाम।

२—'खोया या न खोया' शब्द।

३—प्रवास का विवरण और जोखिम की अवधि।

४—जहाज़ और उसके स्वामी का नाम।

५—रोकने तथा ठहरने की स्वाधीनता और 'गुमराह' का शब्द।

६—मूल्य का फ़िक़रा।

७—ख़तरा या जोखिम—जिसका बीमा कराया गया है—की तफ़सील।

८—नालिश और मेहनताने का फ़िक़रा।

९—संबंध-विच्छेद का फ़िक़रा।

१०—बीमे का चंदा और दर का फ़िक़रा।

११—याददाश्त (बयान)।

१२—बीमा करनेवालों के हस्ताक्षर, और उनमें से प्रत्येक की जोखिम के प्रति ज़िम्मेदारी।

ये हैं मुख्य बातें, जिनका जानना प्रत्येक व्यापारी के लिये अत्यंत आवश्यक है। अब हम इन्हीं जुमलों पर अलग अलग विचार करेंगे।

१—एक व्यक्ति तथा एक से अधिक व्यक्तियों का फ़िक़रा। इस फ़िक़रे में यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि वे सब व्यक्ति, जो इक़रारनामा करने के योग्य हैं, बीमे के इक़रारनामे के फ़िक़रे में शुमार किए जा सकते हैं। इस फ़िक़रे में "सबके वास्ते, और सबों के नाम, और दूसरे प्रत्येक व्यक्ति, एक या एक से अधिक" का भी उल्लेख है; जो ऐसे प्रत्येक व्यक्ति की रक्षा करता है, जिसका बीमे से, उसके ख़तम होने पर या उसके जारी रहने के समय में, संबंध है।

२—खोया या न खोया शब्द। यह शब्द बीमा करानेवाले को उस माल के नुक़सान से बचाता है, यदि वह सच्चे विश्वास से उसका बीमा कराता है, जो जहाज़ पर है, और वह विदेशी बंदरगाह से चल दिया है, और बीमा कराते समय उसे अपने माल के नष्ट हो जाने का कुछ भी ज्ञान नहीं है। बीमा करानेवाला इस स्थिति में निर्दोष है, और समिति से हानि-पूर्ति कराने का अधिकार रखता है। यह शब्द सब इक़रारनामों में होता है, यद्यपि वह हर समय लागू नहीं होता; क्योंकि कई एक विद्वान् लेखकों की राय है कि इस प्रकार के नुक़सान की पूर्ति करना अनुचित है, और वह नए इक़रारनामे में शामिल न होना चाहिए। परंतु साख क़ायम रखने के लिये अँगरेज़ी बीमा-समितियाँ ही नहीं, अन्यान्य विदेशी समितियाँ भी अपने इक़रारनामों में इस शब्द को रखती और इसका उपयोग संगठन के अनुसार थोड़ा-बहुत करती हैं। यदि बीमा करानेवाले को माल नष्ट हो जाने की ख़बर है, और वह यदि उसे छिपाकर अनुचित लाभ उठाने की ग़रज़ से बीमा कराता है, तो इस प्रकार का इक़रारनामा तुरंत रद हो जाता है। उसी तरह यदि बीमा करनेवाले महाजन तथा बीमा-समिति को यह मालूम है कि अब जहाज़ बिना किसी विघ्न के प्रवास समाप्त कर चुका है, अब किसी जोखिम की आशंका नहीं है, और तब भी वह महाजन या समिति बीमा करे, तो उसे बीमे का चंदा वापस करना होगा।

३—प्रवास का विवरण और जोखिम की अवधि। यह फ़िक़रा "........से........तक" होता है। दोनों के बीच का स्थान बंदरगाहों का नाम लिखने के लिये ख़ाली रहता है। इस फ़िक़रे में प्रवास का संपूर्ण विवरण लिखा जाता है, और जोखिम उस स्थान से शुरू होती है, जहाँ से बीमा कराया जाता है, और वहाँ ख़तम होती है, जहाँ जहाज़ का प्रवास समाप्त होता है, या जहाँ तक के लिये बीमा कराया गया है। इस फ़िक़रे में एक बात और विचारने की है, और उसका यहाँ पर उल्लेख कर देना ज़रूरी होगा। वह यह है कि यदि बीमा हो गया है और जहाज़ ने यात्रा शुरू नहीं की, या बीमा पहले से हो गया और माल लदा नहीं, और उसका बीमा प्रवास प्रारंभ होने पर है, किंतु इसी बीच में माल नष्ट हो जाय, तो बीमा करानेवाले को क्या करना चाहिए? ऐसे मौक़ों में बड़ी कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। किंतु निर्दोष व्यवसाय-संचालन के उद्देश्य से यदि बीमा हो गया है, और जहाज़ रवाना नहीं हुआ, तो ऐसे मौक़े के लिये दोनों ओर के लोगों में पहले से किसी प्रकार का अहदनामा हो जाता है; जिसके अनुसार प्रवास के पूर्व माल नष्ट हो जाने पर दोनों में से एक फ़रीक़ अहदनामे के अनुसार ज़िम्मेदार होता है। सुव्यवस्थित व्यव-

साय-संचालन के लिये इसमें और भी नया सुधार हो गया है, और अब "......से......तक" के स्थान पर इन दोनों अक्षरों के साथ-साथ "जहाज़ के प्रवास प्रारंभ होने के स्थान से समाप्त होनेवाले स्थान तक की जोखिम" भी लिखा जाता है। इससे, माल चाहे जहाज़ पर चढ़ाया जाय या न चढ़ाया जाय, बीमा करानेवाला संरक्षित रहता है, या उस बीच में अगर नुक़्सान हो जाय, तो भी बीमा करानेवाला इस शर्त के द्वारा संरक्षित रहता है। कोई-कोई बीमा-समितियाँ तो इस शर्त में और भी आगे बढ़ गई हैं। वे इस फ़िक़रे में यहाँ तक स्पष्ट लिखती हैं कि "यह जोखिम प्रवास प्रारंभ होने के बंदरगाह के गोदाम से प्रवास समाप्त होने के बंदरगाह के गोदाम तक" है, जब तक कि उसका मालिक या उसका प्रतिनिधि उस माल को न छुड़ा ले।

४—जहाज़ और उसके स्वामी का नाम। इस फ़िक़रे में प्रवास के जहाज़ और उसके स्वामी का (जिसने प्रवास का बीमा किया है) नाम लिखा जाता है।

५—जहाज़ के रोकने तथा ठहरने की स्वाधीनता और गुमराह का फ़िक़रा। इस फ़िक़रे में प्रायः इस प्रकार लिखा जाता है—"यह नियम लागू होगा कि उक्त प्रवास का जहाज़ इस प्रवास में विना किसी पाबंदी के आगे बढ़ सकता है, प्रवास कर सकता है, और किसी स्थान पर या बंदरगाह पर रुक या ठहर सकता है।" बीच का स्थान जो ख़ाली होता है, उसमें बंदरगाहों का नाम लिखा जाता है; जहाँ पर उसे रुकने और ठहरने की स्वाधीनता है। इन बंदरगाहों का उल्लेख फिर भी इस कारण किया जाता है कि जहाज़ कहीं गुमराह (स्थानांतरित) न हो जाय, अर्थात् दूसरा रास्ता न पकड़ ले। यदि जहाज़ किसी विशेष कारण से गुमराह हो जाय, तो वह क्षंतव्य है। यदि प्रवास को चले हुए जहाज़ के लिये गुमराह होने के पक्ष में शर्त है, तो फिर कोई हर्ज नहीं। और, यदि यह शर्त न हो, तो उस समय यह मानी हुई बात है कि जहाज़ का दूसरा मार्ग ग्रहण करना उसका गुमराह होना समझा जायगा। पर इस शर्त के न होने पर जहाज़ कभी गुमराह न होगा। जब जहाज़ अपने प्रवास के निश्चित मार्ग को त्यागकर दूसरा मार्ग ग्रहण करता है, जो गुमराह की शर्त न होने पर नियम-विरुद्ध है, तब जोखिम में तुरंत परिवर्तन हो जाता है, और उस समय जहाज़ का गुमराह होना समझा जाता है। यदि जहाज़ प्रवास का प्रारंभ न करे, या ठीक समय पर अपने स्थान पर न पहुँचे, तो भी वह गुमराह समझा जाता है। किसी भी प्रकार की अनुचित और अनियमित देर (चाहे प्रवास के प्रारंभ की हो या बीच की) के द्वारा नुक़्सान होने पर बीमा-समिति हानि-पूर्ति की ज़िम्मेदार होती है। निम्न-लिखित कारण उपस्थित होने पर जहाज़ का गुमराह होना क्षंतव्य है—

क—यदि बीमे के इक़रारनामे में ख़ास तौर पर गुमराह की शर्त का उल्लेख है।

ख—यदि नैतिक या भौतिक, दोनों में से किसी शक्ति के प्रयोग की आवश्यकता है।

ग—ऐसी आकस्मिक आवश्यकता, जिसका पूरा करना लाज़िमी है।

घ—किसी प्राणी की रक्षा के लिये देर होने पर।

ङ—जहाज़ के किसी व्यक्ति के लिये औषध-संबंधी सहायता प्राप्त करने के लिये देर होने पर।

च—राज्य के शत्रुओं से बचने के अवसर पर, या राज्य के शत्रुओं और समुद्री चोर-डाकुओं से आत्म-रक्षा करने के अवसर पर।

छ—मौसिम ख़राब होने पर।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जहाज़ के कप्तान को बलवाई लोग या हवा की ख़राबी दूसरा मार्ग ग्रहण करने के लिये बाध्य करती है। ऐसी दशा में जहाज़ का गुमराह होना क्षमा के योग्य है।

६—मूल्य का फ़िक़रा। इस फ़िक़रे में, जब इक़रारनामा मूल्य का होता है, माल के उस मूल्य का उल्लेख होता है, जो मूल्य दोनों फ़रीक़ों की रज़ामंदी पर स्वीकृत होता है। यदि बीमे का इक़रारनामा मूल्य का नहीं है, और खुला या कोरा इक़रारनामा है, तो यही लिखा जाता है कि "इसका मूल्य............निर्धारित होगा।" कोरा या खुला बीमा होने पर उस समय मूल्य निर्धारित किया जाता है, जब कि माल नष्ट हो जाय, और बीमा करानेवाला अपने माल का मूल्य निर्धारित कर नष्ट हुए माल का मूल्य माँगता हो। यदि मूल्य दोनों में से किसी प्रकार के इक़रारनामे में उचित से अधिक लगाया जाय, और बीमा करनेवाले को धोका देकर ठगने की इच्छा से बीमा किया जाय, तो इस प्रकार का इक़रारनामा रद समझा जायगा। मूल्य निर्धारित करने के प्रति इस नियम का उपयोग होता है कि नुक़्सान पूरा हुआ है या अधूरा। उसके निर्धारित करने के समय माल की पहली क़ीमत, ख़र्च, बीमे का चंदा और कमीशन ही केवल न जोड़ा जायगा, बल्कि उचित मुनाफ़ा भी। और, खुले या कोरे इक़रारनामे में बीजक की क़ीमत और ख़र्च जोड़कर मूल्य निर्धारित होगा। किराए के विषय में वह वास्तविक किराया ही लौटाया जायगा, जिसे चंदे के साथ बीमा-समिति प्राप्त करती है।

७—समुद्र का ख़तरा या जोख़िम (जिसका बीमा हुआ है) की तफ़सील का फ़िक़रा। इस फ़िक़रे में ख़तरा तथा जोख़िम का विस्तारपूर्वक स्पष्ट वर्णन होता है; जिसके द्वारा बीमा करानेवाले की रक्षा की जाती है। लॉयड्स के इक़रारनामे का फ़िक़रा समुद्र के सब ख़तरों की जोख़िम लेता है। उसके इक़रारनामे के फ़िक़रे में स्पष्ट रूप से समुद्र के ख़तरे, युद्ध के आदमियों का ख़तरा, अग्नि से नुक़्सान, चोर तथा डाकुओं से नुक़्सान, राज्य के शत्रुओं द्वारा जहाज़ के पकड़े जाने पर नुक़्सान तथा अन्य सब प्रकार के नुक़्सानों का पूर्ण उल्लेख होता है। लॉयड्स-संघ उन सबकी पूर्ण ज़िम्मेदारी लेता है। यहाँ पर समुद्र के ख़तरों से तात्पर्य आकस्मिक ख़तरों से है, न कि साधारण वायु के वेग तथा साधारण लहरों से। ख़तरे के लिये तो कोई आकस्मिक घटना होनी चाहिए। जहाज़ का समुद्र में डूब जाना और समुद्र के तत्त्वों द्वारा प्रहार होना आकस्मिक घटनाएँ हैं। अग्नि लगने पर उसके नुक़्सान की पूर्ति उस दशा में की जायगी, जब उसका बीमा विशेष रूप से अग्नि लगने की जोख़िम का उल्लेख कर कराया गया है। इसलिये बीमा करानेवाले को सभी ख़तरों का अलग-अलग बीमा कराना चाहिए; क्योंकि "समुद्र के ख़तरे" से ही सब तरह के नुक़्सानों की पूर्ति नहीं होती। "समुद्र का ख़तरा"- वाक्य के द्वारा क़ानूनी दृष्टि से बहुत कम संरक्षण है। जहाज़ में सूराख़ वग़ैरह होने की अवस्था में उसके अंदर पानी आ जाने तथा उसके द्वारा माल नष्ट

हो जाने से तब बीमा-समिति ऐसे नुक़्सान की-पूर्ति नहीं करेगी, जब सूराख़ वग़ैरह किसी ज़ोरदार टक्कर से हुआ हो ; क्योंकि इस प्रकार सूराख़ वग़ैरह होना जहाज़ के लिये एक मामूली-सी बात है। इस कारण जोखिम के लिये प्रत्येक विषय का उल्लेख होना आवश्यक है। समुद्र के ख़तरे में एक जहाज़ का दूसरे जहाज़ से टकराना, चट्टान से टक्कर खाना (उस समय चाहे तूफ़ान हो या अच्छा मौसिम हो) और किसी प्रकार के प्रहार से सूराख़ों के द्वारा पानी का आना शुमार किया जाता है; पर फिर भी बीमा कराते समय जोखिमों का अलग-अलग विवरण होना लाभ-दायक है।

८—नालिश और मेहनताने का फ़िक़रा। बीमा करानेवाले व्यक्ति को, उसके प्रतिनिधि या कर्मचारी को, या जिसके सिपुर्द माल किया जाय, उस व्यक्ति को यह क़ानूनी अधिकार है कि प्रवास में किसी प्रकार का नुक़्सान होने या आफ़त आने पर अपने माल की रक्षा करे, और उस कार्य में जो कुछ व्यय हो, उसे समिति से वसूल करे। उसे समिति से इस धन को वसूल करने का पूर्ण अधिकार है। बीमा करनेवाले महाजन तथा बीमा-समितियाँ अपने बीमे के अंश के अनुसार इस नुक़्सान को आपस में बाँटकर अदा करती हैं। इस आकस्मिक विघ्न से रक्षा बीमे के इक़रारनामे से प्रायः जुदा है, पर व्यवहार में अब यह फ़िक़रा भी इक़रारनामे में आ गया है। वर्तमान समय में तार तथा बेतार के तार द्वारा माल के मालिक को अपने माल की ख़बर हर समय मिलती रहती है, और कोई ऐसी बुरी घटना उपस्थित होने पर समिति की कार्यवाही के पूर्व ही वह अपने माल को बचाने की चेष्टा करता है।

९—संबंध-विच्छेद का फ़िक़रा। यह फ़िक़रा ऊपर के फ़िक़रे से ही संबंध रखता है ; क्योंकि यह स्पष्ट प्रकट करता है कि बीमा करानेवाला और बीमा करनेवाला, दोनों में से किसी की कोई भी कार्यवाही बीमा किए हुए माल के प्रा[प्त] करने या उसकी हिफ़ाज़त करने के प्रति संबंध विच्छेद करनेवाली नहीं समझी जायगी। य[ह] फ़िक़रा लॉयड्स के सब इक़रारनामों में त[था] अन्यान्य बीमा-समितियों के इक़रारनामों में प्रधा[न] रूप से होता है।

१०—बीमे का चंदा और दर का फ़िक़रा। इ[स] फ़िक़रे में चंदे की प्राप्ति-स्वीकार और उसके लेने-देने का उल्लेख किया जाता है। बीमे का चंदा क्या है? वह तो एक बदला है; जिसे बीमा करानेवाला बीमा करनेवाले को इक़रारनामे की शर्त के अनु[सार] माल की हानि-पूर्ति की जोखिम पर देता है। लॉयड्स के इक़रारनामे में, इस फ़िक़रे में, य[ह] स्पष्ट लिखा होता है कि चंदा जमा कर दि[या] गया है ; जिससे विदित होता है कि बीमा हो[ते] समय चंदा पहले से जमा कर दिया गया है। परं[तु] व्यवहार में, इँगलैंड-जैसे देशों में, बीमा होते सम[य] वहाँ के दलाल चंदा समिति को नहीं देते। दला[ल] पीछे से चंदा जमा किया करते हैं। भारत में भ[ी] यदि दलाल द्वारा बीमा-समिति से बीमा कराय[ा] जाय, तो दलाल बीमा होते समय समिति [को] चंदा नहीं देते। समिति, बीमा होने पर, पू[रे] चंदे की रसीद बीमा करानेवाले को देती है और यदि उसे दलाल से चंदे का रुपय[ा] न प्राप्त हो, तो वह बीमा करानेवाले से कु[छ] नहीं कह सकती। बीमा समिति उस हालत [में] चंदा रखती है, जब जोखिम शुरू होनेवाली है; अन्यथा चंदा लौटा दिया जाता है। यदि स[ब] जोखिम पूरी न हो, प्रारंभ होकर कहीं बीच [में]

रुक गई हो, तो किसी अंश में भी बीमा-समिति से चंदा लौटाने को नहीं कहा जा सकता। उस हालत में भी चंदा नहीं लौटाया जा सकता, जब जहाज़ बंदर पर नाव लेते समय नष्ट हो गया हो। यदि गुमराही का अनुचित दोष लगाकर इक़रारनामा रद कर दिया गया हो, तो भी चंदा नहीं लौटाया जा सकता। यदि बीमा-समिति अनुचित व्यवहार द्वारा इक़रारनामे को रद कर दे, तो बीमा करानेवाले को चंदे का रुपया वापस मिलेगा। यदि बीमा करानेवाले से कोई बात विना जाने प्रकट करने से रह गई हो, और उससे बीमा रद हो गया हो, तो बीमा करानेवाला अपना चंदा वापस ले सकता है। कोरे इक़रारनामे में जब ख़तरों के लिये माल के मूल्य से, उचित चंदे से, अधिक चंदा लिया जाता है, तब अधिक चंदा लौटा दिया जाता है; पर वह उस समय नहीं लौटाया जाता, जब मूल्य के इक़रारनामे में वस्तु का मूल्य अधिक निर्धारित किया जाता है। जब इक़रारनामे की जोखिम एक बार शुरू हो जाती है, तब भी चंदा नहीं लौटाया जा सकता।

११—याददाश्त (बयान)। यह फ़िक़रा विशेष सूचना के रूप में होता है। माल के विषय में बीमा-समिति की कई हिदायतें होती हैं। वे सब इस स्थान पर सूचित की जाती हैं। यह ध्यान में रखने की बात है कि यह फ़िक़रा सभी इक़रारनामों में होता है, और दोनों पक्षों में तय हुई बीमा-संबंधी शर्तों का बयान करता है। नाज, मछली, फल, आटे और बीज इत्यादि पर हानि-पूर्ति की औसत से मुक्त होने की ज़िम्मेदारी दी जाती है, सिवा इसके कि इसका ख़ास तौर पर उल्लेख हो, या जहाज़ नष्ट हो गया हो।

शक्कर, तमाखू, शहद, चमड़े इत्यादि पर ५) पौंड औसत से मुक्त होने की ज़िम्मेदारी होती है, सिवा इसके कि ले जानेवाला जहाज़ नष्ट हो गया हो।

क—नाज, फल, आटा, बीज, मछली इत्यादि वस्तुएँ, जो विगड़ या नष्ट हो जानेवाली प्रकृति की हैं, उनके लिये बीमा करनेवाला ख़ास औसत या जहाज़ के नष्ट हो जाने पर ही हानि-पूर्ति करने का ज़िम्मेदार होगा।

ख—जो वस्तुएँ कम बिगड़ने या नष्ट होनेवाली प्रकृति की हैं, जैसे शक्कर, तमाखू, शहद, कपड़ा इत्यादि, उनके लिये तब बीमा करनेवाला नुक़्सान की पूर्ति करने का ज़िम्मेदार होगा, जब नुक़्सान ५) प्रति सैकड़ा उनके मूल्य पर हो।

ग—दूसरी सब प्रकार की वस्तुओं के लिये जहाज़ और किराए के सहित बीमा करनेवाला उस हालत में हानि-पूर्ति करेगा, जब नुक़्सान ३) सैकड़े से अधिक हुआ हो, या कोई ख़ास औसत निर्धारित हो। तब बीमा करनेवाला पूरे नुक़्सान की पूर्ति करेगा, फिर चाहे वह नुक़्सान कितना ही थोड़ा क्यों न हो।

१२—बीमा करनेवालों के हस्ताक्षर और उनमें से प्रत्येक की ज़िम्मेदारी। ऊपर जिन शर्तों का वर्णन किया गया है, वे सब इस फ़िक़रे में आ जाती हैं। इस फ़िक़रे में विशेष औसत और दोनों पक्षों की ज़िम्मेदारियों का विस्तृत वर्णन होता है, सब प्रकार की सूचनाएँ दी जाती हैं, और प्रत्येक पक्ष अपनी जोखिम का स्पष्ट शब्दों में वर्णन कर इक़रारनामे को पूरा करता है।

इस प्रकार सब फ़िक़रे भर जाने पर दोनों पक्ष अपनी-अपनी ज़िम्मेदारियों के नीचे हस्ताक्षर करते हैं।

जी० एस्० पथिक

दीप-मालिका

आतुर न होहु ऊधौ, आवति दिवारी अबै ,
वैसियै पुरंदर-कृपा जो लहि जाइगी ;
होत नर ब्रह्म ब्रह्म-ज्ञान सौं बतावत जो ,
कछु इहिं नीति की प्रतीति गहि जाइगी ।
गिरिवर धारि जौ उबारि ब्रज लीन्ह्यौ बलि,
तौ तौ भाँति काहू यह बात रहि जाइगी ;
नातरु हमारी भारी बिरह-बलाय-संग
सारी ब्रह्म-ज्ञानता तिहारी बहि जाइगी ।
आवत दिवारी, बिलखाइ ब्रजवारी कहैं,
अब कैं हमारैं गाम गो-धन पुजैहै को ?
कहै 'रतनाकर' बिबिध पकवान चाहि,
चाह सौं सराहि चख चंचल चलैहै को ?
बिबिध निहोरि, जोरि हाथ, निज साथ लाइ,
दमकति दिव्य दीप-मालिका दिखैहै को ?
कूबरी के कूबर तैं उबरि न पावैं कान्ह,
इंद्र-कोप-लोपक गुबर्द्धन उठैहै को ?

जगन्नाथदास (रत्नाकर)

जन-सत्ता-वादी राज्यों में समाचार-पत्र

The histories of United States of America and Newzealand present good examples of the progress of Democracies.

बड़े देशों में जन-सत्ता का होना समाचार-पत्रों पर निर्भर है। प्राचीन राजनीतिक विचारक कहा करते थे कि आत्म-शासन करनेवाले नागरिकों का समाज उतना ही बड़ा हो सकता है, जहाँ तक एक मनुष्य की वाणी पहुँच सकती है। कारण, वाणी ही के द्वारा वाद-विवाद हो सकता है। परंतु इस कथन में यदि वे इतना और बढ़ा देते, तो अनुचित न होता कि जहाँ अधिकतर लोग एक-दूसरे के पास रहते हैं, केवल वहीं वे मौखिक शब्दों द्वारा उन वृत्तांतों का राजनीतिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, जो वाद-विवाद को लाभ-दायक और बुद्धिमत्ता-पूर्ण बनाने के लिये आवश्यक होते हैं। पिछली शताब्दी में छापेख़ाने की उन्नति ने समाचार-पत्रों के क्षेत्र को बहु-विस्तृत करके सार्वजनिक वाद-विवाद का महत्त्व बढ़ा दिया है। आजकल तो बिजली के तार समाचारों और उन पर जन-समुदाय की सम्मतियों को इतनी जल्दी एक बड़े और बहु-जन-संख्यक देश में फैला देते हैं कि लोग समाचारों और उन पर की हुई टीका-टिप्पणियों को एक ही साथ प्राप्त कर लेते हैं। इसलिये लोगों से जो प्रार्थनाएँ की जाती हैं, अथवा जो तर्क उनके सामने उपस्थित किया जाता है, वह उन पर लगभग उतना ही प्रभाव पैदा करता है, जितना जन-साधारण की सभा में किसी अच्छे वक्ता की वाणी उत्पन्न करती है।

पूर्व युग में यह बात समस्त स्वतंत्र देशों में मान ली गई थी कि साधारण समय में सब लोगों को समाचारों का प्रचार और उन पर वाद-विवाद करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए ; किंतु यदि वे इस शक्ति का दुरुपयोग करें, तो न्यायकारियों को उन्हें दंड देने की भी आज्ञा होनी चाहिए। पहले-पहल मिल्टन के समय में बिना लाइसेंस (आज्ञा) के प्रकाशन-कार्य होता था। जन-सत्ता-वादी सरकार के उपासक सदा इसके लिये प्रयत्नशील रहे कि समाचार-प्रकाशन की स्वतंत्रता सुरक्षित बनी रहे; क्योंकि जन-सत्ता का ठीक-ठीक व्यवहार होने के लिये इसका होना परमावश्यक है। निदान इस पर इतना ध्यान दिया गया कि लगभग समस्त आधुनिक स्वतंत्र राष्ट्रों के राज्य-संगठन में यह बात मान्य हो गई। जन-सत्ता-वादी सरकार पर विश्वास इस प्राचीन कहावत पर निर्धारित रहा कि "लोग सत्य बातों को जानते रहें, और उन पर वाद-विवाद करने की उन्हें स्वतंत्रता हो, तो सब काम ठीक होता रहेगा।" यह मानी हुई बात है कि यदि प्रेस स्वतंत्र होगा, तो उस पर सच्ची बातें प्रकाशित करने का विश्वास किया जा सकता है, क्योंकि झूठी बातें शीघ्र ही मालूम हो जाती हैं, और उनको प्रकाशित करनेवाले समाचार-पत्र पर अविश्वास होने लगता है। जो लोग यह जानते हैं कि जनता सदा सत्य बात जानने की इच्छुक रहती है, उनकी पारस्परिक स्पर्धा सत्य और झूठ का अंतर बताती रहती है। स्वतंत्र वाद-विवाद से सब बातों की छान-बीन होती रहती है।

लोग तर्क सुनते हैं, और उनकी ओर उनका ध्यान आकर्षित होता है । लोग यह बात जान जाते हैं कि सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग किस प्रकार करना चाहिए। संभव है कि कुछ समय के लिये वे उचित पथ से बहक जायँ ; परंतु किसी प्रकार के बंधन की अपेक्षा साधारण स्वतंत्रता से सदा अच्छे कार्य होंगे । स्वतंत्र देशों में सिद्धांतों पर अब कोई दोषारोपण नहीं करता, चाहे उनसे समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति होती हो, जिनकी पूर्ति होने की उनसे आशा थी । इस प्रकार प्रेस की स्वतंत्रता को यदि प्रजा-सत्ता का नाविक कहें, तो अत्युक्ति न होगी ।

यहाँ पर यह कह देना अनुचित न होगा कि लोग प्रेस का जितना पक्ष ले रहे थे, वह उसके योग्य था। पिछले अनेक वर्षों में एक के पश्चात् दूसरा देश इस बात का प्रयत्न करता रहा है कि वह राजों और विशिष्ट समुदायों से पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करे । इस कार्य में प्रेस जनता के पक्ष की एक बड़ी प्रबल शक्ति रहा है। उसने बुराइयों और अत्याचारों का भंडा-फोड़ किया है। उसने स्वेच्छाचारी कार्य-कर्ताओं को दोषी ठहराया है, और उनकी स्वार्थ-पूर्ण तथा मूर्खता से भरी हुई नीति की निंदा की है । उसने जनता के जगाने में स्वतंत्रता के भक्तों की सहायता की है । इसीलिये वह लोगों की सहानुभूति और विश्वास का पात्र हुआ ; क्योंकि उसने जनता की सम्मति-शक्ति को एकत्रित किया और राष्ट्र-भर को उसका दिग्दर्शन कराया। विना उसके सरकारी शस्त्र-शक्ति पर जन-समुदाय की विजय कदापि न हो सकती ।

एक समय ऐसा आ गया, जब वे डर और कठिनाइयाँ दिखलाई देने लगीं, जिनका पहले ध्यान भी नहीं किया गया था। यह मालूम हो गया कि अपनी बात को बहु-संख्यक लोगों तक पहुँचाने की शक्ति का उपयोग, विविध उद्देश्यों की पूर्ति के लिये, कई प्रकार से किया जा सकता है। कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

प्राचीन राज्य-प्रणालियों में यह प्रथा थी कि जिन सच बातों पर असत्य का वे प्रचार करना चाहते थे, उन्हें अपने समाचार-पत्रों के द्वारा प्रकाशित करा दिया करते थे, यद्यपि लोग उन बातों की सत्यता में कम विश्वास करते थे, जो सरकारी समाचार-पत्रों द्वारा प्रकाशित होती थीं। प्रिंस बिस्मार्क ने पहले-पहल इस तरकीब का खूब व्यवहार किया। वह ग़ैर-सरकारी पत्रों को अच्छी सहायता देकर अपने मत का प्रचार करता था, और अपने विचारों को लोगों के गले मढ़ देता था। इस प्रकार मोल लिए हुए पत्रों से उसका काम खूब निकला, और उसकी स्थिति सुदृढ़ हो गई । इस उदाहरण का दूसरे देशों ने भी अनुकरण किया। अस्तु। इस ढंग से प्रकट रूप में प्रेस की स्वतंत्रता का अपहरण नहीं हुआ ; परंतु सत्यता का स्रोत अपने उद्गम-स्थान से ही बिषैला हो गया।

संयुक्त-राज्य अमेरिका और इँगलैंड-सरीखे देशों में, जहाँ बहुत समय से स्वतंत्रता के सिद्धांतों की उपासना की जाती है, कुछ ऐसे उग्र पत्र-संपादक थे, जो शासकों और राजनीतिज्ञों की हत्या करने का समर्थन करते थे ! क्या ऐसा करने की आज्ञा दी जा सकती है ? क्या राज-नीतिक उद्देश्य होने से किसी का वध करने की उत्तेजना को न्याय-युक्त कहा जा सकता है ? लगभग चालीस वर्ष हुए, इस प्रश्न का उत्तर अमेरिका ने 'जोहन मोसट'-नामक एक जर्मन अराजक को दंड देकर दे दिया है। जिस देश में अन्याय को दूर करने के लिये विधिवत् साधन मौजूद हैं, वहाँ राजनीतिक व्यक्ति का वध होना जन-सत्ता के प्रति केवल एक बड़ा अपराध ही नहीं, बल्कि जन-सत्ता-वाद के नाम पर एक अमिट कलंक है।

दूसरा प्रश्न यह उठा था कि विशेष अवस्थाओं का विचार किए विना सदा सत्य रहनेवाले सिद्धांतों का प्रयोग करना भी कठिन है । कारण, रोक-टोक के अभाव से किसी प्रकार का संकोच न करनेवाले लोग झूठी बातें छापकर सार्वजनिक शांति-भंग करते और लोगों को भड़काते हैं । उनकी इन बातों का पता लगाना और उनका खंडन करना भी किसी समय बड़ा कठिन हो जाता है। कभी-कभी तो ये लोग किसी-किसी की निंदा करके खूब रुपया ठग लेते हैं । इस प्रकार के उदाहरणों से यह प्रमाणित होता है कि यद्यपि अनियमित प्रकाशन-कार्य स्वतंत्र-सरकार का जीवन है, परंतु उसका दुरुपयोग भी हो सकता है।

समाचार-पत्रों के सस्ते होने से जन-समुदाय में जो आशा उत्पन्न हुई थी, वह कई कारणों से कम हो गई है। बड़े-बड़े शहरों में जन-संख्या के बढ़ जाने, हर श्रेणी के

लोगों में पढ़ने की रुचि उत्पन्न होने और भिन्न-भिन्न विषयों के समाचार जानने की इच्छा से समाचार-पत्रों के विशेष अधिकता से पढ़े जाने और उनका प्रचार बढ़ जाने से दैनिक और साप्ताहिक पत्रों का आकार भी बढ़ गया, और राजनीतिक विषयों के अतिरिक्त उनमें अन्य विषयों के भी अनेक समाचार रहने लगे । दूसरी बात यह हुई कि यदि पत्र सफल हो गया, तो उसके स्वामी को आर्थिक लाभ भी अच्छा होने लगा । इसलिये समाचार-पत्र-प्रकाशन एक प्रकार का लाभ-दायक व्यापार भी हो गया । इन समाचार-पत्रों के अधिकतर पाठक उस श्रेणी के थे, जिनकी शिक्षा बहुत कम थी, और जिनको उच्च प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा भी बहुत कम थी । वे मामूली रोज़-मर्रा की बातों को जानने के लिये अधिक उत्सुक रहते थे । जैसे, कहाँ भयंकर आग लगी, कहाँ भीषण हत्या हुई, किस बड़े आदमी का विवाह हुआ इत्यादि । इसलिये कुछ देशों में एक नए प्रकार के समाचार-पत्र उत्पन्न हो गए ; जिनको उपर्युक्त प्रकार के पाठकों से अच्छी सहायता मिली । कारण, एक तो वे अर्ध-शिक्षित थे, दूसरे उनमें समालोचना करने की शक्ति भी नहीं थी । इसके अतिरिक्त वे बहुत-सी बातों की चिंता भी नहीं करते थे । पढ़े-लिखे लोगों की सम्मति से मुक्त होकर इस प्रकार के पत्र साधारण लोगों को अधिक रुचि-कर होने लगे, और एक श्रेणी के लोगों को दूसरी श्रेणी के लोगों के विरुद्ध भड़काकर उनके क्रोध और पक्षपात को उत्तेजित करने लगे । इन पत्रों के समाचारों में इस प्रकार के दोषारोपण और मिथ्या बातें रहती थीं, जिनको उनके बहुत कम पाठक झूठ समझ पाते थे । ऐसे समाचार-पत्रों के अधिकतर पाठक अर्ध-शिक्षित होते थे, इसलिये उन मिथ्या और तर्क-हीन बातों को फैलाना बड़ा सुगम था, जिनके वास्तविक रहस्य को प्रकाशित करने का कोई उपाय ही न था ।

इस प्रकार के समाचार-पत्रों का प्रचार होने के कारण विचारवान् लोग यह सोचने लगे कि समस्त संसार के प्रेसों में एक प्रकार का ऐसा परिवर्तन हो रहा है, जिसका नैतिक और राजनीतिक प्रभाव अशुभ है । इस प्रकार समाचार-पत्र दो अंकों में बट गए । व्यापारिक और स्वतंत्र विचारक ।

व्यापारिक-पत्र वे हुए, जो उन व्यक्तियों के हाथ समाचार बेचने लगे, जो उन समाचारों को ख़रीदना चाहते थे । वे अपने किसी अंक के किसी खंड-विशेष का कुछ स्थान उन विज्ञापन-दाताओं के हाथ बेचने लगे, जो अपने माल को सर्व-साधारण की दृष्टि के सामने रखना चाहते थे । उनकी मति-गति से यह तो स्पष्ट हो गया कि उनका उद्देश्य एक व्यापारिक कार्य करना है, और आर्थिक लाभ ही उसका अभीष्ट है ।

स्वतंत्र विचारक पत्र वे हुए, जो एक सलाहकार और पथ-प्रदर्शक का कार्य करने लगे । वे लोगों की सम्मति को बनाते और उनके कार्यों पर प्रभाव डालते रहे । वर्तमान समस्याओं पर टीका-टिप्पणी करना उनका कार्य रहा । वे कुछ विचारों का समर्थन करते रहे, और किसी विशेष नीति का विरोध । किसी विशेष नीति का समर्थन करते हुए अमुक पत्र लिखता है कि उसके कार्य की उत्पत्ति सार्वजनिक हित की दृष्टि और निष्काम भाव से समाज-सेवा करने की इच्छा से हुई है, बहुधा यही भाव समाचार-पत्रों के मालिकों और संपादकों को कार्य करने के लिये उकसाता है ; किंतु वास्तविक और अप्रकाशित उद्देश्य स्वार्थ-पूर्ण और नीच भी हो सकता है । अतएव कभी-कभी ऐसा भी हुआ कि पत्र-संचालक या उनके मित्र राष्ट्र के किसी कार्य-विशेष से आर्थिक लाभ उठाने की इच्छा ही से किसी नीति-विशेष का समर्थन करने लगे, अथवा उन लोगों से धन की सहायता प्राप्त करने लगे, जो चाहते थे कि समाचार-पत्र उनके पक्ष में कुछ लिख दें । इसलिये जन-साधारण के लिये यह जानना असंभव हो गया कि किसी विशेष कार्य में किसी समाचार-पत्र के, किसी विशेष नीति के समर्थन का वास्तविक उद्देश्य क्या है । निदान, बहुत-सी दशाओं में ऐसे पत्रों की स्वार्थ-रहित देश-भक्ति ही की बातें मान ली जाती रहीं । साधारण पाठक जिस प्रकार उन समाचारों में विश्वास कर लेते हैं, जिन्हें वे पढ़ते हैं, उसी तरह वे उन सम्मतियों और तर्कों को भी ठीक मान लेते हैं, जो उन समाचारों के साथ प्रकाशित होते हैं । इसलिये यह बहुत संभव है कि जिस प्रकार एक समाचार-पत्र विज्ञापन के लिये स्थान बेचता है, और कभी-कभी समाचार भी बेचता है (अर्थात् कुछ समाचार फैलाने के लिये उसे धन मिलता है), उसी प्रकार वर्तमान कार्यों पर टीका-टिप्पणी और विशेष जीविका का प्रति-

पादन करते हुए उसका गुप्त रहस्य कुछ और ही होता है।

अब हम राजनीतिक समाचार-पत्रों की उन्नति की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं।

स्वतंत्र देशों में बड़े-बड़े समाचार-पत्र ही समाचारों का प्रचार करने और राजनीतिक विषयों पर सम्मति प्रकट करने का एक-मात्र और आवश्यक उपाय रहे हैं, और अब भी हैं। दैनिक पत्र विशेष घटनाओं का वर्णन करते हैं, और उन घटनाओं के संबंध में प्रसिद्ध पुरुषों की मौखिक और लिखित सम्मति प्रकट करते हैं। और, जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि समाचार-पत्र इन घटनाओं का वर्णन करते हुए किसी ख़ास बात के कहे जाने पर अपनी टीका भी करते हैं। इस प्रकार वे अपने पाठकों के मन पर अपने राजनीतिक विचारों का प्रभाव डालते हैं। ये राजनीतिक विचार बहुधा पत्र के स्वामी अथवा उसके संपादक के होते हैं। यह दलबंदी है। बहुधा पाठक इस बात को जानते हुए भी कोई आपत्ति नहीं करते। जब तक सत्य न तो छिपाया जाय और न तोड़-मरोड़कर प्रकट किया जाय, तब तक कोई हानि नहीं होती। जिस प्रकार एक सार्वजनिक वक्ता किसी मंच पर खड़े होकर अपने दल के पक्ष का समर्थन करता है, उसी प्रकार एक समाचार-पत्र भी अपने दल के विचारों का पूर्ण प्रचार करके उसके पक्ष का समर्थन करता है। वक्ता और समाचार-पत्र, दोनों ही से निष्पक्ष होने की आशा न करनी चाहिए। हमें इतने ही से संतुष्ट हो जाना चाहिए कि वे साधारणतः ईमानदार हैं, बातों को तोड़ते-मरोड़ते नहीं, और न अपने विपक्षी की अवस्था का मिथ्या वर्णन ही करते हैं।

यदि प्रत्येक समाचार-पत्र सत्य की छान-बीन करे, पूर्ण सत्य और सिवा सत्य के अन्य कुछ न कहे, सब सम्मतियों को प्रकाशित होने के लिये समान अवसर दे, और इस तरह सर्व-साधारण को उन भिन्न-भिन्न सम्मतियों को जाँचने का मौक़ा दे, तो जहाँ तक राज-नीति का संबंध है, ऐसे समाचार-पत्रों से लाभ-ही-लाभ होगा। इससे जन-साधारण में विचार करने की शक्ति आवेगी, और वे अपनी सम्मति स्वयं बनावेंगे। यद्यपि कभी-कभी वे भूलें करेंगे, परंतु इन भूलों के लिये वे केवल अपने ही को दोषी समझेंगे। किंतु वर्तमान संसार में ऐसे गुणों का होना कठिन है।

आजकल तो इतना ही पर्याप्त है कि जिस समय किसी दल-विशेष का पत्र किसी घटना या व्याख्यान का वर्णन करे, उस समय उसे दूसरे दलों के साथ न्याय करने को भी ध्यान रखना चाहिए। ऐसा करने से स्वयं उस पत्र को लाभ होगा; क्योंकि एक तो उसकी प्रतिष्ठा होगी, और दूसरे विपक्षी-दल के लोग भी उसे पढ़ेंगे। इसके अतिरिक्त अपने दल के प्रति भी उस पत्र की ज़िम्मेदारी होती है, जो उसे अपने पक्ष की पूँजी समझता है। यदि वह पत्र आँख बंद करके चलने लगे, अथवा व्यक्ति-गत आक्षेपों और गाली-गलौज पर उतारू हो जाय, तो उसकी प्रतिष्ठा कम हो जाती है, और लोग उसके कहने पर कुछ ध्यान भी नहीं देते, बल्कि उलटे उसी मनुष्य का लाभ होता है, जिसकी वह निंदा करता है, और उसकी प्रतिष्ठा बढ़ जाती है। विपक्षी को यदि आप हानि पहुँचाना चाहते हैं, तो उसी के वचनों अथवा कामों की भूलों को लोगों के सामने रखिए। कुछ थोड़े-से समझदार लोग ऐसे होते हैं, जो घटनाओं को देखकर अपनी सम्मति स्वयं निश्चित कर लेते हैं। उन पर किसी की निंदा और प्रशंसा का प्रभाव नहीं पड़ता। ये ही लोग बहुधा साधारण लोगों पर अपना प्रभाव डालते हैं।

पिछली शताब्दी के मध्य भाग तक जो समाचार-पत्र केवल राजनीतिक बातों से संबंध रखते थे, वे एक दल-विशेष के मुख-पत्र ही रहते थे, और अपने दल के नेताओं की प्रत्येक बात जानते रहते थे। बहुधा उनका संपादक एक स्वतंत्र और ओजस्वी व्यक्ति होता था। वह अपनी मन-मानी करता था। अपनी इच्छा के अनुसार कभी किसी की प्रशंसा कर देता था, और कभी किसी की निंदा। किंतु प्रत्येक दशा में जन-साधारण की सम्मति प्रकट करना और उनको उचित पथ बतलाना ही एक पत्र का मुख्य कर्तव्य था, लाभ प्राप्त करने की इच्छा उसके राजनीतिक भावों पर अपना प्रभाव अवश्य डालती थी; किंतु राजनीतिक सिद्धांतों का समर्थन और समाचारों की बहुतायत से लोगों को स्वयं निर्णय करने का अवसर देना ही उसका मुख्य उद्देश्य रहता था।

कुछ दिनों के पश्चात् पत्रों ने एक दूसरे अंग में उन्नति की। यद्यपि कुछ पत्रों का अब भी यह दावा है कि वे सत्य बात को ही प्रकाशित करते हैं, और निस्स्वार्थ भाव से लोगों को परामर्श देते हैं, परंतु अब पत्र-संचालन मुख्यतया एक

व्यापारिक कारबार हो गया है। जिस प्रकार और काम लाभ की दृष्टि से किए जाते हैं, उसी प्रकार पत्र भी लाभ ही के दृष्टि से निकाले जाते हैं। पत्र का स्वामी उसके संपादक को दबाए रखता है। संपादक एक विद्वान् पुरुष होता है, उसे अपनी योग्यता पर अभिमान होता है, और बहुधा उसके कुछ विशेष विचार होते हैं, जिनका वह प्रचार करना चाहता है। पत्र का स्वामी एक व्यापारी आदमी होता है, और यद्यपि वह शक्ति और धन की इच्छा रखता है, परंतु उसे राजनीतिक विचारों की अपेक्षा लाभ का अधिक ध्यान रहता है। संपादक और उसके सहायक चाहे जन-साधारण की सेवा के शुद्ध भाव ही से कार्य करते हों, और जो कुछ वे लिखते हों, उसमें उन्हें पूर्ण विश्वास भी हो, परंतु पत्र के स्वामी को पत्र का प्रचार बढ़ने से लाभ अवश्य होना चाहिए, और प्रचार-वृद्धि के द्वारा विज्ञापनों से और भी अधिक आमदनी होनी चाहिए। जब सत्य बातों को प्रकाशित करने, लोगों को उत्तम उपदेश देने और पत्र का प्रचार करने में विरोध उपस्थित होता है, तो पत्र के प्रचार के उद्देश्य से उसी मार्ग का अवलंबन किया जाता है, जिससे ग्राहकगण प्रसन्न होते हैं। यह देखकर कि जन-साधारण की सम्मति किस ओर जा रही है, पत्र तत्कालीन भावों के साथ-साथ चलेगा, और कभी-कभी उन्हें बढ़ा भी देगा। और, यदि बुद्धिमानी से काम लिया जायगा, तो किसी भाव का उदय होते ही उस ओर चल पड़ेगा। लाभ की दूसरी दशा उस समय उपस्थित होती है, जब कोई संप्रदाय विशेषकर अपने निजी लाभ के लिये पत्र की सहायता चाहता है। एक संप्रदाय कुछ पत्रों को ले लेता है, और उनसे आर्थिक लाभ प्राप्त करने के अतिरिक्त उनकी शक्ति को अन्य कारबारों की उन्नति करने में लगता है, और राजनीतिक नेताओं की अभिलाषाओं को भी बढ़ाता है। जब पत्र की नीति उसके सच्चे विचारों से नहीं, किंतु गुप्त उद्देश्यों से निर्धारित होती है, तब ऐसी दशा में जन-साधारण, जो गुप्त उद्देश्यों से अनभिज्ञ होते हैं, भ्रम में पड़ जाते हैं। कुछ थोड़े-से ही ऐसे देश हैं, जहाँ सार्वजनिक जीवन की अवनति के साथ-साथ पत्रों की शैली का भी पतन हो गया है, और उपर्युक्त प्रकार के दोषों ने गंभीर स्थिति प्राप्त कर ली है। परंतु यह भय सदा उपस्थित रहनेवाला है।

समाचार-पत्र की शक्ति का दूसरा दुरुपयोग उस समय मालूम होता है, जब कोई एक व्यक्ति या कई मनुष्यों का एक समुदाय किसी एक पत्र से अथवा कई पत्रों से अपनी निजी राजनीतिक उन्नति का काम लेता है। जिस प्रकार एक राजनीतिज्ञ व्याख्यानों द्वारा अपना प्रभाव जमा लेता है, अथवा निर्वाचकों के वोट प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार पत्रों के स्वामी भी अपने पत्रों द्वारा वही काम कर लेते हैं। यहाँ पर यह विचार उत्पन्न होता है कि जब वास्तविक बातें मालूम हो जाती हैं, तब ऐसे समाचार-पत्रों का प्रभाव कम हो जाता है ; क्योंकि समझदार पाठक पत्र के स्वामी के कार्य का उद्देश्य समझ जाते हैं, और उनकी दृष्टि में वह पत्र गिर जाता है। किंतु यह भी संभव है कि वास्तविक बातें कभी न मालूम हों। राजनीतिक बातों के अतिरिक्त यदि पत्र में आकर्षित करनेवाली अन्य बातें अधिक होती हैं, और उसके पाठक बहुत होते हैं, तो जो सहायता वह किसी राजनीतिक समुदाय या किसी व्यक्ति-विशेष को देता है, वह अपना काम करती और लोगों के हृदयों पर अपना प्रभाव डालती रहती है। दूसरे यह बात भी स्मरण रखनी चाहिए कि पत्र के पाठकों में अधिकतर लोग न तो पूरी-पूरी जानकारी रखते हैं, और न इतने समझदार ही होते हैं कि वे समझ जायँ कि उनके साथ कैसी चाल चली जा रही है।

जब कोई समाचार-पत्र किसी भी उद्देश्य से लोगों की सम्मति और उनके वोटों पर अपना प्रभाव डालना और उन्हें एक विशेष मार्ग की ओर ले जाना चाहता है, तो वह दो तरीक़ों से काम लेता है। एक तरीक़ा तो तर्क का है। वह किसी नीति का समर्थन करेगा या विरोध, किसी दल के नेता की प्रशंसा करेगा या गाली-गलौज की शरण लेकर उसकी निंदा। उसका कार्य ठीक उसी तरह का होगा, जैसा किसी सभा में किसी वक्ता का होता है। अनुभव से मालूम हुआ है कि जिस देश में किसी दल-विशेष की सरकार होती है, वहाँ इस प्रकार का समर्थन आदि करना अनिवार्य है। परंतु यह कार्य न्याय-युक्त सीमा के अंदर ही होना चाहिए। इससे जिस प्रश्न पर विचार किया जाता है, उसका तत्त्व निकल आता है, और उसकी ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट हो जाता है। यदि मिथ्या-भाषण और दोषारोपण से

काम न लिया जाय, तो यह तरीक़ा ठीक है, और इसमें कोई हर्ज भी नहीं है। राजनीतिक युद्ध में कड़ी चोटें सहनी ही पड़ती हैं।

दूसरे तरीक़े में अधिक चालाकी से काम लिया जाता है, और उसका प्रभाव भी अधिक होता है। घटनाओं को देखकर ही अधिकतर लोग अपनी सम्मति बनाते हैं। इसलिये जो समाचार-पत्र चाहता है कि उसके विचारों का प्रचार हो, वह घटनाओं ही को लेकर अपना मामला तैयार करता है। कभी-कभी वह घटनाओं को मान लेता है। जैसे वह किसी व्यक्ति या राजनीतिक संघ के उद्देश्यों अथवा इरादों के सिद्धांत को लोगों के सामने उपस्थित करता है, और फिर उस सिद्धांत को एक वास्तविक बात मानकर उसी पर दोषारोपण की नींव रखता है। कभी-कभी वह घटनाओं का आविष्कार भी कर लेता है। जैसे कोई अफ़वाह सुन ली, या स्वयं ही प्रचारित कर दी, और फिर उस अफ़वाह का इस प्रकार ज़िक्र किया कि मानों वह एक वास्तविक घटना है, और उसका ख़ूब ज़ोर-शोर से प्रचार किया, यहाँ तक कि बार-बार कहकर उसे लोगों के हृदयों पर जमा दिया। किंतु इस उपाय का उपयोग बड़ी सावधानी से करना होता है; क्योंकि संभव है, झूठी घटनाओं का भेद खुल जाय। यदि इसी तरह कई बार घटनाओं का भेद खुल जाय, और वे असत्य प्रमाणित हों, तो पत्र की प्रतिष्ठा कम हो जाती है।

तर्क और झूठी घटनाओं के वर्णन आदि दोनों उपायों की अपेक्षा एक अधिक सुगम और प्रभावशाली उपाय घटनाओं के चुनने का है। हरएक विवाद में बहुत-सी ऐसी घटनाएँ होती हैं, जिनसे दोनों पक्षों के समर्थन का काम लिया जा सकता है। यदि कोई पत्र होशियारी से क्रमानुसार ऐसे समाचार चुनकर प्रकाशित करता है, जो एक ही परिणाम की ओर ले जाते हैं, और दूसरी ओर ले जानेवाले सारे समाचारों को या तो बिलकुल दबा देता है या संक्षिप्त रूप से कहता है, तो उस पर सरासर झूठ बोलने का दोष नहीं लगाया जा सकता। यद्यपि वास्तव में वह झूठ बोलता है; क्योंकि वह अपने पाठकों के सामने उन समस्त घटनाओं को नहीं उपस्थित करता, जिनके द्वारा वे स्वतंत्र सम्मति क़ायम कर सकें। सत्य को दबा रखना भी उतना ही दोष-पूर्ण है, जितना झूठ की ओर संकेत करना। यह निष्क्रिय मिथ्या-वर्णन क्रियात्मक वर्णन की अपेक्षा जितना अधिक बुद्धिमत्ता-पूर्ण है, उतना ही सरल भी है; क्योंकि यहाँ दोषों का पकड़ा जाना अत्यंत कठिन है। दल-विशेष के वक्ता और पत्र विना जाने ही उसकी ओर चले जाते हैं। किंतु उसका प्रभाव अधिक होता है, और बहुधा जान-बूझकर उसका प्रयोग किया जाता है। प्रायः समाचार-पत्र अपना पक्ष-समर्थन करने के लिये ऐसे समाचार-भर देते हैं, जिनसे उनके विपक्षी का कार्य महाघृणित प्रतीत होता है, और दूसरे पक्ष की एक बात का भी ज़िक्र नहीं करते। इससे लोगों को वास्तविक घटनाएँ जानने और उन पर अपनी ठीक-ठीक राय क़ायम करने का अवसर नहीं मिलता। इस प्रकार का कार्य निस्संदेह निंदनीय कहा जा सकता है।

एक वक्ता का व्याख्यान थोड़े लोग सुन सकते हैं; परंतु समाचार-पत्र के वाचक और श्रोता बहुत-से हो-सकते हैं। समाचार-पत्रों का होना इसलिये भी परमावश्यक है कि उनमें राजनीतिक समाचारों के अतिरिक्त ऐसी बहुत-सी बातें होती हैं, जिनकी आवश्यकता कुछ लोगों को अपने व्यापार के लिये होती है, और कुछ लोगों को केवल उत्सुकता-पूर्ति के लिये। दूसरी बात यह है कि जन-साधारण को सार्वजनिक कामों में इतना अधिक उत्साह नहीं होता कि वे सार्वजनिक सभाओं में जायँ, अथवा व्यवस्थापक-सभाओं की कार्यवाही पढ़ें। इसलिये केवल समाचार-पत्र ही उनकी राजनीतिक शिक्षा का एक-मात्र साधन हैं, और कदाचित् वे केवल समाचार-पत्रों के अतिरिक्त और कुछ पढ़ते भी नहीं। समाचार-पत्र अपने तर्क को प्रतिदिन और प्रतिसप्ताह अपने पाठकों के सामने रखते हैं, और अपने तर्क की पुष्टि में ऐसी अनेक घटनाओं का वर्णन करते हैं, जिनसे उनके पाठकों पर ख़ूब प्रभाव पड़े।

पिछले पचास वर्षों में बड़े-बड़े समाचार-पत्रों की शक्ति की वृद्धि में बहुत उन्नति हुई है। समाचार-पत्रों के पाठकों की संख्या बढ़ गई है, और लोगों को पत्र पढ़ने की बान भी अधिक पड़ गई है। पत्रों का क्षेत्र भी विस्तीर्ण हो गया है; क्योंकि वे सारे संसार के समाचार देते और नए-नए विषयों का वर्णन करते हैं। इसीलिये उनकी आय भी बढ़ गई है। परंतु साथ ही ख़र्च भी अधिक हो गया है। इस समय एक पत्र

चलाने के लिये पहले की अपेक्षा अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है। इसलिये बड़े-बड़े समाचार-पत्र बढ़ गए हैं, और छोटे-छोटे ग़ायब हो गए हैं। नए समाचार-पत्र थोड़े निकलते हैं; क्योंकि एक अच्छा दैनिक पत्र चलाने के लिये अधिक धन की आवश्यकता होती है, और कुछ जोख़िम भी उठानी पड़ती है। लगभग प्रत्येक देश के बड़े-बड़े शहरों में बड़े-बड़े समाचार-पत्रों की संख्या कम है, किंतु उनका प्रभाव अधिक। इसका यह कारण नहीं है कि उनके लेख बड़े अच्छे होते हैं। कहीं-कहीं तो दशा बिलकुल इसके विपरीत है। इसके अतिरिक्त समाचारों की अपेक्षा अग्र-लेखों का प्रभाव कम पड़ता है। सबसे अधिक विशेष बात यह है कि पत्र की नीति देखी जाती है, और उसकी मर्यादा तथा प्रतिष्ठा का विचार किया जाता है। यह मर्यादा और प्रतिष्ठा पत्र को अपने कार्य के विस्तार से प्राप्त होती है। समाचार-पत्र वह शक्ति है, जिसे कोई भुला नहीं सकता।

नारायणप्रसाद अरोड़ा

पुष्प-हार

(१)

उस समय गोविंद की अवस्था ११ साल की थी। शांता भी ८ वर्ष की बालिका थी। दोनों छुटपन से एक ही आँगन में खेले थे। एक ही प्रकाश के स्पर्श से वे नन्ही-नन्ही कलियाँ विकसित हुईं, और एक ही वायु-मंडल में रहकर उन कलियों में सौरभ का संचार हुआ। गोविंद शांता के बिना रह नहीं सकता था, और शांता गोविंद के बिना अकुला उठती थी। लोग कहते थे, प्रकाश और छाया का जोड़ा है। दोनों एकसाथ उठते-बैठते थे, एकसाथ खाते-पीते थे, घर के सामने की सड़क पर एक ही साथ धूल में खेला करते थे। पढ़ने के लिये स्कूल भी साथ-साथ जाते थे। यदि कभी गोविंद को स्कूल से आने में देर हो जाती, तो शांता चौराहे पर खड़ी-खड़ी उसकी राह देखा करती। साथ की लड़कियाँ चली जातीं, तब भी वह खड़ी रहती, गोविंद को साथ लेकर घर जाती। एक दिन उसको स्कूल से लौटने में देर हो गई। शांता रूठ गई। वह उस दिन गोविंद से बोली नहीं। उसका यह क्रोध ईर्षा से था, अथवा वह अकेली खेलती रही, इसलिये नाराज़ हुई, पता नहीं। किंतु उस दिन से गोविंद ने बाहर खेलने जाना छोड़ दिया। घर के पास ही एक बाग़ था। उसमें अमरूद ख़ूब थे। सबेरा होने के पहले ही दोनों बाग़ में जा पहुँचते, वहीं खेला करते। प्रकाश की किरणें बाग़ के झुरमुट में से झाँककर उनकी क्रीड़ा को देखा करतीं। कहीं दोनों ने गुलाब के फूल तोड़े। बाज़ी लगाई—देखें कौन कितने फूल तोड़ता है। फूल चुने, और तोड़-मरोड़कर वहीं बिखरा दिए। फिर बेले के हार गूँथना शुरू किया, अथवा तितलियों के पकड़ने की बाज़ी लगी। माली के लाख मना करने पर भी गोविंद अमरूद के पेड़ पर चढ़ जाता। शांता डरती, कहीं डाल टूट न जाय। किंतु माली बदमाशी करता है, कच्चे अमरूद लाकर देता है। गोविंद के तोड़े हुए फल मीठे होते हैं। इच्छा होते हुए भी वह गोविंद को पेड़ पर चढ़ने से मना न करती। संध्या के समय जब पक्षी अपने घोसलों में लौटने लगते, सूर्य की किरणें वृक्षों की पत्तियों पर स्वर्ण-रेणु छितरा देतीं, उस समय भी दोनों बाग़ में खेला करते। सूर्य क्षितिज के नीचे जाने के पहले ही बाग़ में अपनी छाया छोड़ जाते। अँधेरा होने लगता। घर का पुराना नौकर रामदास दोनों को ढूँढ़ता हुआ बाग़ में आता। उसके पैरों की आहट पाते ही दोनों घर भाग जाते।

एक दिन की बात है। शांता और गोविंद, दोनों बाग़ में खेल रहे थे। उस दिन प्रातःकाल से ही पूर्व-दिशा ने बादलों के एक हलके घूँघट में अपना मुँह छिपा रक्खा था। क्षितिज से कुछ ऊपर बादलों की दो-तीन टोलियाँ घूम रही थीं। किसी के अलक्ष्य करों ने उनकी कोरों पर सुनहरा मुलम्मा कर दिया। किंतु शांता को रहस्यमयी प्रकृति के इस दृश्य को देखने का समय न था। उसकी गुड़िया का ब्याह था। वह उसी को सजाने में लगी हुई थी। बाग़ में मौलसिरी का एक पेड़ था। शांता और गोविंद सबेरे यहाँ खेलने आया करते हैं, यही सोचकर मानों वह पेड़ उतनी जगह को फूलों से सजा दिया करता था। माली ने उन फूलों को बीना, और लाकर

शांता को दे दिए। फूलों को लेकर शांता माला बनाने बैठी। माला बनाई जा रही थी गोविंद के गुड्डे के लिये। ब्याह की रीति और रस्मों का पालन नियमानुसार होता था, उसी प्रकार जैसे कि शांता ने एक दिन राम-लीला में देखा था। शांता की जय-माला तैयार हो गई। कन्या का शृंगार हो गया; किंतु वर का अब तक पता नहीं। गोविंद ने उस दिन ख़ास तौर से एक गुड्डा तैयार करवाया था; किंतु उसकी मा ने अब तक बनाकर नहीं दिया। सायत टली जाती थी। खेल में गड़बड़ होते देख शांता ने उस माला को गोविंद के ही गले में डाल दिया। 'लो, हमारा-तुम्हारा ब्याह हो गया'।—यह कहकर शांता हँसने लगी। हास्य की उस धीमी लहर में उसको रामदास के खाँसने की आवाज़ सुनाई दी। दोनों घर के भीतर भाग गए। वे दिन कैसे सुखमय थे, उसी प्रकार जैसे कि स्वप्न। लड़कपन की यह नाव हँसी-खुशी की मौजों में वायु के हलके-हलके थपेड़े खाकर कैसे मज़े में चलती थी!

(२)

इसी प्रकार पाँच साल बीत गए। शांता अब वह अधखिली कली नहीं रही। रूप की पँखड़ियाँ एक-एक करके खिलने लगीं। पानी बरस जाने के बाद जैसे प्रकृति निखर जाती है, सौंदर्य की ज्योति से उसी प्रकार उसका शरीर मँज गया। कैशोर यौवन के क्षेत्र में पैर रखने की राह ढूँढ़ रहा था; किंतु सकुचाता था। और कोई उपाय न देख उसने अपना वह लजीलापन आँखों को सौंप दिया। हृदय की आंतरिक भावनाएँ अपने पंख को फैलाकर उड़ने के लिये छटपटा रही थीं; किंतु रास्ता अब भी नहीं मालूम था।

शांता अब ब्याह के योग्य हो गई, इस बात का पता सबसे पहले लगा उसकी मा को। वह कई बार अपने पति को इस बात की याद दिला चुकी थी; किंतु 'अभी कुछ दिन और ठहर जाओ', यही कहकर रामकिशोर टाल दिया करते थे। एक दिन जब वह भोजन करने के लिये आए, तो उनकी पत्नी ने फिर वही बात छेड़ी—'तुम्हें तो तनिक भी चिंता नहीं। ऐसे कामों में ज़रा दौड़-धूप करनी पड़ती है।' शांता पास ही के कमरे में बैठी हुई एक रेशमी रूमाल में फूल काढ़ रही थी। वह मन लगाकर अपना काम कर रही थी। मा के शब्दों की भनक उसके कानों में पड़ी। उत्सुकता ने प्रश्न किया—'वह कौन-सा काम है?' उसने सुना पिता मा से कह रहे हैं—'मैंने आज तुम्हारे प्रस्ताव को गोविंद के पिता के सामने रक्खा था। उन्होंने स्वीकार भी कर लिया है।'

'ऊह!' शांता की उँगली में सुई चुभ गई। उसकी आँखें थीं सुई के ऊपर, किंतु हृदय था कहीं और।

'तो फिर इसी महीने में शांता का ब्याह हो जाना चाहिए।'

सुनकर शांता की हृदय-तंत्री झनझना उठी। गोविंद के साथ उसका ब्याह होगा, यह कभी उसने सोचा नहीं, कभी इच्छा नहीं प्रकट की। छुटपन में वह गोविंद को गोविंद कहती थी, और अब भी गोविंद उसके लिये गोविंद ही है। उसके प्रेम का क्षितिज पहले ही-सा परिमित और मेघ-हीन था। वह गोविंद को कितना प्यार करती है, यह उसने कभी अंदाज़ा नहीं। उसके भाव-सिंधु की गंभीरता में आज लहरें उठीं। मन किसी अज्ञात माधुर्य के स्पर्श से विह्वल हो उठा। अभी तक वह यों ही गोविंद के साथ हँसती थी, खेलती थी। 'हम भिन्न-भिन्न पथ के दो पथिक हैं'—यह बात कभी उसके ध्यान में नहीं आई। आज उसने सोचा—'यदि कहीं गोविंद से मेरा साथ छुट जाता, तो?'

इतने में कमरे के भीतर किसी की छाया पड़ी। शांता ने सिर उठाकर देखा, गोविंद मौजूद है।

इन दिनों गोविंद शांता से बहुत कम मिलता-जुलता था। 'आजकल पढ़ने से अवकाश नहीं मिलता', न आने का यही बहाना था। वह आता था सिर्फ़ इतवार के दिन, और वह भी उसकी मा के पास। कई दिनों बाद अचानक गोविंद को देखकर शांता पूछ बैठी—'आज पढ़ने से फ़ुर्सत कैसे मिल गई?'

'जब पढ़ने में जी न लगा, तभी छुट्टी है। हाँ, तुमसे एक बात कहनी है।'

'कहो।'

किंतु बात-चीत अधूरी ही रह गई। शांता के कान में आवाज़ पड़ी 'शांता!' शांता के हृदय में उथल-पुथल मच गई। आज यह पहला दिन था, जब गोविंद के सामने उसके गुलाबी गाल लज्जा के मारे लाल हो गए। वह सकपकानी-सी होकर उठ खड़ी हुई। गोविंद शांता के

इस भाव-परिवर्तन को समझा नहीं। उसने कहा—'सुनो, सिर्फ़ एक छोटी-सी बात है।'

'देखो न, मा बुला रही हैं', कहकर शांता कमरे के बाहर चली गई।

(३)

कुछ दिन बाद गोविंद के साथ शांता का ब्याह हो गया। किंतु वह ब्याह का सुख अधिक दिनों तक नहीं भोग पाई। उन दिनों शहर में हैज़े का बड़ा ज़ोर था। अचानक गोविंद को हैज़ा हो गया। दिन-भर उसकी अवस्था ख़राब रही। दूसरे दिन उसकी मृत्यु हो गई। शांता रोई, किंतु स्वामी के लिये नहीं। स्वामी को तो उसने अभी पहचाना भी न था। ब्याह के मर्म को तो उसने अभी समझा भी न था। उस चिर नवीन बंधन से उसके जीवन में अभी कुछ भी नवीनता नहीं आई थी। वह रोई अपने छुटपन के साथी गोविंद के लिये। रोते-रोते उसने अपनी आँखें सुजा डालीं। माता ने समझाया, सखी-सहेलियों ने ढाढ़स बँधाया; किंतु शांता के व्यथित चित्त को शांति न मिली। कई दिन बीत गए। धीरे-धीरे उसकी अवस्था ख़राब होने लगी। सफ़ेद वस्त्र से ढका हुआ उसका वह मुरझाया हुआ शरीर ठीक ऐसा मालूम पड़ता था, जैसे पाले की मारी हुई कमलिनी। उसने कमरे से बाहर निकलना छोड़ दिया। सहेलियाँ उसके दुःख में सहानुभूति दिखाने आतीं, मुहल्ले की बड़ी-बूढ़ी औरतें उसकी माता के पास आकर उसके अभाग्य की चर्चा किया करतीं; किंतु वह कमरे में बंद रहती, तकिए में मुँह छिपाए रोया करती। उसके इस दुःख के रोने में कभी-कभी सुख का आभास झलक आता था। वह स्वयं नहीं समझती थी कि यह परिवर्तन कैसे हो जाता है। रोते-रोते अचानक दरवाज़े की ओर ताकने लगती—'गोविंद अभी तक मनाने नहीं आया।' इस रोने में उसको सुख मिलता था। वह भूल जाती कि गोविंद जहाँ गया है, वह स्थान उसके रोने की आवाज़ की पहुँच से परे है। कभी-कभी ऐसा होता कि जब कोई उसे बुलाने आता, तो वह चौंक उठती। दौड़कर किवाड़ खोल देती। क्षण-भर के बाद ही उसकी कल्पना का स्रोत फिर भँवर में पड़ जाता। घंटों बैठी हुई किसी की प्रतीक्षा किया करती जब थक जाती, तो रोने लगती। झुँझलाकर गोविंद के पहनने-ओढ़ने के कपड़ों को ठीक करने लगती, उसकी पढ़ने की किताबों की धूल झाड़ा करती, उनको अलमारी में सजाकर रखती। किंतु इन पुस्तकों को पढ़नेवाला नहीं है, यह सोचकर उसका कलेजा मुँह को आने लगता। वह रोने लगती। एक दिन वह गोविंद का बक्स खोलकर बैठी। ढेर-के-ढेर कपड़े रक्खे हुए थे। वह रोती और कपड़े निकालती जाती थी। सब कपड़े निकाल-निकालकर बाहर रक्खे। सबके नीचे की तह में उसे एक डिबिया मिली। उसने खोलकर देखा—सूखे हुए मौलसिरी के फूलों का हार था। देखकर शांता चौंक उठी। फूलों से अब भी एक प्रकार की भीनी-भीनी गंध निकल रही थी। शायद यह पहला ही मौक़ा था, जब बंद कर देने के बाद डिबिया खोली गई। शांता ने हार बाहर निकाला। फूलों की धूल बन गई। एक लाल रेशमी डोरा उसके हाथ में रह गया। पाँच साल पहले की एक घटना उसको याद आई। गोविंद के गले में इस हार को डालते हुए उसने कहा था—'लो, हमारा-तुम्हारा ब्याह हो गया।' उसे सुध आई उस दिन की, जब एक दिन लोगों को दिखाने के लिये सचमुच ही उसके ब्याह का ढोंग रचा गया था। उसके चार-पाँच दिन बाद ही उसके संतोष और सुख की चूड़ियाँ फूटी थीं, उसने रंगीन वस्त्र उतारकर सफ़ेद धोती पहनी थी। उसने अपने विधवा-वेश की ओर देखा, और देखा अलंकार-शून्य अपने हाथों को। उसकी आँखें डबडबा आईं। छुटपन के साथी के साथ-साथ उसने जो कुछ और खो दिया है, उसका आज ज्ञान हुआ। फूलों की धूल अब भी उसके सामने थी। "नाथ, इन फूलों की सुगंधि के बिखरने के पहले ही, तुम्हारे जीवन-पुष्प की पँखड़ियाँ बिखर गईं" कहती हुई संज्ञा-हीन होकर वह वहीं गिर पड़ी!

कृष्णानंद गुप्त

तिल

रूप, रंग, रुचि, चतुरई बिधि हरख्यो अति हीय;
छिल्यो हाथ चुइ बुंद मसि, बन्यो बदन-तिल तीय।
रंग, रूप-रुचि अति रुचिर, बिधि बिचार पुनि कीन्ह;
लगै काहु की डीठि जनि, दीन डिठौना चीन्ह।

श्रीरामाज्ञा द्विवेदी "समीर"

कर्बला

उपक्रम

मोहर्रम के महीने में, सारे हिंदुस्तान में, ताज़िए उठते हैं, आलम निकाले जाते हैं, मेले लगते हैं, मर्सिए गाए जाते हैं, ताज़ियों पर शर्बत चढ़ाया जाता है, लोग हरे-हरे वस्त्र धारण करते हैं, वेश्याएँ तक विलास और आभूषणों का त्याग कर देती हैं। यह कहना ज़रा भी अत्युक्ति-पूर्ण नहीं है कि समस्त भारत में यह उत्सव जितना सर्वमान्य है, उतना शायद ही और कोई उत्सव हो। किंतु, हमारे अशिक्षित भाइयों का तो कहना ही क्या, शिक्षित-समुदाय में भी ऐसे बहुत कम लोग होंगे, जो इस उत्सव का ऐतिहासिक महत्त्व समझते हों, और उन घटनाओं से परिचित हों, जिनकी याद इस उत्सव द्वारा ताज़ा की जाती है। लोग इसे एक गुप्त रहस्य-सा समझते हैं। आज हम हिंदुओं के आगे इस रहस्य का पर्दा उठाने की चेष्टा करते हैं।

(१)

हज़रत मोहम्मद की मृत्यु के बाद कुछ ऐसी परिस्थिति हुई कि ख़िलाफ़त का पद उनके चचेरे भाई और दामाद हज़रत अली को न मिलकर उमर फ़ारूक़ को मिला। हज़रत मोहम्मद ने स्वयं व्यवस्था की थी कि ख़लीफ़ा सर्व-सम्मति से चुना जाय, और सर्व-सम्मति ने उमर फ़ारूक़ को चुना। इनके बाद अबूबकर चुने गए। अबूबकर के बाद उसमान को यह पद मिला। उसमान अपने कुटुंबवालों के साथ पक्षपात करते थे। उन्होंने ऊँचे राजकीय पद उन्हीं को दे रक्खे थे। उनकी इस अनीति से बिगड़कर कुछ लोगों ने उनकी हत्या कर डाली। उसमान के संबंधियों को संदेह हुआ कि हज़रत अली की ही प्रेरणा से यह हत्या हुई है। अतएव उसमान के बाद अली ख़लीफ़ा तो हुए, किंतु उसमान के एक आत्मीय संबंधी ने, जिसका नाम मुआविया था, और जो शाम-प्रांत का सूबेदार था, अली के हाथों पर बैयत न की, अर्थात् अली को ख़लीफ़ा नहीं स्वीकार किया। अली ने मुआविया को दंड देने के लिये सेना नियुक्त की। लड़ाइयाँ हुईं; किंतु पाँच वर्ष की लगातार फ़ौजकशी के बाद अंत को मुआविया ही की विजय हुई। हज़रत अली अपने प्रतिद्वंद्वी के समान कूट-नीतिज्ञ न थे। वह अभी मुआविया को दबाने के लिये एक नई सेना तैयार करने की फ़िक्र ही में थे कि एक हत्यारे ने उनका वध कर डाला।

मुआविया ने वचन दिया था कि मैं अपने बाद अपने पुत्र को ख़लीफ़ा न नामज़द करूँगा, बल्कि हज़रत अली के ज्येष्ठ पुत्र हसन को ख़लीफ़ा बनाऊँगा। लेकिन जब उसका अंत-काल निकट आया, तो उसने अपने पुत्र यज़ीद को ख़लीफ़ा बना दिया। हसन इसके पहले ही मर चुके थे। उनके छोटे भाई हज़रत हुसैन ख़िलाफ़त के उम्मेदवार थे; किंतु मुआविया ने यज़ीद को अपना उत्तराधिकारी बनाकर हुसैन को निराश कर दिया।

यज़ीद को अब सबसे ज़्यादा भय हुसैन का था, जो हज़रत अली के बेटे और हज़रत मोहम्मद के नवासे थे। उनकी माता का नाम फ़ातिमा ज़ोहरा था; जिनका स्थान मुसलिम-विदुषियों में सबसे श्रेष्ठ है। हुसैन बड़े विद्वान्, सच्चरित्र, शांत-प्रकृति, नम्र, सहिष्णु, मानी, उदार और धार्मिक पुरुष थे। उनके चरित्र का प्रधान अंग उनकी प्रगाढ़ धार्मिकता थी। वह वीर थे; ऐसे वीर कि अरब में कोई उनकी जोड़ न था। किंतु वह राजनीति के दाँव-पेंच और कुत्सित व्यवहार से परिचित न थे। यज़ीद राजनीति में पक्का था। उसने अपने पिता अमीर मुआविया से कूट-नीति की शिक्षा पाई थी। उसके गोत्र (क़बीले) के लोग सब कूट-नीति के पंडित थे। धर्म को वे केवल स्वार्थ का एक साधन समझते थे। भोग-विलास और ऐश्वर्य-भोग का उनको चसका पड़ चुका था। ऐसे प्राणियों के सामने व्रत-धारी हुसैन की न चल सकती थी, और न चली।

यज़ीद ने मदीने के सूबेदार को लिखा कि तुम हुसैन से मेरे नाम पर बैयत, अर्थात् उनसे मेरे ख़लीफ़ा होने की शपथ, लो। मतलब यह कि वह गुप्त रीति से उन्हें क़त्ल करने का षड्यंत्र रचने लगा। हुसैन ने बैयत लेने से इनकार किया। यज़ीद ने समझा, हुसैन बग़ावत करना चाहते हैं, अतएव वह उनसे लड़ने के लिये

शक्ति-संचय करने लगा। कूफ़ा-प्रांत के लोगों को हुसैन से प्रेम था। वे उन्हीं को अपना ख़लीफ़ा बनाने के पक्ष में थे। यज़ीद को जो यह बात मालूम हुई, तो उसने कूफ़ा के नेताओं को धमकाना और नाना प्रकार के कष्ट देना शुरू किया। तब कूफ़ा-निवासियों ने हुसैन के पास, जो उस समय मदीने से मक्के चले गए थे, सँदेसा भेजा कि आप आकर हमें इस संकट से मुक्त कीजिए। हुसैन ने इस सँदेसे का कुछ उत्तर न दिया। वह राज्य के लिये ख़ून नहीं बहाना चाहते थे। इधर कूफ़ा में हुसैन के प्रेमियों की संख्या बढ़ने लगी। लोग उनके नाम पर बैयत करने लगे। इन लोगों की संख्या थोड़े ही दिनों में २० हज़ार तक पहुँच गई। इसी बीच में इन्होंने दो पैग़ाम और भेजे; किंतु हुसैन ने उनका भी कुछ उत्तर न दिया। अंत को कूफ़ावालों ने एक अत्यंत आग्रह-पूर्ण पत्र लिखा; जिसमें हुसैन को हज़रत मोहम्मद और दीन-इसलाम के वास्ते अपनी सहायता को बुलाया था। बहुत अनुनय-विनय के बाद लिखा था—"अगर आप न आए, तो कल क़यामत के दिन अल्लाहताला के हुज़ूर में हम आप पर दावा करेंगे, और कहेंगे—इलाही, हुसैन ने हमारे ऊपर अत्याचार किया था; क्योंकि हमारे ऊपर अत्याचार होते देखकर यह ख़ामोश बैठे रहे। और, सब लोग फ़र्याद करेंगे कि ऐ ख़ुदा, हुसैन से हमारा बदला दिला दे। उस समय आप क्या जवाब देंगे, और ख़ुदा को क्या मुँह दिखावेंगे?"

धर्म-परायण हुसैन ने यह पत्र पढ़ा, तो उनके रोएँ खड़े हो आए, और उनका दिल पानी-पानी हो गया। गालों पर आँसू बहने लगे। तुरत उन लोगों के नाम एक आश्वासन-पत्र लिखा कि "मैं शीघ्र ही तुम्हारी सहायता को आऊँगा।" अपने चचेरे भाई मुसलिम के हाथ उन्होंने यह पत्र कूफ़ावालों के पास भेज दिया।

मुसलिम सफ़र की कठिनाइयाँ झेलते हुए कूफ़ा पहुँचे। उस समय कूफ़ा का सूबेदार एक शांत पुरुष था; जिसने लोगों को समझाया कि "शहर में कोई उपद्रव न होने पावे। मैं उस वक़्त तक किसी को न छेड़ूँगा, जब तक कोई मुझे दिक़ न करेगा।"

यज़ीद को मुसलिम के कूफ़ा पहुँचने की ख़बर मिली, तो उसने एक दूसरे सूबेदार को कूफ़ा में नियुक्त किया; जिसका नाम 'ओबैद बिन ज़ियाद' था। यह बड़ा निठुर और कुटिल प्रकृति का मनुष्य था। इसने आते-ही-आते कूफ़ा में एक सभा की, और उसमें घोषणा की कि "जो लोग यज़ीद के नाम पर बैयत लेंगे, उनके ऊपर ख़लीफ़ा की कृपा-दृष्टि होगी; पर जो लोग हुसैन के नाम पर बैयत लेंगे, उनके साथ किसी तरह की रिआयत न की जायगी। हम उसे सूली पर चढ़ा देंगे, और उसकी जागीर या वृत्ति ज़ब्त कर लेंगे।" इस घोषणा ने यथेष्ट प्रभाव डाला। कूफ़ावालों के कलेजे काँप उठे! ज़ियाद को वे भली भाँति जानते थे। उसी दिन मुसलिम भी मस्जिद में नमाज़ पढ़ाने के लिये खड़े हुए, तो किसी ने उनका साथ न दिया। जिन लोगों ने पहले हुसैन के नाम आवेदन-पत्र भेजे थे, उनका अब कहीं पता न था। सभी के हौसले पस्त हो गए थे। मुसलिम ने एक बार कुछ लोगों की मदद से ज़ियाद को घेर लिया। लेकिन ज़ियाद ने अपने एक विश्वास-पात्र सेवक के मकान की छत पर चढ़कर लोगों को यह सँदेसा दिलाया "कि जो लोग यज़ीद की मदद करेंगे, उन्हें जागीर दी जायगी, और जो लोग बग़ावत करेंगे, उन्हें ऐसा दंड दिया जायगा कि उनके नाम को रोने-वाला भी न रहेगा।" नेतागण यह धमकी सुनकर दहल उठे, और मुसलिम को छोड़-छोड़कर दस-दस बीस-बीस आदमी बिदा होने लगे। यहाँ तक कि वहाँ मुसलिम अकेला रह गया। विवश होकर उसने एक वृद्धा के घर में शरण लेकर अपनी जान बचाई। दूसरे दिन जब ओबैदुल्लाह को मालूम हुआ कि मुसलिम अमुक वृद्धा के घर में छिपा हुआ है, तो उसने ३०० सिपाहियों को उसे गिरफ़्तार करने के लिये भेजा। मुसलिम ने तलवार खींच ली, और शत्रुओं पर टूट पड़े। पर अकेले आदमी थे। थोड़ी देर में ज़ख़्मी होकर गिर पड़े। उस वक़्त सूबेदार से उनकी जो बातें हुईं, उनसे विदित होता है कि वह कैसे वीर पुरुष थे। गवर्नर उनकी निडर बातों से और भी गरम हो गया। उसने तुरत उन्हें क़त्ल करा दिया।

(२)

हुसैन, अपने पूज्य पिता की भाँति, फ़क़ीरों का-सा सरल जीवन व्यतीत करने के लिये बनाए गए थे। कोई चतुर आदमी होता, तो उस समय दुर्गम पहाड़ियों में जा छिपता,

और यमन के प्राकृतिक दुर्गों में बैठकर चारों ओर से सेना एकत्र करता । देश में उनका जितना मान और लोगों को उन पर जितनी भक्ति थी, उसके देखते २०-२५ हज़ार सेना एकत्र कर लेना कठिन न था। किंतु वह अपनेको पहले ही से हारा हुआ समझने लगे। यह सोचकर कहीं भागते न थे कि शत्रु मुझे ज़रूर खोज निकालेगा। सेना जमा करने का भी प्रयत्न न करते थे। यहाँ तक कि जो लोग उनके साथ थे, उन्हें भी अपने पास से चले जाने की सलाह देते थे। यही नहीं, उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि मैं ख़लीफ़ा बनना चाहता हूँ ; बल्कि सदैव यही कहते रहे कि मुझे लौट जाने दो, मैं किसी से लड़ाई नहीं करना चाहता । उनकी आत्मा इतनी उच्च थी कि वह सांसारिक राज्य-भोग के लिये संग्राम-क्षेत्र में उतरकर उसे कलुषित नहीं करना चाहते थे। उनके जीवन का उद्देश्य आत्म-शुद्धि और धार्मिक जीवन था। वह कूफ़ा आने को इसलिये नहीं सहमत हुए थे कि वहाँ अपनी ख़िलाफ़त क़ायम करें ; बल्कि इसलिये कि वह अपने धर्मावलंबियों की मुसीबत को किसी तरह देख न सकते थे। वह कूफ़ा जाते समय सब संबंधियों से स्पष्ट शब्दों में कहते थे कि मैं शहीद होने जा रहा हूँ । यहाँ तक कि वह एक स्वप्न का भी उल्लेख करते थे, जिसमें उनके नाना ने उनको स्वर्ग आने का निमंत्रण दिया था, और वह उनके आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनकी टेक केवल यह थी कि मैं यज़ीद के नाम पर बैयत न करूँगा । इसका कारण यही था कि यज़ीद शराब-ख़ोर, व्यभिचारी और इसलाम-धर्म के नियमों का पालन न करनेवाला था । यदि यज़ीद ने उनकी हत्या कराने की चेष्टा न की होती, तो वह शांति-पूर्वक मदीने में ज़िंदगी-भर पड़े रहते । पर समस्या कुछ ऐसी थी कि उनके जीवित रहते हुए यज़ीद को अपना स्थान सुरक्षित नहीं मालूम हो सकता था । उसके निष्कंटक राज्य-भोग के लिये हुसैन का उसकी राह से सदा के लिये हट जाना परमावश्यक था । और, चूँकि ख़िलाफ़त एक धर्म-प्रधान संस्था थी, इसलिये उसे हुसैन के रण-क्षेत्र में आने का इतना भय न था, जितना उनके शांति-सेवन का ; क्योंकि शांति-सेवन से जनता पर उनका प्रभाव बढ़ता जाता । इस बात की पुष्टि इसी से होती है कि यज़ीद ने यह भी कहा था कि हुसैन का केवल उसके नाम पर बैयत लेना ही काफ़ी नहीं है, उन्हें उसके दरबार में भी आना चाहिए । यज़ीद को उनकी बैयत पर विश्वास न था। वह उन्हें किसी भाँति अपने दरबार में बुलाकर उनके जीवन-कांड को समाप्त कर देना चाहता था। इसलिये यह धारणा कि हुसैन अपनी ख़िलाफ़त क़ायम करने के लिये कूफ़ा गए, निर्मूल सिद्ध होती है। वह कूफ़ा इसलिये गए कि अत्याचार-पीड़ित कूफ़ा-निवासियों की सहायता करना चाहते थे, और उन्हें प्राण-रक्षा के लिये कोई जगह नज़र नहीं आती थी। यदि वह ख़िलाफ़त के उद्देश्य से कूफ़ा जाते, तो केवल अपने कुटुंब के ७२ प्राणियों के साथ न जाते, जिनमें बाल, वृद्ध, सभी शामिल थे । कूफ़ावालों पर कितना ही विश्वास होने पर भी वह अपने साथ ज़्यादा आदमियों को लाने का प्रयत्न करते । इसके सिवा उन्हें पहले से यह बात ज्ञात थी कि कूफ़ा के लोग अपने वचन पर दृढ़ रहनेवाले नहीं हैं। कई बार इसका प्रमाण मिल चुका था कि वे थोड़े-से प्रलोभन पर भी अपने वचनों से विमुख हो जाते हैं । हुसैन के इष्ट-मित्रों ने उनका ध्यान कूफ़ावालों की दुर्बलता की ओर खींचा भी, पर हुसैन ने उनकी सलाह न मानी । वह शहादत का प्याला पीने के लिये, अपनेको धर्म की बेदी पर बलि देने के लिये, विकल हो रहे थे। इसी से हितैषियों के मना करने पर भी कूफ़ा को चले । दैव-संयोग से यह तिथि वही थी, जिस दिन कूफ़ा में मुसलिम शहीद हुए थे। १८ दिन की कठिन यात्रा के बाद वह 'नाहनेवा' के समीप, कर्बला के मैदान में पहुँचे; जो फ़रात-नदी के किनारे था । इस मैदान में न कोई बस्ती थी, न कोई वृक्ष । कूफ़ा के गवर्नर की आज्ञा से वह इसी निर्जन और निर्जल स्थान में डेरे डालने को विवश किए गए।

शत्रुओं की सेना हुसैन के पीछे-पीछे मक्के ही से आ रही थी। और सेनाएँ भी चारों ओर फैला दी गई थीं कि हुसैन किसी गुप्त मार्ग से कूफ़ा न पहुँच जायँ। कर्बला पहुँचने के एक दिन पहले 'हुर' की सेना मिली। हुसैन ने हुर को बुलाकर पूछा कि "तुम मेरे पक्ष में हो, या विपक्ष में ?" हुर ने कहा—"मैं आपसे लड़ने के लिये भेजा गया हूँ।" जब तीसरा पहर हुआ, तो हुसैन नमाज़ पढ़ने के लिये खड़े हुए, और उन्होंने हुर से पूछा कि "तू क्या मेरे पीछे खड़ा होकर नमाज़ पढ़ेगा ?" हुर ने हुसैन के पीछे खड़े होकर

नमाज़ पढ़ना स्वीकार किया। हुसैन ने अपने साथियों के साथ हुर की सेना को भी नमाज़ पढ़ाई। हुर ने यज़ीद की बैयत ली थी। पर वह सद्-विचारशील पुरुष था। हज़रत मोहम्मद के नवासे से लड़ने में उसे संकोच होता था। वह बड़े धर्म-संकट में पड़ा था। वह सच्चे दिल से चाहता था कि हुसैन मक्का लौट जायँ। वह प्रकट रूप से तो हुसैन को ओबैदुल्लाह के पास ले चलने की धमकी देता था, पर दिल से उन्हें अपने हाथों कोई हानि नहीं पहुँचाना चाहता था। उसने खुले हुए शब्दों में हुसैन से कहा—"यदि मुझसे कोई ऐसा अनुचित कार्य हो गया, जिससे आपको कोई कष्ट पहुँचा, तो मेरे लोक और परलोक, दोनों ही बिगड़ जायँगे। और, अगर मैं आपको ओबैदुल्लाह के पास न ले जाऊँ, तो कूफ़ा में नहीं घुस सकता। हाँ, संसार विस्तृत है; क़यामत के दिन आपके नाना की कृपा-दृष्टि से वंचित होने की अपेक्षा यही कहीं अच्छा है कि किसी दूसरी ओर निकल जाऊँ। आप मुख्य मार्ग को छोड़कर किसी अज्ञात मार्ग से कहीं और चले जायँ, मैं कूफ़ा के गवर्नर अर्थात् 'आमिल' को लिख दूँगा कि हुसैन से मेरी भेंट नहीं हुई; वह किसी दूसरी तरफ़ चले गए। मैं आपको क़सम दिलाता हूँ कि अपने ऊपर दया कीजिए और कूफ़ा न जाइए।" पर हुसैन ने कहा—"तुम मुझे मौत से क्या डराते हो? मैं तो शहीद होने के लिये चला ही हूँ।" उस समय यदि हुसैन हुर की सेना पर आक्रमण करते, तो संभव था कि उसे परास्त कर देते; पर अपने इष्ट-मित्रों के अनुरोध करने पर भी उन्होंने यही कहा कि "हम लड़ाई के मैदान में अग्रसर न होंगे, यह हमारी नीति के विरुद्ध है।" इससे भी यही बात सिद्ध होती है कि हुसैन को अब अपनी आत्मरक्षा का कोई उपाय न सूझता था। उनमें फ़क़ीरों का-सा संतोष था; पर योद्धाओं का-सा धैर्य न था; जो कठिन-से-कठिन समय पर भी कष्ट-निवारण का उपाय निकाल लेता है। उनमें महात्मा गाँधी का आत्म-समर्पण था; किंतु शिवाजी की दूरदर्शिता न थी।

(३)

इधर तो हुसैन और उनके आत्मीय तथा सहायक गण अपने-अपने ख़ीमे गाड़ रहे थे, और उधर ओबैदुल्लाह—कूफ़ा का गवर्नर—लड़ाई की तैयारी में दत्त-चित्त था। उसने 'उमर बिन साद' नाम के एक योद्धा को बुलाकर हुसैन की हत्या करने के लिये नियुक्त किया, और इसके बदले में 'रे'-सूबे के आमिल का उच्च पद पेश किया। उमर बिन साद विवेक-हीन प्राणी न था। वह भली भाँति जानता था कि हुसैन की हत्या करने से मेरे मुख पर ऐसी कालिमा लग जायगी, जो प्रलय तक न धुल सकेगी; किंतु रे-सूबे का उच्च पद उसे असमंजस में डाले हुए था। उसके संबंधियों ने समझाया कि "तुम हुसैन को क़त्ल करने का बीड़ा न उठाओ; इसका परिणाम अच्छा न होगा।" उमर ने जाकर ओबैदुल्लाह से कहा भी कि "मेरे सिर पर हुसैन के वध का भार न रखिए", लेकिन 'रे' की गवर्नरी छोड़ने को वह तैयार न हो सका। अतएव जब ओबैदुल्लाह ने साफ़-साफ़ कह दिया कि "रे का उच्च पद हुसैन की हत्या किए बिना नहीं मिल सकता; अगर तुम्हें यह सौदा महँगा जँचता हो, तो कोई ज़बरदस्ती नहीं है। किसी और को यह पद दिया जायगा।", तो उमर का आसन डोल गया। वह इस निषिद्ध कार्य के लिये तैयार हो गया। उसने अपनी आत्मा को ऐश्वर्य-लालसा के हाथ बेच दिया। ओबैदुल्लाह ने प्रसन्न होकर उसे बहुत कुछ इनाम-इक़राम दिया, और ४ हज़ार सैनिक उसके साथ नियुक्त कर दिए। उमर बिन साद की आत्मा अब भी उसे क्षुब्ध करती रही। वह सारी रात पड़ा अपनी अवस्था या दुरवस्था पर विचार करता रहा। वह जिस विचार से देखता, उसी से अपना यह कर्म घृणित जान पड़ता था। प्रातःकाल वह फिर कूफ़ा के गवर्नर के पास गया। उसने फिर अपनी लाचारी दिखाई। लेकिन 'रे' की सूबेदारी ने उस पर फिर विजय पाई। जब वह चलने लगा, तो ओबैदुल्लाह ने उसे कड़ी ताक़ीद कर दी कि हुसैन और उनके साथी फ़रात-नदी के समीप किसी तरह न आने पावें, और एक घूँट पानी भी न पी सकें। हुर की १००० सेना भी उमर के साथ आ मिली। इस प्रकार उमर के साथ ५ हज़ार सैनिक हो गए। उमर अब भी यही चाहता था कि हुसैन के साथ लड़ना न पड़े। उसने एक दूत उनके पास भेजकर पूछा कि "आप अब क्या निश्चय करते हैं?" हुसैन ने कहा—"कूफ़ावालों ने मुझसे दग़ा की है। उन्होंने अपने कष्ट की कथा कहकर मुझे यहाँ बुलाया, और अब वे मेरे शत्रु हो गए हैं। ऐसी दशा में मैं मक्के लौट जाना

चाहता हूँ, यदि मुझे ज़बरदस्ती रोका न जाय।" उमर मन में प्रसन्न हुआ कि शायद अब कलंक से बच जाऊँ। उसने यह समाचार तुरत ओबैदुल्लाह को लिख भेजा। लेकिन वहाँ तो हुसैन की हत्या करने का निश्चय हो चुका था। उसने उमर को उत्तर दिया कि "हुसैन से बैयत लो। और, यदि वह इस पर राज़ी न हों, तो मेरे पास लाओ।"

शत्रुओं को, इतनी सेना जमा कर लेने पर भी, सहसा हुसैन पर आक्रमण करते डर लगता था कि कहीं जनता में उपद्रव न मच जाय। इसलिये इधर तो उमर बिन साद कर्बला को चला, और उधर ओबैदुल्लाह ने कूफ़ा की जामा-मसजिद में लोगों को जमा किया। उसने एक व्याख्यान देकर उन्हें समझाया कि "यज़ीद के ख़ानदान ने तुम लोगों पर कितना न्याय-युक्त शासन किया है, और वे तुम्हारे साथ कितनी उदारता से पेश आए हैं! यज़ीद ने अपने सुशासन से देश को कितना समृद्धि-पूर्ण बना दिया है! रास्ते में अब चोरों और लुटेरों का कोई खटका नहीं है। न्यायालयों में सच्चा, निष्पक्ष न्याय होता है। उसने कर्मचारियों के वेतन बढ़ा दिए हैं। राजभक्तों की जागीरें बढ़ा दी गई हैं। विद्रोहियों के कोट तहस-नहस कर दिए हैं, जिसमें वे तुम्हारी शांति में बाधक न हो सकें। तुम्हारे जीवन-निर्वाह के लिये उसने चिरस्थायी सुविधाएँ दे रक्खी हैं। ये सब उसकी दयाशीलता और उदारता के प्रमाण हैं। यज़ीद ने मेरे नाम फ़रमान भेजा है कि मैं तुम्हारे ऊपर विशेष कृपा-दृष्टि करूँ, और जिसे एक दीनार वृत्ति मिलती है, उसकी वृत्ति १०० दीनार कर दूँ। इसी तरह वेतन में भी वृद्धि कर दूँ, और तुम्हें उसके शत्रु हुसैन से लड़ने के लिये भेजूँ। यदि तुम अपनी उन्नति और वृद्धि चाहते हो, तो तुरत तैयार हो जाओ। विलंब करने से काम बिगड़ जायगा।"

यह व्याख्यान सुनते ही स्वार्थ के मतवाले नेता लोग, धर्माधर्म के विचार को तिलांजलि देकर, समर-भूमि में चलने की तैयारी करने लगे। 'शिमर' ने चार हज़ार सवार जमा किए, और वह उमर बिन साद से जा मिला। रिकाब ने दो हज़ार, हसीन ने चार हज़ार, मसायर ने तीन हज़ार और अन्य एक सरदार ने दो हज़ार योद्धा जमा किए। सब-के-सब दल-बल साजकर कर्बला को चले। उमर बिन साद के पास अब पूरे २२ सहस्र सैनिक हो गए। कैसी दिल्लगी है कि ७२ आदमियों को परास्त करने के लिये इतनी बड़ी सेना खड़ी हो जाय। उन ७२ आदमियों में भी कितने ही बालक और कितने ही वृद्ध थे। फिर प्यास ने सभी को अधमरा कर रक्खा था।

किंतु शत्रुओं ने अवस्था को भली भाँति समझकर यह तैयारी की थी। हुसैन की शक्ति न्याय और सत्य की शक्ति थी। यह यज़ीद और हुसैन का संग्राम न था। यह इसलाम की धार्मिक जन-सत्ता का पूर्व इसलाम की राज-सत्ता से संघर्ष था। हुसैन उन सब व्यवस्थाओं के पक्ष में थे, जिनका हज़रत मोहम्मद द्वारा प्रादुर्भाव हुआ था। मगर यज़ीद उन सभी बातों का प्रतिपक्षी था। दैवयोग से इस समय अधर्म ने धर्म को पैरों-तले दबा लिया था; पर यह अवस्था एक क्षण में परिवर्तित हो सकती थी, और इसके लक्षण भी प्रकट होने लगे थे। बहुतेरे सैनिक जाने को तो चले जाते थे, लेकिन अधर्म के विचार से, सेना से, भाग आते थे। जब ओबैदुल्लाह को यह बात मालूम हुई, तो उसने कई निरीक्षक नियुक्त किए। उनका काम यही था कि भागनेवालों का पता लगावें। कई सिपाही इस प्रकार जान से मार डाले गए। यह चाल ठीक पड़ी। भगोड़े भय-भीत होकर फिर सेना में जा मिले।

इस संग्राम में सबसे घोर निर्दयता जो शत्रुओं ने हुसैन के साथ की, वह पानी का बंद कर देना था। ओबैदुल्लाह ने उमर को कड़ी ताक़ीद कर दी थी कि हुसैन के आदमी नदी के समीप न जाने पावें। यहाँ तक कि वे कुएँ खोदकर भी पानी न निकालने पावें। एक सेना फ़रात-नदी की रक्षा करने के लिये भेज दी गई। उसने हुसैन की सेना और नदी के बीच में डेरा जमाया। नदी की ओर जाने का कोई रास्ता न रहा। थोड़े नहीं, छः हज़ार सिपाही नदी का पहरा दे रहे थे। हुसैन ने यह ढंग देखा, तो स्वयं इन सिपाहियों के सामने गए, और उन पर प्रभाव डालने की कोशिश की। पर उन पर कुछ असर न हुआ। लाचार होकर यह लौट आए। उस समय प्यास के मारे इनका कंठ सूखा जाता था, स्त्रियाँ और बच्चे बिलख रहे थे; किंतु उन पाषाण-हृदय पिशाचों को इन पर दया न आती थी।

शहीद होने के तीन दिन पहले हुसैन और अन्य प्राणी प्यास के मारे बेहोश हो गए। तब हुसैन ने अपने प्रिय बंधु अब्बास को बुलाकर, उन्हें २० सवार तथा ३० पैदल देकर, उनसे कहा—"अपने साथ २० मश्कें ले जाओ, और पानी से भर लाओ।" अब्बास ने सहर्ष इस आदेश को स्वीकार किया। वह नदी के किनारे पहुँचे। पहरेदार ने पुकारा—"कौन है?" इधर उस पहरेदार का एक भाई भी था। वह बोला—"मैं हूँ तेरे चचा का बेटा, पानी पीने आया हूँ।" पहरेदार ने कहा—"पी ले।" भाई ने उत्तर दिया—"कैसे पी लूँ? जब हुसैन और उनके बाल-बच्चे प्यासों मर रहे हैं, तो मैं किस मुँह से पी लूँ?" पहरेदार ने कहा—"यह तो जानता हूँ, पर करूँ क्या, हुक्म से मजबूर हूँ!" अब्बास के आदमी मश्कें लेकर नदी की ओर गए, और पानी भर लिया। रक्षक-दल ने इनको रोकने की चेष्टा की, पर ये लोग पानी लिए हुए बच निकले।

हुसैन ने फिर अंतिम बार संधि करने का प्रयास किया। उन्होंने उमर बिन साद को सँदेसा भेजा कि "आज तुम मुझसे रात को, दोनों सेनाओं के बीच में, मिलना।" उमर निश्चित समय पर आया। हुसैन से उसकी बहुत देर तक एकांत में बातें हुईं। हुसैन ने संधि की तीन शर्तें बताईं—(१) या तो हम लोगों को मक्के वापस जाने दिया जाय, (२) या सीमा-प्रांत की ओर शांति-पूर्वक चले जाने की अनुमति मिले, (३) या मैं यज़ीद के पास भेज दिया जाऊँ। उमर ने ओबैदुल्लाह को यह शुभ सूचना सुनाई, और वह उसे मानने के लिये तैयार भी मालूम होता था; किंतु शिमर ने ज़ोर दिया कि दुश्मन चंगुल में आ फँसा है, तो उसे निकलने न दो; नहीं तो उसकी शक्ति इतनी बढ़ जायगी कि तुम उसका सामना न कर सकोगे। उमर मजबूर हो गया।

मोहर्रम की ९वीं तारीख़ को, अर्थात् हुसैन की शहादत से एक दिन पहले, कूफ़ा के दिहातों से कुछ लोग हुसैन की सहायता करने आए। ओबैदुल्लाह को यह बात मालूम हुई, तो उसने उन आदमियों को भगा दिया, और उमर को लिखा कि "अब तुरत हुसैन पर आक्रमण करो; नहीं तो इस टालमटोल की तुम्हें सज़ा दी जायगी।" फिर क्या था, प्रातःकाल २२हज़ार योद्धाओं की सेना हुसैन से लड़ने चली। जुगनू की चमक बुझाने के लिये मेघ-मंडल का प्रकोप हुआ।

हुसैन को मालूम हुआ, तो वह घबराए। उन्हें यह अन्याय मालूम हुआ कि अपने साथ अपने साथियों और सहायकों के भी प्राणों की आहुति दें। उन्होंने इन लोगों को इसका एक अवसर देना उचित समझा कि वे चाहें, तो अपनी जान बचावें; क्योंकि यज़ीद को उन लोगों से कोई शत्रुता न थी। इसलिये उन्होंने उमर. साद को पैग़ाम भेजा कि हमें एक रात के लिये मोहलत दो। उमर ने अन्य सेना-नायकों से परामर्श करके मोहलत दे दी। तब हज़रत हुसैन ने अपने समस्त सहायकों तथा परिवारवालों को बुलाकर कहा—"कल ज़रूर यह भूमि मेरे खून से लाल हो जायगी। मैं तुम लोगों का हृदय से अनुगृहीत हूँ कि तुमने मेरा साथ दिया। मैं अल्लाहताला से दुआ करता हूँ कि वह तुम्हें इस नेकी का सवाब दे। तुमसे अधिक वीरात्मा और पवित्र हृदयवाले मनुष्य संसार में न होंगे। मैं तुम लोगों को सहर्ष आज्ञा देता हूँ कि तुममें से जिसकी जहाँ इच्छा हो, चला जाय। मैं किसी को दबाना नहीं चाहता। न किसी को मजबूर करता हूँ। किंतु इतना अनुरोध अवश्य करूँगा कि तुम-में से प्रत्येक मनुष्य मेरे आत्मीय जनों में से एक-एक को अपने साथ ले ले। संभव है, खुदा तुम्हें तबाही से बचा ले; क्योंकि शत्रु मेरे रुधिर का प्यासा है। मुझे पा जाने पर उसको और किसी की तलाश न होगी।"

यह कहकर उन्होंने इसलिये चिराग़ बुझा दिया कि जानेवालों को संकोचवश वहाँ न रहना पड़े। कितना महान् पवित्र और निस्स्वार्थ आत्म-समर्पण है!

किंतु इस वाक्य का समाप्त होना था कि सब लोग चिल्ला उठे—"हम ऐसा नहीं कर सकते। खुदा वह दिन न दिखावे कि हम आपके बाद जीते रहें। हम दूसरों को क्या मुँह दिखावेंगे? उनसे क्या यह कहेंगे कि हम अपने स्वामी, अपने बंधु तथा अपने इष्ट-मित्र को शत्रुओं के बीच में छोड़ आए, उनके साथ एक भाला भी न चलाया, एक तलवार भी न चलाई! हम आपको अकेला छोड़कर कदापि नहीं जा सकते। हम अपनेको, अपने धन को और अपने कुल को आपके चरणों पर न्योछावर कर देंगे।"

इस तरह ६वीं तारीख़, मोहर्रम, की रात आधी कटी। शेष रात्रि लोगों ने ईश्वर-प्रार्थना में काटी। हुसैन ने एक रात की मोहलत इसलिये नहीं ली थी कि समर की रही-सही तैयारी पूरी कर लें। प्रातःकाल तक सब लोग सिजदे करते और अपनी मुक्ति के लिये दुआएँ माँगते रहे।

(४)

प्रभात हुआ—वह प्रभात, जिसकी संसार के इतिहास में उपमा नहीं है! किसकी आँखों ने यह अलौकिक दृश्य देखा होगा कि ७२ आदमी २२ हज़ार योद्धाओं के सम्मुख खड़े हुसैन के पीछे सुबह की नमाज़ इसलिये पढ़ रहे हैं कि अपने इमाम के पीछे नमाज़ पढ़ने का शायद यह अंतिम सौभाग्य है। वे कैसे रणधीर पुरुष हैं, जो जानते हैं कि एक क्षण में हम सब-के-सब इस आँधी में उड़ जायँगे, लेकिन फिर भी पर्वत की भाँति अचल खड़े हैं; मानो संसार में कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जो उन्हें भय-भीत कर सके। किसी के मुख पर चिंता नहीं है, कोई निराश और हताश नहीं है। युद्ध के उन्माद ने, अपने सच्चे स्वामी के प्रति अटल विश्वास ने, उनके मुख को तेजस्वी बना दिया है। किसी के हृदय में कोई अभिलाषा नहीं है। अगर कोई अभिलाषा है, तो यही कि कैसे अपने स्वामी की रक्षा करें। इसे सेना कौन कहेगा, जिसके दमन को २२ सहस्र योद्धा एकत्र किए गए थे। इन ७२ प्राणियों में एक भी ऐसा न था; जो सर्वथा लड़ाई के योग्य हो। सब-के-सब भूख-प्यास से तड़प रहे थे। कितनों के शरीर पर तो मांस का नाम तक नहीं था, और उन्हें बिना ठोकर खाए दो पग चलना भी कठिन था। इस प्राण-पीड़ा के समय ये लोग उस सेना से लड़ने को तैयार थे, जिसमें अरब-देश के वे चुने हुए जवान थे, जिन पर अरब को गर्व हो सकता था।

उन दिनों समर की दो पद्धतियाँ थीं। एक तो सम्मिलित, जिसमें समस्त सेना मिलकर लड़ती थी, और दूसरी व्यक्ति-गत, जिसमें दोनों दलों से एक-एक योद्धा निकलकर लड़ते थे। हुसैन के साथ इतने कम आदमी थे कि सम्मिलित-संग्राम में शायद वह एक क्षण भी न ठहर सकते। अतः उनके लिये दूसरी शैली ही उपयुक्त थी। एक-एक करके योद्धागण समर-क्षेत्र में आने और शहीद होने लगे। लेकिन इसके पहले अंतिम बार हुसैन ने शत्रुओं से बड़ी ओजस्विनी भाषा में अपनी निर्दोषिता सिद्ध की। उनके अंतिम शब्द ये थे—

"ख़ुदा की क़सम मैं पद-दलित और अपमानित होकर तुम्हारी शरण न आऊँगा, और न मैं दासों की भाँति लाचार होकर यज़ीद की ख़िलाफ़त को स्वीकार करूँगा। ऐ ख़ुदा के बंदो! मैं ख़ुदा से शांति का प्रार्थी हूँ, और उन प्राणियों से, जिन्हें ख़ुदा पर विश्वास नहीं है, जो ग़रूर में अंधे हो रहे हैं, पनाह माँगता हूँ।"

इधर हुसैन अपने डेरों की ओर आए, और उधर उमर बिन साद ने पहला तीर चलाकर समर की घोषणा कर दी।

शेष कथा आत्म-त्याग, प्राण-समर्पण, विशाल धैर्य और अविचल वीरता की अलौकिक और स्मरणीय गाथा है; जिसके कहने और सुनने से आँखों में आँसू उमड़ आते हैं, जिस पर रोते हुए लोगों को १३ शताब्दियाँ बीत गईं, और अभी अनंत शताब्दियाँ रोते बीतेंगी।

हुर का ज़िक्र पहले आ चुका है। यह वही पुरुष है, जो एक हज़ार सिपाहियों के साथ हुसैन के साथ-साथ आया था, और जिसने उन्हें इस निर्जल मरुभूमि पर ठहरने को मजबूर किया था। उसे अभी तक आशा थी कि शायद ओबैदुल्लाह हुसैन के साथ न्याय करे। किंतु जब उसने देखा कि लड़ाई छिड़ गई, और अब समझौते की कोई आशा नहीं है, तो अपने कृत्य पर लज्जित होकर वह हुसैन की सेना से आ मिला। जब वह अनिश्चित भाव से अपने मोरचे से निकलकर हुसैन की सेना की ओर चला, तब उसी की सेना के एक सिपाही ने कहा—"तुमको मैंने किसी लड़ाई में इस तरह काँपते हुए चलते नहीं देखा।"

हुर ने उत्तर दिया—"मैं स्वर्ग और नरक की दुबधा में पड़ा हुआ हूँ; और सच यह है कि मैं स्वर्ग के सामने किसी चीज़ की हस्ती नहीं समझता, चाहे कोई मुझे मार डाले।"

यह कहकर उसने घोड़े को एड़ लगाई, और हुसैन के पास आ पहुँचा। हुसैन ने उसका अपराध क्षमा कर दिया, और उसे गले से लगाया। तब हुर ने अपनी सेना को संबोधित करके कहा—"तुम लोग हुसैन की शर्तें क्यों नहीं मानते? कितने खेद की बात है कि तुमने

स्वयं उन्हें बुलाया, और जब वह तुम्हारी सहायता करने आए, तो तुम उन्हीं को मारने पर उद्यत हो गए ! वह अपनी जान लेकर चले भी जाना चाहते हैं, किंतु तुम लोग उन्हें कहीं जाने भी नहीं देते ? सबसे बड़ा अन्याय यह कर रहे हो कि उन्हें नदी से पानी नहीं लेने देते ! जिस पानी को पशु और पक्षी तक पी सकते हैं, वह भी उन्हें मयस्सर नहीं !"

इस पर शत्रुओं ने उन पर तीरों की वर्षा कर दी, और हुर भी लड़ते हुए वीर-गति को प्राप्त हुए । उन्हीं के साथ उनका पुत्र भी शहीद हुआ ।

आश्चर्य होता है, और दुःख भी, कि इतना सब कुछ हो जाने पर भी हुसैन को इन नर-पिशाचों से कुछ कल्याण की आशा बनी हुई थी । वे जब अवसर पाते थे, तभी अपनी निर्दोषिता प्रकट करते हुए उनसे आत्म-रक्षा की प्रार्थना करते थे । दुराशा में भी यह आशा इसलिये थी कि वह हज़रत मोहम्मद के नवासे थे, और उन्हें आशा होती थी कि शायद अब भी मैं उनके नाम पर इस संकट से मुक्त हो जाऊँ । उनके इन सभी संभाषणों में आत्म-रक्षा की इतनी विशद चिंता व्याप्त है, जो दीन चाहे न हो, पर करुण अवश्य है, और एक आत्मदर्शी पुरुष के लिये, जो स्वर्ग में इससे कहीं उत्तम जीवन का स्वप्न देख रहा हो, जिसको अटल विश्वास हो कि स्वर्ग में हमारे लिये अकथनीय सुख उपस्थित हैं, शोभा नहीं देती । हुर के शहीद होने के पश्चात् हुसैन ने फिर शत्रु-सेना के सम्मुख खड़े होकर कहा—

"मैं तुमसे निवेदन करता हूँ कि मेरी इन तीन बातों में से एक को मान लो—

(१) मुझे यज़ीद के पास जाने दो कि उससे बहस करूँ । यदि मुझे निश्चय हो जायगा कि वह सत्य पर है, तो मैं उनकी बैयत कर लूँगा ।"

(इस पर किसी पाषाण-हृदय ने कहा—"तुम्हें यज़ीद के पास न जाने देंगे । तुम मधुर-भाषी हो, अपनी बातों में उसे फँसा लोगे, और इस समय मुक्त होकर देश में विद्रोह फैला दोगे ।")

(२) "जब यह नहीं मानते, तो छोड़ दो कि मैं अपने नाना के रौज़े की मुजाविरी करूँ ।"

(इस पर भी किसी ने उपर्युक्त शंका प्रकट की ।)

(३) "अगर ये दोनों बातें तुम्हें अस्वीकार हैं, तो मुझे और मेरे साथियों को पानी दो ; क्योंकि प्राणी-मात्र को पानी लेने का हक़ है ।"

(इसका भी वैसा ही कठोर और निराशा-जनक उत्तर मिला ।)

इस प्रश्नोत्तर के बाद हुसैन की ओर से बुरीर मैदान में आए । उधर से मुअक़िल निकला । बुरीर ने अपने प्रतिपक्षी को मार लिया, और फिर ख़ुद सेना के हाथों मारे गए । बुरीर के बाद अब्दुल्लाह निकले, और दस-बीस शत्रुओं को मारकर काम आए ।

अब्दुल्लाह के बाद उनका पुत्र, जिसका नाम वहब था, मैदान में आया । उसकी वीर-गाथा अत्यंत मर्मस्पर्शी है, और राजपूताने के अमर वीर-वृत्तांत की याद दिलाती है । वहब का विवाह हुए अभी केवल १७ दिन हुए थे । हाथ की मेंहदी तक न छूटी थी । जब उसके पिता शहीद हो गए, तो उसकी माता उससे बोली—

"मी ख़्वाहम कि मरा अज़ ख़ूनेख़ुद शरबते दिही ता शीरे कि अज़ पिस्ताने मन ख़ुरदे बर तो हलाल गरदद ।"

कितने सुंदर शब्द हैं, जो शायद ही किसी वीर-माता के मुँह से निकले होंगे । भावार्थ यह है—

"मेरी इच्छा है कि तू अपने रक्त का एक घूँट मुझे दे; जिसमें कि यह दूध, जो तूने मेरे स्तन से पिया है, तुझ पर हलाल हो जाय ।"

वहब के शहीद हो जाने के बाद क्रम से कई योद्धा निकले, और मारे गए । इसलामी-पुस्तकों में तो उनकी वीरता का बड़ा प्रशंसात्मक वर्णन किया गया है । उनमें से प्रत्येक ने कई-कई सौ शत्रुओं को परास्त किया । ये भक्तों के मानने की बातें हैं । जो लोग प्यास से तड़प रहे थे, भूख से जिनकी आँखों-तले अँधेरा छा जाता था, उनमें इतनी असाधारण शक्ति और वीरता कहाँ से आ गई ? उमर बिन साद की सेना में 'शिमर' बड़ा क्रूर और दुष्ट आदमी था । इस समर में हुसैन और उनके साथियों के साथ जिस अपमान-मिश्रित निर्दयता का व्यवहार किया गया, उसका दायित्व इसी शिमर के सिर है । यह धार्मिक संग्राम था, और इतिहास साक्षी है कि धार्मिक संग्रामों में पाशविक प्रवृत्तियाँ अत्यंत प्रचंड रूप धारण कर लेती हैं, लड़ाई के साधारण नियमों को पैरों-तले रौंदा जाता है । पर इस संग्राम में ऐसे प्रतिष्ठित प्राणी के साथ जितनी घोर दुष्टता और दुर्जनता दिखाई गई,

उसकी उपमा संसार के धार्मिक संग्रामों में भी मुशकिल से मिलेगी। हुसैन के जितने साथी शहीद हुए, प्रायः उन सभी की लाशों को पैरों-तले रौंदा गया, उनके सिर काटकर भालों पर उछाले और पैरों से ठुकराए गए। पर कोई भी अपमान और बड़ी-से-बड़ी निर्दयता उनकी उस कीर्ति को नहीं मिटा सकती, जो इसलाम के इतिहास का आज भी गौरव बढ़ा रही है। इसलाम के साहित्य और इतिहास में उन्हें वह स्थान प्राप्त है, जो हिंदू-साहित्य में अंगद, जामवंत, अर्जुन, भीष्म आदि को प्राप्त है। सूर्यास्त होते-होते सहायकों में कोई भी नहीं बचा।

अब निज कुटुंब के योद्धाओं की बारी आई। इस वंश के पूर्वज हाशिम नाम के एक पुरुष थे। इसीलिये हज़रत मोहम्मद का वंश हाशिमी कहलाता है। इस संग्राम में पहला हाशिमी जो क्षेत्र में आया, वह अब्दुल्लाह था। यह उसी मुसलिम नाम के वीर का बालक था, जो पहले शहीद हो चुका था। उसके बाद कुटुंब के और वीर निकले। जाफ़र, इमाम हसन के तीन बेटे, अब्बास के कई भाई, हज़रत अली के कई बेटे और सब बारी-बारी से लड़कर शहीद हुए। हज़रत अब्बास से हुसैन ने कहा—"मैं बहुत प्यासा हूँ।" संध्या हो गई थी। अब्बास पानी लाने चले; पर रास्ते में घिर गए। वह असाधारण वीर पुरुष थे। हाशिमी लोगों में इतनी वीरता से कोई नहीं लड़ा। एक हाथ कट गया, तो दूसरे हाथ से लड़े। जब वह हाथ भी कट गया, तो ज़मीन पर गिर पड़े। उनके मरने का हुसैन को अत्यंत शोक हुआ। बोले—"अब मेरी कमर टूट गई।" अब्बास के बाद हुसैन के नौजवान बेटे अली-अकबर मैदान में उतरे। हुसैन ने अपने हाथों उन्हें शस्त्रों से सुसज्जित किया। आह, कितना हृदय-विदारक दृश्य है! बेटे ने खड़े होकर हुसैन से जाने की आज्ञा माँगी, पिता का वीर हृदय अधीर हो गया। हुसैन ने निराशा और शोक से अली-अकबर को देखा, फिर आँखें नीची कर लीं; और रो दिए। जब वह शहीद हो गया, तो शोक-विह्वल पिता ने जाकर लाश के मुँह पर अपना मुँह रख दिया, और कहा—"बेटा, तुम्हारे बाद अब जीवन को धिक्कार है।" पुत्र-प्रेम की, इहलोक की ममता की आदर्श पर, धर्म पर, गौरव पर कितनी बड़ी विजय है!

अब हुसैन अकेले रह गए। केवल एक सात वर्ष का भतीजा और हसन का एक दुधमुँहा पोता बाक़ी था। हुसैन घोड़े पर सवार महिलाओं के ख़ीमों की ओर आए, और बोले—"बच्चे को लाओ; क्योंकि अब उसे कोई प्यार करनेवाला न रहेगा।" स्त्रियों ने शिशु को उनकी गोद में रख दिया। वह अभी उसे प्यार कर रहे थे कि अकस्मात् एक तीर उसकी छाती में लगा, और वह हुसैन की गोद ही में चल बसा। उन्होंने तुरत तलवार से गढ़ा खोदा, और बच्चे की लाश वहीं गाड़ दी। फिर अपने भतीजे को शत्रुओं के सामने खड़ा करके बोले—"ऐ अत्याचारियो, तुम्हारी निगाह में मैं पापी हूँ; पर इस बालक ने तो कोई अपराध नहीं किया? इसे क्यों प्यासों मारते हो?" यह सुनकर किसी नर-पिशाच ने एक तीर चलाया, जो बालक के गले को छेदता हुआ हुसैन की बाँह में गड़ गया। तीर के निकलते ही बालक की क्रीड़ाओं का अंत हो गया।

हुसैन अब रण-क्षेत्र की ओर चले। अब तक रण में जानेवालों को वह अपने ख़ीमे के द्वार तक पहुँचाने आया करते थे। उन्हें पहुँचानेवाला अब कोई मर्द न था। तब आपकी बहन ज़ैनब ने आपको रोकर बिदा किया। हुसैन अपनी पुत्री सक़ीना को बहुत प्यार करते थे। जब वह रोने लगी, तो आपने उसे छाती से लगाया, और तत्काल शोक के आवेग में कई शेर पढ़े; जिनका एक-एक शब्द करुण-रस में डूबा हुआ है। उनके रण-क्षेत्र में आते ही शत्रुओं में खलबली पड़ गई; जैसे गीदड़ों में कोई शेर आ गया। हुसैन तलवार चलाने लगे, और इतनी वीरता से लड़े कि दुश्मनों के छक्के छूट गए। जिधर उनका घोड़ा बिजली की तरह कड़ककर जाता था, लोग काई की भाँति फट जाते थे। कोई सामने आने की हिम्मत न कर सकता था। इस भाँति सिपाहियों के दलों को चीरते-फाड़ते वह फ़रात के किनारे पहुँच गए, और पानी पीना चाहते थे कि किसी ने कपट-भाव से कहा—"तुम यहाँ पानी पी रहे हो, उधर सेना स्त्रियों के ख़ीमों में घुसी जा रही है।" इतना सुनते ही लपककर इधर आए, तो ज्ञात हुआ कि किसी ने छल किया है। फिर मैदान में पहुँचे, और शत्रु-दल का संहार करने लगे। यहाँ तक कि शिमर ने तीन सेनाओं को मिलकर उन पर हमला करने की आज्ञा दी। इतना ही नहीं, बग़ल से और पीछे से भी उन पर तीरों की बौछार होने लगी। यहाँ तक कि ज़ख़्मों से चूर होकर वह ज़मीन

पर गिर पड़े और शिमर की आज्ञा से एक सैनिक ने उनका सिर काट लिया। कहते हैं, ज़ैनब यह दृश्य देखने के लिये ख़ीमे से बाहर निकल आई थीं। उसी समय उमर बिन साद से उनका सामना हो गया। तब वह बोलीं—"क्यों उमर, हुसैन इस बेकसी से मारे जायँ, और तुम देखते रहो ?" उमर का दिल भर आया, आँखें सजल हो गईं, और कई बूँदें दाढ़ी पर गिर पड़ीं।

हुसैन की शहादत के बाद शत्रुओं ने उनकी लाश की जो दुर्गति की, वह इतिहास की अत्यंत लज्जाजनक घटना है। उससे यह भली भाँति प्रकट हो जाता है कि मानव-हृदय कितना नीचे गिर सकता है। गुरु गोविंदसिंह के बच्चों की कथा भी यहाँ मात हो जाती है; क्योंकि ऐसा शायद ही कभी हुआ हो कि किसी धर्म-संचालक के नवासों को अपने नाना के अनुयायियों के हाथों यह बुरा दिन देखना पड़ा हो।

जब गर्द-ग़ुबार कम हुआ, तो लोगों ने देखा, हुसैन का घोड़ा मैमूँ हुसैन की लाश के पास खड़ा भूमि पर सिर पटकता और लाश को चूमता है। सहसा वह महिलाओं के ख़ीमों की तरफ़ गया। स्त्रियों ने उसका हिनहिनाना सुना, तो समझ गईं कि जो कुछ होनेवाला था, वह हो गया। सक़ीना मैमूँ से लिपटकर यों विलाप करने लगीं—

"ऐ मैमूँ, तूने हुसैन को क्यों छोड़ा ? अब हम किसका मुँह देखेंगी ? अब क्यों यहाँ रोता हुआ आया है !

ऐ मैमूँ, लौट जा; दिल न दुखा। अब हमसे स्नेह की आशा मत रख।

ऐ मैमूँ, तूने हुसैन को मौत का प्याला पिला दिया और वह रक्त में पड़े लोट रहे हैं !"

मानव-दुष्टता की परा काष्ठा है ! ग्रंथों में लिखा हुआ है कि जब हुसैन ज़ख़्मी होकर ज़मीन पर पड़े हुए थे, तो शत्रु-दलवाले उन्हें बिल्लौर के प्यालों में पानी भर-भर कर दिखाते, ललचाते, उनके मुँह के पास प्याला ले जाते, और वह जब पीने को मुँह खोलते, तो प्याला हटा लेते। शोक !

प्रेमचंद

तुलसीदास

१

हो सकता है सूर्य तुम्हारे तुल्य किस तरह तुलसीदास ?
होने पर भी अस्त, तुम्हारा छाया जग में अतुल प्रकाश।
दिन-दिन अधिकाधिक आलोकित होता है साहित्याकाश,
कविता-कला-कमलिनी का तुम करते हो दिन-रात विकास।

२

भक्तिभाव-भांडार तुम्हारा विमल उदार हृदय का सार,
था मानो आगार प्रेम का, परम ज्ञान का पारावार।
उसमें ऐसे कंज खिले थे सरस, अलौकिक सभी प्रकार;
जिनके सौरभ से आमोदित है सारा हिंदी-संसार।

३

हमको तुमने दिया न केवल काव्य-रत्न का ही उपहार;
रामचरित-मानस में तुमने भरा दर्शनों का भी सार।
भव-सागर तरने को तुमने की थी एक नाव तैयार;
यह सारा संसार उसी पर सुख से उतर रहा है पार।

४

तुमने किया त्याग पत्नी का, उस पर समझ प्रेम निज भ्रांत,
सनकर राम-भक्ति के रस में, तुम हो गए विरक्त नितांत।
पर तो भी क्या हुई तुम्हारी शृंगारिक वासना न शांत ?
किया अंत में कपट प्रिया से, बनकर कविता-कामिनि-कांत !

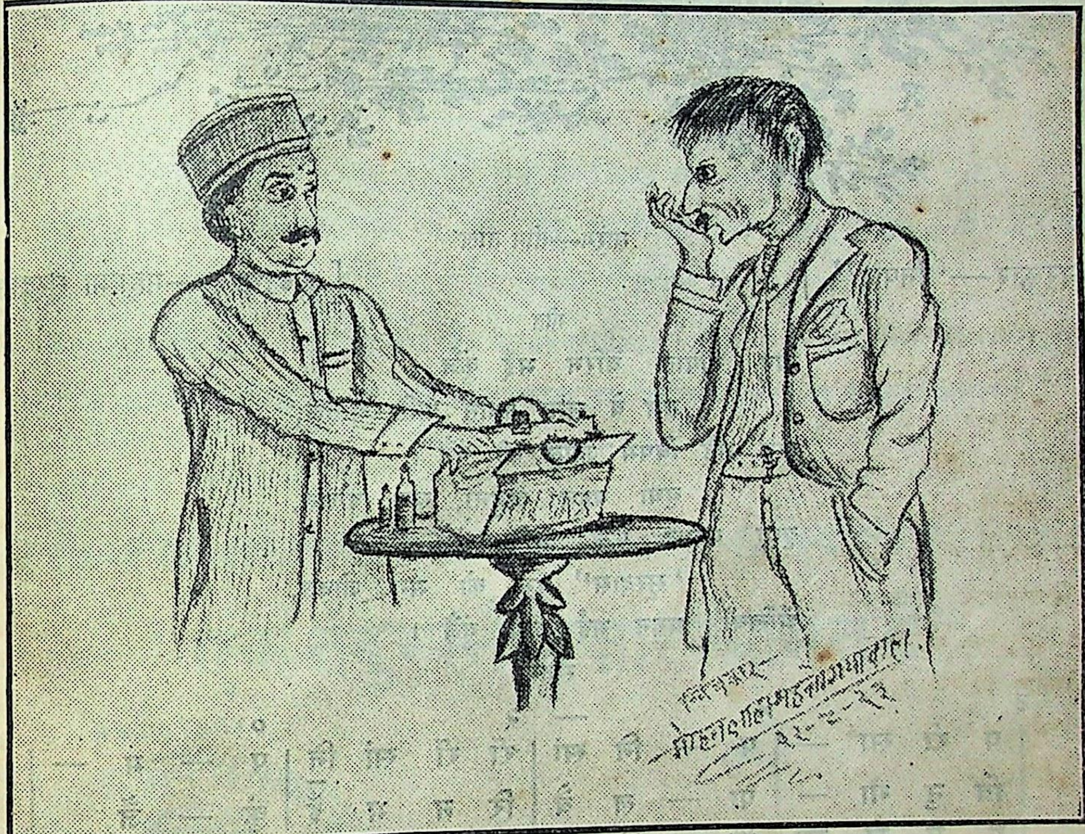
५

जिसकी कीर्ति-कौमुदी का है जग में फैला हुआ प्रकाश,
उसके ऊपर कुटिल काल का भी होता है विफल प्रयास।
कहीं नहीं तुम गए, हुआ है भौतिक तनु का केवल नाश;
ग्राम-ग्राम में, धाम-धाम में अब भी यहाँ तुम्हारा वास।

गोपालशरणसिंह

गँवार गाँहक

[चित्रकार—श्रीयुत मोहनलाल महत्तो]



करि फुलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि ;
रे गंधी मति-अंध तू, अतर दिखावत काहि ?
(विहारीलाल)



सारंग—तीन ताल

स्वरकार—"निषाद"] [शब्दकार—महात्मा सूरदास

गीत

बिनु गोपाल बैरिन भइँ कुंजें ।
तब वे लता लगत अति सीतल,
अब भइँ विषम ज्वाल की पुंजें ।
बृथा बहत जमुना, खग बोलत,
बृथा कमल फूलैं, अलि गुंजैं ;
"सूरदास" प्रभु को मग जोवत,
अँखियाँ अरुन भईं ज्यों गुंजैं ।

स्थायी

३				×			—	२				०			
प	री	सा	—	प	—	नि	सां	रीं	रीं	सां	नि	प	—	म	—
बि	नु	गो	—	पा	—	ल	बै	रि	न	भ	इँ	कुं	—	जैं	
प	म	री	सा	नि	सा	नि	सा	रेंम	पनी	सांरें	सांनी	प	—	म	—
बै	रि	न	भ	इँ	कुं-	जैं	बै	रि-	न-	भ-	इँ-	कुं	—	जैं	—

अंतरा

	रे	म	सा	रे	प	म	रे	सा	रे	म	रे	म	पनि	सांरें	रें	रें
१.	त	ब	वे	—	ल	ता	—	ल	ग	त	अ	ति	सी-	--	त	ल
२.	बृ	था	—	ब	ह	त	ज	मु	ना	—	ख	ग	बो-	--	ल	त
३.	सू	—	र	दा	—	स	प्र	भु	को	—	म	ग	जो-	--	व	त
	नि	नि	प	प	म	म	रे	रे	रें	रें	सां	नि	प	—	म	—
१.	अ	ब	भ	इँ	बि	ष	म	ज्वा	—	ल	की	—	पुं	—	जैं	—
२.	बृ	था	—	क	म	ल	फू	—	लैं	—	अ	लि	गुं	—	जैं	—
३.	अँ	खि	याँ	—	अ	रु	न	भ	ईं	—	ज्यों	—	गुं	—	जैं	—

संकेत

स्वर

१—जिन स्वरों के नीचे विंदु हो, वे मंद्र-सप्तक के, जिनमें कोई विंदु न हो, वे मध्य-सप्तक के, तथा जिनके शीर्ष में विंदु हो, वे तार-सप्तक के समझिए। जैसे—सा़, सा, सां।

२—जिन स्वरों के नीचे लकीर हो, उन्हें कोमल समझिए। जैसे—रे, ग, ध, नी। जिनमें कोई चिह्न न हो, वे तीव्र हैं। जैसे—रे, ग, ध, इत्यादि।

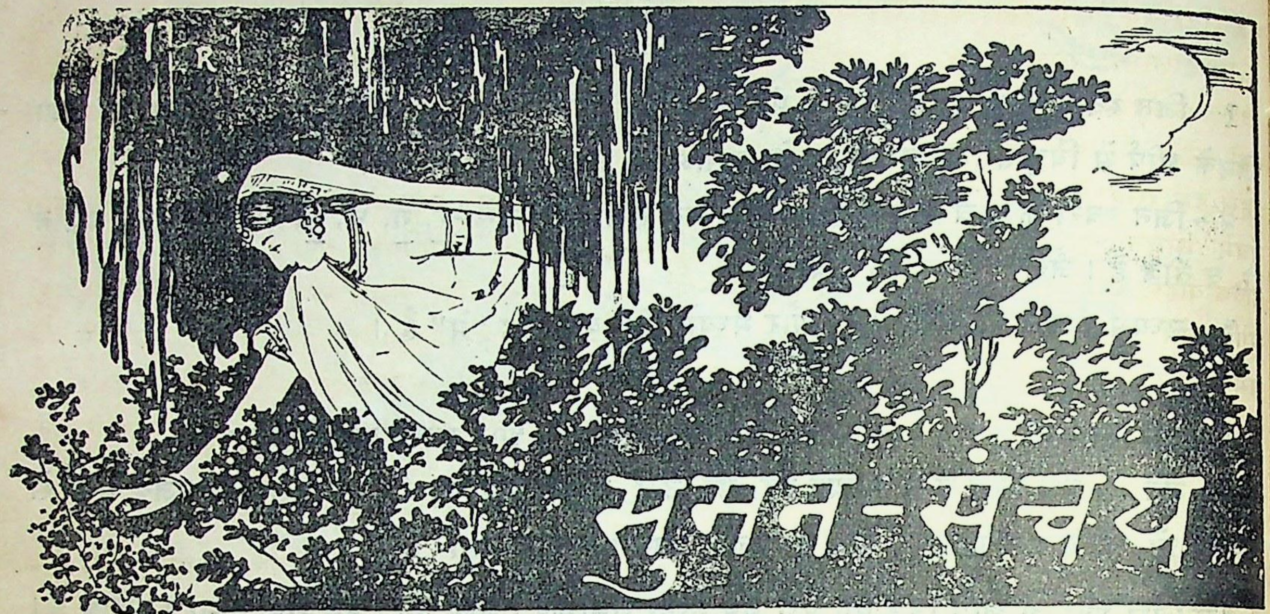
३—मध्यम-कोमल का चिह्न "म" और मध्यम तीव्र का चिह्न "मे" है।

ताल

१—सम का चिह्न × यह है, ताल के लिये अंक समझिए, और ख़ाली का द्योतक ० है।

२—जब ‿ इस चिह्न में एक स्वर रहे, तो उसे आधी मात्रा समझिए। जैसे—स। जब एक से अधिक हों, तो वे एक मात्रा में गाए या बजाए जायँगे। जैसे—सारे।

३—जिस स्वर के आगे विंदु हो, उसे डेढ़ मात्रा समझिए। जैसे—ग.।—यह दीर्घ मात्रा का चिह्न है। जिस स्वर के आगे यह चिह्न हो वह एक मात्रा-काल तक अधिक गाया या बजाया जायगा।



१. क्या चंद्रगुप्त शूद्र था ?

सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्यके विषयमें यह कहा जाता है कि वह महापद्म नंदकी दासी मुरासे उत्पन्न हुआ था, और यह बात परंपरासे इसी रूपमें चली आ रही है। अतएव यदि कोई कहे कि चंद्रगुप्त शूद्र नहीं था, तो संभव है कि उसकी बात सुननेको कोई राज़ी न हो; परंतु यह बात बहुत दिनोंसे हमारे ध्यानमें आई हुई है कि चंद्रगुप्त क्षत्रिय था। इसलिये आज हम इस विषय पर अपने कुछ विचार प्रकट करते हैं।

चंद्रगुप्तके शूद्र होनेका क्या प्रमाण है? पुराणोंमें क्षत्रियोंका अंत नंदोंसे मानकर जो यह लिखा है कि "शूद्रा महीपाला भविष्यंति", उससे लोगोंमें यह विचार बद्ध-मूल हो गया कि नंदके बाद क्षत्रिय राजा हुए ही नहीं, और जो हुए, वे शूद्र थे। चंद्रगुप्त भी नंदोंको मारकर सिंहासनपर बिठलाया गया था, इसलिये इसका शूद्र होना स्वयंसिद्ध-सा मान लिया गया था। इस समय हमारे लिये यह बतलाना तो कठिन है कि क्रमानुसार इसके शूद्रत्वको पुष्ट करनेवाली और-और कौन-सी बातें हुईं, परंतु विशाखदत्तके मुद्राराक्षससे इसका अप्रत्यक्ष समर्थन हुआ है। कारण, वहाँ चाणक्यने चंद्रगुप्तको "वृषल"-संबोधन से याद किया है, और वृषलका अर्थ शूद्र बतलाकर लोगोंने चंद्रगुप्तको शूद्रत्वका सार्टीफ़िकेट दे दिया है।

परंतु इन अधूरे प्रमाणोंपर चंद्रगुप्तको शूद्र मानना बड़ा भारी ऐतिहासिक अन्याय है। बहुत संभव है कि चंद्रगुप्तने अपनेको शूद्र प्रसिद्ध कर महापद्म नंदकी नौकरी कर ली हो, और चंद्रगुप्तके मगध-सम्राट् होनेपर पुराणों में वह प्रकारांतरसे शूद्र लिखा गया हो। परंतु यह किस प्रकार संभव है कि जिस समय शूद्रोंके और विशेषकर दासी-पुत्रके प्रति ब्राह्मणोंका आदर-भाव न हो, उस समय चाणक्य या विष्णुगुप्त कौटिल्य शूद्रको राज-सिंहासन पर बिठलावे? यही नहीं, चंद्रगुप्तके सिंहासनासीन होनेको शस्त्रों, शास्त्रों और पृथ्वीका उद्धार समझनेवाला कौटिल्य कभी शूद्रको सिंहासनपर बिठलावेगा, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। परंतु अर्थ-शास्त्र में कौटिल्यने अपने विषयमें कहा है—

"येन शास्त्रञ्च शस्त्रञ्च नन्दराजगता च भूः,
अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम्।"

इससे दो कल्पनाएँ की जा सकती हैं। या तो चंद्रगुप्त शूद्र नहीं था, या उस समयके ब्राह्मण शूद्रों-पर बड़े ही दयालु होते थे, और मदरासी ब्राह्मणोंकी भाँति उनकी छाया पड़नेसे ही अपनेको अपवित्र नहीं

मानते थे। हम समझते हैं कि पिछली कल्पना ब्राह्मण-शूद्र-इतिहासके किसी उदाहरणसे ठीक न ठहरेगी।

मुद्राराक्षसमें 'वृषल'-शब्दका जो प्रयोग चाणक्यसे चंद्रगुप्तके लिये कराया गया है, उससे भी यह सिद्ध नहीं होता कि वह शूद्र था। 'वृषल'-शब्द पहले-पहल हमें ऋग्वेदके दसवें मंडल के ३४वें सूक्त के ११वें मंत्रमें मिलता है। यहाँ उसका अर्थ शूद्र नहीं, बल्कि बहिष्कृत या पतित है। इसके बाद महाभारतके शांति-पर्वमें भी 'वृषल'का अर्थ शूद्र नहीं, बल्कि धर्मलोपी बतलाया गया है। मनुस्मृतिमें पौंड्र, द्रविड़, चीन आदि जातियोंको गिनाकर कहा है—

"शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं गता एताः ब्राह्मणादर्शनेन च॥"

अर्थात्, ये क्षत्रिय-जातियाँ क्रियाके लोप और ब्राह्मणों-के अदर्शनसे वृषलत्वको प्राप्त हो गई हैं। इससे क्या कोई यह कह सकता है कि ये शूद्र-जातियाँ हैं? बौद्ध लोग भी हीन कर्म करनेवाले ब्राह्मण को वृषल (वसल) मानते हैं। जान पड़ता है, पातित्य की प्रथम श्रेणीवाले व्रात्य और द्वितीय श्रेणीवाले वृषल कहलाते थे; क्योंकि मनुस्मृतिके दसवें अध्यायके २२वें श्लोकमें कहा गया है कि—"क्षत्रिय-जातिके व्रात्यसे झल्ल, मल्ल, लिच्छिवी, नट, करण, खश और द्राविड़ उत्पन्न हुए हैं।" इसके पहले २०वें श्लोकमें बतलाया गया है कि सजातीय स्त्रीसे द्विजोंके जो पुत्र होते हैं और अपने धर्म-कर्म का आचरण नहीं करते, वे सावित्रीके अधिकारी नहीं रहते, और उनकी संज्ञा 'व्रात्य' होती है। श्रीकृष्णके विरोधी भी उन्हें व्रात्य कहकर उनकी निंदा किया करते थे। इन बातों-से सिद्ध होता है कि क्रिया-हीन द्विजातियोंकी संज्ञा ही 'व्रात्य' और 'वृषल' होती है। अतएव 'वृषल' संबोधित होनेसे भी चंद्रगुप्त शूद्र नहीं हो जाता।

अब देखना चाहिए कि चंद्रगुप्तमें क्षत्रियत्वकी क्या बात थी। चंद्रगुप्तने तक्षशिलाके विश्वविद्यालयमें शिक्षा पाई थी, और वह यवनोंके साथ कुछ समय तक विदेशोंमें भी रहा था। वह विद्वान्, बुद्धिमान् और वीर था। कारण, उसने यवनोंको पंजाबसे मार ही नहीं भगाया था, बल्कि उन्हें दबकर संधि करने को बाध्य किया था। उसका मंत्री कौटिल्य विलक्षण राजनीतिज्ञ था, यह सच है; परंतु कौटिल्यकी सहायता पानेका वह सर्वथा अधिकारी था। जैन-ग्रंथों-में चंद्रगुप्त क्षत्रिय और जैन बतलाया गया है; परंतु इसके अतिरिक्त उसके क्षत्रिय होनेके और भी प्रमाण हैं। बौद्ध-ग्रंथ महावंशकी टीकामें लिखा है कि बुद्धके जीवन-कालमें ही कुछ शाक्य विडूडभसे उत्पीड़ित होनेके कारण हिमालय-प्रदेशमें चले गए थे, और वहाँ उन्होंने मोरियानगर (मौर्यनगर) बसाया था। यह स्थान मोरों-की बोलीसे सदा गूँजा करता था, इसीलिये इसका नाम मौर्यनगर रक्खा गया। बौद्धोंका मत है कि बुद्ध और सम्राट् अशोक एक ही वंशके थे; क्योंकि अशोक चंद्रगुप्तका पौत्र था, जो मोरियानगरकी रानी का बेटा था।

महावंश-टीका में पिप्पलीवनके मौर्योंका भी वर्णन मिलता है। दीर्घनिकाय-नामक ग्रंथमें वैशालीके लिच्छिवियों और कपिलवस्तुके शाक्योंके साथ ही अल्लकप्पाके बुलियों, रामगामके कोलियों और पिप्पली-वनके मौर्योंको भी क्षत्रिय-संघ कहा है। पिप्पलीवन-के मौर्योंको भी गौतम-बुद्धकी राख मिली थी, इस-लिये उनके क्षत्रिय होनेमें संदेह नहीं किया जा सकता। उस समयके लिच्छिवियों, शाक्यों, मल्लों आदिमें अस्थि या राख लेनेकी प्रबल इच्छा थी, और इसका कारण यही नहीं था कि वे बौद्ध थे, बल्कि वे बुद्धकी तरह अपनेको भी क्षत्रिय समझते थे। कुशीनरमें बुद्धकी राखके लिये अपना दावा पेश करनेके समय ये कहते थे कि बुद्ध क्षत्रिय थे, और हम भी क्षत्रिय हैं, इसलिये हम उनकी अस्थि या राख पानेके हक़दार हैं।

इन बातोंसे किसी निरपेक्ष मनुष्यके मनमें यह संदेह उत्पन्न हुए विना नहीं रह सकता कि चंद्रगुप्त शूद्र न होगा। पुरातत्त्वान्वेषियोंका कर्तव्य है कि वे इस विषय-पर अधिक प्रकाश डालें।

अंबिकाप्रसाद वाजपेयी

× × ×

२. वैदिक विमान

पुराण, रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों में विमान-संबंधी बहुत-सी बातें लिखी हुई हैं। बहुत प्राचीन समय में देवता विमान का व्यवहार करते थे, इसलिये भारत-वासी उन्हें आदर की दृष्टि से देखते थे। कभी-कभी देव-गण जब किसी राजा पर प्रसन्न हो जाते थे, तब उन्हें भी

विमान का व्यवहार करने की आज्ञा दे देते थे । रावण कुबेर के पुष्पक-विमान को ज़बरदस्ती छीन लाया था। पुराने समय के विमान सब जगह, सब दिशाओं तथा जल, स्थल और आकाश में चलते थे।

आज तक वेदों में विमान के होने का कोई प्रमाण नहीं पाया गया था । वैदिक युग की कोई बात यदि पुराणों में पाई जाती हो, पर वेदों में न पाई जाती हो, तो वह सहसा विश्वसनीय नहीं होती । परंतु ऋग्वेद में भी विमान-संबंधी बातें पाई जाती हैं । उदाहरण-स्वरूप कुछ प्रमाण नीचे दिए जाते हैं—

सोमापूषणारजसो विमानं
सत्यचक्रं रथं विश्वमिन्वम् ;
विषुवृतं मनसा युज्यमानं तं
जिन्वेथो वृषणापंचरश्मिम् ।
(ऋक् २।४०।३)

अर्थात्, हे अभीष्टवर्षी सोम और पूषा, तुम लोग रंजित अर्थात् चित्रित विमान-युक्त हो । तुम्हारे रथ सर्वत्र-गामी, अबाध-गति, इच्छानुसार चलनेवाले, सप्तचक्र और पंचपक्ष-विशिष्ट हों, और तुम लोग प्रीतिकर हो ।

इस प्रकार ऋग्वेद में चित्रित विमान का उल्लेख है । यह विमान सब जगह, सभी दिशाओं में, इच्छानुसार, अबाध गति से जा सकता था । इस विमान में पाँच पहिए और पाँच पंख थे । पहियों से शायद ज़मीन पर चलता और पंखों से आकाश में उड़ता था । शायद दोनों ओर दो-दो और पीछे एक पंख होता था ।

अवसिंधुं द्यौरिव स्वादुद्रप्सो न श्वेतो मगस्तुविष्मान् ;
गंभीरशंसो रजसो विमानः सुपारक्षत्रः सतो अस्य राजा ।
(ऋक् ७।८७।६)

अर्थात्, वरुण ने समुद्र को आकाश-जैसा स्थापित किया है । वह जल-बिंदु की नाईं उजले, मृग-जैसे बलवान्, अत्यंत प्रशंसित, चित्रित अंतरिक्ष-विमान-युक्त और समस्त सत्पदार्थों के राजा हैं ।

सहस्रोतिः शतमघो विमानो रजसः कविः इंद्राय पवते मदः ।
(ऋक् ९।६२।१४)

अर्थात्, अनेक प्रकार के द्रुतगामी, चित्रित विमान-युक्त कर्म-कुशल सोम इंद्र के लिये निकाला गया है ।

अंतरिक्षप्रां रजसो विमानीमुप-
शिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठः ।
उपत्वारातिः सुकृतस्य तिष्ठति
वर्तस्व हृदयं तप्यते मे ।
(ऋक् १०।९५।१७)

अर्थात्, चित्रित विमान-युक्त, वशीकरण करने में सक्षम, अंतरिक्ष-चारिणी उर्वशी को मैं कुछ उपदेश दे रहा हूँ। तुम्हारे सुकृत का सुफल तुम्हारे ही पास रहे । फिर आओ, मेरा हृदय जल रहा है ।

राजा पुरूरवा विमान पर चढ़कर आकाश में भ्रमण कर रहे हैं, इससे यह स्पष्ट प्रकट है ।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृष्टा
येन स्वः स्तंभितं येन नाकः ।
यो अंतरिक्षे रजसो विमानः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ।
(ऋक् १०।१२१।५)

अर्थात्, जिन्होंने प्रचंड और समुन्नत आकाश और पृथ्वी को दृढ़ रूप से स्थापित किया है, जिन्होंने स्वर्ग और देव-लोक को स्तंभित किया है, जिन्होंने चित्रित विमान पर गमन किया है, उनमें से किस देवता की हव्य द्वारा पूजा करें ?

उक्त ऋक् से जान पड़ता है कि उस समय विमान-भ्रमण एक असाध्य-साधन का उपाय समझा जाता था; क्योंकि ऋषि पूछ रहे हैं कि उक्त तीन देवतों में से किस देवता की पूजा करें ? जो इस प्रकार भ्रमण कर सकते थे, वे भारतवासियों की दृष्टि में देवता समझे जाते थे। संभवतः इसी समय से स्वर्ग या सुमेरु-देशवासी देववत् पूजित होते हैं। इसीलिये ऋषि सोचते हैं कि किसकी पूजा करूँ ।

विश्वावसुरभितन्नो गृणातु देव्यो
गंधर्वो रजसो विमानः ।
(ऋक् १०।१३९।५)

अर्थात्, देवलोक-वासी, चित्रित-विमानचारी गंधर्व विश्वावसु इन विषयों का उपदेश दें ।

इससे जान पड़ता है कि देवलोक-वासी गंधर्व विमान पर भ्रमण करते और इसलिये भारतवासियों से सम्मानित होते थे । गंधर्वगण संभवतः सुमेरु-प्रदेशवासी मंगोलियन जाति के होंगे ।

उमेशप्रसादसिंह

× × ×

३. शरद-शोभा

(१)

छाए कास-कुसुम बिकास आस-पास पाय,
भौंर-भीर भारी मिलि मालती मगन है ;
फूले हैं कुमुद-फूल, फूलि रहे पारिजात,
कुंद त्यों सुकुंद फूलो मोहे लेत मन है।
अमल अकास, खिली चाँदनी बिहँसि रही,
मंद दुति कहूँ-कहूँ उयो उड़ुगन है ;
सरद सरोवरन कमल, अमल जल,
आनँद-मगन मही, मंडित गगन है।

(२)

बरन हरन भयो सेत देस-देस मानो,
अंबर, अवनि छीर-नीर बरसत है ;
होत अधरात ही तें प्रात को भरम अहो,
जानि परभात कोकी कोक सुमिरत है।
रहि-रहि कूजि उठैं उपबन पंछीगन,
कुमुदहिं सोक होत, कंज हरषत है ;
मौन होत पौन है निसा में मेरी जान, कहूँ
चाँदनी में मोहित-सो समै बितवत है।

(३)

मनि मराल, खंजन दगन, चक्रवाक उर-देस ;
भौंरा नूपुर, कर कमल, सरद सुंदरी-भेस।

(४)

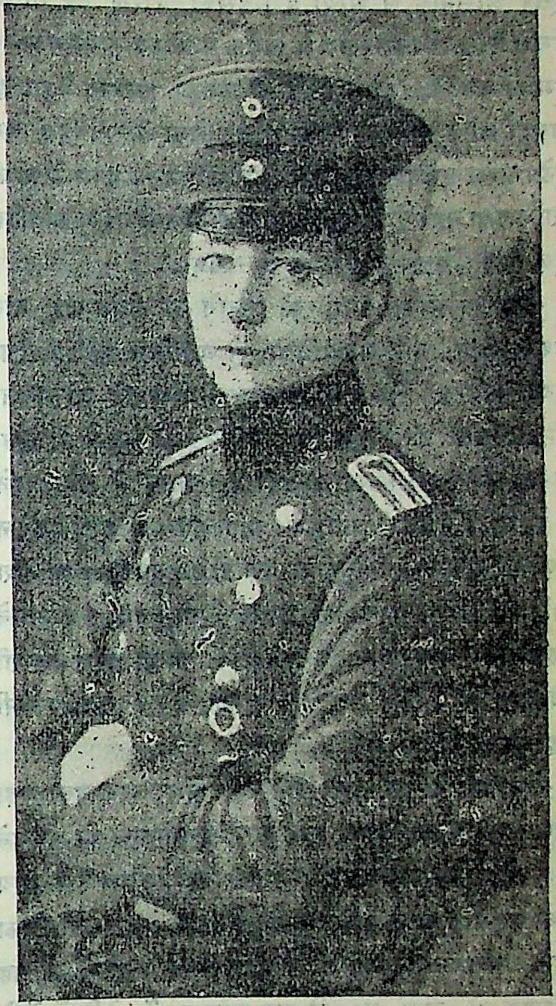
घन पयान पावस गए, तिमिर-हरन दुतिराज ;
रस-बरसा जल-थल बिमल, सरद सुंदरी काज।

राजेश्वरप्रसादनारायणसिंह

× × ×

४. क़ैसर के कनिष्ठ पुत्र का भयंकर प्रयत्न

मेजर सी० ई० रसेल की नवप्रकाशित 'True Adventures of the Secret Service'-नामक पुस्तक से योरप के गत महायुद्ध के संबंध में बहुत-सी विचित्र बातें मालूम हुई हैं। यह महाशय अमेरिकन संयुक्त-राज्य में जासूसी-विभाग के एक अफ़सर हैं, और युद्ध के समय अमेरिकन सेना के साथ फ़्रांस में बहुत दिनों तक रहे हैं। यदि इनकी कही हुई बातें सच हों, तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि क़ैसर और उनके पुत्र वैसे कायर और डरपोक नहीं थे, जैसे सभ्य-देशों में अभी तक समझे जाते हैं। विशेषकर क़ैसर के कनिष्ठ पुत्र प्रिंस जोआशिम (Joachim) की साहसिकता और वीरता शत्रुओं के भी सराहने-योग्य है।



क़ैसर के कनिष्ठ पुत्र प्रिंस जोआशिम

जिस समय लाखों जर्मन मित्र-सेना की तोपों की भेंट चढ़ रहे थे, उसी समय प्रिंस जोआशिम फ़्रांस के ला रोशेल (La Rochelle)-नामक स्थान में गुप्त-चर की तरह अपना भीषण कर्तव्य, बड़ी चतुरता और वीरता से, पाल रहे थे। युद्ध में घायल होने से उनका शरीर पीला पड़ गया था। वह इतने दुर्बल हो गए थे कि मालूम होता था, उन्हें क्षय-रोग ने धर दबाया है। सन् १९१८ ई० के जुलाई मास में वह ला रोशेल में ठहरी हुई अमेरिकन सेना में स्विस रेडक्रास आहत-सेवक के रूप से फ़्रेटाग (Freytag) नाम रखकर प्रविष्ट हुए। जर्मन-सरकार ने क़ैदियों की देख-रेख करने के लिये विशेष प्रार्थना

के साथ उन्हें भेजा था। उस समय स्वप्न में भी किसी को यह शंका न हुई कि यह व्यक्ति और कोई है, और यहाँ दूसरे अभिप्राय से आया है। इसका कारण यह था कि उनके पास स्विट्ज़रलैंड के बहुत-से विश्वास करने योग्य प्रमाण-पत्र थे। इसके अतिरिक्त उनका स्वभाव बहुत ही अच्छा था। थोड़े ही दिनों में वह सेना में सर्व-प्रिय बन बैठे। शरीर इतना दुर्बल होने पर भी उनके काम में कभी शिथिलता नहीं देखी गई। इसी प्रकार किसी प्रकार का संदेह हुए बिना कितने ही सप्ताह बीत गए।

सेना के भांडार-भागों को जलाने का प्रयत्न कई बार पकड़ा गया, और अपराधियों को यथोचित दंड भी दिया गया। एक दिन एक अफ़सर ने सेनापति को सूचना दी कि आठ रात से बराबर पेट्रोल के ख़ज़ाने में आग लगाने का प्रयत्न किया जा रहा है। भाग्य से आग बढ़ने के पहले ही बुझा दी जाती है। यदि अपराधी शीघ्र पकड़े न गए, तो एक-न-एक दिन समस्त अमेरिकन-सेना का नाश निश्चित समझना चाहिए। कोई दियासलाई लेकर जाने नहीं पाता। हरएक जर्मन-क़ैदी की अच्छी तरह तलाशी ली जाती है। किंतु सब प्रकार का प्रबंध रहने पर भी यह घटना नहीं रुकती।

सेनापति ने इस ख़बर को सुनकर चारों तरफ़ बड़ा कड़ा नियम जारी कर दिया, और आग लगानेवाले को पकड़ने के लिये शक्ति-भर कोई उपाय बाक़ी नहीं रक्खा। उस समय सेना के साथ तीन हज़ार जर्मन-क़ैदी थे। उन लोगों का सारा प्रबंध अमेरिकनों ही के हाथ में था। लोगों को यह निश्चय हो गया था कि यह काम इन्हीं क़ैदियों में से किसी का है; किंतु इस पर भी ठीक पता लगाने की कोई सूरत नज़र न आई। अंत को लाचार होकर गुप्त-चरों में से तीन चुनकर समर-स्थल पर भेजे गए, और वहाँ नए पकड़े हुए क़ैदियों के साथ रक्खे गए। उनके साथ वैसा ही बर्ताव किया जाने लगा, जैसा और क़ैदियों के साथ किया जाता था; जिसमें वे हरएक क़ैदी के पास जा सकें। इसके अतिरिक्त उन्हें सबसे गंदा सफ़ाई का काम दिया गया।

इधर यह प्रबंध हो रहा था, उधर कपट-वेष-धारी स्विस आहत-सेवक महाशय को सब तरह की स्वतंत्रता थी। उनके ऊपर कोई संदेह न होने के कारण शहर में जाने और जो चाहे सो ख़रीदने का उन्हें पूरा अधिकार था। उनको इस बात का विशेष रूप से अधिक ख़याल रहता था कि क़ैदियों के पास किसी तरह के कृमि न आने पावें, और इसलिये वह उन लोगों को कोई-न-कोई दवा दिया करते थे। पहले-पहल क़ैदी बने हुए गुप्त-चरों को कुछ भी पता न लगा; किंतु धीरे-धीरे उन लोगों को कुछ बातें दिखलाई पड़ने लगीं। फ्रेटाग (प्रच्छन्न प्रिंस जोआशिम) तीन क़ैदियों को सदा अलग ले जाकर बात-चीत किया करते थे। उनकी बात-चीत अन्य लोगों से तो सबके बीच में ही होती थी, किंतु उन तीनों से अलग।

इसके अनंतर अफ़सरों को ख़बर लगी कि क़ैदियों में से तीन सदा अपना ऊपरी कपड़ा (blouse) खो बैठा करते हैं। वे वे ही तीन थे। और भी पता लगा कि यह घटना तभी होती है, जब उन्हें कृमि दूर करने की दवा दी जाती है, और आग लगाने का प्रयत्न भी तभी पकड़ा जाता है, जब एक या दो ऐसे कपड़े ग़ायब होते हैं। इन सब बातों से बहुत कुछ संदेह उत्पन्न होता था; किंतु ठीक प्रमाण न मिलने से कुछ भी नहीं किया जा सकता था। फिर आग लगी। अब तो बड़ी सनसनी फैल गई। लोग सोचने लगे, यदि इन लोगों को हवा ने कभी कुछ भी सहायता दी, तो बस जर्मनों ने बाज़ी मार ली, और अमेरिकन लोग घर के रहे, न घाट के।

किंतु ईश्वर की जो इच्छा होती है, वही होता है। ठीक इसी समय फ्रेटाग पर इनफ़्लुएंज़ा ने आकर आक्रमण किया। इन लोगों ने डॉक्टर और दाई को उनकी देख-रेख के लिये नियुक्त किया; किंतु वह किसी से कुछ सहायता नहीं लेना चाहते थे। दाई ने उनके हृदय का हाल जानने का बहुत कुछ प्रयत्न भी किया, किंतु कुछ फल न हुआ। तब दाई ने दूसरा उपाय निकाला। क़ैदियों से जाकर कहा—"फ्रेटाग बीमार हैं, उनके बदले मैं तुम लोगों की देख-रेख करने आई हूँ।" उसने ख़ासकर उन तीनों पर विशेष ध्यान देना शुरू किया। एक दिन उनमें से एक ने दाई से कहा कि कीड़ा दूर करने के लिये जो ओषधि फ्रेटाग मुझे देते थे, उसकी मुझे फिर ज़रूरत है। उसने फ्रेटाग से दाई के द्वारा कहलाया कि आपने जो ओषधि दी थी, वह तीव्र नहीं थी। आप परीक्षा करके देखिए, शायद उन दोनों का परिमाण भिन्न होना चाहिए। दाई ने फ्रेटाग से इस संदेश को ज़रा और बढ़ा-चढ़ाकर

कहा। उन्होंने कहलाया कि "उससे कह दो, वह अभी उसे काम में न लावें। मैं अच्छा होने पर परीक्षा करके स्वयं बतलाऊँगा।"

जब इन सब बातों का मेजर रसेल को पता लगा, तो उन्होंने उन ओषधियों की स्वयं परीक्षा करने का निश्चय किया, और अपने मित्र डॉक्टर से सहायता माँगी। किंतु वह उन ओषधियों का नाम सुनते ही बोल उठे—"महाशय, यदि आप इन दोनों की मिलावट में ज़रा-सी भी असावधानता करेंगे, तो धड़ाके के साथ आप आकाश में उड़ जायँगे। इन दोनों के मिलते ही अग्नि लग जाती है।" यह सुनते ही सारा षड्यंत्र मेजर साहब के ध्यान में आ गया।

बात यह थी कि फ़्रेटाग ने सब क़ैदियों को एसिड से कपड़े साफ़ करना सिखलाया था। इस काम में केवल प्रथम ओषधि काम में आती थी। यह ओषधि कपड़े में लगाकर छोड़ दी जाती थी। फ़्रेटाग अपने तीन सिद्ध गणों को एक शीशी में दूसरी दवा दे दिया करते थे। इस शीशी के ऊपर काग़ज़ की डाट लगी रहती थी। वे तीनों मौक़ा पाकर उस शीशी को प्रथमौषधि-सिंचित वस्त्र में लपेटकर किसी जलनेवाली वस्तु पर फेंक आते थे। वह एसिड धीरे-धीरे काग़ज़ जलाकर कपड़े में आ जाती थी, और दूसरी एसिड से मिलते ही आग लगा देती थी।

धीरे-धीरे फ़्रेटाग अच्छे हुए। उन्होंने उठते ही उन ओषधियों की परीक्षा शुरू कर दी। एक दिन वह अपने कमरे में अकेले इन ओषधियों की परीक्षा कर रहे थे, और गुप्त-चर लोग छिपे हुए सब देख रहे थे। परीक्षा करते-करते उन्हों ने ठीक पता लगा लिया कि किसका कितना परिमाण रहना चाहिए। देखते-देखते जिस कपड़े पर परीक्षा की गई थी, वह जलने लगा। उसी समय सिपाहियों ने उन्हें पकड़ लिया। पकड़े जाने पर भी उनका धैर्य विचलित न हुआ। वह उसी तरह बराबर निर्भीक दिखलाई पड़े। पहले तो उन्होंने सब दोषारोपों को मिथ्या बतलाया, किंतु यह मालूम होने पर कि सब भंडा फूट गया है, उन्होंने दूसरी ही राह पकड़ी। साफ़ कह दिया कि "अब अधिक बखेड़े की क्या ज़रूरत है ? मुझे बाहर ले जाकर गोली मार दीजिए।" उनके साथियों का उनके प्रति जैसा नम्र बर्ताव था, उससे और उनके उच्च गुणों से मेजर रसेल को मालूम हुआ कि यह अवश्य किसी ऊँचे कुल का है। उन्होंने बहुत कुछ उपाय किया; किंतु उस धीर पुरुष के मुख से एक अक्षर भी न निकाल सके। मेजर साहब ने उन्हें अपने सामने बिठलाया, और कहा—"आप मुझे अपना परिचय नहीं देते, इसका फल यह होगा कि आप साधारण अपराधियों की तरह फाँसी पर लटका दिए जायँगे।" उन्होंने तुरंत जवाब दिया—"यही तो उचित होगा।" मेजर साहब ने कहा—"आपको साधारण क़ैदियों के साथ काम करना होगा।" इसका भी उत्तर वैसा ही मिला। उन्होंने कहा—"उन्हीं के साथ रख दीजिए।" मतलब यह कि मेजर रसेल ने हर तरह से हिलाया-डुलाया; किंतु उसका उन पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। वह बड़े धैर्य से सब बातें करते रहे। कंठ-स्वर में भी कोई परिवर्तन लक्षित न हुआ।

ऐसे विचित्र पुरुष को मार डालना अच्छा न होगा, यह समझकर वह अफ़सर की तरह क़ैद में रक्खे गए। जब जर्मन लोगों की ओर से उनको छुड़ाने के लिये बहुत प्रयत्न होने लगे, तब यह बात और भी दृढ़ हो गई कि यह साधारण मनुष्य नहीं है। उनका वास्तविक परिचय कैसे मिला, और कैसे और जर्मन-षड्यंत्रों का पता लगा, यह सब लिखने में लेख विशाल-काय हो जायगा। मेजर रसेल ने अपनी पुस्तक में इसका विस्तृत विवरण दिया है। उसका सारांश यह है कि मित्र-सेना-पतियों को कुछ भी पता नहीं लग रहा था कि जर्मन लोग आगे के लिये क्या तैयारी कर रहे हैं। इसको जानने के लिये वे व्याकुल थे। फ्रेंच लोग प्रयत्न करके हार गए थे। अमेरिकन जासूस-मंडली ने इसके पता लगाने का बीड़ा उठाया। एक जासूस अपनेको सेना से भागा हुआ बताकर स्पेन की जर्मन-समिति से, जो Council of five के नाम से प्रसिद्ध है, जा मिला, और उन लोगों के कहने से प्रिंस जोआशिम को छुड़ाने के लिये प्रयत्न करने लगा। एक दिन वह प्रिंस जोआशिम को लेकर सेना से भागा। इधर तो पहले ही से सब ठीक था। दिखलाने के लिये उन दोनों के पीछे खूब गोलियाँ छोड़ी गईं। उनको लिए हुए वह फिर स्पेन में पहुँचा। वहाँ जर्मन-मंडली में खूब हिल-मिल गया। फल यह हुआ कि इधर-उधर करता हुआ जर्मन-सेना में पहुँच गया। वहाँ

का हाल अच्छी तरह समझकर फिर अपनी सेना में आ गया। सच पूछा जाय, तो इसी के प्रयत्न से जर्मनों का वास्तविक हाल मिला, और वे इस तरह परास्त हुए।

यद्यपि इसमें प्रिंस जोआशिम की कोई सहायता नहीं थी, तथापि उन्हीं की कृपा से जासूस-मंडली अपना मतलब निकाल सकी। बात यह थी कि उनको क़ैद से छुड़ा देने से उस गुप्त-चर पर उन्हें विश्वास हो गया था, अतएव उन्होंने उसे जर्मन-सेना में जाने दिया था। जो हो, मेजर रसेल की पुस्तक से यह तो साफ़ विदित होता है कि प्रिंस जोआशिम डरपोक या भीरु नहीं थे। पीछे से उन्होंने आत्म-घात कर लिया। कितने ही लोगों का कहना है कि उनका दिमाग़ बिगड़ गया था; किंतु मेजर रसेल का कहना है कि उन्हें इस बात का बड़ा दुःख हुआ कि मातृ-भूमि के पतन में वह साधन बनाए गए। यदि वह भ्रम में पड़कर गुप्त-चर को जर्मन-सेना में न धसने देते, तो ऐसा कभी न होता।

बटुकनाथ शर्मा

× × ×

५. हिंदी में अंध-परंपरा

ईश्वर की कृपा से हिंदी दिन-दूनी, रात-चौगुनी, उन्नति करती जा रही है। इसमें नए-नए शब्द और नए-नए महाविरों की भरमार होती जा रही है। अब लोग 'काटो तो खून नहीं' के बदले 'काटो तो पसीना नहीं', 'पेट में बिल्ली कूदने लगी' और 'पेट में चूहा उछलने लगा' के बदले 'पेट में घोड़ा कूदने लगा' लिखने लगे हैं। इसी प्रकार के कई महाविरे बन गए हैं, जिन्हें सुनकर हँसी आती है। किंतु इस विषय का विवेचन किसी दूसरे लेख में किया जायगा। इस समय हम अंध-परंपरा पर कुछ लिखना चाहते हैं। हिंदी में जो अंध-परंपरा चल निकली है, व्याकरण तथा व्युत्पत्ति-क्रम से सर्वथा अशुद्ध प्रयोगों का प्रचार बढ़ रहा है, उसके संशोधन और निवारण का अब तक कोई उपाय नहीं किया गया। आशा है, हिंदी के विद्वान् इधर भली भाँति ध्यान देंगे। उदाहरण लीजिए। बहुत-से लेखक लिखते हैं—'यह काम कोई भी नहीं कर सकता', 'उसे कोई भी नहीं देख सकता।' अब यह विचार करना है कि यह शुद्ध है, या अशुद्ध? इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार—है 'कः+अपि=कोपि,' जिसका प्राकृत 'कोवि,' अपभ्रंश 'कोइ' और हिंदी 'कोई' है। 'कः' का अर्थ हुआ 'कौन', और 'अपि' का अर्थ हुआ 'भी', मिलाकर हुआ 'कौन भी' अर्थात् 'कोई'। दोनों के मिलने से पूर्ण-रूप से निश्चय का भाव प्रकट हो गया। फिर जब निश्चयात्मकता प्रकट हो ही गई, तब फिर 'भी' जोड़ना व्यर्थ है। जिस प्रकार संस्कृत में 'कः+अपि+अपि=कोप्यपि', उसी प्रकार हिंदी में 'कोई भी' शब्द अशुद्ध सिद्ध है। बहुत-से लोगों का कहना है कि 'कोई भी' में 'भी' ज़ोर देने के लिये आया है। अच्छा, तब 'ई' किसलिये आया है? बात यह है कि ज़ोर ही देने के लिये 'ई' आया है। इसी प्रकार 'यह बात और भी नहीं हो सकती', 'अभी भी उसकी तकलीफ़ वैसी ही है।', ये दोनों वाक्य भी निस्संदेह अशुद्ध हैं। इनकी व्युत्पत्ति यों है—'कदा+अपि=कदापि,' जिसका प्राकृत कहिंवि,' हिंदी 'कब+ही,' और फिर उसका 'कभी' बन गया। कारण, संस्कृत में एक नियम है 'झयो होऽन्यतरस्याम्', अर्थात् यदि किसी वर्ग के आगे 'ह' हो, तो उसका उसी वर्ग का चतुर्थ वर्ण हो जाता है। जैसे संस्कृत में 'तद्+हविः=तद्धविः', यों ही 'वाक्+हरिः=वाग्घरिः'। इसी प्रकार हिंदी में भी 'कब+ही=कभी', और 'अब+ही=अभी' सिद्ध हुआ। अब सोचने की बात यह है कि जो ज़ोर देने के लिये दोनों में 'ही' आ ही गया, तो फिर दुबारा 'भी' की क्या ज़रूरत है? हाँ, यदि संस्कृत में 'कदा+अपि+अपि= कदाप्यपि' और 'अद्य+अपि+अपि=अद्याप्यपि' शुद्ध हैं, तो 'कभी भी' और 'अभी भी' शुद्ध हो सकते हैं। अतः जिस प्रकार वे दोनों संस्कृत-पद अशुद्ध हैं, उसी प्रकार हिंदी में भी 'कभी भी' और 'अभी भी', ये पद अशुद्ध सिद्ध हो गए। आश्चर्य तो इसका है कि ऐसी-ऐसी सैकड़ों अशुद्धियाँ हिंदी के धुरंधर विद्वान् तक करते हैं, जो शब्दों की उत्पत्ति और व्युत्पत्ति भली भाँति जानते और आचार्य माने जाते हैं।

बहुत-से लोग संदेह करते हैं कि ऐसी अशुद्धियाँ हिंदी में कैसे घुस पड़ीं? इसका भी उत्तर सुनिए। जब उपन्यासों का बाज़ार गरम हुआ, तब सैकड़ों उपन्यास केवल काशी से प्रकाशित हुए। बहुधा उ[illegible] उपन्यासों के लेखक अर्ध-शिक्षित ही थे। उनकी [illegible]

संस्कृत में न थी उन्हीं लोगों से 'कभी भी'; 'अभी भी', 'कोई भी' इत्यादि शब्दों की उत्पत्ति हुई। कुछ दिनों के बाद इनकी गिनती 'ईडियम' में हो गई, और ये शुद्ध समझे जाने लगे।

इसी तरह बहुत-से लोग 'इनने', 'इन्होंने' और 'उनने', 'उन्होंने' का भेद भी नहीं समझते। जहाँ जी चाहता है, वहाँ इनका व्यवहार कर देते हैं। लेकिन ये अशुद्ध हैं। किसी शब्द में बहु-वचन दो कारणों से आता है। एक प्रतिष्ठा के लिये—जैसे 'गुरुजी आए', दूसरा झुंड के लिये—जैसे 'हाथी आए'। इसी प्रकार जब किसी की प्रतिष्ठा के लिये कोई बात कहनी पड़ेगी, तब कहेंगे—'इनने किया', और 'उनने कहा'। जब झुंड के लिये बहु-वचन कहना पड़ेगा, तब कहेंगे—'इन्होंने किया' और 'उन्होंने कहा' इत्यादि। इसी प्रकार बहुत-से लोग 'माधुर्यता', 'चातुर्यता' इत्यादि लिखते हैं। यहाँ भी संस्कृत-नियम ही का सहारा ठीक होगा। जैसे, 'माधुर्य=मिठास', और 'चातुर्य=चतुराई'। इस जगह यदि 'मिठासास' और 'चतुराराई' शुद्ध हैं, तो 'माधुर्यता' और 'चातुर्यता' शब्द भी शुद्ध समझे जायँगे।

हिंदी-शब्दों के लिंगों में भी यही झंझट है। जिन शब्दों के लिये पाणिनि तथा कोशकार चिल्ला-चिल्लाकर कहते हैं कि ये शब्द पुंलिंग हैं, उन्हीं शब्दों को कुछ हिंदीवाले स्त्री-लिंग लिख देते हैं। यदि उनसे पूछा जाय कि ये शब्द स्त्री-लिंग क्यों हैं, तो वे उत्तर देते हैं कि 'इन शब्दों का व्यवहार ऐसा ही होता आया है।' सोचने की बात है कि जिसने पहले उन शब्दों को स्त्री-लिंग लिखा होगा, उसने ज़रूर ग़लती की होगी। कारण, उस समय संस्कृत-व्याकरण तथा कोशों के सिवा हिंदी में कोई व्याकरण और कोश नहीं थे, जिनके अनुसार लोग लिखते।

हमको उस समय बड़ी हँसी आती है, जब लोग 'दाढ़ी' और 'मूछ' शब्दों को स्त्री-लिंग लिखते हैं। अरे बाबा, जिस दाढ़ी और मूछ के कारण मनुष्य पुरुष कहलाता है, उसी को स्त्री-लिंग कहते हो? हाय री अंध-परंपरा!

इसी प्रकार बहुत-से लोग लिखते हैं—'मैंने वहाँ पर जा देखा', 'तुम कहाँ पर रहते हो', 'यहाँ पर सभी बातें अच्छी हैं।' इन वाक्यों में विचारणीय विषय यह है कि संस्कृत में 'तत्र', प्राकृत में 'तत्थ' और 'तहिं' और अपभ्रंश में 'तहाँ' होता है। किंतु 'तहाँ' पुरानी हिंदी हो गई, इसलिये नई पुस्तकों में 'वहाँ' मिलता है। इस जगह पर व्युत्पत्ति के नियम से 'तस्मिन्' के स्थान में 'तत्र' आदेश होता है। इसमें 'तद्' और 'स्मिन्' (सप्तमी एकवचन 'ङि०' के स्थान में) विभक्ति है, इसलिये 'तस्मिन्' और 'तत्र'-पद विभक्ति-युक्त हैं। इनके प्राकृत और अपभ्रंश के शब्द 'वहाँ' में भी विभक्ति वर्तमान है। तो फिर वहाँ के आगे 'पर' अधिकरण-विभक्ति जोड़ना अवश्य अशुद्ध है। हाँ, यदि संस्कृत में 'तत्रत्र' या 'तस्मिन्स्मिन्' शुद्ध है, तो 'वहाँ पर' भी शुद्ध हो सकता है। किंतु व्युत्पत्ति विचारने पर सरासर इसे अशुद्ध ही कहना पड़ता है, और है भी। इसी प्रकार 'कहाँ पर' 'यहाँ पर' आदि भी निस्संदेह अशुद्ध हैं। किंतु अंध-परंपरा ऐसी चल पड़ी है कि बहुत-से लोग आँख मूँदकर ऐसा ही लिखते हैं।

एक भेड़ियाधसान और भी है। बहुत-से लोग हिंदी में लिखते हैं—'उस पेटी में से दस रुपए निकाल लो।' इस स्थान में वक्तव्य यह है कि 'में' और 'से' दोनों विभक्तियों का एक ही पद में रहना अयुक्त है। 'में' अधिकरण का चिह्न और 'से' यहाँ अपादान का चिह्न है। व्याकरण का यह दृढ़ तथा अटल नियम है कि विभक्ति के आगे विभक्ति नहीं जोड़ी जा सकती। इसीलिये संस्कृत में 'मंजूषायाः' अथवा 'मंजूषायां', दोनों में एक ही शुद्ध है, न कि 'मंजूषांयाः'। इसलिये निश्चय हो गया कि 'उस पेटी में से दस रुपए निकाल लो', यह अशुद्ध है। इस जगह 'इस पेटी से दस रुपए निकाल लो' ऐसा लिखना ही शुद्ध है। इसलिये 'इन लड़कों में से एक को चुन लो' के बदले 'इन लड़कों में एक को चुन लो', ऐसा ही लिखना ठीक है।

स्वर्गीय बाबू बालमुकुंदजी गुप्त कहा करते थे कि 'कारण'-शब्द के आगे 'से' लगाना भी अशुद्ध है; क्योंकि 'कारण' और 'से' दोनों का अर्थ एक ही है। इसलिये 'मेरे पैरों में दर्द है इस कारण से मैं वहाँ न जा सकूँगा' के बदले 'इस कारण' ऐसा ही लिखना शुद्ध है, इस 'कारण से' लिखना ठीक नहीं। उनका यह भी कहना था कि 'वह'-शब्द एक-वचन और बहु-वचन दोनों में आ सकता है। भेद इतना ही है कि 'वह जाता था', यहाँ एक-वचन में 'वह'-शब्द आया है, और किसी एक मनुष्य को प्रतिष्ठा देने के लिये 'वह कहते थे' यह लिखा जायगा।

कारण, जब एक को प्रतिष्ठा देनी हो, तब क्रिया में ही बहु-वचन रखना ठीक है; किंतु जब झुंड के लिये बहु-वचन कहना है, तब 'वे कहते थे' ऐसा लिखना ठीक होगा।

अक्षयवट मिश्र

× × ×

६. शरद-शोभा

कासन सों, बासन सों, सुमन-सुबासन सों,
बिधु के प्रकासन सों ओस दरसो परै;
अंबर सों, औनि सों, सु अंबर सों, कंबर सों,
बारिज सों प्रेम पुंज पूरो परसो परै।
'छैल' कबि कहै बन-बेलिन नबेलिन सों,
ब्रज ब्रज-बीथिन बिनोद बरसो परै;
सागर सों, सर-सरितान सों सदैव स्वच्छ,
सीतल समीर सारदीय सरसो परै।

पन्नालाल भैया 'छैल'

× × ×

७. अरुणिमा और विप्रलब्धा

(क)

आली के इत अरुनई, आई है अँग-अंग;
लाली ही लावत हरित, पान मेंहदी संग।
केलि-थकी कामिनि चरन, दाबति एँड़ी देखि;
केलि*किधौं कौहर†फरत,कहि-कहि रही बिसेखि।

(ख)

तन ग्रीखम, बरखा नयन, बारिज-बदन हिमंत;
सरद गंड, भूषन सिसिर, पग-पग बसत बसंत।
छन रुमाल, छन चादरो, चूमति, चैन परै न;
छटपटाति तिय पिय-बिरह,रहि न जात दिन-रैन।

रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर'

× × ×

८. चाँदनी

निशा नीरव है। आकाश हँस रहा है। घने वन से बहती हुई सरल सरिता अपने मधुर गान में तल्लीन है। विटप सुनते हैं, मुग्ध होते हैं, झूम उठते हैं, और झुक-कर लहराते हुए अंचल को पकड़ना चाहते हैं; परंतु वह मुसकिराती हुई कहती है, "व्यर्थ है"—और इठलाती हुई, कटाक्ष करती, एक ओर निकल जाती है। पहाड़ियाँ आश्चर्य-चकित विशाल नेत्रों से घूरती हैं।

* * *

सरल प्रवाह अपने गान का स्वर भर रहा है। वह उसका बंदी है। वह उसका सहचर है। वह चल है, फिर भी उस मधुर गान का बंदी है। चाँदनी लहराती है। वह उससे अठखेलियाँ करती है, बड़े-बड़े मैदानों में दौड़ती हुई सघन प्रांतरों में वन-कुंजों से छिपकर झाँकती है। चंद्रमा उसे देख लेता है। चाँदनी झेंप जाती है।

* * *

वह दौड़कर धारा-प्रवाह में कूद पड़ती है। उल्लसित युग्म करों से जल उछालती है। स्नान करती है, जल-मग्न होती है, तैरती है, और फिर तट पर खड़ी हो केश छिटकारती है। विटप-शाखाएँ हिल जाती हैं। उसकी हीरे की मुँदरी चमक उठती है। वह ऊपर देखने लगती है। चंद्रमा हँस देता है। चाँदनी चुप-चाप ठिठक जाती है।

* * *

वह सरोवरों की ओर जाती है। तट पर खड़ी हो भौचकी-सी देखने लगती है। नलिनियाँ खिलाखिलाकर हँस देती हैं। कमल वेदना प्रकट करते हैं।

* * *

सामने संगमरमर का शिवालय है। वह प्रफुल्लित हो उठती है, और दौड़कर शिवालय में आश्रय लेती है। थोड़ी देर विश्राम करने पर वह चारों ओर दृष्टि फैलाकर देखती है। संगमरमर पर कटी हुई झँझरियों से सहसा हँसता हुआ चंद्र दिखाई पड़ जाता है। चापलूस तारे झिल-मिलाती हुई आँखों से अनुमोदन करते हैं। चाँदनी हँस देती है।

देवीदत्त मिश्र

× × ×

९. क्या बौद्ध लोग हिंदू नहीं हैं?

गत अगस्त-मास में, काशी में, जातीय संगठन के लिये हिंदू-महासभा का जो अधिवेशन हुआ, उसमें सिखों, जैनियों, आर्य-समाजियों और अनेक अन्य संप्रदायवालों की भाँति हमारे बौद्ध भाइयों ने भी सम्मिलित होने की कृपा की थी। यह बात कई विधर्मियों—विशेषकर हमारे अनेक मुसलमान भाइयों—को अच्छी नहीं लगी। किसी-किसी ने तो यहाँ तक कह डाला कि हिंदू लोग मुसलमानों के विरुद्ध अपना बल बढ़ाने के लिये ही अहिंदू बौद्ध-मतावलंबियों को अपने साथ ले रहे हैं। विधर्मियों का यह आक्षेप सर्वथा निर्मूल है। बौद्ध

* केला। † माहर = एक लाल रंग का जहरीला फल।

लोग वास्तव में हिंदू ही हैं । हिंदू-धर्म में दो मुख्य विशेषताएँ हैं—(१) वर्ण-व्यवस्था, और (२) आवागमन । हिंदू-धर्म की ये दोनों विशेषताएँ बौद्धों के धर्म-ग्रंथों में भी बराबर अपनाई गई हैं; जैसा कि निम्न-लिखित उदाहरणों से भली भाँति विदित होगा—

(१) 'महावग्ग' में लिखा है कि श्रीबुद्ध भगवान् मार पर विजय प्राप्त कर चुकने के कुछ ही दिनों बाद अजपाल-बट के नीचे बैठे हुए थे। उस समय एक ब्राह्मण ने आकर उनसे प्रश्न किया—"गौतम ! ब्राह्मण किसे कहते हैं, और किन गुणों से मनुष्य ब्राह्मणत्व को प्राप्त होता है ?" यह ब्राह्मण जातीय अभिमान में इतना चूर रहता था कि ब्राह्मण को छोड़कर किसी दूसरे वर्ण के मनुष्यों से सिवा 'हूँ-हूँ' करने के स्पष्ट शब्दों में बात तक नहीं करता था । इसी से उसका नाम 'हुंहुँक' पड़ गया था । बुद्ध भगवान् ने उत्तर दिया—

"यो ब्राह्मणो वा कितपापधम्मो
निहुंहुंको निक्कसावो यतत्तो;
धम्मेन सो (ब्राह्मणो) ब्रह्मवादं वेदय्य
यस्सुस्सदानत्थि कुहिं च लोकेति ।"

अर्थात् जो पापधर्म (?) नहीं करता, किसी से 'हूँ-हूँ' नहीं करता, कषाय-रहित यतात्मा है, वेदांती है, जिसने ब्रह्मचर्य-पालन किया है, जिसको इस लोक में कोई विचलित करनेवाला नहीं, वही ब्राह्मण है, और वही ब्रह्मचर्य का उपदेश कर सकता है ।

यदि बुद्ध भगवान् वर्ण-विभाग को माननेवाले न होते, तो इतनी व्याख्या करने के बदले केवल इतना ही कह देते कि ईश्वर की सृष्टि में सब मनुष्य बराबर हैं, न कोई ब्राह्मण है, न कोई क्षत्रिय । अथवा ऐसा ही और कोई उत्तर दे देते ।

(२) बुद्ध भगवान् ने अपने पूर्व-जन्मों की जो कथाएँ कही हैं, वे 'जातक'-नाम से विख्यात हैं । पाली-भाषा के 'जातक'-ग्रंथ में प्रायः ५०० से अधिक ऐसी कथाओं का संग्रह है, और उस ग्रंथ की भूमिका में स्वयं बुद्ध भगवान् के मुखारविंद से यह कहलाया गया है कि बुद्ध सदा भारतवर्ष ही में जन्म लिया करते हैं । भारतवर्ष में भी प्रायः मध्य-देश (आधुनिक युक्त-प्रांत) ही में, और मध्य-देश में भी केवल क्षत्रिय या ब्राह्मण ही के यहाँ; किसी वैश्य या शूद्र के यहाँ कदापि नहीं। कारण, यद्यपि चारों वर्ण समान-भाव से एक ही विराट्-समुदाय के चार अन्योन्याश्रित अंग हैं, और अपना-अपना महत्त्व रखते हैं, तथापि बाहु-बल और मस्तिष्क-शक्ति—शस्त्र और शास्त्र—द्वारा देश और धर्म की रक्षा और परित्राण करना मुख्यतः क्षत्रिय और ब्राह्मण, इन्हीं दो वर्णों का परंपरा-गत जन्म-सिद्ध कार्य रहा है । शेष दो वर्ण इस कार्य में उनके अनुवर्ती और साथ देनेवाले रहे हैं । इससे सिद्ध होता है कि श्रीबुद्ध भगवान् वर्ण-व्यवस्था के अतिरिक्त आवागमन को भी मानते थे ।

हमारे मुसलमान भाई तो उपर्युक्त प्रमाणों के न रहते हुए भी यह नहीं कह सकते थे कि बौद्ध लोग हिंदू नहीं हैं; क्योंकि वे तो सैकड़ों वर्षों से बौद्धों को हिंदू ही मानते आए हैं । उदाहरणवत् मुग़ल-सम्राट् अकबर के कृपा-पात्र और अमात्य सुविख्यात मुसलमान विद्वान् अबुलफ़ज़ल ने स्व-रचित 'आईन-अकबरी' में हिंदुओं के नव मुख्य संप्रदाय गिनाए हैं, और उनमें बौद्ध-संप्रदाय को भी सम्मिलित किया है । यथा—

१. नैयायिक, २. वैशेषिक, ३. वेदांती, ४. मीमांसक, ५. सांख्य, ६. पातंजल, ७. जैन, ८. बौद्ध, ९. नास्तिक (चार्वाक) । साथ ही उन्होंने अच्छी जानकारी के साथ बुद्ध भगवान् के जीवन-चरित और उनके संप्रदाय के सिद्धांतों का संक्षिप्त उल्लेख भी किया है । यह भी लिखा है कि इस संप्रदाय के साधु, जिन्हें अरब और ईरान के लोग बख़्शी (भिक्षु=भिक्खु) और तिब्बतवाले लामा कहते हैं, अब पीगू (बर्मा), धनासरी (तिनासरिम) और तिब्बत से इधर नहीं पाए जाते । काश्मीर में इस संप्रदाय के कतिपय वृद्ध पुरुषों से उनका साक्षात् भी हुआ था ।

आधुनिक भूगोल आदि पाठ्य-पुस्तकों, मनुष्य-गणना की रिपोर्टों और गज़ेटियर आदि अन्य सरकारी पुस्तकों में बौद्धों, जैनों, सिखों, आर्य-समाजियों और ब्रह्म-समाजियों को हिंदुओं से अलग गिनाने की चाल से हिंदू-समुदाय का बड़ा अहित हुआ है । उसी चाल का यह परिणाम हुआ है कि कभी-कभी लोगों को ऐसे भ्रम हो जाया करते हैं ।

शिवनाथसिंह सेंगर



१. समय-निर्देश

प्रायः सभी सभ्य-देशों के मनुष्य घड़ी का व्यवहार जान गए हैं। आजकल घड़ी मनुष्य के उन आवश्यक पदार्थों में एक है, जिनके बिना उनका एक क्षण भी निर्वाह नहीं हो सकता। किंतु जब घड़ी का आविष्कार नहीं हुआ था, तब लोग किस प्रकार समय जान सकते थे? यह एक ऐसा प्रश्न है, जो प्रायः हमारे मन में उठा करता है।

यद्यपि समय-निर्देश का प्रधान साधन सूर्य है, किंतु, फिर भी, यह प्रश्न उठता है कि जिस समय सूर्य बादल से ढके रहते थे, उस समय किस प्रकार समय जाना जाता था? मनुष्य जिस समय जंगलों में शिकार करके आहार-संग्रह करते और गिरि-गह्वरों में रहते थे, उस समय भी उन्होंने अपनी सुविधा के लिये दिन-रात को कई भागों में बाँट लिया था। समय जानने के लिये वे घास की एक रस्सी बनाकर उसमें समानांतर पर एक-एक गाँठ दे रखते थे। रस्सी के एक सिरे में आग लगा देने से वह धीरे-धीरे जलती रहती थी। एक गाँठ से दूसरी गाँठ तक जलने में जो समय लगता था, वही उनका एक घंटा, या समय का कोई भाग, होता था। शायद उन लोगों को मिनट या सेकिंड की आवश्यकता नहीं होती थी, इसलिये समय को मिनटों तथा सेकिंडों में बाँटना उन्होंने व्यर्थ समझा होगा। कुछ देशों में लोग मोमबत्ती पर निशान बना देते थे। एक निशान से दूसरे निशान तक मोमबत्ती के जलने पर समय का एक निर्दिष्ट भाग पूरा हुआ समझा जाता था।

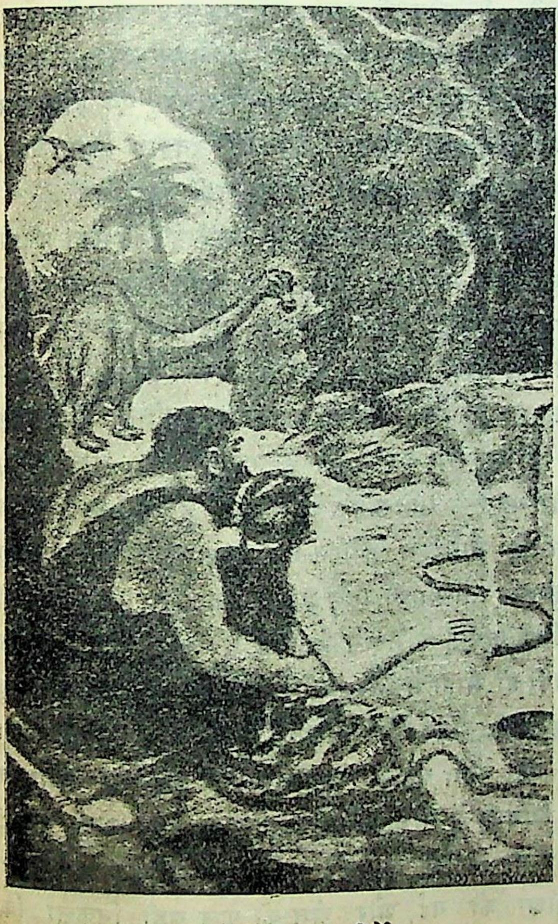
आजकल जो घड़ी व्यवहार में आ रही है, उसका जन्म तेरहवीं शताब्दी में हुआ था; किंतु वह घड़ी आधुनिक घड़ी का एक सामान्य आभास-मात्र थी। तीन सौ वर्ष बाद आजकल की-सी एक घड़ी बनी। उसका घेरा एक रकाबी के बराबर था। वह दिन-भर में डेढ़ घंटे के लगभग ग़लत चलती थी, और दाम भी अधिक नहीं, केवल छः हज़ार रुपए था!

इसके कुछ दिन बाद सुअर के बालों से 'हेयर-स्प्रिंग' (बाल-कमानी) बनने लगी। पहले यह स्प्रिंग मोटी होती थी; किंतु इस समय बाल से भी पतली होती है। हीरे के एक टुकड़े में छेद कर उसी के बीच से इस्पात का तार खींचकर 'हेयर-स्प्रिंग' बनती है। आध सेर इस्पात के मोटे तार का दाम अधिक-से-अधिक २४) रु० है; किंतु उससे जो 'हेयर-स्प्रिंग' बनती हैं, उनकी क़ीमत २ लाख ४८ हज़ार रुपए के लगभग और लंबाई आठ मील होती है।

एक घड़ी के २११ भाग होते हैं। उन्हें बनाने के लिये ३,७७३ प्रकार की भिन्न-भिन्न प्रणालियाँ हैं। घड़ी के कल-पुर्ज़ों में एक-तिहाई केवल स्क्रू हैं। कुछ स्क्रू इतने छोटे हैं कि एक अंगुश्ताने में प्रायः २०,००० आ सकते हैं। काग़ज़ पर रखने से ये सोने के कण-जैसे जान पड़ते हैं। यदि ऐसे ५ लाख स्क्रू लिए जायँ, तो शायद उनका वज़न आध सेर भी नहीं

होगा। एक-एक स्क्रू का वज़न इतना कम है कि उसका अंदाज़ा नहीं लगाया जा सकता। चुन्नी (पत्थर) काग़ज़ के समान पतला काटकर और गोल बनाकर घड़ी में जगह-जगह बिठाया जाता है। यह गोल चुन्नी का आलपीन के सिरे से बड़ा नहीं होता। इसमें एक सूराख़ रहता है, जिसमें घड़ी के किसी चक्के का पतला धुरा घूमता है।

घड़ी मेन-स्प्रिंग की सहायता से चलती है। वह दो फ़ीट लंबी होती है; किंतु ऐसी मज़बूती के साथ लपेटी रहती है कि यदि एकाएक खुलकर लग जाय, तो दोनों आँखों को निकाल डाले। मेन-स्प्रिंग टूट जाने से घड़ी बंद हो जाती है।



आदिकालीन समय-निर्देश

(घास की रस्सी बनाकर उसमें समान दूरी पर गाँठें दे दी जाती थीं, एक गाँठ से दूसरी गाँठ तक की रस्सी जलने में जितना समय लगता था, वह एक घंटा या समय का कोई निश्चित भाग माना जाता था।)

घड़ी के विषय में लोगों के मत भिन्न और विचित्र हैं। कुछ लोग सोचते हैं कि यदि घड़ी के काँटे उल्टे घुमाए जायँ, तो घड़ी ख़राब हो जाती है। जिन घड़ियों में घंटा बजता है, उनके अतिरिक्त और किसी घड़ी में यह बात ठीक नहीं उतरती। जेब-घड़ी के काँटे उल्टी ओर घुमाने से उसका कोई नुक़सान नहीं होता।

एक प्रकार की दुष्प्राप्य मछली का तेल घड़ी के कल-कब्ज़ों में दिया जाता है। व्यवहार करने के पहले विविध प्रकार से तेल की परीक्षा कर ली जाती है। इस तेल का एक बूँद घड़ी को वर्ष-भर चलाने के लिये यथेष्ट है। बहुत दिनों की चेष्टा तथा परीक्षा के बाद इस तेल का आविष्कार हुआ है। पहले यह जलाने के काम में आता था।

अमेरिका में, घड़ी के एक बड़े कारख़ाने में, दो बड़ी-

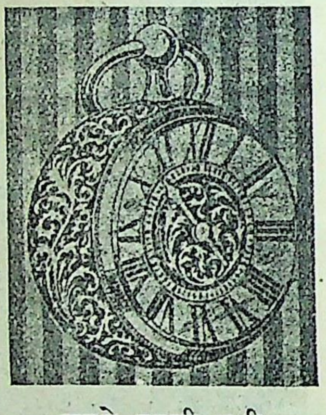


नाइटहुड के ज़माने में समय-निर्देश

(मोमबत्ती पर निशान बनाकर एक निशान से दूसरे निशान तक जलने के समय को समय का एक भाग मानकर समय-निर्देश होता था।)

बड़ी घड़ियाँ समय बतलाने के लिये रक्खी गई हैं। ये घड़ियाँ दो वायु-शून्य घरों में हैं। कांक्रीट के खंभे पर दोनों वायु-शून्य घर बने हैं, इसलिये घड़ियों में किसी प्रकार का धक्का लगने का डर नहीं है। हज़ार वर्ष में, इन घड़ियों के समय में, एक सेकिंड का भी अंतर नहीं पड़ा। ज्योतिर्विद् इन्हीं के समय को ठीक मानते हैं।

बहुत दिनों से स्विट्ज़रलैंड घड़ी बनाने का केंद्र माना जाता है। यहाँ एक-एक परिवार घड़ी का एक-एक भाग बनाता था। फिर घड़ी के भिन्न-भिन्न भाग एक कारख़ाने में जाकर जमा होते थे, और वहाँ समूची घड़ी 'फ़िट-अप' होती थी। संयुक्त-राज्य में इस समय घड़ी बनाने के आठ बड़े-बड़े कारख़ाने हैं। उनमें एक वर्ष में एक लाख घड़ियाँ बनती हैं, जिनका दाम ६ करोड़ रुपए होता है।



सबसे पहली घड़ी

आजकल की घड़ियों में सबसे आवश्यक पदार्थ 'बैलेंसिंग (Balancing) है। बैलेंसिंग एक प्रकार से घड़ी की जान है। यदि घड़ी का बैलेंस-व्हील (Balance-wheel) और हेयर-स्प्रिंग ठीक हुआ, तो घड़ी ठीक समय देगी। घड़ी में प्रायः सब तरह की गड़बड़ बैलेंस-व्हील के कारण होती है। हेयर-स्प्रिंग इस प्रकार से बनाया जाता है कि गरमी और जाड़े में एक ही गति से चले।

× × ×

२. युद्ध से लाभ

जो लोग यह समझते हैं कि युद्ध से केवल हानि ही होती है, वे भूल करते हैं; क्योंकि गत योरपियन युद्ध में कुछ ऐसी बातों का पता चला है, जो मनुष्यों के लिये ईश्वर का आशीर्वाद कही जा सकती हैं। कुछ लोग कहा करते हैं कि गत योरपियन युद्ध में प्रायः ३०,०००,००० मनुष्यों का प्राण-नाश हुआ; किंतु उस युद्ध से जो लाभ हुआ, उससे इस संख्या से कहीं अधिक मनुष्यों के प्राण बचाए जा सकते हैं।

युद्ध में ज़हरीले गैसों से बहुत प्राण-हानि हुई थी; किंतु पता लगा है कि ये ज़हरीले गैस ही उन बीमारियों की औषधियाँ हैं, जिनकी दवा अब तक आविष्कृत नहीं हुई थी। श्वास-नली की इनफ़्लुएंज़ा, ब्रोंकाइटिज़, न्युमोनिया और टुबरक्लसिस आदि बीमारियाँ इन गैसों द्वारा बड़ी आसानी से दूर होती हैं।

इनफ़्लुएंज़ा ही को लीजिए। अब तक डॉक्टरों को इस बीमारी का कोई प्रतिकार नहीं मालूम हुआ था। यह बीमारी बड़ी शीघ्रता के साथ फैलती और बहुतों की जान लेती है। किंतु पता लगा है कि क्लोरिन (Chlorine)-गैस इस बीमारी के कीड़ों को मारने में सक्षम है। इनफ़्लुएंज़ा के रोगी के घर में यदि यह गैस थोड़ी भी छोड़ दी जाय, तो वह २४ घंटे में चंगा हो जायगा। यदि स्कूल, थिएटर, गिर्जा-घर, सभा या अन्य बंद जगहों में, जहाँ बहुत-से मनुष्य एक ही समय जमा हुआ करते हैं, इस गैस का व्यवहार किया जाय, तो उक्त बीमारी के फैलने का डर नहीं रहता।

क्लोरिन एक ज़हरीला गैस है। लड़ाई में इसका प्रयोग मनुष्यों को मारने के लिये होता था। उस समय यह बात किसी के ध्यान में नहीं आई थी कि इस गैस का यदि थोड़ी मात्रा में व्यवहार किया जाय, तो यह स्वास्थ्य के लिये यथेष्ट लाभ-दायक होगी। १९१७ के वसंत में, फ़्रांस में, इनफ़्लुएंज़ा का ज़ोर हुआ, और बहुत-से सैनिक इसके शिकार हुए। उस समय अधिक मात्रा में क्लोरिन-गैस में साँस लेने के कारण बहुत-से मनुष्यों की मृत्यु हुई। किंतु देखा गया कि जो सैनिक लड़ाई के मैदान में पीछे थे, और जिन्होंने केवल थोड़ी ही मात्रा में गैस सूँघी थी, उनमें एक की भी मृत्यु नहीं हुई, बल्कि उनकी बीमारी भी शीघ्र ही जाती रही।

यही नहीं, यह भी देखा गया कि इस गैस के प्रभाव से सैनिकों में ब्रोंकाइटिज़, न्युमोनिया तथा अन्य फेफड़े के रोगों में भी कमी हो गई। इसके बाद कई बार परीक्षा की गई, और अंत को फल यही निकला कि यदि क्लोरिन-गैस थोड़ी मात्रा में हो, तो वह बहुत-सी बीमारियों के कीड़ों को नष्ट करती है।

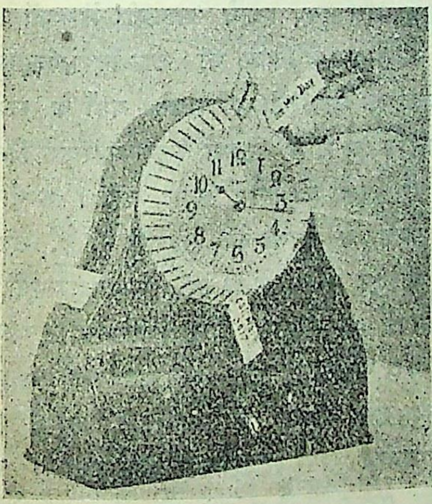
युद्ध समाप्त होने के समय लिविसाइट (Lewisite)-नामक एक नई गैस का आविष्कार हुआ। यह संखिया और ऐसिटलिन के संयोग से बनती है, और

इतनी ज़हरीली होती है कि यदि इसकी एक बूँद किसी मनुष्य के शरीर पर गिर पड़े, तो उसकी तुरंत मृत्यु हो जाय ; किंतु थोड़ी मात्रा में देने से यह गैस पागलपन [Paresis and locomotor ataxia] दूर करने की एक उत्तम औषधि है। ये रोग अब तक असाध्य समझे जाते थे; किंतु पागलपन के २१ रोगियों पर इधर इस गैस का प्रयोग किया गया, और वे सब-के-सब नीरोग हो गए।

× × ×

३. अलार्म-घड़ी

हमारे देश में अलार्म-घड़ी का उतना प्रचार नहीं है, जितना पाश्चात्य देशों में। यहाँ पर ऐसी घड़ी केवल उन विद्यार्थियों के पास रहती है, जिन्हें परीक्षा देनी होती है। अन्य मनुष्यों को अलार्म-घड़ी का व्यवहार करते बहुत कम देखा जाता है। किंतु अमेरिका आदि देशों में, जहाँ मनुष्यों को प्रत्येक क्षण एक-एक काम करना होता है, ऐसी घड़ी बड़ी सहायक सिद्ध हुई है। अलार्म-घड़ी ठीक समय पर बजकर यह याद दिला देती है



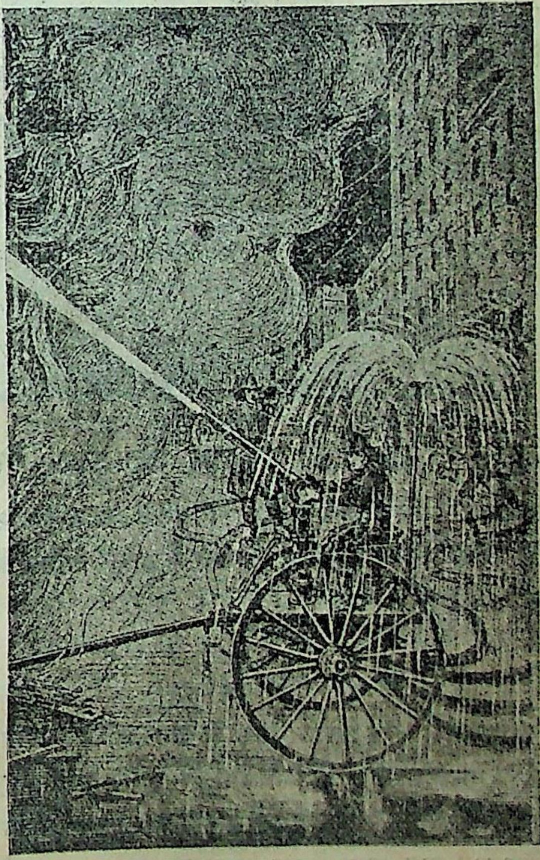
कार्य-व्यस्त मनुष्यों के लिये स्मृति-घड़ी

कि आपको इस समय कोई काम करना है। आपके पास इतने काम हैं कि उनके जंजाल में पड़कर आप भूल गए हैं कि इस समय आपको कौन सा काम करना है। इस असुविधा को दूर करने के लिये एक नए प्रकार की घड़ी का आविष्कार हुआ है। इसके चारों तरफ़ कार्ड रखने के दराज़ बने रहते हैं। आप अपने काम को जिस समय करना चाहते हैं, एक कार्ड में उस काम का नाम लिखकर उसके पासवाले दराज़ में लगा दीजिए। समय पर घड़ी बजेगी। आप कार्ड निकालकर पढ़ लीजिए, उसी पर आपका काम लिखा रक्खा है।

× × ×

४. नए प्रकार के फ़ायर-ब्रिगेड

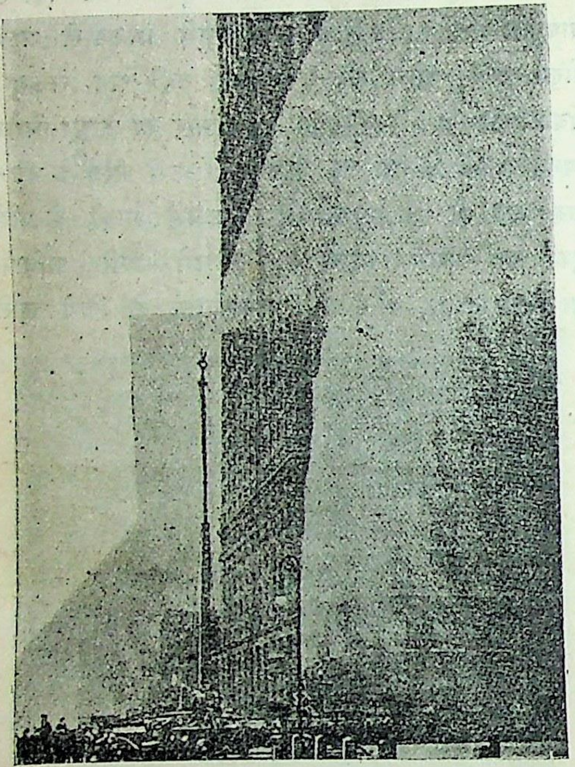
भारतवर्ष के बड़े-बड़े शहरों में आग बुझाने के लिये जो फ़ायर-ब्रिगेड हैं, वे आग के बहुत निकट नहीं ले जाए जा सकते ; क्योंकि उन्हें बहुत निकट ले जानेवाला मनुष्य आग की गरमी को नहीं सह सकता। संयुक्त-राज्य, अमेरिका में एक नए प्रकार का फ़ायर-ब्रिगेड व्यवहार में लाया जा रहा है। उसे आग के बहुत पास तक ले जा सकते हैं। उसमें गाड़ी के पीछे एक नल लगा रहता है, जिससे पानी फ़ौवारे-सा निकलता है, और आग बुझानेवाले के लिये छाते



१२५ फ़ीट ऊँचा पानी छिड़कनेवाला नए प्रकार का फ़ायर-ब्रिगेड

का काम करता है । इस जल के कारण आग की गरमी आग बुझानेवाले को कष्ट नहीं पहुँचाती । वह आग के बहुत पास जाकर इच्छानुसार जल छिड़ककर आग बुझा सकता है । इस दमकल से १२५ फ़ीट ऊँचे तक पानी छिड़का जा सकता है ।

किंतु इतने ही से अमेरिका के घरों की रक्षा आग से नहीं हो सकती; क्योंकि वहाँ २२–२३ मंज़िलोंवाले भी मकान हैं । यदि ऊँचेवाले खंड पर आग लग गई, तो



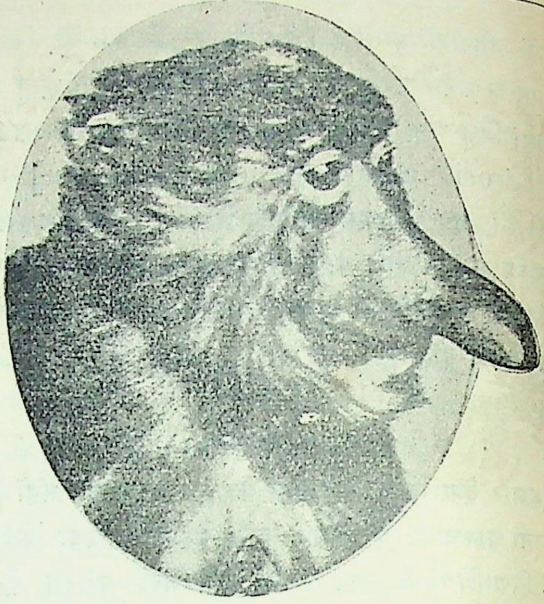
ऊँचे-से-ऊँचे मकानों की आग बुझानेवाला फ़ायर-ब्रिगेड

यह फ़ायर-ब्रिगेड काम न देगा । इसके लिये एक ९५ फ़ीट ऊँची दमकल बनी है । उसी के द्वारा ऊँचे-से-ऊँचे मकानों की आग बुझाई जाती है ।

× × ×

५. एक विचित्र बंदर

नीचे जिस बंदर की तसवीर दी गई है, वह संसार-भर में विचित्र है । यह बोर्नियो-द्वीप में पाया जाता और ऐसे अगम्य स्थान में रहता है कि इसे पकड़ना बड़ा कठिन है । अब तक केवल यही एक पकड़ा गया है । इसकी नाक देखने योग्य है ।



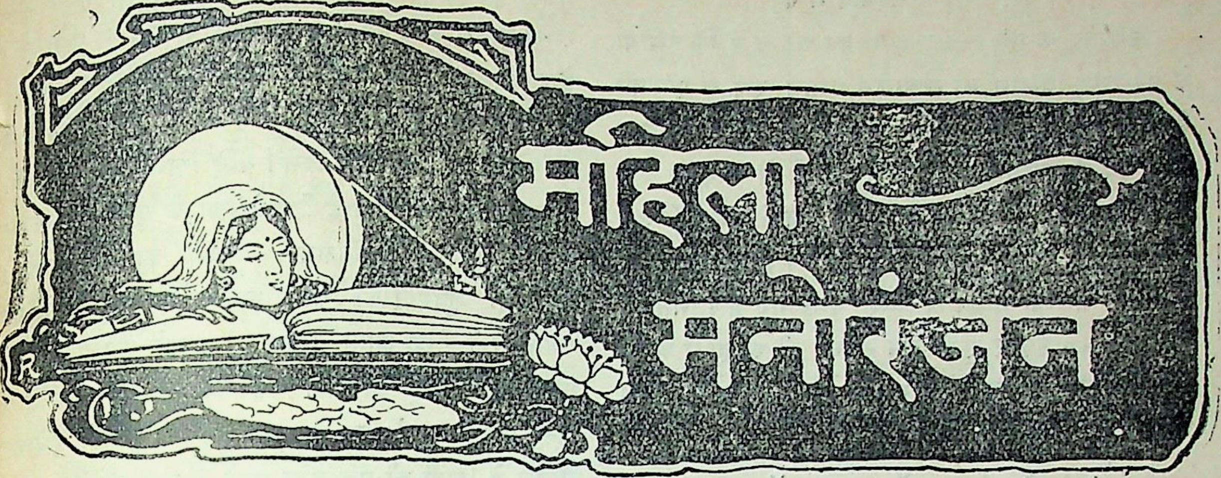
बड़ी नाकवाला विचित्र बंदर

× × ×

६. अद्भुत प्रतियोगिता

योरप और अमेरिका विचित्र देश हैं । वहाँ जो कुछ होता है, उसमें कुछ-न-कुछ विचित्रता अवश्य पाई जाती है । कुछ मास हुए, हमने 'माधुरी' में मूछों की प्रतियोगिता के विषय में लिखा था । उस दिन एक समाचार-पत्र में पढ़ा कि अमेरिका ने अपने यहाँ के सबसे बदसूरत मनुष्य को गहरी रक़म देकर पुरस्कृत किया है । यह देखकर इटली की स्त्रियाँ आगे बढ़ीं । उन्होंने कहा कि जब ईश्वर ने स्त्रियों को सुंदरता दी है, तब उनकी सुंदरता की एक प्रतियोगिता हो । समाचार-पत्रों में बड़े-बड़े विज्ञापन छपाए गए, और निश्चित दिन बहुत-सी स्त्रियाँ, जो अपनेको सुंदर समझती थीं, प्रतियोगिता में शामिल होने के लिये आने लगीं । कुछ ही समय में निश्चित स्थान स्त्रियों से ठसाठस भर गया । परीक्षकों ने पहला पुरस्कार जिस स्त्री को दिया, उसकी आयु केवल ६६ वर्ष की थी ! द्वितीय पुरस्कार जिस स्त्री को मिला, उसकी आयु बहुत अधिक नहीं, केवल ७३ वर्ष की थी । ये दोनों स्त्रियाँ अपूर्व सुंदरी हैं ! यदि भारतवर्ष में ऐसी प्रतियोगिता होती, तो उसका न-मालूम क्या फल होता । हमारा ख़याल है कि यहाँ तीस वर्ष से ऊपर की स्त्रियाँ बुड्ढी कहकर निकाल दी जातीं ।

रमेशप्रसाद



१. टर्की में स्त्रियों की जागृति

टर्की की स्त्रियाँ चिरकाल से परदे में रहती आई हैं । किंतु अब वे परदे से निकलकर समाज के बहुत-से कामों का भार ले रही हैं । स्त्रियों में शिक्षा-विस्तार का भी प्रयत्न हो रहा है । उनके लिये कांस्टेंटिनोपल तथा अन्यान्य शहरों में प्राथमिक तथा उच्च श्रेणी के विद्यालय स्थापित हुए हैं । कांस्टेंटिनोपल-विश्वविद्यालय में स्त्रियों की शिक्षा के लिये एक विशेष विभाग खुला है । सरकारी ख़र्च से बहुत-सी स्त्रियाँ योरप के भिन्न-भिन्न देशों में शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेजी गई हैं ।

तुर्की स्त्रियों की प्रधान हितैषिणी श्रीमती हालिडे अदीब हनूम हैं । पाश्चात्य देशों में इन्हें टर्की की 'जोन ऑफ़ आर्क' कहते हैं ; क्योंकि तुर्क-जाति के पुनरुत्थान में इनका भी हाथ है । यह कमालपाशा के मित्रों में हैं । राज्य के गंभीर विषयों में कमालपाशा इनकी सलाह लेते हैं ।

श्रीमती हनूम के पिता राज्य-च्युत सुलतान अब्दुल हमीद के कोषाध्यक्ष थे । वह उदार मत के मनुष्य थे, इसलिये उन्होंने अपनी लड़की को पाश्चात्य-भाषा की उच्च शिक्षा देने में कमी नहीं की । इसका फल यह हुआ कि टर्की-जैसे देश में जन्म लेकर भी हनूम ग्रेजुएट हो गईं ।

इन्होंने अब्दुल हमीद के निर्वासन के बाद से स्वदेश के स्त्री-समाज का नेतृत्व ग्रहण कर राजनीतिक आंदोलन में भाग लिया है । पहले यह अँगरेज़ों की बड़ी हितैषिणी और भक्त थीं ; किंतु पीछे पाश्चात्य-जातियों की ऐसी शत्रु हो गईं कि अँगरेज़ों ने इन्हें क़ैद कर निर्वासित करने की चेष्टा की । मगर इन्होंने चालाकी से वेष बदलकर, भागकर, अपनी रक्षा कर ली ।

यह अपूर्व स्त्री, कवि, लेखक, शिक्षक, कूट-राजनीतिक और सैनिक हैं । यथार्थ शिक्षा पाकर, परतंत्र देश में जन्म लेकर, नाना प्रकार की प्रतिकूल अवस्थाएँ रहने पर भी, स्त्रियाँ किस प्रकार अपना रास्ता सुगम कर ले सकती हैं, इसका बहुत बढ़िया दृष्टांत श्रीमती हनूम हैं ।

× × ×

२. स्त्रियों का संघ

कुछ दिन हुए, कलकत्ते में स्त्रियों का एक संघ (League of Women Workers) स्थापित हुआ है । इस अनुष्ठान को सफल बनाने के लिये अँगरेज़, पारसी, बंगाली इत्यादि अनेक जातियों की स्त्रियाँ चेष्टा कर रही हैं । इस संघ का कार्य-क्षेत्र चारों ओर बहु-विस्तृत होगा ।

इस संघ के उद्देश्य में पुरुष-विद्रोह का लेश-मात्र भी आभास नहीं मिलता । अपनी अवस्था को सुधारने के लिये स्त्रियाँ धैर्य तथा संयम के साथ प्रयत्न करेंगी । वे पुरुषों से विद्रोह करना नहीं चाहतीं ; अपने अधिकार पर डटे रहना ही उनका लक्ष्य है । इसलिये आशा की जाती है कि यह स्त्री-संघ स्त्री-समाज और देश का उपकार करने में समर्थ होगा । ईश्वर इसे सफलता दें ।

× × ×

३. पर-राष्ट्र-विभाग में स्त्री

डेलीमेल के एक संवाद-दाता का कहना है कि रशिया के पर-राष्ट्र-विभाग का संचालन प्रधान रूप से एक स्त्री के हाथ में है। इनका नाम सिमानोवा है। इनकी उम्र तीस वर्ष के लगभग है। इनकी आँखों में सरलता भरी है; किंतु स्वभाव बड़ा उग्र है। सज़ा देने के समय सिमानोवा निष्ठुर और निर्मम हो जाती हैं। इनके आदेश से बहुत-से मनुष्य गोली से मार डाले गए हैं। गत ६ महीने में २० हज़ार रूसी इस रमणी की आज्ञा से आर्कैंजेल में निर्वासित कर दिए गए हैं। सिमानोवा का नाम रशिया का बच्चा-बच्चा जानता है।

× × ×

४. महिला-वकील

कटक के सुप्रसिद्ध नेता तथा बिहार के भूतपूर्व मंत्री माननीय मधुसूदन दास की एक संबंधी कुमारी सुधांशुबाला हाजरा हैं। गत वर्ष इन्होंने बी० एल्० की परीक्षा पास कर पटने में 'प्रैक्टिस' करने की अनुमति चाही थी; किंतु उस समय पटना-हाईकोर्ट के विचारपतियों ने अनुमति नहीं दी। इसलिये श्रीमती हाजरा ने प्रिवी-कौंसिल में अपील की। इतने में भारतीय व्यवस्थापिका सभा में स्त्रियों को 'प्रैक्टिस' करने का अधिकार देना स्वीकृत हुआ। इस अधिकार को पाकर फिर इन्होंने दर्ख़्वास्त दी, और अब इनका नाम वकीलों की श्रेणी में दर्ज हो गया है। यह प्रथम भारतीय महिला-वकील हैं।

× × ×

५. स्त्री-डॉक्टर का आविष्कार

डॉक्टर श्रीमती लुइस पियर्स 'जांस हपकिंस-कॉलेज' की ग्रेजुएट हैं। इन्होंने राकफ़ेलर-इंस्टीट्यूट में दस वर्ष तक काम किया है। इन्होंने पक्षाघात तथा निद्रा-रोग की एक ओषधि का आविष्कार किया है। डॉक्टर पियर्स इस दवा को लेकर बेलजियन कंगों में गई थीं। वहाँ चार महीने से यह उक्त रोगों की दवा कर रही हैं। इन्हें सफलता भी प्राप्त हुई है।

× × ×

६. स्त्री-इंजीनियर

स्त्रियाँ जितना समय घर में बिताती हैं, उतना पुरुष नहीं बिताते। यदि घर ख़राब हुआ, तो जितना दुःख स्त्रियों को होता है, उतना पुरुषों को नहीं। इसलिये पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का इंजीनियर होना अधिक लाभ-दायक जान पड़ता है। किंतु वास्तव में ऐसा नहीं देखा जाता। अमेरिका के "वीमेन-सिटिज़न" नामक पत्र में श्रीमती मार्जरी शूलर ने लिखा है कि "स्त्रियाँ इंजीनियर क्यों नहीं देखे जाते? यदि स्त्रियाँ इंजीनियर हों, तो इसमें दोष ही क्या है? अमेरिका के युनाइटेड स्टेट्स के इंजीनियरों में प्रतिशत एक स्त्री का औसत है। स्त्रियाँ ही गृहस्थी का काम करती हैं; किंतु उन्हें घर बनाते नहीं देखा जाता। घर का नक़्शा बनाते हुए भी स्त्रियाँ नहीं पाई जातीं। यह आश्चर्य की बात है। अस्तु। हमें यह देखकर प्रसन्नता हुई कि कुमारी एलिनर मैनिंग ने स्त्रियों को एक नया मार्ग दिखलाया है। यह इस देश की सुविख्यात स्त्री-इंजीनियरों में हैं।"

भारतवर्ष की स्त्रियाँ सब देशों से पिछड़ी हुई हैं। फिर भी यहाँ की स्त्रियाँ शिक्षा देने का काम, डॉक्टरी, वकालत आदि करने लगी हैं। देखें, उनमें इंजीनियर कब होती हैं।

× × ×

७. देश-विदेश की स्त्रियाँ

चीन—बीस वर्ष आंदोलन करने के बाद मध्य-चीन की स्त्रियों ने वोट देने का अधिकार पाया है। आजकल उयं-च्युं-कू नाम की एक स्त्री वहाँ की आईन-सभा की एक सभ्य हुई हैं। दक्षिण-चीन की स्त्रियाँ भी अपना अधिकार पाने के लिये प्राण-पण से चेष्टा कर रही हैं।

अमेरिका—श्रीमती सारा फ़ारले नाम की एक वृद्ध स्त्री ने पैंसिलवेनिया के सरकारी विद्यालय से उद्भिद्-विद्या में डिग्री प्राप्त की है। उनके दो लड़के भी युनिवर्सिटी के ग्रेजुएट हैं। उनके तेरह नाती भी हैं। उक्त कॉलेज से एक और वृद्ध महिला—श्रीमती सुशन पोर्टरफ़ील्ड—ने भी उपाधि प्राप्त की है। अमेरिका की स्त्रियों के ज्ञानार्जन-प्रेम के ये ज्वलंत उदाहरण हैं।

अमेरिका युक्त-राष्ट्र के भूतपूर्व प्रेसीडेंट विल्सन की कन्या कुमारी मार्गरेट विल्सन ने व्यवसाय-क्षेत्र में प्रवेश किया है। इन्होंने विज्ञापन का एक बड़ा कारबार खोला है।

इंडियाना की श्रीमती वारिंगटन को युक्त-राष्ट्र की प्रधान अदालत में 'प्रैक्टिस' करने का अधिकार मिल गया है। इसके पहले केवल एक स्त्री को इस अदालत में प्रैक्टिस करने की आज्ञा मिली थी।

श्रीमती विला सिवार्ट कैथर को इस वर्ष पुलिटजर-पुरस्कार मिला है। उनके उपन्यास का नाम "हमारा एक आदमी" है। यह पुरस्कार ३०००) रु० से भी अधिक का है, और प्रत्येक वर्ष उसी उपन्यास-लेखक को दिया जाता है, जो अमरिका के सामाजिक, पारिवारिक और राष्ट्रीय जीवन के उच्च आदर्श का चित्र उत्तमता-पूर्वक खींच सकता है।

आईसलैंड—कुमारी बियर्सन आईसलैंड की आईन-सभा में सदस्य निर्वाचित हुई हैं। १६१५ ई० से इस बर्फ़ीले देश की स्त्रियाँ वोट का अधिकार प्राप्त कर उसका उपयोग कर रही हैं।

जेनेवा—अंतरराष्ट्रीय बालकों के हित-साधक-संघ में एक प्रस्ताव यह पास हुआ था कि बालकों को बायस्कोप के बुरे चित्रों (moving picture) से बचाना चाहिए। इसके लिये एक केंद्रिक संस्था स्थापित हुई है, जो संसार के बायस्कोप के चित्रों को देखकर अपनी राय देगी कि किस कंपनी के चित्र लड़कों के देखने योग्य हैं, और किसके नहीं।

भारतवर्ष—इस वर्ष कुमारी सी० एच्० वसु वर्तमान और मध्य युग की भाषा-संबंधी परीक्षा में आक्सफ़ोर्ड-विश्वविद्यालय से, द्वितीय विभाग में, उत्तीर्ण हुई हैं।

"वनफूल"

× × ×

८. अमेरिका की स्त्रियाँ

वास्तव में अमेरिका के युक्त-राष्ट्र की स्त्रियों को आज तक क़ानून का पूरा अधिकार नहीं मिल सका है। आलाबामा-प्रदेश में स्त्रियाँ अपनी संतानों की अभिभाविका नहीं होने पातीं; क़ानून के मुताबिक़ पुरुष ही अभिभावक माने जाते हैं। आर्कांस-प्रदेश में स्त्रियाँ अपने मा-बाप की संपत्ति में भी पुरुष के बराबर हिस्सा नहीं पातीं। पैतृक संपत्ति पर पुत्री की अपेक्षा पुत्र का अधिकार अधिक होता है। फ़्लोरिडा-प्रदेश में संतानों की कमाई पर पिता का ही पूरा अधिकार होता है; माता उसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकती। इस प्रदेश में, संतान द्रव्योपार्जन किस प्रकार करे, इस विषय में पिता के मत को ही प्रधानता दी जाती है, माता के मत की उपेक्षा की जाती है। लुसियाना-प्रदेश में विवाहिता स्त्री की गणना क़ानूनन् नाबालिग़ या पागल की श्रेणी में की जाती है। यहाँ की स्त्रियाँ व्यवसाय आदि में भी हाथ नहीं डाल सकतीं। म्यासाचुसेट्स-प्रदेश में स्त्रियाँ जूरियों के आसन पर नहीं बैठने पातीं। वर्जीनिया-प्रदेश में विवाहिता स्त्रियों का परिश्रम-पूर्वक कमाया हुआ धन भी पति की तहवील में चला जाता है।

युक्त-राष्ट्र में इन अन्यायी क़ानूनों के विरुद्ध आंदोलन चल रहा है। वहाँ के वक्ता तथा लेखक अपनी वक्तृताओं और लेखों द्वारा इस अन्याय का विरोध कर रहे हैं। उनका कहना है कि जब तक ये सब क़ानून अमेरिका से नहीं उठ जायँगे, तब तक स्त्रियाँ यह समझेंगी कि वे बहुत पुराने विलायती क़ानून के अधीन रहकर ही अपना जीवन बिता रही हैं।

× × ×

९. विलायत में विवाह-विच्छेद (तलाक़) का क़ानून

विलायत में तलाक़-प्रथा का क़ानून संशोधित होकर पार्लियामेंट में पास हो गया। इस क़ानून के अनुसार यदि पति व्यभिचारी प्रमाणित हो जाय, तो उसकी स्त्री उसे छोड़ दे सकती है।

× × ×

१०. बड़ौदे में स्त्री-शिक्षा

इस समय बड़ौदे में ३७२ बालिका-विद्यालय हैं। इन विद्यालयों में लगभग ३०,३३१ बालिकाएँ शिक्षा प्राप्त करती हैं। दूसरे स्कूलों में भी ३१.५६८ स्त्रियाँ विद्योपार्जन कर रही हैं। बड़ौदे में ख़ास स्त्रियों के लिये एक कॉलेज भी है।

बड़ौदे में एक गुरुकुल केवल कन्याओं के लिये है। इसकी स्थापना आज से दो वर्ष पहले हुई थी। कविरत्न पंडित शंकर शर्मा तथा उनकी पत्नी सौभाग्यवती श्रीमती इच्छा-देवीजी ने इसके लिये बड़ा उद्योग किया है। यहाँ कन्याएँ ब्रह्मचारिणी बनकर सांगोपांग वेदादि शास्त्रों का अभ्यास करती हैं। कन्याओं को केवल विवाह की वस्तु समझनेवाले इसे कलियुग की महिमा कहकर चौंक उठेंगे। उनके विचार में कन्याओं को ब्रह्मचारिणी बनाना और फिर वेद पढ़ाना वज्रपात ही के समान होगा। यह गुरुकुल उक्त दंपति की देख-रेख में बड़ी उत्तमता से चल रहा है। कन्याएँ संस्कृत में अच्छी योग्यता प्राप्त कर सकती हैं, इसका प्रमाण उक्त गुरुकुल है। इस गुरुकुल में प्रत्येक रविवार को आर्य-समाज के

लोग जमा होते और पंडितजी के उपदेशों से लाभ उठाते हैं। कन्याओं को योग्य बनाने का यह प्रयास बहुत ही उत्तम तथा अनुकरणीय है। सरकारी अस्पताल के सामने, किराए के मकान में, अभी यह संस्था चल रही है; परंतु ईश्वर की कृपा से शीघ्र ही एक स्वतंत्र मकान में चली जायगी, यह निश्चित है। लड़कियों को गृह-कार्य आदि में पूर्ण रूप से योग्य और चतुर बना देना इस संस्था का उद्देश्य है।

सूरसागर-तालाब के ऊपर एक भव्य-भवन में महारानी गर्ल्स हाई स्कूल है। यहाँ पर्दे की प्रथा न होने से सैकड़ों लड़कियाँ इस स्कूल में उच्च शिक्षा प्राप्त करती हैं। इस स्कूल के तीन विभाग हैं। एक विभाग बंबई-युनिवर्सिटी की मैट्रिक-परीक्षा के लिये लड़कियों को तैयार करता है। दूसरे विभाग का कर्वे के महिला-विश्वविद्यालय से संबंध है। तीसरा विभाग गृह-शिक्षा देता है। जो लड़की मैट्रिक पास करना चाहती है, वह चाहे, तो बंबई-युनिवर्सिटी अथवा कर्वे-युनिवर्सिटी की परीक्षा में बैठ सकती है। अन्य लड़कियाँ गृह-शिक्षा का कोर्स ले सकती हैं। गृह-शिक्षा-कोर्सवालियों को सीना, गाना, बेल-बूटे काढ़ना, बच्चे की सँभाल, कपड़े धोना, भोजन पकाना इत्यादि काम सिखलाए जाते हैं। साथ ही गुजराती-भाषा में भूगोल, इतिहास और साहित्य का ज्ञान भी कराया जाता है। अँगरेज़ी भी तार-चिट्ठी पढ़ने लायक़ सिखा देते हैं। इस स्कूल की कन्याएँ Girl Guilding का भी कार्य सीखती हैं।

भारतवर्ष में स्त्री-शिक्षिकाओं का बड़ा अभाव है, इस कमी को देखकर ही फ़ीमेल-ट्रेनिंग-कॉलेज की स्थापना हुई है। इसमें गुजराती किताबें पढ़ने पर तीन साल तक शिक्षा का कार्य सिखलाया जाता है। इसका भी मकान बहुत भव्य है। इस संस्था में मध्यम और उत्तम वर्गों में हिंदी अनिवार्य है। इसकी उपयोगिता को देखते हुए कहना पड़ता है कि ऐसे ही और भी ट्रेनिंग-कॉलेजों के खुलने की आवश्यकता है।

× × ×

११. मिसर का महिला-डेलिगेशन

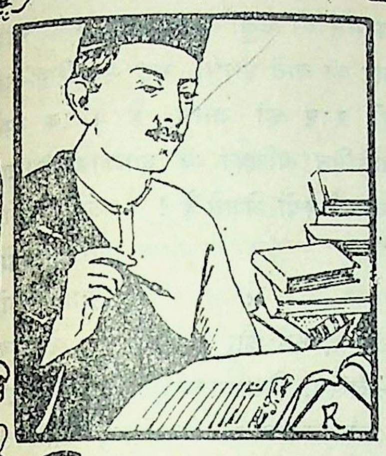
अखिल-विश्व-महिला-सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिये जो महिला-डेलिगेशन इस बार इटली गया है, उसकी अभ्यर्थना के लिये अनेक बड़े-बड़े घरानों की मुस्लिम महिलाएँ एकत्र हुई थीं। बड़े-बड़े उच्च पदाधिकारी पुरुष भी इस सभा में उपस्थित थे। महिला-डेलिगेशन की सभा-नेत्री ख़ातून हूदा शेरा, सैयदा नबूई मूसा और सैयदा जीजनबूई और उनके साथ अनेक महिला-सहचरी उक्त डेलिगेशन में शामिल हुई थीं। उन्हें बिदा करने के लिये मिसर के प्रधान मंत्री महमूदपाशा भी उपस्थित थे। "अल-अख़बार"-नामक संवाद-पत्र की एक महिला-प्रतिनिधि संपादकों की ओर से उन्हें अभिनंदित करने के लिये भेजी गई थीं। उन्होंने सब संपादकों का यह संदेशा कहा कि "आप लोगों की यात्रा सफल हो, इसके लिये देश के सभी संपादक एक स्वर से मंगल की प्रार्थना ईश्वर से करते हैं।" उक्त संपादक-प्रतिनिधि के आगे ख़ातून हूदा ने कहा—"स्वदेश की पद-दलित, लांछित तथा अपमानित महिलाओं के लिये हमारा यह प्रधान कर्तव्य होना चाहिए कि वे न्याय्य सम्मान और अपने अधिकार पाने की अधिकारिणी तथा जातीय आंदोलन में सहायिका होकर देश को परतंत्रता से मुक्त करने में समर्थ हों।" उन्होंने यह भी कहा कि सम्मेलन में वह एक प्रबंध पढ़ेंगी, जिसका अभिप्राय यह होगा कि मुस्लिम-रमणियों को पहले किस प्रकार सभी अधिकार प्राप्त थे, और फिर वे किस प्रकार अपने समस्त अधिकारों से वंचित कर दी गईं। इसी विषय पर विशद रूप से प्रबंध में प्रकाश डाला गया है।

× × ×

१२. अमेरिका में पंजाबी महिला

श्रीमती सुशीला-देवी पंजाब के एक अच्छे घराने की और ज़मींदार की पत्नी हैं। उन्होंने यथासाध्य चेष्टा करके विधवाओं की सहायता के लिये एक शिल्प-विद्यालय की स्थापना की है। उस विद्यालय के बनाए हुए शिल्प-द्रव्यादि बेचने और भारतीय स्त्रियों की दुरवस्था की आवाज़ को दूरस्थ देशों में पहुँचाने के लिये आप अमेरिका गई हैं। उक्त श्रीमतीजी संपूर्ण योरप का भ्रमण समाप्त कर अब अमेरिका पहुँची हैं। आप भारतीय नारी-समाज-गौरव का स्तंभ कही जा सकती हैं। ईश्वर करे, आपकी शुभ कामना सफल हो।

गोपीनाथ वर्मा



पुस्तक-परिचय

१. वैद्यक और शारीरक

दीर्घ जीवन के रहस्य—लेखक, श्रीयुत पं० भूषनारायण दीक्षित, बी० ए०, एल्० टी० । प्रकाशक, श्रीयुत राजाराम चौबे, 'दुअन्नी-पुस्तकमाला'-कार्यालय, हरदोई ।

जर्मनी के डॉक्टर प्रोफ़ेसर हूफ़लैंड की बनाई The Art of prolonging life के आधार पर इस पुस्तक की रचना की गई है। इसमें जीवन बढ़ाने के उपायों का वर्णन है। भारतीय आयुर्वेद की दिन-चर्या में आहार-विहार-संबंधी जो वर्णन है, उसी प्रकार की कुछ बातें इस ९२ पृष्ठों की पुस्तक में लिखी हैं। सात्त्विक आहार-व्यवहार पर विशेष ज़ोर दिया गया है। पुस्तक सर्व-साधारण के पढ़ने और ध्यान देने लायक़ है।

× × ×

ब्रह्मचर्य—लेखक, श्रीरमेशचंद्र चक्रवर्ती । आकार छोटा । पृ० सं० ७८ । मूल्य छः आने, और प्राप्ति-स्थान सेन-रे एंड को०, कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता ।

पुस्तक का प्रतिपाद्य विषय उसके नाम से ही स्पष्ट है। यह पुस्तक विशेषतः विद्यार्थियों के हित को लक्ष्य करके लिखी गई है। विषयों का संघटन बुद्धिमत्ता से किया गया है, और प्रमाणों का संग्रह करने में यथेष्ट परिश्रम। इसके लेखक एक भुक्तभोगी सज्जन हैं। विद्यार्थियों तथा नवयुवकों को एक बार इसे अवश्य पढ़ना और तदनुरूप आचरण करना चाहिए।

× ×

शिवराम-भूषण—लेखक, पं० शिवराम वैद्य, 'महोल्ला'(?) बालकराम, नजीबाबाद, बिजनौर । मूल्य ६ आने ।

लेखक ने इसे "बाल-रक्षा तथा बाल-चिकित्सा का अद्वितीय ग्रंथ" बतलाया है। इसमें संस्कृत-मूल और हिंदी-टीका है। मूल-ग्रंथ वैद्यक के पुराने ग्रंथों से संग्रह किया गया है। हिंदी-टीका होने पर भी मूल में आपने "सर्जरसः राल इति लोके—हारिद्रकः हरदुआ कदंब इति लोके—अश्वकर्णः सांकु इति लोके" इत्यादि लिखने की आवश्यकता समझी है। इसका मूल और टीका, दोनों अशुद्ध हैं। बहुत-सी अशुद्धियाँ छापे की हैं, और बहुत-सी स्वयं वैद्यजी महाराज की।

पुस्तक के आरंभ में ही सुश्रुत के "मूत्रपुरीषरेतसः" का अर्थ करते हुए आप कहते हैं—"जिनके वीर्य में मूत्र हो या जिनके वीर्य में विष्ठा हो।" आगे भी आपने अपनी यही बात कई जगह दुहराई है, हालाँ कि सुश्रुत के मूल में ही इसकी व्याख्या स्पष्ट लिखी है कि "मूत्रपुरीषगन्धि-सन्निपातेनेति।" आपने इस पंक्ति का अर्थ करते हुए भी अपनी वही बात कही है। यदि पुस्तक लिखने के पहले वैद्यजी महाराज किसी सद्वैद्य या डॉक्टर से यह समझने की कोशिश करते कि 'वीर्य में विष्ठा' किस तरह हो सकती है, तो अच्छा होता।

भूमिका में आपने लिखा है—"इस ग्रंथ में अशुद्धिता(?) हो तो विद्वान् उसे शुद्ध कर लें।" अतएव जिन विद्वानों को 'अशुद्धिता' शुद्ध करके पढ़ना हो, वे आपसे इसे मँगा सकते

हैं। "यदि किसी ख़ास रोग पर पूछना हो, तो" ।) फ़ीस भेजने से वैद्यजी "चिकित्सा मये (?) अनुपान लिखकर" भेज देंगे। अब तक लोग औषधों के अनुपान सुना करते थे, पर अब आपने चिकित्सा के अनुपानों की ईजाद की है!

× × ×

अनमोल बूटी—लेखक, पं० विहारीलाल बी० ए०, मास्टर गवर्नमेंट हाई स्कूल, अमरोहा, मुरादाबाद। मूल्य साढ़े चार आने।

रॉयल साइज़ के ५१ पृष्ठों की इस पुस्तक में आक (मदार) के गुणों का वर्णन और उसके उपयोग के प्रकारों का ज़िक्र है। भाषा इसकी अरबी-फ़ारसी लदी उर्दू है, और अक्षर हिंदी के। लेखक ने अपनी-समझ से कठिन शब्दों का हिंदी-अनुवाद भी टिप्पणी में दे दिया है। यदि मूल-पुस्तक के अरबी-फ़ारसी-शब्दों को निकालकर उनकी जगह हिंदी के शब्द रख दिए जाते, तो यह 'द्रविड़-प्राणायाम' न करना पड़ता। 'न अंधे को बुलाते, न दो जने आते।'

× × ×

जवानी की निशानी—प्रकाशक, सुखसंचारक-कंपनी, मथुरा।

सुखसंचारक-कंपनी, मथुरा के 'चिकित्सा-सिंधु' (माधुरी के गत अंक में समालोचित) की बात पाठक शायद भूले न होंगे। आज उसी कंपनी की एक दूसरी पुस्तक हमारे सामने है। इसके टाइटिल-पेज पर लिखा है—"जवानी की निशानी अर्थात् नपुंसकता...गरमी सुज़ाक की कहानी तथा इनसे उद्धार पाने को चतुर चिकित्सकों की बानी"। पाठक देखेंगे कि इस टाइटिल-पेज के पढ़ने से ही चूरन बेचनेवालों के लटकों का मज़ा आने लगता है। वस्तुतः इस पुस्तिका से सुधा-सिंधु के सार्टिफ़िकटों का प्रचार और उसके नए एजेंट बनाना उद्दिष्ट है। परंतु पुस्तिका को देखते ही लोग फेंक न दें, इसलिये कुछ दूसरी तरह की बातें भी आरंभ में लिख दी गई हैं।

'भूमिका' का आरंभ इस प्रकार होता है—"मनुष्य संसार में दो ही काम करने के लिये आया है, उदर भरे और संतान बनावे (?)।" हमारी सम्मति में तो जो इन्हीं दो को जीवन का उद्देश्य समझता है, वह नर नहीं, नर-पशु है; क्योंकि "आहारनिद्राभयमैथुनानि सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।" इसकी भाषा गंदी और भाव अत्यंत लज्जा-जनक हैं। हम उनका उल्लेख कर पाठकों के पवित्र मन को कलुषित करना नहीं चाहते। इसमें किस प्रकार की बातें होंगी, यह टाइटिल-पेज की 'कहानी' से ही स्पष्ट हो जाता है। न मालूम माधुरी-जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका में लोग ऐसी घृणित पुस्तकें समालोचनार्थ क्यों भेजते हैं!

शालग्राम

× × ×

२. धर्म और दर्शन

धर्मांजलि—लेखक, विद्या-वाचस्पति पं० रघुनाथप्रसाद शास्त्री, घड़ियाली, साहित्याचार्य, विद्यानिधि, प्रिंसिपल श्री राधाकृष्ण-संस्कृत-नागरी-विद्यालय, महेंद्रगढ़, पटियाला स्टेट। मुद्रक, सूरजप्रसाद खन्ना, हिंदी-साहित्य-प्रेस, प्रयाग। छोटी साइज़। क़ागज़-छपाई-सफ़ाई साधारण। पृष्ठ-संख्या १९२ मूल्य लिखा नहीं।

इस धर्मांजलि में उक्त शास्त्रीजी ने वेद, उपनिषद् धर्म-शास्त्र, पुराण आदि से समस्त धर्म-कर्म-विषयक नित्य नैमित्तिक कर्मों का प्रतिपादन बड़ी सुगमता से सरल हिंदी में, किया है। प्रायः सभी ज्ञातव्य बातें अलग-अलग पाठ के क्रम से लिखी हैं। कर्म-कांड और ज्ञान-कांड का रहस्य अच्छी रीति से, थोड़े में, खोल दिया है। कम पढ़े लिखे भी सहज में ईश्वर, अवतार, पंच देव और देव-पितृ तर्पण आदि के तत्त्व को जान सकते हैं। पुस्तक चा अध्यायों में विभक्त है। पाठशालाओं में पढ़नेवाले नवयुवकों के विशेष काम की है।

× × ×

सूक्ति-मौक्तिक-मालिका—कर्ता, ज्योतिषी बाबा शिवप्रकाश द्विवेदी विद्या-कलानिधि, रईस, मथुरा। पृष्ठ-संख्या २४; छपाई-क़ागज़ साधारण। मूल्य ।) आने।

संस्कृत के अनुष्टुप्-छंद में १०८ श्लोक इस मालिका में हैं। धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष, ज्ञान और वैराग्य का सदुपदेश, शास्त्र-सम्मत रीति से, बड़े मधुर शब्दों में प्रतिपादित हुआ है। अंत में एक 'कृष्णाद्भुत स्तोत्र' भी १८ श्लोकों में है; जो कि प्रातःकृत्य करनेवालों के काम का है। भाषा-पद्यों में मालिका के सब श्लोकों का अनुवाद भी है। इसमें कुछ ग्रंथकर्ता की रचना हैं, बा

श्लोकों के समानार्थक तुलसीदास, कबीर, नारायण स्वामी, श्याम कवि आदि के बनाए दोहे-चौपाई उद्धृत कर दिखाए गए हैं । पुस्तक उत्तम है । आदि में उक्त ज्योतिषी बाबा का, रईसी ठाट में, एक चित्र भी है ।

× × ×

पंचरत्न-प्रश्नोत्तरमालिका—रचयिता और प्रकाशक, मेवाड़ के बाठरड़े रावतजी साहब श्रीदलेलसिंहजी के लघु भ्राता ठाकुर साहब श्रीगुमानसिंहजी । 'लक्ष्मीनारायण'-यंत्रालय, मुरादाबाद में मुद्रित । पुस्तक मिलने का पता—पं० ज्येष्ठाराम-मुकुंदजी, पु० नं० ३५३, कालबादेवी रोड, जबरेबाग़, मुंबई । काग़ज़-छपाई मामूली । पृष्ठ-संख्या १२३ । मूल्य लिखा नहीं ।

यह योग-विषयक ग्रंथ है । इसकी भूमिका में लिखा है—"......इसमें श्रीमान् स्वामीजी महाराज अद्वैतानंद अरविंद भारतीजी और मुमुक्षु देवदत्त का संवाद ठाकुर साहब गुमानसिंहजी ने किया है, जिसमें आत्म-बोध के लिये ज्ञान, राजराजेश्वर-योग, भक्ति, राम-नाम-माहात्म्य और नीति, ये पाँचों विषय पंचरत्न यानी हीरा, पन्ना, माणिक, मोती और पुखराज के समान शोभायमान हैं । इन अमूल्य रत्नों की अपूर्व माला को जो धारण करेगा उसके स्वार्थ, परमार्थ दोनों हस्तामलकवत् हो जायँगे...... ।" बस, ठीक है ! संसार में सब कोइ इसी की तलाश में परेशान रहते हैं । अब ठाकुर साहब ने बीसवीं सदी में अपनी माला सर्व-साधारण के समक्ष प्रकट कर दी है । उसे धारण करके शीघ्र ही दोनों हाथ लड्डू लूटना चाहिए ।

गिरिजाप्रसाद द्विवेदी

× × ×

गायत्री-महिमा—उपयोगी निबंध-माला का द्वितीय पुष्प । मूल्य ।) है । पता—कल्पवृक्ष-कार्यालय, कंठाल, उज्जैन ।

वैसे तो द्विज-मात्र का ही गायत्री मंत्र होता है ; परंतु उसकी महिमा बहुत कम लोग जानते हैं । इस छोटी-सी पुस्तक में बड़ी सुघराई के साथ, सरल भाषा में, वेदों में गाई हुई बात बतलाई गई है । यह प्रत्येक हिंदू के घर में अवश्य रहनी चाहिए ।

ॐकार-जप-विधि और गायत्री-महिमा मैंने पढ़ी । शोक तो इस बात का है कि ऐसा भी समय आ गया, जब हिंदुओं को, जिनका सर्वस्व ॐ और गायत्री हैं, इनकी महिमा बताने की आवश्यकता हुई । इनकी गुण-गाथा से तो समस्त वेद, शास्त्र और उपनिषद् परिपूर्ण हैं । हर्ष यह है कि इन छोटी-छोटी पुस्तिकाओं में लेखक ने मानो सागर को गागर में भरकर एक बड़ा भारी अभाव दूर किया है । जो रहस्य-पूर्ण बातें लिखी हैं, उनके जानने से जनता को बहुत लाभ पहुँच सकता है, और यदि उनमें लिखे हुए अनुभूत प्रयोगों को कार्य-रूप में परिणत किया जाय, तो एक बार फिर भारतवर्ष शिरोमणि बन सकता है । बड़ी उत्तमता इन निबंधों की यह है कि ऐसे गहन विषय को बड़ी सरल भाषा में लिखा है । पुस्तक प्रत्येक हिंदू के पास रहने योग्य है ।

राधाकांत भार्गव

× × ×

श्रीरामकृष्ण-कथामृत—प्रकाशक, रामनरायणलाल, प्रयाग । लेखक, पं० रामदहिन मिश्र काव्य-तीर्थ । काग़ज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी, मूल्य ।-) और पृष्ठ-संख्या ५९ ।

इसमें प्रसिद्ध स्वामी विवेकानंद के गुरु श्रीरामकृष्ण परमहंसजी के कुछ उपदेश तथा उनकी संक्षिप्त जीवनी भी दी हुई है । पुस्तक अच्छी है ।

× × ×

रामचरित-मानस (सटीक तथा सचित्र)—प्रकाशक, बेलवेडियर-प्रेस, प्रयाग । टीकाकार, पं० महावीरप्रसाद मालवीय, वैद्य, 'वीर कवि', ज्ञानपुर, बनारस-स्टेट । आकार २०×३० अठपेजी । काग़ज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी । पृष्ठ-संख्या १४०२ ; सुंदर जिल्द बँधी हुई प्रति का मूल्य ८)

रामचरित-मानस हिंदी-काव्य-साहित्य का अमूल्य और अद्वितीय ग्रंथ-रत्न है । भारत में इस ग्रंथ का जितना आदर है, उतना किसी ग्रंथ का नहीं । झोपड़ियों से लेकर राज-प्रासादों तक इसका निवास है, और निरंतर रहेगा । इस ग्रंथ की टीकाएँ भी खूब हुईं, संस्करण भी खूब हुए, और प्रचार भी खूब हुआ । जिस प्रेस ने इस ग्रंथ को छापा, उसी ने लाभ उठाया । ऐसा नहीं हुआ कि रामचरित-मानस की प्रतियाँ किसी प्रेस में पड़ी सड़ती रही हों, कोई उनका पूछनेवाला न हो । टीकाकार, प्रकाशक और ग्राहक, सभी इसके लिखने, छापने, ख़रीदने और पढ़ने में परम संतुष्ट रहे । टीकाकारों और प्रकाशकों ने यथेष्ट अर्थ-लाभ किया, और ज्ञान-पिपासु

ग्राहकों ने पर्याप्त ज्ञान-लाभ । समस्त टीकाओं में कौन-सी टीका शुद्ध और प्रामाणिक है, यह एक विवाद-ग्रस्त प्रश्न है । इसे वही हल कर सकता है, जिसने सब टीकाएँ देखी हों । जो हो, इस समय रामचरित-मानस की यह एक नई टीका हमारे सामने उपस्थित है । इसमें तीन रंगीन चित्र हैं, और एक सादा । इनके अतिरिक्त गोस्वामी तुलसीदासजी का एक चित्र और है । टीका साधारणतः अच्छी हुई है । टीकाकार ने छंदोगत अलंकारों का भी उल्लेख कर दिया है, यही इसकी विशेषता समझिए । टीका की भाषा सरल और बोल-चाल की है । टीकाकार का दावा है कि "इस टीका के लिखने में हमने कवि के उद्देश्यानुसार ही अर्थ करने की चेष्टा की है" ; परंतु टीकाकार का यह दावा विचारणीय है । कोई भी टीकाकार—फिर चाहे वह मूल-लेखक की-सी ही पहुँच और योग्यता क्यों न रखता हो—मूल-लेखक के भावों तक पूर्ण रूप से नहीं पहुँच सकता । इसके अतिरिक्त भावों तक पहुँचना एक बात है, और भावों तक पहुँचकर उनको यथातथ रूप में व्यक्त करना दूसरी बात । अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाय, तो ठीक-ठीक यह भी नहीं कहा जा सकता कि कोई लेखक अपने हृद्गत भावों को भी व्यक्त कर सकता है । हृद्गत भावों को यथातथ रूप में वही व्यक्त कर सकता है, जिसे भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त हो । अधिकांश मूल-लेखक भी अपने हृद्गत मूल भावों को नहीं व्यक्त कर पाते । कारण, वे भाषा पर पूर्ण अधिकार नहीं रखते । टीकाकार का यह भी कथन है कि "इस प्रति का मूल-पाठ ठीक कवि की रचना के अनुसार है । परंतु इस विषय में भी हम प्रायः हताश हुए । कहीं-कहीं तो मूल-पाठ तोड़ा-मरोड़ा हुआ भी दृष्टि-गत हुआ ।

रामचरित-मानस की अब तक अनेकों टीकाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं । फिर इसका प्रकाशन किस उद्देश से किया गया, यह समझ में नहीं आता । यदि यह टीका और टीकाओं से कुछ अधिक विशेषता रखती होती, तो भी एक बात थी । परंतु हमें इसमें कोई उल्लेखनीय विशेषता भी नहीं दृष्टि-गत हुई । मूल्य भी इसका कई अन्य टीकाओं से अधिक है । अतएव प्रचार की दृष्टि से भी यह प्रयत्न सार्थक नहीं हो सकता । यदि प्रकाशक मूल्य कम कर दें, तो अलबत्ता कुछ सुबीता हो सकता है। जो हो, लोक-हितैषणा की दृष्टि से तो यह संस्करण कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता ।

इसमें छपाई-बँधाई-संबंधी अशुद्धियाँ भी अनेक हैं। फ़ार्म उठानेवाले की ग़लती से ५९वें फ़ार्म के बाद ६१वाँ फ़ार्म और तत्पश्चात् ६०वाँ फ़ार्म लग जाने से ४७२ पृष्ठ के आगे ४८१, तथा ४८८ पृष्ठ के आगे ४७३ शुरू होता है । यह त्रुटि तो इसी संस्करण में सुधर जानी चाहिए । पुस्तक टीकाकार और प्रकाशक, दोनों के पते से प्राप्त हो सकती है ।

× × ×

श्रीबदरी-केदार-यात्रा—प्रकाशक, श्रीयुत पं० दयाशंकर दुबे, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, ९, गँगनी सुकुल का तालाब, लखनऊ । लेखक, श्रीयुत पं० बलरामजी दुबे । आकार २०×३० सोलह-पेजी । पृष्ठ-संख्या ७२, काग़ज़-छपाई-सफ़ाई साधारणतः अच्छी, और मूल्य ।)

हिंदू-समाज में भगवान् बदरीनाथ और केदारनाथ के स्थान महातीर्थ गिने जाते हैं । शिक्षित-अशिक्षित, समर्थ-असमर्थ, सभी कुटुंबों में इन महातीर्थों की यात्रा करने की प्रथा है । कारण, अन्य तीर्थ-स्थलों का उतना माहात्म्य नहीं, जितना इन महातीर्थों का । इसका एक यह भी कारण है कि अन्य तीर्थ-स्थलों की यात्रा रेल से होने के कारण अत्यंत सुगम है ; परंतु बदरी-केदार-तीर्थों की यात्रा का अंतिम भाग पैदल तय किया जाता है । इस यात्रा में यात्रियों को, यात्रा-विषयक विशेष जानकारी न होने के कारण, प्रायः कष्ट और अपव्यय उठाना होता है । हिंदी में एक तो इस विषय की पुस्तकें बहुत कम हैं, और जो हैं भी, वे संतोष-जनक नहीं । उन्हीं के अवलोकन-मात्र पर आश्रित रहकर कोई यात्री न तो यात्रा का यथेष्ट आनंद और लाभ उठा सकता है, न उसमें होनेवाली असुविधाओं से बच सकता है । इस यात्रा में स्थान-स्थान पर विविध दर्शनीय स्थान हैं । जानकारी न होने के कारण यात्री उनके दर्शनों से भी प्रायः वंचित रह जाते हैं । यह हर्ष की बात है कि इस पुस्तक के लेखक, पं० दयाशंकरजी दुबे के पिता, श्रीयुत बलरामजी दुबे ने इस पुस्तक की रचना करके इन अभावों की पूर्ति की है । इसमें बदरीनाथ, केदारनाथ तथा गंगोत्री की यात्रा के विषय की कोई बात नहीं छूटने पाई है । पुस्तक यात्रार्थियों के तो अवलोकन करने योग्य है हीं, साथ ही मनोरंजक और ज्ञातव्य

बातों की जानकारी प्राप्त करने के लिये सर्व-साधारण शिक्षित-समाज के लिये भी पठनीय तथा संग्रहणीय है। इसमें बदरीश-पंचायन का एक सुंदर चित्र भी है। हमें यह सूचित करते हर्ष होता है कि श्रीमान् बलरामजी दुबे ने इस पुस्तक की १०० प्रतियाँ उन सज्जनों को विना मूल्य देने का विचार प्रकट किया है, जिन्होंने आगामी वर्ष श्रीबदरीनारायण और गंगोत्री की यात्रा करने का निश्चय कर लिया हो। पुस्तक विना मूल्य प्राप्त करने के लिये श्रीयुत दयाशंकर दुबे, ६, गँगनी सुकुल का तालाब, लखनऊ के पते पर पत्र भेजना चाहिए।

"सत्य सेवक"

× × ×

३. ज्योतिष

ग्रहणदर्पण—लेखक, श्री १०८ ज्योतिषी बाबा माधव-लालजी महाराज की आज्ञानुसार तदनुज ज्यो० विभाकरलाल और ज्यो० शिवप्रकाश। मूल्य ।~) डाकव्यय)॥ छपाई-कागज़ साधारण। पृष्ठ-संख्या ३५।

इस पुस्तक का विषय नाम ही से स्पष्ट है। गणेश दैवज्ञ का बनाया एक ग्रहलाघव-नामक सुप्रसिद्ध ज्योतिष का करण-ग्रंथ है। यह १४४२ शक में बना था। इस पर मल्लारि-कृत सोपपत्तिक टीका और विश्वनाथ दैवज्ञ-कृत उदाहरण प्रसिद्ध है। इधर स्वर्गीय महा-महोपाध्याय श्रीसुधाकर द्विवेदीजी ने भी आलोचनात्मक नवीन उपपत्ति के साथ इस ग्रंथ को प्रकाशित किया था। ज्योतिष की आचार्य-परीक्षा में यह पाठ्य-रूप से निर्वाचित है। ज्योतिष के करण-ग्रंथ कई हैं; परंतु पठन-पाठन में जितना ग्रहलाघव का प्रचार है, उतना औरों का नहीं। उसके आधार पर कई देशों में पंचांग बनते हैं, और उनके अनुसार सब लोग बेखटके श्रौत-स्मार्त कर्म करते हैं। यह सौरपक्षीय करण-ग्रंथ है। यद्यपि इसमें ग्रंथकर्ता ने आर्य-पक्ष और ब्रह्म-पक्ष का भी किसी अंश में आश्रयण किया है। इस समय ही नहीं, बहुत प्राचीन काल से सौर-पक्ष ही का प्राधान्य चला आता है। आर्य-ब्रह्म-पक्ष का गणित तो आचार्य वराह-मिहिर (शक ४२७) के समय में ही गड़बड़ हो चुका था। कहीं-कहीं ब्रह्म-पक्षीय पंचांग भी प्रचलित है; जैसे जोधपुर का, चंड-नामक ज्योतिषी का चलाया, 'चंडू'-पंचांग। परंतु वह अनार्ष-मूलक होने से मान्य नहीं है।

इस ग्रहणदर्पण में ग्रहलाघव के अनुसार हिंदी में चंद्र-ग्रहण और सूर्य-ग्रहण की गणित-विधि उत्तम रीति से दिखलाई है। पुस्तक के आदि में पलभा, स्वदेशोदय, क्रांति और लंबन का दिग्दर्शन भी है। अंत में सैकड़ों प्रसिद्ध नगरों का अक्षांश और देशांतर-कोष्ठक लिख दिया गया है, जैसा काशी के श्रीबापूदेव शास्त्रीजी के पंचांग में लिखा रहता है।

गिरिजाप्रसाद द्विवेदी

× × ×

४. बालोपयोगी

बालक—लेखक, श्रीयुत संतराम बी० ए०। प्रकाशक, साहित्य-सदन, जालंधर। आकार २०×३० सोलह-पेजी। पृष्ठ-संख्या १८९; मूल्य जिल्ददार का १॥) है।

पुस्तक में शिशु-प्रकृति-विज्ञान-संबंधी अनेक ज्ञातव्य विषय हैं। गृहस्थों और अध्यापकों को यह पुस्तक अवश्य ही पढ़ लेनी चाहिए। लेखक ने पुस्तक के लिखने में बड़ी ही शालीनता दिखलाई है।

यद्यपि यह पुस्तक मौलिक नहीं, तथापि लेखन-शैली की मौलिकता में कोई संदेह नहीं है। लेखक अपने उद्देश्य में सफल-प्रयत्न हुए हैं। लेखक महोदय यशस्वी हैं, अतः हम आपकी कृति को सर्वथा निर्दोष देखने की ही इच्छा से आज कुछ लिख रहे हैं। आशा है, संतरामजी हमें क्षमा करेंगे।

भाव सुंदर और प्रयत्न श्लाघ्य होते हुए भी आपकी पुस्तक में कतिपय भाषा-विषयक त्रुटियाँ खटकती हैं। यथा—"बालक पुरुष या स्त्री बन जाता है।", "बालक मनुष्य बनकर" इत्यादि। यहाँ यह होना चाहिए—"बालिका अथवा बालक पुरुष या स्त्री बन जाता है।", "बालक युवा बनकर"। आगे चलकर आपने लिखा है—"उत्तम और शिक्षा-प्रद प्रभाव पड़ेगा।" यहाँ "उत्तम" के स्थान में "स्थायी" शब्द होता, तो अच्छा था। इसी प्रकार अन्य वाक्य-विन्यास-विषयक भूलें पुस्तक में रह गई हैं। 'सुगमता' और 'सरलता'-शब्द के प्रयोग में कोई अंतर नहीं रक्खा गया। एक की जगह दूसरे का प्रयोग हुआ है।

पुस्तक में 'भीतरे' आदि प्रांतीयता-द्योतक अप्रसिद्ध-शब्दों का प्रयोग खटकता है। संस्कृत-पद्यों का संशोधन भी ठीक नहीं हुआ। यथा "ब्रह्मचर्येण तपसा" यहाँ "ब्रह्मचर्येण

तपसा" होना चाहिए था। लेखक ने जिन-जिन पुस्तकों से सहायता ली है, उनकी नामावली भी भूमिका में दे दी है। हमारी जान में आपने एच्० टी० नोल्टन के शिक्षा-विज्ञान से भी सहायता ली है; किंतु उसका उल्लेख नहीं किया।

जो हो, पुस्तक शिक्षा-प्रद है। छपाई-सफ़ाई भी अच्छी है। मूल्य १॥) रुपया कुछ अधिक जान पड़ता है। प्रूफ़-संशोधन में विशेष ध्यान नहीं दिया गया। आशा है, अगले संस्करण में इन त्रुटियों पर अवश्य ध्यान दिया जायगा।

रामस्वरूप शर्मा 'शार्दूल'

× × ×

५. इतिहास

गुलबदन बेगम का हुमायूँनामा—अनुवादक, श्रीयुत व्रजरत्नदास। प्रकाशक, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी। मूल्य १॥) और पृष्ठ-संख्या २४१।

पहले ५ पृष्ठों में अनुवादक महाशय का वक्तव्य है। फिर २४ पृष्ठों में गुलबदन बेगम का जीवन-चरित्र है। १८५ पृष्ठों में गुलबदन बेगम के मूल ग्रंथ का टिप्पणी-युक्त अनुवाद है। अंत में २७ पृष्ठों की अनुक्रमणिका भी है।

गुलबदन बेगम हुमायूँ बादशाह की सौतेली बहन थीं। अकबर के समय में उन्हें अपने पिता बाबर तथा भाई हुमायूँ के इतिहास लिखने की आज्ञा हुई। वस्तुतः उन्होंने फ़ारसी-भाषा में हुमायूँनामा नाम की पुस्तक लिखी। अनुवादक महाशय के वक्तव्य से मालूम होता है कि उन्होंने मूल-ग्रंथ से ही अनुवाद किया है। अँगरेज़ी में मिसेज़ बेवरिज का किया हुआ एक अनुवाद है। परंतु उसका सहारा नहीं, सहायता-मात्र ली गई है। गुलबदन के जीवन-चरित्र का सहारा तो मिसेज़ बेवरिज का ग्रंथ ही है; परंतु इसका कोई उल्लेख नहीं।

बड़े सौभाग्य की बात है कि अब इतिहास के मूल-ग्रंथ भी हिंदी में प्रकाशित होने लगे। ऐसी पुस्तकों से प्रकाशकों को कोई विशेष लाभ नहीं होता। परंतु यह अवश्य है कि उनसे मौलिक ग्रंथ लिखनेवालों को बड़ी सहायता मिलती है। यों तो ऐसे अन्य ग्रंथ भी हैं, जिनसे मुग़ल-बादशाहों के राजनीतिक मामलों का पता चलता है, परंतु ऐसा यही एक ग्रंथ है, जिससे उनके गार्हस्थ्य-जीवन की झलक मिलती है। कितना भेद है! बाबर और हुमायूँ का गार्हस्थ्य-प्रेम उनकी बादशाहत के ऊपर था। अकबर तक ग़नीमत रही। परंतु उसके बाद क्या बादशाहत की आवश्यकताओं ने उनके पारिवारिक धर्म को नष्ट नहीं कर डाला? स्त्री का संसार घर ही है, इसलिये मूल-ग्रंथ की लेखिका का बेगमों की शिकायतें, उनके आमोद-प्रमोद और पारिवारिक स्वास्थ्य-विषयक बातें लड़ाइयों से अधिक रुचिकर मालूम होना कुछ आश्चर्य नहीं हैं।

हुमायूँ का जीवन-चरित्र ही इतना घटना-पूर्ण है कि उसमें कहानी का आनंद आता है। फिर उसके गुलबदन की क़लम से लिखे होने के कारण रोचकता और भी बढ़ जाती है। इतिहास का ज्ञान, और मनोरंजन घाते में। प्रकाशकों को इस चुनाव के लिये साधुवाद। अनुवादक महाशय का परिश्रम भी सराहनीय है। टिप्पणियों और अनुक्रमणिका से पुस्तक की जो कुछ उपयोगिता बढ़ी है, उसका श्रेय अनुवादक महाशय को ही है।

× × ×

६. आख्यायिका और उपन्यास

सुप्रभात—लेखक, श्रीयुत सुदर्शन। प्रकाशक, नारायणदत्त सहगल ऐंड संस, लुहारी गेट, लाहौर। रेशमी जिल्द। मूल्य २) और पृष्ठ-संख्या १८९।

गल्प-लेखकों में प्रेमचंदजी की बहुत ख्याति है। परंतु पत्रिकाओं में गल्पों की आवश्यकता ने अन्य अच्छे गल्प-लेखकों की भी सृष्टि की है। श्रीयुत सुदर्शन भी उन्हीं में हैं। उपर्युक्त पुस्तक में १० कहानियों और एक नाटक का संग्रह है। कहानियों के एक विशेष तात्पर्य से लिखे जाने के कारण लेखक की प्रतिभा का पूर्ण विकास नहीं होने पाया, तो भी कला का इतना समावेश अवश्य है कि जिस राजनीतिक उद्देश्य से ये लिखी गई हैं, उनकी पूर्ति हो जाती है। पहली कहानी में बलिदान का मार्ग दिखलाया गया है; दूसरी में भारतीय रमणी के गौरव का दिग्दर्शन है; तीसरी में राजा को न्यायपरता का उपदेश दिया गया है; चौथी में असहयोगियों के आत्म-त्याग की झलक है; पाँचवीं में जलियाँवाले बाग़ की दुर्घटना से एक गृहस्थी के उजड़ने का हृदय-द्रावक दृश्य है; छठी में सरकारी नौकरी छोड़ने की व्यवस्था की गई है; सातवीं में जेल का मार्ग दिखलाया गया है; आठवीं में विदेशी माल की पराजय है; नवीं में पत्नी के बलिदान से रायबहादुर साहब का अद्भुत परिवर्तन है; दसवीं में अदालती

न्याय का आनंद है। अंतिम कहानी, नाटक के रूप में, एक वेश्या का सुधार करती है।

हिंदी-साहित्य-क्षेत्र के लिये यह बड़े हर्ष की बात है कि उसके प्रत्येक अंग में देश-भक्ति का अंश और उसके हृदय में भारतीय स्त्रीत्व के प्रति असीम आदर का भाव देख पड़ने लगा है। श्रीयुत सुदर्शन ने दोनों का पूर्ण रूप से निर्वाह किया है। अतएव, यदि कला के नहीं, तो भारतीयता के नाते ही, ये कहानियाँ साहित्य में स्थान पाने योग्य हैं।

मालूम नहीं, ये कहानियाँ कभी किसी पत्र-पत्रिका में छपी भी थीं या नहीं। यदि न छपी हों, तो इस बात के सूचित कर देने की आवश्यकता थी; क्योंकि साधारणतः ऐसी कहानियाँ पहले किसी पत्रिका द्वारा लोग पढ़ चुकते हैं, तब वे पुस्तक-रूप में संग्रह की जाकर पुनः प्रकाशित की जाती हैं।

आरंभ में श्रीयुत व्रजलाल शास्त्री की भूमिका है, जिसमें लेखक की जी खोलकर तारीफ़ की गई है। बहुत ठीक। परंतु यदि यह भार समालोचक पर छोड़ दिया जाता, तो अधिक अच्छा रहता। शायद प्रकाशकों ने इस मामले में जोखिम में पड़ना ठीक नहीं समझा।

× × ×

रूप-ज्वाला—संपादक तथा प्रकाशक, श्रीयुत दुर्गाप्रसाद खत्री, लहरी-बुकडिपो, काशी। मूल्य ॥), पृष्ठ-संख्या १००।

यह दस मनोरंजक कहानियों का संग्रह है। इसमें दो घंटे दिल बहलाने की सामग्री है। विषय और शैली साधारण है। छपाई और काग़ज़, दोनों अच्छे हैं। आर्ट-पेपर की जिल्द पर 'रूप-ज्वाला' का एक रंगीन चित्र है। इससे अधिक आठ आने में आप क्या चाहते हैं?

× × ×

आदर्श बलिदान—संकलनकर्ता, श्रीयुत अतरसैन जैन। प्रकाशक, नेशनल बुकडिपो, मेरठ। मूल्य ।) और पृष्ठ-संख्या ४०।

यह स्त्रियों के लिये उपयोगी तीन कहानियों का संग्रह है। इनमें एक प्रेमचंदजी की है। शायद बाक़ी दो के संकलनकर्ता महाशय ही विधाता हों; परंतु इसका कहीं कोई ज़िक्र नहीं। आपने अपनी भूमिका में जो कुछ लिखा है, उससे तो यह मालूम होता है कि ये कहानियाँ पहले कहीं प्रकाशित हो चुकी हैं। यदि ऐसा है, तो उन पुस्तकों या पत्रिकाओं का हवाला देना चाहिए था। अधिक लिखना ठीक नहीं; क्योंकि संकलनकर्ता की आज्ञा के अनुसार हमें उनके उत्साह की बाढ़ रोकना अभीष्ट नहीं।

कालिदास कपूर

× × ×

७. पत्र-पत्रिकाएँ

प्रभा—(झंडा-अंक) संपादक, श्रीयुत पं० बालकृष्ण शर्मा, 'नवीन'। संचालक, श्रीयुत पं० शिवनारायण मिश्र, प्रताप-पुस्तकालय, कानपुर। आकार २०×३० अठपेजी। काग़ज़, छपाई-सफ़ाई साधारण। पृष्ठ-संख्या १०८। इस अंक का मूल्य १), और वार्षिक मूल्य ५)

जब से प्रभा ने कानपुर में जन्म लिया है, तब से वह राजनीतिक क्षेत्र में सराहनीय कार्य कर रही है। पहले इसका संपादन पालीवालजी के हाथ में था; परंतु अब कुछ दिन से नवीनजी के हाथ में आ गया है। नवीनजी हिंदी-संसार के सुपरिचित कवि और लेखक हैं। हम आपका संपादन-क्षेत्र में सहर्ष स्वागत करते हैं। आशा है, आपके संपादकत्व में 'प्रभा' उत्तरोत्तर उन्नति करती रहेगी।

'प्रभा' का झंडा-अंक इस समय हमारे सामने है। इस अंक में नागपुर के झंडा-आंदोलन-संबंधी सत्याग्रह-विषयक कोई ५३ चित्र हैं। इनके अतिरिक्त ६ और हैं, जिनमें से एक रंगीन है, और उसमें विविध देशों के राष्ट्रीय झंडों के बीच में भारत का राष्ट्रीय झंडा लिए हुए संसार-पूज्य महात्मा गांधी का एक सुंदर चित्र है। इस संख्या में विविध राष्ट्रों के राष्ट्रीय झंडों के इतिहास-विषयक कई सुपाठ्य लेख, २ सुंदर आख्यायिकाएँ और कई भावमयी कविताएँ हैं। अंक सब प्रकार से पठनीय और दर्शनीय है। हम 'प्रभा' की हृदय से उन्नति चाहते हैं। उसका यह विशेषांकों का क्रम बहुत उपयोगी, उत्तम और गौरव-वर्द्धक है।

× × ×

छत्तीसगढ़—(मासिक पत्र) संपादक और प्रकाशक, श्रीयुत पं० मनोहरप्रसादजी मिश्र 'छत्तीसगढ़' कार्यालय, रायगढ़, मध्यप्रदेश। आकार २०×३० अठपेजी। काग़ज़, छपाई-सफ़ाई साधारण श्रेणी की, पृष्ठ-संख्या ३२ और वार्षिक मूल्य ३)

यह मासिक पत्र अभी हाल ही में निकला है।

आश्विन का प्रथम अंक इस समय हमारे सामने है। इसमें छत्तीसगढ़-संबंधी दो सुंदर और सुपाठ्य साहित्यिक और सामाजिक लेख हैं। इनके अतिरिक्त दो सुंदर कविताएँ, दो आख्यायिकाएँ तथा दो लेख और हैं, जो पठनीय और उच्च कोटि के हैं। विविध विवेचना में संपादक ने छत्तीसगढ़ की स्थिति पर अच्छा प्रकाश डाला है। छत्तीसगढ़ जागृति की दृष्टि से बहुत पिछड़ा हुआ प्रांत है, उसको जगाना ही इसका मुख्य उद्देश है। आशा है, यह अपने उद्देश्य की पूर्ति करने में सफलता प्राप्त करेगा। हम इस पत्र की हृदय से उन्नति चाहते हैं।

× × ×

वर्तमान—(विजय-अंक) संपादक, श्रीयुत पं० रमाशंकरजी अवस्थी। इस अंक का मूल्य ।) वार्षिक मू० १२) अग्रिम। दैनिक 'वर्तमान' कार्यालय, जनरलगंज कानपुर से प्राप्य।

'वर्तमान' हिंदी-जगत् के उन थोड़े-से पत्रों में है, जिन्होंने बहुत क्षीण और विश्रृंखलित शक्ति लेकर जन्म लिया, और अपनी विशेष शैली और रोचकता के बल से हिंदी-जगत् में एक विशेष स्थान प्राप्त कर लिया है। इसकी भाषा इतनी सरल होती है कि थोड़ा पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी इसे पढ़कर लाभ उठा सकता है। यह राष्ट्रीय दल के सिद्धांतों का प्रबल समर्थक और अहिंसात्मक असहयोग-आंदोलन का पक्का पक्षपाती है। अब तक इसमें बोलशेविज़्म-विषयक जितने पठनीय संपादकीय लेख निकल चुके हैं, उतने बहुत कम दैनिक पत्रों में निकले हैं। मनसुखा का मनोरंजन भी कभी-कभी अच्छा होता है। अब इसका आकार भी बढ़ गया है। यह इसका विजय-अंक है। इसमें कई उपयोगी पठनीय लेख, कविताएँ और मनोरंजक कार्टून हैं। हम इसकी हृदय से उन्नति चाहते हैं।

× × ×

अर्जुन (विजय-अंक)—संपादक, श्रीयुत इंद्र विद्या-वाचस्पति। मिलने का पता—अर्जुन-कार्यालय, नया बाजार, दिल्ली। आकार २०×२६ हाफ़शीट। काग़ज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी। पृष्ठ-संख्या १०, वार्षिक मू० १२)

अर्जुन की समालोचना हम माधुरी के भाग १, खंड २, संख्या ४ में कर चुके हैं। यह उसी का विजय-अंक है। इसमें स्वामी श्रद्धानंद परिव्राजक, देशभक्त जवाहरलाल नेहरू तथा वेदतीर्थ पं० नरदेव शास्त्री आदि विद्वान् देशभक्तों के कई सुंदर पठनीय लेख हैं। अंक अच्छा निकला है। हिंदी-भक्तों को इसे अवश्य अपनाना चाहिए। अर्जुन अपनी एक विशेषता रखता है। उसके लेख गंभीर और गवेषणा-पूर्ण होते हैं।

× × ×

देशभक्त (विजय-अंक)—प्रधान संपादक और प्रकाशक, ठाकुर महताबसिंह वर्मा, देशभक्त-कार्यालय, आगरा। आकार २०×२६ चौपेजी। काग़ज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी। पृष्ठ-संख्या १२ तथा मूल्य =)। वार्षिक मू० ३)

यह अर्ध-साप्ताहिक समाचार-पत्र थोड़े दिन हुए, आगरे से प्रकाशित होने लगा है। हम इसका सहर्ष स्वागत करते हैं। यह विजय-अंक अच्छा निकला है। पत्र को अभी बहुत कुछ उन्नत बनाने की आवश्यकता है। आगरा-प्रांत के हिंदी-पढ़े जन-समुदाय को इसे अपनाना चाहिए।

× × ×

मतवाला (साप्ताहिक समाचार-पत्र)—प्रकाशक, श्रीयुत सेठ महादेवप्रसाद, 'मतवाला'-ऑफ़िस २३, शंकर-घोष-लेन, कलकत्ता। संपादक का नाम लिखा नहीं। आकार १७×२७ चौपेजी। काग़ज़, छपाई-सफ़ाई सुंदर, पृष्ठ-संख्या १२, और वार्षिक मूल्य २)

हिंदी-संसार में मज़ाक़ करके साहित्य-रसिकों का मनोरंजन करनेवाला यही एक साप्ताहिक पत्र है। इसके लेख, कविता, चुटकिले, टिप्पणियाँ तथा विज्ञापन, सभी अपने 'मतवाला' नाम को सार्थक करते हैं। इस समय इसकी १०वीं संख्या हमारे सामने है। इसके मुख-पृष्ठ पर 'भारत की विधवा'-नामक एक कविता 'निराला'-नामक कवि की लिखी प्रकाशित हुई है। यह 'निराले' महाशय शायद पं० सूर्यकांत त्रिपाठी हैं। कारण, रंग-ढंग से यह कविता उन्हीं की लिखी मालूम होती है। हमारा अनुमान है कि इसके संपादकों में पं० शिवपूजनसहाय तथा उक्त त्रिपाठीजी भी हैं। इसके संपादकों से हमारा निवेदन है कि 'मतवाले' तो अपने नाम को कभी छिपाया नहीं करते। इसकी कोई-कोई टिप्पणी उग्र हो जाती है। ऐसा न होना चाहिए।



इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों के सुबीते के लिये प्रति मास नई-नई उत्तमोत्तम हिंदी-पुस्तकों के नाम देते रहते हैं। गत मास में नीचे लिखी पुस्तकें अच्छी प्रकाशित हुईं—

(१) "उद्यान", श्रीशंकरराव जोशी-लिखित और पं० दुलारेलाल भार्गव-संपादित । उद्यान-विद्या का एक सचित्र ग्रंथ । मू० ।॥=)

(२) "भारत-गीत", पं० श्रीधर पाठक-लिखित और पं० दुलारेलाल भार्गव-संपादित । भारत-विषयक राष्ट्रीय कविताओं का संग्रह । मूल्य ॥=)

(३) "विशाचिनी", पं० कार्त्तिकेयचरण मुखोपाध्याय द्वारा अनुवादित। सचित्र जासूसी उपन्यास । मूल्य १।॥), सजिल्द २।)

(४) "विपद्-कसौटी", बाबू जमुनादास मेहरा-लिखित। सचित्र पौराणिक नाटक । मूल्य १), रेशमी जिल्द १॥)

(५) "हिंदी-साहित्य-सुमन", बेलवेडियर प्रेस द्वारा प्रकाशित बालकोपयोगी सचित्र पुस्तक । मूल्य ॥)

(६) "हिंदी-मोटर-गाइड", श्रीविनायक गंगाधर गोखले द्वारा प्रकाशित । मोटरगाड़ी चलाने की जानकारी करानेवाली मराठी-पुस्तक का अनुवाद । मू० १)

(७) "कर्मफल या जैसी करनी वैसी भरनी", श्रीप्रफुल्लचंद्र शर्मा-लिखित । उपन्यास । मूल्य ।॥)

(८) "समाज", डॉ० रवींद्रनाथ ठाकुर के सामाजिक निबंधों का श्रीबदरीनाथ वर्मा एम्० ए०, काव्यतीर्थ-कृत अनुवाद । मूल्य ।॥=)

(९) "हुमायूँनामा", गुलबदन बेगम के इसी नाम के ग्रंथ का श्रीव्रजरत्नदासजी-कृत अनुवाद । मूल्य जिल्द-सहित पुस्तक का १॥)

(१०) "टर्की का क़ैदी", पं० कार्त्तिकेयचरण मुखोपाध्याय द्वारा अनुवादित । सचित्र जासूसी उपन्यास । मूल्य १।॥), सजिल्द २।)

(११) "भारत-रमणी", बाबू दुर्गाप्रसाद गुप्त-लिखित । सचित्र सामाजिक नाटक । मूल्य १)

(१२) "सुमन", पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी-लिखित। मूल्य १)

(१३) "गल्प-गुच्छ (द्वितीय भाग)", डॉ० रवींद्रनाथ ठाकुर की बँगला-पुस्तक का पं० रूपनारायण पांडेय-रचित अनुवाद । मूल्य १)

(१४) "पद्मिनी", लाला किशनचंद ज़ेबा-लिखित । ऐतिहासिक नाटक । मूल्य ।॥)

(१५) "कविता-कौमुदी (पहला व दूसरा भाग)", पं० रामनरेश त्रिपाठी द्वारा संपादित । संशोधित चौथा तथा दूसरा संस्करण । मूल्य प्रत्येक भाग का ३)

(१६) "अभागा", विक्टर ह्यूगो के 'ला मिज़रेबिल्स'-नामक उपन्यास का बाबू रामायणप्रसाद-कृत हिंदी-अनुवाद । मूल्य १॥)

(१७) "अंजना", श्रीयुत सुदर्शन-लिखित नाटक । मूल्य १=)

(१८) "प्राचीन साहित्य", श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर की बँगला-निबंधावली का पं० रामदहिन मिश्र-कृत अनुवाद । मूल्य ॥-)

(१९) "महाराज नंदकुमार को फाँसी", स्वामी चंडीचरण सेन की बँगला-पुस्तक का हिंदी-अनुवाद । द्वितीय संस्करण । मूल्य २॥)



विविध विषय

१. गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय के ५० ग्रंथ

माधुरी के पाठकों को मालूम है कि गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय के संचालक प्रति वर्ष ५० (कुल मिलाकर ५०० फ़र्मों की) उत्कृष्ट पुस्तकें प्रकाशित करना चाहते हैं, और उन्होंने हिंदी के उत्कृष्ट, उपयोगी साहित्य की वृद्धि तथा लेखकों को उत्साहित करने के लिये उनमें से सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ के लेखक को १,५००) के नक़द पुरस्कार और एक स्वर्ण-पदक से सम्मानित करने का विचार किया है। संचालकों ने उक्त घोषणा के अनुसार काम शुरू कर दिया है। साल में ५० पुस्तकें प्रकाशित करने का पूर्ण उद्योग हो रहा है। कई ग्रंथ प्रकाशित हो गए हैं, कई छप रहे हैं, कई का संशोधन-संपादन हो रहा है, और कई लिखे जा रहे हैं। हिंदी-संसार के सुप्रसिद्ध, लब्ध-प्रतिष्ठ लेखकों और कवियों ने अपनी रचनाएँ भेजी हैं, और भेजने का वादा भी किया है। ग्रंथ यथेष्ट आ गए हैं, और आ रहे हैं। संचालकों को पूर्ण विश्वास है कि वे—यदि प्रेस के सुपरिंटेंडेंट महाशय ने वादे के अनुसार काम किया—साल-भर में पचास पुस्तकें अवश्य प्रकाशित कर देंगे। अभी तक सुपरिंटेंडेंट महाशय उतनी शीघ्रता से काम नहीं कर रहे हैं, जितनी चाहिए; परंतु अब से उन्होंने प्रति मास ४ पुस्तकें छाप देने का पक्का वादा किया है। अस्तु। संचालकों का आदर्श साल में पचास पुस्तकें निकालना है। यदि प्रेस-परिचालक की वादा-ख़िलाफ़ी से अथवा और किसी कारण से, जिसकी कम आशंका है, ५० पुस्तकें नहीं भी प्रकाशित हो सकीं, २५ ही निकलीं, तो भी माला के संचालकों को बहुत कुछ कृतकार्य ही समझना उचित होगा। कारण, उनका यह आदर्श है, प्रतिज्ञा नहीं। बहुत-से पत्र-संपादकों और अनुभवी प्रकाशकों का कहना है कि एक ही कार्यालय प्रति वर्ष ५० क्या, २५ भी उच्च कोटि की पुस्तकें प्रकाशित नहीं कर सकता, और न अब तक कोई प्रकाशक ऐसा कर ही सका है; परंतु माला के संचालकों का दृढ़ विश्वास है कि लगकर चेष्टा करने से वे अवश्य अपने आदर्श में बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर सकेंगे।

किसी-किसी का कहना है कि साल में ५० पुस्तकों का मिलना ही कठिन है। इसके उत्तर में निवेदन यह है कि गंगा-पुस्तकमाला के पास १०० के लगभग प्रतिभाशाली लेखक हैं। अगर वे दो साल में १-१ पुस्तक भी देंगे, तो ५० पुस्तकें साल में आसानी से मिल जायँगी। कोई २० लेखक तो ऐसे हैं कि वे प्रति वर्ष २-२, ३-३ उत्कृष्ट पुस्तकें लिखने का वादा करते हैं, और लिख भी सकते हैं। अस्तु। हिंदी-साहित्य के कुशल और कर्मशील, पुराने और नए, सेवकों से संचालकों का निवेदन है कि वे कृपा करके अपनी उन अमूल्य रचनाओं—अमूल्य ग्रंथ-रत्नों—को अवश्य भेजें, जिन पर उन्हें गर्व हो, जिनको वे अब तक लिखे हुए अपने ग्रंथों में सर्वोत्कृष्ट समझते हों। उनके ग्रंथों पर पर्याप्त पुरस्कार देने का वादा तो नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे अमूल्य होंगे; परंतु संचालक माला की स्थिति के अनुसार आर्थिक भेंट उनकी सेवा में, यदि वे लेना पसंद करेंगे, अवश्य उपस्थित करेंगे। संचालकों का यह भी कथन है कि हरएक पुस्तक का मूल्य यथासंभव कम रक्खा जायगा, जिसमें पुस्तकों का प्रचार खूब हो।

नीचे उनमें से कुछ पुस्तकों का विवरण दिया जाता है, जो इस साल (तुलसी-संवत् १९८० में) गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय से प्रकाशित होंगी, या हो चुकी हैं। अंदाज़न दाम इसलिये दे दिया गया है, जिसमें पाठकों को मालूम हो जाय कि कौन पुस्तक कितनी बड़ी होगी—

पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	अंदाज़न दाम	विशेष
१. मौलिक पुस्तकें			
१. भारत-गीत (काव्य)	पं० श्रीधर पाठक	॥≈)	छप गई
२. सुकवि-संकीर्तन (जीवनी)	पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी	॥।)	छप रही है
३. अद्भुत आलाप	,,	॥।)	
४. प्रेम-प्रसून (आख्यायिका-संग्रह)	श्रीयुत प्रेमचंद बी० ए०	१।)	छप गई
५. रंगभूमि (उपन्यास)	,,	३॥)	
६. हिंदी-नवरत्न (आलोचना)	मिश्र-बंधुगण	३॥)	छप रही है
७. इँगलैंड का इतिहास [दूसरा भाग]	प्रो० प्राणनाथ विद्यालंकार	१)	
८. चित्रशाला (आख्यायिका-संग्रह)	पं० विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक	१)	छप रही है
९. मनोविज्ञान	प्रिंसिपल चंद्रमौलि सुकुल एम्० ए०, एल्० टी०	१)	
१०. विश्व-साहित्य (साहित्य)	बा० पदुमलाल-पुन्नालाल बख़्शी बी० ए०	१)	
११. मतिराम-मति-मुकुर (आलोचना)	पं० कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०	१।)	
१२. दुर्गावती (नाटक)	पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए०	॥।)	
१३. लबड़धोंधों (प्रहसन)	,,	॥)	
१४. हिंदी (साहित्य)	,,	॥)	
१५. भारत के उद्योग-धंधे (अर्थशास्त्र)	पं० दयाशंकर दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी०	॥)	
१६. विदेशी विनिमय (अर्थशास्त्र)	,,	॥)	
१७. शरीर-विज्ञान और स्वास्थ्य-रक्षा	श्रीमती हेमंतकुमारी भट्टाचार्य	१)	
१८. डॉक्टर जॉनसन (जीवनी)	पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री	॥।)	
१९. नारी-उपदेश (स्त्री-शिक्षा)	स्व० गिरिजाकुमार घोष	॥)	छप गई
२०. सम्राट् चंद्रगुप्त (जीवनी)	पं० बालमुकुंद वाजपेयी (लक्ष्मण-संपादक)	१)	छप गई
२१. उद्यान (कृषि)	पं० शंकरराव जोशी, एग्रीकल्चर ऑफ़िसर	॥।≈)	छप गई
२२. भारतीय अर्थशास्त्र	बाबू भगवानदास केला	२)	छप रही है
२३. कौशल-हिंदी-ग्रामर (व्याकरण)	विद्या-भूषण प्रो० रामस्वरूप कौशल एम्० ए०, एम्० आर० ए० एस्०	॥)	
२. अनुवाद			
२४. बहता हुआ फूल (उपन्यास)	पं० रूपनारायण पांडेय	२)	छप गई
२५. रावबहादुर (प्रहसन)	पं० लल्लीप्रसाद पांडेय	॥)	प्रेस में
२६. भारत की विदुषी नारियाँ (जीवनी)	श्रीमती कृष्णकुमारी	॥)	छप गई
२७. विजया (उपन्यास)	पं० रूपनारायण पांडेय	१।)	प्रेस में
२८. भारत में बाइबिल (Bible in India का अनुवाद)	लाला संतराम बी० ए०	१॥।)	
२९. बुद्ध-चरित (नाटक)	पं० रूपनारायण पांडेय	॥)	
३०. प्रेम-गंगा (कहानियाँ)	पं० ईश्वरीप्रसाद मिश्र	॥)	
३१. एशिया में प्रभात (Dawn over Asia का अनुवाद)	ठाकुर कल्याणसिंह शेखावत बी० ए०	॥)	
३२. भवभूति (आलोचना)	पं० ज्वालादत्त शर्मा	॥)	

उल्लिखित सज्जनों के अतिरिक्त निम्न-लिखित सुप्रसिद्ध प्रतिभाशाली लेखक और कवि भी पुस्तकें लिख रहे हैं, अथवा उन्होंने लिख देने का पक्का वादा किया है—

भाई परमानंद एम्० ए०
पं० अंबिकाप्रसाद वाजपेयी (स्वतंत्र-संपादक)
बा० श्यामसुंदरदास बी० ए०
पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय
बा० गोवर्द्धनलाल एम्० ए०, बी० एल्०
प्रो० राधाकृष्ण झा एम्० ए०
पं० भूपनारायण दीक्षित बी० ए०, एल्० टी०
बा० रामदास गौड़ एम्० ए०
बा० वृंदावनलाल वर्मा बी० ए०, एल्-एल्० बी०
बा० शिवनंदनसहाय
बा० व्रजनंदनसहाय बी० ए०
बा० शिवपूजनसहाय
बा० जयशंकर 'प्रसाद'
रायबहादुर पं० गौरीशंकर-हीराचंद ओझा
प्रो० शिवाधार पांडेय एम्० ए०, एल्-एल्० बी०
लाला सीताराम बी० ए०
पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी
ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा
रायसाहब पं० रघुवरप्रसाद द्विवेदी बी० ए०
सैयद अमीर अली "मीर"
पं० राधाचरण गोस्वामी
बा० जगन्नाथदास "रत्नाकर" बी० ए०
लाला कन्नोमल एम्० ए०
श्रीयुत इंद्र वेदालंकार, विद्या-वाचस्पति
बाबू महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी०एस्-सी०, एल्० टी०
बा० जगन्नाथप्रसाद "भानु"
विद्या-वाचस्पति पं० शालग्राम शास्त्री साहित्याचार्य
प्रिंसिपल श्रीनारायण चतुर्वेदी एम्० ए०, एल्० टी०
पं० आद्यादत्त ठाकुर एम्० ए०

इत्यादि

× × ×

२. माधुरी-पुरस्कार

हमारे कुछ कृपालु मित्रों ने हमसे प्रायः यह शिकायत की कि माधुरी का पद्य-भाग माधुरी की प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं होता। हमने जो इस पर विचार किया, तो हमें भी इसमें कुछ सत्यांश का अनुभव हुआ। इस कमी की पूर्ति का हमें एक उपाय यही देख पड़ा कि कवियों को पुरस्कृत और प्रोत्साहित किया जाय। कवियों को उनके परिश्रम का मूल्य तो दिया नहीं जा सकता। कारण, कविता का तो कुछ मूल्य हो नहीं सकता, वह तो अमूल्य है। पृष्ठों के हिसाब से कविता पर पारिश्रमिक देना कविता और कवि का अपमान करना है। बहुधा छोटी-छोटी कविताएँ बहुत भावमयी तथा सुंदर बन जाती हैं, और बड़ी-बड़ी रचनाएँ उतनी सुंदर नहीं बन पातीं। अस्तु। कविता पर पारिश्रमिक देना एक जटिल समस्या है। इसीलिये अब तक माधुरी के कवियों को पारिश्रमिक नहीं दिया जाता रहा। किंतु यह सोचकर कि यह एक जटिल समस्या है, उद्देश्य की ओर अग्रसर न होना भी कर्तव्य नहीं। अतएव माधुरी के संचालकों ने प्रति मास माधुरी में प्रकाशित कविताओं में से सर्व-श्रेष्ठ कविता-लेखक को १०) का नक़द पुरस्कार देने का निश्चय किया है। आशा है, हिंदी-संसार इस निश्चय को पसंद करेगा। इस माधुरी-पुरस्कार के नियम इस प्रकार हैं—

१. इस पुरस्कार का नाम माधुरी-पुरस्कार रहेगा।

२. यह पुरस्कार प्रति मास माधुरी में प्रकाशित सर्व-श्रेष्ठ कविता पर दिया जायगा।

३. माधुरी में प्रति मास जितनी कविताएँ प्रकाशित होंगी, उनमें से सर्वश्रेष्ठ कौन है, इसका निर्णय तीन काव्य-मर्मज्ञ विद्वान् करेंगे।

४. प्रत्येक संख्या में पिछली संख्या के पुरस्कार-प्राप्त कवि और निर्णायकों के नाम प्रकाशित कर दिए जायँगे।

५. माधुरी में प्रकाशित होने के लिये प्रति मास जितनी कविताएँ आवेंगी, उनमें से ७-८ उत्तमोत्तम कविताएँ प्रकाशनार्थ चुन ली जाया करेंगी। यह निर्वाचन माधुरी के संपादक करेंगे।

६. किसी कविता-लेखक को यह पुरस्कार वर्ष-भर में तीन बार से अधिक नहीं दिया जायगा।

७. कविताएँ खड़ी बोली तथा व्रज-भाषा, दोनों में से किसी में भी, इच्छानुसार, भेजी जा सकती हैं।

८. जो सज्जन नक़द पुरस्कार लेना पसंद न करेंगे, उनको पुरस्कार के ही मूल्य का स्वर्ण-पदक प्रदान किया जायगा।

९. पुरस्कार-प्राप्त रचनाओं पर माधुरी का ही सर्वाधिकार रहेगा।

१०. इन नियमों में सुविधानुसार परिवर्तन करने का अधिकार माधुरी-संचालकों तथा संपादकों को होगा। जो परिवर्तन किया जायगा, उसकी सूचना माधुरी में प्रकाशित कर दी जायगी।

× × ×

३. जापान का भूकंप

गत पहली सितंबर को जापान के मध्य-प्रांत में एक बड़ा भीषण भूकंप आया था। मनुष्य की स्मृति में ऐसा भयंकर भूकंप अभी तक नहीं हुआ था। इससे धन-जन की अपार हानि हुई है।

जापान द्वीपों का एक समूह है। इन द्वीपों में भूकंप के धक्के प्रायः आ जाया करते हैं। इनमें ज्वालामुखी पहाड़ भी हैं, और वास्तव में जापानी द्वीप ज्वालामुखी पहाड़ों से ही बने हैं। जापान का सबसे अधिक विख्यात फूज़ीयामा-नामक ज्वालामुखी, त्रिकोण आकार का, एक बड़ा ही सुंदर पर्वत है। यह याकोहामा-नामक नगर से ४२ मील दक्षिण-पश्चिम है, और १२,३६५ फ़ीट ऊँचा है। इसके ऊपरी हिस्से में सदा बर्फ़ ज़मी रहती है। जापानी लोग इसे बहुत पवित्र समझते हैं। हाल में जापान के जिस भाग में भूकंप आया है, उसका केंद्र यही फूज़ीयामा-पर्वत है।

सबसे अधिक हानि जापान की राजधानी टोकियो और उसके बंदरगाह याकोहामा में हुई है। टोकियो की आबादी प्रायः ३० लाख और याकोहामा की ४ लाख से कुछ अधिक है। भूकंप का सबसे पहला और सबसे भयंकर धक्का शनिवार के दिन, दोपहर को, ११ बजकर ४० मिनट पर, आया था। बहुत-से मकान तो उसी झोंके में गिर गए। जो लोग मकानों के गिरने के कारण उनमें फँस गए थे, उनको छोड़कर सब लोग मकान से खुले हुए स्थानों में भाग गए। इसके बाद



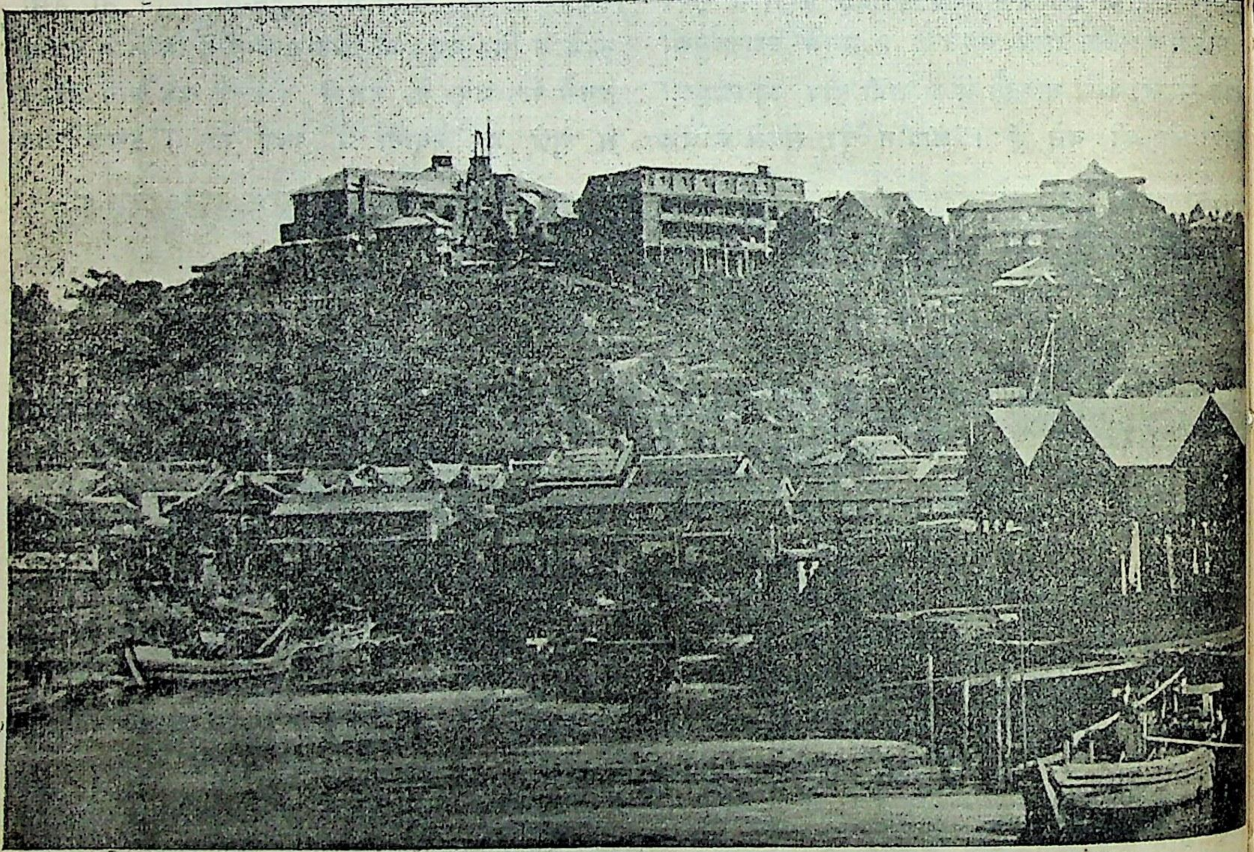
याकोहामा का दृश्य

(इसमें अधिकांश मकान लकड़ी के थे। यह सारा शहर नष्ट हो गया है)

कई धक्के और आए। लोगों का साहस सड़कों पर भी रहने का नहीं हुआ। सब लोग खुले मैदानों में शरण लेने लगे।

धक्के के वेग से रोशनी की गैस का पाइप फट गया, और गैस जल उठी। गैस के जलने से शहर में आग लग गई। जो लोग मकानों के गिरने के कारण उनमें दब या फँस गए थे, वे उन्हीं में जल मरे। पानी के बंबे भी फट गए, और पानी का मिलना असंभव-सा हो गया। बिजली के तारों के टूट जाने से बिजली की धारा रुक गई। बिजली की ट्रामें और रेलें जो जहाँ थीं, वहीं रुक गईं। इनमें अधिकांश जल गईं। तार इत्यादि भी टूट गए, और बाहर से समाचार आना भी बंद हो गया। बड़ी शीघ्रता से फैल गई। आग के कारण असह्य गरमी थी। मनुष्यों के जलने की दुर्गंध चारों ओर फैल रही थी। हवा इतनी तेज़ थी कि उसके कारण आग को रोकने का उपाय करना असंभव था। सुमीडा-नदी में भी भूकंप के कारण बाढ़ आ गई; जिसके कारण बहुत-से आदमी नष्ट हो गए।

टोकियो में प्रायः सभी सरकारी इमारतें नष्ट हो गई हैं। डाक, तार, टेलीफ़ोन के बड़े दफ़्तर, बैंक ऑफ़ जापान, इंपीरियल थिएटर, सदर रेलवे-स्टेशन, सभी बड़ी-बड़ी इमारतें अग्नि में स्वाहा हो गई हैं। सम्राट् के राज-प्रासाद में भी आग लग गई थी; किंतु उसको विशेष क्षति नहीं पहुँचने पाई। टोकियो का विश्वविद्या-



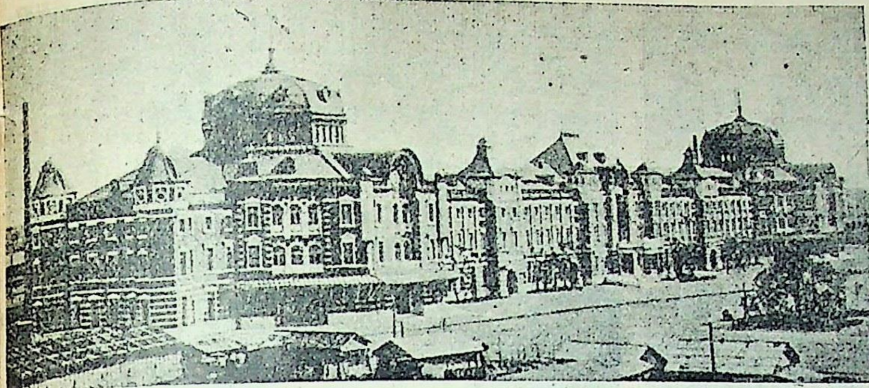
याकोहामा में अँगरेज़ों की बस्ती

(यह शहर से दूर है)

शनिवार की रात-भर टोकियो-नगर जलता रहा। सबेरा होते-होते आधा शहर चौरस हो चुका था। टोकियो में भूकंप के भय से लोग पक्के मकान कम बनाते हैं। अधिकांश मकान लकड़ी ही के हैं। इसी से आग

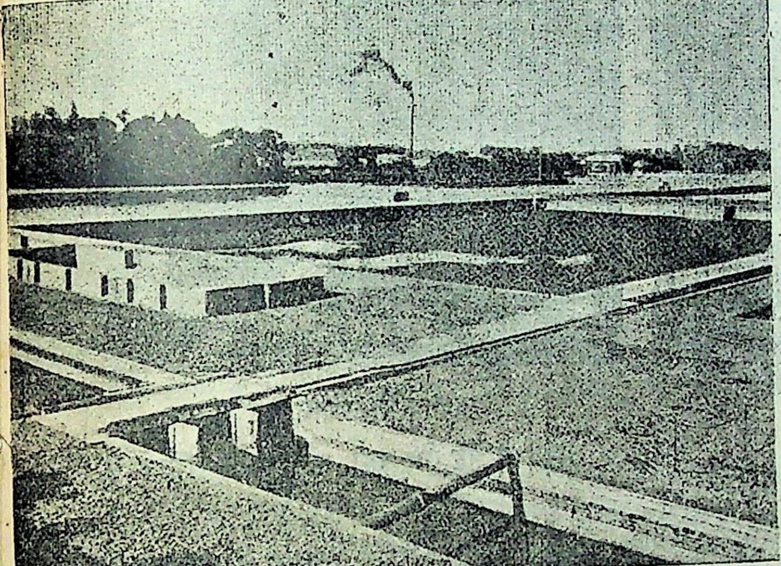
लय भी नष्ट हो गया है, और वहाँ के राष्ट्रीय पुस्तकालय के जल जाने के कारण बौद्ध-धर्म की बहुत-सी अमूल्य हस्त-लिखित पुस्तकें नष्ट हो गई हैं।

याकोहामा की हालत और भी शोचनीय तथा



टोकियो का सदर रेलवे-स्टेशन

(भूकंप के कारण प्रायः नष्ट हो गया है)



टोकियो-नगर के वाटर-वर्क्स के जल साफ़ करने के तालाब

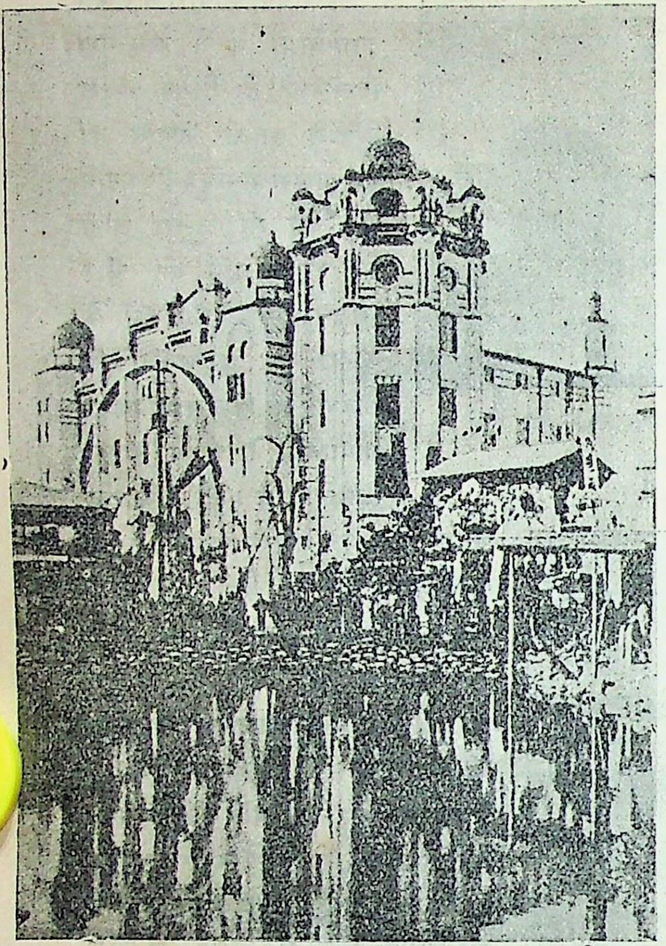
(भूकंप के कारण ये बिलकुल नष्ट हो गए हैं

करुणा-जनक है। सारा नगर जल गया है ; केवल चेंबर ऑफ़ कामर्स की इमारत को छोड़कर सब इमारतें नष्ट हो गई हैं।

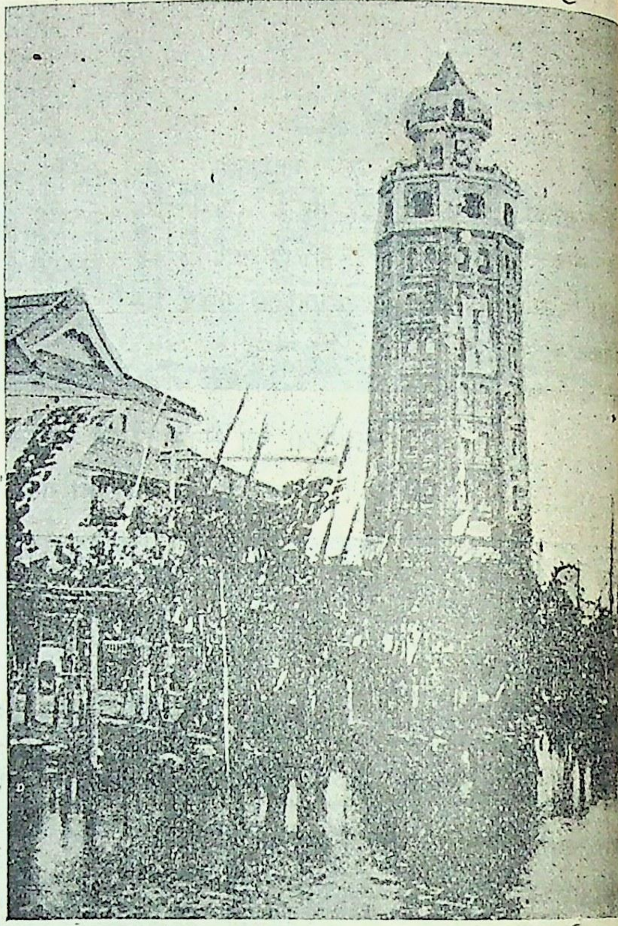
अनुमान किया जाता है कि केवल टोकियो ही में साढ़े सात अरब रुपयों के मूल्य की संपत्ति नष्ट हुई है। इस नगर में प्रायः डेढ़ लाख और याकोहामा में एक लाख आदमी मरे। कुल मृत्यु-संख्या तीन लाख के क़रीब आँकी जाती है। रेल की लाइनों, पुलों और शहरों आदि को फिर से बनाने में दो साल के लगभग लगेंगे, और जो व्यय होगा, उसका अंदाज़ भी लगाना असंभव है।

इस दैवी आपत्ति के समय जापानियों ने वे सब गुण दिखलाए हैं, जिनके कारण उन्होंने इतनी उन्नति की है। आरंभ में गड़बड़ मिटाने के लिये मार्शल-ला जारी कर दिया गया था, और भोजन-सामग्री की कमी के कारण कुछ अराजकता भी फ़ैल गई थी; किंतु साधारणतः जापानियों ने अपूर्व साहस दिखलाया है। जो लोग कल लक्ष्मी के वरपुत्र समझे जाते थे, उनके पास आज कुछ भी नहीं रह गया, उनके भोजनों का भी ठिकाना नहीं है। किंतु उन लोगों ने अपूर्व धैर्य दिखलाया है। वे साधारण मज़दूरों की भाँति काम करने लग गए हैं, भाग्य को दोष देकर बीते हुए पर रोते नहीं हैं। लोगों के भाई, बंधु, स्त्री, पुत्र आदि ला-पता हैं। नहीं मालूम, वे मर गए या ज़िंदा हैं। फिर भी वे शांत हैं। हाथ में काग़ज़ के झंडे, जिनमें खोए हुए संबंधियों के नाम लिखे हैं, लेकर ये लोग दिन-रात कैंपों में घूमते हैं; किंतु घबराहट या अधीरता नहीं दिखलाते। खाद्य पदार्थों की इतनी कमी थी, किंतु किसी भी जापानी दूकान-दार ने अधिक लाभ के लोभ से इस आपत्ति के समय भोजन-सामग्री के दाम नहीं बढ़ाए। हमारे अभागे देश के महाजनों के मुक़ाबिले में कैसा असादृश्य है ! जिस जाति के बड़े से लेकर छोटे लोग तक इतनी भारी आपत्ति के समय भी इतना साहस, धैर्य और आत्म-संयम दिखलावें, उस जाति के लिये संसार में क्या असंभव है ?

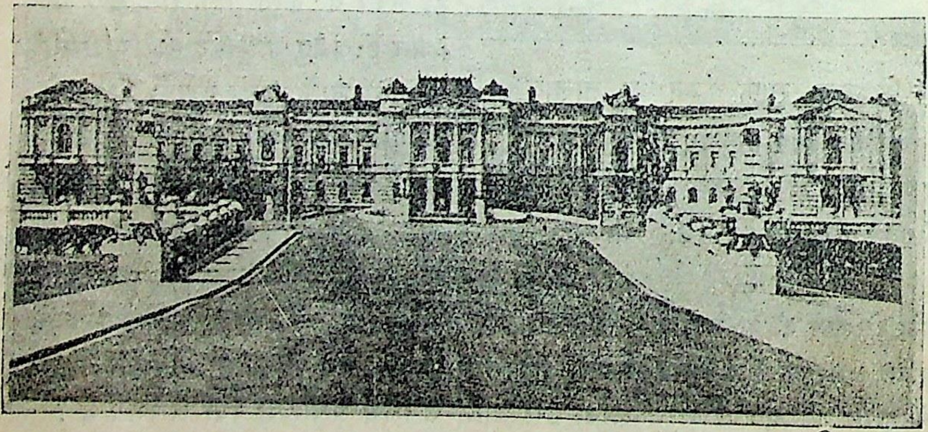
इस आपत्ति ने एक बात और स्पष्ट कर दी है। आधुनिक सभ्यता की जो आराम की चीज़ें हैं, वे कितनी ख़तरनाक हैं। यदि टोकियो और याकोहामा में आग न लगती, तो इतनी हानि न होती; क्योंकि भूकंप के धक्के



टोकियो का इंपीरियल थिएटर
(भूकंप और आग के कारण नष्ट हो गया)



आशाकुशा-उद्यान का मीनार
(भूकंप से यह गिर पड़ा, और इसके गिरने से ७०० आदमी दबकर मर गए)



टोकियो में जापान-सम्राट् का राज-प्रासाद
(इसमें भी आग लग गई थी ; किंतु विशेष क्षति नहीं हुई)

फटना था। आधुनिक सभ्यता के कारण एक ही स्थान में बहुत-से मनुष्यों का एकत्र होना कितना भयंकर है ! यह भी मालूम हो गया कि मनुष्य की सारी चतुरता और आविष्कार प्रकृति के एक झटके में बेकार और निरर्थक हो सकते हैं, और इन आविष्कारों से जितना आराम नहीं है, उतना ख़तरा है।

से तो कम ही इमारतें नष्ट हुईं, अधिकांश हानि आग्न के कारण ही हुई है। और, अग्नि का कारण गैस के पाइप का

इस भूकंप से एक लाभ और हुआ है। भूकंप का समाचार पाते ही संसार के सभी राष्ट्रों ने जापान के प्रति

केवल शाब्दिक सहानुभूति ही नहीं प्रकट की, किंतु उसकी सहायता के लिये करोड़ों रुपए भेजे हैं। सबसे शीघ्र और सबसे अधिक सहायता अमेरिका ने की है। जिस समय जापान में भोजन-सामग्री की बेहद कमी थी, उस समय अमेरिकन जहाज़ खाद्य-सामग्री, डॉक्टर आदि लेकर पहुँच गए थे। मनुष्यत्व के भावों ने थोड़े समय के लिये अंतरराष्ट्रीय प्रतिद्वंद्विता को दबा दिया है। गोरे और पीलों के हृदय एक दूसरे के निकट आ गए हैं। विपत्ति की इस काली घटा में सुख की यही एक रेखा है।

× × ×

४. आरे की बाढ़

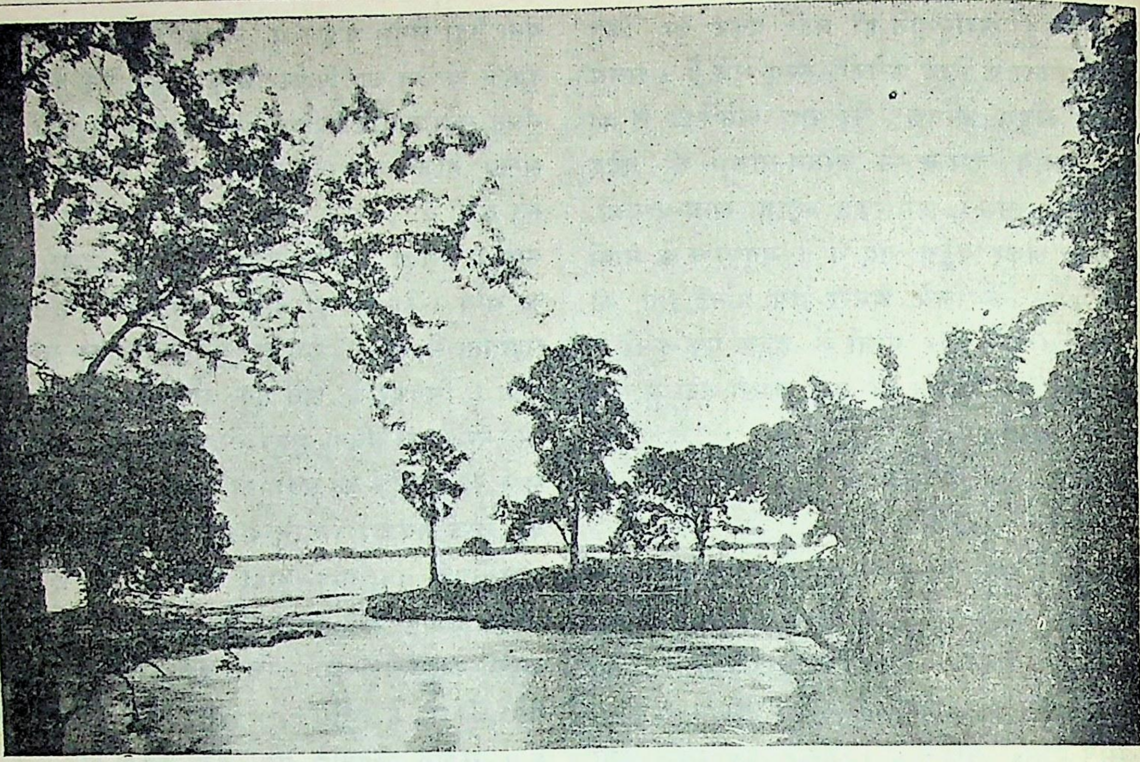
पिछले दिनों आरे में भी भयंकर बाढ़ आई थी। इस बाढ़ के अवसर पर कलकत्ते की मारवाड़ी-रिलीफ़-सोसाइटी ने प्रशंसनीय कार्य किया। सोसाइटी के कार्य की रिपोर्ट (२ ऑक्टोबर, सन् १९२३ ई० की भेजी हुई) इस समय हमारे सामने है। उसने ६० ग्रामों तथा १५० वर्गमील क्षेत्र में कार्य किया। जो लोग असमर्थ थे, उन्हें अन्न, वस्त्र, निवास-स्थान देकर सहायता की, और उनके पशुओं की सहायता के लिये घास, भूसा तथा चोकर का प्रबंध किया। जिन कुटुंबों की परिस्थिति सहायता पाने के योग्य तो थी, परंतु वे दान-स्वरूप सहायता नहीं लेना चाहते थे, उनके लिये नाज की सस्ती दूकानें खोलने का पिरौटा में केंद्र स्थापित किया, और मुफ़्त सहायता के अतिरिक्त बाज़ार-भाव से कहीं अधिक सस्ता नाज बेचा। चावल का भाव उस समय ७-७॥ सेर तक था; परंतु सोसाइटी ने १० सेर का चावल बेचा। इसका प्रभाव बाज़ार पर भी हुआ। चावल का भाव ९-९॥ सेर हो गया। इस प्रकार सोसाइटी की सहायता से, परोक्ष रूप से भी, जनता का यथेष्ट हित हुआ। सितंबर के अंत तक सोसाइटी ने ७७१ पुरुषों को नाज की बिना मूल्य सहायता की। सस्ती बिक्री से २,२९५ कुटुंबों को सहायता पहुँची। कुल ६,२३९॥।)॥ का नाज बिका, जिसमें ३ % का घाटा रहा। यदि स्वयं-सेवकों तथा गाड़ी-भाड़ा आदि के किराए का ख़र्च भी इसमें जोड़ा जाय, तो २७५) प्रति दिन का घाटा हुआ। पशुओं की जीवन-रक्षा के लिये ४०० मन भूसी (चोकर) मँगा ली गई है, और २,००० मन भूसा भी आनेवाला है। मकान बनवाने तथा नई फ़सल के लिये बीज देने आदि के कार्य के लिये सोसाइटी ने १०,०००) रु० व्यय करने का निश्चय किया है। ३० सितंबर तक कुल व्यय ९,२६०॥≤)॥ हुआ है।

हम सोसाइटी के कार्य को सब प्रकार से सराहनीय और अनुकरणीय समझते हैं। आशा है, भारत की अन्यान्य सेवा-समितियाँ भी मारवाड़ी-रिलीफ़-सोसाइटी के कार्य का अनुकरण करेंगी।



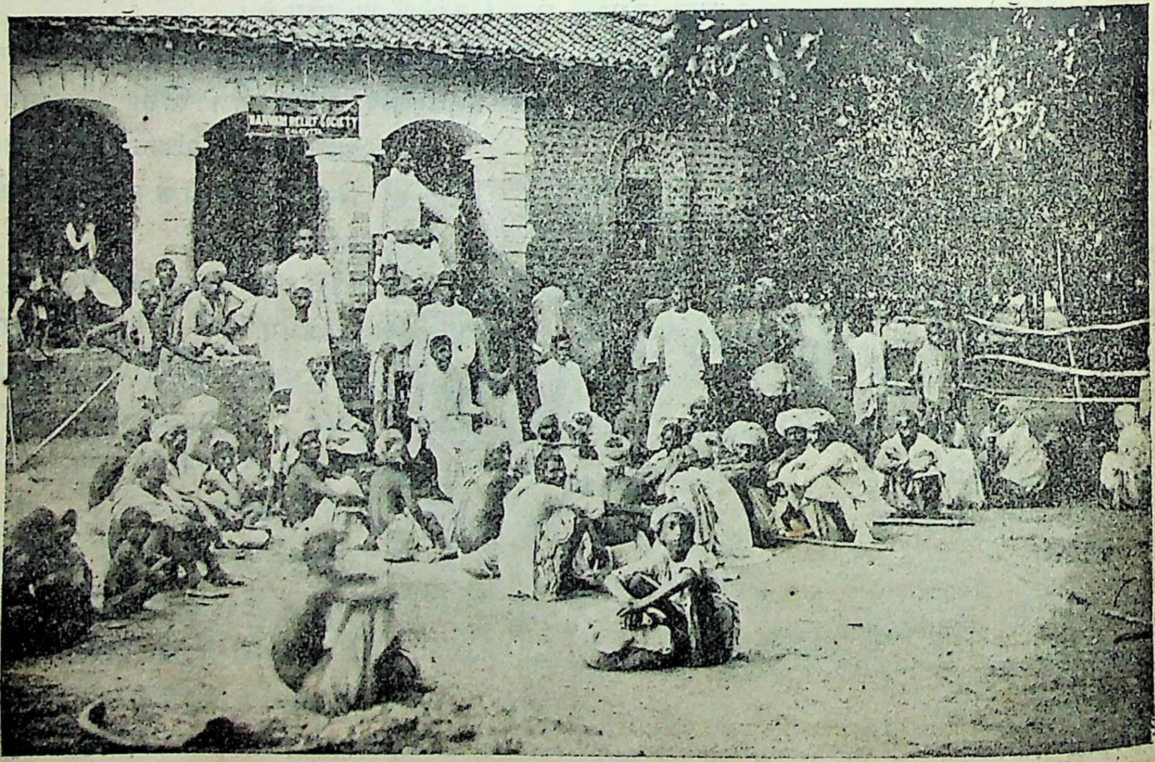
बाबू-बाज़ार, आरा

बाढ़-संबंधी कुछ चित्र यहाँ दिए गए हैं। प्रथम चित्र आरे के बाबू-बाज़ार का है। यह बाज़ार वीरवर कुँअरसिंहजी का है। चित्र मकान गिरने तथा तार का खंभा उखड़ने की दशा का है। दूसरा चित्र आरा-बाढ़ के समय नहर के दृश्य का है। बाढ़ के अतिशय वेग से नहर का पुल टूट गया है। तीसरा चित्र मारवाड़ी-रिलीफ़-सोसाइटी के बाढ़-समय के केंद्र पिरौटा का है। सायंकाल, सूर्यास्त के समय, सबसे ऊपर कपड़े की ढेरी के पास, सोसाइटी के प्रबंधक पं० चंद्रवल्लभ



आरा-बाढ़ के समय नहर का दृश्य

(नहर के ऊपर का पुल टूट गया है)



पिरौंटा-बाज़ार, आरा

(सूर्यास्त के समय मारवाड़ी-रिलीफ़-सोसाइटी के केंद्र पिरौंटा का दृश्य)

जोशी खड़े कपड़े बाँट रहे हैं। नीचे की कुर्सी पर सोसाइटी के कार्य-कर्ता श्रीयुक्त नारायण महाराज ग़ल्ला तौला रहे और टिकट ले रहे हैं। दिन में भीड़ अधिक रहने के कारण टिकट तथा रसीद लेने-देनेवाले के लिये पेड़ के नीचे बाँस का एक बाड़ा बाँध दिया गया है। उस ओर क्लर्क आदि कार्य करते हैं। ऊपर की ओर स्वयं-सेवक लोग हैं, और एक कुर्सी पर पिरौटा के ज़मींदार श्रीयुत कामताप्रसादजी नंगे सिर बैठे हुए हैं। शेष सब बाढ़-पीड़ित लोग हैं।

× × ×

५. कवि और कविता

कवि ढाले नहीं जाते, अपने आप उत्पन्न होते हैं। ईश्वर उन्हें भेजता है, इसीलिये वे आते-आते अपनी प्रतिभा विकसित करने लगते हैं। कृत्रिम कवियों को छोड़कर स्वाभाविक कवियों में ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलते हैं कि कवि ने पूर्णवयस्क होकर, २५-२६ वर्ष की अवस्था के बाद, कविता लिखना प्रारंभ किया हो। परंतु यह बात भी नहीं कि ऐसे उदाहरणों का एकदम अभाव ही हो। बात यह है कि कवित्व-शक्ति का विकास काल-विशेष में हुआ करता है। कोई इस प्रकार की घटना घटित हुई कि उसने कवि के हृदय को या तो नैसर्गिक आह्लाद से भर दिया, या फिर उसकी हृत्तंत्री में घाव कर दिया—ऐसा कि जिसे शब्दों का रूप देकर, अपने बंधु-बांधवों, इष्ट-मित्रों तथा देशवासियों के आगे उपस्थित किए बिना उससे नहीं रहा गया—और कवि की प्रतिभा जग गई। यह नहीं कहा जा सकता कि इससे पूर्व उसके हृदय में कवित्व-शक्ति का निवास नहीं था। कारण, कवित्व-शक्ति अनुकूल परिस्थिति पाकर जाग्रत् होती है। प्रतिभा जाग्रत् होती है, और सोती भी है। प्रतिभा कर्म-शील बनाती है; परंतु वह विश्राम भी करती है। बहुधा देखा जाता है कि वर्षों व्यतीत हो जाते हैं, पर कवि अपनी लेखनी से कोई रचना नहीं लिखते। बात यह है कि उस समय उनकी प्रतिभा विश्राम करती है। कोई उनसे बलात् कविता लिखाकर देखे तो! प्रतिभाशाली कवि बलात् कविता लिखेंगे ही नहीं—लिखेंगे, तो लोग कानाफूसी करेंगे। कारण, वह कविता कवि की योग्यता की कोटि की कदापि न होगी। ऐसी स्थिति में क्या यह कहा जा सकता है कि कवि प्रतिभा-हीन हो गया? कदापि नहीं। प्रतिभा-हीन हो गया हो, तो उसके बाद समया-नुसार उसकी लेखनी से सुंदर सौरभ-पूर्ण प्रसून कैसे खिलें? परंतु यह नहीं कहा जा सकता कि उच्च कोटि की रचनाएँ बलात् लिखाई ही नहीं जा सकतीं। प्रतिभाशाली कवि कभी-कभी बलात् भी उच्च कोटि की रचनाएँ लिख दिया करते हैं। आज भी हिंदी में ऐसे कवि उपस्थित हैं, जिन्होंने बलात् उत्तम-से-उत्तम रचनाएँ की हैं। बात यह है कि जिस समय कवि का हृदय लिखने के लिये विवश हो जाता है, उस समय उसकी प्रतिभा निद्रा-मग्न नहीं रहती। इसी से रचना अच्छी हो जाती है। परंतु जब कवि का हृदय लिखने के लिये विवश नहीं हुआ होगा, तब उससे बलात् रचना न तो लिखाई ही जा सकती है, और न वह—लिखने पर—अच्छी बन ही सकती है। आजकल हिंदी-जगत् में अधिक अंश में जो रचनाएँ प्रकाशित होती हैं, उनमें बहुत कम ऐसी होती हैं कि उन्हें कविता कहा जा सके। कारण यह है कि वे कवि-हृदय की वास्तविक उपज नहीं। या तो वे पत्र पर पत्र लिखने—तक़ाज़ों का ढेर लगा देने—से प्राप्त हुई होती हैं, या ऐसे कवियों की लिखी हुई, जिनमें कवि-प्रतिभा का पर्याप्त निवास नहीं है।

× × ×

६. मुद्रण-कला

छपाई भी एक कला है। उन्नत राष्ट्रों में इस कला को विशेष महत्त्व प्राप्त है। वहाँ इस कला की शिक्षा के लिये भी शिक्षणालय हैं, जिनमें यथेष्ट शिक्षा प्राप्त करके ही लोग इस कला से संबंध रखनेवाले कार्यों में हाथ लगाने पाते हैं। इस कला की शिक्षा के लिये वहाँ साहित्य भी पर्याप्त रहता है। कोई भी शिक्षित व्यक्ति ऐसे साहित्य का अवलोकन करके मुद्रण-कला-संबंधी आरंभिक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। परंतु संपादक-समुदाय में प्रवेश करने के लिये यह आवश्यक होता है कि इस कला की, आरंभिक नहीं, पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर ली जाय। विज्ञान के इस युग ने मुद्रण-कला को इस कोटि पर पहुँचा दिया है कि अब इस कला की जानकारी प्राप्त किए बिना कोई व्यक्ति संपादन-कला में निपुण नहीं हो सकता। खेद है, हिंदी-जगत् में अभी ऐसे संपादकों का अभाव है, जिन्हें मुद्रण-कला की यथेष्ट जानकारी हो।

एक समय था, जब हिंदी में किसी भी प्रेस की छपाई-सफ़ाई इस योग्य नहीं होती थी कि पाठक पुस्तक को एक बार देख-भर ले कि उसे पढ़ने की आकांक्षा उसके हृदय में हो आवे। पुस्तकों का पठन-पाठन केवल इसलिये होता था कि उनके अंदर की वस्तु—पाठ्य विषय—पढ़ने योग्य होती थी। यह दशा बहुत दिनों तक रही। जैसे-जैसे शिक्षा की किरणों ने इतर कलाओं के कुटीर को आलोकित किया, वैसे-वैसे धीरे-धीरे इस कला की कुटीर को भी। सैकड़ों वर्षों के बाद आज भारत का ध्यान इस कला के महत्त्व और इसकी उन्नति की ओर आकृष्ट हुआ है। आज यह अवस्था है कि प्रत्येक नगर में प्रेसों की संख्या बढ़ रही है। जिन पुराने प्रेसों का छपाई देखकर घृणा होती थी, उन्होंने भी उन्नति की ओर पैर बढ़ाया है। लोग बड़ी उत्कंठा के साथ इस कला का ज्ञान प्राप्त करने के लिये व्यग्र हैं। परंतु इस विषय में भारत को अभी बहुत कार्य करना है।

संपादन-कला का इस कला से बड़ा घनिष्ठ संबंध है। खेद की बात है कि आज हिंदी का अधिकांश साहित्य जिन हाथों द्वारा संपादित होकर प्रकाशित होता है, वे इस कला में यथेष्ट क्या, बिलकुल कुशलता नहीं रखते। दो-चार ग्रंथ-मालाओं तथा मासिक पत्र-पत्रिकाओं को छोड़कर अधिकांश ऐसी हैं, जिनके संपादक इस विषय के ज्ञान से कोरे हैं। अधिकांश संपादक और लेखक इस कला की बिलकुल जानकारी नहीं रखते। यही कारण है कि आजकल हिंदी-साहित्य का अधिकांश प्रकाशन ऐसा होता है कि इतर राष्ट्रीय नागरिक उसे देखकर हँसते हैं। वास्तव में यह स्थिति उपहासास्पद है।

लोग प्रायः कलकत्ते के ग्रंथ-प्रकाशकों की यह शिकायत किया करते हैं कि वे छपाई-सफ़ाई की सुंदरता की ओट में खूब रुपया कमा रहे हैं; परंतु उनसे साहित्य का उतना कल्याण नहीं होता, जितना होना चाहिए। वे कैसा साहित्य प्रकाशित करते हैं, इसकी आलोचना करके इस प्रश्न को हल करना विषयांतर करना है। अस्तु। वास्तव में वे अपने व्यवसाय में जो उन्नति कर रहे हैं, उसका प्रधान कारण उनकी मुद्रण-कला-विषयक सतर्कता है। वे पुस्तक-प्रकाशन में इस कला को मुख्य मानते हैं, इसीलिये उन्होंने इस ओर इतना ध्यान दिया है, और इसीलिये वे अपने व्यवसाय में कृतकार्यता भी प्राप्त कर रहे हैं। पाठकों पर यह दोषारोपण करना भी अनुचित है कि वे रूप-रंग पर मोहित होकर उपयोगिता और उपादेयता की दृष्टि से बहुत कम महत्त्व रखनेवाले साहित्य पर टूटे पड़ते हैं। कारण, नयनाभिराम पुस्तकों के पढ़ने की प्रबल उत्कंठा होना स्वाभाविक है।

मुद्रण-कला के संबंध में अभी हिंदी का क्षेत्र पूर्ण संपन्न नहीं है। अभी इस विषय में जो कोई, थोड़ा बहुत उद्योग करके, कुछ भी कुशलता प्रदर्शित करेगा, वह बाज़ी मार ले जायगा, और इतर व्यक्ति ताकते रह जायँगे। अतएव प्रकाशन-व्यवसाय को उन्नत करने के लिये भी मुद्रण-कला का विकास होना आवश्यक है।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि हिंदी के क्षेत्र को सुसंपन्न बनाने के लिये मुद्रण-कला की उन्नति करना शिक्षा, जागृति, व्यवसाय आदि अनेक दृष्टियों से श्रेयस्कर है।

× × ×

७. हिंदी में भाषण

एक समय था, जब कांग्रेस में अँगरेज़ी-भाषा की तूती बोलती थी। राष्ट्रीय महासभा के मंच पर शासक-जाति की भाषा अँगरेज़ी का ही प्राधान्य था। राष्ट्र-सेवा का महान् व्रत लेनेवाले नेता लोग राष्ट्र-उपासना-यज्ञ में मंत्रोच्चारण का काम लेते थे विदेशी भाषा से! राष्ट्र कितने अधःपतन पर था! कहाँ राष्ट्र-सेवा का महान् व्रत, और कहाँ राष्ट्र-सेवा के कार्य में दासता का चिह्न-स्वरूप विदेशी भाषा का उपयोग! यह दशा बहुत दिनों तक रही। परंतु रंग बदला, और अच्छी तरह बदला। आज हम 'सम्मेलन-पत्रिका' में यह संवाद पढ़ रहे हैं कि "आगामी कोकनाडा-कांग्रेस की स्वागत-कारिणी के अध्यक्ष, सुना है, अपना भाषण हिंदी में देंगे।" अब, भूल का संशोधन हुआ। जो बात पहले ही होनी चाहिए थी, वह अब—३०-४० वर्ष बाद—हुई। ख़ैर, हुई तो।

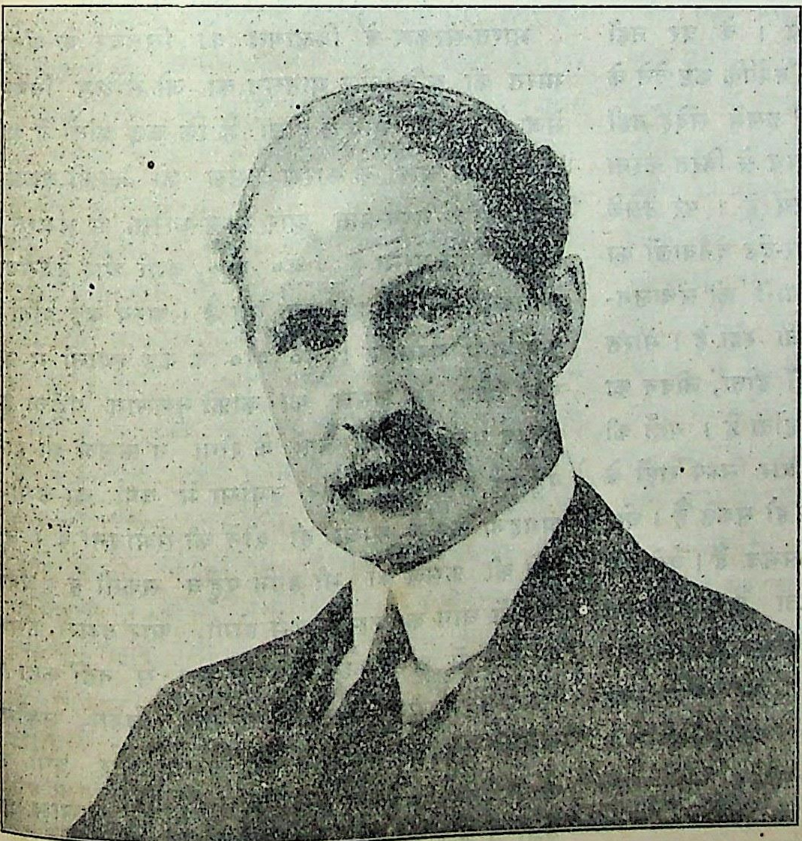
राष्ट्रीय महासभा की स्वागत-कारिणी समिति के सभापति का भिन्न-भाषा-भाषी होने पर भी हिंदी में भाषण देना राष्ट्रीय महासभा के इतिहास में नवीन एवं गौरव की बात तो है ही, साथ ही इससे इस बात का भी पर्याप्त पता चलता है कि हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के प्रचार-विभाग ने मदरास-प्रांत में हिंदी-प्रचार का कितना

कार्य किया है ! इस संबंध में हम मदरास-प्रांतीय जनता के उत्साह और हिंदी-प्रेम की भी प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते । आशा है, यह बात राष्ट्रीय महासभा के भावी अधिवेशनों के लिये अनुकरणीय होगी, और भिन्न-भाषा-भाषी नेताओं के लिये उदाहरण-स्वरूप । क्या हम आशा करें कि निकट भविष्य में राष्ट्रीय महासभा की समस्त कार्यवाही राष्ट्र-भाषा हिंदी ही में होगी ?

× × ×

८. मि० बोनरला का वियोग

ग्रेट ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधान मंत्री मि० बोनरला भी गत ३० ऑक्टोबर को सबेरे स्वर्ग सिधार गए । एक-साथ ही मनस्वी मॉर्ले और वाग्मी बोनरला-जैसे दो महान् पुरुषों को खोकर ब्रिटिश-साम्राज्य की भारी क्षति हुई है । दोनों आदमी लिबरल और कंज़र्वेटिव-दलों के सर्वमान्य मुखिया और असाधारण व्यक्ति थे । लायड जार्ज की कुटिल नीति असफल होने पर एकाएक उनको प्रधान मंत्री के पद से हटना पड़ा, और उस समय बीमार रहने पर भी बोनरला उक्त दायित्व-पूर्ण पद पर विराजमान हुए । इन्हें न्युमोनिया हो गया था, और अंत को उसी में इनकी मृत्यु भी हुई । इनके पुरखे स्कॉटलैंड के रहनेवाले थे । इनका जन्म कनाडा के न्यू बर्न्सविक-नगर में हुआ था । विद्याभ्यास समाप्त कर ग्लासगो में जाकर इन्होंने लोहे का कारखाना खोला । कुछ ही समय में अपनी योग्यता से व्यापारियों के नेता बन बैठे । सन् १८९८ में यह आयरन ट्रेड एसोसिएशन के अध्यक्ष चुने गए । राजनीति में दिलचस्पी लेते ही सन् १९०० में यह पार्लियामेंट के मेंबर चुने गए । सन् १९१५ में औपनिवेशिक विभाग के मंत्री हुए, और प्रशंसनीय योग्यता के साथ अपना काम करके प्रसिद्ध और लोकप्रिय हो गए । इसके बाद कुछ दिनों के लिये प्रधान मंत्री हुए । बीमारी की लाचारी से इन्हें यह पद छोड़ देना पड़ा । कंज़र्वेटिव-दल के होने पर भी यह स्वभाव के बुरे न थे । लोग इन्हें सरल-चित्त और सत्य-भीरु समझते थे । इनमें बोलने की शक्ति अच्छी थी । अपने युक्ति-पूर्ण भाषण से विपक्षियों पर भी यह अपना असर डाल सकते थे । मरने के समय इनकी आयु ६४ वर्ष की थी । हम इनकी आत्मा की सद्गति के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते हैं ।



मिस्टर बोनरला

× × ×

९. भारतीय जेलों में सुधार की आवश्यकता

अन्य सभ्य और स्वतंत्र देशों में जेल जानेवाले अपराधियों के जीवन को सुधारने का प्रयत्न किया जाता है । अपराधियों और पापियों के साथ भूल भ्रांति से पहली ही बार अपराध करनेवाले लोग नहीं रक्खे जाते । उनके साथ सहानुभूति का व्यवहार किया जाता है । मतलब यह कि वहाँ की जेलें नरक का नमूना नहीं हैं । वहाँ क़ैदी के साथ पशुओं का-सा व्यवहार नहीं किया जाता । फिर भी वहाँ जेलों को

और भी अधिक उन्नत बनाने की चेष्टा हो रही है। इधर भारतीय जेलें सभ्यता और शिष्टता की उन्नति-कारिणी बीसवीं शताब्दी के नाम पर कलंक की कालिमा पोत रही हैं। किंतु उनकी दुर्दशा का ठीक-ठीक पता भारत के सर्व-साधारण जन-समुदाय को अब भी यथेष्ट नहीं है। और, सच्ची बात तो यह है कि कारागारों के छोटे-मोटे कर्मचारी कितना उत्पात और अत्याचार करते हैं, इसका यथेष्ट पता भारतीय शासन के सूत्रधारों—ब्रिटिश मंत्रि-मंडल के गण्यमान्य सदस्यों—तक को नहीं है। फिर यह कैसे संभव हो सकता है कि संसार के अन्य स्वाधीन राष्ट्रों को भारतीय कारागारों की दुर्दशा का पता हो। यदि उन्हें इसका यथेष्ट ज्ञान होता, तो भारत के कारागारों की यह दुरवस्था रहना असंभव था। यहाँ की सरकार कम-से-कम बदनामी के ख़याल से ही उनका सुधार करने को विवश होती।

अस्तु। इसमें संदेह नहीं कि भारत के कारागार नरक-यातनाओं के साक्षात् आगार हैं। कहा जाता है कि "जेल जेल ही हैं, और रहेंगे। वे घर नहीं हो सकते। कष्ट तो उनमें होगा ही; क्योंकि कष्ट देने के लिये तो उनकी रचना ही हुई है।" इसमें संदेह नहीं कि अपराधी को कष्ट देकर उसे अपराध से विरत करना ही कारागारों की स्थापना का उद्देश्य है। पर उसके जीवन का सुधार करना भी कारागार-दंड देनेवालों का लक्ष्य होना चाहिए। भारतीय कारागारों की संचालन-प्रणाली इस उद्देश्य से सर्वथा भिन्न जा रही है। भारत के कारागारों में जीवन का सुधार नहीं होता, जीवन का ह्रास और जीवन की अंत्येष्टि-क्रिया होती है। यहाँ की जेलों में दिए जानेवाले कष्ट उन्नत और सभ्य राष्ट्रों के निवासियों के लिये आश्चर्य का कारण हो सकते हैं। घोर कष्ट देकर जीवन का सुधार करना असंभव है। वैसे कष्ट देकर जीवन को नष्ट करना निष्ठुरता है। साधारण उत्पन्न कर जीवन का सुधार करना अच्छा है, और घोर भय कष्ट देकर मानव-जीवन को नष्ट करना स्पष्ट पैशाचिक प्रवृत्ति है। इसीलिये कहना पड़ता है कि भारत के कारागार ब्रिटिश-शासन के लिये कलंक हैं।

हाल ही में भारतीय जेलों में कुछ सुधारों की योजना हुई है। इस योजना से जेल के नियमों में कुछ सुधार और परिवर्तन होंगे। परंतु हमें खेद के साथ लिखना पड़ता है कि ये सुधार पर्याप्त नहीं हैं। इन सुधारों से भारतीय कारागारों के संबंध में देश में जो असंतोष है, न तो वही मिटेगा, और न इन कारागारों की वर्तमान अवस्था के बदौलत ब्रिटिश शासन के नाम पर पुती हुई कालिमा ही मिटेगी। सरकार यदि वास्तव में सुधार करना चाहती है, तो उसे चाहिए, वह कारागारों की वर्तमान अवस्था में आमूल परिवर्तन करे; जिससे नवीन व्यवस्था ऐसी हो, जो कारागारों में दी जानेवाली पाशविक यातनाओं का सदा-सर्वदा के लिये अंत कर दे। अब चोर, खूनी, डाकू ही जेल नहीं जाते, देश-सेवक नाम से परिचित भले आदमी भी जाने लगे हैं, और चोर-डाकुओं की अपेक्षा उन्हीं को अधिक कष्ट भोगने पड़ते हैं। इस दृष्टि से भी भारतीय कारागारों का पूर्ण सुधार होना आवश्यक है।

× × ×

१०. इस वर्ष भारत में खेती की हालत

भारत-सरकार ने विलायत को सितंबर के अंत में भारत की कृषि और मानसून का जो संक्षिप्त विवरण भेजा है, उससे मालूम होता है कि कुछ प्रांतों में अति वर्षा और बाढ़ के कारण फ़सल को काफ़ी नुक़सान पहुँचा है। मध्य-प्रांत और मध्य-भारत में ज़रूरत से ज़्यादा पानी बरसा है। यू० पी०, बर्मा और हैदराबाद में ज़रूरत-भर की ही वर्षा हुई है। अन्य कई प्रांतों में कम पानी बरसा है। यू० पी० के कई स्थानों में वर्षा और बाढ़ से फ़सल को काफ़ी नुक़सान पहुँचा है। सरहद पर कई जगह खेती के रोगों ने फ़सल को हानि पहुँचाई है। बिहार और उड़ीसा में वर्षा की कमी से अगहनी फ़सल आधी ही होने की संभावना है। वहाँ रबी की फ़सल को भी हानि पहुँच सकती है। बंबई प्रांत में धान की फ़सल कम होगी, और दूसरी फ़सलों के बारे में अभी कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। मदरास, बंगाल, आसाम, बिहार, उड़ीसा, अजमेर और राजपूताने में अभी और वर्षा की आवश्यकता समझी जाती है। बंगाल, आसाम और बर्मा में बाढ़ से होनेवाले कष्टों को दूर करने की बहुत कुछ चेष्टा की गई है। दूसरी फ़सलों की अवस्था

अपेक्षाकृत अच्छी है। खाने-पीने की सामग्री भी यथेष्ट है। भोजन-सामग्री की दर कहीं अधिक और कहीं कम है। परंतु स्थिर है, घटती-बढ़ती नहीं। आर्थिक अवस्था भी बुरी नहीं है। पशुओं का स्वास्थ्य भी संतोष-जनक है। केवल यू० पी०, हैदराबाद और राजपूताने से पशु-रोग फैलने की ख़बर मिली है। मदरास में घास-चारे की कमी है। बंबई और सिंध में सूखे चारे और घास की कमी पड़ने की संभावना है। साधारण रूप से खेती की हालत अच्छी बताई जाती है। मतलब यह कि अन्न की दर ठहरी हुई है, और अच्छी फ़सल की आशा की जाती है। ये सब सरकारी पक्ष की बातें हैं। वस्तु-स्थिति जानने का और कोई ज़रिया न होने के कारण हमको इसी रिपोर्ट पर संतोष करना चाहिए।

× × ×

११. भारत में बच्चों की बढ़ती हुई मृत्यु-संख्या

भारत में दिन-दिन बच्चों की मृत्यु-संख्या बढ़ती ही जाती है। सरकारी रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि भारत में हर साल २ करोड़ से अधिक बच्चे मर जाते हैं। बाल-मृत्यु का औसत १००० में २०० होता है। यह पंचमांश बच्चों की मृत्यु देश के लिये बड़े ही दुर्भाग्य की सूचना देती है। अधिकांश बच्चों की मृत्यु जिन कारणों से होती है, वे दूर किए जा सकते हैं। किंतु कुछ माताओं के मूर्ख और शिशु-पालन-प्रक्रिया से अपरिचित होने के कारण और अधिकतर ग़रीबी के मारे बच्चों की मृत्यु अनिवार्य हो रही है। इस काम में न तो सरकार ही यथेष्ट धन ख़र्च करती है, और न प्रजा-पक्ष के नेता ही इधर ध्यान देते हैं। अगर प्रजा-पक्ष के मुखिया लोग अन्य अनावश्यक कामों को छोड़कर कुछ ऐसा प्रबंध करें कि देश में सर्वत्र स्त्रियों को प्रसव-क्रिया, शिशु-पालन, बालकों की हिफ़ाज़त आदि की शिक्षा दी जाय, उन्हें गंदगी और कुपथ्य के दोष समझाए जायँ, तो बहुत कुछ हो सकता है। साथ ही सरकार और प्रजा-पक्ष के नेताओं को सम्मिलित उद्योग से यह प्रबंध भी करना चाहिए कि ग़रीबों और अनाथ-परिवारों को आर्थिक सहायता दी जाय, जिसमें ग़रीब और अनाथ माताएँ अपने बच्चों को अच्छे भोजन-वस्त्र दे सकें, बीमार होने पर उनकी चिकित्सा करा सकें और उनके पीने के लिये विशुद्ध दूध का प्रबंध कर सकें। आजकल प्रायः—अधिकतर ग़रीबों को—अच्छी दाइयाँ नहीं मिलतीं, जिसमें प्रसव-कार्य में असावधानी होती है। बच्चा और मा, दोनों गंदे स्थान में मैले-कुचैले वस्त्र पहनाकर रक्खे जाते हैं। ग़रीबों को जाने दीजिए, अमीरों के यहाँ भी 'सौर' में गंदगी ही रक्खी जाती है। अच्छे और यथेष्ट खाद्य का अभाव रहता है। ज़च्चा को बलकारक पदार्थ बहुत कम नसीब होते हैं। शुद्ध वायु का सेवन भी बहुत कम किया जाता है। इसी तरह के बहुत-से कारण ऐसे हैं, जिनसे बच्चा—और अक्सर ज़च्चा भी—अकाल-मृत्यु का शिकार बन जाता है। अगर मृत्यु नहीं भी होती है, तो प्रायः असाध्य और अधमरा कर देनेवाले रोग जड़ जमाकर जन्म-भर के लिये उन्हें बेकार बना देते हैं। औसत लगाकर देखा गया है कि तीन साल से कम आयु के बच्चे बहुत मरते हैं। इँगलैंड में आजकल बच्चों की मृत्यु का औसत १००० में ८०. है। सौ वर्ष पहले वहाँ भी भारत के ही समान बच्चों की मृत्यु हुआ करती थी। परंतु वहाँ एक संगठित प्रयत्न किया गया, और अब मृत्यु-संख्या इतनी घट गई है। कुछ समय पहले इँगलैंड में बच्चों की मृत्यु-संख्या घटाने के लिये एक कौंसिल की स्थापना की गई थी। गाँवों और शहरों में स्त्रियों को प्रसव-क्रिया और शिशु-पालन के नियमों की शिक्षा देना ही उसका उद्देश्य था। वहाँ इस तरह प्रचार करने का बहुत अच्छा फल हुआ। वहाँ की सरकार भी इस मद में काफ़ी रक़म ख़र्च करती है। गत सन् १९२१ में ब्रिटिश-गवर्नमेंट ने बच्चा की रक्षा के लिये तीन करोड़ रुपए ख़र्च किए थे। वहाँ की जनता भी इस काम में काफ़ी दिलचस्पी लेती है। अब वहाँ राजा और प्रजा की सम्मिलित सहायता से यह काम हो रहा है। भारत में, कुछ साल हुए, रेडक्रास सोसाइटी के कर्तव्य में यह काम शुरू किया गया था। उसे विस्तृत करने के लिये लेडी चेम्सफ़ोर्ड चाइल्ड वेलफ़ेअर लीग भी स्थापित हुई थी। इस समय श्रीमती लेडी रीडिंग भी इस कार्य को महत्त्व दे रही हैं। आगामी सन् १९२४ की जनवरी के तीसरे सप्ताह में एक जातीय सप्ताह नियत किया गया है। उसमें बाल-रक्षा-संबंधी कार्यों का प्रदर्शन किया जायगा, प्रसव-क्रिया, शिशु-पालन आदि पर व्याख्यान दिए जायँगे। इस काम के लिये शहरों और

क़स्बों में कमेटियाँ स्थापित करने का विचार हो रहा है। हमारी राय में इस सामयिक अनुष्ठान से वैसा स्थायी फल नहीं हो सकता। ऐसी कमेटियाँ स्थायी रूप से स्थापित हों। स्थानीय कार्यकर्ता लोग सरकार से मिलकर इस काम को चलावें। क़स्बों और गाँवों में प्रति मास जाकर स्त्रियों में स्त्रियाँ ही इन विषयों की उपयोगिता समझावें, और यथासंभव उपदेश के साथ शिक्षा भी दें। सरकार को भी काफ़ी रक़म इस मद में ख़र्च करनी चाहिए, और प्रजा के कर्णधारों को भी आर्थिक सहायता के साथ ही अज्ञान माताओं में शिशु-पालन और उसके महत्त्व का ज्ञान फैलाना चाहिए। हमें आशा है, कांग्रेस भी ऐसे उपयोगी महत्त्व के कार्य की ओर अवश्य ध्यान देगी। देश का सच्चा हित ऐसे ही काम करने से हो सकता है।

× × ×

१२. भारत में सिंचाई-विभाग

भारत के आबपाशी-विभाग की सन् १९२१-२२ की जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, उससे मालूम होता है कि देसी राज्यों को छोड़कर समग्र भारत में नहरों और तालाबों के द्वारा २ करोड़ ७० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई की गई। औसत हिसाब से यह रक़बा गत ३ वर्ष के रक़बे से साढ़े सात लाख एकड़ अधिक होता है; किंतु सन् १९१९-२० से २ लाख ८१ हज़ार एकड़ कम है। पंजाब में सिंचाई सबसे अधिक हुई है। उसके बाद मदरास, सिंध और यू० पी० का नंबर है। इस साल सिंचाई के कामों में कुल ६,९८१ रु० ख़र्च किए गए। उससे ९६५ लाख रु० की आय और उसे वसूल करने में ६८३ लाख रु० ख़र्च हुए। इस रक़म पर ७·१ फ़ी-सदी सरकार को मिला। आबपाशी के कामों में ख़र्च करने से अच्छी आमदनी पंजाब में ही हुई। वह औसत से १४·६२ फ़ी-सदी है। मदरास का औसत १२·७४ है। यू० पी० का और ७·७४ है। बोई हुई ज़मीन में १४ फ़ी-सदी ज़मीन पर सिंचाई हुई। उसकी पैदावार भी ख़र्च के बनिस्बत दूनी अंदाज़ी गई। वह बिना सिंचाई के खेतों की उपज से ड्योढ़ी अधिक हुई। इसमें संदेह नहीं कि सिंचाई से खेती को बड़ा लाभ होता है। देश में सिंचाई के साधन नहर आदि का विस्तार जितना अधिक हो, उतना ही अच्छा।

× × ×

१३. साम्राज्य-प्रदर्शिनी के प्रति भारत का भाव

हमारे पाठक जानते हैं कि सन् १९२४ के शुरू में, विलायत में, एक साम्राज्य-प्रदर्शिनी होनेवाली है। उसमें ब्रिटिश-साम्राज्य के सभी देश अपने प्रतिनिधि और अपने यहाँ की प्रदर्शनीय वस्तुएँ भेजकर सहयोग करेंगे। इधर केनिया के पक्षपात-पूर्ण निर्णय से असंतुष्ट भारत की जनता उसका बायकाट करना चाहती है। जोशीले राष्ट्रीय-दल के लोग ही नहीं, माननीय शास्त्रीजी-जैसे शांत प्रकृति के महारथी माडरेट भी प्रदर्शिनी में शामिल न होने का समर्थन कर रहे हैं। इस पर हमारे बड़े लाट साहब ने अपने एक व्याख्यान में भारतीय जनता को सुनाया है कि इस बायकाट से इँगलैंड की कुछ हानि नहीं है, भारत की ही हानि होगी—उसी की व्यावसायिक उन्नति न हो सकेगी। हमारी राय में भारतवासियों को इस प्रदर्शिनी से विशेष लाभ की संभावना नहीं है; बल्कि हानि ही की अधिक आशंका है। हम मानते हैं कि प्रदर्शिनी में अपनी चीज़ें भेजने और उसमें शामिल होने से अपनी चीज़ों का प्रचार और ज्ञान-वृद्धि होती जा सकती, जो विदेशों को कच्चा माल देने का ही ठेकेदार बन रहा है, जिसकी दस्तकारी अपनी मशीनरी न होने के कारण अन्य देशों की मशीन से बनी चीज़ों का मुक़ाबिला नहीं कर सकती। भारत को हानि बेशक हो सकती है, और वह इस तरह कि यहाँ जो कुछ हाथ की कारीगरी बच रही है, जिससे यहाँ के कुछ कारीगर अब भी पेट पाल रहे हैं, उसे देखकर विलायत के कारीगर उसकी नक़ल करेंगे, और जर्मनी की शालों और विलायती चिकन की तरह वह नक़ली सामान आकर यहाँ की असली कारीगरी को चौपट कर देगा। न यहाँ करोड़ों की पूँजी लगानेवाले पूँजी-पति हैं, न उतनी पूँजी है, न मशीनरी है, न वैसी सुविधा है; फिर यहाँ के लोगों को प्रदर्शिनी से क्या लाभ हो सकता है? हाँ, इँगलैंड और उसके उपनिवेश बेशक आसानी से यह जान लेंगे कि भारत में यह कारीगरी अभी अछूती है, इसे हथियाने से हमारी जेबें भरी जा सकती हैं; भारत में यह-यह कच्चा माल मौजूद है, इसे पैसे में ख़रीदकर भारतीयों ही के हाथ मन्न में चार आने में बेचा जा सकता है। इन्हीं कारणों से हम भी इस प्रदर्शिनी के विरोधी हैं।

× × ×

१४. जर्मनी का जीवन

फ़्रांस ने जर्मनी को छिन्न-भिन्न कर अशक्त बना देने का प्रण कर लिया है। वह चाहता है, जर्मनी के सब अंग अलग हो जायँ, और वह एक शक्तिशाली राज्य न रह जाय। कारण, फ़्रांस जर्मनी से उसकी ऐसी कमज़ोर हालत में भी ख़ौफ़ खा रहा है। मो० पोयनकारे कहते हैं कि जर्मनी बाहर अपनी जो दशा दिखा रहा है, वह वास्तव में ठीक नहीं है। असल में उसकी भीतरी हालत अच्छी है, और वह फ़्रांस को हर्जाना दे सकने की शक्ति रखते हुए भी इसलिये यह ढोंग रच रहा है कि किसी तरह हर्जाने की रक़म कम कराने में सफल हो जाय, और फिर वह रक़म सहज ही अदा करके फिर फ़्रांस के विरुद्ध युद्ध का आयोजन करने में लग जाय। यह फ़्रांस के हृदय का भाव है। इसी भय से फ़्रांस सब कुछ अन्याय-अत्याचार करने को तैयार है। उसने हर्जाना वसूल करने के बहाने रूर पर क़ब्ज़ा किया, राइनलैंड में पैर बढ़ाए। जर्मनों का सत्याग्रह शुरू होने पर उसे व्यर्थ करने के लिये फ़्रांस ने कोई चाल उठा नहीं रक्खी। लगातार बेकारी, बेहद महँगी, सिक्के के पतन और कड़ी सज़ाओं से लाचार होकर भी जर्मन शायद सत्याग्रह न छोड़ते, मगर फ़्रांस की भेद-नीति काम कर गई। अब सुन पड़ता है, बवेरिया, सैक्सनी आदि राज्य जर्मन-साम्राज्य की आज्ञा नहीं मानते, राइनलैंड में जर्मनी से अलग प्रजा-तंत्र की घोषणा भी कर दी गई है। फ़्रांस का इसमें गहरा हाथ है। इस संबंध का संपूर्ण विवरण हमारे पाठक दैनिक-साप्ताहिक पत्रों में पढ़ ही चुके होंगे। इस समय जर्मन-साम्राज्य के लिये बड़ा कठिन समय है। शक्तिशाली फ़्रांस बदला लेने पर तुला हुआ है। अमेरिका तटस्थता दिखाते हुए भी समय-समय पर मित्रों का समर्थन करता है। उधर बोलशेविकों का और ही इरादा है। रूस का लेनिन जर्मनी में क्रांति कराकर बोलशेविक-राज्य स्थापित करने की फ़िक्र में है। जर्मनी पर यदि ये बाहरी हमले ही होते, तो भी ग़नीमत थी। उसकी भीतरी हालत भी बड़ी ख़राब हो रही है। घर में वह सम्मति नहीं देख पड़ती, जिसके बल पर जर्मन-साम्राज्य का संगठन हुआ था। कोई प्रजा-तंत्र का पक्षपाती है, तो कोई फिर से राज-तंत्र की स्थापना का उद्योग कर रहा है। बोलशेविक लोग राज्य-शासन को अपने हाथ में लेना चाहते हैं, तो व्यापारी स्वयं सर्वेसर्वाः बनने की फ़िक्र में हैं। इस आपस की खींच-तान से जर्मनी ने और भी अपनेको निर्बल बना लिया है। इसमें संदेह नहीं कि इस समय जर्मनी का जीवन ख़तरे में है। परंतु यह भी निश्चित है कि जर्मनी डूबेगा, तो अकेला नहीं। उसके पतन से इँगलैंड, फ़्रांस आदि को भी गहरा धक्का पहुँचेगा। हमारी समझ में तो जर्मनी की दुर्दशा की चरम सीमा दिखाई दे रही है (देश में मरभुखे लोग लूट-मार तक करने लगे हैं), इसके बाद वह सँभल भी सकता है। मनुष्य कुछ नहीं कर सकता। फ़्रांस उसके सर्वनाश पर तुला बैठा है, मगर सबसे बड़ी शक्ति—वह जगदीश्वर—अगर जर्मनी का विनाश नहीं चाहती, तो कुछ न होगा। हमें तो विश्वास है कि अंत को फ़्रांस नीचा देखेगा। कारण, जिस घमंड और हठ ने जर्मनी की यह हालत की है, वही फ़्रांस के सिर पर सवार है।

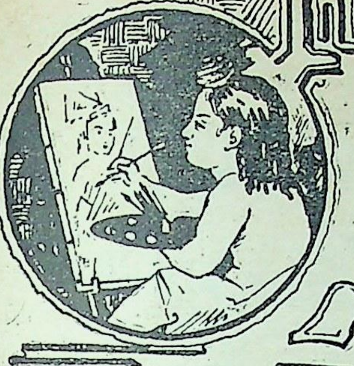
× × ×

१५. जॉन मॉर्ले की मृत्यु

जॉन मॉर्ले के नाम से समस्त राजनीतिक तथा साहित्यिक संसार पूर्णतया परिचित है। शिक्षित भारतीय नागरिक-समाज में शायद ऐसा कोई व्यक्ति न मिलेगा, जो लॉर्ड मॉर्ले के नाम से अपरिचित हो। कारण, आपका भारत से एक विशेष संबंध रहा है। आपने सन् १६०५ से १६१० ई० तक भारत-मंत्री का कार्य किया था। आपकी नीति उदार थी। आपका मंत्रित्व-काल भारत के वर्तमान अशांत काल का पूर्ववर्ती अशांत काल था। लॉर्ड कर्ज़न की दमन-नीति और बंग-विच्छेद से समस्त बंगाल का नवयुवक-समाज जग उठा था, और क्रांति की रश्मियाँ समस्त भारत में एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक अपना प्रकाश फैला चुकी थीं। इसी समय जॉन मॉर्ले ने भारत-मंत्री का पद ग्रहण किया था। भारतीय समस्याओं के प्रति आपके हृदय में यथेष्ट स्थान था। इसीलिये आप महामति गोखले के परामर्शों के अनुसार तत्कालीन लॉर्ड मिंटो को समय-समय पर सचेत करते रहते थे। लॉर्ड मिंटो और जॉन मॉर्ले ने मिलकर भारतीय सुधारों की एक स्कीम भी बनाई थी; पर भारत-सरकार उसके अनुसार कार्य करने में असमर्थ सिद्ध हुई। इसके अतिरिक्त जॉन मॉर्ले ने आयर्लैंड के

मंत्रित्व का भी कार्य, १० वर्षों तक, किया था। आयर्लैंड के पक्ष का आपने सदा समर्थन किया, और सदैव उसकी हित-कामना से प्रेरित होकर कार्य किया। सन् १९१० से १९१४ ई० तक, लगभग ५ वर्ष, लगातार आप ब्रिटिश मंत्रि-मंडल में 'लॉर्ड प्रेसिडेंट ऑफ् दि कौंसिल' की हैसियत से बैठते रहे, और अंत को योरपियन महाभारत के प्रारंभ-काल में मत-भेद के कारण मंत्रि-मंडल से पृथक् हो गए।

जॉन मॉर्ले राजनीति के कार्यों के लिये जिस भाँति प्रसिद्ध हैं, उसी भाँति अपने साहित्यिक कार्यों के लिये भी। आपका जन्म लंकाशायर के ब्लैकबर्न-स्थान में २४ दिसंबर, सन् १८३८ ई० में, हुआ था। २० वर्ष की अवस्था में, अपना अध्ययन-कार्य समाप्त कर, आपने साहित्यिक क्षेत्र में पदार्पण किया, और क्रमशः 'लिटरेरी गज़ट', 'मॉर्निंग स्टार' तथा 'फ़ॉर्टनाइट रिव्यू' आदि कई पत्रों का संपादन किया। इसके अतिरिक्त आपने स्थायी साहित्य की भी यथेष्ट सेवा की। अँगरेज़ी में आपने वाल्टेयर, रूसो, बालपोल, बर्क, क्रावडन, क्रामवेल तथा ग्लैडस्टन आदि कई महापुरुषों की सुंदर, सुविस्तृत जीवनियाँ भी लिखी हैं; जिनको अँगरेज़ी-साहित्य में एक महत्त्व-पूर्ण स्थान प्राप्त है। खेद की बात है कि गत २३ सितंबर को आपका देहांत हो गया। संसार से एक और प्रतिभावान् साहित्यिक तथा राजनीतिक उठ गया। भगवान् आपकी आत्मा को सद्गति प्रदान करें। हम आपकी सविस्तर सचित्र जीवनी आगामी संख्या में प्रकाशित करेंगे।



चित्र-चर्चा

१. रंगीन चित्र

पहला रंगीन चित्र 'मदन-दहन' है । सती के जल जाने पर शिवजी ने समाधि धारण की । इधर तारकासुर को मारने के लिये देवतों को सेनापति की ज़रूरत थी । शिव के पुत्र स्कंद के विना यह काम नहीं हो सकता था । देवतों ने सहायता के लिये कामदेव की शरण ली । पार्वती जब शिव की पूजा करने आईं, तब काम ने वार किया । शिव ने तीसरे नेत्र की आग से उसे भस्म कर दिया । उसी समय के दृश्य का यह सुंदर चित्र है । जयपुर के राजपूताना-आर्ट-स्टूडियो की कृपा से यह चित्र हमें प्राप्त हुआ है । हम इस कृपा के लिये उक्त संस्था के बहुत-बहुत कृतज्ञ हैं ।

दूसरा रंगीन चित्र 'प्रेमिका' का है । नायिका का पति स्वर्ग सिधार गया है । वह नित्य अपने जीवन-सर्वस्व की समाधि पर जाकर, पत्र-पुष्प से समाधि का श्रद्धा-सहित पूजनकर उस पर प्रेमाश्रु टपका आती है । कलकत्ते के प्रसिद्ध चित्रकार श्रीयुत देवीप्रसाद राय चौधरी ने इस-में इसी भाव का चित्रण बड़ी सुंदरता के साथ किया है । भूतपूर्व घटना से एकरस चिरप्रभावित होकर जीवन-धन की समाधि-स्थित मृत्तिका पर पुष्प चढ़ाना बहुत ही सुंदर और भावमय है । यह चित्र माधुरी पर असीम कृपा रखनेवाले बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्मा द्वारा प्राप्त हुआ है ।

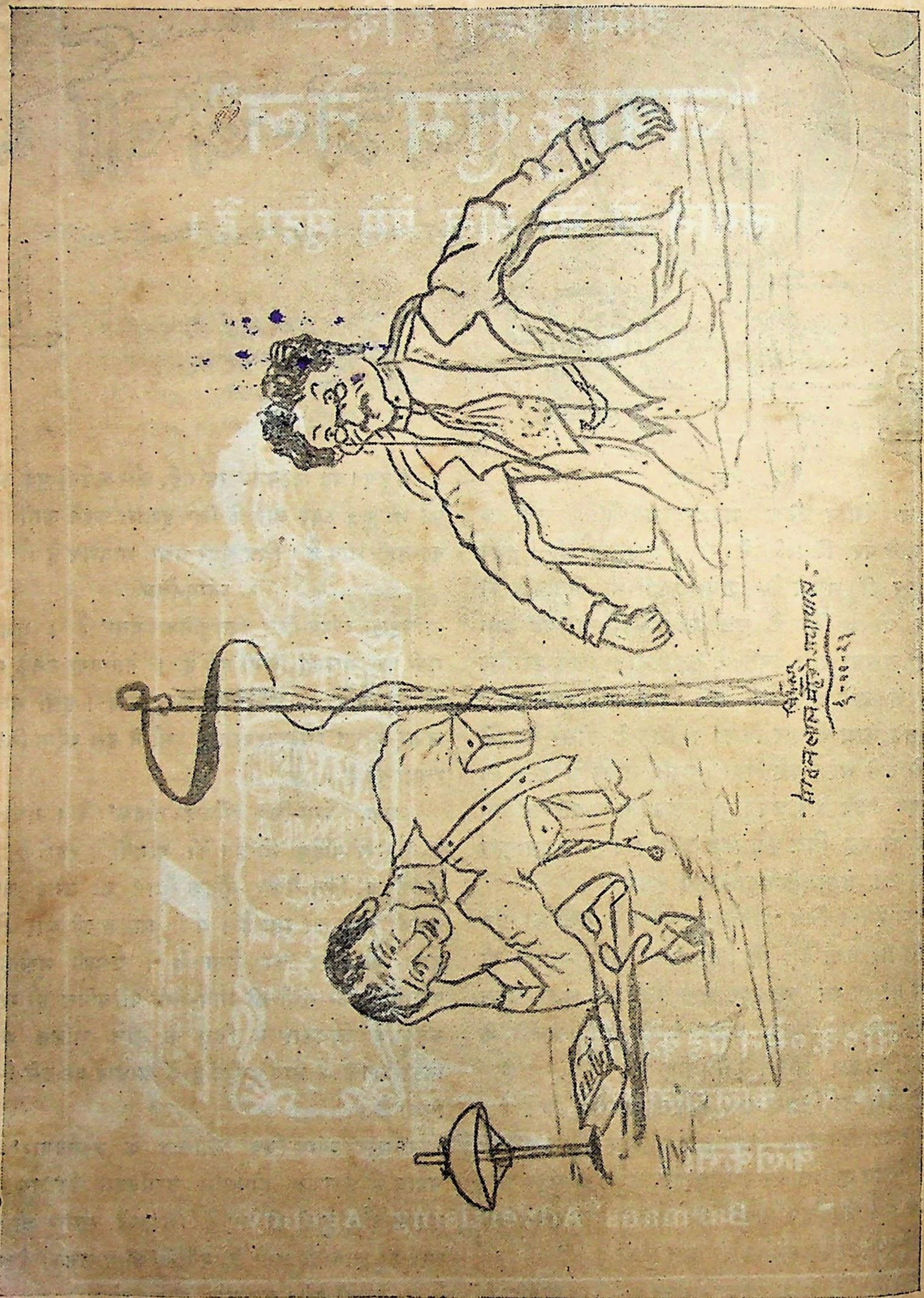
तीसरा रंगीन चित्र 'कृष्ण-दर्शन' का है । राधारानी अपनी सहेलियों के साथ कालिंदी-कूल पर जल भरने गईं । घड़ा भर लेने पर उन्हीं को पहले जल में कृष्णचंद्र के दर्शन हुए । वह ठिठककर रह गईं, और अपनी एक सहेली को भी कुछ ठहर जाने के लिये इशारा करने लगीं । चित्र का यही भाव है । चित्र सुंदर तथा भावमय है ।

२. व्यंग्य-चित्र

पहला व्यंग्य-चित्र 'आधुनिक नेता' है । गुलगुली गद्दी पर मसनदें लगी हुई हैं । नेतागण उनके सहारे बैठे हुए बैठक की कार्यवाही कर रहे हैं । इसी भाव को लेकर श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा ने इस व्यंग्य-चित्र की रचना की है ।

दूसरा व्यंग्य-चित्र 'गँवार गाँहक' है । गंधी इत्र के बेग से गाँहक को इत्र की बानगी दे रहा है, और फ़ैशनेबुल, किंतु गँवार गाँहक सूँघने की जगह चखकर उसकी परख कर रहा है । गंधी ग्राहक की ओर देखता हुआ बेग बंद कर लेता है । उसकी मूर्खता का परिचय पाकर गंधी की भाव-भंगी परिवर्तित हो गई है ! नवयुवक चित्रकार ने चित्र के नीचे अंकित कविवर विहारीलाल के भाव-पूर्ण दोहे के आधार पर इसे चित्रित किया है ।

तीसरा व्यंग्य-चित्र 'कौंसिल के उम्मेदवार' है । चुनाव में असफल होनेवाले उम्मेदवार महाशय इतने उदास और दुखी हो गए हैं कि उन्हें संसार की असा-रता का ज्ञान हो गया है, क्योंकि गीता उनकी टेबुल पर है । दूसरी ओर सफलता प्राप्त करनेवाले एम्० एल्० सी० महोदय फूले नहीं समाते ।



कौंसिल के उम्मेदवार

[चित्रकार—श्रीयुत ल महतो गयावाल]

अम्मा कहती हैं कि—

"जवाकुसुम तेल"

लगाने से मेरे बाल ऐसे सुंदर हैं।



सी॰ के॰ सेन ऐंड को॰ लि॰
नं॰ २६, कोलूटोला-स्ट्रीट,
कलकत्ता।

Barmans Advertising Agency.

१६०
१३४

Registered No. A. 1127

हिंदी-संसार में अद्वितीय आविष्कार

स्त्री-शिक्षा का भंडार, धर्म का आगार, पौराणिक तथा ऐतिहासिक उपहार

नवचरित्र

इसमें प्रातःस्मरणीय सती-साध्वी उन भारतीय ललनाओं के जीवन-चरित्र हैं, जिनके पढ़ने तथा सुनने से हृदय पवित्र हो जाता है। बड़े-बड़े धार्मिक ग्रंथों की धार्मिक तथा पातिव्रत-धर्म की शिक्षाओं से कहीं अधिक शिक्षा-प्रद इसकी शिक्षाएँ हैं। सुंदर-सुंदर रोचक उपन्यासों से बढ़-चढ़कर इस ग्रंथ की रोचक लेखन-शैली है। इस पुस्तक को प्रारंभ करने पर विना आद्योपांत (पूरी) पढ़े हुए छोड़ना ही असंभव है—

इसमें निम्न-लिखित दृढ़प्रतिज्ञ, पतिपरायणा, वीर विदुषियों का सविस्तृत जीवन-चरित्र है—

शकुंतला	नल दमयंती	सती सावित्री
कादंबरी	रत्नावली	महारानी शैव्या
मालतीमाधव	चञ्चलकुमारी	सती विमला

ऐसे आदर्श नव चरित्रों का मूल्य डाकव्यय सहित १॥) मात्र है।

हँसाने में अद्वितीय



हँसोड़

हँसाते-हँसाते लोट-पोट कर देनेवाली कहानियों का संग्रह। मूल्य ॥)

प्रसिद्ध पौराणिक आख्यान

देवयानी और शर्मिष्ठा

महर्षि शुक्राचार्यजी की माननीय कन्या का असुरराज वृषपर्वा की कन्या से वैमनस्य होना और उसका परिणाम तथा जिस कठोरतर कठोर परिश्रम से महर्षि बृहस्पति के पुत्र कच ने संजीवनी विद्या का अध्ययन किया था, उसका रोमांचकारी दृश्य इसी में देखने को मिलता है। मूल्य ।=)

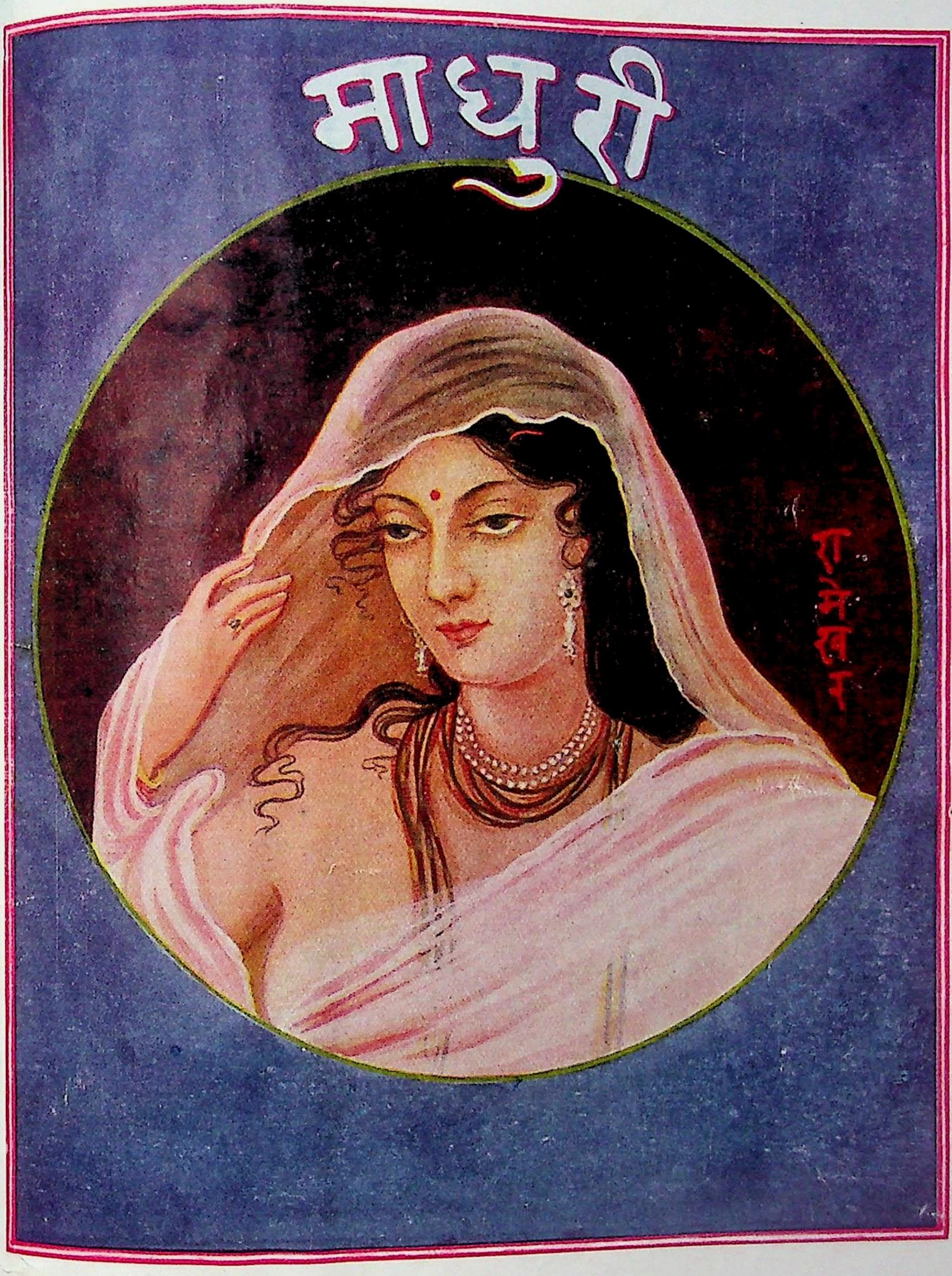
मयंकबाला

इस उपन्यास में भाग्य-चक्र का ऐसा परिवर्तन दिखलाया गया है कि आश्चर्य करना पड़ता है। प्रेम का सच्चा परिणाम भी इसी के पढ़ने से ज्ञात होता है। मूल्य ॥)

६ २६ मँगाने का पता—हिमालय डिपो, मुरादाबाद।

Printed and Published by K. D. Seth, at the Nawal Kishore Press, Lucknow.

वर्ष २ ; खंड १] मार्गशीर्ष, ३०० तुलसी-संवत [संख्या ५ ; पूर्ण संख्या १७



संपादक—
श्रीदुलारेलाल भार्गव
श्रीरूपनारायण पांडेय

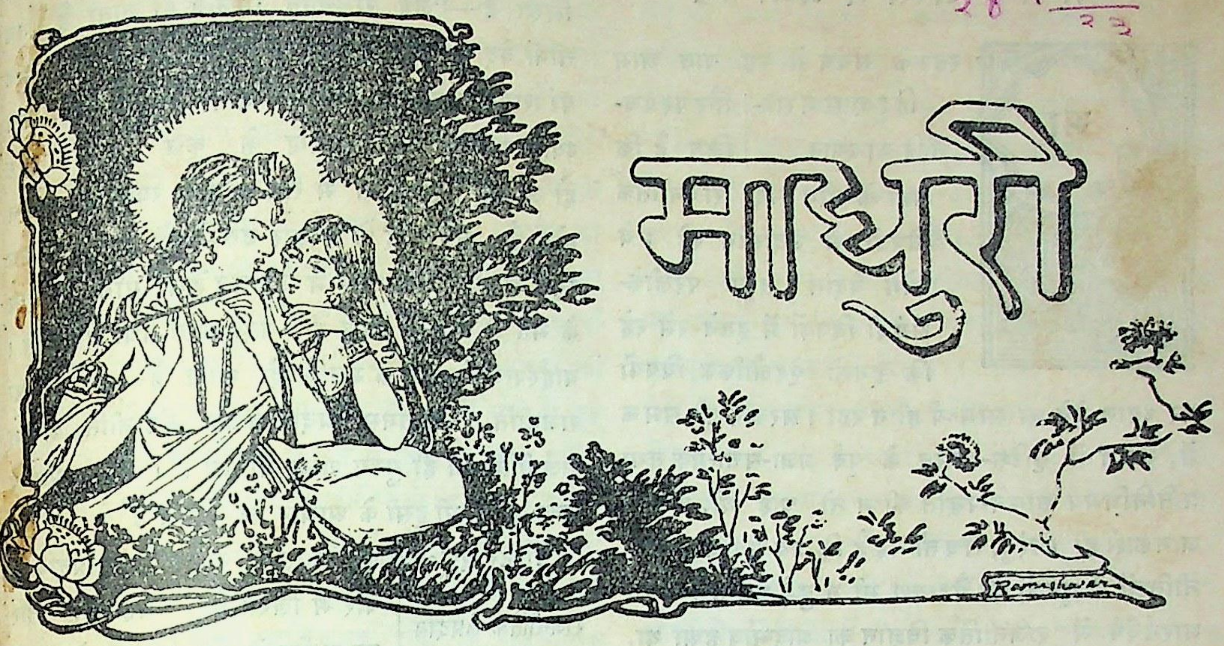
छमाही मूल्य ३।।)
वार्षिक मूल्य ६।।)

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ से छपकर प्रकाशित

लेख-सूची

चित्र-सूची

(क) रंगीन



[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, तिय-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह साहित-माधुरी नव-रस-मयी अनन्य !

वर्ष २ खंड १ — मार्गशीर्ष-शुक्ल ७, ३०० तुलसी-संवत् (१९८० वि०)— १४ दिसंबर, १९२३ ई० — संख्या ५ पूर्ण संख्या १७

अव्यवस्थित

विश्व के नीरव निर्जन में ।
जब करता हूँ बेकल, चंचल,
मानस को कुछ शांत,
होती है कुछ ऐसी हलचल,
तब होता है भ्रांत ;
भटकता है भ्रम के वन में ,
विश्व के कुसुमित कानन में ।
जब लेता हूँ आभारी हो,
वल्लरियों से दान ,
कलियों की माला बन जाती ,
अलियों का हो गान ;
विकलता बढ़ती हिम-कन में ,
विश्वपति, तेरे आँगन में ।
जब करता हूँ कभी प्रार्थना,
कर संकलित विचार ,
तभी कामना के कंकण की,
हो जाती झनकार ;
चमत्कृत होता हूँ मन में,
विश्व के नीरव निर्जन में ।

जयशंकर 'प्रसाद'

प्राचीन भारत में प्रजा-तंत्र

हिंदू-शास्त्र में राजनीति का स्थान

भारत के संबंध में यह बात आम तौर पर प्रचलित है कि यहाँ के लोग सदा राजनीतिक विषयों से उदासीन रहे। ये लोग वेदांत तथा परलोक-संबंधी विषयों में इतने रमे रहे कि इनको ऐहलौकिक विषयों पर ध्यान देने का सामर्थ्य ही न रहा। सरकार की समझ में, भारत में बृटिश-शासन के पूर्व प्रजा-सत्तात्मक तथा प्रतिनिधिमय शासन-पद्धति की न तो चाह थी, और न जानकारी ही[1]। परंतु, सच तो यह है कि जब अर्वाचीन राजनीतिज्ञों के पूर्वजों की पैदायश भी न हुई थी, उस समय भारतवर्ष में राजनीतिक विज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ था, और उस समय के लोग राजनीतिक संप्रदाय तथा राजकीय संस्थाओं से भली भाँति परिचित थे। अरस्तू[2] पाश्चात्य राजनीतिक विज्ञान का जन्म-दाता समझा जाता है, और उसके जन्म के सदियों पहले इस देश में राजनीति पर वैज्ञानिक रूप से विचार प्रकट किए जाते थे। हिंदू-शास्त्र में राजनीति का एक उच्च स्थान है। कौटिल्य ने उच्चतम स्थान राजनीतिक विज्ञान को ही दिया है। इसमें वार्ता तथा दंडनीति भी सम्मिलित है। चाणक्य ने कहा है कि आन्वीक्षिकी (Philosophy), त्रयी (Vedas), वार्ता (Econom cs), और दंडनीति (Science of Government), ये ही चार शास्त्र हैं[3]। महाभारत, कामंदकीय तथा शुक्रनीति में इसी वर्गीकरण को माना गया है। महाभारत[4] तथा शुक्रनीति[5] में राजनीति को प्रधान स्थान मिला है। महाभारत में लिखा है—"जब राजनीति निर्जीव हो जाती है, तब तीनों वेद डूब जाते हैं, कुल-धर्म लुप्त हो जाते हैं। जब परंपरागत राजनीतिक आचार छोड़ दिए जाते हैं, तब व्यक्तित्व-जीवन के पृथक्करण के कुल आधार नष्ट हो जाते हैं। राजनीति में सब तरह के त्याग का साधन होता है; सब तरह के संस्कार उसमें जुटे हुए हैं; सब स्वर्ग राजनीतिक आचार में एकत्रित हैं।[1] मानव संप्रदाय के मत से तीन ही शास्त्र हैं—वेद, वार्ता तथा राजनीति। बार्हस्पत्य संप्रदाय के मत से दो शास्त्र हैं—वार्ता तथा राजनीति। औशनस संप्रदाय केवल दंड-नीति, अर्थात् राजनीति, को ही मुख्य शास्त्र मानता है। इसके मत से अन्य शास्त्र भी इसी के आधार पर स्थित हैं[2]।

राजनीतिक संप्रदाय

डॉक्टर एफ़० डब्लू० टामस ने राजनीतिक संप्रदाय के बारे में लिखा है—"यह साफ़ तौर पर ज़ाहिर है कि क्राइस्ट के पहले चौथी और पाँचवीं सदी में राजनीति सर्वमान्य विषय समझी जाती थी। मानव, बार्हस्पत्य, औशनस, आंभीय तथा पाराशर इसके संप्रदाय थे[3]।

कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र में इन संप्रदायों के सिद्धांतों का ज़िक्र आया है। इन सिद्धांतों का मिलान कौटिल्य ने अपने सिद्धांतों से किया है। फिर इनके सिद्धांतों को लेकर मनु, व्यास, शुक्र, याज्ञवल्क्य, कामंदक,

---

१. The Rowlatt "Sedition Committee" Report G. of I. Published 1918 Oct.: "Republican or Parliamentary forms of Government were neither desired nor known in India till after the British Rule.

२. अरस्तू का समकालीन चाणक्य है। (*Vide* Public Administration of Ancient India p. 10).

३. See Note 1 at page 1—Public Administration in Ancient India by Dr. P. Banerji.

४. Mahabharat. S. P. 63-29.

५. Sukraniti ch. I. sl. 8-13.

---

१. "The triple Vedas sink down and all the Dharmas (bases of civilization) however developed, competely decay when politics become lifeless. When traditional State-Ethics are departed from, all the bases of the division of individual life are destroyed.

"All the forms of renunciation are realised in Politics; all the forms of sacraments are united in Politics; all the Heavens are concentrated in the Ethics of State"—Mahabbharat Shanti Parva 63-28-29—An introduction to Hindu Polity—by Mr. K.P. Jayaswal, Modern Review, May, 1913 p. 5-35.

२, Note 1 at p. 1 of Public Administration in Ancient India.

३, A Brihaspati Sutra, Le-Museon, Mars 1916. I am indebted to "Republican Tradition in Indian Polity for the reference published in Modern Review in January 1920 by Mr. Mukundi Lal

सोमदेव, नीलकंठ तथा अन्यान्य मध्य-काल के राज-नीतिज्ञों ने भी, समर्थ रामदासजी के पूर्व तक, प्रचार किया। उन्हीं के आधार पर वीर-केसरी महाराज शिवाजी तथा पेशवाओं ने संस्थाएँ स्थापित कीं[1], और सोमदेव ने नीति-वाक्यामृत की रचना की । कामंदकीय नीति की रचना ईसा की तीसरी अथवा चौथी सदी में हुई । सोमदेव की रचना ईसा की दसवीं सदी में हुई । शुक्र-नीति की रचना भी इसी काल में हुई थी । भोज ने ईसा की ११वीं अथवा १२वीं सदी में युक्ति-कल्पतरु की रचना की थी । नीति-मयूख की रचना ईसा की १७वीं सदी में हुई थी । नीति-प्रकाशिका के बारे में कुछ मालूम नहीं । आईन-इ-अकबरी में हिंदू-राजनीति तथा व्यवहार के बारे में संक्षेप से लिखा है । हस्त-लिखित 'चाणक्य-सूत्र' मदरास की ओरियंटल-मैनसक्रूप्ट-लाइब्रेरी में पाई गई है[2] । भारतवर्ष के दाक्षिणात्य राष्ट्रों में राजनीतिक विचार-प्रवाह अठारहवीं सदी तक जारी रहा । इन तुल-नात्मक अर्वाचीन राजनीतिक ग्रंथों से कुछ खोजकर निकाला गया है[3] ।

राजनीतिक सिद्धांत

हमारे शास्त्रकारों ने सामाजिक समझौते के सिद्धांत का प्रतिपादन किया है । उन्होंने इस बात को माना है कि एक समय अराजकता (Anarchy) स्थापित थी, जब इस संसार के लोग चारों तरफ़ के डर से थर-थराते थे[4] । महाभारत में लिखा है—"पहले न कोई राजा था, न कोई राज्य ; न क़ानून था, न व्यवस्थापक । इसलिये लोगों ने मिलकर यह समझौता किया कि लड़ाके, फ़सादी, व्यभिचारी और चोर को जाति तथा क़ानून की रक्षा के बाहर कर दिया जाय[5] ।" कहा जाता है कि लोग सामाजिक समझौते से राज़ी नहीं हुए ; बल्कि उन लोगों ने राजनीतिक समझौता कर लिया, और मनु को राजा बनाया । समझौता एकतरफ़ा न था, बल्कि दोनों तरफ़ से था । राजा को कर देना प्रजा का फ़र्ज़ हुआ, और प्रजा का पालन करना राजा का कर्तव्य[1] ।

वेतन-सिद्धांत के अनुसार राजा को मज़दूरी कर-रूप में मिलती थी । प्रजागण कहते थे—हम आपका जुर्माना, ज़ब्ती, कर इत्यादि वेतन रूप में देते हैं (Mbh. S.P.61,10) । राजा यद्यपि प्रकट में स्वामी होता था, परंतु असल में वह जनता का सेवक ही रहता था । लोग उसकी मज़दूरी कर के रूप में देते थे । और, वे कर इसलिये देते थे कि राजा उनकी हिफ़ाज़त हर हालत में किया करे (Sukraniti I. 88) । वितर्कसी-सिद्धांत के अनुसार राजा राष्ट्र का एक ट्रस्टी समझा जाता था । यदि राजा ट्रस्ट के काम को अच्छी तरह न कर सकता, तो लोग उसको फटे हुए जहाज़ की तरह छोड़ भागते थे । (Mbh. S.P.5—7,43) । चुनाव-सिद्धांत के अनुसार लोग अपनेमें से एक को चुनकर राजा बना लेते थे (Atharva Veda III. 4. 5) ।

राज्य के लिये नीचे लिखी चीज़ों का होना आवश्यक था—(१) राजा, (२) मंत्रीगण, (३) जनता अथवा देश, (४) क़िला अथवा राजधानी, (५) ख़ज़ाना, (६) सेना और (७) मित्र-राष्ट्र । राष्ट्र का प्रधान कर्तव्य यह था कि वह धनोपार्जन कर ग़रीबों को बाँट दे । प्रजा के हितार्थ कर लगाए जाते थे । राष्ट्र ही खानों और कारख़ानों का मालिक बन सकता था ; क्योंकि वाणिज्य तथा व्यापार द्वारा समाज का धारण होता है, और राष्ट्र समाज के हित के लिये होता है[2] ।

वैदिक ग्रंथों का प्रमाण

डॉक्टर एफ़० डब्लू० टामस ने लिखा है कि वैदिक ग्रंथों से यह साबित होता है कि बहुत-से राजा (**राजानः**) मिल-कर एकसाथ राज्य करते थे[3] । प्रोफ़ेसर रमेशचंद्र मजूमदार ने भी लिखा है—"ज़िम्मर साहब ने इस बात

१ Republican Tradition in Indian Polity p. 13.

२. Public Administration in Ancient India. Ch. I Introductory pp. 11-13

३. Republican Tradition in Indian Polity p. 13.

४. Mannu VII. 3. (Taken from Republican Tradition in Indian Polity.)

५. Mahabharat XII 65,67,17 ff (Taken from Republican Tradition in Indian Polity.)

१. E. W. Hopkins, J. A. O-S. XIII. Artha Sastra Text Bk. I. Ch. 13 p. 22-23. The quotation has been taken from Republican Tradition in Indian Polity.

२. Republican Tradition in Indian Polity p. 15.

३. "The Vedas afford evidence of tribes in which authority was exercised by a family or even by a whole body of nobles who were actually designated kings [rajanah] (Zimmer Alt. Leb. 166-7).

को ऋग्वेद से साबित किया है कि कहीं-कहीं ऐसी शासन-प्रणाली थी कि बहुत-से राजा मिलकर एकसाथ शासन करते थे[1]।" इन्हीं महाशय ने लिखा है कि अथर्व-वेद (५-१८-१०) से भी यह बात पूर्णतया प्रमाणित होती है कि एक हज़ार 'वैतहव्य' मिलकर शासन करते थे[2]। मिस्टर काशीप्रसाद जायसवाल ने लिखा है कि वैदिक काल में हिंदू-समाज 'जनाः' (tribes) में विभक्त थी। जनाः के सदस्य 'विशः' कहलाते थे। कुल विशः 'समिति' में एकसाथ बैठकर राजनीतिक विषयों पर विचार करते थे। समिति के अलावा एक 'सभा' भी होती थी। वह समिति से छोटी होती थी। बहुत-से जनाः जब मिलकर काम करते थे, तब वे 'पंचजनाः' कहलाते थे। कुल जनाः अपनेको एक जाति के मानते और 'आर्याः' कहलाते थे। अब भी कहावत मशहूर है कि "पाँच जने मिलि कीजै काज ; हारे-जीते न आवै लाज।" हिंदुओं की पंचायत वैदिक पंचजनाः का स्मारक है[3]। गुजरात के यादवों का प्रजा-सत्तात्मक शासन बहुत प्राचीन है। वे इसको स्वारत अथवा स्वराज्य कहते थे[4]। ऐतरेय-ब्राह्मण में (७-३-१४) भोज तथा स्वारत राज-संस्थाओं का ज़िक्र आया है। उसमें यह भी लिखा है कि उत्तर-कुरु तथा उत्तर-मदरास में वैराज्य-संस्थाएँ जारी थीं। वहाँ सब लोग मिलकर एक-साथ राज्य करते थे[1]।

बौद्ध तथा जैन-ग्रंथों का प्रमाण

प्रोफ़ेसर रीज़ डेविड्स ने लिखा है कि बौद्ध ग्रंथों से इस बात का पता लगता है कि गौतम-बुद्ध के समय भारतवर्ष में निम्न-लिखित प्रजा-सत्तात्मक राष्ट्र स्थापित थे[2]—

१—कपिलवस्तु के शाक्य,
२—सुमसार पर्वत के भग्ग,
३—अलाकप्प के बालि,
४—केशपुट के कालामस,
५—रामगाम के कलिंग,
६—कुसिनार के मल्ल,
७—पावा के मल्ल,
८—पिपहालिवावा के मोरिया,
९—मिथिला के विदेह,
१०—वैशाली के लिच्छवी।

प्रोफ़ेसर मजूमदार ने जैन-कल्पसूत्र के आधार पर कहा है कि इसी नामावली में काशी के मल्लों को भी जोड़ देना चाहिए[3]। प्रोफ़ेसर रीज़ डेविड्स ने लिखा है कि 'वैजियन' में आठ राष्ट्र शामिल थे। उनमें परस्पर संधि थी। उनमें लिच्छवी तथा विदेह अधिक महत्त्व के थे[4]। लिच्छवियों, शाक्यों तथा मल्लों की संस्थाएँ गोरखपुर, बस्ती और मुज़फ़्फ़रपुर-ज़िलों के उत्तर तरफ़

१. "Zimmer finds clear traces of the oligarchical (non-monarchical) form of Government in the following verse in Rig-Veda:—'As the kings (rajanah) assemble together in him who is called a physician, one who heals disease and destroys demon'—X—91 6. Zimmer thinks that this refers to a system of Government in which the State is not ruled over by a single potentate but several members of the royal family jointly together"—Ch. V. Corporate Life in Ancient India by Romesh Chandra Mozumdar.

२. "ये सहस्रं अराजन्नासन् दशशता उत ।
ते ब्राह्मणस्य गां जग्धा वैतहव्यापराभवन् ।"

Translation by Whitvey. Zimmer and Muir show that Vaitahvyas thousand in number ruled over a territory—Corporate Life in Ancient India pp 84-90.

३. An Introduction to Hindu Polity by Mr. K. P. Jayaswal—Modern Review, May, 1913. p. 536.

४. "Krishna was one of their leaders. It is curious to notice that one of the reasons for the objection of Sisupala to Krishnas presence amongst an assembly of crowned heads was that he was not a 'king.' The story probably preserves an instance of kingly hatred towards the free communities in the classical age of Hindu India. An Introduction to Hindu Polity, p. 538.

१. An Introduction to Hindu Polity p. 538 Read also, The ganas or Republics of Ancient India Modern Review, March 1920 p. 263.

२. Buddhist India by Rhys Davids p. 22.

३. Corporate Life in Ancient India p. 91.

४. Buddhist India pp. 25-26.

फैली हुई थीं[1]। इन संस्थाओं की पूरी व्यवस्था हम लोगों को मालूम नहीं है[2]। हाँ, इतना ज़रूर कहा जा सकता है कि इनमें प्रजा-तंत्र के गुण और दोष, दोनों मौजूद थे। एक सभा थी, जिसमें बूढ़े और जवान एक जगह मिलकर क़ानून बनाते और आवश्यकता के अनुसार उसमें उलट-फेर करते थे। परंतु इनमें एक-राज्य की तरह पाएदारी न थी। ये आपस की फूट और एकबारगी सुधार करने की इच्छा के शिकार बन सकते थे[3]।

शाक्यों के बारे में प्रोफ़ेसर रीज़ डेविड्स ने लिखा है[4]। वाटर्स ने इनके मत का विरोध किया है। कहा है, कपिलवस्तु का प्रदेश कोशल-राज्य के अंतर्गत था, इसलिये कपिलवस्तु कोई जुदा राज्य न था। प्रोफ़ेसर मज़ूमदार ने वाटर्स के मत का खंडन किया है। उनका ख़याल है कि शाक्य-देश कोशल के बाहर था। प्रोफ़ेसर रीज़ डेविड्स के मत का खंडन प्रोफ़ेसर डी० आर० भांडारकर ने भी किया है। उन्होंने लिखा है कि शाक्यों में वंश-परंपरागत राज्य की व्यवस्था थी। प्रोफ़ेसर मज़ूमदार की राय में यह मत ठीक नहीं। उन्होंने कहा है कि शाक्यों की शासन-व्यवस्था प्रायः लिच्छवियों की-सी थी। लिच्छवियों की तरह उनके भी कई राजा होते थे। वे उस प्रधान सभा के सदस्य रहते थे, जो राज्य पर शासन करती थी[5]। प्रोफ़ेसर रीज़ डेविड्स के मतानुसार, कपिलवस्तु के संथागार (Common Mote Hall) में बैठकर बूढ़े और जवान खुली सभा में शासन और न्याय-विभाग के कार्यों का संपादन करते थे। एक सरदार, सभापति की हैसियत से, चुना जाता था। उसी के नेतृत्व में सभा का अधिवेशन होता था। उन लोगों को राजा की उपाधि मिलती थी, जो रोमन 'कौंसल' अथवा यूनानी **'अरकान'** की तरह शासन करते थे[6]।

गौतम-बुद्ध के पिता इसी अर्थ में राजा थे; अर्थात् वह सभापति थे। मनुष्य-मात्र के प्राचीन इतिहास में शाक्यों से बढ़कर, विश्व की सभ्यता पर प्रभाव डालनेवाला, दूसरा प्रजा-सत्तात्मक राष्ट्र नहीं देख पड़ता[1]।

लिच्छवियों की शासन-व्यवस्था के बारे में प्रोफ़ेसर मज़ूमदार ने लिखा है कि समग्र राष्ट्र बहुत-सी शासन-कर्त्री सभाओं में विभक्त था। हरएक सभा एक छोटा-सा राज्य थी। वैशाली में हमको एथेंस की नगर-संस्थाओं का एक नमूना मिलता है। एथेंस में भी एक केंद्रिक सभा होती थी, और उसमें छोटी-छोटी स्थानीय सभाएँ—डीम्ज़—प्रतिनिधि भेजकर कार्य-संपादन करती थीं[2]। न्याय करने की ऐसी व्यवस्था थी कि जिसकी जोड़ दुनिया-भर में नहीं मिल सकती। अपराधी को तब तक सज़ा नहीं हो सकती थी, जब तक सात अदालतें क्रमशः उसको अपराधी न पावें। प्रथम छः अदालतों को सज़ा देने का अधिकार नहीं होता था। परंतु उनमें हरएक को रिहा करने का अधिकार था। सज़ा देने का अधिकार केवल आख़री अदालत को रहता था[3]। दिहातों की शासनकर्त्री सभा में पुरुष तथा स्त्री, दोनों मिलकर कार्य करते थे। जनता के हितार्थ जो काम किया जाता था, उसमें देवियाँ पूर्ण रूप से भाग लेती थीं। उद्यान-निर्माण और सभा-मंडप, सराय, पानी के ख़ज़ाने, सड़क इत्यादि के बनाने अथवा मरम्मत करने के कार्य को स्त्री और पुरुष मिलकर, एकसाथ एक ही सभा में बैठकर, पूरा करते थे[4]।

मिस्टर काशीप्रसाद जायसवाल के मत से गौतम-बुद्ध ने अपने धार्मिक संघ की कल्पना राजनीतिक संघ की नक़ल पर की है। उनके मत से बौद्ध-संघ की विचार-संबंधी कार्यवाही ठीक उसी तरह होती थी, जिस तरह राजनीतिक संघ में; जो कि बौद्ध-संघ का जन्मदाता था[5]। परंतु यह मत प्रोफ़ेसर मज़ूमदार को मान्य नहीं

१. An Introduction to Hindu Polity-Modern Review, May, (1913 p. 539.)

२. The Ganas or Republics in Ancient India. p. 265 M. R. March, 1920 p. 265

३. Corporate Life in Ancient India p. 92.

४. Buddhist India p. 19.

५. Corporate Life in Ancient India p. 98.

६. Buddhist India p. 19.

१. The Ganas or Republics of Ancient India p. 265.

२. Corporate Life in Ancient India p. 94.

३. Buddhist India p. 22. See also Corporate Life in Ancient India.

४. The Ganas or Republics of Ancient India p. 266 ; also Buddhist India p. 49.

५. "We may safely accept the procedure followed the deliberations of the Buddhist Saingha as

है । उनके मत में, गौतम-बुद्ध ने केवल राजनीतिक संघ की नक़ल ही नहीं की, बल्कि स्वाधीन रूप से समूची कार्य-कारिणी व्यवस्था का निर्माण किया है[1] ।

यूनानी लेखकों का प्रमाण

यूनानी लेखकों के प्रमाण से यह बात पूर्णतया सिद्ध हो जाती है कि सिकंदर के आक्रमण से पहले और पीछे पंजाब, सिंध और मालवे में प्रजा-सत्तात्मक शासन-प्रणाली जारी थी । यूनानी लोग 'अराजक राष्ट्र' तथा 'प्रजा-सत्तात्मक शासन-पद्धति' से ख़ूब परिचित थे । इनकी साक्षी से संस्कृत तथा प्राकृत(बौद्ध)-ग्रंथों, सिक्कों तथा शिला-लेखों के प्रमाण को पूरा ज़ोर मिलता है । मिस्टर फ़िक (Fick) ने लिखा है कि मेगास्थिनीज़ के समय भारतवर्ष में कोई प्रजा-सत्तात्मक राज्य न था। परंतु उनका मत प्रोफ़ेसर मजूमदार को मान्य नहीं । कारण, मिस्टर फ़िक ने अपने मत की पुष्टि के लिये कोई भी प्रमाण पेश नहीं किया[2] । मेगास्थिनीज़ एक यूनानी एलची था । वह चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में कुछ दिनों तक रहा था । उसने (फ़्रैगमेंट ६ में) लिखा है कि डायोनोसस के ज़माने से लेकर सैंड्रोकोटस (चंद्रगुप्त) के ज़माने तक, ६०४२ साल के अंदर, मगध में ४५३ राजों ने राज्य किया, और इस बीच में तीन दफ़े अराजक राष्ट्र की स्थापना हुई । उसने अपने समय के प्रजा-सत्तात्मक शासन के कुछ नमूनों का ज़िक्र किया है। मैल्टिकोरी (Malticorae), सिंघी (Singhae), मैरोही (Marohae), बैसींगी (Baseingae) और मैरानी (Marani) के बारे में उसने लिखा है कि वे स्वाधीन थे, उनमें कोई राजा न था, और पहाड़ों पर उन्होंने बहुत-से नगर बसाए थे। प्रोफ़ेसर डॉपकिन ने लिखा है कि मेगास्थिनीज़ का मतलब साफ़ यह जतलाने का था कि ये नगर स्वाधीन थे ; ये उन नगरों से जुदा थे, जिन पर राजों का आधिपत्य होता था[1] । यही मत सर्व-मान्य है ।

एरियन (Arrian) ने लिखा है कि अबैसटोनोआइ (Abastonoi), कैथरोआइ (Kathroi) तथा अरिहिटाइ (Arihitai)-जातियाँ बिलकुल स्वाधीन थीं । इन जातियों में कोई राजा न होता था । उसने नेसियन (Nasian) के बारे में लिखा है कि प्रधान जन मिलकर एक सभापति द्वारा शासन-कार्य चलाते थे । मैलोआइ (Maloi) की तरफ़ इशारा किया है कि यह स्वाधीन भारतीयों की एक जाति है । ऑक्सीड्रेकाइ (Oxydraki) के बारे में लिखा है कि वे आज़ादी के उपासक थे, और सिकंदर के हमले तक अपनी स्वाधीनता बचाए रहे[2] ।

कर्टियस (Curtius) ने लिखा है कि ऑक्सीड्रेकाइ एक स्वाधीन जाति है । सैबरकी (Sabarcae) के बारे में लिखा है कि वह एक शक्तिशाली भारतीय जाति थी । उसकी शासन-पद्धति प्रजा-सत्तात्मक थी, राजकीय नहीं। सेड्रोसीआइ (Cedrosii) के बारे में उसने लिखा है कि वह आज़ाद क़ौम थी[3] । डायोडोरस (Diodorus) ने संबसटाइ (Sambastar) के बारे में लिखा है कि वे नगरों में रहते थे, और उनकी शासन-प्रणाली प्रजा-सत्तात्मक थी । पाटल (Patala) के नगर-राष्ट्र की उसने स्पार्टा (Sparta) से तुलना की है । इस जाति का यह नियम था कि युद्ध के समय भिन्न-भिन्न घरानों के, वंश-परंपरागत, दो राजों के नेतृत्व में सेना रहती थी। बूढ़े लोगों की एक पंचायत राज्य पर, पूरे अधिकार के साथ, शासन करती थी[4] । इसने ब्राह्मणों की स्वाधीन संस्था के बारे में भी लिखा है[5] । सिकंदर को मैलोआइ,

---

identical with that observed by its parent the political Saingha in its main features."—Modern Review 1913, pp 664 ff.

१. "That the Buddha was constructing a whole system of procedure and not merely copying it from that of a political State."—Corporate Life in Ancient India p. 110.

२. Corporate Life in Ancient India. Also Republican Tradition in Indian Polity.

१. J. A. O. S. XIII p 136.

२. Mc-Crindle, "Anicent India pp. A I.,--E G; G;—G —A.G. and O,C;O: pp. 79-81,149; 154—156, 167 and 350-1. I have taken the reference from Republican Tradition in Indian Polity.

३. Ibid pp. 167-9. 262.

४. Mc-Crindle's Invasion of India by Alexender (Ed. 1896) p. 296.

५. For Numismatic Evidence in Brahmin Republic, See Post (this Essay) p. 19.

कैथेवाइ तथा ऑक्सीड्रैकाइ से बड़ा कड़ा मुक़ाबला करना पड़ा था[1]।

संस्कृत-ग्रंथों में 'गण' तथा 'संघ'-शब्दों का व्यवहार प्रजा-सत्तात्मक राज्य के अर्थ में पाया जाता है। मिस्टर जायसवाल के मत से प्रजा-सत्तात्मक शासन-पद्धति को जताने के लिये पहले 'संघ'-शब्द का व्यवहार किया जाता था; परंतु जब बौद्धों ने इस शब्द का, मज़हबी संघ के अर्थ में, व्यवहार करना शुरू कर दिया, तब संस्कृत में 'गण'-शब्द का व्यवहार राजनीतिक संघ के अर्थ में किया जाने लगा। उनके मतानुसार, 'गण'-शब्द का व्यवहार प्रजा-सत्तात्मक राज्य के अर्थ में पीछे से हुआ; पहले इस अर्थ में 'संघ'-शब्द का ही प्रयोग किया जाता था। कौटिल्य ने "अर्थ-शास्त्र" में 'संघ'-शब्द का प्रयोग प्रजा-सत्तात्मक राज्य के अर्थ में किया है। उन्होंने लिखा है कि दो क़िस्म के संघ होते थे—

संस्कृत-ग्रंथों का प्रमाण

१. वार्ताशस्त्रोपजीविनः—वे, जो उद्योग तथा शस्त्र द्वारा जीविका चलाते थे।

२. राजशब्दोपजीविनः—वे, जो राजा कहलाने का अधिकार जताते थे।

पाणिनि ने भी इसी अर्थ में 'संघ'-शब्द का व्यवहार किया है (V. 3. 114)। काशिक तथा पतंजलि (4. 1. 14) ने 'संघ'-शब्द का प्रयोग प्रजा-सत्तात्मक राज्य के अर्थ में किया है।

यह विदित है कि जब 'संघ'-शब्द का व्यवहार भिक्षु-संघ के अर्थ में विस्तृत रूप से होने लगा, तब 'गण'-शब्द, जिससे पाणिनि भी परिचित थे, केवल राजनीतिक संघ के अर्थ में व्यवहृत होने लगा; जैसा कि महाभारत, स्मृति, तथा सिक्कों से ज़ाहिर होता है[2]। प्रोफ़ेसर मजूमदार के मत से महाभारत का वह अध्याय (Shanti Parva, 107), जिसमें गण का ज़िक्र आया है, अर्थ-शास्त्र के उस अध्याय के बाद का है, जिसमें संघ का वर्णन किया गया है। प्रोफ़ेसर मजूमदार के मत से पहले 'संघ'-शब्द का व्यवहार हर तरह की संगठित मंडली अथवा समाज के अर्थ में किया जाता था। बाद को बौद्ध लोगों ने इस शब्द को मज़हबी संघ के अर्थ में अपना लिया। तब 'गण'-शब्द का उपयोग मौर्य-काल के परवर्ती राजनीतिक संघों के लिये होने लगा। इससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि महाभारत का गण-संबंधी अध्याय अर्थ-शास्त्र के संघ-संबंधी अध्याय के बाद का है[1]।

मिस्टर मुकुंदीलाल ने लिखा है कि मिस्टर काशी-प्रसाद जायसवाल का मत ज़ाहिरा बहुत ठीक मालूम पड़ता है; परंतु इसका कोई भी काफ़ी सबूत नहीं है कि ब्राह्मणों ने 'संघ'-शब्द का पूरा बहिष्कार इसलिये किया कि वह शब्द बौद्धों ने अपने धार्मिक संघ के अर्थ में अपना लिया था। बौद्ध-काल के बहुत पहले पाणिनि ने 'गण'-शब्द का व्यवहार किया है[2]। 'संघ'-शब्द का व्यवहार ब्राह्मणों ने बौद्धों द्वारा इस शब्द का प्रयोग होने के बाद भी किया है। महाभारत में इसका प्रमाण मिलता है (Shanti Parva, 107, 3970, 71, 88)। मल्लिनाथ ने याज्ञवल्क्य पर भाष्य लिखते हुए 'संघ'-शब्द का व्यवहार किया है[3] (Ch. 8 sl. 219—20)।

मिस्टर काशीप्रसाद जायसवाल ने यह नहीं कहा कि पंडितों ने 'संघ'-शब्द का बहिष्कार किया है, इस कारण उसके लिये प्रमाण ढूँढ़ना न्याय-संगत नहीं। पंडितों को जिस तरह बौद्ध-संघ से घृणा थी, उसी तरह वे प्रजा-सत्तात्मक संस्थाओं से भी घृणा करते थे[4]। मिस्टर जायसवाल ने खुद कहा है कि पाणिनि गण-शब्द से परिचित थे[5]। तात्पर्य यह कि जब 'संघ'-शब्द का अर्थ आम तौर पर बौद्ध-संघ समझा जाने लगा, तब मौर्य-काल के बाद जो प्रजा-सत्तात्मक राज्य उठे, उन्होंने अपनेको गण कहना आरंभ किया। 'गण'-शब्द कुछ गढ़कर तैयार नहीं किया गया; बल्कि संस्कृत में वह पहले से मौजूद था। मालूम

१. Early History of India (V. A. Smith) p. 94.

२. An Introduction to Hindu Polity. M. R. May 1913, pp. 537—538.

१. Corporate Life in Ancient India p. 107 Footnote.

२. III. 35-6 ; IV. 3-54. IV. 4. 84 ; V. 2-52 V. 4.73.

३. Republican Tradition in Indian Polity p. 17.

४ See Post (this essay) p. 16.

५. See Ante p. 13 of this essay.

होता है, चंद्रगुप्त के समकालीन संघों के नष्ट हो जाने और बौद्ध-संघों के बढ़ने से उस समय संघ का मज़हबी अर्थ इतना अधिक व्यापक था कि मौर्य-काल के परवर्ती प्रजा-सत्तात्मक राष्ट्रों को एक नए शब्द की ज़रूरत पड़ी। 'गण'-शब्द उनको संस्कृत में मिल गया। बस, उन्होंने अपनेको गण कहना शुरू किया। यह देखकर उस समय के संस्कृत-ग्रंथों में गण-शब्द का व्यवहार विस्तृत रूप से होने लगा। इस बात के मानने में कोई भी बाधा नहीं है कि मौर्य-काल के बाद 'गण'-शब्द का व्यवहार राजनीतिक अर्थ में विस्तृत रूप से होने लगा। और, यदि मौर्य-काल के परवर्ती संस्कृत-ग्रंथों में कहीं-कहीं हमको 'संघ'-शब्द का राजनीतिक अर्थ में व्यवहार मिल जाय, तो भी मिस्टर जायसवाल का मत ठीक अपनी जगह पर रह जाता है।

प्रोफ़ेसर बूलर ने 'गण' तथा 'संघ'-शब्दों का अनुवाद वणिक्-मंडली तथा सहकारी-समाज किया है। पंडित शाम शास्त्री ने भी इसी अर्थ को मान लिया है। मनु ने गण का व्यवहार राजनीतिक संघ के अर्थ में किया है, और 'श्रेणी' तथा 'पूगाः' का प्रयोग वणिक्-सहकारी-समाज के अर्थ में। कौटिल्य ने संघ-शब्द का व्यवहार राजनीतिक संघ के अर्थ में किया है। उन्होंने संघ का प्रयोग वणिक्-मंडली के अर्थ में भी किया है; परंतु किसी और ही प्रसंग में। मध्य-कालीन भाष्यकारों ने भी गण का अर्थ वणिक्-मंडली समझा है। मिस्टर जायसवाल ने लिखा है कि जैनों के अचारंग-सूत्र में उनको दो शब्द मिले—दोरायणि (वे राष्ट्र, जो दो राजों द्वारा शासित होते थे), तथा गण-रायणि (वे राष्ट्र, जिन पर समूचे समाज का शासन होता था)। गणरायणि-शब्द से उनके मन में यह ख़याल पैदा हुआ कि यह शब्द तथा स्मृति के 'गण' और 'राज्य'-शब्द, दोनों एकार्थ-वाचक हैं। जब उन्होंने महाभारत के शांति-पर्व (ch. 107) में 'गण'-शब्द को देखा, तब वह इसको पूरे तौर से मान गए कि 'गण'-शब्द का व्यवहार राजनीतिक संघ के अर्थ में किया गया है; उससे वणिक्-मंडली अथवा मज़दूरों का संघ कदापि अभिप्रेत नहीं है[1]।

सायणाचार्य ने ऋग्वेद (5. 66. 6.) के स्वराज का अर्थ स्वराट्त्व (अपना आप शासन) किया है। ऐतरेय-ब्राह्मण (VII, 3, 14.) में भोज तथा स्वारा (अपना राष्ट्र)-संस्थाओं का ज़िक्र किया गया है। मनु ने गण का व्यवहार प्रजा-सत्तात्मक राष्ट्र के अर्थ में किया है।

मिस्टर मुकुंदीलाल ने लिखा है कि प्राचीन भारत के पंडितगण प्रजा-सत्तात्मक संस्थाओं से ठीक उसी प्रकार घृणा करते थे, जिस प्रकार अर्वाचीन योरप के शासक-वर्ग बोलशेविक लोगों से नाक सिकोड़ते हैं। गौतम, मनु, याज्ञवल्क्य इत्यादि स्मृतिकार प्रजा-सत्तात्मक राष्ट्रों को तुच्छ-दृष्टि से देखते थे। राजा तथा पुरोहित, दोनों प्रजा-सत्तात्मक राष्ट्रों से डरते और नफ़रत करते थे, क्योंकि वे स्वतंत्रता-देवी के उपासक बनकर सब मनुष्यों को एक समान देखते थे[1]।

सिक्कों तथा शिला-लेखों का प्रमाण

कनिंघम ने लिखा है—"प्राचीन भारत का सब ज़्यादः दिलचस्प स्मारक कुछ लोगों, नगरों तथा देशों के स्वराज के सिक्के हैं[2]। उन्होंने ऐसे सिक्कों के दस वर्ग किए हैं। इन सिक्कों में राजकीय चिह्न (मुकुट इत्यादि) कुछ भी नहीं मिलते।

(१) यायुधेय-सिक्के। यायुधेय-सिक्कों से यह पता चलता है कि यायुधेय-जाति का प्रजा-सत्तात्मक शासन तीन बार स्थापित हुआ। तीन तरह के सिक्के मिले हैं। उन पर यह अंकित मिलता है—"जय यायुधेयगणस्य"—यायुधेयों की जय हो। इससे इसका पूरा प्रमाण मिलता है कि उनकी संस्था प्रजा-सत्तात्मक थी। मुद्रित लेख में दूसरे तथा तीसरे प्रकार के सिक्कों पर द्वि(तीय) तथा त्रि(तीय) राष्ट्रों का प्रयोग यायुधेय के विशेषण-रूप से किया गया है। कनिंघम का मत है कि यायुधेय तीन जातियों में विभक्त थे, इसीलिये द्वितीय यायुधेय तथा त्रितीय यायुधेय का व्यवहार सिक्कों पर किया गया है। परंतु यह मत मिस्टर मुकुंदीलाल को मान्य नहीं; उनका विचार है कि यायुधेयों के प्रजा-सत्तात्मक सिक्कों का संबंध यायुधेयों की प्रजा-सत्तात्मक संस्थाओं के त

१. An Introduction to Hindu Polity—M. R. May 1913, p. 537 [This is an historical essay read to the Third Hindi Literary Conference held at Calcutta, December, 1912. Translated by Mr Mukundi Lal.

१. Republican Tradition in Indian Polity p.

२. Cunningham, Archæological Survey Report V XIV. p. 135.

कालों से है[1]। यायुधेयों पर पहला हमला सिकंदर का हुआ (ईसा से ३२६ वर्ष पहले)। दूसरा हमला रुद्रदमन का (१५० ईसवी में) और तीसरा समुद्रगुप्त का (३५० ईसवी में) हुआ। इन हमलों के बाद तक वे अपनी आज़ादी को बचाए रहे। इसका प्रमाण यह है कि चंद्रगुप्त द्वितीय को यायुधेयों के तईं भी परास्त करना पड़ा था[2]। यायुधेय बड़े लड़ाके थे। यूनानी लेखक इनको भारत के सबसे अधिक शक्तिशाली लोगों में गिनते थे। इन लोगों ने सिकंदर का मुक़ाबला (६०,००० पैदल और ६,००० सवार लेकर) किया था। जूनागढ़ के शिला-लेख में रुद्रदमन ने शेख़ी बघारी थी कि उन्होंने यायुधेयों को जड़ से उखाड़ डाला। परंतु वे उस धक्के को सँभाल गए। समुद्रगुप्त ने भी उन पर हमला किया, लेकिन वे अपनी आज़ादी बचाए रहे। अंत को चंद्रगुप्त द्वितीय ने उनके देश को अपने साम्राज्य में मिला लिया। कनिंघम के विचार में यायुधेय "सतलज के दोनों किनारों पर, भावलपुर के सीमांत पर, बसे हुए थे। ×××× उनका देश उत्तर-पूर्व में और भी फैला हुआ होगा; क्योंकि उनके सिक्के लुधियाने तक पाए जाते हैं[3]।" यूनानी लेखकों के प्रमाण, जूनागढ़ के शिला-लेख और प्रयाग-स्तंभ के संकेत से जान पड़ता है कि यायुधेय लोग सिंध-मुहाने के निकटवर्ती देश में बसे हुए थे। ये मालवों, अर्जुन्यानों और आभीरों के पड़ोसी थे। मिस्टर मुकुंदीलाल के विचार में यायुधेय लोग ऋग्वेद के यदु तथा महाभारत-कालीन यादवों के वंशज हैं[4]।

(२) मालव-सिक्के—प्राचीन नगर 'नागर' के क़रीब एक हज़ार मालव-सिक्के मिले हैं। इन सब सिक्कों पर, सिवा एक के, यह लेख मुद्रित है—"जय मालवान्" —अर्थात् मालवों की जय हो। सिक्कों तथा शिला-लेखों का प्रमाण इस बात को पूर्णतया प्रमाणित करता है कि मालवों की संस्था प्रजा-सत्तात्मक थी। यह बात पूरे तौर पर मान ली गई है कि हिंदुओं का विक्रम-संवत् मालवों का चलाया हुआ है। तीन शिला-लेखों से दो बातें पूर्णतया सिद्ध हो चुकी हैं—

एक यह कि विक्रम-संवत् मालवों का चलाया हुआ है, और दूसरी यह कि मालव किसी राजकीय संस्था के अधीन न थे। उनकी संस्था प्रजा-सत्तात्मक थी।

(३) सीबी सिक्के—सीबी-जाति लाहौर तथा मुल्तान के बीच के देश में रहती थी। इसके दस तरह के सिक्के मिले हैं। सीबीजनपदाः के नाम से ये सिक्के जारी हुए थे।

(४) ओडंबरा सिक्के—पठानकोट (पंजाब) के क़रीब सात सिक्के मिले हैं। उनके मुद्रा-लेख का केवल 'ओडंबरा'-शब्द बच रहा है। पाणिनि ने भी ओडंबरों का ज़िक्र किया है। ये ईसा से १०० वर्ष पूर्व के हैं।

(५) ऐरान तथा ऐराकैन-नगर के सिक्के—प्राचीन नगर ऐरान (ऐराकैन) के, जो बीना-नदी के तट पर बसा हुआ था, कुछ ताँबे के सिक्के मिले हैं। बेतवा और बीना के संगम से १६ मील ऊपर, भिलसे से ४५ मील उत्तर-पूर्व, इस नगर का प्राचीन स्थान है।

(६) जनपदा-सिक्के—जनपद का अर्थ संस्कृत में राष्ट्र है। उन सिक्कों पर यह मुद्रित है—"रज्जना जनपदसा"। यह लेख भारतीय पाली-लिपि में है। इसकी संस्कृत-लिपि हुई—"राज्यं जनपदस्य", अर्थात् जन-समूह का राष्ट्र।

(७) ब्राह्मण-राष्ट्र के सिक्के—इनके क़रीब तीन सौ सिक्के मिले हैं। इन सिक्कों में यायुधेय-शब्द के मौजूद होने की वजह से कनिंघम ने इनको यायुधेय-सिक्कों में शामिल किया है। मिस्टर मुकुंदीलाल के मत में इन सिक्कों के तीन मुद्रा-लेखों से पता लगता है कि वे ब्राह्मण-राष्ट्र के सिक्के हैं।

(क) भागवतो स्वामीना ब्राह्मण्य यायुधेय। (चाँदी के सिक्कों पर)

(ख) भागवतो स्वामीना ब्राह्मण्य देवस्य। (ताम्र-सिक्कों में अधिकांश पर)

(ग)......भानु वर्मा......(बाक़ी मिट गया है) [केवल ताँबे के सिक्कों पर]

मिस्टर मुकुंदीलाल के विचार में 'भागवत' ब्राह्मणों की प्रजा-सत्तात्मक संस्था के एक नेता का नाम है। जिस तरह भानु दूसरे नेता का नाम है। देव-शब्द ब्राह्मण के नाम के बाद सम्मान के लिये वैसे ही बढ़ा दिया जाता है, जैसे क्षत्रिय के नाम के बाद वर्मा जोड़ दिया जाता है। स्वामी का अर्थ सभापति या नेता है।

---

१. Republican Tradition in Indian Polity p. 21.
२. Early History of India (V. A. Smith) p. 291.
३. Arch Sur Vol. XIV p. 140.
४. Republican Tradition in Indian Polity p. 22.

यायुधेय का अर्थ प्रजाधिपत्य-वादी है। यदि कनिंघम का यह मत मान लिया जाय कि ब्राह्मण यायुधेय लोग थे, तो भी मिस्टर मुकुंदीलाल का मत अपनी जगह पर क़ायम रहता है। उन सिक्कों से इस बात का प्रमाण मिलता है कि "भागवत के (सिक्के) ब्राह्मणों की प्रजा-सत्तात्मक संस्था (यायुधेय) के नेता" अथवा "भागवत देव के ब्राह्मणों (प्रजा-सत्तात्मक राष्ट्र) के मालिक अथवा भानु-वर्मा के......[१]।"

आधुनिक इतिहास-वेत्ताओं का प्रमाण

सन् १९०३ ई० में प्रोफ़ेसर रीज़ डेविड्स ने लिखा है कि बौद्धों के प्राचीन ग्रंथों से पता लगता है कि उस समय भारत में राजकीय संस्थाओं के साथ ही प्रजा-सत्तात्मक संस्थाएँ भी थीं। किसी में आज़ादी पूरी थी, किसी में कुछ कम[२]। उसी साल डॉक्टर विंसेंट स्मिथ ने रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के जरनल में एक लेख प्रकाशित किया; जिसमें एक नक़्शे के ज़रिए पंजाब की प्राचीन प्रजा-सत्तात्मक संस्थाओं के स्थानों का पता बतलाया गया है। डॉक्टर विंसेंट स्मिथ ने लिखा है[३] कि पंजाब, पूर्वी राजपूताने और मालवे में बहुत-सी ऐसी जातियाँ थीं, जिनकी संस्थाएँ प्रजा-सत्तात्मक थीं। यायुधेय लोग सतलज के दोनों किनारों पर बसे हुए थे, और मद्रक-जाति पंजाब के बीच में। सिकंदर के समय में, पंजाब में, बहुत-से प्रजा-सत्तात्मक राष्ट्र मैलोआइ, कैथरोआइ (ऑक्सीड्रेकाइ, ज़ैथरोआइ, सैंबसटाइ, सेडरोसीआइ और नेसाइन) इत्यादि थे। पूर्वी राजपूताने तथा मालवे के प्रजा-सत्तात्मक राष्ट्र अर्जुन, मालव तथा आभीर (अंभीय) थे। उनका यह भी मत है कि नर्मदा के दक्षिण में बहुत-से प्रजा-सत्तात्मक राष्ट्र तथा जातियाँ थीं। 'मालव-गण-स्थित्य' के अर्थ के बारे में तीन साल तक डॉक्टर फ़्लीट तथा डॉक्टर टामस के बीच वाद-विवाद चला[४]। डॉक्टर टामस संस्कृत के बहुत बड़े पंडित हैं। उन्होंने पूर्ण रूप से प्रमाणित कर दिया है कि संस्कृत के गण-शब्द का अर्थ जाति अथवा वणिक्-दल नहीं है; इसका संकेत प्राचीन भारत के उन राष्ट्रों अथवा नगरों की ओर है, जो प्रजा-सत्तात्मक अथवा कुलीनवर्ग-राज्य-संबंधी संस्था के अधीन थे। मिस्टर काशीप्रसाद ने पूरे तौर पर साबित कर दिया है कि 'गण' का अर्थ प्रजा-सत्तात्मक राष्ट्र है। हाल में कुछ भारतीय इतिहासज्ञों ने, जो 'नेशनलिस्ट स्कूल' के नाम से विख्यात हैं, इस बात को पूरे तौर से साबित कर दिया है कि भारतवर्ष में प्रजा-सत्तात्मक तंत्र एक हज़ार वर्ष तक क़ायम रहे (ईसा से पूर्व ५०० वर्ष से लेकर ५०० ईसवी तक)।

उपसंहार

अर्थ-शास्त्र, बौद्ध-सूत्र, महाभारत, स्मृति तथा सिक्कों के प्रमाण से यह बात पूरे तौर पर साबित हो जाती है कि लगभग १,००० वर्ष तक भारतवर्ष में प्रजा-तंत्र क़ायम रहे[१]। सिकंदर के हमले के समय बहुत-से नगर-राष्ट्र क़ायम थे। सिकंदर के आक्रमण को रोकने में यहाँ के नगर-राष्ट्र सफलता प्राप्त न कर सके। चाणक्य ने भारतवर्ष में एकाधिपत्य-साम्राज्य स्थापित करने की ठानी। अर्थ-शास्त्र में उन्होंने संघों को तोड़ने की तरकीबें बतलाई हैं[२]। यथा—जासूस भेजकर संघ के सदस्यों में वैमनस्य कराना, उनको राजा बनाने के लालच में फाँस लेना, वेश्या, नर्तकी तथा और-और क़िस्म की रमणियाँ भेजकर लड़ाई का बीज डालना, इत्यादि। चाणक्य ने इन सब तरकीबों को अमल में लाकर भारत के संघ को मेट दिया[३]। जिस समय रोम तथा मेसीडोनिया यूनानी नगर-राष्ट्रों का ध्वंस कर विदेशी साम्राज्य को यूनान में दृढ़ कर रहे थे, उसी समय भारतीय राष्ट्रों को हटाकर एक भारतीय साम्राज्य का उदय हुआ। सिकंदर के हमले के बाद यदि भारत में मौर्य-साम्राज्य न होता, तो सेल्यूकस निकेटर के हमले के बाद इस देश की स्वाधीनता कदापि न बच सकती। उस समय अपने बचाव के लिये इस देश में एक ऐसे शक्तिशाली केंद्रिक शासन की बड़ी ज़रूरत थी, जो विदेशियों के दाँत खट्टे कर सके।

---

१. Republican Tradition in Indian Polity p. 20.

२. Buddhist India pp. 19 and 20.

३. Early History of India 1914 pp 286.

४. Malana-Gana Controversy in J. R. A. S. (1914-1916).

१. These were analogous to the City-State of Greece.

२. Arthashastra Bk. XI-160, 161.

३. For a Graphic description read "Mudra-Rakshas".

मौर्य-साम्राज्य-रूपी प्रभाकर के निकलते ही प्रजा-तंत्र-रूपी तारे छिप गए । परंतु, जैसे ही मौर्य-साम्राज्य-रूपी सूर्य अस्ताचल को गया, वैसे ही भारत में गण-रूपी नक्षत्र दृष्टि-गोचर हुए । सारांश यह कि मौर्य-साम्राज्य प्रजा-तंत्र को बिलकुल नष्ट न कर सका । उसने उन पर केवल केंद्रिक शासन का रोब जमाकर स्थानिक प्रभुत्व उन्हीं पर छोड़ दिया । डॉक्टर राधाकुमुद मुकर्जी ने मौर्य-साम्राज्य के बारे में लिखा है कि साम्राज्य में छोटे-छोटे राष्ट्रों के स्थानिक प्रभुत्व को मिटा देना ग़ैरमुमकिन था[1] । डॉक्टर टामस ने कहा है कि कौटिल्य ने प्रजा-तंत्रों का नाश करने की बड़ी कड़ी कोशिशें कीं, लेकिन मौर्य-साम्राज्य के बाद भी बहुत-से प्रजा-तंत्र बच रहे । मालव इन्हीं में से एक थे । इन्हीं ने विक्रम-संवत् चलाया[2] । मौर्य-साम्राज्य प्रजा-सत्ता-संबंधी ख़याल को एकदम से हटा न सका । जैसे ही केंद्रिक शासन कुछ ढीला पड़ा, वैसे ही भारत में गण-राज्य क़ायम हो गए । सिक्कों तथा शिला-लेखों के प्रमाण से साबित होता है कि मौर्य-काल के बाद और गुप्त-साम्राज्य का उदय होने तक भारत में गण-राज्य कई जगह क़ायम हो गए थे । वैज्ञानिक दृष्टि से ये प्रमाण बड़े महत्त्व के हैं । आख़िरकार गुप्त-सम्राटों ने भारत के प्रजा-तंत्र को नष्ट कर दिया । पुराणों तथा धर्म-शास्त्रों में इनका कोई भी ज़िक्र नहीं मिलता । धीरे-धीरे भारत इस दशा को पहुँच गया है कि यथेष्ट प्रमाण मिलने पर भी आम तौर पर लोग इस बात को मानने में हिचकते हैं कि वे संस्थाएँ, जिनका उद्गम-स्थल हम पाश्चात्य देशों को समझते हैं, इस देश में बहुत दिनों तक क़ायम रह चुकी हैं ।

दक्षिण-भारत में बहुत आधुनिक प्रजा-सत्तात्मक शासन के नमूने पाए जाते हैं । प्राचीन केरल में १८वीं सदी तक प्रजा-सत्तात्मक संस्थाएँ क़ायम थीं[3] । दक्षिण के शिला-लेखों से पता लगता है कि प्रजा-सत्तात्मक आचार वहाँ बहुत थोड़े काल के पहले तक जारी था । चोल-देश में बहुत-से ग्राम मिलकर सभा द्वारा ग्राम के स्थानिक कार्यों को चलाते थे[1] । उक्त तथा उत्तर-मेल्लर के शिला-लेखों से प्राचीन ग्रामीण प्रजा-सत्तात्मक शासन-प्रणाली की हालत हम कुछ जान सकते हैं । डॉक्टर राधाकुमुद मुकर्जी ने मैसूर से एक निहायत अच्छी पुस्तक प्रकाशित कराई है । उससे हमको दक्षिण-भारत का बहुत कुछ हाल मिलता है[2] । आजकल हमारे पास भारतीय प्रजा-तंत्र के स्मारक रूप में केवल ग्राम-पंचायतें रह गई हैं । कहीं-कहीं ये पंचायतें इतनी संगठित हैं कि १९वीं सदी में मेटकाफ़ साहब ने ग्राम-पंचायत को "एक छोटे-से प्रजा-तंत्र" (Little Republic) से उपमा दी थी ।

रमाशंकर मिश्र

१. Local Government in Ancient India by Dr. Radha Kumud Mukerji, p, 10.
२. Republican Tradition in Indian Polity p. 16.
३. Republican Tradition in Indian polity p. 23.

१. Ibid. p. 24.
२. Local Government in Ancient India.

रामचरित-मानस और प्रसन्नराघव

"नानापुराणनिगमागमसम्मतं यत्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ;
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति ।"

प्रसिद्ध प्राचीन टीकाकारों ने उक्त श्लोक का जैसा अर्थ लिखा है, उसे हम पहले पाठकों के आगे उपस्थित करना चाहते हैं । इसका एक विशेष कारण यह भी है कि उनमें कुछ टीकाएँ हम लोगों के दुर्भाग्य से अब अप्राप्य-सी हो रही हैं ।

महंत रामचरणदासजी ने संवत् १८७० में बाल-कांड की एक टीका लिखी थी । उसमें लिखा है—

"श्रीगोसाईंजी कहत हैं कि यह जो मैं भाषा करत हौं सो नाना पुराण अरु चारिहू वेद छहू शास्त्र अरु श्रीमद्रामायण जो है शतकोटि अपर निगदितं नाम कथितं तिन सबन को सम्मत क्वचित् कहो विशेष लेत हों तहाँ श्रीमद्रामायण विशेष हो है अपर को क्वचित् क्वचित् लेत

हौं किंतु औरो लेत हौं उपनिषद् स्मृति संहिता उपपुराण अपर मुनिन को सम्मत सत्सभा का सम्मत गुरुवाक्य निज अनुभव सबको सम्मत विशेष लैके भाषा प्रबंध करत हौं स्व कहे मेरो अंतःकरण सुखानंद को प्राप्त होइ आतनोति नाम विस्तारसमेत कैसो है सब सम्मत अति मंजुल कहे अति उज्ज्वल है।"

ज्ञानी संतसिंहजी की भावप्रकाश-टीका संवत् १८७१ वि० में लिखी गई। उसमें ज्ञानीजी ने लिखा है—

"आपने अंतस्करण के सुख निमित्त मैं तुलसीदास रघुनाथजी की अति उज्ज्वल गाथा कों भाषा निबंध कर विस्तार करता हों। कैसी जुक्त में नाना पुराणों शास्त्रों वेदों का मत लेकर जो बालमीकजी ने रामायण मों कहा है। सो अरु कछु और भी। ननु। वेद शास्त्र पुराण सभ जो कहैं तो और इनसे क्या भया। जो कहिए अपनी अनभव तब स्वअनभव निगमादिकों से इतर कहा से कोऊ ल्याया है। जो कहिए पंचरात्रादिक ग्रंथ रुद्रयामलादिक तंत्र तौं यद्यपि नाम कर यह भिन्न है। तथापि निगमागमों से भिन्न इह भीं नहीं हो सकते ताते इसका उत्तर ऐसे है। नानापुराणनिगमागमों के सम्मत कर जो बालमीकजी ने रामायण कहा है। तिस रामचरित्र का मत लेकर क्वचद् अन्यत कहिये उन निगमागमों के आसे जो कई एक बालमीकजी ने नहीं लिखे अरु वह प्रसंग मेरे मन को प्यारे लगे हैं। जैसे प्रतापभानु आदिकों की कथा है सो भी मैंने इस भाषानिबंध में लिख धरे हैं अरु जो तंत्रसंहिता भिन्न मानकर अरथ करिये तौ भी प्रमाण

टिप्पणी—मुंशी रोशनलाल ने अपने टीका में यों लिखा है। जो नाना पुराण और निगम अर्थात् वेद और आगम शास्त्रों का सम्मत है सो रामायण में कहा है कहीं अन्यत्र से भी अपने अंतःकरण के सुख के निमित्त तुलसी रघुनाथ की गाथा अर्थात् कथा भाषानिबंध को अति कोमल विस्तार करता है क्वचिदन्यतोपि इसके कहने से तात्पर्य यह है कि कहीं कहीं अपने अनभव से भी कहा है यथा—

प्रौढ़ सुजन जन जानहिं जन की।
कहहु प्रतीति प्रीति रुचि मन की॥
आरति बिनय दीनता मोरी।
लघुता ललित सुबारि न थोरी॥

बाबा स्वरूपदासजी ने अपनी शंकावली में यों लिखा है—

शंका। तुलसीरघुनाथगाथा॥ इसमें ग्रंथकार ने अपना नाम लिया है सो नाम लेना अपना उचित नहीं है। प्रमाण स्मृति।

आत्मनाम गुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च।
श्रेयस्कामो न गृह्णीयात् ज्येष्ठापत्यकलत्रयोः।

उत्तर—

द्वादशेऽह्नि पिता नाम कुर्यात्।

इस शास्त्र तो जो बारहवें दिन पिता ने पुत्र का नाम रक्खा है तिसका पूर्वोक्त स्मृति निषेध करै है और द्वितीय नाम का निषेध नहीं है। तुलसीदास ऐसा नाम पिता का रक्खा नहीं है किंतु गुरु का धरा है यातें दोष नहीं इसीवास्ते महाभाष्यकार ने भी अपना रूढ़ पतंजलि नाम छोड़ करके दूसरा यौगिक नाम गोनर्दीय ऐसा महाभाष्य में लिखा है। अथवा कूपखनक न्याय करि जानना। जैसे कूप खोदने में अनेक जीवों की हिंसा होती है अरु खोदनेवाले को कीच अरु धूरि लगै है सो कूप के जल के पीने से पशु पक्षी ते आदि लेकर सभी को सुख होता है तिस पुन्य ते पाप दूरि हो जाता है और कीच भी तिसी कूप के जल से धोवा जाता है तैसे यहा नाम लेने से जो भया प्रायश्चित सो रामायण के पठन पाठन ते भया जो पुन्य तिन करिके दूर होता है। अथवा उच्चारण करने का निषेध है अरु लिखने का निषेध नहीं है इसवास्ते बहुत ग्रंथकार अपना नाम लिखते हैं यातें दोष नहीं।"

काशी के प्रसिद्ध महात्मा स्वामी देवतीर्थ की मानस-परिचर्या का रचना-काल संवत् १८९४ वि० है। उसमें इस श्लोक की व्याख्या यों की गई है—

"नाना पुराण उपपुराण निगम बेद आगम तंत्र इन सबके सम्मत औ रामायण में जो कहा क्वचिदन्यतोपि वशिष्ठ भुसुंडी शेष शारदा बचन सम्मत लेइ कै भाषा निबंध तुलसी करत हैं अति मंजुल देश देश की नीकी नीकी भाषा चुनिकै बहुत सुंदर सो पर उपदेश बदे नाहीं केवल अपने मन के सुख हेतु। (रा० प० प्रकास पुराण १८ उपपुराण १८) क्वचिदन्यतोपि वासिष्ठसंहिता भुसुंडि रामायणादि औ हनुमान कृपा से अनुभव श्रीमहाराज तिलककारो लिखि आये। साँची तो याही मंगल मूरति को प्रभाव है औ श्रीग्रंथकारो लिखे—

तस कहि हौं हिय हरि के प्रेरे।

हरि बाँदर हनुमान देश-देश की भाषा चुनिकै आउज तासा अरबी भाषा। नेव लेव तिरहुति कै।

मृतक शरीर बुंदेलखंड की । म्हाको मोर यह जयपूर की बोली । काठे तीर दक्षिणी भाषा । रौरे बनारस । धावल भोजपुर । राउर मंदिर उदयपुर । असा ऐसन दक्षिणी भाषा । रउरा सरयूपारी । लुगाई गहबरा की भाषा ॥"

मैनपुरी-निवासी मुंशी सुखदेवलाल का मानसहंस-भूषण कल्यब्द ४९७० (संवत् १९२६ वि०) में लिखा गया था । उसमें लिखा है—

"जो रघुनाथगाथा वर्णन करना अठारहों पुराण चारों वेद छहों शास्त्र और ब्रह्मयामल इत्यादि तंत्र और सब ग्रंथों का सम्मत है सोई रघुनाथगाथा अपने अंतःकरण के सुख के निमित्त मैं तुलसीदास अति उज्ज्वल भाषा-प्रबंध विस्तार करता हूँ । नानापुराण अर्थात् सात्त्विक राजस तामस पुराण जो पद्मपुराण में शिवजी ने पार्वती से कहे हैं—

वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम् ।
गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर्शने ॥
सात्त्वकानि पुराणानि विख्यातानि मिनीषिभिः ।
ब्रम्हाण्डं ब्रम्हवैवर्त्त मार्कण्डेयं तथैव च ॥
भविष्यं वामनं ब्राम्हं राजसानि निबोधये ।
मात्स्यं कौर्म्यं तथा लैंग्यं शैव्यं स्कान्दं तथैव च ॥
आग्नेयं च षडेतानि तामसानि निबोध मे ॥

तैसे ही वेद भी त्रैगुण्य कहे हैं ॥ गीतायां ॥

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन । इति ॥

छहों शास्त्र ॥ मीमांसा, न्याय, वैशेषिक योग सांख्य, वेदांत तंत्र ॥ नारदपंचरात्र, ब्रम्हयामल, विष्णुयामल, रुद्रयामल इत्यादि । इतिहास ॥ श्रीमद्रामायण, भारत और अन्य उपपुराण इत्यादि और और प्राचीन महर्षि इन सबके सम्मत रघुनाथगाथा है जैसा कहा है ॥

शेष शारदा बेद पुराना ।
सकल करहिं रघुपति गुन गाना ॥

अंतिम टीका, जो इस समय मेरे सामने है, डेहवा-मानपुर-निवासी श्रीबैजनाथजी की है । यह संवत् १९४३ वि० में बनी थी । बैजनाथजी ने गोस्वामीजी के सब ग्रंथों की टीकाएँ की हैं । उनका भी अर्थ सुन लीजिए—

"अब काव्य को प्रयोजन कहत यथा मैं जो तुलसीदास श्रीरघुनाथजी की गाथा जो कथा ताको आतनोति नाम विस्तार ते कहत हौं कैसी है कथा भाषानिबंध है भाषा यथा संस्कृतं प्राकृतं चैव सूरसेनं च मागधी । फारसीयमपभ्रंशं भाषाया लक्षणानि षट् । सो कैसी भाषा है अति मंजुल नाम उज्वलि अर्थात देशन की सुंदरी भाषा जो प्रसिद्ध है कौन सम्मत लैके भाषा है नाना पुराण यथा । ब्रह्म ब्रह्मांड वामन ब्रह्मवैवर्त मार्कंडेय भविष्य ६ इति राजसी हैं । नारदीय विष्णु वाराह गरुड़ पद्म भागवत ६ इति सात्त्विकी हैं । मीन कूर्म लिंग शिव अग्न्यादि ६ तामसी हैं । पुनः उपपुराण यथा सनत्कुमार, नरसिंह, स्कंद, दुर्वासा, आश्चर्य, नारद, कपिल, मानव, ब्रह्मांड, भार्गव, गरुड़, महेश्वर, कालिका, सांब, सूर्य, विष्णु, पाराशरी, देवीभागवत १८ इति उपपुराण । पुनः निगम कहे वेद यथा ऋग्वेद ताको उपवेद चिकित्साशास्त्र बैदक है यजुर्वेद ताको उपवेद धनुर्वेद है सामवेद ताको उपवेद गंधर्ववेद है अथर्वण को उपवेद अर्थशास्त्र नीति शिल्पादि । पुनः षडंग यथा १ शिक्षा २ गृह्यसूत्र ३ व्याकरण ४ निरुक्त ५ छंदःशास्त्र ६ ज्योतिष । पुनः आगम कहे तंत्र-शास्त्रादि । इत्यादिकन को सम्मत । अरु यत् कहे जौन रामायण बिषे निगदित कहे वर्णन है सो विशेषि पुनः क्वचित् कहे कुछ अन्यतः अपि कुछ संहितादिकन को सम्मत ताको भाषा में श्रीरामकथा कहत हैं का प्रयो-जन हेतु स्व कहे आपने अंतःकरण के सुख के अर्थ तहाँ अंतःकरण चारि हैं यथा वस्तु में संशय की यह है कि नहीं ताको मन कही जब वस्तु में निश्चय भयो सो बुद्धि है पुनः वस्तु को स्मरण करना सो चित्त है फिर जो ता वस्तु में ऐसो आग्रह होय कि ऐसे ही दूसरी नहीं ताको अभिमान कही इत्यादि इंद्री विषयन की चाह ते अनेक संकल्प विकल्प सोई दुःख रहै सो नाना पुराणन में मन लगाये निगमागम में चित्त लगाये अन्य सम्मत में बुद्धि लगाये कथा वर्णन में अहंकार लगाये तब अंतःकरण अमल ह्वै प्रभु की सम्मुख भयो तब सुखी भयो ।"

इनमें मूल संस्कृत-श्लोक के 'क्वचिदन्यतोपि' की व्याख्या में किसी ने लौकिक काव्य—नाटक—का नाम नहीं लिया । बहुधा लोग संहिता बतलाते हैं । केवल एक महाशय ने गोस्वामीजी की दिव्य दृष्टि मानी है । इस पर हमारा यह कहना कि रामचरित-मानस का कोई प्रसंग किसी काव्य या नाटक से लिया गया है, बड़ी

भारी धृष्टता है । परंतु जिन महाशयों ने माधुरी की तुलसी-संख्या में मेरा लेख पढ़ा है, उन्हें विदित हो गया होगा कि सुंदर-कांड में सीता-रावण-संवाद प्रसन्नराघव के छठे अंक के एक अंश का अनुवाद-मात्र है। केवल एक स्थान पर एक शब्द बदल दिया गया है। पहले मैं उस शब्द के बदलने का कारण बतलाना चाहता हूँ ।

विद्वद्वर श्रीमान् रामदास गौड़जी ने अपने उत्तम लेख में शुद्ध पाठ "सीतल निसित बहसि बर धारा।" को प्रामाणिक माना है, और कहते हैं कि पुरानी हाथ की लिखी पोथियों में यही पाठ है। गौड़जी के वाक्य की पुष्टि प्रसन्नराघव के श्लोक से होती है । उस संख्या में खोजने का परिश्रम बचाने के लिये मैं उस श्लोक को नीचे लिखता हूँ—

"चंद्रहास हर मे परितापं
रामचंद्रविरहानलजातम् ;
त्वं हि कांतिजितमौक्तिकचूर्णं
धारया वहसि शीतलमम्भः ।"

अब इसके अनुवाद को देखिए। काशी की नागरी-प्रचारिणी-सभा के सदस्यों द्वारा संपादित रामचरित-मानस में पहली पंक्ति ज्यों-की-त्यों रक्खी है। 'मे' की जगह 'मम' कर दिया गया है । दूसरी पंक्ति में 'रामचंद्र' की जगह 'रघुपति' लाने से विरह और अनल अलग कर देने और जातं में 'सं' जोड़ने की आवश्यकता पड़ गई। अब सहृदय पाठकगण यह पूछ सकते हैं कि यह शब्द क्यों बदला गया ? उसका कारण उन्हें बतलाकर मैं आशा करता हूँ कि रामायण पढ़ने में सदा इसका ध्यान रक्खा जायगा।

श्रीरघुनाथजी मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं, और श्रीसीताजी पतिव्रता-शिरोमणि । हम लोग अयोध्या-वासी उनको युगल सरकार कहते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी के चर्म-चक्षु और हृदय-चक्षु, दोनों के सामने रामायण-रचना के समय युगल मूर्ति विराजमान रहती थी, और वह उनकी लेखनी से मर्यादा के प्रतिकूल कोई बात निकलने नहीं देती थी। आजकल की प्रथा के अनुसार स्त्रियों के लिये अपने पति का नाम लेना बड़ा दोष है। इसलिये श्रीमुख से रामचंद्र न कहलाकर रघुपति कहलाया गया।

श्लोक की तीसरी पंक्ति में 'कांतिजितमौक्तिकचूर्णं' का विशेषण छोड़ दिया गया है । अब बचा 'त्वं हि धारा वहसि शीतलमम्भः' ; जिसका अम्भः * छोड़कर अन्वय बदलकर अर्थ हुआ 'सीतल बहसि धारा।'

पर इससे चौपाई का पद पूरा नहीं होता, इसलिये 'सीतल' और 'बहसि' के बीच में तलवार का परम योग्य विशेषण 'निसित' (पैना=तेज़) डाल दिया गया और धारा के आगे 'बर' जोड़ दिया गया।

इतना लिखकर अब हम नाटक के आरंभ से अनेक प्रसंग उद्धृत करके दिखलावेंगे कि सुंदर-कांड के संवाद को छोड़कर रामायण के और भी अंश प्रसन्नराघव के अनुवाद हैं ।

"प्रथमोऽङ्कः (सीता-स्वयंवर)

मंजीरकः (सविषादम्)—

आद्वीपात् परतोऽप्यमी नृपतयः सर्वे समभ्यागताः
कन्येयं कलधौतकोमलरुचिः कीर्तिश्च लाभास्पदम्
नाकृष्टं न च टङ्कृतं न नमितं स्थानाच्च न त्याजितम्
केनापीदमहो धनुः किमधुना निर्वीरमुर्वीतलम्"

मंजीरक एक वंदीजन है । परंतु गोस्वामीजी ने यह बात महाराज जनक के मुख से कहलाई है—

"दीप-दीप के भूपति नाना ;
आए सुनि हम जो पन ठाना।
कुअँरि मनोहरि, बिजय बड़ि, कीरति अति कमनीय ;
पावनहार बिरंचि जनु, रचेउ न धनु-दमनीय।
कहहु काहि यहु लाभ न भावा ;
काहु न संकर-चाप चढ़ावा।
रहेउ चढ़ाउब, तोरब भाई ;
तिल-भर भूमि न सके छुड़ाई।
अब जनि कोउ माखहि भट-मानी ;
बीर-बिहीन मही मैं जानी।"

"मंजीरकः—
कामातुरस्य वचसामिव संविधानै-
रभ्यर्थितं प्रकृतिचारु मनः सतीनाम्।"

---

* अम्भः के स्थान पर उसका पर्याय 'वन' लिखने से बहसि और धारा के बीच में वन आ जायगा। राजापुर की प्रति में र का रूप न है ; जिसमें और न में थोड़ा ही अंतर है । परंतु जल के अर्थ में वन का प्रयोग भाषा में नहीं होता ।

कवि की उक्ति—

"डगइ न संभु सरासन कैसे,
कामी बचन सती-मन जैसे।"

नाटक के चौथे अंक में परशुराम और लक्ष्मण का संवाद है। इसकी समता विचित्र है, इसलिये पहले लेख की भाँति संस्कृत और भाषा नीचे-ऊपर लिखी जाती हैं—

"रामः। यद्वा तद्वा भवतु न वयं ब्राह्मणेषु प्रवीराः।"

"लक्ष्मण। सुर, महिसुर, हरिजन अरु गाई;
हमरे कुल इन पर न सुराई।"

"रामः। भो ब्रह्मन् भवता समं न घटते
संग्रामवार्तापि नः
सर्वे हीनबला वयं बलवतां
यूयं स्थिता मूर्द्धनि;"

"राम। हमहिं तुमहि सरबर कस नाथा;
कहहु तो कहाँ चरन, कहँ माथा!"

"लक्ष्मणः। जामदग्न्य एवमेतत्—
यस्मादेकगुणं शरासनमिदं
सुव्यक्तमुर्वीभुजाम्,
अस्माकम्भवताम् पुनर्नवगुणं
यज्ञोपवीतं बलम्।"

श्रीरामजी परशुराम से कहते हैं—

"नाथ एक गुन धनुष हमारे;
नव गुन परम पुनीत तुम्हारे।"

जब मूल में नव गुण यज्ञोपवीत स्पष्ट है, तो इस चौपाई का अर्थ करने में ब्राह्मणों के नव गुणों के लिये भगवद्गीता का आश्रय लेना व्यर्थ है।

"जामदग्न्यः। धिक् क्षत्रगोत्रे कृपाम्।"

"परशुराम-वचन—
मोरे हृदय कृपा कसि काऊ।"

"रामः। अलमिति क्षीरकण्ठे कठोरकोपतया।"

"राम। नाथ, करिय बालक पर छोहू;
सूध दूध-मुख, करिय न कोहू।"

"जामदग्न्यः। आः किमुच्यते क्षीरकण्ठ इति।
विषकण्ठः खल्वसौ।"

"परशुराम-वचन—
कालकूट-मुख, पयमुख नाहीं।"

क्षीरकंठ का अनुवाद भाषा में दुधमुँहा (दूधमुख) होता है, दूध-कंठ नहीं। इससे विषकंठ की जगह भी कालकूट-मुख लिखना पड़ा; जिससे जयदेव का व्यंग्य भाषा में न आ सका, और गोस्वामीजी ने नाटक को यहीं छोड़ दिया। परंतु यह व्यंग्य बड़ा रोचक है, इससे मूल और उसका भाषानुवाद नीचे दिया जाता है।

जब परशुरामजी ने श्रीरघुनाथजी के 'क्षीरकंठ' के उत्तर में कहा कि लक्ष्मण विषकंठ हैं, तो लक्ष्मण ने कहा—

"लक्ष्मणः। भगवन् शितिकण्ठशिष्येण विशेषतः
क्षन्तव्यम्।"

(आप विषकंठ (शिवजी) के शिष्य हैं। आपको क्षमा करनी चाहिए।)

"जामदग्न्यः। कथं नामसाम्येन त्वमपि मे गुरुः?"

(परशु०—क्या हमने जो तुझे विषकंठ कहा, इससे तू भी हमारा गुरु—महादेव—हो गया?)

"षष्ठोऽङ्कः (सीताहनूमत्संवादे)

"सीता। केण उण णरवाणराणं
परिसं सखित्तणं णिम्मिदम्?"

"सीता। नर बानरहि संग कहु कैसे?"

इसके पीछे नाटक में हनुमान्‌जी ने बालि-वध और सुग्रीव की मैत्री बतलाई है; परंतु गोस्वामीजी ने इतना ही लिखकर छोड़ दिया—

"कही कथा भइ संगति जैसे।"

"हनूमान्—
अयि देव्याकर्णय तावत् यत् संदिष्टं देवेन देव्याः—
हिमांशुश्चण्डांशुर्नवजलधरो दावदहनः
सरिद्वीचीवातः कुपितफणिनिःश्वासपवनः;
नवा मल्ली भल्ली कुवलयवनं कुन्तगहनं
मम त्वद्विश्लेषात् सुमुखि विपरीतं जगदिदम्।
अपि च—
कस्याख्याय व्यतिकरमिमं मुक्तदुःखो भवेयं
को जानीते निभृतमुभयोरावयोः स्नेहसारम्;
जानात्येकं शशधरमुखि प्रेमतत्त्वं मनो मे
त्वामेवैतत् चिरमनुगतं तत् प्रिये किं करोमि।"

"हनूमान्-वचन—
कहेउ राम बियोग तव सीता;
मो कहँ सकल भए बिपरीता।

नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू ;
काल-निसा सम निसि, ससि भानू ।
कुबलय बिपिन कुंत-बन-सरिसा ;
बारिद तपत तेल जनु बरिसा ।
जे हित रहे, करत तेइ पीरा ;
उरग-स्वास सम त्रिबिध समीरा ।
कहेहु ते कछु दुख घटि नहिं होई ;
काहि कहउँ, यह जान न कोई ।
तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा ,
जानत प्रिया एक मन मोरा ।
सो मन रहत सदा तोहि पाँहीं ;
जानु प्रीति रस एतनेहि माँहीं ।"

शृंगार-रस के समझनेवालों को विदित है कि संयोग के उद्दीपन-विभाव विप्रलंभ (वियोग) में दुःखदायी हो जाते हैं । जैसे—

"औरै भाँति भए ऽब ए चौसर, चंदन, चंद ;
पति बिन अति पारत बिपति मारत मारुत मंद ।"

"परसि पजारति बिरहि-हिय बरसि रहे की वाय ।"

इत्यादि । अब श्लोकों और चौपाइयों को देखिए । क्या अब भी संदेह रह जाता है ? शुद्ध पाठ "जे हित रहे करत सोइ पीरा।" है, न कि "जेहि तरु रहे......", और यही गौड़जी ने पुरानी पुस्तकों के प्रमाण पर लिखा है । इन लेखों से मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि रामायण की मौलिकता में बट्टा लगे* । मैं गोस्वामीजी का परम भक्त हूँ, और तन-मन-धन से उनकी कीर्ति फैलाने में सदा उद्यत रहता हूँ । कभी अवकाश मिला, तो आप लोगों को बतलाऊँगा कि स्वामी रामानंदजी की शिक्षा क्या थी, और गोस्वामीजी ने उसे किस उत्तमता से हमारे सामने रक्खा है ; वैष्णवों और शैवों के कट्टर विरोध का कैसा समाधान करके हनुमान्‌जी को अवतार बतलाकर शिवजी को युगुल सरकार का परम भक्त सेवक बना दिया, जिससे शैव भी बुरा नहीं मानते, और गोस्वामीजी को आदर की दृष्टि से देखते हैं । अछूतों की कठिन समस्या तो उनके संप्रदाय के गुरु ही ने 'हल' कर दी थी, जब उन्होंने कबीर (मुसलमान और नीच मुसलमान) जुलाहे और रैदास चमार को दीक्षा देने में संकोच न किया । यदि हम लोग उनकी शिक्षा मानते, तो हमारी यह अवनत दशा न होती, जो आजकल हो रही है । मैंने 'अयोध्या' पर जो लेख अँगरेज़ी में लिखा था, और जिसका अनुवाद सम्मेलन-पत्रिका में छप चुका है, उसमें दिखलाया है कि वैष्णव वैरागी परम शांत होता है ; परंतु धर्म पर आघात उसको असह्य है । लखनऊ-म्यूज़ियम (अजायबघर) में एक चित्र है; जिसमें वैष्णव वैरागी हरद्वार में अकबर से लड़ बैठे थे—यह दिखलाया गया है । आज श्रीअवध में जाकर देखिए, किसी विधर्मी की दाल नहीं गलती । प्रबल राज से कभी दब गए, तो दबाव हटने या ढीला होने पर फिर ज्यों-के-त्यों हो गए । मेरा दृढ़ मत है कि भारत का कल्याण यही रामानंदी-संप्रदाय कर सकता है, जिसमें भगवत् चरणों में अचला भक्ति और समाज की उन्नति का मूल मंत्र है ।

परंतु इस समय मैं तुलसी-कृत रामायण महासागर के प्रसंग-रूपी नदियों की खोज में हूँ, समाज-सुधार के विषय से इसका संबंध नहीं । गोस्वामीजी को भगवत्प्रेरणा हुई थी कि हिंदी-भाषा के साहित्य-चूड़ामणि की रचना करें । भगवान् की आज्ञा थी कि यह चूड़ामणि ऐसा बने कि इसके टक्कर का संसार-भर में न निकले, और न निकल सके । ऐसी आज्ञा का प्रतिपालन करने के लिये उनको रत्नों की आवश्यकता थी । युगुल सरकार ने उनके सामने अपनी प्रकृति के रत्न खोल दिए । गोस्वामीजी कभी बाध्य नहीं थे कि सारे रत्न आप ही उत्पन्न करें । साहित्य-सागर में बिखरे हुए रत्न जहाँ मिले और उनके काम के निकले, उन्होंने चुन लिए, और आवश्यकतानुसार उनको खराद पर चढ़ाकर और "जिला" देकर चूड़ामणि में जड़ दिया । इसका एक उदाहरण श्रीमद्भागवत से देकर इस लेख को समाप्त करता हूँ ।

श्रीकृष्ण-बलदेव जब मथुरा में, रंग-भूमि में, बिराजे, तब

---

* इस लेख के लिखने पर एक मैथिल महाशय ने मुझसे कहा कि प्रसन्नराघव के जयदेवजी गीतगोविंदकार न थे, वरन् मिथिला के रहनेवाले गोस्वामीजी के सम-कालीन थे, और एक बार काशीजी में उनसे मिले भी थे । यदि ऐसा हो, तो संभव है कि प्रसन्नराघव के कुछ प्रसंग भाषा रामायण के अनुवाद हों, या दोनों ने किसी दूसरे ग्रंथ से लिए हों, जिसका अब हम लोगों को पता नहीं लगता । मैं कई वर्ष से खोज में हूँ, पर याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद या गरुड़-काकभुशुंड-संवाद नहीं मिला ।

"मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ;
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गंगतः साग्रजः ।"

संस्कृत न जाननेवालों के लिये इसका भाषानुवाद लिखा जाता है—"बड़े भाई के साथ जब श्रीकृष्णचन्द रंगभूमि में पधारे तो मल्लों ने उन्हें अशनि (वज्र) समझा, नरनारियों को उत्तम पुरुष विदित हुए, स्त्रियों को मूर्तिमान काम देख पड़े, गोपों को अपने भाई-बन्धु, दुष्ट राजाओं को दंड देनेवाले, माता-पिता को अपने बच्चे, कंस को काल-स्वरूप, विद्वानों को विराट रूप, योगियों को परमतत्त्व और वृष्णिवंशियों को पर देवता दिखाई दिए।"

अब यह देखिए कि तुलसी-कृत रामायण के बाल-कांड में श्रीरघुनाथजी के रंगभूमि पहुँचने पर दर्शकों की जो दशा वर्णन की गई है, वह इससे कितनी मिलती-जुलती है।

"रंगभूमि आए दोउ भाई,
असि सुधि सब पुरबासिन्ह पाई।
चले सकल गृह-काज बिसारी,
बाल, जुवान, जरठ नर-नारी।
जिन्ह के रही भावना जैसी,
हरि-मूरति देखी तिन्ह तैसी।
देखहिं भूप महारनधीरा ;
मनहुँ बीर-रस धरे सरीरा।
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी ;
मनहुँ भयानक मूरति धारी।
रहे असुर छल छोनिप-बेखा,
तिन्ह प्रभु प्रगट काल-सम देखा।
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई ;
नर-भूषन लोचन-सुखदाई।
नारि बिलोकहिं हरषि हिय, निज-निज रुचि-अनुरूप ;
जनु सोहत सृंगार धरि, मूरति परम अनूप।
बिदुषन प्रभु बिराटमय दीसा ;
बहु मुख, कर, पद, लोचन, सीसा।
जनक जाति अवलोकहिं कैसे ;
सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे।
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी ;
सिसु सम प्रीति न जाइ बखानी।
जोगिन्ह परम तत्त्व मय भासा ;
संत सुद्ध मन सहज प्रकासा।
हरि-भगतन देखे दोउ भ्राता,
इष्टदेव इव सब सुखदाता।
रामहिं चितव भाव जेहि सीया,
सो सनेह सुख नहिं कथनीया।
उर अनुभवति न कहि सक कोऊ ;
कवन प्रकार कहइ कबि कोऊ ?
जेहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ,
तेहि तस देखेउ कोसलराऊ।"

देखिए बातें वही हैं ; परंतु अवसर के अनुकूल कितनी "पालिश्ड" है। जहाँ भेद होना चाहिए, वहाँ भेद भी कर दिया गया। मथुरा में रंग-भूमि की स्त्रियों को श्रीकृष्ण मूर्तिमान् काम देख पड़े। इस प्रसंग से पहले, जब हरि बाज़ार में घूम रहे थे, श्रीमद्भागवत में यहाँ तक लिखा है कि "मदनावेग से स्त्रियों की सारियाँ कंकण और वस्त्र ढीले होने लगे, वह चित्र की तरह निश्चेष्ट रह गईं।" (पं० बलदेवप्रसाद का अनुवाद, भारतमित्र प्रेस का छपा हुआ, पृ० ९७९)। परंतु यह बात मर्यादा-पुरुषोत्तम के लिये असंभव थी।

"अबहीं अपन बेष मर्यादा प्रीति सधि सकत नाहिं ;
हमरो तुम्हरो होय सम्मिलन द्वापर गोकुल माहिं।"

इसलिये गोस्वामीजी ने यहाँ भाव बदल दिया, और लिखा—

"नारि बिलोकहिं हरषि हिय, निज-निज रुचि-अनुरूप।"

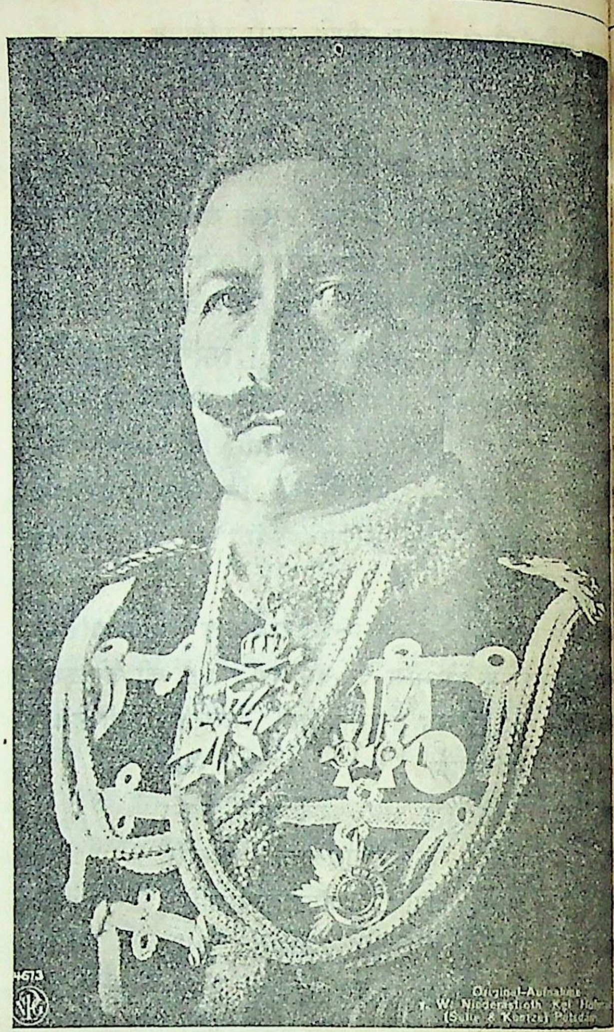
जनकपुर की स्त्रियाँ भिन्न-भिन्न रुचि से सरकार को देख रही हैं। अब विचारना चाहिए कि वह रुचियाँ क्या हैं। सरकार महाराजकुमार हैं, परदेसी हैं। गुरु और भाई साथ हैं। मनचले यारों की भाँति निगाहबाज़ियाँ करते नहीं चल सकते। न यहाँ रहने आए हैं। इनका ब्याह राजकुमारी ही के साथ हो सकता है—जनकपुर की महाराजकुमारी के ब्याह की चर्चा फैल रही है। देस-देस के राजा लोग आए और आ रहे हैं। पुर-स्त्रियाँ सबको देख चुकी हैं। जब उन्होंने श्रीरघुनाथजी को देखा तो

"यहि लालसा-मगन सब लोगू ;
बर साँवरो जानकी जोगू।"

महाराज जनक राजऋषि थे, और अपनी प्रजा को अपना बेटा-बेटी मानते थे। अच्छे राजा ऐसे ही होते

हैं। कथा प्रसिद्ध है कि एक बार राजधानी में शाहजहाँ बादशाह की सवारी निकली। उनके साथ उनका छोटा लड़का मुहीउद्दीन था, जो पीछे आलमगीर के नाम से बादशाह हुआ। रास्ते में एक बनिए की जवान लड़की सिर खोले खड़ी थी। राजकुमार ने कहा कि देखिए पिता-जी यह स्त्री कैसी ढीठ है। शाहजहाँ ने उत्तर दिया कि बेटा, बाप-भाई के सामने स्त्रियों को परदा करने की आवश्यकता नहीं। अभिप्राय यह है कि मैं इसका पिता हूँ, और तुम इसके भाई। जब राजा का भाव ऐसा होता है, तो प्रजा भी राजा को पिता ही समझती है। इस बात को ध्यान में रखकर देखिए कि जनकपुर की स्त्रियाँ दो प्रकार की हैं। एक वह, जो बाहर से ब्याह आई हैं, और दूसरी वहीं की कन्या हैं। श्रीमिथिलेशकिशोरीजी को दूसरे प्रकारवाली अपनी बहिन समझती हैं, और पहले प्रकार की अपनी नंद। अब दोहे का अर्थ स्पष्ट है। ससुराल में सुंदर पुरुष के जाने पर जो आनंद सालियों और सरहजों को होता है, वही उनको हो रहा है। देखिए गोस्वामीजी ने स्त्रीणां स्मरः को कैसा बदला। यही उनका गुण और यही उनकी दिव्य दृष्टि है।

श्रीअवधवासी सीताराम



जर्मनी के भूत-पूर्व क़ैसर विलियम

जर्मनी-आस्ट्रिया की सैर

(वर्ष २, खंड १, संख्या १ से आगे)

[२]

(बर्लिन, जनवरी, १९२२ ई०)

"बर्लिन ! फ़्रीड्रिख़स्ट्रास बानहॉफ़ बर्लिन !"



अँधेरा हो गया था। स्टेशन पर भीड़ बहुत थी। हम अपना असबाब उठवाने के लिये कुलियों की तलाश करने लगे। हम लोग यहाँ की भाषा बिलकुल नहीं समझ सकते थे। हरएक कुली से हमारा पहला सवाल यही होता था—"Do you speak English ? Parlez vous Francais ?" (क्या तुम अँगरेज़ी बोलते हो ? क्या तुम फ़्रेंच बोलते हो ?) एक कुली शान से दौड़ा हुआ आया, और जर्मन फ़्रेंच की खिचड़ी में बोला—"Ich parle Francais" (मैं फ़्रेंच बोलता हूँ)

बस, उसी से अपना असबाब उठवाकर हम लोग स्टेशन के बाहर आए। एक मोटर-टैक्सी पर असबाब रखवाया। मैं कुली से फ़्रेंच में कुछ बात-चीत करने लगा। वह एकदम हाथ उठाकर चिल्लाने लगा—"Nicht Parle beaucoup Francais !" अंत को हैरान होकर वैसे ही चल देना पड़ा।

मेरे पास एक स्वेडिश लेडी का दिया हुआ एक Hotel Persian का पता था। वही मोटरवाले को दिखला दिया। यथास्थान पहुँचने पर मालूम हुआ कि होटल भरा हुआ है। परंतु उन लोगों ने कृपा करके पास ही एक और होटल का पता बतला दिया। यह

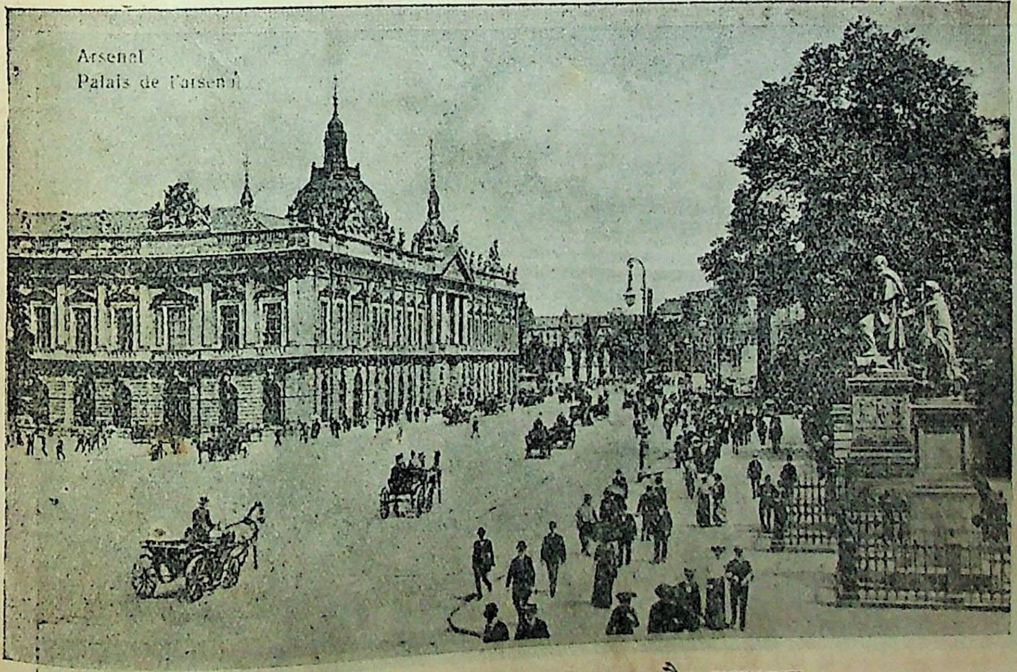
होटल स्प्री-नदी के किनारे फ़्रीड्रिख़स्ट्रास पर था। इसकी इमारत बड़ी आलीशान थी। इस समय बरफ़ पड़ रही थी। जाड़ा भी था। होटल के फाटक पर पहुँचते ही कमिशनेयर से यह सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई कि वह अनेक भाषाएँ बोल सकता है। वह अँगरेज़ी भी जानता था। इससे हम लोगों की ख़ुशी का ठिकाना न था। इस ख़ुशी का वे ही अनुभव कर सकते हैं, जो एक ऐसे देश में जा पड़े हों, जहाँ की बोली उन्हें समझ न पड़ती हो। रास्ते-भर हम लोग कुछ जर्मन-भाषा के शब्द और वाक्य रटते आए थे। पर काम पड़ने पर सब भूल गए। आप बहुत हँसते, अगर हमको यहाँ बात-चीत करते देखते। हाथ में विक्टर ह्यूगो की "How to make your way in Germany" पुस्तक थी। उसे खोलकर आवश्यक वाक्यों के जर्मन-शब्द देखकर या तो बोलते थे, या वे वाक्य ही उसे दिखा देते थे। इस तरह बहुत देर में थोड़ी-सी बात-चीत कर पाते थे। किसी तरह काम चल जाता था।

रास्ते की थकन मिटाने के लिये हम लोगों ने गरम पानी से एक घंटे तक खूब स्नान किया। अक्सर हमको दो-दो दिन रेल में लग जाते थे, और सोने को न मिलता था। बस एक बड़े टब को पानी से भरकर उसी में बहुत देर तक लेटे रहते थे। फिर घूमने-फिरने के वास्ते तैयार हो जाते थे। एक बड़े मज़े की बात हुई। हमने अपने कमरे की घंटी बजाई, और मेड (maid) के आने पर उससे अपनी जर्मन में कहा—"हम स्नान करना चाहते हैं।" परंतु वह कुछ न समझ सकी। हमें बहुत आश्चर्य हुआ। वह अपनी भाषा भी नहीं समझती! दरवाज़े पर से कमिशनेयर को बुलवाया। उससे मालूम हुआ कि हम लोगों का उच्चारण ही ग़लत था, उसका क्या अपराध!

स्नान के बाद होटल ही के रेस्टोराँ में भोजन किया। खाना बहुत ही उत्तम था। यहाँ का और इँगलैंड का भोजन क़रीब-क़रीब एक ही-सा होता है।

हाँ, एक बात तो लिखना भूल ही गया। उन दिनों यहाँ के सिक्के का भाव बहुत गिरा हुआ था। एक पौंड (१५ रुपए) लड़ाई के पहले २१ 'मार्क' का था, और अब ८०० मार्क का हो गया था। बाहरवालों को यहाँ आकर रहने में सुबीता होता था। चीज़ों की क़ीमत 'मार्कों' के हिसाब से बहुत ही बढ़ गई थी; पर पौंडों में वे सस्ती थीं। विदेशी लोग आकर यहाँ की चीज़ों के दाम बढ़ा देते थे, इसलिये जर्मन-गवर्नमेंट से पासपोर्ट पास ही कराना बहुत मुशकिल था। हम लोगों को बहुत दिक़्क़तों के बाद कुल दो हफ़्ते के वास्ते इजाज़त मिली थी।

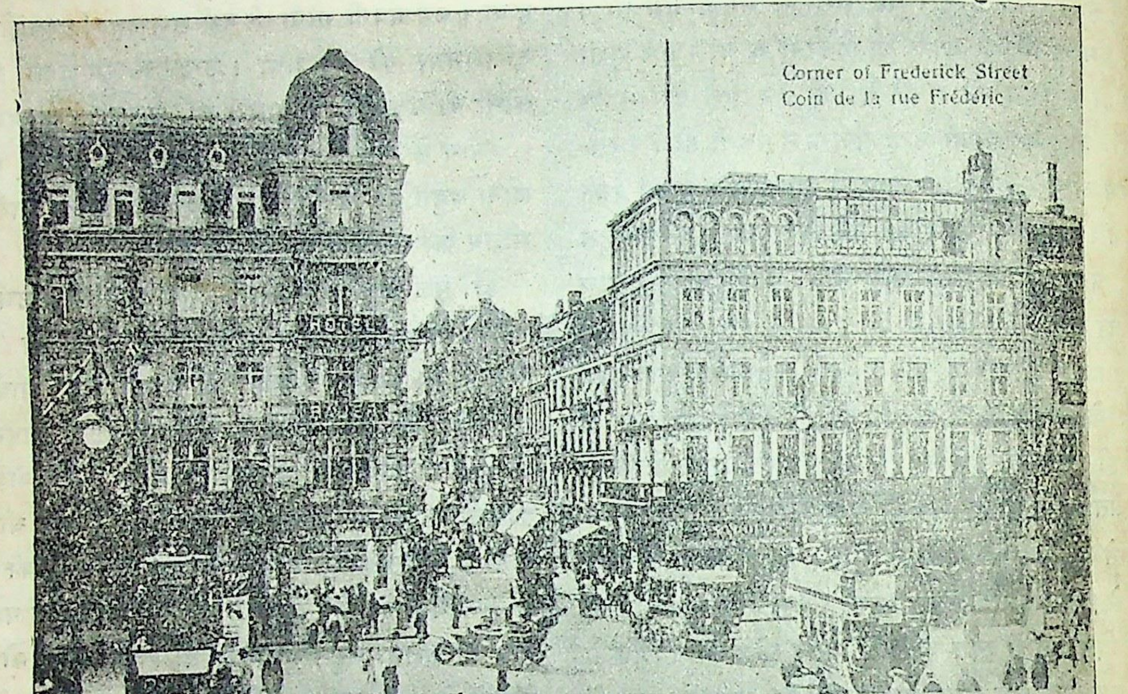
अस्तु। भोजन करके बर्लिन देखने निकले। बहुत



उंटेरडेन-लिंडेन नाम की मशहूर सड़क और शस्त्रागार

कुछ सुन चुके थे । ऊंटेरडेन-लिंडेन नाम की सड़क बहुत ही मशहूर है । यह बहुत चौड़ी सड़क है । इसके किनारे और बीच में नींबू के दरख़्तों की क़तारें लगी हैं । इसी से इसका नाम 'नींबू के नीचे' पड़ा है ।

होटल से एक रास्ता सीधा स्प्री-नदी को पार करता हुआ दूर तक चला गया है । इसका नाम फ़्रीड्रिख़स्ट्रास है। रात के १०½ बज चुके थे; पर अभी तक भीड़ काफ़ी थी। जगह-जगह खोंचेवाले उबली और तली हुई सॉसे



ऊंटेरडेन-लिंडेन और फ़्रीड्रिख़स्ट्रास का कोना
(यह बाज़ार का केंद्र-स्थल है)



ब्रांडेन बर्ग का दरवाज़ा
(यह ऊंटेरडेन-लिंडेन-नामक सड़क के ऊपर है)

बेच रहे थे। जर्मनों को सॉसेज से बहुत प्रेम है। यह क़ीमा किए हुए मांस से बनती है।

रास्ता और सड़कें ख़ूब रोशन थीं। अभी तक बरफ़ गली नहीं थी। उसी पर मनुष्य चल रहे थे। इस सड़क पर स्त्रियों की बहुत भीड़ रहती है। शीघ्र ही हम लोग ऊंटेर-डेन-लिंडेन पर पहुँच गए। कुछ देर हवा खाकर फिर होटल में लौट आए, और सो रहे।

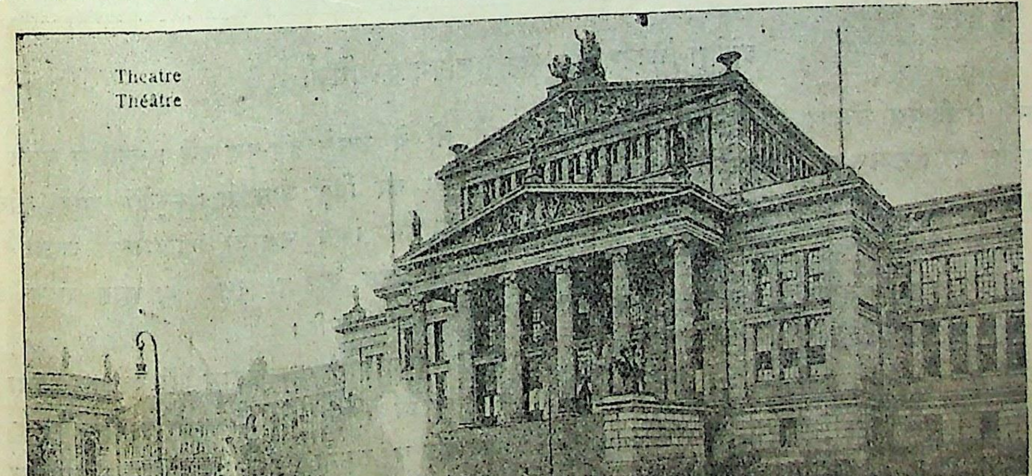
थके होने के कारण दूसरे रोज़ दस बजे तक सोते रहे। होटल का ब्रेकफ़ास्ट-रूम बहुत ही सुंदर है। यहाँ से दूर तक फ़्रांड्रिख़स्ट्रास दिखलाई पड़ता है। एटलस-होटल यहाँ के एक मशहूर और महँगे होटलों में है। मामूली तौर से हम यहाँ ठहरने का ख़र्च नहीं उठा सकते थे; परंतु अब जर्मन सिक्का सस्ता होने के कारण हमारा ख़र्च इँगलैंड के छात्रालयों से भी कम था। उस पर तुर्रा यह कि लोग हमें बहुत अमीर समझते थे। हम जहाँ जाते थे, बहुत ख़ातिर होती थी।

भोजन करके पहला काम बैंक से रुपए लाना था। रास्ते में ट्रेन पर एक जर्मन सज्जन ने कृपा करके एक पौंड के मार्क हमें दे दिए थे, जिससे अभी तक ख़र्च चला था। हमारे पास लंदन के लॉयड-बैंक की हुंडी यहाँ के मेंडेलसोन-बैंक के ऊपर थी। उक्त बैंक ने हम लोगों के पासपोर्ट जाँच कर रुपए दे दिए।

जाड़े का ज़माना जर्मनी-जैसी जगह की सैर करने के लायक़ नहीं होता। सरदी से बहुत कष्ट मिलता है। फिर भी हम लोग काफ़ी मोटे कपड़े पहने घूमते ही रहे। शाम को थिएटर देखने की इच्छा से Schauspielhaus (राज-थिएटर) की तरफ़ गए। यह विशाल भवन शहर के बीचोबीच एक बड़े बाग़ के अंदर है।

हमारी इच्छा तो सस्ती ही जगह में बैठने की थी, परंतु तमाशा अच्छा और भीड़ अधिक होने के कारण जो बढ़िया स्थान ख़ाली रह गए थे, उन्हीं का टिकट लेना पड़ा। प्रत्येक टिकट २०० मार्क का था; पर हमें वह क़रीब ३) का पड़ा। हमारी ख़ातिर राजों-महाराजों से कुछ कम नहीं हुई। दो आदमियों ने आकर हमारे छाते, कोट वग़ैरह ले लिए, और आदर के साथ यथास्थान ला बिठाया।

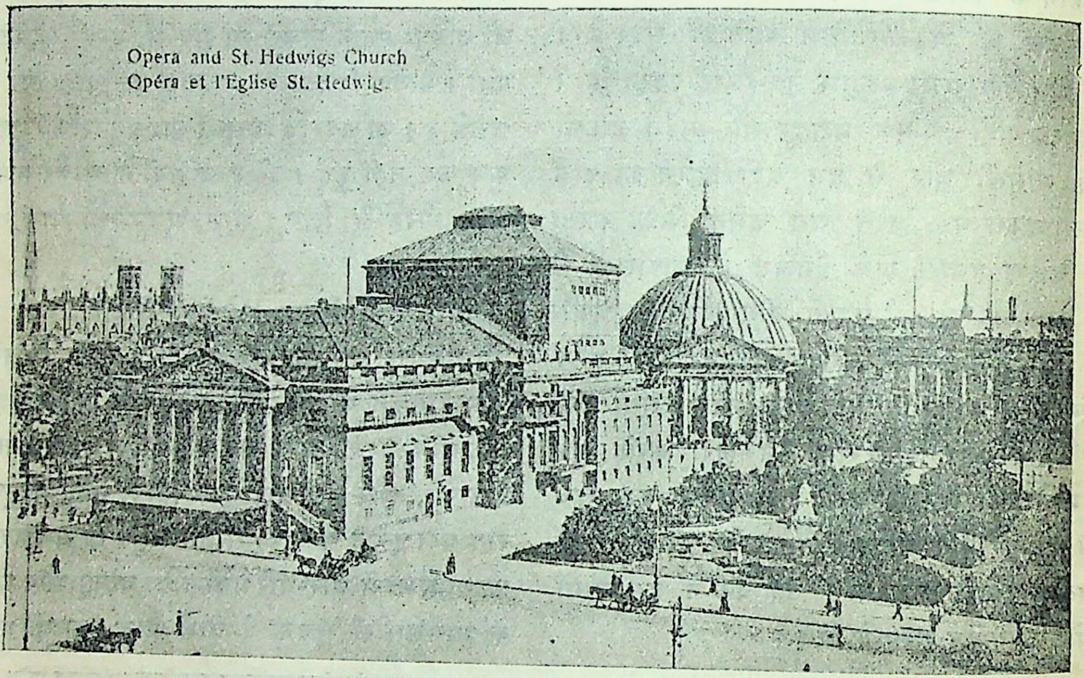
इबसन (Ibsen) के पेयर गिंट (Peer Gint) का तमाशा था। हम लोग जर्मन-भाषा बिलकुल नहीं समझ सकते थे; फिर भी नाटक बहुत ही पसंद आया। एक सीन (दृश्य) अभी तक आँखों से नहीं उतरता। अँधेरी रात थी, और धीरे-धीरे एक पहाड़ी घाटी में सूर्योदय हो रहा था। इसके साथ का संगीत बहुत ही मनोहर था। पौ फटना, घाटी में धीरे-धीरे प्रकाश का बढ़ना और अंत में सूर्य के आगमन की सूचना देनेवाले लाल गुलाबी बादलों का



राज-थिएटर

विकास इत्यादि की ख़ूबियाँ लेखनी से व्यक्त नहीं की जा सकतीं। Peer Gint का संगीत स्कैंडीनेविया के रहनेवाले ग्रीग महाशय ने बनाया है। ऐसा कोई देश नहीं, जहाँ यह संगीत आदर से न सुना जाता हो।

दूसरे रोज़ बर्लिन के ओपेरा-भवन में मैडम बटर-फ़्लाई नाम का ओपेरा देखने गए। नाटक बहुत ही



ओपेरा-थिएटर और सेंट हेडविग का गिर्जा

अच्छी तरह से दिखलाया गया। कोई दृश्य कृत्रिम नहीं मालूम पड़ता था। नायक और नायिका अपनी कला में निपुण थे।

यहाँ राज्य की ओर से एक बहुत ही अच्छा नाट्य-विद्यालय है। यहाँ के लोग नाट्य-विद्या को आदर से देखते हैं।

मुझे और मेरे मित्रों को यहाँ पर कुछ कैमरे इत्यादि ख़रीदने थे। हम लोग फ़्रीड्रिख़स्ट्रास और लाइपज़िगर-स्ट्रास की बड़ी दूकानों पर गए। मालूम हुआ, जर्मन-गवर्नमेंट के आदेशानुसार बग़ैर आज्ञा के कोई चीज़ सीमा के बाहर नहीं ले जाई जा सकती! और, अगर बाहर ले जाने की आज्ञा मिल जाती है, तो यहाँ एक्सपोर्ट और इँगलैंड में इंपोर्ट-ड्यूटी इतनी लग जाती है कि यहाँ ख़रीदने से कुछ फ़ायदा नहीं। फिर भी मेरे मित्रों ने कुछ-न-कुछ ख़रीद ही लिया।

जर्मनी में लोगों को द्वंद्व-युद्ध करने का बहुत शौक़ है। जब तक चेहरे पर दो-एक घाव के निशान न हों, मनुष्य मनुष्य ही नहीं समझा जाता। यहाँ अपमान का बदला तलवार से लिया जाता है। फ़ौजी अफ़सरों के लिये हुक्म है कि अगर कोई उन्हें कुछ भी अनुचित बात कहे, तो वे उससे द्वंद्व-युद्ध करें। ऐसा न करने पर वे पद-च्युत कर दिए जाते हैं। स्कूलों और कॉलेजों में तलवार और किर्च चलाना सिखलाया जाता है। अब ये बातें बहुत कम हो चली हैं, और शीघ्र ही यह प्रथा लुप्त हो जायगी।

एक दिन हमने पाट्सडाम में व्यतीत किया। यह जगह बर्लिन से कुछ ही मीलों के फ़ासले पर है। हम सुबह रेल से रवाना हुए। पाट्सडाम-स्टेशन पर पहुँच-कर दिन-भर के वास्ते एक टक्सी ले ली। यहाँ की टक्सियाँ शानदार होती हैं। टक्सी में चार मनुष्यों के बैठने की जगह थी। अंदर बिजली की अँगीठियों से गरमी पहुँचाई जाती थी।

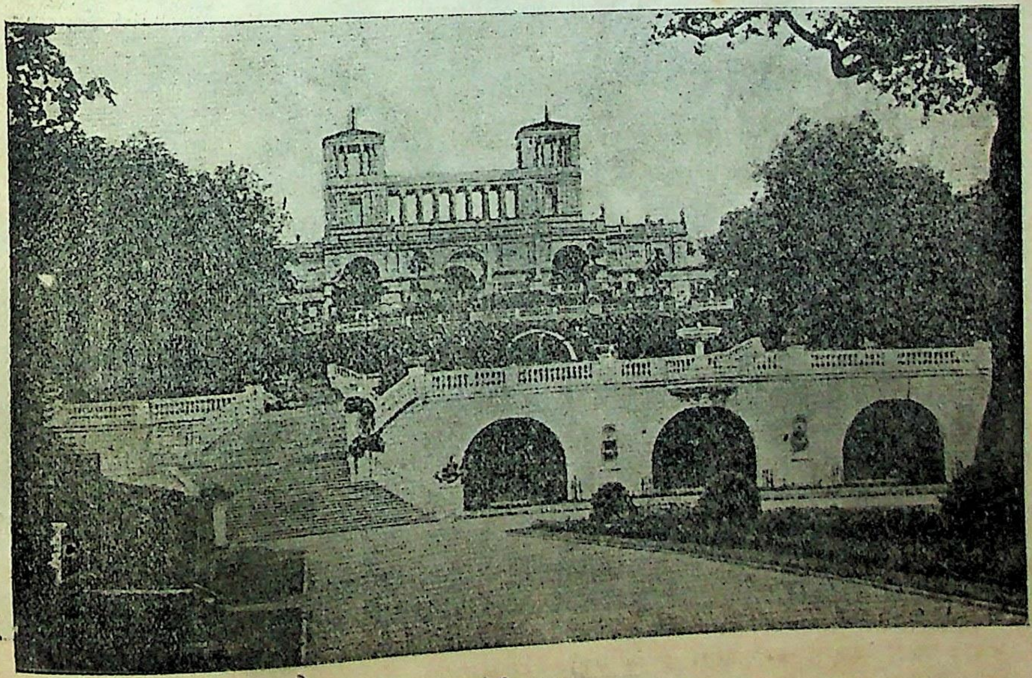
आज ठंडक बहुत थी। बरफ़ चारो तरफ़ पड़ी हुई

थी । ठंडी उत्तरी हवा चल रही थी । जाड़े के मारे हम लोगों का नाक में दम था । हाथों, पैरों और कानों में बेहद दर्द हो रहा था । डबल ऊनी कपड़े पहने थे । पैरों में दो जोड़े ऊनी मोजे, मज़बूत रबड़ से मढ़े बूट और स्पैट्स से कसे हुए, तब भी सरदी से पैरों का बुरा हाल था । हाथ दस्तानों के बाहर निकालना कठिन था । पाट्सडाम में बहुत-से राजमहल हैं ।

जिस राजा की समझ में जैसा आया, उसने वैसा ही महल बनवाया । कई महलों के चित्र यहाँ दिए जाते हैं ।

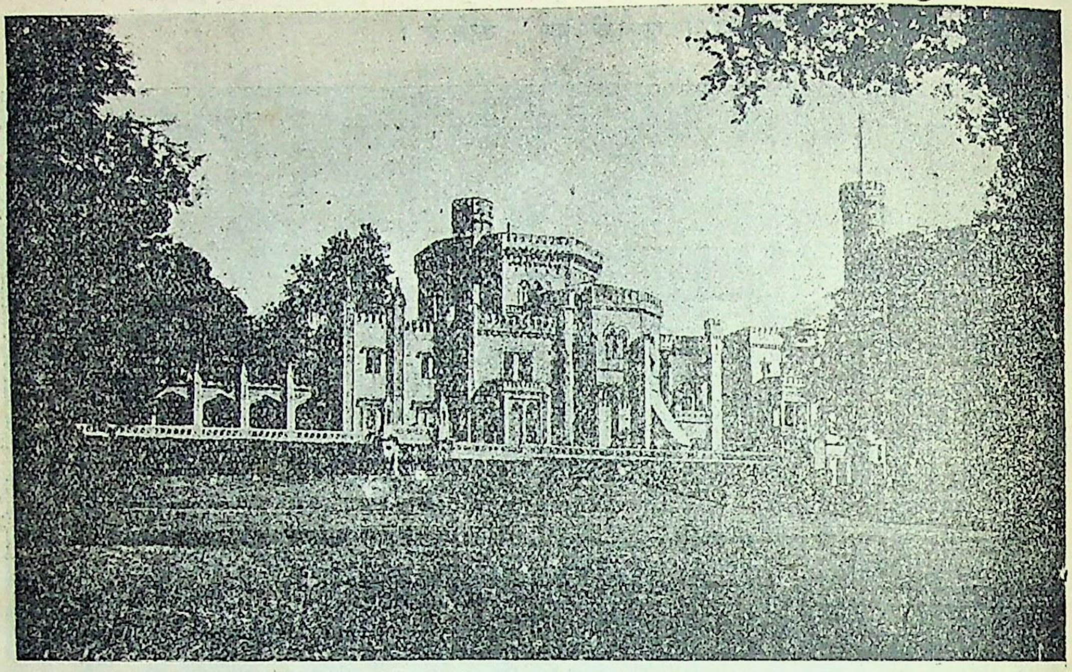


पाट्सडाम का दृश्य

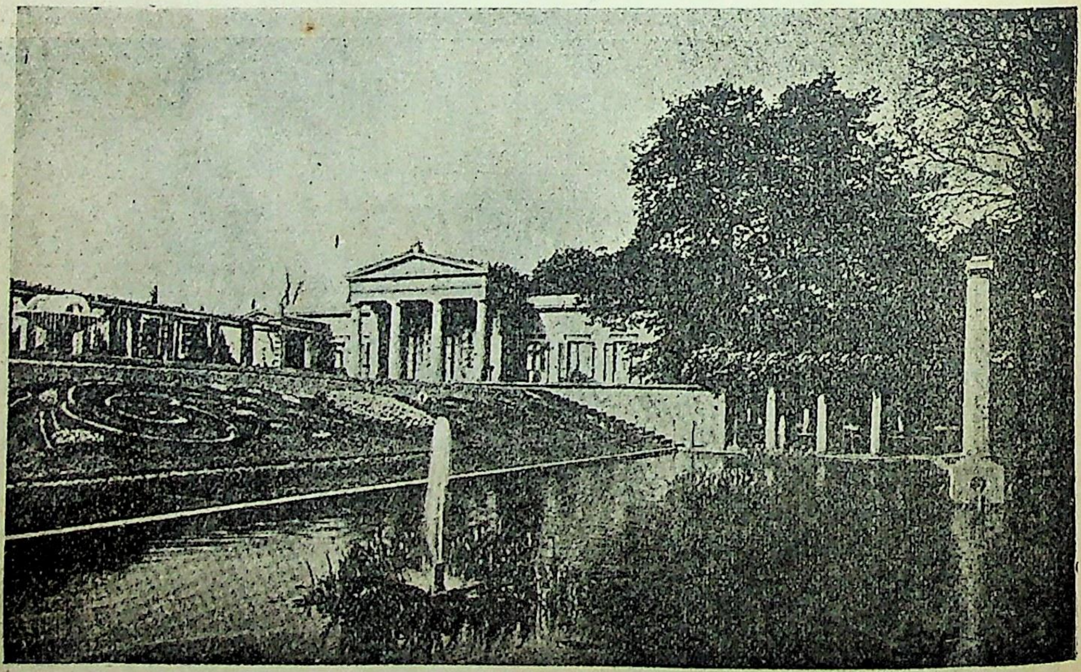


नारंगी-महल

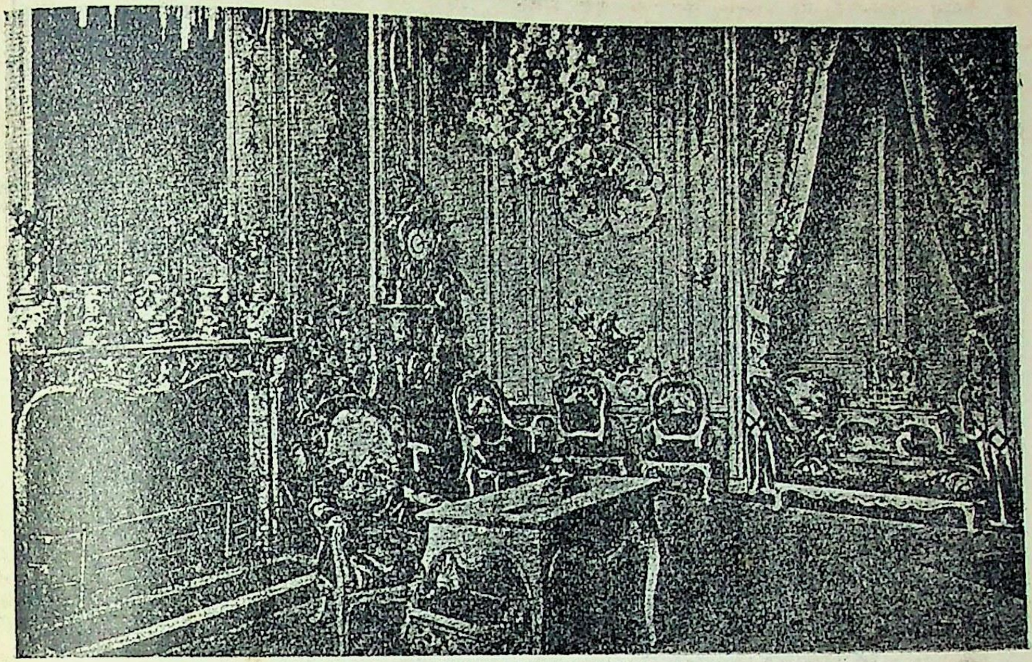
क़ैसर विलियम का नया महल बहुत ही सुंदर है। जब से क़ैसर राज-गद्दी से उतरे, तब से यह महल ख़ाली रहता है। इसमें बहु-मूल्य सामान है। एक सिपाही यहाँ दर्शकों को महल दिखलाने के लिये रहता है। वह उनको प्रत्येक कमरा दिखलाता और उसका ब्योरा समझाता जाता है।



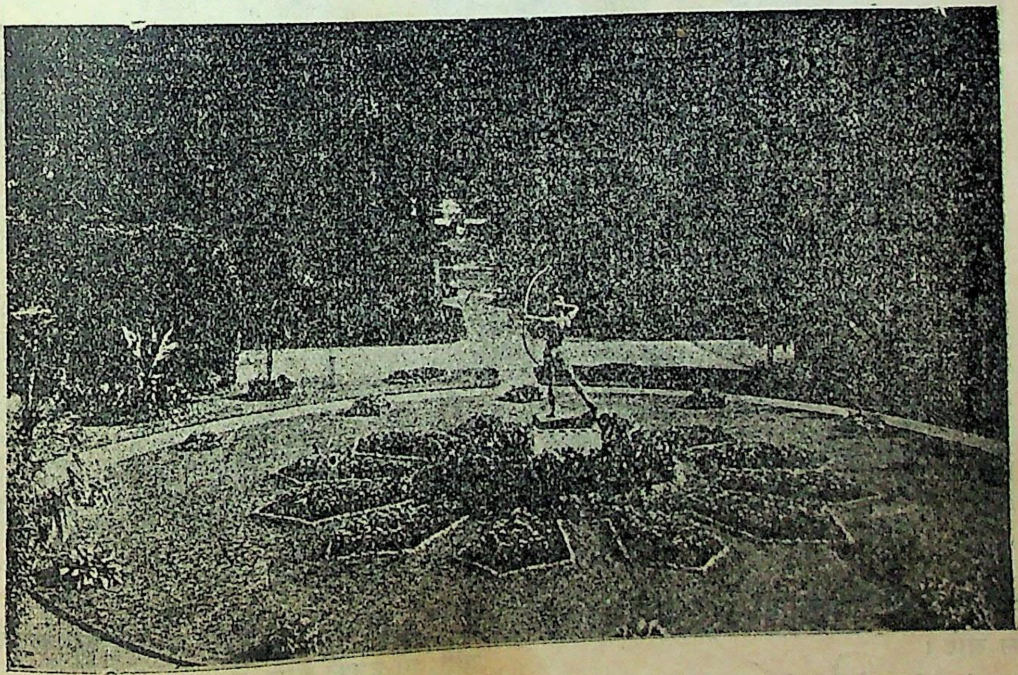
बाबेल्सबर्ग राज-महल



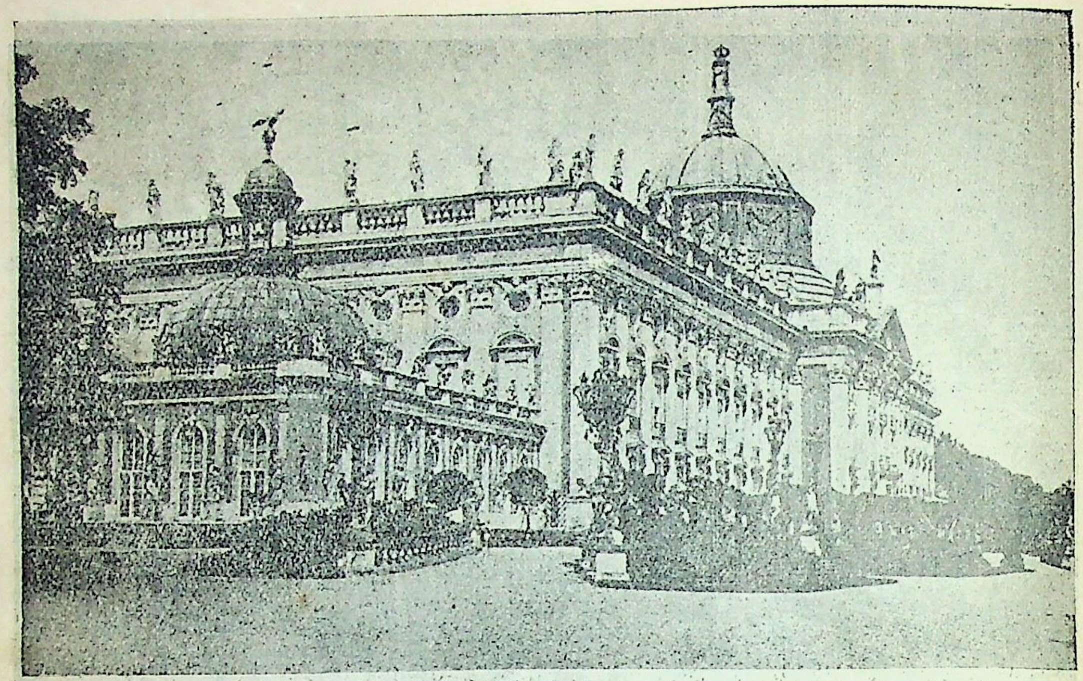
शारलॉतेन हाफ़-महल



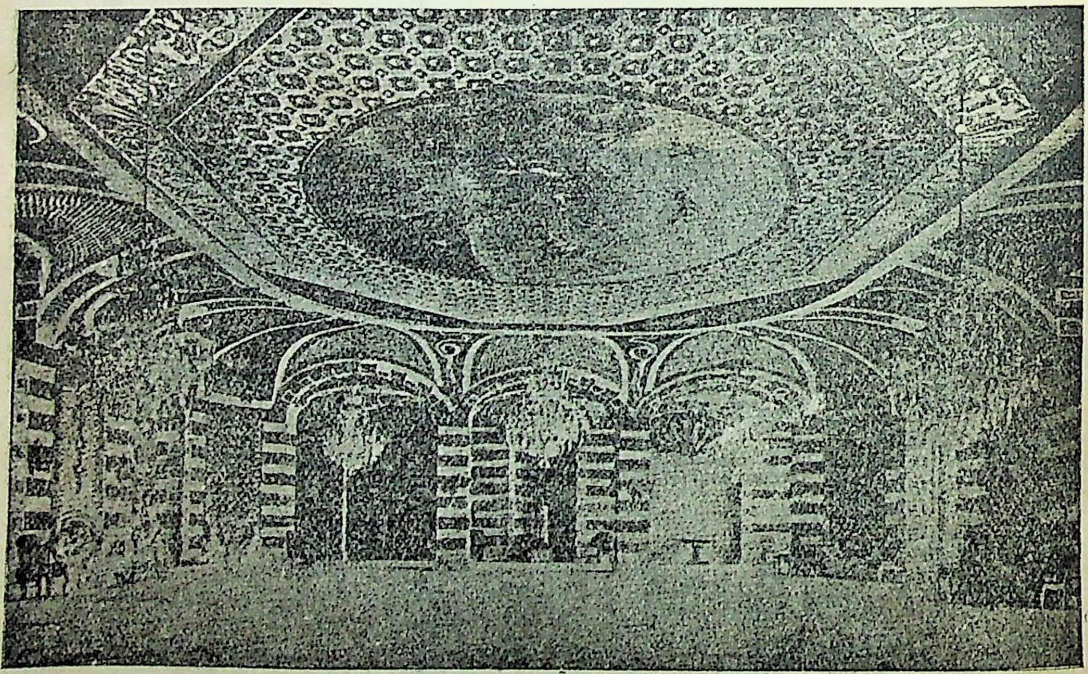
(सांसूसी निश्चिंत भवन, वाल्टेयर का कमरा)



महल की निश्चिंत वाटिका



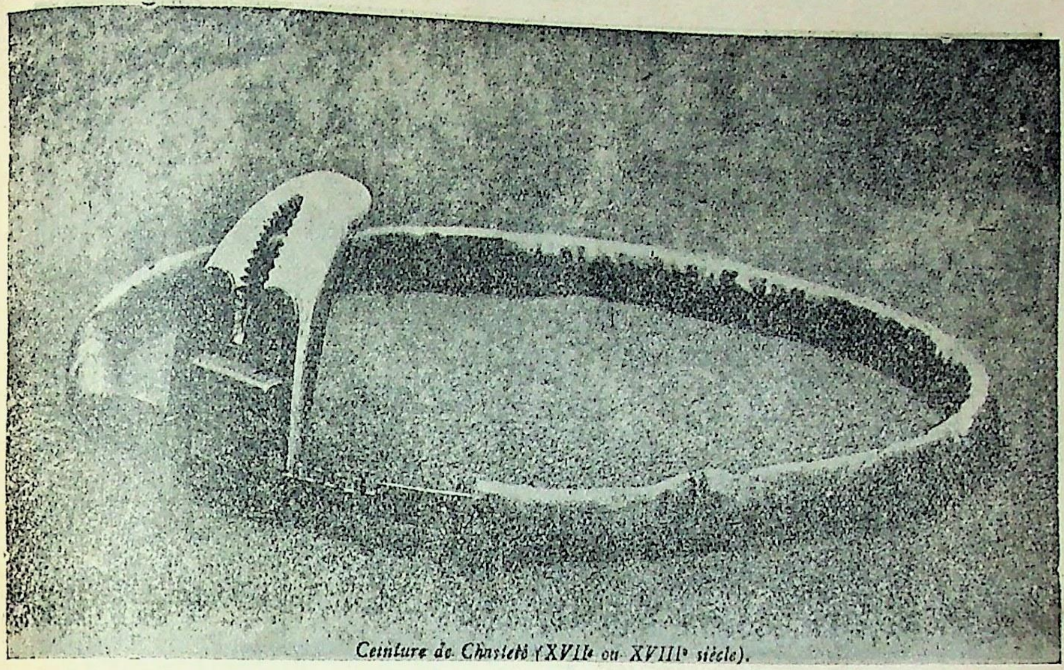
क़ैसर का नया महल
(निर्वासित होने के पहले क़ैसर विलियम इसी में रहते थे)



नए महल का संगीत भवन

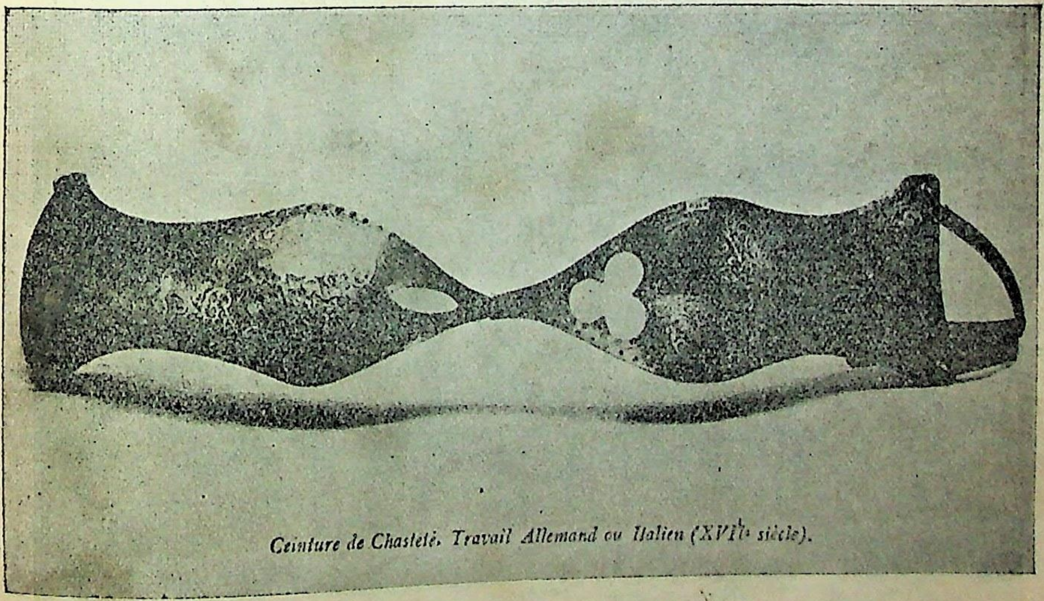
पाट्सडाम में दिन-भर घूमने के उपरांत हम बर्लिन को वापस लौटे।

मालूम होता है, सौ-दो सौ बरस पहले जर्मन और इटालियन पुरुषों को अपनी स्त्रियों का बिलकुल विश्वास न था। जब वे लोग स्त्रियों को घर पर छोड़कर बाहर जाते, तो उनकी कमर में एक विचित्र प्रकार का बेल्ट कसकर उसको ताले से बंद कर देते थे। मैंने इस प्रकार के दो बेल्ट पैरिस के क्लूनी-नामक अजायबघर



Ceinture de Chasteté (XVII^e ou XVIII^e siècle).

सतीत्व-रक्षा की बेल्ट

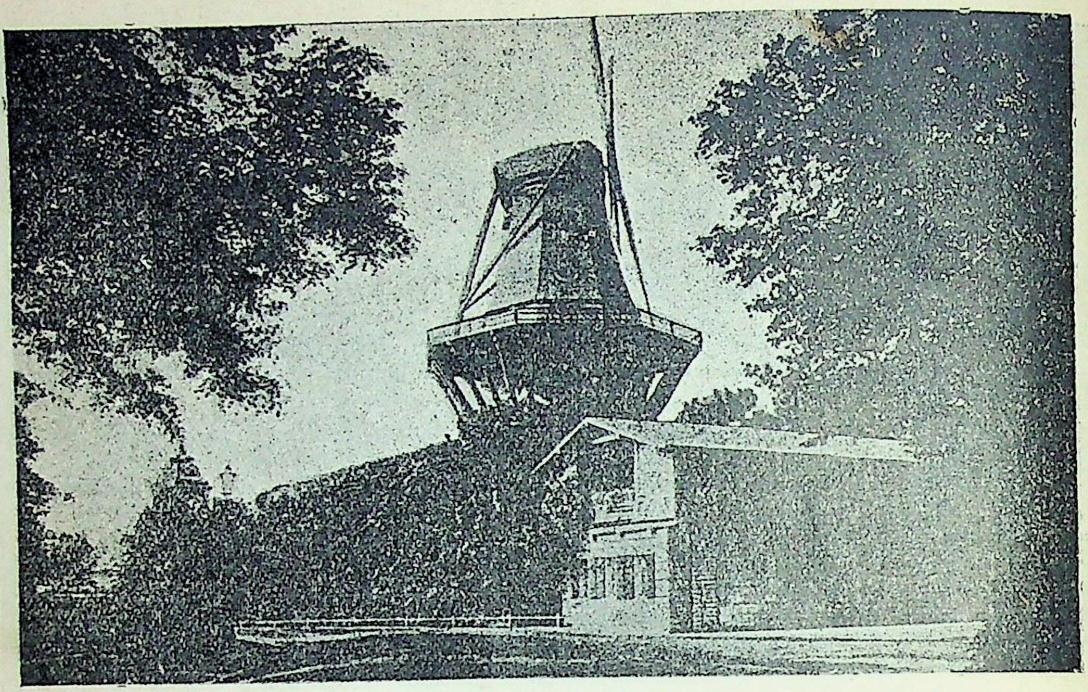


Ceinture de Chasteté. Travail Allemand ou Italien (XVI^e siècle).

सतीत्व-रक्षा की बेल्ट

में देखे थे। उनके चित्र दिए जाते हैं। पुरानी हवाई चक्की का नमूना भी देखिए।

बर्लिन में हम कुल पाँच रोज़ ठहरे। बर्लिन का अजायबघर, जातीय चित्र-शाला, फ़ेडरिक का अजायबघर



प्राचीन हवाई चक्की

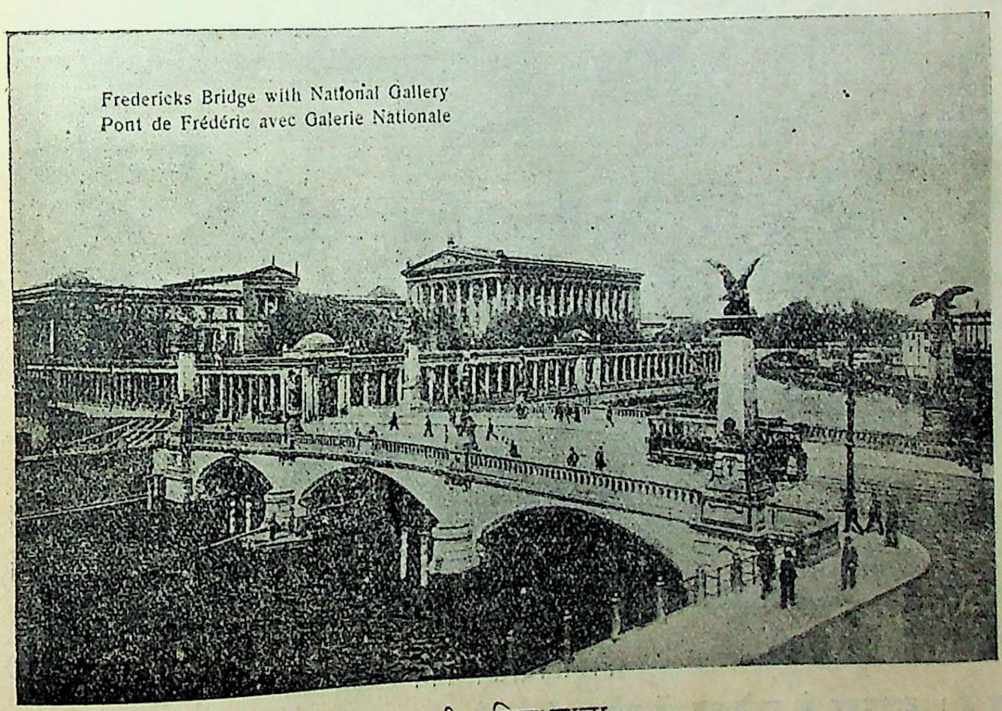


आनंद-वाटिका और अजायबघर



वाटिका, अजायबघर और गिर्जा

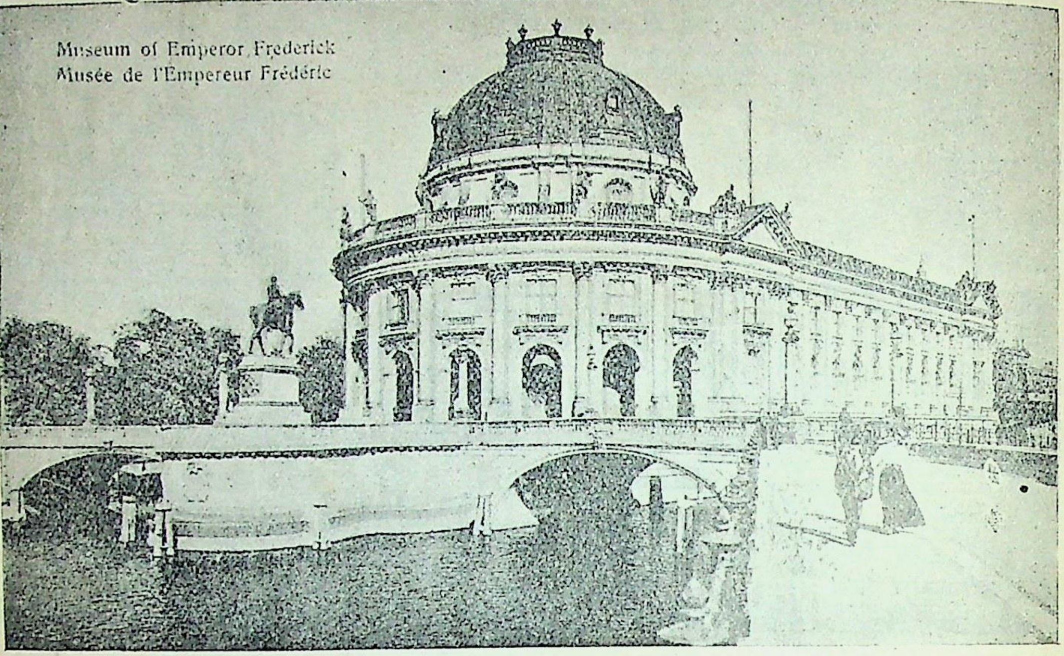
(इस गिर्जे का गुंबद ताँबे से मढ़ा हुआ था । युद्ध-काल में ताँबे के अभाव के कारण इसका ताँबा निकालकर काम में लाया गया था)



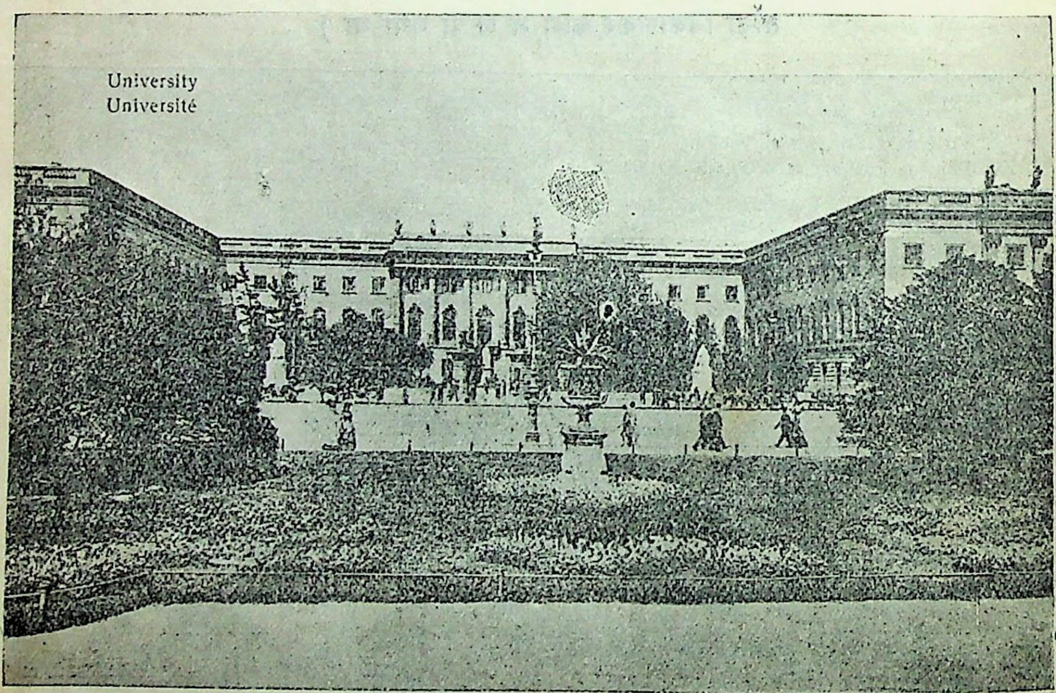
जातीय चित्र-शाला

इत्यादि स्थान और उनकी इमारतें देखने ही योग्य हैं। बर्लिन से मेरे दो मित्र लंदन को लौट गए। रमन और मैं, दोनों लाइपज़िग को रवाना हुए।

बर्लिन से लाइपज़िग का रास्ता कुल तीन या चार घंटे का है। योरप के और नगरों की तरह यह भी बहुत ही सुंदर बना हुआ है । यहाँ का विश्वविद्यालय



क़ैसर फ़्रीड्रिख़ का अजायबघर



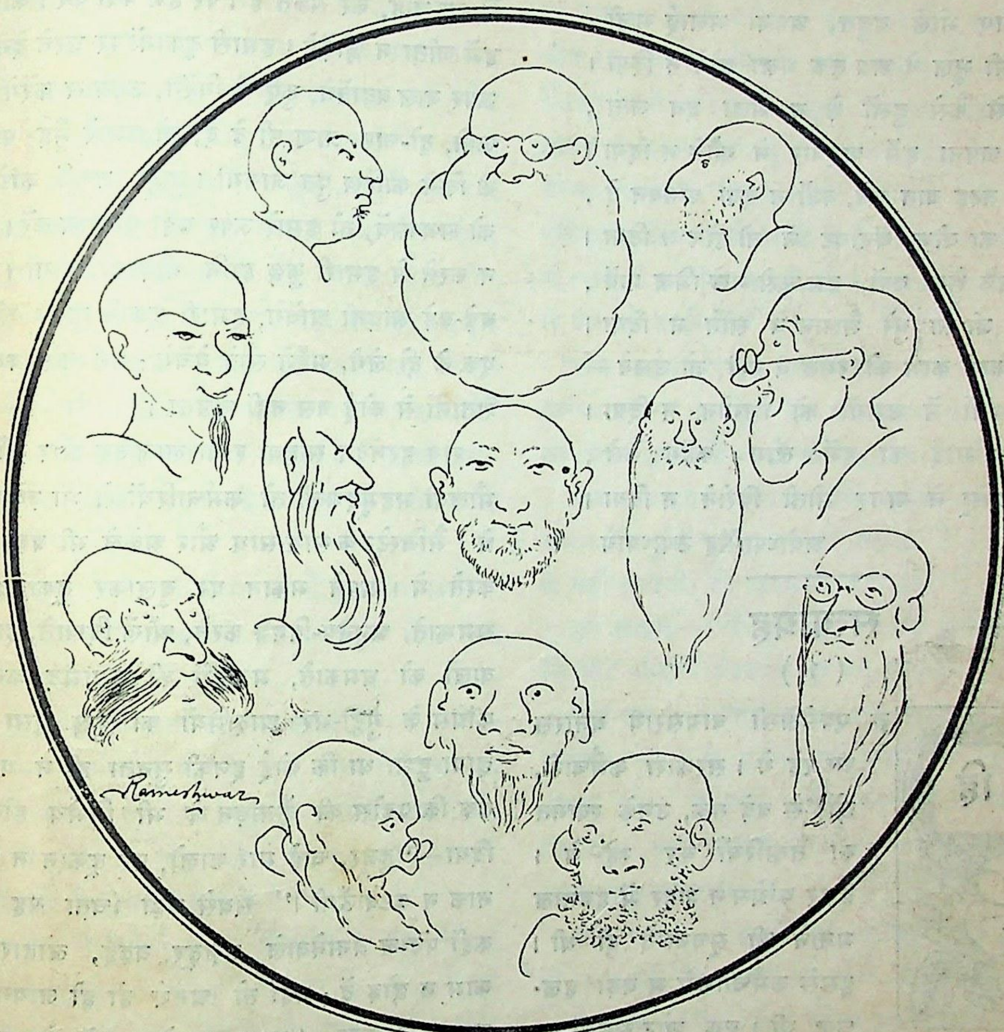
विश्वविद्यालय-भवन

जगत्-प्रसिद्ध है। टायबनर के छापेख़ाने में गणित की पुस्तकें बहुत छपती हैं। हमने कुछ ख़रीदनी चाहीं; पर उन्होंने हमारे हाथ बेचने से इनकार किया। जर्मनी-भर में सिर्फ़ इसी जगह हमको निराश होना पड़ा; और सब जगह जर्मनों ने हम लोगों से अच्छा ही व्यवहार किया। ख़ैर, जो किताबें हमें चाहिए थीं, वे विएना में मिल गईं।

श्यामाचरण

दाढ़ियों की महफ़िल

[चित्रकार—श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा]



सबसे बड़ी दाढ़ीवाले सभापति हैं, और अन्य सब दाढ़ी-संप्रदाय के सदस्य । सब लोग अपनी-अपनी दाढ़ियों की प्रशंसा कर रहे हैं ।

काम की बातें

(द्विपद)

देश को जिसने जगाया, जगा सोने न दिया,
आग घर-घर में बुरी फूट की बोने न दिया,
है वही वीर, पिया दूध उसी ने मा का,
जाति को जिसने जिगर थामके रोने न दिया।
बन गए भोले बहुत, अपनी भलाई भूली;
है इसी भूल ने अब तक भला होने न दिया।
बार से कैसे दुखों के न भला दब जाते,
ऐब अपना हमें अदबार ने खोने न दिया।
किस तरह बात बने, क्यों न दबा अनबन दे,
प्यार का बोझ बनावट ने तो ढोने न दिया।
हो सके मेल क्यों, हम कैसे गले मिल पावें,
मैल जी का बुरे मैलान ने खोने न दिया।
तो किसी काम की रंगत न रही, जो उसने—
भाव-रंगों में उमंगों को भिगोने न दिया।
लाल माई का हमें लोग कहेंगे कैसे,
प्रेम-आँसू ने अगर मोती पिरोने न दिया।

अयोध्यासिंह उपाध्याय

सत्याग्रह

(१)

हिज़ एक्सेलेंसी वायसराय बनारस आ रहे थे। सरकारी कर्मचारी, छोटे से बड़े तक, उनके स्वागत की तैयारियाँ कर रहे थे। इधर कांग्रेस ने शहर में हड़ताल मनाने की सूचना दे दी थी। इससे कर्मचारियों में बड़ी हलचल थी। एक ओर सड़कों पर झंडियाँ लगाई जा रही थीं, सफ़ाई हो रही थी, बड़े-बड़े विशाल फाटक बनाए जा रहे थे, दफ़्तरों की सजावट हो रही थी, पंडाल बन रहा था; दूसरी ओर फ़ौज और पुलीस के सिपाही संगीनें चढ़ाए शहर की गलियों में और सड़कों पर क़वायद करते फिरते थे। कर्मचारियों की सिर-तोड़ कोशिश थी कि हड़ताल न होने पावे, मगर कांग्रेसियों को धुन थी कि हड़ताल हो, और ज़रूर हो। अगर कर्मचारियों को पशु-बल का ज़ोर है, तो हमें नैतिक बल का भरोसा है। इस बार दोनों की परीक्षा हो जाय कि मैदान किसके हाथ रहता है।

घोड़े पर सवार मैजिस्ट्रेट सुबह से शाम तक दूकानदारों को धमकियाँ देता फिरता कि एक-एक को जेल भिजवा दूँगा, बाज़ार लुटवा दूँगा, यह करूँगा और वह करूँगा! दूकानदार हाथ बाँधकर कहते—"हुज़ूर बादशाह हैं, विधाता हैं, जो चाहें, कर सकते हैं। पर हम क्या करें? कांग्रेसवाले हमें जीता न छोड़ेंगे। हमारी दूकानों पर धरने देंगे, हमारे ऊपर बाल बढ़ावेंगे, कुएँ में गिरेंगे, उपवास करेंगे। कौन जाने, दो-चार प्राण ही दे दें, तो हमारे मुँह पर सदैव के लिये कालिख पुत जायगी। हुज़ूर उन्हीं कांग्रेसवालों को समझावें, तो हमारे ऊपर बड़ा एहसान करें। हड़ताल न करने से हमारी कुछ हानि थोड़े ही होगी। देश के बड़े-बड़े आदमी आवेंगे, हमारी दूकानें खुली रहेंगी, तो एक के दो लेंगे, महँगे सौदे बेचेंगे; पर करें क्या, इन शैतानों से कोई बस नहीं चलता।"

राय हरनंदन साहब, राजा लालचंद और ख़ाँ बहादुर मौलवी महमूदअली तो कर्मचारियों से भी ज़्यादा बेचैन थे। मैजिस्ट्रेट के साथ-साथ और अकेले भी बड़ी कोशिश करते थे। अपने मकान पर बुलाकर दूकानदारों को समझाते, अनुनय-विनय करते, आँखें दिखाते, इक्के-बग्गीवालों को धमकाते, मज़दूरों की ख़ुशामद करते; पर कांग्रेस के मुट्ठी-भर आदमियों का कुछ ऐसा आतंक छाया हुआ था कि कोई इनकी सुनता ही न था। यहाँ तक कि पड़ोस की कुँजड़िन ने भी निर्भय होकर कह दिया—"हुज़ूर, चाहे मार डालो, पर दूकान न खुलेगी, नाक न कटवाऊँगी।" सबसे बड़ी चिंता यह थी कि कहीं पंडाल बनानेवाले मज़दूर, बढ़ई, लोहार वग़ैरह काम न छोड़ दें; नहीं तो अनर्थ ही हो जायगा। राय साहब ने कहा—"हुज़ूर, दूसरे शहरों से दूकानदार बुलवावें, और एक बाज़ार अलग खोलें।"

ख़ाँ साहब ने फ़रमाया—"वक़्त इतना कम रह गया है कि दूसरा बाज़ार तैयार नहीं हो सकता। हुज़ूर कांग्रेसवालों को गिरफ़्तार कर लें, या उनकी जायदाद ज़ब्त कर लें, फिर देखिए, कैसे क़ाबू में नहीं आते!" राजा साहब बोले—"पकड़-धकड़ से तो लोग और भी झल्लाएँगे। कांग्रेसवालों से हुज़ूर कहें कि तुम हड़ताल बंद करा दो, तो सब को सरकारी नौकरी दे दी जायगी। उसमें अधिकांश

बेकार लोग भरे पड़े हैं, यह प्रलोभन पाते ही फूल उठेंगे।"

मगर मैजिस्ट्रेट को कोई राय न जँची। यहाँ तक कि वाइसराय के आने में तीन दिन और रह गए।

(२)

आख़िर राजा साहब को एक युक्ति सूझी। क्यों न हम लोग भी नैतिक बल का प्रयोग करें? आख़िर कांग्रेस-वाले धर्म और नीति के नाम पर ही तो यह तूमार बाँधते हैं। हम लोग भी उन्हीं का अनुकरण करें, शेर को उसके माँद में पछाड़ें। कोई ऐसा आदमी पैदा करना चाहिए, जो व्रत करे कि दूकानें न खुलीं, तो मैं प्राण दे दूँगा। यह ज़रूरी है कि वह ब्राह्मण हो, और ऐसा, जिसको शहर के लोग मानते हों, आदर करते हों। अन्य सहयोगियों के मन में भी यह बात बैठ गई। उछल पड़े। राय साहब ने कहा—"बस अब पड़ाव मार लिया। अच्छा, ऐसा कौन पंडित है, पंडित गदाधर शर्मा?"

राजा—"जी नहीं, उसे कौन मानता है? ख़ाली समाचार-पत्रों में लिखा करता है। शहर के लोग उसे क्या जानें?"

राय साहब—"दमड़ी ओझा तो है इस ढंग का?"

राजा—जी नहीं, कॉलेज के विद्यार्थियों के सिवा उसे और कौन जानता है?"

राय साहब—"पंडित मोटेराम शास्त्री?"

राजा—"बस-बस। आपने ख़ूब सोचा। बेशक वह है इस ढंग का। उसी को बुलाना चाहिए। विद्वान् है, धर्म-कर्म से रहता है, चतुर भी है। वह अगर हाथ में आ जाय, तो फिर बाज़ी हमारी है।"

राय साहब ने तुरंत पंडित मोटेराम के घर सँदेसा भेजा। उस समय शास्त्रीजी पूजा पर थे। यह पैग़ाम सुनते ही जल्दी से पूजा समाप्त की, और चले। राजा साहब ने बुलाया है, धन्य भाग! धर्म-पत्नी से बोले—"आज चंद्रमा कुछ बली मालूम होते हैं। कपड़े लाओ, देखूँ, क्यों बुलाया है।"

स्त्री ने कहा—"भोजन तैयार है, करते जाओ; न-जाने कब लौटने का अवसर मिले।"

किंतु शास्त्रीजी ने आदमी को इतनी देर खड़ा रखना उचित न समझा। जाड़े के दिन थे। हरी बनात की अचकन पहनी, जिस पर लाल शंजाफ़ लगी हुई थी। गले में एक ज़री का दुपट्टा डाला। सिर पर बनारसी साफ़ा बाँधा। लाल चौड़े किनारे की रेशमी धोती पहनी, और खड़ाऊँ पर चले। उनके मुख से ब्रह्म-तेज टपकता था। दूर ही से मालूम होता था कि कोई महात्मा आ रहे हैं। रास्ते में जो मिलता, सिर झुकाता। कितने ही दूकानदारों ने खड़े होकर पैलगी की। आज काशी का नाम इन्हीं की बदौलत चल रहा है; नहीं तो और कौन रह गया है। कितना नम्र स्वभाव है। बालकों से हँसकर बातें करते हैं। इस ठाट से पंडितजी राजा साहब के मकान पर पहुँचे। तीनों मित्रों ने खड़े होकर उनका सम्मान किया। ख़ाँ बहादुर बोले—"कहिए पंडितजी, मिज़ाज तो अच्छे हैं? वल्लाह, आप नुमाइश में रखने के क़ाबिल आदमी हैं। आपका वज़न दस मन से कम तो न होगा।"

राय साहब—"एक मन इल्म के लिये दस मन अक़्ल चाहिए। उसी क़ायदे से एक मन अक़्ल के लिये दस मन का जिस्म ज़रूरी है; नहीं तो उसका बोझ कौन उठावे?"

राजा साहब—"आप लोग इसका मतलब नहीं समझते। बुद्धि एक प्रकार का नज़ला है; जब दिमाग़ में नहीं समाती, तो जिस्म में आ जाती है।"

ख़ाँ साहब—"मैंने तो बुज़ुर्गों की ज़बानी सुना है कि मोटे आदमी अक़्ल के दुश्मन होते हैं।"

राय साहब—"आपका हिसाब कमज़ोर था, वर्ना आपकी समझ में इतनी बात ज़रूर आ जाती कि जब अक़्ल और जिस्म में १ और १० की निस्बत है, तो जितना ही मोटा आदमी होगा, उतना ही उसकी अक़्ल का वज़न भी ज़्यादा होगा।"

राजा साहब—"इससे यह साबित हुआ कि जितना ही मोटा आदमी, उतनी ही मोटी उसकी अक़्ल।"

मोटेराम—"जब मोटी अक़्ल की बदौलत राज-दरबार में पूछ होती है, तो मुझे पतली अक़्ल लेकर क्या करना है?"

हास-परिहास के बाद राजा साहब ने वर्तमान समस्या पंडितजी के सामने उपस्थित की, और उसके निवारण का जो उपाय सोचा था, वह भी प्रकट किया। बोले—"बस, यह समझ लीजिए कि इस साल आपका भविष्य पूर्णतया अपने हाथों में है। शायद किसी आदमी को अपने भाग्य-निर्णय का ऐसा महत्त्व-पूर्ण अवसर

न मिला होगा। हड़ताल न हुई, तो और तो कुछ नहीं कह सकते, आपको जीवन-भर किसी के दरवाज़े जाने की ज़रूरत न होगी। बस, ऐसा कोई व्रत ठानिए कि शहरवाले थर्रा उठें। कांग्रेसवालों ने धर्म का अवलंबन करके इतनी शक्ति बढ़ाई है। बस, ऐसी कोई युक्ति निकालिए कि जनता के धार्मिक भावों को चोट पहुँचे।"

मोटेराम ने गंभीर भाव से उत्तर दिया—"यह तो कोई ऐसा कठिन काम नहीं है। मैं तो ऐसे-ऐसे अनुष्ठान कर सकता हूँ कि आकाश से जल की वर्षा करा दूँ; मरी के प्रकोप को भी शांत कर दूँ; अन्न का भाव घटा-बढ़ा दूँ। कांग्रेसवालों को परास्त कर देना तो कोई बड़ी बात नहीं। अँगरेज़ी पढ़े-लिखे महानुभाव समझते हैं कि जो काम हम कर सकते हैं, वह कोई नहीं कर सकता। पर गुप्त विद्याओं का उन्हें ज्ञान ही नहीं।"

ख़ाँ साहब—"तब तो जनाब यह कहना चाहिए कि आप दूसरे ख़ुदा हैं। हमें क्या मालूम था कि आपमें यह क़ुदरत है; नहीं तो इतने दिनों तक क्यों परेशान होते।"

मोटेराम—"साहब, मैं गुप्त धन का पता लगा सकता हूँ, पित्तरों को बुला सकता हूँ; केवल गुण-ग्राहक चाहिए। संसार में गुणियों का अभाव नहीं है, गुणज्ञों का ही अभाव है।—गुन ना हिरानो, गुन-गाहक हिरानो है।"

राजा—"भला इस अनुष्ठान के लिये आपको क्या भेंट करना होगा?"

मोटेराम—"जो कुछ आपकी श्रद्धा हो।"

राजा—"कुछ बतला सकते हैं कि यह कौन-सा अनुष्ठान होगा?"

मोटेराम—"अनशन-व्रत के साथ मंत्रों का जप होगा। सारे शहर में हल-चल न मचा दूँ, तो मोटेराम न म नहीं।"

राजा—"तो फिर कब से?"

मोटेराम—"आज ही हो सकता है। हाँ, पहले देवतों के आवाहन के निमित्त थोड़े-से रुपए दिला दीजिए।"

रुपए की कमी ही क्या थी। पंडितजी को रुपए मिल गए, और वह ख़ुश-ख़ुश घर आए। धर्म-पत्नी से सारा समाचार कहा। उसने चिंतित होकर कहा—"तुमने नाहक़ यह रोग अपने सिर लिया! भूख न बरदाश्त हुई, तो? सारे शहर में भद्द हो जायगी, लोग हँसी उड़ावेंगे। रुपए लौटा दो।"

मोटेराम ने आश्वासन देते हुए कहा—"भूख कैसे न बरदाश्त होगी? मैं ऐसा मूर्ख थोड़े ही हूँ कि यों ही जा बैठूँगा। पहले मेरे भोजन का प्रबंध करो। इमर्तियाँ, लड्डू, रसगुल्ले मँगाओ। पेट-भर भोजन कर लूँ। फिर आधसेर मलाई खाऊँगा, उसके ऊपर आधसेर बादाम की तह जमाऊँगा। बची-खुची कसर मलाईवाले दही से पूरी कर दूँगा। फिर देखूँगा, भूख क्योंकर पास फटकती है। तीन दिन तक तो साँस ही न ली जायगी, भूख की कौन चलावे। इतने में तो सारे शहर में खलबली मच जायगी। भाग्य-सूर्य उदय हुआ है, इस समय आगा-पीछा करने से पछताना पड़ेगा। बाज़ार न बंद हुआ, तो समझ लो, मालामाल हो जाऊँगा। नहीं तो यहाँ गाँठ से क्या जाता है? सौ रुपए तो हाथ लग ही गए।"

इधर तो भोजन का प्रबंध हुआ, उधर पंडित मोटेराम ने डौंड़ी पिटवा दी कि संध्या-समय टाउन-हाल के मैदान में पंडित मोटेराम देश की राजनीतिक समस्या पर व्याख्यान देंगे, लोग अवश्य आवें। पंडितजी सदैव राजनीतिक विषयों से अलग रहते थे। आज वह इस विषय पर कुछ बोलेंगे, सुनना चाहिए। लोगों को उत्सुकता हुई। पंडितजी का शहर में बड़ा मान था। नियत समय पर कई हज़ार आदमियों की भीड़ लग गई। पंडितजी घर से अच्छी तरह तैयार होकर पहुँचे। पेट इतना भरा हुआ था कि चलना कठिन था! ज्यों ही यह वहाँ पहुँचे, दर्शकों ने खड़े होकर इन्हें साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया।

मोटेराम बोले—"नगर-वासियो, व्यापारियो, सेठो, और महाजनो, मैंने सुना है, तुम लोगों ने कांग्रेसवालों के कहने में आकर बड़े लाट साहब के शुभागमन के अवसर पर हड़ताल करने का निश्चय किया है। यह कितनी बड़ी कृतघ्नता है? वह चाहें, तो आज तुम लोगों को तोप के मुँह पर उड़वा दें, सारे शहर को खुदवा डालें। राजा हैं, हँसी-ठट्ठा नहीं। वह तरह देते जाते हैं, तुम्हारी दीनता पर दया करते हैं, और तुम गउओं की तरह हत्या के बल खेत चरने को तैयार हो! लाट साहब

चाहें, तो आज रेल बंद कर दें, डाक बंद कर दें, माल का आना-जाना बंद कर दें। तब बताओ, क्या करोगे? वह चाहें, तो आज सारे शहरवालों को जेल में डाल दें। बताओ, क्या करोगे? तुम उनसे भागकर कहाँ जा सकते हो? है कहीं ठिकाना? इसलिये जब इसी देश में और उन्हीं के अधीन रहना है, तो इतना उपद्रव क्यों मचाते हो? याद रक्खो, तुम्हारी जान उनकी मुट्ठी में है। ताऊन के कीड़े फैला दें, तो सारे नगर में हाहाकार मच जाय। तुम झाड़ू से आँधी को रोकने चले हो? ख़बरदार, जो किसी ने बाज़ार बंद किया; नहीं तो कहे देता हूँ, यहीं अन्न-जल बिना प्राण दे दूँगा—"

एक आदमी ने शंका की—"महाराज, आपके प्राण निकलते-निकलते महीने-भर से कम न लगेगा। तीन दिन में क्या होगा?"

मोटेराम ने गरजकर कहा—"प्राण शरीर में नहीं रहता, ब्रह्मांड में रहता है। मैं चाहूँ, तो योग-बल से अभी प्राण-त्याग कर सकता हूँ। मैंने तुम्हें चेतावनी दे दी; अब तुम जानो, तुम्हारा काम जाने। मेरा कहना मानोगे, तो तुम्हारा कल्याण होगा। न मानोगे, तो हत्या लगेगी, संसार में कहीं मुँह न दिखला सकोगे। बस, यह लो, मैं यहीं आसन जमाता हूँ।"

(३)

शहर में यह समाचार फैला, तो लोगों के होश उड़ गए। अधिकारियों की इस नई चाल ने उन्हें हतबुद्धि-सा कर दिया। कांग्रेस के कर्मचारी तो अब भी कहते थे कि "यह सब पाखंड है। राजभक्तों ने पंडित को कुछ दे-दिलाकर यह स्वाँग खड़ा किया है। जब और कोई बस न चला, फ़ौज, पुलीस, क़ानून, सभी युक्तियों से हार गए, तो यह नई माया रची है। यह और कुछ नहीं, राजनीति का दिवाला है। नहीं तो पंडितजी ऐसे कहाँ के देश-सेवक थे, जो देश की दशा से दुःखी होकर व्रत ठानते। इन्हें भूखों मरने दो, दो दिन में चें बोल जायँगे। इस नई चाल की जड़ अभी से काट देनी चाहिए। कहीं यह चाल सफल हो गई, तो समझ लो, अधिकारियों के हाथ में एक नया शस्त्र आ जायगा, और वह सदैव इसका प्रयोग करेंगे। जनता इतनी समझदार तो है नहीं कि इन रहस्यों को समझे। गीदड़-भबकी में आ जायगी।"

लेकिन नगर के बनिए-महाजन, जो प्रायः धर्म-भीरु होते हैं, ऐसे घबरा गए कि उन पर इन बातों का कुछ असर ही न होता था। वे कहते थे—"साहब, आप लोगों के कहने से सरकार से बुरे बने; नुक़सान उठाने को तैयार हुए; रोज़गार छोड़ा; कितनों के दिवाले हो गए; अफ़सरों को मुँह दिखाने लायक़ नहीं रहे। पहले जहाँ जाते थे, अधिकारी लोग 'आइए सेठजी' कहकर सम्मान करते थे, अब रेलगाड़ियों में धक्के खाते हैं, पर कोई नहीं सुनता; आमदनी चाहे कुछ हो या नहीं, बहियों की तौल देखकर कर (टैक्स) बढ़ा दिया जाता है। यह सब सहा, और सहेंगे, लेकिन धर्म के मामले में हम आप लोगों का नेतृत्व नहीं स्वीकार कर सकते। जब एक विद्वान्, कुलीन, धर्म-निष्ठ ब्राह्मण हमारे ऊपर अन्न-जल त्याग कर रहा है, तब हम क्योंकर भोजन करके टाँगें फैलाकर सोवें? कहीं मर गया, तो भगवान् के सामने क्या जवाब देंगे?"

सारांश यह कि कांग्रेसवालों की एक न चली। व्यापारियों का एक डेपुटेशन नव बजे रात को पंडितजी की सेवा में उपस्थित हुआ। पंडितजी ने आज भोजन तो खूब डटकर किया था, लेकिन डटकर भोजन करना उनके लिये कोई असाधारण बात न थी। महीने में प्रायः २० दिन वह अवश्य ही न्योता पाते थे, और निमंत्रण में डटकर भोजन करना एक स्वाभाविक बात है। अपने सहभोजियों की देखा-देखी, लाग-डाँट की धुन में, या गृह-स्वामी के सविनय आग्रह से, और सबसे बढ़कर पदार्थों की उत्कृष्टता के कारण, भोजन मात्रा से अधिक हो ही जाता है। पंडितजी की जठराग्नि ऐसी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होती रहती थी। अतएव इस समय भोजन का समय आ जाने से उनकी नियत कुछ डावाँ-डोल हो रही थी। यह बात नहीं कि वह भूख से व्याकुल थे, लेकिन भोजन का समय आ जाने पर अगर पेट अफरा हुआ न हो, अजीर्ण न हो गया हो, तो मन में एक प्रकार की भोजन की चाह होने लगती है। शास्त्रीजी की इस समय यही दशा हो रही थी। जी चाहता था, किसी खोंचेवाले को पुकारकर कुछ ले लेते; किंतु अधिकारियों ने उनकी शरीर-रक्षा के लिये वहाँ कई सिपाहियों को तैनात कर दिया था। वे सब हटने का नाम न लेते थे। पंडितजी की विशाल बुद्धि इस समय यही समस्या हल कर रही

थी कि इन यमदूतों को कैसे टालूँ ? ख़ामख़ाह इन पाजियों को यहाँ खड़ा कर दिया ! मैं कोई क़ैदी तो हूँ नहीं कि भाग जाऊँगा ।

अधिकारियों ने शायद यह व्यवस्था इसलिये कर रक्खी थी कि कांग्रेसवाले ज़बरदस्ती पंडितजी को वहाँ से भगाने की चेष्टा न कर सकें । कौन जाने, वे क्या चाल चलें । कहीं किसी कुत्ते ही को उन पर छोड़ दें, या दूर से पत्थर फेकने लगें । ऐसे अनुचित और अपमान-जनक व्यवहारों से पंडितजी की रक्षा करना अधिकारियों का कर्तव्य था ।

वह अभी इसी चिंता में थे कि व्यापारियों का डेपुटेशन आ पहुँचा । पंडितजी कुहनियों के बल लेटे हुए थे, सँभल बैठे । नेताओं ने उनके चरण छूकर कहा—"महाराज, हमारे ऊपर आपने क्यों यह कोप किया है ? आपकी जो आज्ञा हो, वह हम शिरोधार्य करें । आप उठिए, अन्न-जल ग्रहण कीजिए । हमें नहीं मालूम था कि आप सचमुच यह व्रत ठाननेवाले हैं, नहीं तो हम पहले ही आपसे विनती करते । अब कृपा कीजिए, १० बजने का समय है । हम आपका वचन कभी न टालेंगे ।"

मोटेराम—"ये कांग्रेसवाले तुम्हें मटिया-मेट करके छोड़ेंगे ! आप तो डूबते ही हैं, तुम्हें भी अपने साथ ले डूबेंगे ! बाज़ार बंद रहेगा, तो इससे तुम्हारा ही टोटा होगा ; सरकार को क्या ? तुम नौकरी छोड़ दोगे, आप भूखों मरोगे ; सरकार को क्या ? तुम जेल जाओगे, आप चक्की पीसोगे ; सरकार को क्या ? न-जाने इन सब-को क्या सनक सवार हो गई है कि अपनी नाक कटाकर दूसरों का असगुन मनाते हैं । तुम इन कुपंथियों के कहने में न आओ । क्यों, दूकानें खुली रक्खोगे ?"

सेठ—"महाराज, जब तक शहर-भर के आदमियों की पंचायत न हो जाय, तब तक हम इसका बीमा कैसे ले सकते हैं ? कांग्रेसवालों ने कहीं लूट मचवा दी, तो कौन हमारी मदद करेगा ? आप उठिए, भोजन पाइए, हम कल पंचायत करके आपकी सेवा में जैसा कुछ होगा, हाल देंगे ।"

मोटे—"तो फिर पंचायत करके आना ।"

डेपुटेशन जब निराश होकर लौटने लगा, तो पंडितजी ने कहा—"किसी के पास सुँघनी तो नहीं है ?"

एक महाशय ने डिबिया निकालकर दे दी ।

(४)

लोगों के जाने के बाद मोटेराम ने पुलीसवालों से पूछा—"तुम यहाँ क्यों खड़े हो ?"

सिपाहियों ने कहा—"साहब का हुक्म है, क्या करें ?"

मोटे—"यहाँ से चले जाओ ।"

सिपाही—"आपके कहने से चले जायँ ? कल नौकरी छूट जायगी, तो आप खाने को देंगे ?"

मोटे—"हम कहते हैं, चले जाओ ; नहीं तो हम ही यहाँ से चले जायँगे । हम कोई क़ैदी नहीं हैं, जो तुम घेरे खड़े हो ।"

सिपाही—"चले क्या जाइएगा, मजाल है ?"

मोटे—"मजाल क्यों नहीं है बे ! कोई जुर्म किया है !"

सिपाही—"अच्छा जाओ तो, देखें !"

पंडितजी ब्रह्म-तेज में आकर उठे, और एक सिपाही को इतनी ज़ोर से धक्का दिया कि वह कई क़दम पर जा गिरा । दूसरे सिपाहियों की हिम्मत छूट गई । पंडितजी को उन सबने थल-थल समझ लिया था, उनका पराक्रम देखा, तो चुपके से सटक गए ।

मोटेराम अब लगे इधर-उधर नज़रें दौड़ाने कि कोई खोंचेवाला नज़र आ जाय, तो उससे कुछ लें । किंतु तुरत ध्यान आ गया, कहीं उसने किसी से कह दिया, तो ? लोग तालियाँ बजाने लगेंगे । नहीं, ऐसी चतुराई से काम करना चाहिए कि किसी को कानो-कान ख़बर न हो । ऐसे ही संकटों में तो बुद्धि-बल का परिचय मिलता है । एक क्षण में उन्होंने इस कठिन प्रश्न को हल कर लिया ।

दैवयोग से उसी समय एक खोंचेवाला आता दिखाई दिया । ११ बज चुके थे, चारों तरफ़ सन्नाटा छा गया था । पंडितजी ने बुलाया—"खोंचेवाले, ओ खोंचेवाले !"

खोंचेवाला—"कहिए, क्या दूँ ? भूख लग आई न ? अन्न-जल छोड़ना साधुओं का काम है, हमारा-आपका काम नहीं है ।"

पंडित—"अबे क्या बकता है ? यहाँ क्या किसी साधु से कम हैं ? चाहें, तो महीनों पड़े रहें, और भूख-प्यास न लगे । तुझे तो केवल इसलिये बुलाया है कि ज़रा अपनी कुप्पी मुझे दे । देखूँ तो, वहाँ क्या रेंग रहा है । मुझे भय होता है कि साँप न हो ।"

खोंचेवाले ने कुप्पी उतारकर दे दी। पंडितजी उसे लेकर इधर-उधर ज़मीन पर कुछ खोजने लगे। इतने में कुप्पी उनके हाथ से छूटकर गिर पड़ी, और बुझ गई। सारा तेल बह गया। पंडितजी ने उसमें एक ठोकर और लगाई कि बचा-खुचा तेल भी बह जाय।

खोंचेवाला (कुप्पी को हिलाकर)—"महाराज, इसमें तो ज़रा भी तेल नहीं बचा। अब तक चार पैसे का सौदा बेचता, आपने यह खटराग बढ़ा दिया।"

पंडित—"भैया हाथ ही तो है, छूट गिरी, तो अब क्या हाथ काट डालूँ? यह लो पैसे, जाकर कहीं से तेल भरा लेओ।"

खोंचेवाला (पैसे लेकर) "तो अब तेल भरवाकर मैं यहाँ थोड़े ही आऊँगा।"

पंडित—"खोंचा रक्खे जाओ, लपककर थोड़ा तेल ले लो; नहीं मुझे कोई साँप काट लेगा, तो तुम्हीं पर हत्या पड़ेगी। कोई जानवर है ज़रूर। देखो, वह रेंगता है। ग़ायब हो गया। दौड़ जाओ पट्ठे, तेल लेते आओ, मैं तुम्हारा खोंचा देखता रहूँगा। डरते हो, तो अपने रुपए-पैसे लेते जाओ।"

खोंचेवाला बड़े धर्म-संकट में पड़ा। खोंचे से पैसे निकालता है, तो भय है कि पंडितजी अपने दिल में बुरा न मानें कि मुझे बेईमान समझ रहा है। छोड़कर जाता है, तो कौन जाने, इनकी नियत क्या हो। किसी की नियत सदा ठीक नहीं रहती। अंत को उसने यही निश्चय किया कि खोंचा यहीं छोड़ दूँ, जो कुछ तक़दीर में होगा, वह होगा। वह उधर बाज़ार की तरफ़ चला, इधर पंडितजी ने खोंचे पर निगाह दौड़ाई, तो बहुत हताश हुए। मिठाई बहुत कम बच रही थी। पाँच-छः चीज़ें थीं, मगर किसी में दो अदद से ज़्यादा निकालने की गुंजाइश न थी। भंडा फूट जाने का खटका था। पंडितजी ने सोचा, इतने से क्या होगा? केवल क्षुधा और प्रबल हो जायगी, शेर के मुँह खून लग जायगा! गुनाह बे-लज़्ज़त है। अपनी जगह पर आ बैठे। लेकिन दम-भर के बाद प्यास ने फिर ज़ोर किया। सोचे, कुछ तो ढारस हो ही जायगा। आहार कितना ही सूक्ष्म हो, फिर भी आहार ही है। उठे, मिठाई निकाली; पर पहला ही लड्डू मुँह में रक्खा था कि देखा, खोंचेवाला तेल की कुप्पी जलाए क़दम बढ़ाता चला आ रहा है। उसके पहुँचने के पहले मिठाई का समाप्त हो जाना अनिवार्य था। एकसाथ दो चीज़ें मुँह में रक्खीं। अभी चबला ही रहे थे कि वह निशाचर दस क़दम और आगे बढ़ आया। एकसाथ चार चीज़ें मुँह में डालीं, और अधकुचली ही निगल गए। अभी ६ अदत और थीं, और खोंचेवाला फाटक तक आ चुका था। सारी-की-सारी मिठाई मुँह में डाल ली। अब न चबाते बनता है, न उगलते। वह शैतान मोटरकार की तरह कुप्पी चमकाता हुआ चला ही आता था। जब वह बिलकुल सामने आ गया, तो पंडितजी ने जल्दी से सारी मिठाई निगल ली। मगर आख़िर आदमी ही थे, कोई मगर तो थे नहीं, आँखों में पानी भर आया, गला फँस गया, शरीर में रोमांच हो आया, ज़ोर से खाँसने लगे। खोंचेवाले ने तेल की कुप्पी बढ़ाते हुए कहा—"यह लीजिए, देख लीजिए, चले तो हैं आप उपवास करने, पर प्राणों का इतना डर है। आपको क्या चिंता, प्राण भी निकल जायँगे, तो सरकार बाल-बच्चों की परवस्ती करेगी।"

पंडितजी को क्रोध तो ऐसा आया कि इस पाजी को खोंटी-खरी सुनाऊँ, लेकिन गले से आवाज़ न निकली। कुप्पी चुपके से ले ली, और झूठ-मूठ इधर-उधर देखकर लौटा दी।

खोंचेवाला—"आपको क्या पड़ी थी, जो चले सरकार का पच्छ करने? कहीं कल दिन-भर पंचायत होगी, तो रात तक कुछ तय होगा। तब तक तो आपकी आँखों में तितलियाँ उड़ने लगेंगी।"

यह कहकर वह चला गया, और पंडितजी भी थोड़ी देर तक खाँसने के बाद सो रहे।

(४)

दूसरे दिन सबेरे ही से व्यापारियों ने मिस्कौट करनी शुरू की। उधर कांग्रेसवालों में भी हलचल मची। अमन-सभा के अधिकारियों ने भी कान खड़े किए। यह तो इन भोले-भाले बनियों को धमकाने की अच्छी तरकीब हाथ आई। पंडित-समाज ने अलग एक सभा की, और उसमें यह निश्चय किया कि पंडित मोटेराम को राजनीतिक मामलों में पड़ने का कोई अधिकार नहीं है। हमारा राजनीति से क्या संबंध? ग़रज़ सारा दिन इसी वाद-विवाद में कट गया, और किसी ने

पंडितजी की ख़बर न ली। लोग खुल्लम-खुल्ला कहते थे कि पंडितजी ने एक हज़ार रुपए सरकार से लेकर यह अनुष्ठान किया है। बेचारे पंडितजी ने रात तो लोट-पोटकर काटी, पर उठे तो शरीर मुरदा-सा जान पड़ता था। खड़े होते थे, तो आँखें तिलमिलाने लगती थीं, सिर में चक्कर आ जाता था। पेट में जैसे कोई बैठा हुआ कुरेद रहा हो। सड़क की तरफ़ आँखें लगी हुई थीं कि लोग मनाने तो नहीं आ रहे हैं। संध्योपासन का समय इसी प्रतीक्षा में कट गया। इस समय पूजन के पश्चात् नित्य नाश्ता किया करते थे। आज अभी मुँह में पानी भी न गया था। न-जाने वह शुभ घड़ी कब आवेगी। फिर पंडिताइन पर क्रोध आने लगा। आप तो रात को भर-पेट खाकर सोई होगी, इस वक्त भी जल-पान कर ही चुकी होगी, पर इधर भूलकर भी न झाँका कि मरे या जीते हैं। कुछ बात करने ही के बहाने से क्या थोड़ा-सा मोहनभोग बनाकर न ला सकती थी? पर किसे इतनी चिंता है? रुपए लेकर रख लिए, फिर जो कुछ मिलेगा, वह भी रख लेगी। मुझे अच्छा उल्लू बनाया!

क़िस्सा-कोताह पंडितजी ने दिन-भर इंतज़ार किया; पर कोई मनानेवाला नज़र न आया। लोगों के दिल में जो यह संदेह पैदा हुआ था कि पंडितजी ने कुछ ले-देकर यह स्वाँग रचा है, स्वार्थ के वशीभूत होकर यह पाखंड खड़ा किया है, वही उनको मनाने में बाधक होता था।

(६)

रात के ६ बज गए थे। सेठ भोंदूमल ने, जो व्यापारी-समाज के नेता थे, निश्चयात्मक भाव से कहा—"मान लिया, पंडितजी ने स्वार्थ-वश ही यह अनुष्ठान किया है; पर इससे वह कष्ट तो कम नहीं हो सकता, जो अन्न-जल के बिना प्राणी-मात्र को होता है। यह धर्म-विरुद्ध है कि एक ब्राह्मण हमारे ऊपर दाना-पानी त्याग दे, और हम पेट भर-भरकर चैन की नींद सोवें। अगर उन्होंने धर्म के विरुद्ध आचरण किया है, तो उसका दंड उन्हें भोगना पड़ेगा। हम क्यों अपने कर्तव्य से मुँह फेरें?"

कांग्रेस के मंत्री ने दबी हुई आवाज़ से कहा—"मुझे तो जो कुछ कहना था, वह मैं कह चुका। आप लोग समाज के नेता हैं, जो फ़ैसला कीजिए, हमें मंज़ूर है। चलिए, मैं भी आपके साथ चला चलूँगा। धर्म का कुछ अंश मुझे भी मिल जायगा। पर एक विनती सुन लीजिए। आप लोग पहले मुझे वहाँ जाने दीजिए। मैं एकांत में उनसे दस मिनट बातें करना चाहता हूँ। आप लोग फाटक पर खड़े रहिएगा। जब मैं वहाँ से लौट आऊँ, तो फिर जाइएगा।" इसमें किसी को क्या आपत्ति हो सकती थी? प्रार्थना स्वीकृत हो गई।

मंत्रीजी पुलीस-विभाग में बहुत दिनों तक रह चुके थे, मानव-चरित्र की कमज़ोरियों को जानते थे। वह सीधे बाज़ार गए, और ५) की मिठाई ली। उसमें मात्रा से अधिक सुगंध डालने का प्रयत्न किया, चाँदी के वरक़ लगवाए, और एक दोने में लिए रूठे हुए ब्रह्म-देव की पूजा करने चले। एक झज्झर में ठंडा पानी लिया, और उसमें केवड़े का जल मिलाया। दोनों ही चीज़ों से ख़ुशबू की लपटें उड़ रही थीं। सुगंध में कितनी उत्तेजक शक्ति है, कौन नहीं जानता। इससे बिना भूख की भूख लग आती है, भूखे आदमी की तो बात ही क्या?

पंडितजी इस समय अचेत भूमि पर पड़े हुए थे। रात को कुछ नहीं मिला। दस-पाँच छोटी-छोटी मिठाइयों का क्या ज़िक्र। दोपहर को कुछ नहीं मिला, और इस वक्त भी भोजन की वेला टल गई थी। भूख में अब आशा की व्याकुलता नहीं, निराशा की शिथिलता थी। सारे अंग ढीले पड़ गए थे। यहाँ तक कि आँखें भी न खुलती थीं। उन्हें खोलने की बार-बार चेष्टा करते; पर वे आप-ही-आप बंद हो जातीं। ओंठ सूख गए थे। ज़िंदगी का कोई चिह्न था, तो बस, उनका धीरे-धीरे कराहना। ऐसा घोर संकट उनके ऊपर कभी न पड़ा था। अजीर्ण की शिकायत तो उन्हें महीने में दो-चार बार हो जाती थी, जिसे वह हड़ आदि की फंकियों से शांत कर लिया करते थे; पर अजीर्णावस्था में ऐसा कभी न हुआ था कि उन्होंने भोजन छोड़ दिया हो। नगर-निवासियों को, अमन-सभा को, सरकार को, ईश्वर को, कांग्रेस को और धर्म-पत्नी को जी भरकर कोस चुके थे। किसी से कोई आशा न थी। अब इतनी शक्ति भी न रही थी कि स्वयं खड़े होकर बाज़ार जा सकें। निश्चय हो गया था कि आज रात को अवश्य प्राण-पखेरू उड़ जायँगे।

जीवन-सूत्र कोई रस्सी तो है नहीं कि चाहे जितने झटके दो, टूटने का नाम न ले ।

मंत्रीजी ने पुकारा—"शास्त्रीजी !" मोटेराम ने पड़े-पड़े आँखें खोल दीं । उनमें ऐसी करुण वेदना भरी हुई थी, जैसे किसी बालक के हाथ से कौआ मिठाई छीन ले गया हो ।

मंत्रीजी ने दोने की मिठाई सामने रख दी, और झज्झर पर कुल्हड़ औंधा दिया । इस काम से सुचित्त होकर बोले—"यहाँ कब तक पड़े रहिएगा ?"

सुगंध ने पंडितजी की इंद्रियों पर संजीवनी का काम किया । पंडितजी उठ बैठे, और बोले—"देखो कब तक निश्चय होता है ।"

मंत्री—"यहाँ कुछ निश्चय-विश्चय न होगा । आज दिन-भर पंचायत हुआ की, कुछ तय न हुआ । कल कहीं शाम को लाट साहब आवेंगे । तब तक तो आपकी न-जाने क्या दशा होगी । आपका चेहरा बिलकुल पीला पड़ गया है ।"

मोटेराम—"यहीं मरना बदा होगा, तो कौन टाल सकता है ? इस दोने में क़लाक़ंद है क्या ?"

मंत्री—"हाँ, तरह-तरह की मिठाइयाँ हैं । एक नातेदार के यहाँ बैना भेजने के लिये विशेष रीति से बनवाई हैं ।"

मोटेराम—"जभी इनमें इतनी सुगंध है । ज़रा दोना खोलिए तो ।"

मंत्री ने मुसकिराकर दोना खोल दिया, और पंडितजी नेत्रों से मिठाइयाँ खाने लगे । अंधा आँखें पाकर भी संसार को ऐसे तृष्णा-पूर्ण नेत्रों से न देखेगा । मुँह में पानी भर आया । मंत्रीजी ने कहा—"आपका व्रत न होता, तो दो-चार मिठाइयाँ आपको चखाता । ५) सेर के दाम दिए हैं ।"

मोटेराम—"तब तो बहुत ही श्रेष्ठ होंगी । मैंने बहुत दिन हुए क़लाक़ंद नहीं खाया ।"

मंत्री—"आपने भी तो बैठे-बैठाए झंझट मोल ले लिया । प्राण ही न रहेंगे, तो धन किस काम आवेगा ?"

मोटेराम—"क्या करूँ, फँस गया । मैं इतनी मिठाइयों का जल-पान कर जाता था । (हाथ से मिठाइयों को टटोलकर) भोला की दूकान की होंगी ?"

मंत्री—"चखिए दो-चार ।"

मोटेराम—"क्या चखूँ, धर्म-संकट में पड़ा हूँ ।"

मंत्री—"अजी चखिए भी । इस समय जो आनंद प्राप्त होगा, वह लाख रुपए में भी नहीं मिल सकता । कोई किसी से कहने जाता है क्या ?"

मोटेराम—"मुझे भय किसका है ? मैं यहाँ दाना-पानी बिना मर रहा हूँ, और किसी को पर्वा ही नहीं । तो फिर मुझे क्या डर ? लाओ, इधर दोना बढ़ाओ । जाओ, सबसे कह देना, शास्त्रीजी ने व्रत तोड़ दिया । भाड़ में जाय बाज़ार और व्यापार ! यहाँ किसी की चिंता नहीं । जब किसी में धर्म नहीं रहा, तो मैंने ही धर्म का बीड़ा थोड़ ही उठाया है ।"

यह कहकर पंडितजी ने दोना अपनी तरफ़ खींच लिया, और लगे बढ़-बढ़कर हाथ मारने । यहाँ तक कि एक पल भर में आधा दोना समाप्त हो गया । सेठ लोग आकर फाटक पर खड़े थे । मंत्री ने जाकर कहा—"ज़रा चलकर तमाशा देखिए । आप लोगों को न बाज़ार खोलना पड़ेगा, न ख़ुशामद करनी पड़ेगी । मैंने सारी समस्याएँ हल कर दीं । यह कांग्रेस का प्रताप है ।"

चाँदनी छिटकी हुई थी । लोगों ने आकर देखा, पंडितजी मिठाई ठिकाने लगाने में वैसे ही तन्मय हो रहे हैं, जैसे कोई महात्मा समाधि में मग्न हो ।

झोंदूमल ने कहा—"पंडितजी के चरण छूता हूँ । हम लोग तो आ ही रहे थे, आपने क्यों जल्दी की ? ऐसी जुगत बनाते कि आपकी प्रतिज्ञा भी न टूटती, और कार्य भी सिद्ध हो जाता ।"

मोटेराम—"मेरा काम सिद्ध हो गया । यह अलौकिक आनंद है, जो धन के ढेरों से नहीं प्राप्त हो सकता । अगर कुछ श्रद्धा हो, तो इसी दूकान की इतनी ही मिठाई और मँगवा दो ।" *

प्रेमचंद

---

* हम यह कहना भूल गए कि मंत्रीजी को मिठाई लेकर मैदान में आते समय पुलीस के सिपाही को ।) पैसे देने पड़े थे । यह नियम-विरुद्ध था; लेकिन मंत्रीजी ने इस बात पर अड़ना उचित न समझा । लेखक

"देव और विहारी"

"देव और विहारी"-नामक अपूर्व ग्रंथ-रत्न गंगा-पुस्तकमाला का बारहवाँ पुष्प है। इसके लेखक हैं हिंदी-संसार के सुपरिचित पंडित कृष्णविहारीजी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०। पुस्तक का मूल्य ११≈) है। साइज़ १७×२७ सोलह-पेजी है, अतएव २८५ पृष्ठ की इस पुस्तक का इतना मूल्य कोई अधिक नहीं। छपाई और काग़ज़ सुंदर है।

थोड़े दिन हुए, श्रीयुत पं० पद्मसिंहजी शर्मा ने काशी के ज्ञान-मंडल-कार्यालय से एक पुस्तक निकलवाई थी। पुस्तक का नाम तो था "विहारी की सतसई", किंतु वास्तव में वह सतसई की भूमिका-मात्र थी। इसी से हमने यह जान लिया था कि पद्मसिंहजी भ्रांति-अलंकार खूब पसंद करते हैं। इस प्रकार की भ्रांति की अवतारणा ही ने इस तुलनात्मक समालोचना में श्रीपद्मसिंहजी के द्वारा बहुत-सी भ्रांत बातों का उल्लेख करा दिया। "देव और विहारी" के विज्ञ लेखक ने इसी संजीवन-भाष्य की बहुत-सी बातों पर अपने विचार प्रकट किए हैं। अतः हम विद्वद्वर पं० पद्मसिंहजी शर्मा के कृतज्ञ हैं, जिनकी कृपा से हमें एक तरुण साहित्य-सेवी के उचित रूप में दर्शन हुए।

"देव और विहारी" के विषय में हमने पहले "विज्ञान" में प्रकाशित समालोचना पढ़ी थी, और फिर "प्रभा" में पं० गंगाधरजी मिश्र-लिखित उसकी प्रत्यालोचना भी। यही नहीं, किंतु "श्रीशारदा" के वे सभी लेख भी हमने पढ़े हैं, जो विहारी के विषय में लिखे गए हैं। हमने अन्य विद्वानों की लिखी वे आलोचना-प्रत्यालोचनाएँ भी पढ़ी हैं, जो इस विषय पर, समय-समय पर, छपती रही हैं। अतः इतनी आलोचनाएँ प्रकाशित होने पर भी अपने कुछ विचार प्रकट करते हैं।

"देव और विहारी" के विद्वान् लेखक के समालोचना-विषयक विविध विचारों से हम सर्वथा सहमत हैं। यद्यपि हमारे मत में व्रज-भाषा के समान माधुर्य से ओत-प्रोत कविता खड़ी-भाषा में कदापि नहीं हो सकती, तथापि हम मिश्रजी के उदार विचारों का समभिनंदन करते हैं। आपने अपने मत की परिपुष्टि के लिये 'शीतल' जी के कतिपय समयोचित उदाहरण दिए हैं; किंतु हम पूछना चाहते हैं कि वर्तमान खड़ी-बोली की भयावह खड़खड़ाहट में कितनी शीतलता है?

तुलनात्मक समालोचना के आरंभ में विहारी का एक दोहा दिया है। उसका भाव यह है—कोई नायिका सखी से कह रही है कि "ये नेत्र लाजरूपी लगाम को नहीं मानते। ये मेरे वश में नहीं। ये मुँह-ज़ोर (लगाम की पर्वा न करनेवाला) घोड़े की भाँति लगाम खींचते रहने पर भी जिधर चाहते हैं, चले जाते हैं। यथा—

लाज-लगाम न मानहीं, नैना मो बस नाहिं;
ये मुँह-ज़ोर तुरंग लौं ऐंचत हू चलि जाहिं।

दोहे का भाव बहुत अच्छा है। भला विहारीजी ऐसे शुभ अवसर पर क्यों चूकते? यह रूपक और तीसरी विभावना से परिपुष्ट पूर्णोपमा-अलंकार है। किंतु इसकी तुलना में मतिराम का जो दोहा दिया गया है, हमारी सम्मति में, वह इससे कहीं अच्छा बन पड़ा है। यद्यपि मतिराम ने अपने पूर्ववर्ती कविवर विहारीलाल के भाव अपनाए हैं, तथापि 'लौं' को निकाल देने के कारण उन्होंने मज़मून छीन * लिया है। मतिराम का दोहा यह है—

मानत लाज-लगाम नहिं, नेकु न गहत मरोर;
होत लाल लखि, बाल के दृग-तुरंग मुँह-जोर।

अपनी-अपनी रुचि ही तो ठहरी। हमें तो इस अवसर पर विहारी से मतिराम अच्छे प्रतीत हुए। लाल और बाल शब्द बड़े ही मनोरम प्रयुक्त हुए हैं। 'लौं' से कविता-कामिनी की कमनीयता में गहरी भर (लौं=

---

*—ग्यारहवीं शताब्दी में होनेवाले महाकवि राजशेखरजी ने अपनी "काव्य-मीमांसा" में स्पष्ट आज्ञा दे दी है कि—

"नास्त्यचौरः कविजनो नास्त्यचौरो वणिग्जनः;
स नंदति सभामध्ये यो जानाति निगूहितुम्।"

अतः पं० पद्मसिंहजी के मतानुसार तो मतिरामजी ने विहारी से मजमून छीन लिया है, फिर पद्मसिंहजी के पक्षाघात-रोग से पीड़ित पक्षपाती क्यों रुष्ट हैं?

शिखा) लगती थी. महाकवि मतिरामजी ने उससे बचा लिया। हम इस सहृदयता, इस सफलता पर मतिराम को बधाई देते हैं।

यह बात नहीं है कि मिश्रजी ने कविवर 'देव' को विहारी से सभी जगह श्रेष्ठ ठहराया हो; प्रत्युत जहाँ विहारीजी देवजी से उत्कृष्ट जँचे, वहाँ आपने साफ़ तौर पर वह कह दिया है। उदाहरणार्थ, विरह-जन्य कृशता के वर्णन में आपने केशव, विहारी, मतिराम और देव के तुलनात्मक उदाहरण जहाँ दिए हैं, वहाँ उल्लिखित तीनों कवियों की भूरि-भूरि प्रशंसा करके महाकवि देव के विषय में अपनी निम्न-लिखित सम्मति दी है—

"केशव, विहारी एवं मतिराम ने कृशता की जो अवस्था दिखलाई है, उस तक देवजी नहीं पहुँचे।" इससे स्पष्ट है कि आपने श्री० पं० पद्मसिंहजी की भाँति (वकील होकर भी) वकालत नहीं की है।

आगे चलकर मिश्रजी ने 'मधुप' द्वारा बँगला से अनूदित श्रीमाइकेल मधुसूदन दत्त की कविता के कुछ उदाहरण बानगी के तौर पर तोष, और सूर आदि की कविता के प्रसंग में रख दिए हैं; किंतु हमारी सम्मति में उन महाकवियों की श्रेणी में मधुसूदन दत्त के उदाहरण नितांत नीरस और भद्दे हैं। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि हम माइकेल मधुसूदन दत्त के काव्य 'मेघनाद-वध' को आदर की दृष्टि से नहीं देखते। हमारा निवेदन यह है कि 'दत्त महोदय 'विरहिणी व्रजांगना' लिखने में, प्राचीन महाकवियों की तुलना में, नितांत असफल रहे'। मिश्रजी के भी कुछ इसी प्रकार के मिलते-जुलते उद्गार हैं। अतः हम मिश्रजी से इस अंश में सर्वथा सहमत हैं।

मिश्रजी का साहित्य-परिज्ञान भी पर्याप्त जान पड़ता है; क्योंकि आपने "कूजि उठे चटकाली, चहुँ-दिशि फैल गई नभ-ऊपर लाली" इस पद्य के 'कूजि'-शब्द के विषय में श्रीपद्मसिंहजी के मत का खूब ही खंडन किया है। आपने तुलसी, सूर, रघुनाथ, भारतेंदु हरिश्चंद्र आदि के सुंदर प्रमाण दिए हैं। इससे आपकी अध्ययन-शीलता का अच्छा परिचय मिलता है। मिश्र महोदय ने इसी विषय में 'हिंदी शब्द-सागर' का भी प्रमाण दिया है। हमें भी आशा नहीं कि कवि-सम्राट् तुलसी और सूर भी ऐसी भूल करें।

मिश्र-बंधु और पद्मसिंहजी ने कतिपय आक्षेप किए हैं, उन्हीं का उत्तर देते हुए आपने अत्यंत सहृदयता से अपने विचार प्रकट किए हैं। कविवर विहारी का एक दोहा इस प्रकार है—

पावस-घन-अँधियार महँ, रह्यो भेद नहिं आन ;
राति द्यौस जान्यो परत, लखि चकई-चकवान।

इस दोहे में कविवर विहारीजी ने वर्षा का वर्णन करते हुए चकई-चकवे का उल्लेख किया है। इस पर मिश्र-बंधुओं ने अपने 'नवरत्न' में लिखा कि विहारी के इस प्रकृति-निरीक्षण में ग़लती है। इस पर पद्मसिंहजी ने एक सुभाषित-रत्न-भांडागार का पद्य भी प्रमाण में दिया, और अपनी प्रकृति के अनुसार कुछ दिल्लगी भी उड़ाई।

पं० कृष्णविहारी मिश्र ने तुलसीदासजी का एक ज़बरदस्त प्रमाण दिया है। यथा—

"देखिय चक्रवाक खग नाहीं ; कलिहि पाय जिमि धर्म पराहीं।"

मिश्रजी ने केशव और हिंदी-शब्द-सागर का भी प्रमाण दिया है कि वर्षा-ऋतु में चक्रवाक * नहीं होते।

चक्रवाक के विषय में मिश्रजी ने अपने विचार यथेष्ट विस्तृत रूप से व्यक्त किए हैं। मिश्रजी की लेखन-शैली प्रौढ़, सरस तथा अर्थ-गौरव आदि विविध गुणों से संपन्न है। यह बात दूसरी है कि दूसरे की दिल्लगी उड़ाकर पद्मसिंहजी के अनुयायी देवजी को उपेक्षणीय समझें। भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने भी कविवर देव की अच्छी प्रशंसा की है; किंतु सहृदयता की मूर्ति पद्मसिंहजी ने देव और सूरदासजी की उपेक्षा क्यों की, यह समझ में नहीं आता।

* लेखक की सम्मति हिंदी-शब्द-सागर के पाँच जजों की इस सम्मति के सर्वथा विरुद्ध है कि चकई-चकवा एक हंस की जाति का पक्षी है। चकई-चकवा और हंस से संबंध ही क्या? कल आप बक को भी हंस की जाति का पक्षी बनाने के लिये तैयार हो जायँगे! इतनी बात तो मैं भी कह सकता हूँ कि संस्कृत-साहित्य में इसका वर्णन वर्षा-ऋतु में आता है। हाँ, हिंदी के कवियों ने इधर इसका वर्णन नहीं किया। अतः इस पर विद्वानों में मतभेद भी होना संभव है। यही मिश्रजी का भी कथन है।

विहारी को हम हिंदी का कालिदास मानते हैं, किंतु साथ ही तुलसी और सूर तथा केशव और देव को क्रमशः आदि-कवि व्यास, भारवि और माघ समझते हैं। हमारी सम्मति में सूर से बढ़ना तो दूर रहा, विहारी वहाँ तक पहुँच भी नहीं पाए हैं । हमारी राय में विहारी ने, इस प्रसंग में, अपने पूर्ववर्ती महाकवि सूरदासजी के भाव ग्रहण किए हैं, न कि पद्मसिंहजी के कथनानुसार मज़मून छीना । विहारी का एक दोहा इस प्रकार है—

कहा लड़ैते दृगकरे ? पड़े लाल बेहाल ;
कहुँ मुरली, कहुँ पीत पट, कहूँ लकुट, बनमाल।

इस दोहे पर मिश्रजी का कथन है—"यह दोहा भी परम प्रसिद्ध विहारीलाल की मनोरम उक्ति है। इस दोहे से सतसई एवं विहारीलाल का गौरव है, इत्यादि।" मिश्रजी की यह उदारता अभिनंदनीय है । अब साहित्य-सूर्य श्रीसूरदासजी का भी यही वर्णन देखिए—

चितई चपल नयन की कोर ;
मनमथ-बान दुसह, अनियारे निकरी फूटि हिये वहि ओर,
अति व्याकुल धुकि, धरनि परे, जिमि तरुन तमाल पवन के जोर ;
कहुँ मुरली, कहुँ लकुट मनोहर, कहुँ पट, कहूँ चंद्रिका-मोर।
छन बूड़त, छन-ही-छन उछरत, बिरह सिंधु के परे झकोर ;
प्रेम-सलिल भीज्यो पीरो पट, फट्यो निचोरत अँचरा छोर ।
फुरै न बचन, नयन नहिं उघरत, मानहु कमल भए बिनभोर ;
'सूर' सु-अधर-सुधारस सींचहु, मेटहु मुरछा नंदकिशोर ।

सूर की प्रतिभा के सम्मुख विहारी की कविता-तारावली सचमुच यहाँ पर, विहारी ही के शब्दों में, 'भोर-तरैयाँ' हो गई है। यदि इतनी सरस कविता भी विहारीजी के पक्षपातियों को सुंदर न जँचे, तो उनके हृदय-तल-स्पर्शी पक्षपात को हटा देना किसी भी सहृदय व्यक्ति के वश का काम नहीं। हमारी राय में विहारीजी ने बहुत कुछ कह डाला है । जितना दोहे-जैसे छोटे-से-छोटे छंद में कहा जा सकता था, कह दिया ; किंतु सूरदास-जी से बढ़ नहीं पाए, अपितु पीछे ही रहे हैं। महाकवि सूरदास विहारी से पूर्व के कवि हैं, फिर भी विहारी उनसे बढ़ नहीं सके ।

आगे चलकर मिश्रजी ने एक कविता सूरदास की ओर दी है ; जिसमें खंडिता नायिका ने विविध-गोपिका-विहारी भगवान् मुरली-मनोहर को खूब ही धमकी दी है । मिश्रजी ने विहारी के पक्षपातियों को बल-पूर्वक आह्वान (चैलेंज) किया है कि वे महाकवि विहारीलाल की कविता में ऐसा कोई सरस पद्य निकाल दें। स्थानाभाव से हम सूरदास की उस कविता को यहाँ पर लिखने के लोभ को संवरण करते हैं ; परंतु इतना अपनी ओर से अवश्य कहे देते हैं कि वास्तव में वह कविता ऐसी ही मनोरम है, जिसका मुक़ाबला विहारी की प्रतिभा कदापि नहीं कर सकती । इतनी सरस और मधुर कविता विश्व-साहित्य में शायद ही मिले ।

समालोचक के भाग्य में पौरोभाग्य भी बदा ही है, अतः इस ग्रंथ-रत्न की कतिपय त्रुटियों पर पड़ती हुई दृष्टि को भी हम नहीं रोक सकते । पुस्तक में एक-आध स्थल पर 'वैयाकरणा' आदि अशुद्ध शब्द खटकते हैं । कहीं-कहीं मुहावरे भी, हमारी सम्मति में, अपनी विशेष रोचकता खो बैठे हैं । यथा—

'डरावनी दृष्टि, ग़ज़ब गिरानेवाली आवाज़ ।' यहाँ पर ग़ज़ब-शब्द उर्दू का है, अतः 'ग़ज़ब ढानेवाली आवाज़' होना चाहिए था । आगे चलकर आपने लिखा है—'मानस-पट तक पहुँचा दिया' । हमारी सम्मति में इस स्थान पर 'मानस-पट पर अंकित कर दिया' होना चाहिए था, इत्यादि ।

आगे आपने लिखा है "गर्व-स्वभावा प्रौढ़ा स्वकीया की पूर्वानुराग वियोग-दशा का चित्र देखिए ।" हमारी सम्मति में यह ठीक नहीं ; क्योंकि आपके लिखने से तो ऐसा ज्ञात होता है कि कदाचित् मुग्धा भी गर्व-स्वभावा होती है । गर्व-स्वभावा प्रौढ़ा लिखना ठीक नहीं ; क्योंकि विशेषण का लक्षण तो यही है न कि 'इतरव्यावर्तकं विशेषणम्' ? किंतु इस पद ने यहाँ पर गड़बड़ मचा दी। आगे चलकर आपने लिखा है कि "प्रच्छन्न-शृंगार में ओज-गुण खूब ही फबता है।" हम इससे सर्वथा सहमत नहीं ; क्योंकि ओज और शृंगार का (चाहे वह प्रच्छन्न हो, चाहे अप्रच्छन्न) नितांत विरोध है । इसी प्रकार कुछ अन्य बातें भी विचारणीय हैं । स्थानाभाव-वश यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया जा सका । आशा है, वे कतिपय त्रुटियाँ अगले संस्करण में सुधार दी जायँगी ।

अंत में अब अधिक न लिखकर हम 'गंगा-पुस्तक-माला' के संचालकों को धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने ऐसी सुंदर पुस्तक प्रकाशित कर हिंदी-साहित्य के एक अभाव की पूर्ति की है। हमारी सम्मति में पुस्तक में गुणों की ही प्रधानता अधिक है। हम पं० कृष्ण-विहारीजी से भी एक-मात्र यही प्रार्थना करते हैं कि यदि वह महाकवि 'देव' के समस्त ग्रंथ 'गंगा-पुस्तकमाला' में छपवा दें, तो मातृ-भाषा का बड़ा उपकार हो। हमारी सम्मति में पुस्तक अवश्य आदरणीय है।

रामस्वरूप शर्मा "शार्दूल"

तिब्बत *

(१)

तिब्बत का नाम बहुतों ने सुना होगा, मगर उसका हाल बहुत कम लोग जानते होंगे। इसका कारण यही है कि एक तो वह पहाड़ी शीत-प्रधान देश यों ही दुर्गम है, दूसरे वहाँ के लोग अपने यहाँ किसी विदेशी को घुसने देना नहीं चाहते। स्वामी दयानंदजी ने तिब्बत को ही त्रिविष्टप माना है। त्रिविष्टप स्वर्ग का ही दूसरा नाम है। इसमें संदेह नहीं कि तिब्बत प्राकृतिक शोभा में स्वर्ग के ही समकक्ष है।

तिब्बत को काश्मीर से कामरूप तक फैला हुआ और आकाश से बातें कर रहा हिमालय पर्वत अपनी आड़ में छिपाए हुए है। जगत् में समय-समय पर जो कुछ परिवर्तन हुए हैं, और हो रहे हैं, उनका असर आज तक तिब्बत तक नहीं पहुँचा। वर्तमान सभ्यता के सफ़ेदपोश दुर्दांत दस्युओं का दल उन्नति की जलती हुई मशाल हाथ में लिए बार-बार तिब्बत के द्वार पर व्यर्थ धक्के मार-मारकर लौट गया है। प्राचीनतम प्राच्य आदर्श को वह देश अब भी प्राण-पण से पकड़े हुए है, और सदा से 'नूतन' और 'नवीनता' को उपेक्षा की दृष्टि से देखता आया है।



तिब्बत का मान-चित्र

हिमालय के उस पार की तरहटी से शुरू करके चीन की दक्षिण-पश्चिम की सरहद तक विस्तृत लंबा-चौड़ा पहाड़ी प्रदेश ही तिब्बत कहलाता है। चीन और तिब्बत को ऐंतज़े-नदी ही अलग करती है; अर्थात् यह नदी ही दोनों देशों की सीमा-रेखा है। नदी बहुत दूर तक चली गई है। सारे चीन में घूमती-फिरती हुई यह नदी एक हज़ार साढ़े सात सौ कोस के लगभग जाकर समुद्र में मिली है। तिब्बत का घेरा चार लाख तिरसठ हज़ार वर्ग-

* यह लेख डॉ० शेल्टन के एक लेख के आधार पर लिखित भारतवर्ष में प्रकाशित लेख के कुछ अंश का अनुवाद है। उक्त सज्जन अमेरिकन थे। सत्रह-अठारह वर्ष तिब्बत में रहकर इन्होंने जो जानकारी हासिल की थी, वह इस प्रबंध में व्यक्त की है। बड़े दुःख की बात है कि दुष्ट तिब्बती डाकुओं ने पिछले वर्ष इनकी हत्या कर डाली!

लेखक

मील है, और जन-संख्या अंदाज़न् ६० लाख के लगभग। वहाँ कभी मनुष्य-गणना की व्यवस्था न होने के कारण ठीक-ठीक जन-संख्या नहीं बतलाई जा सकती। एक बार, प्रायः २०० वर्ष पहले, चीनी लोगों ने केवल तिब्बत के लामा और लेटी लोगों का हिसाब लगाया था। तब ३ लाख १६ हज़ार के लगभग लामा और ६ लाख ३१ हज़ार के लगभग लेटी लोग थे। तिब्बत के चारों ओर की पहाड़ी भूमि जगह-जगह पर १२,००० से १६,००० फ़ीट तक ऊँची है। कोई-कोई पर्वत की चोटी २०,००० फ़ीट से भी ऊँची है!

इस पहाड़ी मनोहर देश में पर्यटन करनेवाले को अनेक तंग और ऊँची पहाड़ी घाटियाँ तय करनी पड़ती हैं। उन



देम का शासक, उसकी स्त्री और नक़ीब

घाटियों के आस-पास के प्राकृतिक दृश्य ऐसे अपूर्व रमणीय हैं कि दर्शक चित्र लिखित-सा खड़ा होकर देखने लग जाता है; उधर से नेत्र हटाना उसके लिये असंभव ही हो जाता है। यह कहना भी अत्युक्ति नहीं कि वैसी शोभा शायद पृथ्वी पर और कहीं न होगी। सचमुच वह स्वर्ग-भूमि जान पड़ती है। स्वच्छ आकाश के निर्मल दिन में जहाँ तक दिखाई पड़ता है, जान पड़ता है, सैकड़ों कोसों तक फैले हुए आकाश को छू रहे असंख्य शैल-शिखर, सूर्य की किरणें पड़ने से इंद्र-धनुष के समान सतरंगी बहार दिखानेवाला बर्फ़ का मुकुट सिर पर पहने, जैसे तन्मय, तद्गत-चित्त होकर उन जगत्पिता परम प्रभु चरम सुंदर के ध्यान में मग्न हो रहे हैं। नीचे, पर्वत की तरहटी में, बहुत दूर तक जंगलों का सिलसिला नज़र आता है। रंग-रंग के पहाड़ी फूल फूल रहे हैं। वह प्राकृतिक वन-श्रेणी जैसे इंद्र के नंदन-कानन को भी अपनी शोभा से हँसती है। बीच-बीच में नीले रंग के पहाड़ों में स्वच्छ जल के जलाशय देखकर प्रतीत होता है कि वनदेवियों ने या साक्षात् प्रकृति-महारानी ने अपने शृंगार की शोभा देखने के लिये दर्पण रख छोड़े हैं। अथवा वे उन पर्वतों के लोल लोचन हैं, जो अपनी सौंदर्य-सुषमा में मग्न होकर आनंदातिरेक से चमक रहे हैं। वास्तव में वह शोभा देखने योग्य है; वाणी में उसके वर्णन की शक्ति नहीं!

तिब्बती लोगों की आदि-उत्पत्ति का कोई ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य समझा जानेवाला वृत्तांत नहीं मिलता।



बाताङ के प्रधान पुरोहित और उनके अनुचरवर्ग

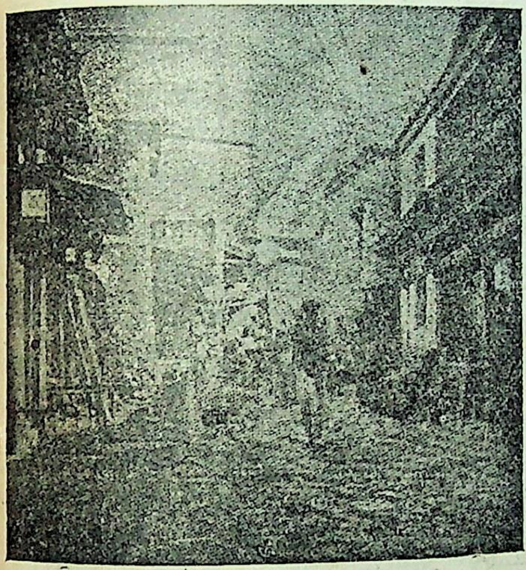
उनकी सूरत-शकल न चीनी लोगों से ही मिलती है, और न बर्मा-वासियों से ही। मानव-तत्त्व के पंडितों ने उनके रंग और शरीर की गढ़न आदि के आधार पर अनुमान किया है कि वे मंगोलियन ज़ाति ही की शाखा हैं। तिब्बती लोगों में, उनकी उत्पत्ति के संबंध में, एक किंवदंती प्रचलित है। वे लोग कहते हैं, किसी बहुत प्राचीन युग में हिमालय की एक देव-कन्या के साथ दैवसंयोग-वश भारत के किसी भाग्यशाली पुरुष का सम्मिलन हो गया

था, और उन्हीं की संतानों के वंशधर हम (आधुनिक तिब्बती) लोग हैं।

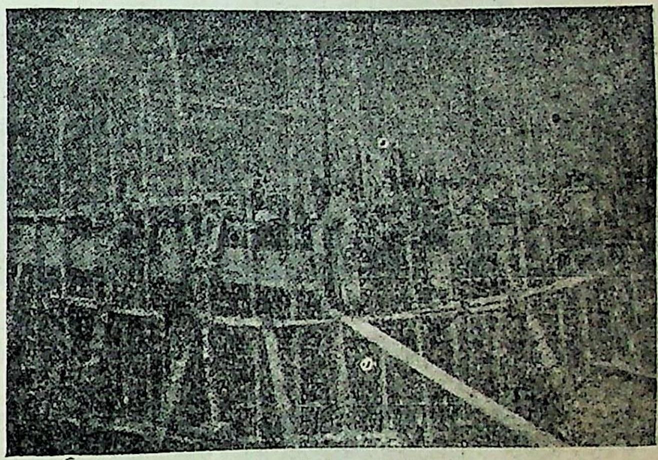
तिब्बत की पूर्व-सीमा के प्रदेश का नाम 'क्षेम' है। प्राकृतिक शोभा और सौंदर्य में यह प्रदेश तिब्बत के अन्य सभी प्रदेशों से बढ़कर है। यहाँ के निवासी बड़े ताक़तवर होते हैं। इनमें से अधिकांश लोग 'यायावर' हैं, अर्थात् एक जगह घर बनाकर नहीं रहते। ये घूमते-फिरते रहते हैं। इनके साथ इनकी संपत्ति भेंड़ों और नीलगायों का दल रहता है। नीलगायों के काले रोमों के बने तंबू तानकर रास्ते में, उन्हीं में, अपने जीवन के अधिकांश दिन ये लोग बिता देते हैं। वहाँ खेती जो कुछ थोड़ी-बहुत होती है, उसे पहाड़ की तरहटी के लोग ही करते हैं।

किसान लोग घर में बहुत कम पशु-पक्षी पालते हैं। वे नीलगाय से ही ज़मीन जुतवाते हैं। वहाँ के हल वही पुराने ज़माने के ढंग के और लकड़ी के बने होते हैं। ज़मीन जोतने और बीज बोने का काम मर्द लोग ही करते हैं, किंतु फ़सल औरतें काटती हैं। वे लोग कच्चे नाज को पकने न देकर वैसे ही पीस डालते हैं, और साथ ही भूनकर भर रखते हैं। यही उनका प्रधान खाद्य है। इसे वे लोग 'स्टंबा' कहते हैं।

इतना सर्द मुल्क होने पर भी अधिकांश तिब्बती खटिया या तख़्त का व्यवहार करना नहीं जानते। सब लोग घर में जल रही आग की तरफ़ पैर फैलाकर फ़र्श पर ही लेट रहते हैं। आग की ओर पैर करके सोने की



बाताङ शहर की सड़क



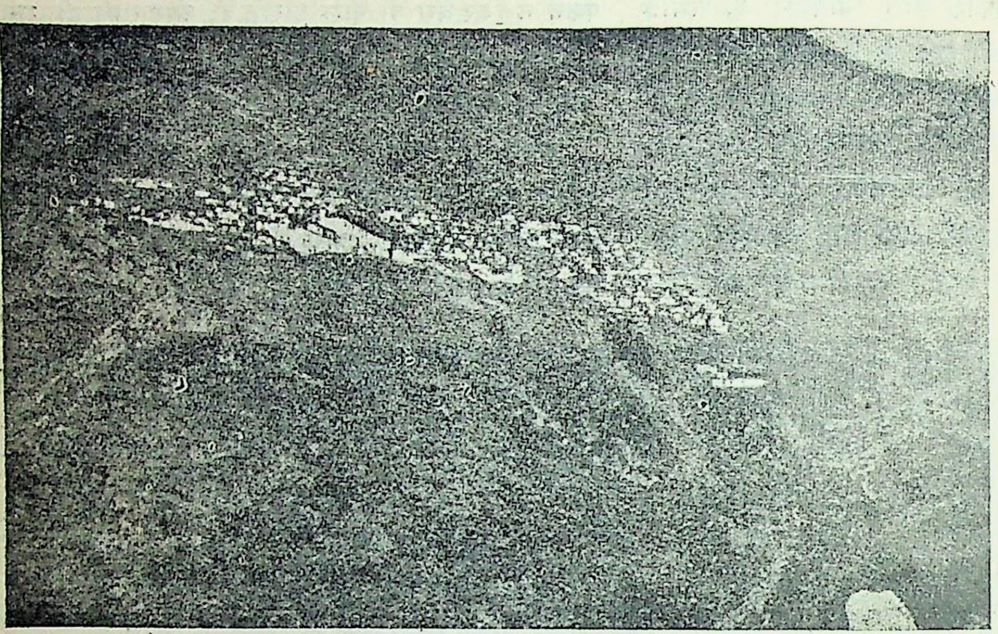
गृह-निर्माण-कार्य

अन्यत्र अधिक शीत के कारण फ़सल नहीं होने पाती। ये किसान-श्रेणी के तरहटीवाले तिब्बती ही सिर्फ़ पक्के मकानों में रहते हैं। दीवारें उनकी मिट्टी की होती हैं, और उन्हें बनाते समय तिब्बती कारीगर लकड़ी के तख़्ते के बने, हाथ-भर ऊँचे, दीवार के 'फ़र्मे' का उपयोग करते हैं। चित्र में देखिए। एकदम चारों ओर दीवार के वे फ़र्मे सजाकर उनके भीतर गीली मिट्टी भर देते हैं। मिट्टी सूखकर जब खूब कड़ी हो जाती है, तब फ़र्मे हटाकर और ऊपर एक हाथ दीवार, उसी प्रक्रिया से, तैयार करते हैं। हर घर में दालान सिर्फ़ एक ही होता है। उसी में सोना, बैठना-उठना, खाना-पीना, रसोई पकाना, सभी काम किए जाते हैं।

गोया तिब्बतियों को क़सम है। जहाँ तक संभव होता है, कोई इस नियम का व्यतिक्रम नहीं करता। ठंडक की अत्यंत अधिकता के कारण उन्हें रात को बारहो महीने घर में आग रखनी पड़ती है। ग़रीब घराने के सब लोग दालान में एकसाथ एक ही जगह सोते हैं। अगर किसी के घर में पालू पशु होते हैं, तो वे भी वहीं आश्रय पाते हैं। हाँ, किसी सौभाग्यशाली के अगर दो दालानें हुईं, तो वह पशुओं को दूसरी दालान में रखता है। जिनके घर दुमंज़िले हैं, वे आप ऊपर की मंज़िल में रहते और पालू पशुओं को नीचे रखते हैं।

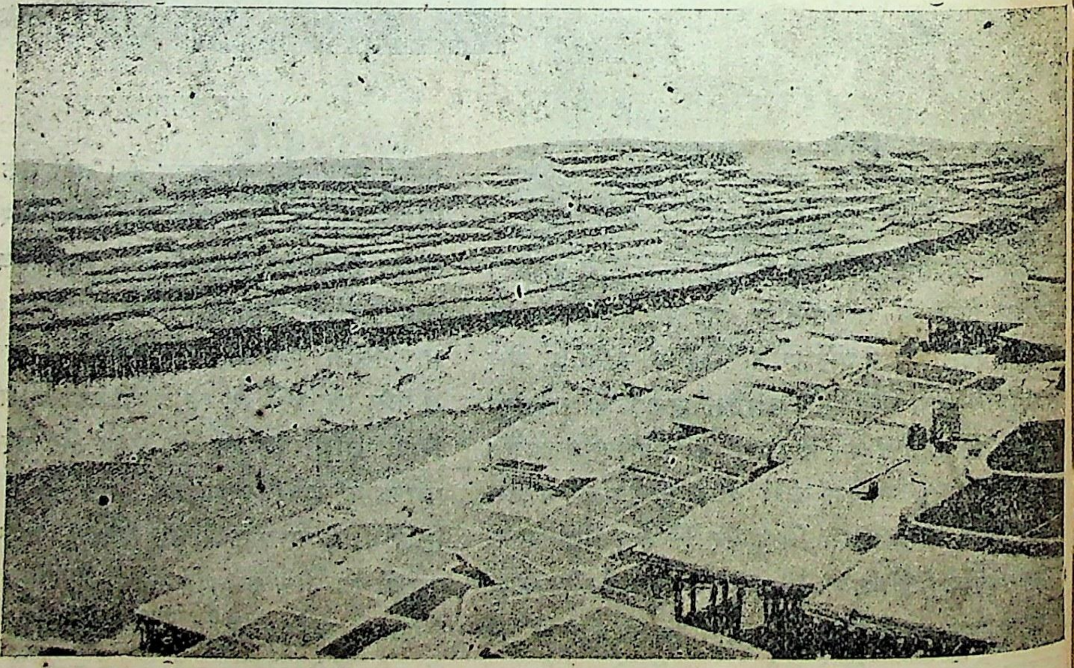
उनके खाने के पदार्थों में स्टंबा और मक्खन ही मुख्य हैं। तिब्बती लोग हमारी तरह चाय में चीनी और दूध नहीं डालते। वे चीन की चाय को खूब देर तक पकाकर

उसमें ज़रा-सा मक्खन और नोन डालकर गरम-गरम पी लेते हैं। कभी-कभी चाय में स्टंबा डालकर सत्तू-गुड़ की तरह खाते हैं। अंत को चाय पीने की कठौली को घुमा-फिराकर ज़बान से ही चाट-पोंछकर साफ़ कर डालते हैं। तिब्बती लोग कभी-कभी मांस भी खाते हैं; लेकिन कोई-कोई, सभी नहीं। बेचारे यायावर-श्रेणी के लोगों का आधार स्टंबा ही है। उन्हें कभी मांस अगर नसीब हुआ, तो वे थोड़ा-सा सुखाकर आइंदा के लिये भी रख छोड़ते हैं। दूध को जमा-कर उसे वे नए ही ढंग से



गार्टक-मठ और लामाशारी

खाते-पीते हैं। वह तरीक़ा यह है कि पहले दूध से मक्खन निकाल लेते हैं, उसके बाद वह दूध कड़ाही में डालक[र] तब तक नीचे आँच करते हैं, जब तक गाढ़ा नहीं हो जाता। गाढ़ा हो जाने पर बड़े-बड़े थालों में, अमरस की तरह मोटा पर्त फैला देते हैं। उसे सुखाते हैं, और सूख जाने प[र] निकालकर रख छोड़[ते] हैं। वह चमड़े से भ[ी] चिमड़ा और कड़ा हो जाता है, दाँतों से भ[ी] मुशकिल से नुचता है। तिब्बत में दूध की अपेक्षा मक्खन का ही कारोबा[र] अधिक है। किंतु वह[ाँ] हमारे यहाँ के ग्वाले के समान गोरस बेचने वाली कोई ख़ास जाति नहीं है। जिसके घर में नीलगायों की संख्या अधिक है, और दू[ध] अपनी ज़रूरत से ज़्याद[ा] होता है, वही बच[...]



वेंगिन के नमक के कारख़ानों के अगणित मचान

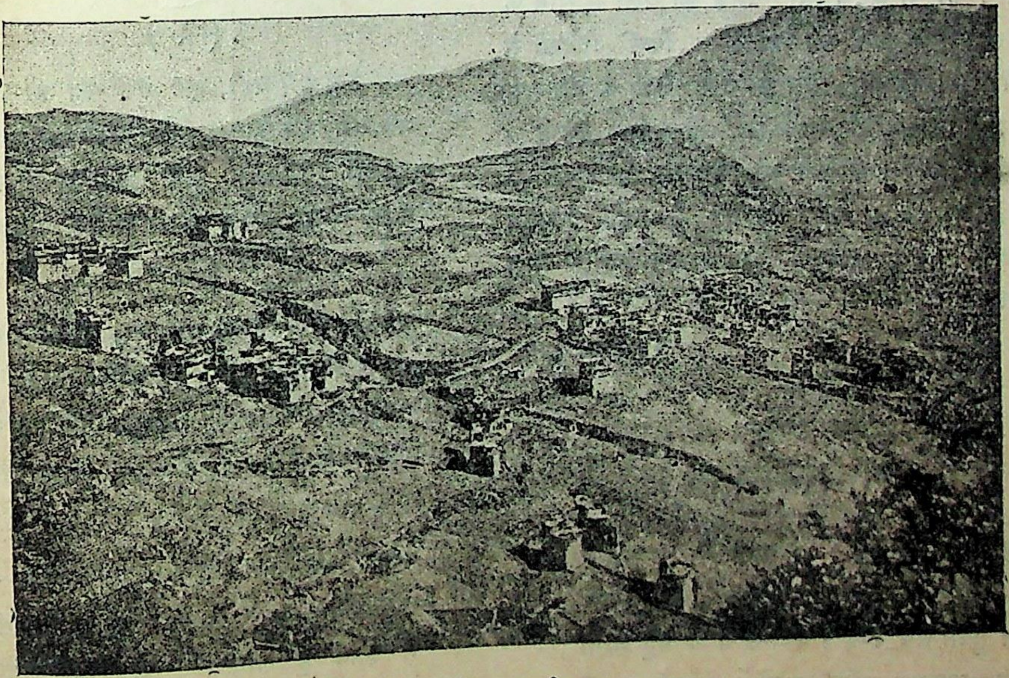
हुआ दूध बेच डालता और दूध के बदले में अपनी ज़रूरत की चीज़ ख़रीद लेता है—मसलन् कोई स्टंबा लेता है, कोई मक्खन, कोई नमक।

तिब्बती लोग नमक के बड़े भक्त हैं ; मगर नमक उनके देश में बहुत ही दुर्लभ पदार्थ है। वहाँ जिसके यहाँ जितना अधिक नमक होता है, वह उतना ही बड़ा आदमी समझा जाता है। कारण, वह नमक के बदले में चाहे जब, जिस चीज़ को ले सकता है। तिब्बत में नमक की क़दर रुपए-पैसे से भी बढ़कर है। इसी कारण वहाँ अनेक आदमी नमक का रोज़गार करते हैं। वॅगिश-उपत्यका तिब्बत में नमक पैदा करने के लिये विशेष प्रसिद्ध है। वहाँ बहुत कम गहरा कुआँ खोदने से ही नमकीन जल मिल जाता है। वह जल निकालकर बाँस के मचानों पर, जो कि नमक तैयार करने के लिये ख़ास तौर से बनाए जाते हैं, गिरा दिया जाता है। मचान के ऊपरी भाग में इस तरह से मिट्टी लेसी रहती है, और चारों ओर के किनारे ऊँचे कर दिए जाते हैं कि एक बूँद भी पानी निकलकर नहीं जा सकता। यथासमय जल सोख जाता है, और मचान के ऊपर पतली नमक की तह जम जाती है। उस नमक को वे लोग खुरचकर भर रखते और काम में लाते हैं। उस नमक के साथ धूल-मिट्टी का अंश भी चला जाता है ; लेकिन तिब्बती लोग उसकी पर्वा नहीं करते। दूध में नीलगाय के असंख्य रोएँ पड़े देखकर भी तिब्बती लोग उसे ख़रीदते और वैसे ही पीते हैं।

तिब्बत और चीन की सरहद के बीचो-बीच बाताङ नाम का एक स्थान है। वहाँ भी नमक बनता है। तिब्बत के भीतर उक्त दोनों स्थानों के सिवा अन्यत्र कहीं नमक न मिलने के कारण वहाँ नमक की दर बहुत चढ़ी हुई है।

तिब्बत के लोग कपड़े और पोशाक के लिये भारत की तरह परमुखापेक्षी नहीं हैं। वहाँ कपड़ों की जगह रोएँदार भेंड़ के चमड़े की पोशाक पहनी जाती है। किसी के पास एक से अधिक पोशाक नहीं रहती। जब तक पहली पोशाक फट-फुटकर बिलकुल ही बेकाम नहीं हो जाती, तब तक कोई नई पोशाक नहीं बनवाता। ऊपर भेंड़ का चमड़ा रहता है, और भीतर पशम का अस्तर। एक पोशाक बहुत दिन तक चलती है। उनकी वह पोशाक, देखने में एक अजीब ढंग की होने पर भी, ख़ूब मज़बूत और टिकाऊ होती है। गरमियों में वे लोग पोशाक का ऊपरी हिस्सा खोल डालते और गले से कमर तक नंगे ही रहते हैं।

तिब्बती महिलाएँ भेंड़ के रोमों से पशम के डोरे बनाकर मोटे-मोटे पशमी वस्त्र बुन रखती हैं। उसी वस्त्र से



तिब्बत के पहाड़ी ग्राम

उनकी वह ढीली-ढाली, लंबी, भारी, किंभूत-किमाकार पोशाक़ तैयार होती है। मर्दों और औरतों का पहनावा प्रायः एक-सा ही होता है। सिर्फ़ कुछ फ़र्क़ यही रहता है कि स्त्रियों की पोशाक मर्दों की पोशाक से कुछ बहारदार और रंगीन होती है। मर्द लोग गर्दन तक घुँघराले बाल रखते हैं। औरतें, पृथ्वी के अन्य सब देशों की स्त्रियों के समान ही, लंबे बाल रखती और अलंकार धारण करती हैं।

उन लोगों की पोशाक देखकर बहुधा यह नहीं जाना जाता कि कौन किस दर्जे का आदमी है। मान लीजिए, आपको भेंड़ के रोमों से ढके भालू की तरह एक जंगली चेहरे का तिब्बती आदमी मिला। जान पड़ता है, वह पल्ले सिरे की गंदगी का अवतार है, और सात जन्म में कभी स्नान नहीं करता। देखिएगा, उसके सिर पर लंबे, उलझे, रूखे बालों की जटाएँ बन गई हैं। उन्हीं के ऊपर एक कान तक ढक देनेवाली कंटोपनुमा मैली टोपी की बहार है! उनके शरीर से ऐसी बुरी बदबू आती है कि पास खड़े होना दुश्वार होता है। नाक में रूमाल लगाए विना क्षय हो जाने का भय रहता है! मगर असल में वह होगा बेशुमार दौलत का मालिक!

रुपए के समान कोई तिब्बती सिक्का वहाँ नहीं चलता। धनी लोग कंधे में लटक रही चमड़े की थैली में सोने के टुर्रे या छोटे-छोटे टुकड़े भरे रहते हैं। किसी विदेशी से कोई चीज़ ख़रीदने के समय वे उसी थैली के भीतर से मुट्ठी भर-भरकर वे ही स्वर्ण-खंड निकालकर देते हैं। केवल चीनी सरकार के सिक्के को छोड़कर और किसी भी देश की गवर्नमेंट का सिक्का तिब्बत में नहीं चलता। ग़रीब लोग आपस में ज़रूरी चीज़ ख़रीदने-बेचने में सिक्के की जगह नमक और चीन की चाय से काम लेते हैं।

विंदुमाधव वर्मा

सागर-मंथन

अत्याचार अनेक, दानवों के मनमाने,
जब न अधिक सह सके देवता शांत, सयाने,
चेत हुआ तब उन्हें; क्योंकि थे वे बहु ज्ञानी,
और अवस्था हीन उन्होंने अपनी जानी।

(२)

तज आपस का भेद, एक मत सबने धारा;
गए विष्णु के पास सुनाने संकट सारा।
दिव्य लोक में उन्हें मिले हरि जग के स्वामी,
धरे सच्चिदानंद रूप, प्रिय, अंतर्यामी।

(३)

लख देवों को विकल शत्रुओं की पीड़ा से,
हुआ विष्णु को क्षोभ दैत्य-कुल की क्रीड़ा से।
तब देवों को धैर्य धराकर प्रभु यों बोले—
(मानो संकट-मुँदे हृदय-पट उनके खोले)

(४)

"हे देवो, यह नियम सृष्टि में सदा अटल है,
रह सकता है वही सुरक्षित, जिसमें बल है।
निर्बल का है नहीं जगत में कहीं ठिकाना,
रक्षा-साधन उसे प्राप्त हों चाहे नाना।

(५)

यद्यपि तुममें बुद्धि, चतुरता, विद्या, नय है,
तो भी तन-बल विना सताता तुमको भय है।
संख्या में भी नहीं शत्रुओं से तुम कम हो;
किंतु संघ-बल-हीन बने असमर्थ परम हो।

(६)

अब उपाय है यही, एक तुम सब हो जाओ;
भय तज, कर चातुरी, वैरियों को बिचलाओ।
कर लो उनसे संधि सुधा का लोभ दिखाकर;
प्राप्त चतुर्दश रत्न करो सागर मथवाकर।

(७)

अपना प्यारा रत्न अमृत तुम सब पी लेना;
असुरों को प्रिय वस्तु वारुणी उनको देना।
संभव है, वे मूर्ख हलाहल ही पी जावें;
जिससे मिटकर आप, न तुमको कभी सतावें।

(८)

यद्यपि कर्माधीन सृष्टि-घटना घटती है,
तो भी बंधन-रज्जु उचित कृति से कटती है।
मैं होता हूँ साधु-त्राण में सदा सहायक;
तुम सबका भी बना रहूँगा परोक्ष नायक।"

(९)

मान ईश-आदेश सुरों ने साहस धारा ;
एका कर संगठन-कार्य का क्रम विस्तारा ।
असुरों से मिल कई वनस्पतियाँ मँगवाईं ;
फिर सागर में सभी उन्होंने शीघ्र गिराईं ।

(१०)

तब मंदर को दंड, शेष को रज्जु बनाया ;
सबने उनको उठा सिंधु के मध्य जमाया ।
हरि ने बनकर कूर्म दंड का भार सँभाला ;
पूँछ सुरों ने, सीस दानवों ने विषवाला ।

(११)

मंथन होने लगा ; शेष-विष-ज्वाला फैली ,
मुख-आकृति हो गई शत्रुओं की अति मैली ।
मेघों को फुसकार-पवन ने इधर चलाया ;
मेह उन्होंने श्रमित सुरों पर ला बरसाया ।

(१२)

परम परिश्रम हुआ, बढ़ा देवों में साहस ;
पर दानव निज शक्ति गँवा बैठे हो पर-बस ।
सागर-मंथन हुआ अंत में पूरा ऐसे ;
होते हैं गुरु कार्य सिद्ध संकट में जैसे ।

(१३)

निकले चौदह रत्न—प्रथम सुरभी कल्याणी ,
फिर वारुणी विशुद्ध, कल्पतरु इच्छा-दानी ।
तब रंभा छविमती, चंद्र शीतल, सुखकारी ;
घातक विष,प्रिय शंख,बाजि,गज,धनु मणि प्यारी ।

(१४)

इनके पीछे प्रकट हुईं श्री शोभा-सीमा,
रूप-भार से दबा गमन था जिनका धीमा ।
तब प्रकटे सित-वसन वैद्य धन्वंतरि ज्ञानी ;
लिए सुधा का पात्र जिलाने को मृत प्रानी ।

(१५)

मंथन का उपकरण जहाँ का तहाँ पठाया ;
फिर दोनों ने प्राप्ति-भाग का प्रश्न उठाया ।
पर दोनों दल हुए विकल लख विष की ज्वाला ;
उनके हित के लिये उसे शिव ने पी डाला ।

(१६)

श्री ने हरि को बरा, योग्य वर उनको लेखा ;
पर असुरों की ओर न धोखे से भी देखा ।
कौस्तुभ-मणि भी मिली साथ में उनको श्री के ;
देख दृश्य यह हुए दानवों के मुख फीके ।

(१७)

विष करने को शांत चंद्र को शिव ने धारा ;
हुआ कल्पतरु, धेनु आदि का भी बँटवारा ।
तीन रत्न बच रहे बाँटने को अब बाकी ;
पारी आई सर्व-प्रथम सुंदर रंभा की ।

(१८)

हुए मुग्ध लख रूप विषय-रत असुर अभागी ;
काम-विवश हो शीघ्र वारुणी सबने माँगी ।
जब वे लड़ने लगे परस्पर हो मतवाले ;
घूँट अमृत के सहज सुरों ने सब पी डाले ।

(१९)

असुरों से बच, गई अप्सरा इंद्र-भवन में ;
अमृत-पान से हुए अमर सुर, गए गगन में ।
जब दैत्यों को चेत हुआ, पछताए मन में ;
की न भलाई कभी हाय ! हमने जीवन में ।

(२०)

इस घटना से मिला सुरों को अब वह साहस ,
जिससे रक्षित किया उन्होंने अपना सरबस ।
निजपन के सब भाव सत्य उनमें यों जागे ,
दानव सके न जीत सुरों को रण में आगे ।

(२१)

यद्यपि शठता-युक्त सबलता है उत्पाती ;
पर निर्बलता सदा, सैकड़ों दुख है लाती ।
शत्रु किसी के लिये नहीं है उतना घातक,
जितना उसका आप घोर निर्बलता-पातक ।

कामताप्रसाद गुरु

लॉर्ड मॉर्ले

प्रसिद्ध अँगरेज़ी-कवि शेली ने क्या ही ठीक कहा है कि जीवन को रमणीय बनाने में महान् पुरुषों के कार्य अत्यंत महत्त्व के हैं। यह उन्हीं के उत्साह-पूर्ण प्रभाव का फल है कि अनेक विघ्न-बाधाओं के उपस्थित होने पर भी मनुष्य निराशा के आवर्त में नहीं फँसता, जीवन के बंधन को तोड़ने पर उतारू नहीं होता।

प्रत्येक देश और जाति में कुछ ऐसे महात्मा होते हैं, जो अपनी सिद्धांत-परायणता, सत्य निष्ठा तथा नैतिक बल के द्वारा समाज के प्रत्येक व्यक्ति पर अपनी आकर्षण-शक्ति डालकर उनके हृदय-मंदिरों में उच्च आसन प्राप्त कर लेते हैं।

इस लेख में एक ऐसे महापुरुष के जीवन के कार्यों पर दृष्टि-पात किया जाता है, जो अपनी प्रतिभा तथा मानवोचित गुणों के कारण न केवल अपने देश में, वरन् अखिल संसार के शिक्षित-समुदाय में चिर-स्मरणीय रहेगा।



लॉर्ड मॉर्ले

लॉर्ड मॉर्ले के नाम से भारत का अधिकांश शिक्षित जन-समुदाय भली भाँति परिचित है। जिन्होंने कुछ भी विभिन्न भारतीय सुधार-योजनाओं का अध्ययन किया है, वे तो मॉर्ले के उदार विचारों से सर्वथा अनभिज्ञ कदापि नहीं रह सकते। सन् १९०७ ई० में बंग-विच्छेद के कारण सारे देश में क्रांति की हवा चल रही थी, षड्यंत्रों द्वारा नित्यप्रति हिंसा-पूर्ण चेष्टाएँ की जा रही थीं। उस समय लॉर्ड मिंटो भारत के वायसराय थे, और उनके घनिष्ठ प्रशंसक लॉर्ड मॉर्ले इंडिया-ऑफ़िस में भारत-सचिव के पद को सुशोभित कर रहे थे। इतना तो निस्संदेह कहा जा सकता है कि यदि मॉर्ले-जैसे उदारचेता तथा शांति-प्रिय भारत-सचिव के हाथ में भारत की बागडोर न होती, तो ऐंग्लो-इंडियनों का वह युद्ध, जो सदैव तिल का ताड़ बनाने को मुँह बाए रहता है, मिंटो के हाथ पकड़कर दमन-नीति

का दुरुपयोग करवाकर छोड़ता। पर मॉर्ले का तो सदा से यह सिद्धांत रहा था कि "It is a life-long way of mine not to be afraid of either of two words: "philanthropist" is one, and "agitator" is the other. Most of what is decently good in our curious world has been done by these two much abused sets of folk."

अर्थात् "क्रांतिकारी तथा विश्व-हितैषी, इन दो शब्दों को मैं कभी हौवा नहीं समझता, जैसा कि बहुत-से लोगों की धारणा रहा करती है। सच तो यह है कि इस विचित्र संसार में जो कुछ भी सुधार किए गए हैं, उन सबका श्रेय वास्तव में इन्हीं दो श्रेणियों के लोगों को है, यद्यपि इन्हीं को बहुत-से अपशब्द भी सुनने पड़ते हैं।"

केवल इसी बात से यह पता लगता है कि मॉर्ले एक विचारशील पुरुष थे। सहसा, बिना परिणाम देखे, कोई काम कर बैठने को वह एक प्रकार की नैतिक दुर्बलता समझते थे। कोरे भयावह शब्दों से वह कभी न डरते थे। किंतु आधा संसार शब्दों ही के इशारे पर नाचता है।

मॉर्ले इस सिद्धांत को सर्वथा अवांछनीय समझते थे। कुछ समय हुआ, जब उन्होंने इँगलैंड के उदार-दल की इसी नीति के प्रति घोर उपालंभ किया था; क्योंकि किसी समय वह स्वयं उस दल के एक अग्रगण्य नेता थे। यह दशा देखकर उनके चित्त को दुःख होता था कि वर्तमान उदार-दलवाले ही नहीं, बरन् अन्य दल भी अपने-अपने पूर्व-निर्दिष्ट उच्च आदर्शों को भूल बैठे हैं, और उनके बदले अपने-अपने राजनीतिक झंडों में बड़े-बड़े शब्दों को प्रदर्शित करना ही अपना एक-मात्र कर्तव्य समझते हैं। परंतु केवल इतना ही कहना मॉर्ले के जीवन का एक अपूर्ण चित्र खींचना है। वह केवल राजनीति के क्षेत्र में ही नहीं विचरा करते थे। वह जहाँ उदार-दल के साथ ही उठते और बैठते थे, वहाँ राजनीतिक पथ की धूल से निकलकर साहित्य-वाटिका में भी मनोविनोद करते थे। परंतु वहाँ वह केवल मनोविनोद ही करने के लिये नहीं जाते थे; बरन् स्वयं उस वाटिका के वृक्षों तथा पुष्पों का निरीक्षण करते और मालाकार की भाँति नए-नए थाल्हे बनाकर उनमें वृक्ष भी लगाते थे।

प्रायः कहा जाता है, और मॉर्ले का भी कथन था कि एक ही पुरुष का साहित्यिक तथा राजनीतिक होना बहुत कम देख पड़ता है। जो साहित्य का मर्मज्ञ विद्वान् तथा लेखक होता है, वह बहुधा राजनीतिक क्षेत्र में उतना सफल नहीं हो सकता। इसी प्रकार जो राजनीतिक क्षेत्र की समस्त चालों में पारंगत होता है, जिसका तीर कभी नहीं चूकता, वह साहित्य में उतना ही गांभीर्य नहीं प्राप्त कर सकता। परंतु मॉर्ले ने इन दोनों परस्पर विरुद्ध क्षेत्रों में यश प्राप्त करके इस बात का बढ़िया उदाहरण उपस्थित कर दिया है कि साहित्य तथा राजनीति में कोई ऐसा आंतरिक विद्वेष नहीं है, जिसके कारण एक ही पुरुष दोनों में दक्षता प्राप्त न कर सके। इतना तो निर्विवाद मान्य है कि जो व्यक्ति अपने जीवन में किसी एक पक्ष को अधिक महत्त्व-पूर्ण समझकर उसी में सदैव तन्मय-सा रहता है, वह प्रायः दूसरे पक्ष में सदैव असफल रहता है। यदि कोई साहित्य-प्रेम की अनुचित सीमा तक पहुँच जायगा, तो वह निस्संदेह व्यावहारिक क्षेत्र में कोरा रहेगा।

मॉर्ले प्रारंभ से ही एक बड़े साहित्य-प्रेमी थे। शिक्षा समाप्त होने पर जब उन्होंने जीवन-संग्राम

में पदार्पण किया, तब उनके सम्मुख दो मार्ग उपस्थित थे। एक ओर धनोपार्जन का द्वार खुला था, और दूसरी ओर साहित्य-सेवकों का वह पथ था, जिसमें प्रवेश करने के लिये वह चिरकाल से लालायित थे। उनके पिता एक लब्ध-प्रतिष्ठ डॉक्टर थे; फिर भी उन्होंने पैतृक वृत्ति को दूर ही से नमस्कार करके साहित्य के भय-पूर्ण मार्ग में पैर रक्खा।

१८५६ ई० में साहित्य-सेवा का पूर्ण विचार करके वह लंदन में रहने लगे। पहले वह उन कतिपय प्रसिद्ध पत्रों का संपादन करने लगे, जो सामयिक थे। इसके पश्चात् वह क्रमशः 'लिटररी गज़ट', 'फ़ोर्टनाइटली रिव्यू' तथा 'मैकमिलन्स मैगज़ीन'-नामक पत्रों के संपादकीय आसन को सुशोभित करते रहे।

संपादक रहकर उन्होंने देश-विदेश में अच्छा नाम पैदा किया। जनता की दृष्टि में उनकी साहित्यिक प्रतिभा दिन-दूनी रात-चौगुनी चमकने लगी। १८८३ में तो उनकी गणना इँगलैंड के माननीय भावी नेताओं में होने लगी। इसका मुख्य कारण यह था कि उसी वर्ष वह एक प्रतिनिधि की हैसियत से पार्लियामेंट के सदस्य मनोनीत हुए थे। इसके अतिरिक्त उसी वर्ष वह उदार-दल की एक महासभा के सभापति भी हुए। इसी समय उनके राजनीतिक जीवन का श्रीगणेश हुआ।

१८८६ में जब, एक बार की पराजय के उपरांत, ग्लैडस्टन फिर से प्रधान मंत्री हुए, तो उनके राजनीतिक शिष्य मॉर्ले ने भी उसी वर्ष आयर्लैंड के मंत्री का पद ग्रहण किया। उस महत्त्व-पूर्ण पद पर रहकर मॉर्ले ने आयर्लैंड की स्वाधीनता के लिये प्रशंसनीय कार्य करने का बीड़ा उठाया। यदि ग्लैडस्टन के 'होमरूल-बिल' का उत्साहक मॉर्ले ही को कहा जाय, तो तनिक भी अत्युक्ति न होगी। मॉर्ले सदा से उदार-हृदय रहे। आयर्लैंड को स्वाधीनता दिलाने के लिये तो वह सोते-जागते कटिबद्ध रहते थे। जब ग्लैडस्टन को अपने 'होमरूल-बिल' का प्रतिवाद करनेवालों से पस्त होना पड़ा, तभी मॉर्ले ने उन्हें अपने आशा-जनक परामर्श से उत्साहित करने का प्रयत्न किया। सन् १८९८ ई० में मॉर्ले ने उदार-दल के नेतृत्व का भार अपने कंधों से हटा दिया, और वह साहित्य-सेवा में लग गए।

अब हम मॉर्ले की राजनीतिक क्षमता पर कुछ विचार करते हैं। कहा जाता है कि मॉर्ले वैसे स्वतंत्रतोपासक थे, जैसे फ़्रांस की राज्यक्रांति के समय वहाँ के कतिपय आदर्शवादी दार्शनिक। कारण, वह जॉन स्टुअर्ट मिल जैसे गुरुओं के चेले थे, जिन्होंने अपने स्वाधीनता-विषयक सिद्धांतों के द्वारा १९वीं शताब्दी में योरप के विचार-प्रवाह में अद्भुत और अभूत-पूर्व हलचल मचा दी थी। परंतु जब राजनीतिक क्षेत्र में उनके कार्य की आलोचना की जाती है, तब यह कहे बिना नहीं रहा जाता कि वह एक मननशील तथा तर्क-वितर्क-प्रिय पुरुष थे। राजनीतिक संसार कार्य-प्रधान है। उसमें वही मनुष्य विजयी होता है, जिसमें तात्कालिक निश्चय करने की शक्ति होती है। उसमें क्षण-क्षण परिवर्तन होते रहते हैं। उनसे अवगत होना तथा उनका सामना करने के लिये आवश्यक हथकंडों की उद्भावना कर सकना ही सफलता का एक-मात्र मूल-मंत्र है। इसके सिवा, राजनीतिक क्षेत्र में सदैव सिद्धांतों का अक्षरशः अनुसरण करने से भी काम नहीं चलता। वहाँ तो आवश्यकता

इस बात की है कि ध्येय पर दृष्टि रक्खी जाय ; उसके संपादन के लिये साधनों की नैतिक समीचीनता का विचार न किया जाय। लॉर्ड मॉर्ले इसे भली भाँति समझते थे। एक जगह राजनीति के विषय में वह स्वयं लिखते हैं—

"Politics are a field where action is one long second-best, and where the choice constantly lies between two blunders."

अर्थात् "राजनीतिक क्षेत्र इस प्रकार का है कि उसमें जो-जो कार्य किए जाते हैं, वे अधिकतर नैतिक दृष्टि से सर्वोत्तम नहीं कहे जा सकते। अपेक्षा-कृत उत्तमता ही का विचार उनमें उन्नत रहा करता है।"

इसी कारण मॉर्ले की विचार-कोटि में राजनीति का अधिक महत्त्व नहीं था ; इसी से वह अंत में उससे पीछा छुड़ाकर साहित्य-क्षेत्र में रम गए। उनका नाम उस श्रेणी के राजनीतिक नेताओं में नहीं गिना जा सकता, जो अपनी इच्छा-शक्ति के बल से प्रतिदिन उथल-पुथल किया करते हैं। वह एक आदर्श-वादी तथा सिद्धांत-प्रिय पुरुष थे। वह अपने उच्च सिद्धांतों के द्वारा कार्य-कर्ताओं में उत्साह का जादू भर दिया करते थे। वह उन्हें सदैव सत्कार्यों में प्रेरित किया करते थे।

मॉर्ले के राजनीतिक जीवन में एक बात जो विशेष रूप से उल्लेखनीय है, वह है उनकी सत्य-प्रियता। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'Compromise' (समझौता) से इसका यथेष्ट पता लगता है। एक वाक्य में उनकी सत्य-निष्ठा की सूक्ष्म व्याख्या इस प्रकार है—

"It makes all the difference in the world whether we put truth in the first place or in the second."

अर्थात् "हमारी सत्य-परायणता की परीक्षा केवल इसी बात से हो सकती है कि हम किसी बात की सत्यता का विचार प्रथम करते हैं, अथवा बाद को।"

लॉर्ड मॉर्ले के सार्वजनिक जीवन की इस विस्तृत आलोचना के बाद उनके वैयक्तिक जीवन पर विचार करना है। इसके पूर्व कि मॉर्ले की साहित्य-सेवा की आलोचना की जाय, यह उचित होगा कि उनके सामाजिक जीवन के कुछ अंश उद्धृत किए जायँ।

मॉर्ले बड़े मिलनसार और हृदय-ग्राही थे। यह ठीक है कि कभी-कभी वह बिगड़ जाते थे, परंतु थोड़ी ही देर में शांत भी हो जाते और अपनी मंद मुसकान से आगंतुक के चित्त को मोह लेते थे। किसी ने व्यंग्य के तौर पर खूब ही कहा है कि "मॉर्ले के क्रोध को शांत करने का सबसे अच्छा ढंग यह था कि जहाँ वह खीझने लगें, वहाँ किसी-न-किसी युक्ति से किसी साहित्यिक विषय पर उनसे चर्चा छेड़ दी जाय। उनका मुख अवश्य खिल उठता था।"

धार्मिक विचारों में मॉर्ले अपने समय के युक्ति-वाद के रंग में रँगे थे। उनका जीवन-काल महा-रानी विक्टोरिया के राज्य-काल के अंतर्गत आ जाता है। विक्टोरिया का राज्य-काल इँगलैंड क्या, योरप-भर के इतिहास में एक युग-परिवर्तन-कारी समय है। विज्ञान की अद्भुत उन्नति उसी समय हुई ; वैज्ञानिक आविष्कारों का व्यावहारिक प्रयोग उसी समय हुआ। तर्क, जिसकी भित्ति पर विज्ञान स्थित है, उसी समय कसौटी की भाँति समाज के आदर्शों की परीक्षा

के लिये रक्खा गया। जो उससे ठीक उतरे, वे पूर्ववत् रक्खे गए, और जो उसके सामने न ठहरे, वे गद्दी से उतार दिए गए। धर्म का रूप भी परिवर्तित हुआ। बुद्धि की शक्ति के तेज के सामने परमात्मा का अस्तित्व भी धीरे-धीरे ग़ायब होने लगा। परमात्मा के संबंध में अधिकतर लोगों का विश्वास क्षीण होने लगा; सर्वत्र युक्ति-वाद की लहर फैल गई।

मॉर्ले भी एक दिग्गज युक्ति-वादी थे। अपनी नास्तिकता का प्रमाण देते हुए उन्होंने एक बार अपने एक लेख में 'God' शब्द को छोटी 'g' से लिखने का साहस किया था। इस अनौचित्य पर लोग बेतरह कुढ़े थे।

धार्मिक विचारों में मॉर्ले के ऊपर यह कटाक्ष किया जाता है कि वह अनीश्वर-वादी थे। परंपरागत धार्मिक विश्वासों के ऊपर वह कुठाराघात ही नहीं करते थे, बरन् उनके स्थान में किसी संतोष-जनक मत को भी नहीं बतलाते थे। इस प्रकार धार्मिकता तथा भक्ति के नाम पर मॉर्ले स्पष्ट रूप से हड़ताल फेरते थे।

पर वह चाहे जितने घोर नास्तिक क्यों न हों, उनके लिये यह प्रशंसा का विषय है कि वह अपने सिद्धांतों के पक्के और सत्य के सच्चे उपासक थे। वास्तव में किसी आडंबर-पूर्ण धर्म को माननेवाले की अपेक्षा वह मनुष्य अधिक माननीय होना चाहिए, जो—चाहे नास्तिक ही क्यों न हो—अपने अविश्वास में भी पाखंड-रहित होकर विश्वास करता हो। कहा भी है—

"There lives more faith in an honest doubt than lives in half the seeds."

अंत में मॉर्ले के साहित्यिक कार्यों पर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है; क्योंकि आज उनकी जो इतनी व्यापक कीर्ति है, वह प्रायः उनके साहित्यिक कार्यों पर ही निर्भर है।

मॉर्ले ने साहित्य की जो बहुत बड़ी सेवा की, वह है 'इंग्लिशमेन ऑफ़ लेटर्स' (Englishmen of Letters)-नामक ग्रंथ-माला का उद्घाटन तथा संपादन। इस माला में अँगरेज़ी-साहित्य के धुरंधर लेखकों का आलोचनात्मक वर्णन किया गया है। वास्तव में, अँगरेज़ी में, साहित्यिक जीवनी लिखने की परिपाटी का जन्म इसी ग्रंथ-माला से हुआ है।

इसके सिवा मॉर्ले ने कई मौलिक ग्रंथ तथा आलोचनाएँ लिखी हैं, जिनके प्रत्येक पृष्ठ पर उनकी तीव्र दृष्टि तथा मार्मिकता का परिचय मिलता है। मॉर्ले की लेखन-शैली अँगरेज़ी-गद्य के इतिहास में अत्यंत महत्त्व-पूर्ण है। उनकी प्रत्येक पंक्ति में एक अवर्णनीय ओज है, शब्द-चयन में एक अद्भुत लालित्य और उपयुक्तता की छाप है। सच तो यह है कि बड़े-से-बड़े धुरंधर साहित्यिक उनके लेखों में कोई अनौचित्य नहीं पा सकते हैं। मॉर्ले अलंकार-पूर्ण लेखन-शैली के विरोधी थे। उसके विषय में वह कहते थे कि जो लेखक जानबूझकर अपने लेखों को अलंकृत बनाने का प्रयत्न करता है, वह उस पुरुष के समान है, जो दर्पण सामने रखकर गर्व-पूर्वक अपने केशों को सँवारता और उससे अपने प्राकृतिक रूप को बढ़ाने की इच्छा करता है।

अपनी 'Studies in literature-नामक पुस्तक में उन्होंने साहित्य के स्वरूप का निरूपण करते हुए बड़े विशद सिद्धांतों पर प्रकाश डाला है। साहित्योपासक के ध्येय का निश्चय उन्होंने इस प्रकार किया है—

"He is one who through book

explores the strange voyages of man's moral reason, the impulses of the human heart, the chances and changes that have overtaken human ideals of virtue and happiness, of conduct and manners, and the shifting fortunes of great conceptions of truth and virtue."

अर्थात् "साहित्य का अध्ययन करते समय केवल मनोमोद का ही ध्यान न रखना चाहिए, वरन् पुस्तकों द्वारा इस बात की गवेषणा करनी चाहिए कि किन-किन समयों पर मनुष्य-समाज के आभ्यंतरिक तथा बाह्य कलेवर पर कैसे-कैसे रंग चढ़े, उसके विचारों में किन-किन कारणों से कैसे-कैसे परिवर्तन हुए, तथा उसके नैतिक आदर्शों की सत्यता तथा चिरस्थायिता की परख कैसे-कैसे अवसरों पर हुई।"

साहित्य का इस प्रकार विवेचन करके मॉर्ले ने सचमुच उसके क्षेत्र को अत्यंत विशाल सिद्ध कर दिया है।

इस संबंध में उनके इतिहास-विषयक विचारों का उल्लेख करना भी उचित होगा। उनके विचार में इतिहास के दो पक्ष हैं। एक तो उसके द्वारा भिन्न-भिन्न समयों का सामाजिक विकास तथा परिस्थिति का पता लगता है, दूसरे यह भी ज्ञात होता है कि समय-समय पर जातीय जीवन की क्रमिक उन्नति पर क्या-क्या आघात पहुँचे हैं, और ऐसी अवस्थाओं में उन आघातों का प्रतिकार करने अथवा किसी अप्राप्य आदर्श के पीछे पड़ने में मानव-शक्तियों का कितना दुरुपयोग हुआ है। मॉर्ले की धारणा है कि इतिहास से सबसे बड़ी बात जो मालूम होती है, वह यह है कि मनुष्य अपनी शक्तियों की जितनी पूँजी किसी उद्देश्य की सिद्धि में लगाता है, उतनी सफलता उसे कदापि नहीं होती। सैकड़ों विघ्न-बाधाएँ उसके मार्ग में उपस्थित हो जाती हैं, और उसे पूर्ण रूप में सिद्ध नहीं होने देतीं। इतिहास के विषय में मॉर्ले कहते हैं—

"The history of mankind is a huge *piss aller*. A prodigious, wasteful experiment from which a certain number of precious results have been extracted, but which is not now, nor ever has been at any other time, a final measure of all the possibilities of the time."

इसका सारांश यह है कि "मानव-इतिहास का सबसे बड़ा लक्षण 'अंतिम साधन' है। इतिहास का प्रत्येक पृष्ठ साक्षी है कि मनुष्य सदैव 'तीर नहीं तो तुक्का' ही के सिद्धांत पर चलता है। जब वह देखता है कि किसी कार्य में किसी साधन-विशेष से उसे पूर्ण सफलता नहीं मिलती, तो वह अंतिम साधन का आश्रय लेता है, जिससे उसे कुछ-न-कुछ सफलता की आशा होती है।"

इस बात की खोज मॉर्ले ने राजनीतिक क्षेत्र में की थी। वह यही कहा करते थे कि राजनीति में समझौते का आधिपत्य है। उनके राजनीतिक गुरु वर्क भी कह गए हैं कि जीवन के प्रत्येक विभाग में उसी समझौते की धूम है।

परंतु मॉर्ले के इतने बड़े, ८५ वर्ष के, जीवन का सबसे बड़ा उपदेश यह है कि मनुष्य को, वह चाहे जिस क्षेत्र में स्थित हो, कभी सत्य का पक्ष न छोड़ना चाहिए। विक्टोरियन युग के समझौते की हवा लगने से वह क्षुब्ध हो जाते थे। इँगलैंड के राजनीतिक जीवन को निम्न-प्रवृत्तियों से बचाकर शुद्ध रखने में मॉर्ले की इस सत्य-

परायणता तथा उदार दृष्टि ने स्मरणीय कार्य किया है। इसी सत्यता के कारण उनकी सर्व-प्रियता उनके जीवन-काल में इतनी व्यापक थी।

अभी उस दिन जब उनके लोकांतरित होने का शोकमय समाचार सुन पड़ा, तो प्रत्येक पुरुष के हृदय में, जिसने उनके लेखों का अध्ययन किया है, यह विचार अवश्य उठा होगा कि उनकी मृत्यु से एक दिग्गज सत्य-प्रेमी संसार से उठ गया। परंतु आश्वासन इस बात से होता है कि उनके ग्रंथों से भविष्य संतान सतत प्रोत्साहन प्राप्त करेगी।

उनकी मृत्यु से एक महत्त्व-पूर्ण युग का अंत हुआ। निस्संदेह यह कहा जा सकता है कि लॉर्ड मॉर्ले विक्टोरियन युग के विचार-परिवर्तन के एक स्तंभ थे। उनके चरित्र में उन सब प्रवृत्तियों का समावेश है, जो उस समय थीं। उनकी सत्य-निष्ठा, उनकी विचारशीलता और उनकी गंभीरता तत्कालीन समाज के अंग में व्याप्त होने का प्रयत्न कर रही थीं। अतएव ऐसी परिपक्व अवस्था तक जीवित रहकर उन्होंने अपना जीवन-कार्य पूर्ण करके अपने युग की आकांक्षाओं तथा प्रवृत्तियों की सम्यक् प्रकार से व्याख्या की है। इतिहास में लॉर्ड मॉर्ले को व्याख्याकारों की श्रेणी में उच्च स्थान दिया जायगा।

हम भारतवासी मॉर्ले को सुधार-योजनाओं के जन्म-दाता के नाते से सदैव स्मरण रक्खेंगे; परंतु उनके प्रति हमारी क्या, समस्त संसार की जो श्रद्धा स्थायी रूप में रहेगी, वह उनकी उदार-हृदयता तथा उनकी विद्वत्ता के कारण।

संसार की विचित्र लीला-भूमि में मॉर्ले-जैसे महापुरुष समय-समय पर प्रादुर्भूत होते हैं। कोई तो उल्का की भाँति अपना क्षणिक प्रकाश डालकर अंतर्हित हो जाते हैं, कोई अप्रतिम प्रतिभा द्वारा संसार की आँखों में चकाचौंध पैदा कर देते हैं, और कोई अद्वितीय हार्दिक गुणों के कारण लोगों का मन मोहकर अमर यश प्राप्त करते हैं।

मतलब यह कि मॉर्ले की सर्व-प्रियता विशेषकर उनके हार्दिक गुणों ही पर स्थित है। उनकी अटल सत्य-निष्ठा तथा सहानुभूति उनके प्रति हमारे चित्त में आदर के भाव उत्पन्न करती है।

रमाकांत त्रिपाठी

प्राचीन वंग-साहित्य पर हिंदी का प्रभाव

आजकल हिंदी-साहित्यिकों का बँगला पढ़ना एक प्रधान कर्तव्य-सा हो गया है। किसी-किसी का तो यहाँ तक कथन है कि बिना बँगला-साहित्य की यथेष्ट जानकारी प्राप्त किए कोई हिंदी-लेखक पूर्णतया साहित्य-मर्मज्ञ नहीं हो सकता। यदि इस कथन में कुछ अतिशयोक्ति हो, तो भी यह तो निर्विवाद कहा जा सकता है कि बँगला-साहित्य की जानकारी हिंदी-लेखक के लिये आवश्यक है। बँगला से हिंदी में इतनी पुस्तकों का अनुवाद हुआ है कि बँगला-भाषा के बहुत-से शब्द और मुहाविरे हिंदी के क्षेत्र में ग्राह्य होते जा रहे हैं। एक अनुवादक महाशय ने बँगला के "ताहारा दले-दले आसिते लागिलेन" का अनुवाद "वे दलदल में आने लगे" किया था। इस पर एक समालोचक महाशय ने ठीक ही लिखा था कि अनुवादक महाशय ने इस प्रकार का अनुवाद करके हिंदी-भाषा ही को दलदल में फँसा दिया है। यह स्थिति सर्वथा शोचनीय है। हिंदी हिंदुस्तान की भाषा है। सूर, तुलसी और बिहारी आदि महाकवियों तथा कबीर, रहीम और जायसी-जैसे मुसलमान कवियों तक ने हिंदी को अपनाकर सर्वांग-सुंदर बनाया था। यहाँ तक कि सम्राट् अकबर तक ने हिंदी ही में कविता की।

पंजाब, राजपूताना, अवध, मध्य-भारत और मिथिला आदि प्रदेशों में हिंदी-भाषा के अनेक महाकवि हुए हैं। इसलिये उक्त प्रदेशों की अन्यान्य भाषाओं पर हिंदी का यथेष्ट प्रभाव पड़ा। यहाँ तक कि प्राचीन वंग-साहित्य भी हिंदी से अछूता न रह सका। यदि मिथिला-प्रदेश के हिंदी-महाकवि विद्यापति ठाकुर वंग-भाषा के आदि-कवि होते, जैसा कि बहुत-से बंगाली विद्वानों का मत है, तो यह प्रमाणित करने की आवश्यकता ही नहीं कि बँगला पर हिंदी का प्रभाव पड़ा है। कारण, विद्यापति ठाकुर की रचना तो हिंदी ही की रचना है। यदि बंगाली विद्वान् विद्यापति ठाकुर को वंग-भाषा का आदि-कवि और उनकी भाषा को वंग-भाषा प्रमाणित करने की चेष्टा करेंगे, तो अंत में यही प्रमाणित हो जायगा कि बँगला-भाषा हिंदी से निकली है। परंतु नहीं, बँगला-भाषा एक स्वतंत्र भाषा है। वह प्राकृत की कन्या और हिंदी की बहन है। मिथिला के महाकवि विद्यापति ठाकुर की भाषा का हिंदी होना तो निर्विवाद सिद्ध है; परंतु विद्यापति के अलावा उन्हीं के समकालीन बँगला-भाषा के यथार्थ आदि-कवि चंडीदास की कविताओं की भाषा में भी हिंदी का प्रभाव पड़ा था।

महाकवि चंडीदास बँगला-भाषा के आदि-कवि थे। उनका वंग-भाषा में वही पद है, जो हिंदी-भाषा में महाकवि चंद बरदाई का। चंद बरदाई की तरह उनकी कविता भी शृंगार-रस से भरी हुई है। परंतु चंद की तरह वीर-रस की कविता उन्होंने नहीं की। वह चंद के पीछे हुए, और विद्यापति के समसामयिक हैं। उनका जन्म वंग-देश के नान्नूर-नामक ग्राम में हुआ था। आजकल वह ग्राम बहुत ही छोटा और उजाड़ है। परंतु वंग-भाषा के आदि-कवि के जन्म ही से उसका यथेष्ट गौरव है। उनके पिता का नाम ठीक-ठीक मालूम नहीं; परंतु बहुतों का अनुमान है कि उनके पिता का नाम दुर्गादास बागची था। देवी की आराधना से पुत्र होने के कारण दुर्गादास ने उसका नाम चंडीदास रक्खा।

यज्ञोपवीत के पश्चात् चंडीदास विशालाक्षी देवी के पुजारी नियुक्त हुए। कहा जाता है, देवी ही की आज्ञा पाकर चंडीदास ने बँगला-पद्य में श्रीकृष्ण की प्रेम-लीला का वर्णन किया। वैष्णवों में ऐसा नियम है कि एक वैष्णवी के साथ रहकर श्रीकृष्ण की आराधना करनी चाहिए। इसलिये चंडीदास ने, वैष्णव होने के कारण, एक धोबिन को जीवन-संगिनी बनाया।

चंडीदास की कविता बहुत ही सरल और मधुर है। जिस प्रकार महाकवि चंद बरदाई की भाषा समझना आधुनिक हिंदी-भाषा-भाषियों के लिये टेढ़ी खीर है, उस प्रकार चंडीदास की भाषा बंगालियों के लिये नहीं है। उनकी भाषा को आधुनिक बंगाली सरलता से समझ सकते हैं। विरह-वेदना से व्यथित राधिका और गोपियों के विलाप और प्रेम-भाव का कवि ने ऐसा सुंदर वर्णन किया है कि पाठक के लिये आँसू रोकना कठिन हो जाता है। जब श्रीकृष्णजी राधिका और गोपियों को वृंदावन में छोड़कर मथुरा चले जाने को हैं, और जब राधिका की प्रधान सखी ललिता आकर उनसे कृष्ण के मथुरा जाने की बात कहती है, तब कृष्ण-प्रेम की चिर-अभिलाषिणी राधिका ललिता को जो उत्तर देती हैं, वह कवि के शब्दों में इस प्रकार है—

"ललितार कथा सुनि, हाँसि हाँसि विनोदिनी,
कहिते लागिल धनि राई;
आमारे छाड़िये श्याम, मधुपुरे जाइबेन,
ए कथा तो कभू सुनि नाई।
हियार माझारे मोर, ए घर-मंदिरे गो,
रतन-पलंक बिछा आछे;
अनुरागेर तूलिकाय, बिछाना हयेछे ताय,
श्यामचाँद घुमाये रयेछे।
तोमरा ये, बोलो श्याम, मधुपुरे जाइबेन;
कोन पथे बँधू पालाइबेन,
ए बूक चिरिया जबे, बाहिर करिया दिब,
तबे तो श्याम मधुपुरे जाइबेन।
शुनिया राईयेर कथा, ललिता चंपकलता
मने-मने भाविल विस्मय;
चंडीदासेर मने, हरष हईला गो,
घूचे गेल मथुरार भय।"

अर्थात्—"ललिता की बात सुनकर राधारानी हँसकर कहने लगीं—हे सखी, मुझे छोड़कर श्याम मधुपुर चले जायँगे, ऐसी बात तो मैंने कभी नहीं सुनी। हे सखी, मेरे हृदय-मंदिर में रत्न का पलँग बिछा हुआ है। अनुराग की तूलिका (?) से बिछौना बिछाया गया है, और उसी पर श्रीकृष्णचंद्र सोए हुए हैं। तुम

जो कहती हो कि श्याम मधुपुर चले जायँगे, सो वह बंधु किधर से भाग जायँगे ? जिस दिन मैं इस हृदय को चीरकर उनको अपने हृदय से निकाल दूँगी, तभी तो श्याम मधुपुर जायँगे । राधारानी के इस कथन को सुनकर चंपकलता ललिता बहुत विस्मित हुई । चंडीदास के मन में इससे अतीव आनंद हुआ । कारण, कृष्ण के मथुरा चले जाने का भय जाता रहा ।"

चंडीदास ने बँगला के महाकवि होकर भी हिंदी में कविता की, यह हिंदी के लिये कम गौरव की बात नहीं है । उनकी हिंदी यद्यपि विशुद्ध हिंदी नहीं है, उसमें कहीं-कहीं दो-एक शब्द बँगला के आ गए हैं, तथापि वह उनकी रचना हिंदी ही कही जा सकती है । उदाहरण-स्वरूप एक कविता नीचे दी जाती है—

"किए शुभ दरसन, उलसित लोचन,
दुहूँ दोहाँ हेरि मुख छाँदे ;
तृषित चातक, नव जलधरे मिलल,
भूखिल चकोर चाँदे ।
आध नयने, दुहूँ रूप निहारई,
चाहनि आनई भाँति ;
रसेर आवेगे दुहूँ, अंग हेलाहेलि,
विछुरल प्रेमसंगाती ।
श्याम-सुखमय देह, गोरि परसे सेह,
मिलायल जेन काँचा ननी,
राई तनु धरिते नारे, एलाइल आनंद भरे,
शिरिषकुसुम कमलिनी ।
अतसिकुसुम सम, सम श्याम सुनागर,
नागरी चंपक गोर,
नव जलधरे जनु, चाँद अगोरल,
ऐसे रहल श्याम कोर ।"

चंडीदास ने हिंदी की कविता नायक-नायिका के मिलाप-स्थल पर लिखी है । आजकल ऐसी कविता अश्लील समझी जाती है ; परंतु उस युग में अत्युत्तम समझी जाती थी । ऐसी कविताओं को कवि बड़ी साव-धानी से लिखता था । एक दूसरे स्थान पर मिलाप का वर्णन कवि इस प्रकार करता है—

"मिलल दुहूँ तनु किबा अपरूप ;
चकोर पाईल चाँद, फाँदिया पिरित-फाँद,
कमलिनी पावल मधुप ।
रस-भरे दुहूँ तनु, थर-थर काँपइ ;
झाँपइ दुहूँ दोहाँ आनंदे भोर ;
दुहूँ क मिलने आजि, निभायल अनल,
पावल विरह क ओर ।
रतन-पलंक पर, बैठल दुहूँ जन
दुहूँ मुख हेरई दुहूँ आनंदे ;
हरष-सलिल भरे, हेरय ना पारइ,
अनिमिष रहल बंधे ।
आज मलयानिल, मृदु-मृदु बहत,
निरमल चाँद प्रकास ;
भाव-भरे गदगद, चमर डुलाव,
पासे रहि चंडीदास ।"

चंडीदास ने हिंदी में जो कविताएँ लिखी थीं, उनमें कुछ बँगला-शब्द और क्रियाएँ भी व्यवहृत हुई हैं । परंतु भारतचंद्र राय की हिंदी-कविताओं की भाषा विशुद्ध हिंदी ही है ।

कवि भारतचंद्र राय के पिता राजा नरेंद्रनारायण राय बर्दवान-ज़िले के अंतर्गत पांडुआ-नामक ग्राम में रहते थे । बर्दवान के राजा कीर्तिचंद्र रायबहादुर की माता के प्रति अनुचित शब्द-प्रयोग करने के कारण राजा की आज्ञा से उनकी जागीर छिन गई थी। भारतचंद्र राय भागकर चाचा के घर चले गए। वहाँ उन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया । परंतु उस समय बंगाल में नवाब का राज्य होने के कारण फ़ारसी पढ़ना अत्यंत आवश्यक था । इस कारण भारतचंद्र को बाध्य होकर फ़ारसी पढ़नी पड़ी । एक दिन भारतचंद्र के फ़ारसी पढ़ानेवाले गुरु ने उनको सत्यनारायण की पूजा और कथा-पाठ करने के लिये बुलाया । भारतचंद्र राय ने घर जाकर एक ही रात में सत्यनारायण की कथा की एक पुस्तक कविता में लिख डाली, और दूसरे दिन अपने गुरु के घर उसी का पाठ किया । भारतचंद्र राय की आयु उस समय केवल १२ वर्ष की थी । इस छोटी-सी अवस्था में उनकी कवित्व-शक्ति देखकर गुरु को बड़ा आश्चर्य हुआ । उन्होंने कहा—"भारत समय पर एक बड़ा कवि होगा ।"

फ़ारसी में पंडित होकर भारतचंद्र राय घर आए, और अपने पिता की ज़मींदारी देखने-भालने लगे । परंतु घटना-चक्र कुछ ऐसा घूमा कि उन पर बर्दवान-नरेश

नाराज़ हो गए। उन्हें कुछ दिन कारागार में रहना पड़ा। उसके बाद वह कटक भाग गए। कटक से वृंदावन गए। शायद वृंदावन ही में आपने हिंदी सीखी थी। अंत को उस समय के गुणग्राही नवद्वीपाधिपति महाराज कृष्ण-चंद्र राय भारतचंद्र राय की कवित्व-शक्ति देखकर मुग्ध हो गए। उन्होंने उनको अपनी राज-सभा का कवि बनाकर कई गाँव और धन-संपत्ति भेंट की। अब वह पिता और भाइयों के साथ सुख से रहने लगे।

भारतचंद्र महाकवि थे। उनकी भी कविताओं में शृंगार-रस प्रधान है। एक दिन आपने "विद्या-सुंदर"-नामक एक काव्य बनाकर राज-सभा में राजा को अर्पण किया। परंतु राजा उस समय बहुत व्यस्त थे, अतएव उन्होंने पुस्तक को एक किनारे रख दिया। उस समय आपने राजा से कहा—"महाराज, इस पुस्तक को इस प्रकार न रखिए, नहीं तो इसका सारा 'रस' निकल जायगा।" यह कथन सुनकर राजा उसी समय ग्रंथ को पढ़कर कवि की काव्य-कुशलता पर बहुत खुश हुए। कहा—"भारत, सत्य ही इस काव्य की प्रत्येक पंक्ति रस से भरी है। म तुमको आज 'राय गुणाकर' की उपाधि देता हूँ।" राय गुणाकर ने युद्ध-स्थल में राक्षसों का कथन हिंदी की कविता में वर्णन किया है। एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

"भागे रे देव देवी पाखर-पाखर,
इंद्र को बाँध आगे।
नैऋष को रीत देना, जमघर जम को,
आगे को अपलागे।
बायू को रोक करके, करत बरन को,
सब तूँ सो सब आगे।
ब्रह्मा सो बासुकी सो, कभी नहीं झगड़े,
जोऊ कुबेर न भागे।"

एक दूसरे स्थान पर इस प्रकार का वर्णन है—

"सुन रे गोपाल लोग, छाड़ दे उपास योग,
मानहुँ आनंद भोग भैंस राजयोग में;
आगे से लगाओ घिउ, काहे को जलाओ जिउ,
मद्य रोज पार पिउ भोग एहि लोक में।
आपको लगाओ, भोग काम को जगाओ,
छोड़ देव योग गो मोक्ष एहि लोक में;
क्या एगाने क्या बेगाने, अर्थ आवे जान,
एहि ज्ञान एहि ध्यान भाव सर्व रोग में।"

मुसलमानी राज्य का ध्वंस हुआ, और साथ ही बंगालियों का हिंदी में कविता करना भी बंद हुआ। अँगरेज़ों का राज्य भारत में फैल गया, और साथ ही समस्त भारतीय भाषाओं में गद्य का युग आ गया। माइकेल मधुसूदन दत्त की मृत्यु के बाद महाकवि हेमचंद्र वंद्योपाध्याय कवि-सम्राट् के शून्य सिंहासन पर आसीन हुए। उन्होंने यद्यपि स्वयं हिंदी में कोई कविता नहीं लिखी, परंतु तत्कालीन हिंदी-भाषा के प्रचलित दोहों का वंगानुवाद किया था।

हुगली-ज़िले के गुलिटा-नामक ग्राम में उनका जन्म हुआ था। पिता का नाम कैलाशचंद्र वंद्योपाध्याय था। हेमचंद्र कलकत्ते में अपना ब्याहकर वहीं, भवानीपुर में, रहने लगे। कलकत्ते के हिंदू-कॉलेज और प्रेसीडेंसी-कॉलेज में उन्होंने अँगरेज़ी की शिक्षा पाई। सीनियर परीक्षा पास की, और कलकत्ता-विश्वविद्यालय की स्थापना के बाद बी० ए० और बी० एल्० भी पास किया। कुछ दिन मुंसिफ़ के पद पर रहे; परंतु फिर वकालत शुरू कर दी। उसमें यहाँ तक उन्नति की कि कलकत्ता-हाईकोर्ट के प्रधान वकील नियुक्त हुए। मिल्टन की तरह हेमचंद्र भी वृद्धावस्था में अंधे हो गए थे। अंधे होने के पहले आपने पत्नी की चिकित्सा में अपना सारा संचित धन पानी की तरह बहा दिया था। अंधे होकर आपको भयानक कष्ट उठाने पड़े। जो मनुष्य एक दिन हाईकोर्ट का प्रधान वकील और वंग-साहित्य का सर्व-प्रधान कवि था, उसी को अंधे हो जाने के बाद कोई न पूछता था। कुछ दिन बाद उनके हाथ-पाँव भी बेकाम हो गए। परंतु हेमचंद्र उससे भी विच-लित नहीं हुए। अंधे होने पर आपने एक कविता ईश्वर को संबोधन करके लिखी थी। वह नीचे दी जाती है। आशा है, पाठकगण उनके मनोभावों को समझ सकेंगे—

"विभू की दशा हबे आमार!
एकटी कुठाराघात, शिरे हानि अकस्मात,
घुचाइले भवेरि स्वपन।
सब आशा चूर्न करे, राखिले अवनि परे,
चिर दिन करिते क्रंदन।

आमार संपद मात्र, छिल हस्त पद नेत्र,
अन्य धन छिल ना ए भवे;
से नेत्र करे हरन, हरिले सर्वस्व धन,
भासाइया दिले भवार्नवे।
सहेछि अनेक दिन, सब भार कत दिन
दिने दिने डूबि हे पाथारे;
सत्वर हे प्रान हरि, ए दुःख घूचाओ हरि,
ए यातना दिओ ना का'कारे।"

अर्थात् "हे प्रभु, मेरी क्या दशा होगी? मेरे सिर पर एक कुठाराघात कर असार संसार के स्वप्न को तुमने नष्ट कर दिया। मेरी समस्त आशाओं को चूर्ण करके मुझे तुमने इस पृथ्वी पर अवशिष्ट जीवन-भर क्रंदन करने के लिये छोड़ दिया। हे विभु, मैंने बहुत सहा, अब कितना सहूँ? दिन-दिन अगाध जल-राशि में मैं डूब रहा हूँ, अतएव इस प्राण का हरण कर मेरे दुःखों को दूर करो, और ऐसा कष्ट किसी को भी न दो।"

भारतचंद्र राय तक बँगला के कवियों ने हिंदी में कविता लिखी थी; परंतु उनके बाद किसी ने नहीं लिखी। हेमचंद्र वंद्योपाध्याय ने उस समय हिंदी के प्रचलित और उपदेश-पूर्ण तुलसी और कबीर के दोहों का वंगानुवाद किया, और उन्हीं के परिश्रम के फल-स्वरूप आज बहुत-से बंगालियों के मुँह से हिंदी के दोहे कभी-कभी सुनाई पड़ते हैं। हेमचंद्र ने कुल ३६ दोहों का अनुवाद किया था। ग्रंथावली के इस भाग को दोहावली कहते हैं। इनके अनुवाद को देखकर अनुमान होता है कि यह हिंदी-भाषा अच्छी तरह जानते थे। इन्होंने किसी पुस्तक से दोहों का अनुवाद नहीं किया। जहाँ यह किसी के मुँह से कोई दोहा सुनते थे, उसका उसी समय अनुवाद कर लेते थे। प्रमाण-स्वरूप एक दोहा नीचे दिया जाता है, जो गोस्वामी तुलसीदास का बनाया हुआ नहीं है—

"तुलसी पहने हरि मिलैं तो मैं पहनूँ भाड़;
पाथर पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूजूँ पहाड़।"

इस दोहे का अनुवाद बँगला में कवि ने इस प्रकार किया है—

"तुलसी माला निले, तबे यदि हरि मिले,
आमि तबे धरि गुड़ी भाड़;
पाथर पुजिले भाइ, हरिर यदि देखा पाइ,
केन तबे ना पुजि पाहाड़।"

गोस्वामी तुलसीदास मूर्ति के उपासक थे। यद्यपि उनका बनाया यह दोहा नहीं है, परंतु बंगालियों में बहुत प्रचलित है। इससे प्रमाणित होता है कि हेमचंद्र लोगों के मुँह से सुनकर ही अनुवाद करते थे। उनके अनुवाद के कई उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

हिंदी

"तुलसी जब जग में आयो, जग हँसे तुम रोय;
ऐसी करनी कर चलो कि तुम हँसो जग रोय।"

वंगानुवाद

"तुलसी संसार माझे आइले जखन,
जगत हेसेछे तुमी करेछ क्रंदन।
हेन काज करे चल जगत माझार,
तुमि हेसे चले जाबे काँदिले संसार।"

हिंदी

"चलती चक्की देखकर दिया कबीरा रोय;
दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय।"

वंगानुवाद

"जाँता घोरे देखे दुखे कबीर मियाँ बले;
आस्त नाँहि थाके केह पड़े पाटेर तले।"

हिंदी

"जल बीच कुमुद बसे, चंदा बसे अकास;
जो जन जाके हृदय में, सो जन ताके पास।"

वंगानुवाद

"जले कुमुदेर वास चांदेर आकाशे;
जे जार बुकेर माझे सेइ तार पाशे।"

हिंदी

"तुलसी जग में आइके, सबसे मिलिए धाय;
ना जाने किस भेष से, नारायण मिल जाय।"

वंगानुवाद

"जगते आसिया, तुलसी भगत
सबे मिलेजुले धाय;
जाने ना कखन, कोन पथे गिया,
नारायने देखा पाय।"

हेमचंद्र वंद्योपाध्याय ही बँगला के ऐसे अंतिम कवि हुए, जिन्होंने हिंदी का गौरव बँगला में गाया। इसके बाद समस्त भारतीय भाषाओं के गद्य का

युग आ गया। दुर्भाग्य-वश हिंदी गद्य-संसार में दूसरी भाषाओं की तरह उन्नति न कर सकी। समस्त जनता नवागत गद्य की ओर आकृष्ट थी, और हिंदी-साहित्य में गद्य का अभाव होने के कारण कुछ दिन के लिये हिंदी का आदर कम हो गया था। परंतु रत्न ढके नहीं रह सकते। वर्तमान काल के बड़े-बड़े विद्वान् हिंदी के प्राचीन साहित्य-रत्नों को देख दंग हो रहे हैं।

हिंदी-भाषा की सरलता पर अन्यान्य प्रांतों के लोग मुग्ध हो रहे हैं। हिंदी ही भारत की राष्ट्रीय भाषा है, यही सबका मत है। भारत के सुदूर प्रांतों के सब लोगों को हिंदी पढ़ने की इच्छा है; परंतु पढ़ाने का प्रबंध न होने के कारण वे लाचार हैं। बंगाल-प्रांत की जनता और विद्वान् हिंदी सीखने को उत्सुक हैं; परंतु खेद है कि अभी तक इसका कुछ प्रबंध नहीं हुआ। क्या हिंदी-साहित्य-सम्मेलन इस ओर ध्यान देगा?

चंद्रदेव दीक्षित

भू-संपत्ति और भूमि-कर

(२)

आईन-इ-अकबरी के देखने से यह ज्ञात होता है कि उस समय के कृषक प्रायः उपज का अंश ही देना अच्छा समझते थे। अमलगुज़ार के आईन में अमलगुज़ार को आदेश दिया गया है कि वह नक़द लेने पर हठ न करे, और उपज भी लिया करे। यह ख़ालसे का प्रबंध था। ख़ालसे के अतिरिक्त सिवरगाल (जागीरदार) भी थे, जो राज-कोष में कर देते थे। उनको १०० बीघे छूट देकर शेष पर १० भाग में ३ भाग कर देना पड़ता था। उस समय एक बीघे का हासिल १) था। समस्त देश सूबों में विभक्त किया गया था। प्रत्येक सूबे में अनेक सरकार थे। सरकारों के अलग-अलग दस्तूर-लगान थे। यही नहीं, प्रत्येक सरकार में अनेक परगने होते थे। परगनों में राज-कर दो प्रकार से आता था। एक तो ख़ालसा से, दूसरे सिवरगाल से। उस समय का बीघा ६० गज़ इलाही के जरीब से एक जरीब लंबा और उतना ही चौड़ा अथवा ३६०० वर्ग-गज़ इलाही का होता था।

जान पड़ता है, नक़दी (हिरण्य) कर लेने की प्रथा का आरंभ चंद्रगुप्त के काल से हुआ; पर प्रजा उसे देने में सदा असुविधा समझती और उपज का अंश ही कर-स्वरूप देती रही। हिंदुओं के काल में हिरण्य-कर पर ज़ोर नहीं दिया गया। मुसलमान राजों ने कर को नक़द ही लेने की चेष्टा की; पर वह व्यर्थ हुई। स्वयं सम्राट् अकबर ने हिरण्य-कर के लिये बड़ा प्रयत्न किया। भूमि को नपवाया। कितनी ही भूमि को, जो ज़मींदारों और राजों के अधीन थी, ख़ालसा किया। फिर भी वह सर्वत्र नक़दी (हिरण्य) कर को प्रचलित करने में कृतकार्य न हो सके; कितने ही प्रदेशों से वहाँ की उपज ही कर-स्वरूप में आती रही।

नक़दी कर के लेने की प्रथा पूर्ण रूप से अँगरेज़ी-राज्य में प्रचलित हुई है। इसीलिये विवश होकर ज़मींदारों को भी कृषकों से नक़दी लगान लेने की आवश्यकता पड़ी। यही नक़दी (हिरण्य) लगान हमारे देश के ज़मींदारों और काश्तकारों में परस्पर विरोध का कारण हो रहा है। दोनों दिन-रात न्यायालयों की ख़ाक छानते फिरते, धन-क्षय करते, एक दूसरे का अशुभ-चिंतन करते और अंत को विपद्-ग्रस्त हो अपने सर्वस्व का नाश करते हैं।

अब लगे-हाथों 'इस्तमरारी बंदोबस्त' की भी कथा सुन लीजिए। इस्तमरारी बंदोबस्त अँगरेज़ों ने किस अवस्था में किया था, वह किस सिद्धांत को सामने रखकर किया गया था, और उससे देश की हानि हुई या लाभ, यह विचारणीय है।

इस्तमरारी बंदोबस्त सन् १७६३ ई० में, लॉर्ड कार्नवालिस के समय में, हुआ था। उसके तत्त्व को जानने के लिये हमें अँगरेज़ों की पचास वर्ष पूर्व की दशा पर ध्यान देना चाहिए। उस समय अँगरेज़ों और फ़ांसीसियों में प्रतिद्वंद्विता हो रही थी। अँगरेज़ों ने बंगाल में भी मुर्शिदाबाद के नवाब से छेड़-छाड़ शुरू कर दी, और देश-द्रोही जगत-सेठ की सहायता से पलासी की लड़ाई में चालबाज़ी से मुर्शिदाबाद के नवाब को नीचा दिखलाया। उसका परिणाम यह हुआ कि सारे बंगाल

में उनका सिक्का जम गया, और व्यापार भी जारी हो गया। इसके बाद क्लाइव इँगलैंड गया, और उसकी अनुपस्थिति में कंपनी के कर्मचारियों ने, सन् १७६४ ई० में, मीर कासिम मुर्शिदाबाद के नवाब और अवध के नवाब की सम्मिलित सेना को बक्सर में पराजित किया। इससे बिहार और बंगाल में उनका प्रभुत्व जम गया। यह सब कुछ हुआ, पर वहाँ के प्रबंध और आर्थिक मामलों में उनका कोई अधिकार न था। वे व्यापारी-के-व्यापारी ही थे। हाँ, उनके पास सेना और शक्ति थी, जिससे वे जिस पर चाहते थे, उस पर कुछ-न-कुछ आरोप लगाकर उसे दबा देते थे। सन् १७६५ ई० में क्लाइव इँगलैंड से लौटा, और उसी साल उसने दिल्ली के सम्राट् से बिहार, बंगाल और उड़ीसे की दीवानी (ठेका) २६ लाख रु० वार्षिक पर प्राप्त की। इस प्रकार अँगरेज़ उन प्रांतों के ठेकेदार हो गए। यह ठेका किसी नियत काल के लिये न था, अपितु एक प्रकार का इस्तमरारी ही था। अकर्मण्य सम्राट् को घर-बैठे बिना किसी श्रम के २६ लाख वार्षिक मिलता था। प्रजा पर जो बीतती थी, वह प्रजा ही जानती थी। देश में दोहरा शासन था। कर अँगरेज़ लेते थे, शेष प्रबंध नवाब के अधिकार में था। प्रजा दोनों ओर से पिसती थी। क्लाइव और हेस्टिंग के समय के जो अँगरेज़ कंपनी के कर्मचारी थे, वे इतने नृशंस थे कि स्वयं ईस्ट-इंडिया-कंपनी के डाइरेक्टरों को यह स्वीकार करना पड़ा कि *"जो महर्घ संपत्ति उसे उपलब्ध हुई थी, वह उन अत्यंत नृशंस और अत्याचार-युक्त कर्मों से लाई गई थी, जिसका उदाहरण किसी देश में कभी न मिलेगा।" इसका फल यह हुआ कि सन् १७७० ई० में भयंकर अकाल पड़ गया, जिससे बंगाल की तृतीयांश प्रजा का क्षय हो गया। जब से अँगरेज़ों को दीवानी मिली। कंपनी के कर्मचारी भारत के कला-कौशल को सत्यानाश कर अपने देश की बनी चीज़ों के व्यापार को बढ़ाने के प्रयत्न में लगे। ईश्वर न करे कि कहीं, किसी देश में, विदेशी वणिकों का अधिकार बढ़े। उसका फल यही होता है, जो हमारे देश का हुआ। पहले तो अँगरेज़ों ने यहाँ अपने कारख़ाने खोले थे, और यहाँ के जुलाहों से कपड़े बुना-बुनाकर विलायत भेजते थे, पर जब उनको दीवानी मिली, तो यह प्रबंध किया गया कि यहाँ रेशम के कपड़े की बुनाई बंद की जाय, और कच्चा माल ले जाकर विलायत में बुनाई हो। स्वर्गीय रमेशचंद्र दत्त भारत के आर्थिक इतिहास में लिखते हैं कि "अँगरेज़ों के सब कुछ अपनालेने और बलात्कार करने के कारण यहाँ का व्यापार और शिल्प नष्ट हो गया।...विलायत के जुलाहों की बंगाल के उन जुलाहों से ईर्ष्या हो गई थी, जिनके बुने हुए रेशमी कपड़े विलायत जाते थे, और सोच-विचार कर यह प्रयत्न किया गया कि विलायत के शिल्प को उन्नत करने के लिये उस अधिकार को, जो कंपनी ने प्राप्त किया था, काम में लाकर बंगाल के शिल्प को नष्ट कर दिया जाय।" कंपनी ने अपने १७ मार्च सन् १७६६ ई० के पत्र में यह इच्छा प्रकट की कि बंगाल में ऐसा प्रयत्न किया जाय कि वहाँ से रेशम (कच्चा) आया करे, और रेशम के कपड़े बुनाकर भेजने का काम बंद किया जाय। यह भी लिखकर भेजा गया कि रेशम की बटाई का काम कारख़ाने में कराया जाय, और किसी को घर पर बटने का काम न दिया जाया करे। इससे यह प्रकट है, इस दोहरे शासन के समय कंपनी के कर्मचारियों ने किस प्रकार देशी शिल्प का सत्यानाश किया।

इसका फल यह हुआ कि देशी कारीगर अपने व्यवसाय के नष्ट हो जाने से एक-एक दाने के लिये तरसने लगे, और जब उनको अपनी जीविका नष्ट हो जाने से और आश्रय न रह गया, तो उन्हें विवश होकर कृषि पर टूटना पड़ा। सारे देश की जीवन-वृत्ति कृषि रह गई। उस समय कंपनी के कर्मचारियों ने मालगुज़ारी इतनी बढ़ा दी कि बेचारे किसानों का सब कुछ उसी में चला जाने लगा। लोग बिहार, बंगाल से भगाकर भिन्न-भिन्न प्रांतों में जाने लगे। देश उजाड़ हो गया। उस समय हाहाकार मच गया। सर फ़िलिप फ़्रांसिस ने सन् १७७६ ई० में, अपनी उस रिपोर्ट में, जिसमें उन्होंने इस्तमरारी बंदोबस्त किए जाने की तजवीज़ की थी, लिखा है कि "ज़मींदारों की बहुत अधिक संख्या का मटियामेट हो गया। वे अपनी भूमि से अधिकार-च्युत हो गए। बहुत कम ख़ानदानी, मान्य तथा

* The vast fortunes acquired in the inland trade have been obtained by a scene of the most tyranical and oppressive conduct that was ever known in any age or country.

ऐसे लोग, जो पूर्व में उच्च-पद पर थे, बच गए हैं। जो लोग रह गए हैं, वे ऐसे हैं, जो अपना अधिक लाभ चाहते थे, पर यह संभव न था कि देश से उनको लाभ भी हो, और लगान भी वसूल हो। अतएव छोटे लोगों को सरकार की ओर से आमिल के पद पर नियुक्त करना पड़ा। ऐसे लोगों से, उनके परगने के लिये, जहाँ उनकी तैनाती की गई, नियत मालगुज़ारी अदा करने का इक़रारनामा लिखाया गया है, और परिणाम-स्वरूप अब वे आमिल क्या हैं, एक प्रकार के मालगुज़ारी के इजारेदार हैं। इक़रारनामा लिखकर वे लोग सदर से अपने-अपने परगनों पर गए कि वहाँ जाकर ज़मींदारों और काश्तकारों के साथ अपने इजारे की मालगुज़ारी की अदायगी का बंदोबस्त करें। जमा जो एक बार बाँध दिया जाय, वह सरकारी काग़ज़ों में दर्ज हो जाय। वह जमा सदा के लिये हो, उसमें तबदीली न हुआ करे, और जहाँ तक हो सके, लोगों को विश्वास दिला दिया जाय कि यह पक्का प्रबंध है। यह शर्त भूमि के संबंध में होनी चाहिए। इसमें इसका विचार न होना चाहिए कि आज उसका कौन मालिक है, तथा आगे कौन होगा। ऐसा करने से यदि कुछ छिपा-छिपाया धन होगा, तो उसे लोग निकालेंगे, और उसे भूमि को बनाने में लगावेंगे; क्योंकि उनको विश्वास रहेगा कि हम अपने काम में लगा रहे हैं।"

पर कंपनी के डाइरेक्टरों ने इस पर कुछ ध्यान न दिया। यहाँ तक कि वे इसका प्रबंध इस्तमरारी कौन कहे, एक पुश्त तक के लिये करने पर सहमत न हुए। एक पत्र में वे लिखते हैं—"इस बात पर कि भूमि को सदा के लिये तथा एक पुश्त के लिये ठेके पर दिया जाय, ऊँच-नीच का विचार किया गया, और कई समुचित कारणों से हमें यह उचित नहीं जान पड़ता कि इनमें से किसी भी रीति का अवलंबन इस समय किया जाय।" इस प्रकार कंपनी के डाइरेक्टर इस्तमरारी बंदोबस्त को सन् १७९३ तक टालते गए; पर जब उन्होंने देखा कि विना ऐसा किए काम नहीं चलता, तो विवश होकर उनको मालगुज़ारी के लिये ऐसा करना पड़ा। भारतीय गवर्नमेंट के सेक्रेटरी मि० वार्लो सन् १७९३ की मिनट में, जिसके अनुसार बंगाल का रिज्यूलेशन बना था, लिखते हैं कि "सरकार को अपने सभी प्रबंधों में इन दो बातों पर ध्यान रखना चाहिए कि एक तो अपने पद सुरक्षित हो जायँ, दूसरे राज्य के अधिकार से, जहाँ तक हो सके, ईस्ट-इंडिया-कंपनी और अँगरेज़ जाति को लाभ पहुँचे"। इससे साफ़ जान पड़ता है कि सरकार ने जो कुछ किया, वह अपनी स्थिति को दृढ़ करने और अपने अँगरेज़ों को लाभ पहुँचाने के उद्देश से। भारतीयों के हानि-लाभ पर तनिक भी दृष्टि नहीं रक्खी। उसकी नीति ही यही थी।

'कैपिटल'-नामक पत्र में Ich Dieu महाशय ने आज से तेइस-चौबीस वर्ष पूर्व बंगाल के इस्तमरारी बंदोबस्त पर एक निबंध लिखा था। उसमें आप लिखते हैं कि "फ़्रांस में भूमि की उपज का लगभग अष्टमांश कर है। पर बंगाल में उपज का आधा कर नियत किया गया, जो फ़्रांस के कर का चौगुना होता है। विशेषता यह है कि यहाँ इँगलैंड से कुछ विचित्र ही दृश्य देखने में आता है। यहाँ भूमि पर क़ानून का बंधन लग गया है, और लगान के मुक़दमों की भरमार रहती है। इँगलैंड में यह बात नहीं है। वहाँ लगान के मुक़दमे होते ही नहीं। वहाँ के ज़मींदार ऐसे काश्तकार को खेत जोतने को देते हैं, जो अच्छा किसान होता और सबसे अधिक लगान देता है।"

सच्ची बात तो यह है कि उस समय सरकार ने उपज की ३/७ आय ली थी, और २/७ ज़मींदारों और काश्तकारों के लिये छोड़ दी थी। इससे कंपनी का लाभ हुआ। अँगरेज़ों को जो लाभ हुआ, वह इसके अतिरिक्त था। अब पहली बात के ऊपर ध्यान दीजिए। इसे "कलकत्ता रिव्यू"-नामक पत्र ने इन शब्दों में स्वीकार किया है—"गंगा से अभिषिक्त प्रदेश (बंगाल-बिहार) से ही सरकार के किसी प्रकार के अतिरिक्त कोष की पूर्ति होती है। इसी से सरकार में लड़ने की शक्ति उत्पन्न होती है, और वह अपने ऋणों का, जो उसने लिए थे, परिशोध करती है।"

उक्त कथन से यह स्पष्ट है कि अँगरेज़ों ने ईस्ट-इंडिया-कंपनी के समय में जो इस्तमरारी बंदोबस्त किया था, वह भारत के ज़मींदारों और काश्तकारों के हित के लिये नहीं था। उसमें उन लोगों ने अपने ही लाभ और स्वार्थ पर विशेष लक्ष्य रक्खा था। उसमें उपज का ३/७ भाग स्वयं लिया था, और २/७ ज़मींदारों और काश्तकारों के लिये छोड़ दिया था। इसके अतिरिक्त ज़मींदारों और

काश्तकारों को क़ानून के बंधन में जकड़ दिया था, जिससे दोनों में लगान के लिये उनके यहाँ मुक़दमे दायर करने पड़ते थे। और भी नाना प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते थे।

इस इस्तमरारी बंदोबस्त से जो आपत्ति बंगाल और बिहार के ज़मींदारों और काश्तकारों पर आई, उसमें सबसे बढ़कर परस्पर विरोध था। इस बंदोबस्त के पूर्व ज़मींदारों और काश्तकारों में परस्पर प्रेम था। एक दूसरे की सहायता करते थे, परस्पर भाई-भाई की भाँति रहते थे। गाँव की रक्षा और अन्य ग्रामोपकार-संबंधी कामों में एक दूसरे का हाथ बटाते थे। उनमें ईर्ष्या-द्वेष का नाम तक नहीं था। यह इस्तमरारी बंदोबस्त की प्रथा अँगरेज़ों ने ठेकेदारी की दशा में चलाई थी। भारत का साम्राज्य मिलने पर अन्य प्रांतों में नहीं प्रचलित की।

देश के कला-कौशल और व्यापार के नष्ट हो जाने पर जब यह देश विदेशी व्यापारियों के लूटने का स्थल बन गया, तब देशी शिल्पकारों को विवश होकर कृषि-कर्म का आश्रय ढूँढ़ना पड़ा। निदान सारा देश कृषक हो गया। अँगरेज़ों ने सम्राट् होकर अपने जीते प्रांतों में कर लेने की जिस प्रथा का अवलंबन किया, वह इस्तमरारी नहीं रह गई। उससे वे परिमित काल के लिये कर नियत करने लगे। इधर लोगों के शिल्प-व्यवसाय नष्ट होने से सब लोग कृषि पर टूट रहे थे, फल यह हुआ कि लोग गाँवों की परतियों और जंगलों को तोड़-तोड़कर खेत बनाने लगे। भूमि भी जीर्ण होती गई। परती भूमि तथा जंगल न रहने के कारण पशुओं की संख्या घटती गई। उधर लोगों की आँखें विदेश की बनी वस्तुओं पर पड़ीं। उनको चाट लगी, आवश्यकताएँ बढ़ीं। निदान देश का धन-क्षय होने लगा। पर इतनी परतियों के आबाद होने का कुछ फल न हुआ। इधर तो परती जंगल आबाद हुए, उधर देश का बहुत बड़ा अंश रेल के नीचे निकल गया। देश में हाहाकार मचने लगा। अनावृष्टि, अकाल तथा महँगी आदि ने देश में अपने अड्डे जमा लिए। निदान सन् १९०० ई० में श्रीरमेशचंद्र दत्त ने, जो बर्दवान के कमिश्नर थे, वाइसराय की सेवा में अनेक पत्र भेजे। उसके थोड़े दिनों बाद सेक्रेटरी ऑफ़ स्टेट ने भारत-सरकार की सेवा में विलायत के पेंशन पानेवाले कई सिविलियनों के हस्ताक्षरों से युक्त एक प्रार्थना-पत्र भेजा। उसके ऊपर भारत-सरकार ने प्रादेशिक सरकारों से सम्मति लेकर यह निर्धारित किया कि सरकार ज़मींदारों से आय का आधा मालगुज़ारी में लिया करेगी। भारतवर्ष-भर में इस्तमरारी बंदोबस्त करने का निषेध किया गया। ज़मींदारों और काश्तकारों में लगान के लिये परस्पर विरोध अन्य प्रांतों में बंगाल से भी अधिक बढ़ गया, और मुक़दमेबाज़ी बढ़ती गई। पर इन सबका कारण क्या था? वही उपज के अंश के स्थान में नक़दी लेना।

इतना ही नहीं, जो भूमि एक समय राष्ट्र की संपत्ति एवं विश्व-विभूति का अंश समझी जाती थी, जिसका कोई स्वामी नहीं, जो सबकी आधार-भूता पालयित्री जननी थी, उसके ब्रिटिश काल में एक नहीं, तीन-तीन, और कहीं-कहीं चार-चार स्वामी बन गए। उनमें सर्व-प्रधान तो ब्रिटिश सरकार ही है। उसके नीचे ज़मींदार और ज़मींदार के नीचे काश्तकार। कहीं-कहीं ज़मींदार और काश्तकार के मध्यवर्ती क़बज़ेदार तथा माफ़ीदार होते हैं, और कहीं ज़मींदार और सरकार के मध्य नानकारदार राजा। इतने स्वामी और भूमि एक। किसी कवि ने ठीक कहा है—

این کہن عروس را ہزار داماد است

मनुष्यों ने यह समझ रक्खा है कि यह भूमि हमारे ही लिये है, पशु-पक्षियों को इस पर रहने का कोई स्वत्व नहीं है। जहाँ पशुओं के चरने के लिये गाँवों में सहस्रों बीघे भूमि पड़ी रहती थी, वहाँ अब गाँव से किसानों को अपने खेत में जोतने जाने के लिये बैलों को ले जाने का मार्ग नहीं रह गया है। जहाँ दूध-घी की नहरें बहती थीं, आज वहीं के बालक एक चिल्लू दूध के लिये तरस रहे हैं। जिस देश में अतिथि-पूजा परम धर्म था, और लोग नित्य अतिथियों को भोजन कराने के लिये खोज में रहा करते थे, आज वहाँ वे ही लोग दिन-रात श्रम करने पर भी अपनी पेट-पूजा नहीं कर सकते। जो देश औरों को वस्त्र पहनाता था, आज वहाँ के लोगों की यह दशा हो रही है कि यदि विदेशी वस्त्र उनके शरीर को न ढकें, तो वे नंगे फिरें, और शीत के मारे अकड़ जायँ। जिस देश में सूखे ईंधन जंगलों में इतने अधिक होते थे कि ग़रीब किसान शीत-काल में अलाव तापकर सुख की नींद सोते थे, आज उस देश की युवतियाँ पेड़ों की पत्तियाँ झोंक-

कर अन्न पकाती हैं। जहाँ गायों के गोबर से लिपी भूमि शोभायमान होती थी, आज वहाँ यह दशा हो रही है कि गोबर जलाकर भोजन पकाया जाता है। जहाँ की भूमि की उपज इतनी थी कि अकबरनामा और आईन-इ-अकबरी में लिखा है कि गेहूँ की उपज एक बीघे में अठारह मन, बारह मन और आठ मन होती थी, वहाँ आज अच्छी-से-अच्छी भूमि में आठ मन से अधिक उपज नहीं देखी जाती। इसी प्रकार अन्य अन्नों की उपज को भी समझ लीजिए। पशुओं की संख्या भी घटती जा रही है। एक विद्वान् का अनुमान है कि घोड़े पचास वर्ष में और बैल सौ वर्ष में यहाँ न रह जायँगे। उस समय क्या व्यवस्था होगी, इसे सोचकर किस देश-हितैषी का कलेजा मुँह को न आता होगा?

ज़मींदार थे केवल काश्तकारों से लगान की वसूली और ग्राम के प्रबंध के लिये राजा की ओर से ठेकेदार, और कृषक थे भूमि के जोतनेवाले। राजा था प्रजा का रक्षक, और कर था रक्षार्थ शुल्क। पर आज ज़मींदार भूमि के स्वामी बने बैठे हैं। भूमि अन्य संपत्तियों की भाँति बटती और बिकती है। इतना ही नहीं, काश्तकार भी एक प्रकार के स्वामी ही हैं। वे भी कहीं-कहीं उसे बेचते हैं। और, बाँटते तो सर्वत्र ही हैं। बड़ी अव्यवस्था फैली हुई है।

अब विचारणीय विषय यह है कि भूमि किसकी संपत्ति थी? कृषक की, करद ज़मींदार की, राजा की अथवा राष्ट्र की? भू-संपत्ति के इतिहास पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि प्रजा ने मनु को भूमि की * रक्षा करने के पुरस्कार में कोशाभिवर्द्धनार्थ शस्य और पशु की उपज का अंश देना स्वीकार किया था। इससे यह कभी नहीं माना जा सकता कि प्रजा ने राजा को भूमि का स्वामी स्वीकार कर लिया था। यदि राजा को भूमि का स्वामी स्वीकार किया होता, तो ऋषिगण वेन † को क्यों मंत्र-पूत कुशों से मारते, और उसके स्थान पर पृथु को क्यों राजा बनाते? इससे यह निर्विवाद सिद्ध है कि भूमि राष्ट्र की संपत्ति समझी जाती थी। हिंदू-शास्त्रों में भूमि-दान का उल्लेख तो मिलता है, पर वह दान श्रोत्रियों के लिये था, जिसे 'ब्रह्मस्व' कहते थे। राष्ट्र की भूमि बेचने का निषेध किया गया है। महाभारत के शांति-पर्व में लिखा है—

"अजोऽग्निर्वरुणो मेषः सूर्योऽश्वः पृथिवी विराट्;
धेनुर्यज्ञश्च सोमश्च न विक्रेयाः कथंचन।"

अर्थात्, बकरा, अग्नि, मेष वरुण, घोड़ा, सूर्य, पृथ्वी, विराट्, धेनु, यज्ञ और सोम, ये कभी बेचने योग्य नहीं हैं। इससे यह अनुमान होता है कि महाभारत के काल तक इनको विक्रेय नहीं माना गया था। कारण यह था कि ये उन देवतों की संपत्ति माने जाते थे, और मनुष्य केवल उनका उपयोग-मात्र करने का अधिकारी था, उनको बेच नहीं सकता था। यही कारण है कि धर्म-शास्त्रों में न तो उनके विक्रेता के लिये दंड का विधान है, और न बेचने की विधि है। क्योंकि शास्त्र में निषेध और दंड ऐसी क्रिया के लिये विहित होता है, जो प्राप्त होती है, जैसे चोरी करने का। इसी कारण शास्त्रों में चोरी का निषेध और चोर के लिये दंड का विधान है। जिसे लोग करते ही नहीं, उसके लिये विधि होती है। उसके लिये शास्त्रों में निषेध कदापि हो ही नहीं सकता। इससे ज्ञात होता है कि भूमि महाभारत के काल में विक्रेय कदापि नहीं थी। वह विश्व की या राष्ट्र की संपत्ति ही नहीं, बल्कि आधारभूत मानी जाती थी। पुराणों में एक भी वाक्य या कथा ऐसी नहीं मिलती, जिसमें भूमि के क्रय-विक्रय का उल्लेख किया गया हो।

कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र में केवल एक स्थान पर यह लिखा मिलता है कि करद करद के हाथ आधान और विक्रय करें, और ब्रह्मदेयिक ब्रह्मदेयिक के हाथ। अन्यथा पूर्व साहसदंड दिया जाय। यही दंड उस करद को भी दिया जाय, जो अकरद गाँव में घुसे *। इससे यह ध्वनि निकलती है कि चंद्रगुप्त के काल में करद और ब्रह्मदेयिक अपने-अपने खेतों का करदों और ब्रह्मदेयिकों के हाथ आधान (रेहन) और विक्रय (बय) कर सकते थे। पर यह पता नहीं चलता कि यह प्रथा इस देश में पूर्व काल से प्रचलित थी, अथवा नई प्रथा

* आददीत बलिं चापि प्रजाभ्यः कुरुनन्दन!
स षड्भागमपि प्राज्ञस्तासामेवाभिगुप्तये।

† तं प्रजासु विधर्माणं रागद्वेषवशानुगम्;
मन्त्रपूतैः कुशैर्जघ्नुर्ऋषयो ब्रह्मवादिनः।

* करदाः करदेष्वाधानं विक्रयं वा कुर्युः। ब्रह्मदेयिका ब्रह्मदेयिकेषु। अन्यथा पूर्वसाहसदण्डः करदस्य वाऽकरद-ग्रामं प्रविशतः।

थी। शायद यह प्रथा चंद्रगुप्त के समय में कोशाभिवर्द्धनार्थ अथवा किसी और नीति पर चलाई गई थी। कारण, कौटिल्य के पूर्ववर्ती ग्रंथों से इस प्रथा का इस देश में प्रचलित होना पाया नहीं जाता। अनुमान होता है कि चाणक्य ने अन्य देशों में, जैसे ईरान और बैक्ट्रिया आदि में, इस प्रथा का प्रचार देखकर उसको यहाँ प्रचलित करने की चेष्टा की थी; तभी तो 'कुर्युः' (करें) यह विधि का प्रयोग किया है। यह प्रथा कब प्रचलित हुई, या कब तक प्रचलित रही, इसका ठीक पता नहीं चलता।

कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र में एक बात और भू-संबंधी देखी जाती है। वह यह है कि करदों को कृतक्षेत्र एकपुरुष के लिये दिए जाते थे *। इससे यह स्पष्ट जान पड़ता है कि कृतक्षेत्रों का प्रबंध एकपुरुषिक होता था। एकपुरुषिक के दो अर्थ होते हैं। एक पुरुष के साथ, अनेक पुरुषों के साथ नहीं; अर्थात् उसे एक ही मनुष्य को देते थे। ऐसा नहीं करते थे कि यदि दो भाई हों, तो दोनों को एकसाथ दें। दूसरा यह भी अर्थ होता है कि किसी को उतने काल के लिये देते थे, जब तक वह जीवित रहे। पर यह ठीक नहीं जँचता। कारण, पुरुष के जीवन का कुछ निश्चय नहीं कि वह कब तक जिएगा। संभव है, उसी वर्ष वह मर जाय, अथवा दस-बीस वर्ष जीता रहे। अतः यह अर्थ ठीक नहीं प्रतीत होता। हाँ, श्रुति में 'शतायुर्वै पुरुषः' वाक्य अवश्य है, जिससे यह कहा जा सकता है कि पुरुष की आयु सौ वर्ष की मानी जा सकती थी, अतः एक सौ वर्ष के लिये खेतों का बंदोबस्त करदों के साथ किया जाता था। पर इस अर्थ में दो आपत्तियाँ हो सकती हैं। एक तो यह कि यदि कौटिल्य का अभिप्राय इस प्रकार का होता, तो वह अपने 'देशकालमान'-प्रकरण में यह स्पष्ट लिख देता कि सौ वर्ष एक पुरुष का मान है। दूसरे यह कि इतना काल मानने पर भी ऐसे क्षेत्र में विक्रय और आधान का अधिकार देना ठीक नहीं जँचता। अतएव यही अर्थ निर्विवाद है कि ऐसे खेत एक मनुष्य को दिए जाते थे, और जब तक वह कर देता और जोतता रहे, खेत उससे नहीं छीने जाते थे। कृतक्षेत्र ऐसे खेत होते थे, जो तोड़कर खेती करने के योग्य बनाए गए हों। जान पड़ता है, पहले भूमि को, उसे बनानेवालों को, विना लगान के या थोड़े लगान पर, दो-चार वर्ष या किसी नियत काल के लिये देते थे (जैसे कि आजकल भी प्रथा है), और जब भूमि बन जाती थी, तब उसके कर का पक्का प्रबंध करते थे। यह प्रबंध उसी भूमि के लिये था, जिसका पूर्ण अधिकार राजा को होता था। सामंतों या ज़मींदारों की भूमि का ऐसा प्रबंध नहीं था। वे अपनी भूमि का कर आप लेते थे। यह स्वयं आय-शरीरांतर्गत राष्ट्र-शब्द में 'सीता, भाग, बलि, कर, वणिक्, नदीपाल, तट, नाव, पट्टन, विवीत, वर्तनी, रज्जु और चोररज्जु' आने से प्रतिध्वनित होता है कि 'कर' भाग और बलि से पृथक् था। कारण, 'भाग' वह था, जो ज़मींदारों से मिलता था, और 'बलि' वह थी, जो बड़े-बड़े राजों से वार्षिक उपहार के रूप में प्राप्त होती थी। जान पड़ता है, चाणक्य ने इन्हीं करदों के लिये आधान और विक्रय की व्यवस्था की थी। पर उस समय भी भूमि या क्षेत्र 'विभाज्य' नहीं थे। आईने-अकबरी से केवल इतना पता चलता है कि उस समय उपज के अंश की जगह नक़दी (हिरण्य) लेने की प्रथा फिर जारी की गई। पर उस समय भी प्रायः अंश देने ही की प्रथा थी। उसमें इस बात का कहीं भी उल्लेख नहीं है कि भूमि का आधान और विक्रय होता था और न उससे यही पता चलता है कि भूमि उस समय विभाज्य थी।

मुसलमानों के काल में संपत्ति-विभाग की क्या व्यवस्था थी? उसका विभाग हिंदू-धर्म-शास्त्र के अनुसार होता था, अथवा मुसलमानी शरा के अनुसार, इसका ठीक पता नहीं; क्योंकि शरा के अनुसार ऐसी भूमि पर, जो कृषि के लिये किसी ने बनाई हो, दायादों का स्वत्व हो जाता है, और उसे वे विभक्त कर सकते हैं। कुछ हो, जहाँ तक पता चलता है, शाही-ज़माने में भूमि-कर तीन प्रकार से प्राप्त होता था। एक ख़ालसा, जिसमें बादशाह के नौकर स्वयं प्रत्येक कृषक से नक़दी या कनकूत और भावली द्वारा शस्य की उपज का अंश लेते थे। द्वितीय वह कर, जो बड़े-बड़े राजों और महाराजों से मिलता था। तृतीय वह, जो छोटे-छोटे तअल्लुक़दारों और ज़मींदारों से शाही नौकर वसूल करते थे। इसमें संदेह नहीं कि इस तृतीय श्रेणी में कितने ही ऐसे प्रबल होते थे, जिनसे कर लेने

---

* करदेभ्यः कृतक्षेत्राण्यैकपुरुषिकाणि प्रयच्छेत्।

लिये सूबेदार या उसके चकलेदार को सेना भेजना और युद्ध करना पड़ता था। पर कितने ही ऐसे भी थे, जो नियत समय पर अपना कर दे देते थे। इन लोगों के संबंध में इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता कि किसी गाँव में दो ज़मींदार थे, अथवा किसी गाँव के कर का प्रबंध दो मनुष्यों से हुआ हो। इन ज़मींदारों में यह प्रथा थी कि कुटुंब में जो सबसे योग्य या श्रेष्ठ होता था, वही ज़मींदार होता था। शेष लोगों को वह अपनी ओर से ख़ानगी भूमि दे देता था। अथवा उनमें यदि कोई और योग्य होता था, तो वह दूसरे गाँव का प्रबंध अपने नाम कराता या दूसरे के गाँव को छल-बल-कौशल से छीन लेता था। कारण, उस समय क्षात्र वृत्ति की प्रधानता थी, वैश्य-वृत्ति दबी पड़ी थी। उस समय कोई किसी को इस उद्देश से ऋण नहीं देता था कि उसे वह ऋण के जाल में फाँसे, और सूद-दर-सूद बढ़ाकर, उसकी भूमि नीलाम कराकर, उसे धता बताकर, उसकी अर्जित भूमि का मालिक बने। मुसलमानी साम्राज्य के उदय-काल में ज़मींदार केवल एक प्रकार के मुस्ताजिर (ठेकेदार) थे। उनका यह काम था कि गाँव के कृषकों से कर वसूल करें, और इस बात के ऊपर ध्यान रक्खें कि कोई खेत परती न पड़ने पावे, या राज-कर में घाटा न पड़े। ये ज़मींदार प्रायः ऐसे होते थे, जिन्होंने उस भूमि को बनाया, या गाँव को बसाया, अथवा उसे ज़बरदस्ती किसी से प्राप्त किया होता था। पर बहुधा ऐसा भी होता था कि जहाँ कोई सरकारी कर के लिये मुस्ताजिर नहीं होता था, अथवा जो ऐसे ज़मींदार का गाँव होता था, जिसने सरकारी मालगुज़ारी नहीं दी, और वह गाँव ज़ब्त कर लिया गया, तो उसका प्रबंध किसी दूसरे ज़मींदार अथवा किसी और आदमी के साथ कर दिया जाता था। क़ानूनगो का, जो परगने में रहता था, यह काम था कि प्रतिवर्ष उन कुल गाँवों, उनके ज़मींदारों और सरकारी मालगुज़ारी की एक सूची तैयार करता था। वही उस वर्ष की मालगुज़ारी के लिये प्रमाण होता था। कितने ही गाँवों में तो ऐसा हुआ है कि बादशाह ने ज़मींदारों के गाँव दूसरों को माफ़ी दे दिए, और ज़मींदार के उज्र करने पर उनको उनका स्वत्व दिला दिया गया। ज़मींदारों को इस काम के बदले कर से भाग मिलता था, अथवा उनकी सीरें बिना मालगुज़ारी की—माफ़ी—होती थीं। यह दशा मुसलमानी ज़माने में प्रचलित थी।

सन् १७६५ ई० में, अँगरेज़ी ज़माने में, जब अँगरेज़ों को बंगाल की दीवानी मिली, तब उन्होंने मालगुज़ारी वसूल करने के लिये नए ढंग निकाले। सन् १७७२, १४ मई को एक रेगुलेशन बनाया, जिसके अनुसार मालगुज़ारी का पाँच-पाँच वर्ष का पट्टा ज़मींदारों (या यों कहिए कि ठेकेदारों) को दिया गया। जान पड़ता है, उस समय कितने ही ज़मींदारों ने उस पट्टे को लेना स्वीकार नहीं किया था। कारण, वे लोग उतनी जमा, जो उनसे माँगी गई, दे नहीं सके थे। उनकी ज़मींदारी नीलाम की गई थी। बर्क ने वारन हेस्टिंग्ज़ के मुक़दमे की बहस में कहा था कि बंगाल के ज़मींदारों की भूमि कई प्रकार की थी। एक तो वह, जिसका कर देते थे। दूसरी माफ़ी। करदों की बाक़ी देन में भूमि कुर्क़ हुई, और अल्प मूल्य पर नीलाम की गई। माफ़ीवाली भूमि की भी वही दशा की गई। एक एकड़ भूमि सात-आठ शिलिंग या ३॥) या ४) में, नीलाम हुई। कितने ही ज़मींदार अपने घरों को छोड़कर भाग गए। कितने ही बड़े-बड़े ज़मींदारों की भूमि ज़ब्त की गई। वह भूमि उन्हीं ज़मींदारों को, यदि वे राज़ी हुए तो, जमा बढ़ाकर दी गई। पर विशेषतः ठेकेदारों को पाँच वर्ष के लिये मालगुज़ारी की जमा नियत कर दी गई थी। भारत के इतिहास में भूमि का नीलाम होना या बेचा जाना—वह भी नाम-मात्र के मूल्य पर—यही पहले-पहल देखने में आता है। मानो क्रय-विक्रय का सूत्रपात उसी समय से हुआ। कितने ही पुश्तैनी ज़मींदार इसमें बरबाद हो गए, कितने ही भाग गए, कितनों ही ने ज़मींदारी छोड़कर कृषि करना ही अच्छा समझा। सारे बंगाल और बिहार में हाहाकार मच गया। उसी समय के भागे हुए बंगालियों और बिहारियों के वंशज अब तक संयुक्त-प्रांत में मिलते हैं। बंगाल और बिहार में यह दशा सन् १७९३ ई० तक बनी रही। अँगरेज़ों ने यही प्रथा उन प्रदेशों में भी जारी रक्खी, जो उनको उस समय तक मिले थे। आमिल नियत थे, और वे काश्तकारों और ज़मींदारों से लगान का निश्चय करते, उसे बढ़ाते और वसूल करते थे। जिस गाँव की मालगुज़ारी का बोझ एक मनुष्य अपने सिर नहीं लेता था, वहाँ अनेक पर उसका बोझ लादते थे। अनेकों के

साथ हिस्सेवार बंदोबस्त होता था । ज़मींदारी क्या थी, एक प्रकार की ठेकेदारी थी। जब बंदोबस्त इस्तमरारी हुआ, तो ऐसे ही लोगों के साथ बंदोबस्त किया गया। पुराने मौरूसी ज़मींदार और माफ़ीदार बहुत कम रह गए थे। उसी समय से पट्टीदारी का आरंभ हुआ। बड़ी रियासतों का इससे बटवारा हो गया । फिर अँगरेज़ी सरकार ने ज़मींदारों को वह स्वत्व दिया, जिसके अनुसार उनकी अधिकृत भूमि संपत्ति मानी जाने लगी, और वह विभाज्य तथा विक्रेय * हो गई।

भूमि संपत्ति हो गई, और उसके अधिपति को उसके बेचने या रेहन करने का स्वत्व हो गया। देश में एक नए प्रकार की संपत्ति उत्पन्न हो गई। फिर भी देश की दरिद्रता दिन-दिन बढ़ती गई । कारण यह था कि ज़मींदारों को भूमि के क्रय-विक्रय और बटवारे के अधिकार देने से देश में अनेक प्रकार की अव्यवस्था फैल गई। ज़मींदारों और कृषकों में सहानुभूति की जगह वैर-विरोध बढ़ा, और अदालतों में दोनों को दिन-रात दौड़ना और धन-क्षय करना पड़ा। इसके अतिरिक्त, भूमि के विभाज्य हो जाने से, ज़मींदारों में भी परस्पर विरोध उत्पन्न हो गया। उन पर दरिद्रता, अकर्मण्यता, अपव्यय आदि के आक्रमण हुए। कितनी ही ज़मींदारियाँ अपव्यय के कारण महाजनों के हाथ लगीं। यह अपव्यय विशेषकर विलायत की चमकदार और मन लुभानेवाली वस्तुओं के लिये, जिनको विदेशी व्यापारी हमारे देश के बनियों द्वारा उन तक पहुँचाते थे, धन व्यय करने से हुआ।

भारतवर्ष में ज़मींदार गाँव के खेतों के प्रबंध-कर्ता, कृषकों से उपज का हिस्सा लेनेवाले, गाँव की प्रजा के रक्षक, न्यायाधीश और सहायक राजा का केवल प्रतिनिधि होता था । उसे गाँव की भूमि को रेहन करने या बेचने का अधिकार कदापि नहीं था । वह केवल गाँववालों का प्रतिनिधि था । गाँव की भूमि उसके पास राष्ट्र की एक थाती थी, जो उसके अधिकार में प्रबंध के लिये सौंपी गई थी । अँगरेज़ी राज्य के आरं के साथ ही उसके सारे अधिकार जाते रहे। वह कृषकों और अधिवासियों का प्रतिनिधि, सहायक और मित्र नहीं रह गया; किंतु उनका शत्रु और भक्षक बन गया। क्यों ? इसके दो कारण हैं—लगान का नक़द होना, और ज़मींदार का भूमि पर स्वत्व हो जाना। और तीसरा कारण भी हो सकता है, और वह है लगान के लिये उसका न्यायालयों के द्वार को देखना। लेकिन ज़मींदार और कृषक, दोनों के धन-क्षय और कष्ट का कारण होने पर भी यह पूर्वोक्त दोनों कारणों से प्रबल नहीं है। अब भी जहाँ आवली या बटाई की प्रथा है, वहाँ ज़मींदार और कृषक, दोनों सुखी हैं । उनको अदालतों के द्वार भी कम देखने पड़ते हैं।

जब देश का शासन धर्माश्रित दंड-नीति द्वारा होता है तब राजा और प्रजा, दोनों सुखी रहते हैं। जब राजा में विशुद्ध क्षात्र धर्म ब्राह्म धर्म से सुरक्षित रहता है, तब उसी को राजर्षि कहते हैं, और वही राजा अपनी प्रजा का पुत्रवत् पालन करता है। जब क्षात्र धर्म में वैश्य-धर्म का मिश्रण हो जाता या उसमें वैश्य-धर्म की प्रधानता होती है तब वही राजा प्रजा के सर्वस्व को हड़पना चाहता और प्रजा के वर्णाश्रम-धर्म का लोप कर देता है जिससे प्रजा सदा दुखी और संतप्त रहती है, और राजा भी चिंता-ग्रस्त रहता है । इसीलिये हिंदू-शास्त्रों में ब्राह्मण को क्षात्र की योनि कहा गया है। शूद्र-धर्म की प्रधानता में तो महाविप्लव होता है। उस दशा में राज-कर्मचारी प्रजा का भक्षण करते हैं, और राजा नाम-मात्र को रह जाता है। कर्मचारी जो चाहते हैं, वही करते हैं। कोई प्रजा की पुकार सुननेवाला नहीं रह जाता। इसी प्रकार अन्य धर्मों के सम्मिश्रण की दशा में दोनों को और भी विपत्तियों का सामना करना पड़ता है। इसी कारण शास्त्रों में दोनों के कल्याणार्थ कहा गया है—

"तस्मात्स्वधर्मं भूतानां राजा न व्यभिचारयेत्;
स्वधर्मं सन्दधानो हि प्रेत्य चेह च नन्दति ।
व्यवस्थितार्यमर्यादः कृतवर्णाश्रमस्थितिः ;
त्रय्या हि रक्षितो लोकः प्रसीदति न सीदति ।"

जगन्मोहन व

---

* पहले-पहल इसे सन् १७८७ के रेगुलेशन के अनुसार विक्रेय ठहराया गया, और यह शर्त लगाई गई कि ज़मींदार अपनी भूमि को, कुल या थोड़ी-थोड़ी, बोर्ड की स्वीकृति लेकर बेच सकते और रेहन कर सकते हैं ; पर ऐसे क्रय और रेहन के दस्तावेज़ों की रजिस्ट्री क़ानूनगो के पास करानी होगी।

भारत-स्तुति

(१)

जय तीस कोटि जन-सेवित भारत-जननी ;
जय संघ-शक्ति-आकर, जय वीर-प्रसविनी ।
तू ख्यात मुक्ति-दायिनी अहो त्रिभुवन में ;
रक्खेगा तुझको कौन, अंब, बंधन में ?
तू स्वतंत्रता-हुंकार प्रखर हुंकारे,
शुभ, सत्य आत्म-निर्णय का नियम सुधारे ।
तू चिर-स्थायिनी शांति विश्व में लावे ;
तू धर्म-राज्य की महिमा फिर दिखलावे ।

(२)

जन तीस कोटि, भुज साठ कोटि असि धारे,
उद्धत राष्ट्रों के सर्व गर्व संहारे ।
तू विश्व-विजय का तिलक भाल पर धारे,
वर विश्व प्रेम-उपदेश पवित्र प्रचारे ।
विज्ञान-ज्ञान-रवि अहं-भाव तम खोवे ;
तू जन-मन-मोहन शांति-निकेतन होवे ।

(३)

तेरी महिमा का गान विश्व में होवे ;
तेरे पुत्रों का मान विश्व में होवे ।
तू स्वार्थ, कपट, अन्याय, अनीति विनाशे ;
परमार्थ, प्रेम, सद्धर्म, सुनीति विकाशे ।
तू जन में, धन में, वर वैज्ञानिक बल में,
हो अग्रगण्य, पूजास्पद अवनी-तल में ।

(४)

पापी, पर-पीड़क, कुटिल, प्रजा के द्रोही,
कुत्सित शासन के मूल, सत्य-विद्रोही,
ऐसे राष्ट्रों का दलन करे तू माता,
स्थापन तू करे "स्वराज्य" प्रजा-सुख-दाता ;
तू प्रिय स्वराज्य-मय राम-राज्य की अवनी;
हो फिर भूतल की राज्य-शिरोमणि, जननी ।

लोचनप्रसाद पांडेय

जीवाणु

(Microbes)

जीवाणु के लक्षण

हमारी आँखें इस संसार की सब चीज़ों को नहीं देख सकतीं । बहुत-सी चीज़ें इतनी नन्ही हैं कि हम उनको बिना ऐसे यंत्रों की सहायता के, जो उनका परिमाण वास्तविक परिमाण से कहीं ज़्यादा बढ़ाकर दिखावें, नहीं देख सकते । ऐसे गुणवाला साधारण यंत्र दोनों ओर से उभरा हुआ काँच का ताल होता है । पेचीदा यंत्र, जिसमें कई ताल और बहुत-से पुर्ज़े होते हैं, अणुवीक्षण-यंत्र कहलाता है । जो जीव इतने नन्हे होते हैं कि उनको देखने के लिये अणुवीक्षण से काम लिया जाता है, वे अणुवीक्ष्य जीव या जीवाणु कहलाते हैं । जीवित सृष्टि के इस जीवाणु-विभाग में वनस्पति और प्राणी, दोनों ही वर्गों की सृष्टि अंतर्गत है । या यह समझना चाहिए कि दोनों वर्गों के सबसे छोटे जीव अणुवीक्ष्य होते हैं । वनस्पति-वर्ग के जीवाणु बक्टीरिया या कीटाणु कहलाते हैं ।

हिंदी में बक्टीरिया के लिये प्रचलित शब्द कीटाणु है । यद्यपि यह शब्द बहुत उचित नहीं है, परंतु व्यवहार में आ जाने के कारण हम इसी शब्द का प्रयोग करेंगे । प्राणिवर्ग के जीवाणु आदि-प्राणी कहलाते हैं ।

जीवाणु कहाँ रहते हैं ?

जीवाणु एक प्रकार से सर्व-व्यापक हैं । जहाँ कहीं जीवित चीज़ें रह सकती हैं, वहाँ वे भी मौजूद हैं । मिट्टी में, भोजन की वस्तुओं में, दूध में, मुँह में, बालों पर, त्वचा में, आँतों में, आँखों में, कानों में, जल में, वायु में, सभी जगह वे मौजूद हैं । हाँ, कहीं कम हैं, कहीं ज़्यादा ; कहीं एक प्रकार के हैं, कहीं दूसरे प्रकार के ; कहीं हानि-कारक हैं, कहीं लाभ-दायक ।

जीवाणु क्या करते हैं ?

कुछ जीवाणु रोगोत्पादक होते हैं, जैसे मलेरिया (तिजारी, चौथिया ज्वर), काला आज़ार, फिरंग-रोग, क्षय-रोग, इनफ़्लुएंज़ा, सुज़ाक, प्लेग, हैज़ा इत्यादि रोगों के । बहुत-से रोग जीवाणुओं ही के द्वारा होते हैं ।

कुछ जीवाणु मनुष्य तथा अन्य ज़ीवधारियों के लिये अत्यंत उपयोगी हैं। जीवाणुओं द्वारा होनेवाली अत्यंत आवश्यक क्रियाओं के उदाहरण ये हैं—

१. दूध से दही और फिर दही से मक्खन तथा घृत तैयार होना। पनीर बनना।

२. गन्ने के रस से सिरका और जौ, महुवा, अंगूर इत्यादि चीज़ों के सड़ाव से मद्यसार का तैयार होना।

३. ख़मीर से डबल रोटी और जलेबी-जैसी मिठाई का बनना।

४. मैले और विष्ठा का सड़ना, और उस सड़ाव से खेत के लिये खाद का तैयार होना।

५. मृत शरीरों का सड़ना, और पदार्थों का अलग-अलग होकर फिर पृथ्वी में मिल जाना।

६. मृत जानवरों की खाल से काम के योग्य चमड़ा बनाया जाना।

७. सन बनाया जाना।

८. बढ़ने के लिये पौदों के वास्ते वायु से नत्रजन को ग्रहण करना।

९. अन्य क्रियाएँ।

उक्त क्रियाएँ किसी-न-किसी प्रकार के जीवाणुओं ही द्वारा होती हैं। यदि सब जीवाणु नष्ट कर दिए जायँ, तो अन्य जीवित चीज़ों का जीवित रहना भी असंभव हो जाय। प्राणियों को भोजन अंततः वनस्पति-वर्ग से प्राप्त होता है। पौदों के लिये खाद जीवाणुओं द्वारा बनती है। न जीवाणु होंगे, और न खाद बनेगी। विना खाद पौदे नहीं उगेंगे, और न विना पौदों के प्राणी ही जीवित रहेंगे।

जीवाणुओं का परिमाण

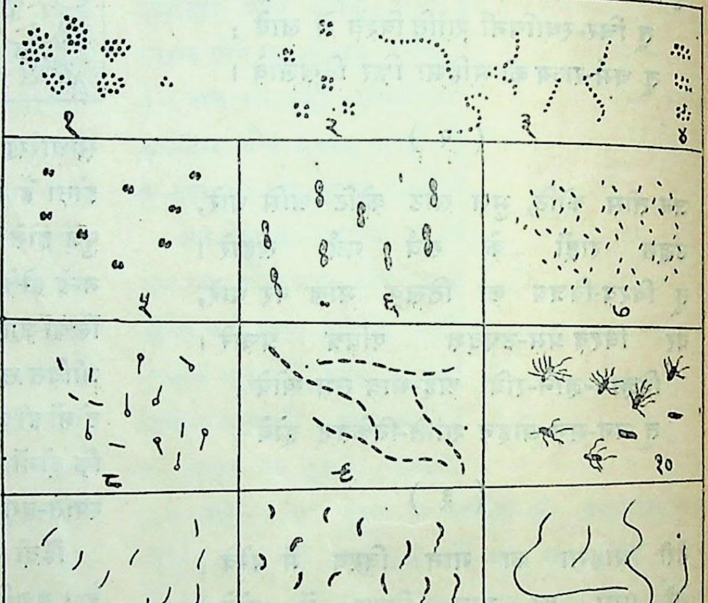
जीवाणुओं की सूक्ष्मता का अनुमान करना साधारण मनुष्यों के लिये एक कठिन काम है। जीवाणुओं का सामान्य परिमाण $\frac{१}{२५,०००}$ इंच होता है। यदि २५,००० जीवाणु एक लाइन में पास-पास रक्खे जायँ, तो वे एक इंच लंबा स्थान घेर लेंगे।

जीवाणुओं का सामान्य भार

$\frac{१}{१,००,००००,००,००,००,०००}$ माशा होता है।

अर्थात् एक पदम जीवाणुओं का भार लगभग एक माशा होता है। ये जीवाणु इतने सूक्ष्म होने पर भी इकट्ठे होकर कितने बड़े-बड़े काम कर सकते हैं! मनुष्य जीवाणुओं को अपनी फूँक से सहस्रों मील उड़ाकर दूर फेंक सकता है; परंतु जब मौक़ा पाते हैं, तो ये ही तुच्छ अदृश्य जीवाणु उसकी मृत्यु का कारण होते हैं। हैज़ा, प्लेग (महामारी), क्षय-रोग, इनफ़्लुएंज़ा आदि रोगों के जीवाणु हर साल करोड़ों मनुष्यों को मार डालते हैं। कुष्ठ, चेचक, फ़िरंग आदि रोगों के जीवाणुओं ने सहस्रों मनुष्यों को अंधा, काना,

भाँति-भाँति के जीवाणु



भाँति-भाँति के जीवाणु

लँगड़ा और लूला कर दिया है। 'जितना छोटा उतना ही खोटा'—यह कहावत जीवाणुओं पर खूब घटती है।

चित्र की व्याख्या—

१,२,३,४,५=बिंद्वाणु
१=गुच्छाणु
२=चतुष्काणु
३=मालाणु
४=अष्टकाणु
५=युगलाणु (सुज़ाक के रोगाणु)
६=न्युमोनिया के युगल-शलाकाणु
७,८,९,१०,११,१२ } =शलाकाणु
७=प्लेग के नन्हे-नन्हे शलाकाणु
८=हनुस्थंभरोग के शलाकाणु
९=एंथ्रेक्स के रोगाणु
१०=टायफ़ॉयड के पुच्छल शलाकाणु
११=क्षय-रोग के एक सिरे पर ज़रा मुड़े हुए शलाकाणु
१२=हैज़े के चंद्राणु ; कुछ पुच्छल हैं
१३=सूत्राणु (शाखा-विहीन)
१४=शाखी सूत्राणु
१५=चक्राणु (हेर-फेर के ज्वर के)
१६=फिरंग-रोग के कर्षण्याकार रोगाणु
१७=मलेरिया-ज्वर के रोगाणु
१८=काला आज़ार-ज्वर के रोगाणु
१९=स्लीपिंग सिकनेस के रोगाणु
२०=एक प्रकार की पेंचिश के अमीबा } आदि-प्राणी
२१=मनुष्य के श्वेताणु (ये ही भक्षकाणु हैं)

जीवाणुओं के आकार तथा उनकी जातियाँ

कीटाणु कई आकार के होते हैं। कुछ बिंदु-जैसे गोल-गोल होते हैं, जो बिंद्वाणु[१] कहलाते हैं। कुछ शलाका-जैसे लंबे-लंबे होते हैं, जो शलाकाणु[२] कहलाते हैं। कुछ द्वितीया के चंद्र या कॉमा की भाँति मुड़े हुए होते हैं, जो चंद्राणु[३] कहलाते हैं। इनके सिवा कुछ पेंच की भाँति मुड़े हुए होते हैं, जो चक्राणु[४] कहलाते हैं।

बिंद्वाणु कई तरह के होते हैं। कुछ बिंद्वाणु दो-दो इकट्ठे रहते हैं, जो युगलाणु[१] कहलाते हैं। कुछ चार-चार इकट्ठे रहते हैं, जो चतुष्काणु[२] कहलाते हैं। कुछ आठ-आठ इकट्ठे रहते हैं, जो अष्टकाणु[३] कहलाते हैं। कुछ बहुत-से इकट्ठे रहते हैं, जो गुच्छाणु[४] कहलाते हैं। कुछ बिंद्वाणु ऐसे होते हैं, जिनके पास-पास एक पंक्ति में रहने से छोटी या लंबी माला-सी बन जाती है, जो मालाणु[५] कहलाते हैं।

कुछ कीटाणु सूत्र-जैसे लंबे-लंबे होते हैं, जो सूत्राणु कहलाते हैं। सूत्राणु दो प्रकार के होते हैं। एक वे, जिनमें शाखाएँ निकली रहती हैं। ये शाखी सूत्राणु कहलाते हैं। दूसरे वे, जिनमें शाखाएँ नहीं निकली रहतीं। ये शाखा-विहीन सूत्राणु कहे जाते हैं।

आदि-प्राणी भी कई प्रकार के होते हैं, जैसा कि चित्र से विदित है। कुछ अमीबा की भाँति गोल होते हैं, और उसी की तरह चलते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ कर्षण्याकार होते हैं, इत्यादि।

जो जीवाणु रोगोत्पादक हैं, उनको रोगाणु भी कह देते हैं। सुबीते के लिये बहुधा रोगाणुओं का नाम उस रोग के नाम से प्रसिद्ध हो जाता है, जो रोग उनके कारण उत्पन्न होता है। जैसे फिरंग-रोग के रोगाणु फिरंगाणु, मालटा-ज्वर के रोगाणु मालटाणु, इत्यादि। ऐसे नाम उन जीवाणुओं की जाति के बोधक नहीं होते।

कुछ कीटाणु विशेष अवस्थाओं में एक विशेष स्थिति धारण करते हैं। उनके शरीर का जीवन-मल सिकुड़कर एक छोटे-से स्थान में इकट्ठा हो जाता है, और फिर उसके चारों ओर एक मोटा कोष बन जाता है। इस दशा में यह कीटाणु बहुत समय तक (सप्ताहों और वर्षों तक) विना भोजन और जल के जीवित रह सकता और इतनी गरमी-सरदी सह सकता है, जितनी वह अपनी साधारण दशा में नहीं सह सकता। यह कीटाणु की समाधि-अवस्था है, और इस दशा में वह स्पोर (Spore) कहलाता है।

सब कीटाणु स्पोर नहीं बनाते। टिटेनस, एंथ्रेक्स तथा कई और कीटाणु स्पोर बनाते हैं। स्पोर बनाने-

---

१. Cocci। २. Bacilli। ३. Vibrios। ४. Spirrila।

१. Diplococci। २. Tetracocci। ३. Sarcinae। ४. Staphyllococci। ५. Streptococci।

वाले कीटाणुओं को मारना स्पोर न बनानेवाले कीटाणुओं की अपेक्षा अधिक कठिन है; क्योंकि स्पोर शीघ्र नहीं मरते । पिछले चित्र के नं० ८ में टिटेनस के कुछ कीटाणुओं के एक सिरे पर स्पोर बन रहे हैं ।

जीवाणुओं की रचना

आदि-प्राणी एक सेलवाले होते हैं । सेल के भीतर मींगी दिखाई देती है । कीटाणु भी एक सेलवाले होते हैं; परंतु वे इतने छोटे होते हैं कि सेल के भीतर मींगी जीवन-मूल से अलग नहीं दिखाई देती । मींगी और जीवन-मूल मिले रहते हैं; अर्थात् मींगी के नन्हे-नन्हे ज़र्रे समस्त सेल में फैले रहते हैं ।

आदि-प्राणी सभी गति करते हैं, अर्थात् चल होते हैं । कीटाणु भी दो प्रकार के होते हैं । कुछ गति करते हैं । ये गतियाँ उस तरल में, जिसमें वे रहते हैं, देखी जा सकती हैं । ये चल कीटाणु कहलाते हैं । कुछ गति नहीं करते । ये अचल कीटाणु हैं । कुछ कीटाणुओं में पूँछ-जैसा एक तथा एक-से अधिक तार निकले रहते हैं । ये पुच्छल कीटाणु कहलाते हैं ।

जीवाणुओं की खेती

जिस प्रकार काश्तकार अपने खेतों में भाँति-भाँति की चीज़ें पैदा करते हैं, उसी प्रकार वैज्ञानिक लोग भाँति-भाँति के भोजनों पर अनेक प्रकार के जीवाणुओं को उपजाते हैं । बहुत-से अनुभवों और परीक्षाओं से यह मालूम कर लिया जाता है कि किस जाति के लिये कौन भोजन सबसे अच्छा है ; अर्थात् किस भोजन पर उस जाति की वृद्धि सबसे अच्छी होती है । ये भोजन होते हैं मांस-रस, रक्त-रस, जेलाटीन, एगर एगर, ग्लेसरीन, आलू इत्यादि । ये भोजन, जिन पर जीवाणु उत्पन्न किए जाते हैं, कृषि-माध्यम कहलाते हैं ।

उपजते समय कुछ कीटाणु एक विशेष प्रकार का रंग बनाते हैं । रंग कई प्रकार के होते हैं, जैसे लाल, नारंगी, पीला, हरा, नीला, बनफ़शई इत्यादि । इस रंग से कृषि-माध्यम में भी रंग आ जाता है ।

कुछ कीटाणुओं के उपजने के लिये ओषजन का होना आवश्यक है । कुछ विना ओषजन के ही उपजते हैं । इस प्रकार कुछ कीटाणु ओषजन-ग्राही और कुछ ओषजन-त्यागी होते हैं । कुछ ओषजन में और उसके विना, दोनों ही प्रकार से उपजते हैं ।

कीटाणु कैसे बढ़ते हैं ?

कीटाणुओं में स्त्री-पुरुष का कोई भेद नहीं होता । एक व्यक्ति के लंबाई या चौड़ाई के रुख़ फट जाने से दो बन जाते हैं । एक से दो, दो से चार, चार से आठ, यह सिलसिला तब तक जारी रहता है, जब तक भोजन तथा जीवन के लिये अन्य आवश्यक सामान प्राप्य रहते हैं । सामान्यतः आधघंटे में एक से दो बन जाते हैं । कभी-कभी इससे कम समय में भी । कभी एक घंटा भी लग जाता है । यदि आधघंटे में एक से दो बनें, तो हिसाब लगाने से मालूम होगा कि २४ घंटों में एक व्यक्ति से तीन पदम (३,००,००००,००,००,००,०००) के लगभग बन जायँगे । परंतु सृष्टि में बढ़ने के लिये पूरे सामान हमेशा प्राप्य नहीं होते । कभी भोजन मिलता है, कभी नहीं । कभी उष्णता अधिक होती है, कभी शीत । कभी जल मिलता है, कभी खुश्की बहुत होती है । कीटाणुओं के वैरी भी बहुत होते हैं । एक जाति दूसरे को नष्ट तक कर डालती है । आदि-प्राणी इनमें से कुछ को खा जाते हैं । यद्यपि कीटाणुओं में अत्यंत शीघ्रता से बढ़ने की शक्ति मौजूद होती है, अर्थात् एक से एक दिन में ३ पदम और इससे भी अधिक बन सकते हैं, तथापि साधारणतः वे इस तेज़ी से नहीं बढ़ने पाते ; वर्ना समस्त संसार में वे-ही-वे दिखाई देते, अन्य जीवों के रहने के लिये स्थान ही न रहता ।

गरमी और जीवाणु

जीवाणु एक विशेष ताप-परिमाण को पसंद किया करते हैं । जब गरमी उस ताप-परिमाण से बहुत कम या अधिक होती है, तो वे अच्छी तरह नहीं बढ़ते । जब गरमी उतने ही ताप-परिमाण की होती है, तो वे खूब तेज़ी से बढ़ते और हृष्ट-पुष्ट रहते हैं । वे जातियाँ, जो मनुष्य में रोग उत्पन्न करती हैं, मनुष्य के रक्त की गरमी को, जिसका परिमाण ३७ शतांश या १०० फहरनहाइट के लगभग होता है, अत्यंत पसंद करती हैं । जब ऐसे जीवाणु शरीर से बाहर उपजाए जाते हैं, तो कृषि-माध्यम इसी गरमी पर रक्खा जाता है । सड़ाव पैदा करनेवाली जातियाँ ग्रीष्म-ऋतु के ताप में खूब उपजती हैं । यही कारण है कि शीत-ऋतु में ग्रीष्म-ऋतु की अपेक्षा चीज़ें देर में सड़ती हैं ।

अधिक शीत—विशेषकर ऐसा शीत कि चीज़ें जम

जायँ (०° तथा इससे भी कम दर्जे का)—उनकी वृद्धि को रोक देता है, उनको मारता नहीं। शीत के प्रभाव से जानवरों की लाशें, दूध तथा खाने के अन्य पदार्थ, अंडे और हरी तरकारियाँ बहुत दिनों तक, विना सड़े-बुसे, अच्छी हालत में रक्खी जा सकती हैं।

तेज़ गरमी जीवाणुओं को मार डालती है। रोगोत्पादक कीटाणु साधारणतः ६० शतांश की गरमी से आधघंटे में मर जाते हैं। रोगोत्पादक कीटाणु तेज़ धूप के प्रभाव से भी मर जाते हैं। इसके अतिरिक्त बिजली की तेज़ रोशनी से भी जीवाणु मर जाते हैं।

जीवाणुओं के विष

जब जीवाणु बढ़ते हैं, तो वे बहुधा ऐसी वस्तुएँ बनाते हैं, जो ज़हरीली होती हैं। यदि ये जीवाणु किसी व्यक्ति के शरीर में हैं, तो उस व्यक्ति को हानि पहुँचाते हैं। विष दो प्रकार के होते हैं। एक वे, जो जीवाणुओं के शरीर में रहते, और उनके मरने पर उनके शरीर से बाहर हो जाते हैं। दूसरे वे, जो उनके शरीर से बाहर ही रहते हैं।

जीवाणु और रोग

भयानक रोग, विशेषकर छूत के रोग, लगभग सभी जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न होते हैं। कुछ जीवाणु इतने सूक्ष्म हैं कि अभी तक उनको दिखानेवाले अणुवीक्षण-यंत्र नहीं बने। निम्न-लिखित रोग जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न होते हैं—

मुहासा तथा अनेक प्रकार के फोड़े-फुंसी।

टायफ़ॉयड, टायफ़स, चेचक, ख़सरा, कई प्रकार की चेचक और ख़सरा।

इनसे कम भयानक रोग, जैसे मोतिया-सीतला; लाल ज्वर।

हप्पु, काली (कुक्कर) खाँसी। इनफ़्लुएंज़ा, हड्डी-तोड़ ज्वर। दिमाग़ी ज्वर।

न्युमोनिया, डिफ़्थीरिया, सुर्ख़बाद।

ज़हरबाद, प्रसूतरोग।

बाई-रोग।

हैज़ा, पीला ज्वर तथा प्लेग।

पेंचिश (आमातिसार)।

मालटा-ज्वर, एंथ्रैक्स, जलसंत्रास (हड़क-बाई), हनुस्थंभ, ग्लेंडर्स (कनार-रोग),

फिरंग-रोग।

मलेरिया-ज्वर, काला आज़ार, अतिनिद्रा-रोग, हेर-फेर का ज्वर। चूहे, बिल्ली और गिलहरी के काटने से उत्पन्न होनेवाले ज्वर।

कुष्ठ-रोग (कोढ़)।

सुज़ाक।

क्षय-रोग।

भाँति-भाँति के प्रदाह।

ज़ुक़ाम (प्रतिश्याय), आँख दुखना इत्यादि।

बहुत-से रोगों के कारण अभी मालूम नहीं हुए। ज्यों-ज्यों जाँच-पड़ताल की जाती है, त्यों-त्यों इन रोगों के जीवाणु मालूम होते जाते हैं।

बहुत-से रोग ऐसे भी हैं, जो जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न नहीं होते।

जीवाणु या रोगाणु शरीर में कैसे प्रवेश करते हैं ?

मनुष्य-शरीर को एक नली समझना चाहिए। इस नली के दो द्वार हैं। एक द्वार ऊपर है। यहाँ मुख है। यहीं पर श्वास लेने का रास्ता भी है। दूसरा द्वार नीचे है। यहाँ से मल निकलता है। इसी के पास मूत्र-द्वार तथा जननेंद्रिय होती है। साधारण बनावट यही है। और सब पेचीदगियाँ हैं, जिनसे हमको इस समय कोई मतलब नहीं है। वे पाँचों काम, जो सब जीव-धारी करते हैं, इस नली द्वारा हो सकते हैं। यह नली-रूपी शरीर बाहर त्वचा द्वारा सुरक्षित है, और भीतर श्लैष्मिक झिल्ली द्वारा। श्लैष्मिक झिल्ली श्वास-मार्ग और मूत्र-मार्गों के भीतरी पृष्ठों पर भी लगी रहती है। श्लैष्मिक झिल्ली और त्वचा के बीच में भाँति-भाँति के कार्य करनेवाले अंग रहते हैं। नली के भीतर (अर्थात् भोजन-मार्ग, श्वास-मार्ग, मूत्र-मार्ग इत्यादि में) जो चीज़ें रहती हैं, वे जब तक श्लैष्मिक झिल्ली से होकर अंगों में न पहुँच जायँ, तब तक उनको शरीर के बाहर ही समझना चाहिए; क्योंकि वे श्लैष्मिक झिल्ली पर वैसे ही रक्खी हुई हैं, जैसे शरीर के बाहर त्वचा पर।

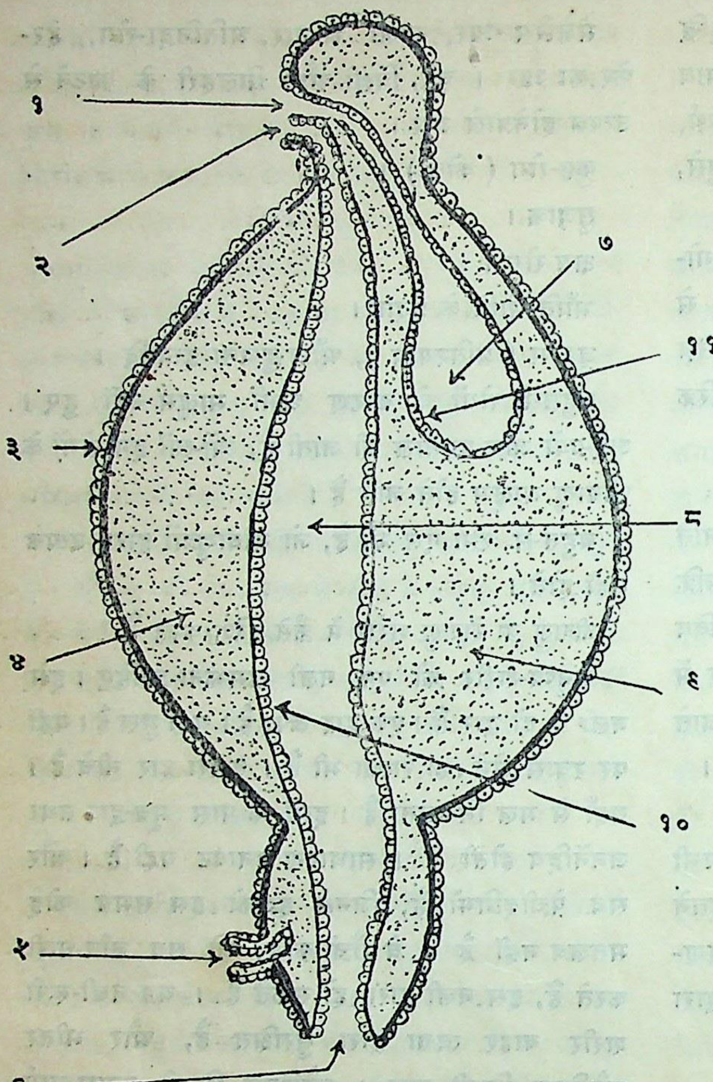
चित्र की व्याख्या—

१=श्वास-पथ का आरंभ (नासिका)

२=मुख

३=त्वचा, जो शरीर के बाहरी ओर मढ़ी हुई है

४-६=अंग



नली-रूपी मनुष्य-शरीर

५=मूत्र तथा जननेंद्रिय
६=मल-द्वार
७=फुप्फुस
८=भोजन की नाली
१०-११=श्लैष्मिक झिल्ली, जो शरीर में रहनेवाली नालियों और मार्गों के भीतरी पृष्ठों पर त्वचा की भाँति लगी रहती और उनकी रक्षा करती है.

त्वचा और श्लैष्मिक झिल्ली की बनावट इस प्रकार है कि जब तक इनमें किसी प्रकार की कमज़ोरी न आ जाय, तब तक रोगाणु इनसे होकर शरीर में नहीं पहुँच सकते। जिस प्रकार जब तक किसी मकान की छत के सीमेंट में दरार नहीं आ जाती, या वह कहीं से उखड़ नहीं जाता, तब तक पानी नहीं भरता, उसी प्रकार हमारे शरीर की त्वचा और श्लैष्मिक झिल्लियाँ भी उस समय तक रोगाणुओं को भीतर नहीं घुसने देतीं, जब तक वे मज़बूत हैं।

त्वचा, आँतों, तथा श्वास-मार्ग में थोड़े-बहुत कीटाणु हमेशा रहते हैं। जब तक दीवारें ठीक हैं, तब तक ये कीटाणु शरीर में प्रवेश नहीं करते, और हमको कोई रोग नहीं होता।

किसी कारण से ज्यों ही दीवारें कहीं से कमज़ोर हो जाती हैं, त्यों ही वे कीटाणु, जो पहले शरीर को कोई हानि नहीं पहुँचाते थे, शरीर में प्रवेश कर जाते और रोग उत्पन्न करते हैं। उदाहरण लीजिए—

१. बाल नुच जाने से बलतोड़ का बन जाना। फोड़ा बनानेवाले कीटाणु त्वचा पर मौजूद थे; खाल में चोट लगने से कीटाणुओं को त्वचा के भीतर प्रवेश करने का अवसर मिल गया।

२. ओस में सोने से ज़ुकाम हो जाना। नासिका की श्लैष्मिक झिल्ली ठंड लगने से कमज़ोर हो गई। ज़ुकाम पैदा करनेवाले कीटाणुओं को, जो पहले से मौजूद थे, वहाँ क़दम जमाने का मौक़ा मिला।

३. ओस में सोने और पेट को ठंड लगने से पेट में दर्द हो जाता है, और दस्त भी आने लगते हैं। बात यह है कि आँतों में कई प्रकार के कीटाणु हमेशा रहते हैं। जब ठंड लगने से आँतें कुछ कमज़ोर हो जाती हैं, तब वे अपना ज़ोर दिखाते हैं। सरदी खा जाने से न्युमोनिया भी हो जाता है, विशेषकर बच्चों और वृद्धों को।

४. प्रसव-काल में जब स्त्री बच्चा जनती है, तब उसके गर्भाशय तथा योनि आदि की श्लैष्मिक कला या झिल्ली कमज़ोर हो जाती है। उसमें कभी-कभी दरार भी आ जाती है। यदि मैल लगे, तो स्त्री को प्रसूति-रोग हो जाता है।

दो आदमियों को एक ही प्रकार की चोट लगती है। एक के फोड़ा बन जाता है, दूसरे के नहीं। दो आदमी ठंड में सोते हैं। एक को ज़ुकाम हो जाता है, दूसरा चंगा रहता है। ऐसी-ऐसी बातें हम प्रतिदिन देखते हैं। यदि कीटाणुओं से ही रोग होते हैं, तो क्या कारण है कि एक मनुष्य को रोग हो, और दूसरे को न हो? इसका उत्तर यह है कि हमारे शरीर में एक शक्ति होती है, जिसको

रोग-नाशक शक्ति कहते हैं । यह स्वाभाविक शक्ति किसी मनुष्य में कम होती है, किसी में ज़्यादा । यह शक्ति जितनी कम होती है, उतनी ही रोग होने की संभावना अधिक होती है । यह रोग-नाशक शक्ति भिन्न-भिन्न रोगों के लिये भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न मात्राओं में पाई जाती है । थकन, अच्छा और पौष्टिक भोजन प्राप्त न होना, ख़राब जल-वायु, रंज और फ़िक्र, किसी रोग से बहुत समय तक पीड़ित रहना तथा और ऐसे ही अन्य कारण रोग-नाशक शक्ति को कम करते हैं ।

रोगाणुओं से रोग उत्पन्न होने के लिये दो बातों का होना आवश्यक है—

१. प्रबल रोगाणुओं का शरीर में प्रवेश करना ।

२. किसी व्यक्ति में उस समय विशेष रोग-नाशक शक्ति का कम होना, या न होना ।

जब ये दो बातें साथ-साथ मिलती हैं, तभी रोग उत्पन्न होता है ।

अब हम यह बतलाते हैं कि रोगाणु शरीर में कैसे प्रवेश करते हैं—

१. जब किसी स्थान की त्वचा या श्लैष्मिक कला फट जाती है, अथवा किसी प्रकार अधिक गरमी, शीत या चोट लगने या रासायनिक पदार्थों अथवा धूल, मिट्टी, धुआँ आदि हानि पहुँचानेवाली चीज़ों के प्रभाव से कमज़ोर हो जाती है, तो उस स्थान पर मौजूद रहनेवाले रोगाणुओं को शरीर में प्रवेश करने का अवसर मिल जाता है । यदि ऐसे स्थान पर मैले हाथ, मैले कपड़े, धूल, मिट्टी इत्यादि चीज़ें लगें, तो इन वस्तुओं पर रहनेवाले रोगाणु भी शीघ्र प्रवेश कर जाते हैं । जैसे गर्द-गुबार द्वारा दूषित दूध या अन्य दूषित भोज्य पदार्थों द्वारा क्षय-रोग के कीटाणुओं का मुख, श्वास-मार्ग और अन्न-मार्ग की श्लैष्मिक कला के द्वारा शरीर में प्रवेश कर जाना । जिन लोगों को क्षय-रोग होता है, वे पहले से ही कुछ-न-कुछ कमज़ोर होते हैं । उनको बहुधा ज़ुकाम, खाँसी तथा बदहज़मी बनी रहती है । क्षय के रोगाणु मौक़ा पाकर अपना क़दम जमाते और रोग उत्पन्न करते हैं । चोट लगने के पश्चात् सड़क की धूल लगने से मवाद पड़ जाना, कभी-कभी हनुस्थंभ-रोग का हो जाना, अस्थि-भंग होने पर रगड़ खाई हुई त्वचा में मवाद पैदा करनेवाले कीटाणुओं का प्रवेश कर जाना, अस्थि को सड़ाना और शीघ्र न जुड़ने देना, अधिक धूप और धूल के प्रभाव से आँखों का दुखना तथा दुर्गंध से ज़ुकाम हो जाना इत्यादि ।

२. ख़ून चूसनेवाले जानवरों की सहायता से मलेरिया, तिजारी तथा चौथिया ज्वर एक विशेष जाति की मादा-मच्छड़ों द्वारा उत्पन्न होता है । इस ज्वर के रोगाणु, जो आदि-प्राणी होते हैं, इन मादा-मच्छड़ों के मुख और आमाशय में रहते हैं । जब मादा-मच्छड़ ख़ून चूसती है, तब ये रोगाणु रक्त में प्रवेश करते हैं । न ज़हरीली मादा-मच्छड़ काटें, न मलेरिया-ज्वर की उत्पत्ति हो ।

पीला-ज्वर, जो एक अत्यंत भयानक रोग है, और विशेषकर आफ़्रिका तथा दक्षिण-अमेरिका में होता है, एक विशेष जाति के मच्छड़ों के काटने से होता है ।

काला आज़ार-रोग, जो अधिकतर आसाम, बंगाल और मदरास-प्रांतों में और कुछ-कुछ संयुक्त-प्रांत में होता है, शायद एक खटमल के काटने से होता है ।

प्लेग एक विशेष जाति की चींचली द्वारा, जो चूहों पर रहती है, होता है ।

आफ़्रिका-देश का अतिनिद्रा-रोग (स्लीपिंग-सिकनेस) एक ख़ून चूसनेवाली मक्खी के द्वारा होता है । यह मक्खी भारतवर्ष में नहीं होती ।

हेर-फेर का ज्वर, जिससे सन् १९१३-१४ में संयुक्त-प्रांत में सहस्रों मनुष्य मरे, जूँ और चींचलियों के काटने से होता है ।

टाइफ़स-ज्वर या अन्य कई ज्वर चींचलियों के काटने से होते हैं । तीन दिन का ज्वर एक पिस्सू के काटने से होता है ।

चूहे, बिल्ली और गिलहरी के काटने से भी ज्वर पैदा हो जाते हैं । इन रोगों के रोगाणु इन जानवरों के काटने से शरीर में प्रवेश करते हैं ।

पागल कुत्ते, गीदड़ और भेड़िए के काटने से जल-संत्रास (हड़क-बाई) के जीवाणु शरीर में प्रवेश करते हैं ।

३. बहुत-से रोग ऐसे हैं, जो ख़ून न चूसनेवाले जानवरों की सहायता से जानवरों द्वारा हमारे भोजन के दूषित हो जाने के कारण पैदा होते हैं । जैसे पेंचिश, अतिसार, टायफ़ॉयड, क्षय-रोग, हैज़ा, ग्रीष्म-ऋतु में बालकों को दस्त आना इत्यादि । घरेलू मक्खी या अन्य मक्खियाँ

जब किसी व्यक्ति के मल, थूक और बलग़म पर बैठती हैं, तो इन चीज़ों के अंश उनके मुँह और पैरों में लग जाते हैं। यहाँ से उड़कर वे फिर हमारे भोजन—दूध, मिठाई इत्यादि—पर जा बैठती हैं। यहाँ विष्ठा और बलग़म का कुछ अंश, जो उनके मुँह और पैरों में लगा हुआ होता है, भोजन की वस्तुओं पर रह जाता है। विष्ठा में सहस्रों कीटाणु होते हैं। यदि वह विष्ठा किसी हैज़े के रोगी का है, तो उसमें हैज़े के सहस्रों कीटाणु होंगे। हैज़े के कीटाणु मक्खी द्वारा भोजन में मिल जाते हैं, और खानेवाले को हैज़ा हो सकता है। क्षय-रोगी के बलग़म में क्षय-रोग के कीटाणु होते हैं। मक्खी द्वारा ये कीटाणु भी भोजन में पहुँच सकते हैं। सच तो यह है कि जो लोग अपने भोजन पर मक्खियों को बैठने देते या हलवाइयों की दूकान की खुले बर्तनों में रक्खी हुई मिठाई खाते हैं, जिस पर दिन-भर अनेक मक्खियाँ भिनका करती हैं, वे ऐसा भोजन खाते हैं, जिसमें मक्खियों द्वारा लाए हुए दूसरे मनुष्यों के मल, मूत्र, बलग़म इत्यादि मिले हुए हैं।

हरे फल और बंद डिब्बों में रक्खे हुए भोजन के पदार्थ—पनीर, गोश्त आदि—जब सड़ जाते हैं, तो उनमें कभी-कभी अत्यंत तेज़ ज़हर पैदा करनेवाले जीवाणु पैदा हो जाते हैं। रोगी गाय के दूध से क्षय-रोग और रोगी बकरी के दूध से माल्टा-ज्वर के कीटाणु मनुष्य में पहुँचते हैं। ख़राब दूध से कई प्रकार के रोगों का होना संभव है। दूध बहुत ही आसानी से ख़राब हो जानेवाला भोजन का पदार्थ है। भारतवर्ष में गाएँ गंदी रहती हैं, और भोजन अच्छी तरह प्राप्त न होने के कारण कमज़ोर और रोगी भी। जहाँ गाएँ रक्खी जाती हैं, वह स्थान बड़ा गंदा रहता है। जो आदमी दूध दुहता है, वह अत्यंत गंदा होता है। ये लोग कभी-कभी तो शौच के बाद हाथ भी नहीं धोते। जिस बर्तन में दूध दुहा जाता है, वह भी मैला रहता है। गाय के थनों से निकलने के पीछे मक्खियाँ और धूल-मिट्टी उस दूध को और भी ख़राब कर देती हैं। जब सभी बातें गंदी हैं, तो दूध क्यों न ख़राब हो, और बजाय अमृत के क्यों न विष का काम करे?

भेड़ इत्यादि जानवरों में एंथ्रेक्स-नामक रोग होता है। जो मनुष्य इस रोग से मरे हुए जानवरों की लाशों को छूते हैं—जैसे क़साई, चमड़ा बनानेवाले, ऊन बनानेवाले—उनको यह रोग हो जाया करता है। अभी हाल में हजामत बनाने के जापानी ब्रुशों द्वारा इँगलैंड में कई मनुष्यों को एंथ्रेक्स हो गया। जापानी चीज़ें बहुत सोच-विचारकर ख़रीदनी चाहिए।

जानवरों का ग्लैंडर्स (कनार)-नामक रोग भी कभी-कभी मनुष्य को हो जाता है।

गाय और सुअर का ख़राब गोश्त खाने से लंबे-लंबे कीड़े, और ख़राब मिठाई खाने या ख़राब पानी पीने से पेट में केंचुए और नन्हे-नन्हे कीड़े हो जाते हैं। यद्यपि ये कीड़े जीवाणु नहीं हैं, तथापि ख़राब भोजन से पैदा हो जाने के कारण हम इस स्थान में इस बात का बतलाना अनुचित नहीं समझते।

छूत द्वारा रोगाणुओं का आना

बहुत-से रोगों के रोगाणु छूत द्वारा हमारे शरीर में पहुँचते हैं, जैसे सुज़ाक, आतशक (फ़िरंग), उपदंश इत्यादि रोग। बहुत-से आदमी अपनी सच्चरित्रता प्रमाणित करने के लिये कहा करते हैं कि उनको स्वप्न देखने से अथवा गरम बालू पर पेशाब करने से सुज़ाक हो गया। परंतु वास्तव में उनका यह कथन बिलकुल झूठा होता और उनकी मक्कारी प्रकट करता है। सुज़ाक, आतशक या उपदंश-रोग, जो पहले जननेंद्रियों पर होते हैं, रोगी पुरुषों या स्त्रियों के साथ मैथुन करने ही से होते हैं। यह संभव है कि सुज़ाक का मवाद स्वस्थ मनुष्य की आँख में लग जाने से उसकी आँखें उठ आवें; परंतु ऐसा होता कम है। यह भी संभव है कि उँगली या होठ पर आतशक का मवाद लगने से आतशकी ज़ख़्म बन जाय; परंतु यह असंभव है कि आतशक का पहला ज़ख़्म जननेंद्रियों पर बिना आतशकी स्त्री या पुरुष से मैथुन किए हो जाय।

चेचक, ख़सरा आदि रोगों के रोगाणु उस भूसी में मौजूद रहते हैं, जो दानों के सूख जाने पर गिरती है। छूने से यह भूसी हमारे हाथों और कपड़ों पर लग जाती और श्वास या भोजन द्वारा हमारे शरीर में पहुँचती है।

टायफ़ॉयड (मियादी ज्वर, जो ३-४ सप्ताह तथा इससे भी अधिक दिनों में उतरता है)-ज्वर के रोगाणु रोगी के पसीने, मूत्र और मल में रहते हैं। इन्हीं के

छूने से रोग उत्पन्न हो सकता है। छूतवाले रोगियों के कपड़ों द्वारा भी रोग फैल जाया करते हैं। एक रोगी के कपड़े धोबी के घर जाकर दूसरे मनुष्यों के साफ़ कपड़ों से मिल जाते हैं, और उन कपड़ों द्वारा दूसरे घरों में रहनेवालों को रोग हो जाते हैं। धोबी के घर के कपड़ों को विना एक दिन तेज़ धूप में रक्खे न पहनना चाहिए।

कुष्ठ (कोढ़) भी छूत का रोग है। यह रोग परंपरीण नहीं है, जैसा कि बहुत-से लोगों का विचार है। कोढ़ी के बच्चों को कोढ़ अपने माता-पिता से, छूत द्वारा, मिलता है।

कुछ रोगों के कीटाणु वायु में रहते हैं

जब क्षय-रोगी खाँसता है, तो उसके बलग़म के नन्हे-नन्हे ज़र्रे वायु में मिल जाते हैं। यदि क्षय-रोगी ज़मीन पर थूकता है, तो बलग़म सूख जाता है, और उसकी धूल झाड़ू देने से उड़कर वायु में मिल जाती है। श्वास द्वारा यह धूल, जिसमें क्षय के रोगाणु हैं, स्वस्थ मनुष्यों के फेफड़ों में पहुँचती है।

इसी प्रकार चेचक, ख़सरा और टायफ़ॉयड के जीवाणु वायु में आ जाते और श्वास तथा भोजन के द्वारा हमारे शरीर में पहुँचते हैं।

माता-पिता के रज-वीर्य द्वारा भी कीटाणु संतान के शरीर में आ जाते हैं, जैसा कि आतशक-रोग में होता है। आतशकी माता-पिता की संतान भी आतशकी होती है। आतशक तीन पीढ़ी तक चलती है।

रोगाणुओं का शरीर से मुक़ाबला

शरीर में पहुँचकर रोगाणु बड़ी तेज़ी से बढ़ते हैं। वहाँ भोजन की कोई कमी नहीं, और गरमी भी उनकी मर्ज़ी के मुआफ़िक़ होती है। वे केवल बढ़ते ही नहीं, साथ-साथ ज़हर भी बनाते हैं। वे स्थानीय अंगों को हानि पहुँचाते और रक्त द्वारा शरीर के और अंगों में भी जाते हैं।

इस संसार में, सब जीवधारियों में, जीवन के लिये सदा एक महासंग्राम रहता है। एक भाँति के प्राणी दूसरी भाँति के प्राणियों और प्राणि-वनस्पतियों को, एक क़ौम दूसरी क़ौम को, एक देश के निवासी दूसरे देश के निवासियों को, गोरी जातियाँ काली जातियों को, कभी जान-बूझकर और कभी विना जाने, थोड़ी-बहुत हानि, अपनेको लाभ पहुँचाने के लिये, अवश्य पहुँचाती हैं। कभी यह हानि कम होती है, कभी अधिक। कभी इतनी कम कि ज़ाहिरा तौर से मालूम भी नहीं होती, और कभी इतनी अधिक कि एकदम पता चल जाता है। प्राणी वनस्पतियों को खा जाते हैं। बड़े-बड़े प्राणी छोटे-छोटे प्राणियों को खा जाते हैं। जब चिड़ियाँ घर के भीतर घुसती हैं, तो मकड़ियों को कोने-कोने से बीनकर खा जाती हैं। छिपकली छोटी-छोटी पंखियों को खा जाती है। साँप मेंढक, चूहे और छछूँदर को खा जाता है। जब दो जातियाँ बराबर ज़ोरदार होती हैं, तो वे दोनों उन्नति करती रहती हैं; जब एक ज़ोरदार होती है, और दूसरी कमज़ोर, तो ज़ोरदार कमज़ोर पर शासन करना चाहती है। इस संसार में जीवन का संग्राम इस ज़ोर का रहता है कि केवल वे ही जातियाँ और क़ौमें जीवित रह सकती हैं, जो इस संग्राम में विजयी होती हैं। शेष जातियाँ थोड़े-बहुत दिन जीवित रहकर नष्ट हो जाती हैं।

मनुष्य-जाति को भाँति-भाँति के प्राणियों और जीवाणुओं से संग्राम करना पड़ता है। कहीं शेर और चीता है, तो कहीं साँप और बिच्छू। कहीं ज़हरीले मच्छड़ और मक्खी हैं, तो कहीं भाँति-भाँति के रोगोत्पादक जीवाणु। यद्यपि अपनी चतुराई से मनुष्य इन सब पर विजय पाता है, तथापि हर साल सहस्रों मनुष्य साँप, शेर, चीते इत्यादि जानवरों द्वारा मारे जाते और करोड़ों मनुष्य रोगोत्पादक जीवाणुओं के आक्रमण से मरते हैं। अपनी चतुराई से मनुष्य रोगों के कारण जानता और उनको दूर करने की कोशिश करता है। जर्मनी में आजकल एक भी चेचक का रोगी नज़र नहीं आता। योरप के और देशों का भी हाल ऐसा ही है। ८० वर्ष पहले वहाँ चेचक का वैसा ही ज़ोर था, जैसा इन दिनों भारतवर्ष में है। योरप में पहले क्षय-रोग बहुत था, अब प्रतिदिन कम होता जाता है। प्लेग भी पहले योरप में हो चुका है, अब वहाँ नहीं होता। जब पनामा-नहर का निकलना आरंभ हुआ, तो मलेरिया और पीले-ज्वरों से सैकड़ों मज़दूर और अफ़सर बीमार होने लगे। ऐसा मालूम होता था कि इन रोगों के कारण काम जारी रखना असंभव है। बड़े-बड़े डॉक्टरों ने दिमाग़ लड़ाए, मलेरिया तथा पीले-ज्वर फैलानेवाले मच्छड़ों को उस स्थान से कम कर देने की तजवीज़ें

सोचीं। सभी उपायों से काम लिया गया। निदान फिर मज़दूर इन रोगों से बीमार न हुए, और पनामा की नहर पूरी बन गई। बिना मच्छड़ के ये रोग नहीं फैल सकते; और जब मच्छड़ नहीं होते, अथवा उन्हें मनुष्य को काटने का अवसर नहीं मिलता, तो ये रोग मनुष्य को लग ही नहीं सकते।

जब रोगाणु शरीर में प्रवेश कर जाते हैं, तो वहाँ शरीर के तंतुओं से उनका बड़ा भारी युद्ध होता है। हमारे शरीर में इन जीवाणुओं को मार डालने के लिये बहुत-से प्रबंध हैं। हमारे शरीर में अनेक छोटे-छोटे कण होते हैं, जो 'श्वेताणु' कहलाते हैं। ये जीवाणुओं को मार डालते और उनको खा जाते हैं। जीवाणुओं को खा जाने के कारण ये भक्षकाणु भी कहलाते हैं। ये श्वेताणु विशेषकर रक्त और लसीका में रहते और थोड़े-बहुत हर स्थान में पाए जाते हैं। ये शरीर के रक्षक और सैनिक हैं। जिस स्थान पर जीवाणु एकत्र रहते हैं, वहाँ इन श्वेताणुओं की फ़ौजें पहुँचती हैं। यदि ये विजयी हुए, तो शरीर नीरोग हो जाता है। यदि जीवाणु विजयी हुए, तो रोग बढ़ता जाता है। अंत को मृत्यु भी हो जाती है। जब कोई फुंसी या फोड़ा बनता है, तो उस स्थान पर अधिक रक्त के पहुँचने से सुर्ख़ी तथा गरमी मालूम होती है। अधिक रक्त के दबाव से दर्द भी होता है, और वह भाग सूजकर कुछ मोटा हो जाता है। जीवाणुओं को मार डालने के लिये वहाँ रक्त द्वारा श्वेताणुओं की बड़ी-बड़ी फ़ौजें आती और जीवाणुओं को चारों ओर से घेर लेती हैं। कुछ समय पश्चात् बीच में पीला मुँह बन जाता है। यह वह स्थान है, जहाँ सहस्रों जीवाणु और श्वेताणु मरे हैं, और शरीर का उतना भाग भी मुर्दा हो गया है। यह पीला स्थान फूट जाता और मवाद बहने लगता है। इस मवाद में जीवाणुओं, श्वेताणुओं और शरीर की स्थानीय सेलों की सहस्रों लाशें हैं। अब यदि श्वेताणु विजय पाते हैं, तो कुछ समय पीछे मवाद निकलना बंद हो जाता है। फिर उस भाग की जगह, जो संग्राम में मुर्दा होकर निकल गया, नया भाग बन जाता है। दर्द, सुर्ख़ी और सूजन शीघ्र जाती रहती है। यदि संग्राम में श्वेताणुओं को शीघ्र विजय नहीं होती, तो फोड़े का दल बढ़ता, गहरा होता और इधर-उधर ख़ूब फैलता है। कभी-कभी ज़हरबाद होता और मनुष्य घुल-घुलकर मर जाता है। बात यह होती है कि उसका शरीर जीवाणुओं पर विजय नहीं प्राप्त कर पाता।

भक्षकाणुओं के अतिरिक्त हमारे शरीर में बहुत-से ऐसे पदार्थ होते हैं, जिनका काम जीवाणुओं को मार डालना और उनके बनाए हुए ज़हरों को हर लेना होता है। इन भक्षकाणु और जीवाणु-नाशक तथा विषघ्न वस्तुओं से हमारे शरीर में रोग-नाशक शक्ति उत्पन्न होती है। किसी व्यक्ति में यह शक्ति कम होती है, किसी में अधिक।

रोगों से बचने की थोड़ी-बहुत शक्ति प्रत्येक व्यक्ति में होती ही है। यह शक्ति स्वाभाविक रोग-क्षमता * कहलाती है। जब कोई रोग उत्पन्न होता और व्यक्ति उस रोग से बच जाता है, तो यह विशेष-रोग-संबंधी रोग-क्षमता बढ़ जाती है, और इतनी बढ़ती है कि बहुधा बहुत समय तक वह रोग फिर उस व्यक्ति के नहीं होने पाता।

कुछ रोगों के लिये रोग-क्षमता मृत कीटाणुओं को शरीर के भीतर प्रवेश कराकर पैदा की जा सकती है। यह कृत्रिम रोग-क्षमता † कहलाती है। चेचक के टीके से चेचक-संबंधी, प्लेग और टायफ़ॉयड और हैज़े के टीकों से इन रोगों के संबंध की कृत्रिम रोग-क्षमता उत्पन्न की जा सकती है। फोड़ों, फुंसियों, मुहासों इत्यादि के लिये भी टीका लगाने की औषधियाँ तैयार की जाती हैं।

हम बतला चुके हैं कि जब शरीर में रोगाणुओं से संग्राम होता है, तो रोगाणु-नाशक तथा विषघ्न वस्तुएँ भी बनती हैं। घोड़े आदि जानवरों में इन रोगाणुओं और इनके ज़हरों को विशेष विधियों से पहुँचाकर उनके शरीरों में ये रोगाणु-नाशक, विषघ्न वस्तुएँ तैयार करा ली जा सकती हैं। और, फिर उनके रक्त से ये चीज़ अलग कर ली जा सकती हैं। जब किसी मनुष्य को वह रोग होता है, और उस मनुष्य के शरीर में पिचकारी द्वारा ये रोगाणु-नाशक या विषघ्न वस्तुएँ पहुँचा दी जाती हैं, तो उस रोगी को बहुत शीघ्र फ़ायदा होता है। शरीर में इस प्रकार की चीज़ें बनने में देर लगती है। जब ये चीज़ें बनी-बनाई मिल जाती हैं, तो शरीर के

* Natural Immunity.

† Artificial Immunity.

श्वेताणु जीवाणुओं पर शीघ्र विजयी होते हैं । डिफ़्थीरिया, टिटेनस (हनुस्थंभ) और दो-चार और रोगों के लिये इस प्रकार की ओषधियाँ बनी हैं । डिफ़्थीरिया में तो यह ओषधि जादू का-सा काम देती है । हैज़े और प्लेग के लिये भी ओषधियाँ बनाने की कोशिश की गई; परंतु अभी बहुत कामयाबी नहीं हुई । जब टीके द्वारा चेचक, प्लेग, टायफ़ॉयड, फोड़े इत्यादि में रोग-क्षमता उत्पन्न की जाती या बढ़ाई जाती है, तो इस प्रकार की रोग-क्षमता को सोद्योग रोग-क्षमता* कहते हैं; क्योंकि इसमें शरीर को उद्योग करना पड़ता है । जब बनी-बनाई चीज़ें शरीर में पहुँचाकर रोग-क्षमता उत्पन्न की जाती या मौजूदा रोग-क्षमता बढ़ाई जाती है, जैसा कि हनुस्थंभ, सुर्ख़बाद (एरीसिपेलस) और डिफ़्थीरिया रोगों में होता है, तब यह रोग-क्षमता असहयोग रोग-क्षमता† कहलाती है; क्योंकि इसमें रोगी शरीर को उद्योग नहीं करना पड़ता ।

मियादी या नियत-कालिक ज्वर

चेचक, ख़सरा, टायफ़ॉयड, तीन दिन और सात दिन के कुछ ज्वर ऐसे होते हैं कि वे अपना समय लेकर ही उतरते हैं । ओषधि का उनकी मियाद पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, प्रत्युत अधिक ओषधि हानि भी पहुँचाती है । जब रोग आरंभ होता है, तो शरीर में रोगाणुओं का शरीर के तंतुओं से युद्ध आरंभ होता है । रोग उस समय तक नहीं कम होता, जब तक रोगाणुओं पर शरीर की विजय नहीं होती । ज्यों ही विजय आरंभ होती है, त्यों ही रोग कम होने लगता है, और जब विजय पूरी हो जाती है, तो रोग जाता रहता, ज्वर उतर जाता और केवल कमज़ोरी शेष रह जाती है । इन रोगों की अवधि वास्तव में वह समय है, जिसमें भक्षकाणुओं तथा विषघ्न और रोगाणु-नाशक वस्तुओं के द्वारा शरीर रोगाणुओं का नाश करता और उन पर विजयी होता है ।

मियादी रोगों की मियाद के चार समय

१. वह समय, जब रोगाणु शरीर में प्रवेश करते और बढ़ते हैं । इस समय रोगी को कोई विशेष कष्ट नहीं मालूम होता । रोगाणु उसके शरीर में पहुँच जाते हैं; परंतु जब तक उनकी संख्या अधिक नहीं होती, और उनके विष यथेष्ट परिमाण में बनकर व्यक्ति को हानि नहीं पहुँचाते, तब तक रोग के लक्षण नहीं मालूम होते ।

२. वह समय, जब रोग के लक्षण प्रत्यक्ष हो जाते और दिन-पर-दिन बढ़ते जाते हैं, अर्थात् रोग बढ़ता है । यह वह समय समझना चाहिए, जब रोगाणुओं का पल्ला भारी हो ।

३. वह समय, जब रोग न बढ़ता है, न घटता ।

४. वह समय, जब शरीर की विजय होती है, या हार ।

यदि विजय होती है, तो रोग के सब लक्षण घटने लगते और धीरे-धीरे जाते रहते हैं । रोगाणु मारे जाते हैं । यदि शरीर की हार होती है, तो रोग बढ़ता जाता है, और अंत में मृत्यु हो जाती है ।

रोग-क्षमता मनुष्य के स्वास्थ्य पर निर्भर है । जो बातें उसके स्वास्थ्य को बिगाड़ती हैं, वे उसकी रोग-नाशक शक्ति को भी कम करती हैं । जैसे शरीर को मैला रखना, पौष्टिक भोजन और शुद्ध वायु प्राप्त न होना, अति परिश्रम करना, छोटी आयु में ब्याह करना, शीघ्रता-पूर्वक बच्चे जनना, मदिरा तथा अन्य नशीली चीज़ों का सेवन करना, रंज, फ़िक्र तथा भय-पूर्वक रहना इत्यादि ।

रोगाणुओं के आक्रमण से बचने के साधन और स्वास्थ्य-संबंधी नियम

ये उपाय दो प्रकार के हैं । एक तो वे, जिन्हें मनुष्य अलग-अलग काम में ला सकते हैं । दूसरे वे, जिन्हें मनुष्य इकट्ठे होकर (पंचायतें, म्युनिसिपलिटियाँ, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड्स) काम में ला सकते हैं । हम दोनों प्रकार के साधन बतलाते हैं—

वे काम, जिन्हें मनुष्य पृथक् रहकर कर सकते हैं ।

शारीरिक स्वच्छता

१. प्रतिदिन स्नान करना; शरीर को अँगोछे से रगड़कर खूब धोना; कभी-कभी साबुन भी लगाना; साफ़ रहना । गंदे तालाब में कभी स्नान न करना । हाँ, बहते हुए जल में स्नान करना अच्छा है । दाँतों को रोज़ माँजना; भोजन करके खूब कुल्ली करना; मीठा खाने के पीछे मुँह खूब साफ़ करना; पान कभी-कभी चबाना और चबाने के पीछे मुँह और दाँतों को खूब धो डालना ।

इन विधियों से आँख, नाक, कान, मुँह, दाँत तथा

---

* Active Immunity.

† Pessive Immunity.

त्वचा पर रहनेवाले जीवाणुओं की संख्या कम होती और शरीर में बल आता है। दाँतों के मज़बूत रहने से भोजन अच्छी तरह से चबाया जाता और ख़ूब पचता है।

२. प्रतिदिन थोड़ा-बहुत व्यायाम तथा प्रातःकाल शुद्ध वायु में सैर करना अत्यंत लाभ-दायक है। व्यायाम से फुप्फुस और हृदय अच्छे रहते हैं, और उदर के अंग भी भली प्रकार काम करते हैं। शुद्ध वायु का सेवन करने से रोगोत्पादक जीवाणु श्वास-मार्ग में ठहरने नहीं पाते, और क्षय-रोग के होने की संभावना कम रहती है। इस विधि से हमारी रोग-नाशक शक्ति भी बढ़ती है।

३. सड़े हुए भोजन को कभी न खाना। भोजन की चीज़ों को मक्खियों या अन्य जानवरों से बचाकर रखना। भोजन ऐसे स्थान में बैठकर खाना, जहाँ किसी प्रकार का धुआँ और दुर्गंध न हो। जहाँ तक हो सके, ताज़ा ही भोजन खाना चाहिए।

गंदे हाथों से छुआ हुआ या गंदे बर्तनों या कपड़ों में रक्खा हुआ भोजन हानि-कारक होता है। भोजन हमेशा हाथ धोकर छूना और खाना। गंदे पैरों से भोजनालय में न घुसना। साग आदि परोसने के लिये चमचों का प्रयोग करना।

हिंदुओं के यहाँ विवाह के अवसर पर भोजन महागंदे तरीक़ों से परोसा जाता है। इस कुरीति का सुधार करना।

कुँजड़े की दूकान से मोल ली हुई तरकारियों को ख़ूब धोना। हैज़े के मौसम में अमरूद, ककड़ी, खीरा, फूट, ख़रबूज़ा, तरबूज़ इत्यादि चीज़ें, जो विना उबाले कच्ची ही खाई जाती हैं; न खाना।

इन विधियों से आप उन रोगों से बचेंगे, जो भोजन द्वारा हुआ करते हैं। जैसे हैज़ा, पेंचिश, टायफ़ॉयड, अतिसार इत्यादि।

४. पीने के लिये पवित्र जल का सेवन करना। तालाबों या छोटी-छोटी नदियों का पानी न पीना। यदि जल की पवित्रता में संदेह हो, तो उबालकर शुद्ध बर्तन में ठंढा करके पीना। जहाँ घेघा और जल-दोष बहुत होते हैं, वहाँ पानी उबालकर ही पीना ठीक है।

हैज़े के दिनों में पानी को अवश्य उबालना चाहिए। यदि घर में कुआँ हो, तो महीने में एक बार उसमें पोटाश परमंगेनेट डालना आवश्यक है।

अपने जूठे बर्तन में दूसरे को पानी न पिलाना। जल द्वारा फैलनेवाले रोगों से बचने का यही साधन है।

५. शौच के पश्चात् हाथों को ख़ूब साफ़ करना। जब किसी मनुष्य को टायफ़ॉयड या हैज़ा हो चुकता है, तो बहुत दिनों तक उसके मल में इन रोगों के रोगाणु निकला करते हैं। रोगी में तो रोग-क्षमता आ जाती है, परंतु ये रोगाणु दूसरे मनुष्यों में रोग उत्पन्न कर सकते हैं। ऐसे मनुष्य रोगाणुवाहक * कहलाते हैं; अर्थात् उनके शरीर में इन रोगों के रोगाणु रहते हैं, और उनके द्वारा ये रोग फैल सकते हैं। हैज़ा और टायफ़ॉयड इत्यादि रोग ऐसे मनुष्यों की सहायता से अक्सर फैलते हैं।

यदि ये लोग शौच के पश्चात् अपने हाथों को विना अच्छी तरह साफ़ किए दूसरों के भोजन या जल को छुएँ, तो उस भोजन के दूषित हो जाने की संभावना रहती है।

६. अधिक परिश्रम न करना। परिश्रम करके आराम करना। रंज और फ़िक्र से बचना। अधिक परिश्रम करना, रंज और फ़िक्र करना रोग-नाशक शक्ति को बड़ी शीघ्रता से कम करते हैं।

७. हवादार मकान में रहना, जिसमें सूर्य का काफ़ी प्रकाश प्रवेश करे। मकान के आस-पास बहुत हरियाली न हो, और न हवा को रोकनेवाले ऊँचे वृक्ष ही निकट हों।

मुँह ढककर कभी न सोना। मच्छड़ों से बचने के लिये मसहरी लगाना। रात्रि के समय हवा के आने-जाने के लिये कमरे की खिड़कियाँ खुली रहनी चाहिए। शीत-ऋतु में हवा के झोंकों से बचना। हवा तो कमरे में आवे, परंतु झोंके न लगें।

दो व्यक्तियों का मिलकर एक शय्या पर सोना अनुचित है। जहाँ तक हो सके, दूध-पीते बच्चों को भी माता से अलग सुलाना चाहिए। पास-पास सोने से एक व्यक्ति के मुँह की हवा और शरीर से निकले हुए अबख़रात दूसरे व्यक्ति के शरीर में प्रवेश करते हैं।

जवानों के लिये ७-८ घंटे सोना आवश्यक है।

८. अपना मुँह दूसरे के अँगोछे से कभी न पोंछना चाहिए। पैर पोंछनेवाले कपड़े से भी मुँह पोंछना अनुचित है। अपने मोज़ों को अपने तकिए या टोपी पर नहीं रखना चाहिए।

हमेशा नाक से साँस लेना चाहिए। बहुत-से रोगाणु

* Carriers of disease germs.

नाक के बालों में फँसकर रह जाते हैं, और फुप्फुस में नहीं जाने पाते। मुँह से साँस लेनेवालों को अक्सर ज़ुकाम-खाँसी रहा करती है। नाक से साँस लेने से ठंडी वायु भी भीतर गरम होकर पहुँचती है, और इस कारण कोमल श्लैष्मिक झिल्ली को हानि नहीं पहुँचने पाती।

जगह-जगह थूकना अनुचित है। घर की दीवारों तथा फ़र्श पर, भोजन-शाला के आस-पास, बैठने और सोने के कमरों में थूकना अत्यंत हानि-कारक है। दूसरे के मुँह पर कभी न खाँसो। जब थूक या बलग़म सूख जाता है, तो उसकी धूल में जो कीटाणु होते हैं, वे वायु द्वारा दूसरों के शरीर में प्रवेश करते हैं। घर में हर जगह थूकने से थूक की छींटें और चीज़ों पर भी पड़ जाती हैं। नन्हे बच्चे जो चीज़ पाते हैं, मुँह में रख लेते हैं। इस प्रकार उनको बहुत-से रोगों के होने का डर रहता है।

९. रोगी को छूकर हमेशा हाथ धोना चाहिए। रोगी को, हो सके तो, अलग कमरे में रखना चाहिए। विशेषकर ऐसे रोगी को, जिसे चेचक, ख़सरा, हैज़ा इत्यादि छूत के रोग हों। उसके कपड़ों को अलग रखना और धोबी के पास भेजने से पहले उबाल डालना या रोगाणु-नाशक ओषधियों के घोलों में भिगो देना चाहिए। कम मूल्य की चीज़ों को जला देना चाहिए। थूकने के लिये एक ढकनेदार प्याला रखना चाहिए, जिसमें रोगाणु-नाशक ओषधि रहे। हैज़े के रोगी के कपड़ों को जला देना चाहिए। उसके वमन और मल को जला देना ही सबसे अच्छा है।

जब तक चेचक इत्यादि रोगों के दाने सूख न जायँ, और धूल पूरे तौर से न अलग हो जाय, तब तक उस रोगी को अलग ही रखना चाहिए।

१०. मच्छड़ों, मक्खियों, जुँओं, खटमलों, चूहों, पिस्सुओं और चींचलियों को अपना दुश्मन समझना चाहिए, और उनको कम करने के साधनों को काम में लाना चाहिए।

११. अपने आचार ठीक रखना चाहिए। केवल एक स्त्री या पुरुष से संभोग करने से आतशक और सुज़ाक कभी नहीं होता।

अपना आत्मिक बल बढ़ाते रहना चाहिए।

वे काम, जिन्हें मनुष्य इकट्ठे होकर कर सकते हैं।

रहने के घर

१. ये ऐसे होने चाहिए कि उनमें वायु और सूर्य का प्रकाश भली भाँति प्रवेश करे। प्रति व्यक्ति के लिये १००० घन-फ़ीट स्थान का बंदोबस्त रहना चाहिए। जहाँ तक हो सके, बड़ी-बड़ी सड़कों के पास रहने के घर न बनाए जायँ; क्योंकि ऐसे घरों में सड़कों की धूल ख़ूब जाती और रहनेवालों के स्वास्थ्य को हानि पहुँचाती है।

मकान ऐसे हों कि वे ग्रीष्म-ऋतु में ठंडे रहें, और शीत-ऋतु में उनमें धूप भी आवे। मकानों के निकट बड़े-बड़े कारख़ाने न हों।

छोटे-छोटे हवादार, परंतु कम किराएवाले, मकान ग़रीब आदमियों को प्राप्य होने चाहिए। ऐसे मकानों का बंदोबस्त करना प्रत्येक म्युनिसिपलिटी का कर्तव्य है।

सड़कें और गलियाँ

२. सड़कें और गलियाँ चौड़ी होनी चाहिए। सड़कों के दोनों ओर हरियाली की पगडंडी हो। सड़कों पर छिड़काव का पूरा बंदोबस्त होना चाहिए, जिससे धूल बहुत कम उड़े। उचित फ़ासले पर मूत्र-घर और पाख़ाने भी बने होने चाहिए, और वे हरदम साफ़ रहने चाहिए। जगह-जगह पर थूकने के लिये भी बंदोबस्त होना चाहिए।

भोजन

३. कोई शख़्स मिठाई और अन्य खाने की वस्तुओं को खुले बरतनों में रखकर न बेचने पावे, ऐसा प्रबंध करना चाहिए। घी, दूध, आटा तथा अन्य भोज्य पदार्थों में कोई शख़्स कोई अन्य चीज़ मिलाकर न बेचने पावे। विना पवित्र घी और शुद्ध दूध के व्यवहार के हिंदू-जाति उन्नति नहीं कर सकती।

जहाँ खाने की चीज़ें बिकें, वहाँ सफ़ाई का पूरा बंदोबस्त होना चाहिए। नालियाँ हर समय साफ़ रहें, और घरों के पास किसी प्रकार का कूड़ा-करकट इकट्ठा न होने पावे।

जल

४. जल के कुएँ समय-समय पर साफ़ कराए जायँ। कुओं की मेड़ें ऊँची रहनी चाहिए, और ऊपर छतरी लगी रहनी चाहिए, जिससे न तो नीचे से कोई मैली चीज़ उनमें गिरे, और न ऊपर से वृक्षों के पत्ते ही। कुएँ ऐसी नाली के पास होने चाहिए, जिसमें

चौड़ा बहता हो। ये पाख़ाने के पास कभी न बनवाई जानी चाहिए।

यदि पानी का बंदोबस्त नल द्वारा हो, तो पानी सब लोगों को सब कामों के लिये आसानी से और कम ख़र्च में प्राप्य होना चाहिए। आजकल जहाँ नल लगे हैं, वहाँ बहुधा, विशेषकर ग्रीष्म-ऋतु में, पानी की कमी की शिकायत रहती है।

जब हैज़ा शुरू हो, तब सब कुएँ पोटाश परमंगेनेट से साफ़ कराए जाने चाहिए।

कूड़ा और नालियाँ

५. कूड़ा बंद टबों में रहे, और वे टब प्रतिदिन ख़ाली किए जायँ। कूड़े के इकट्ठे रहने से मक्खियाँ पैदा होती हैं। मक्खियों की अधिकता म्युनिसिपलिटी की ग़फ़लत का पक्का सबूत है।

नालियों की ढाल ऐसी हो कि उनमें पानी रुकने न पावे। प्रतिदिन दो बार नाली धोई जानी चाहिए।

घरों के बाहर चौबच्चों का रिवाज अत्यंत हानि-कारक है।

६. रात्रि के समय सड़कों और गलियों में मकानों के आस-पास रोशनी का पूरा बंदोबस्त होना चाहिए।

पुरवासियों की जान-माल की पूरी हिफ़ाज़त का यथेष्ट बंदोबस्त होना चाहिए। जब तक जान-माल की हिफ़ाज़त न होगी, तब तक लोग अपने मकानों को हवादार न बनावेंगे, और रात्रि को कमरों की सब खिड़कियों को चोरों के डर से बंद करके सोवेंगे। जान-माल की पूरी रक्षा का बंदोबस्त न होना क्षय-रोग के बढ़ने का एक बड़ा भारी कारण है।

दूध

७. शुद्ध दूध न मिलने के कारण भारतवर्ष में लाखों बच्चे मरते हैं। दूध का बंदोबस्त म्युनिसिपलिटी को करना चाहिए। शहरों के पास गायों के चरने के लिये बड़े-बड़े मैदान रहने चाहिए। जहाँ गाएँ रक्खी जायँ, वहाँ ख़ूब सफ़ाई रहे। पानी मिलाकर या अन्य क्रिया से दूध को दूषित करके बेचनेवालों को कड़ा दंड दिया जाय।

जहाँ तक संभव हो, म्युनिसिपलिटी कुछ दुग्ध-शालाओं (डेरी-फ़ार्मों) का ख़ुद इंतज़ाम करे, और सस्ते मूल्य पर शुद्ध दूध बेचे।

दाई

८. प्रतिवर्ष सैकड़ों स्त्रियाँ मैली और अज्ञान दाइयों के कारण मरती हैं। हर शहर में कुछ दाइयाँ, जो अपने काम को अच्छी तरह जानती हों, नौकर रक्खी जायँ। उनको इतना वेतन मिले कि वे बिना फ़ीस लिए ग़रीब लोगों के घर जाकर बच्चा जनावें।

रोगों की सूचना

९. जब कोई शख़्स चेचक, इनफ़्लुएंज़ा, हैज़ा और प्लेग आदि शीघ्र फैलनेवाले रोगों से बीमार हो, तो इस बात की सूचना डुग्गी द्वारा सब पुरवासियों को दी जाय, ताकि सब लोग सावधान हो जायँ। नोटिसों या लेक्चरों के द्वारा ऐसे रोगों से बचने के साधन भी लोगों को बतलाने चाहिए।

स्वास्थ्य-संबंधी व्याख्यान

१०. समय-समय पर स्वास्थ्य-संबंधी व्याख्यानों का प्रबंध होना चाहिए।

११. ग़रीब लोगों के लिये आतशक, क्षय और कुष्ठ-रोगों की बिना मूल्य, परंतु उत्तम श्रेणी की, चिकित्सा का पूरा प्रबंध प्रत्येक म्युनिसिपलिटी और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड को करना चाहिए। यदि वे रुपए के अभाव से न कर सकें, तो सरकार को करना चाहिए।

कोढ़ियों को बाज़ार में और घर-घर भीख माँगने की इजाज़त न दी जानी चाहिए। उनके लिये शहर से बाहर मकान बनाए जायँ, और उनके भोजन का प्रबंध किया जाय।

१२. वेश्यागमन को दूर करना चाहिए। घरों तथा पाठशालाओं के निकट और बाज़ारों में वेश्याओं को न बसाना चाहिए।

१३. अफ़ीम, भंग, गाँजा, चंडू, चरस, मदिरा तथा कोकीन इत्यादि नशीली वस्तुएँ स्वास्थ्य को बिगाड़ने और मनुष्य को दुराचारी बनानेवाली हैं। मनुष्य को इन चीज़ों की कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिये, हमारी राय में, इनका बिकना (सिवा चिकित्सा के लिये) बिलकुल बंद कर देना चाहिए।

१४. जिस तरह भी हो सके, अज्ञान को दूर करना चाहिए।

त्रिलोकीनाथ वर्मा

अमोघ औषध

(१)

बाबू रामभजन साधारणतः सब तरह से सुखी थे। उन्हें किसी बात का कष्ट न था। कचहरी में नौकर थे, दो सौ रुपए मासिक वेतन मिलता था। आराम से रहते थे, न किसी के लेने में थे न देने में। देखनेवाले समझते थे, रामभजन सुखी हैं। रामभजन भी अपनेको सुखी समझने की चेष्टा किया करते थे। परंतु केवल रोटी-कपड़े का सुख सुख नहीं है, और न 'अभाव' के अभाव ही का नाम सुख है। सुख तो कोई चीज़ ही दूसरी है। सुख का संबंध हृदय और मन से है। संसार के संपूर्ण ऐश्वर्य होने पर भी यदि हृदय को सुख नहीं है, शांति नहीं है, तो वह आदमी सुखी नहीं कहा जा सकता। संसार में लोगों के सुख नष्ट होने के अनेक कारण होते हैं। बाबू रामभजन का सुख नष्ट करनेवाली स्वयं उनकी अर्द्धांगिनी ही थीं। अपनी पत्नी के मारे रामभजन के नाकों-दम था। कदाचित् वह अपने अफ़सरों से इतना नहीं डरते थे, जितना अपनी पत्नी से। पत्नी से भी नहीं, पत्नी की जीभ से। तलवार का सामना वह प्रसन्नता-पूर्वक कर सकते थे, उसके वार सहने का साहस उनमें था; परंतु पत्नी की जीभ के वारों का सामना करने का साहस उनमें नहीं था। ज़रा-ज़रा-सी बात पर उनकी पत्नी वाक्य-बाणों की वह बौछार करती थीं कि बेचारे को भाग खड़े होने के सिवा और कोई उपाय न सूझता था। क्या मजाल कि वह पत्नी के विरुद्ध कोई काम अथवा उसकी आज्ञा का उल्लंघन करें। पत्नी जितना पानी पिलाती थी, उतना ही उन्हें पीना पड़ता था। यहाँ पर यह प्रश्न हो सकता है कि इस व्यवहार की जड़ कैसे पड़ी? इस व्यवहार की जड़ जमानेवाले अधिक अंशों में स्वयं रामभजन ही थे। पत्नी की जीभ में विष तो आरंभ ही से था, परंतु आरंभ में वह विष रामभजन के लिये अमृत-तुल्य था। जिस समय उनका विवाह हुआ था, उस समय वाक्य-बाणों की बौछार के साथ मृदु मंद मुसकान तथा विलोल कटाक्ष रहता था। इन दो बातों के कारण रामभजन उन बाणों को फूलों की मार से भी अधिक मधुर तथा सुख-दायक समझते थे। कटु वाक्य का विष नयन-कटाक्ष तथा मंद मुसकान की शकर में लपेटकर दिया जाता था। रामभजन उस शकर की मिठास का स्वाद लेने में इतने तल्लीन हो जाते थे कि उन्हें विष की कटुता का आभास भी नहीं मिलता था। नाज़-नख़रे के साथ कुछ मुसकिराकर कही हुई कड़ी-से-कड़ी बात भी उनके कानों को भली मालूम होती थी। अतएव वह सदैव ऐसी बातों को सुनने के लिये उत्सुक रहते थे। परंतु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, नए प्रेम के पैंग भी घटते गए। जब प्रेम में कोई नवीनता न रही, जब अपनेको प्रेमिक तथा प्रेमिका समझनेवाले दो प्राणी अपनेको केवल ठेठ पति और पत्नी समझने लगे, तब परस्पर के व्यवहार में भी परिवर्तन हुआ। अब कड़ी बात कहने में न वह मृदु मुसकान रही, न वे कटाक्ष। मृदु मुसकान का स्थान तो व्यंग्य के साथ ऐंठते हुए होठों ने ले लिया, और कटाक्षों का स्थान आरक्त नेत्रों ने। जो विष पहले शकर में लपेटकर दिया जाता था, वही अब लाल मिरचों में लपेटकर दिया जाने लगा।

दोपहर का समय था। रामभजन कचहरी गए हुए थे। उनके वृद्ध पिता भोजन करके कमरे में लेटे हुए थे। उनका पोता—जिसकी अवस्था ६ वर्ष की थी—उसी कमरे में खेल रहा था। वृद्ध ने पोते से कहा—बेटा श्यामू, ज़रा घसीटे (नौकर) से कह दे, एक गिलास पानी दे जाय।

श्यामू ने कहा—मैं नहीं कहता—जाओ।

वृद्ध—नहीं बेटा, कह आ; बड़ा राजा है।

श्यामू—मैं नहीं कहूँगा।

वृद्ध—अपने बाबा का काम नहीं करेगा?

श्यामू—नहीं करूँगा।

वृद्ध ने चुमकारकर कहा—बेटा, कह आ, बाबा को प्यास लगी है।

श्यामू—मैं नहीं जाऊँगा, नहीं जाऊँगा।

वृद्ध ने देखा, श्यामू हिलनेवाला जीव नहीं। अतएव वह आप कहने के लिये उठते हुए बोले—बड़ा बदमाश है, सारे गुन अपनी मा के सीख रहा है।

श्यामू ने कहा—मैं बदमाश नहीं, तुम बदमाश।

वृद्ध डाँटकर बोले—हैं, क्या कहा !

श्यामू बोला—बदमाश, बदमाश, बाबा बड़ा बदमाश है।

वृद्ध को कुछ क्रोध आ गया। उन्होंने उठकर श्यामू का हाथ पकड़ लिया, और उसके कान पकड़कर बोले—क्यों, फिर बदमाश कहेगा ?

श्यामू उसी प्रकार ढिठाई से बोला—हाँ, कहूँगा।

वृद्ध कान उमेठकर बोले—अच्छा कह तो सही।

कान उमेठने से श्यामू को तकलीफ़ हुई। उसे भी क्रोध आ गया। वह कान छुड़ाने की चेष्टा करते हुए बोला—बाबा बदमाश !

श्यामू के इतना कहते ही वृद्ध ने उसके एक तमाचा जड़ दिया। श्यामू ज़ोर से चिल्लाकर रो उठा। वृद्ध ने उसे छोड़कर कहा—ख़बरदार, अब जो कभी बदमाश कहा, तो कान उखाड़ डालूँगा।

श्यामू रोता हुआ अपनी मा के पास गया। मा ने पुत्र को रोते देखकर पूछा—क्या हुआ रे ?

श्यामू रोता हुआ बोला—बाबा ने मारा।

माता ने देखा, पुत्र का एक कान लाल हो गया है। बस, फिर क्या था, उबल पड़ी। बोली—इस बुड्ढे की बातें तो देखो ! जब देखो, हाथ चला बैठता है। बैठे-बैठे हमारा खायगा, और हमारे ही लड़के पर हाथ चलावेगा। भगवान् करे, हाथ में कोढ़ टपके, गाज गिरे ! दुनिया मरती जाती है, इस बुड्ढे को मौत भी नहीं आती। वाह ! क्या कोई बे मा-बाप का लड़का समझ रक्खा है। इसकी समझ तो देखो ! संडे को ज़रा-से बच्चे पर हाथ चलाते लाज भी नहीं लगती। जिस दिन इसकी रथी मचमचाती निकलेगी, उस दिन मेरे कलेजे में ठंडक पड़ेगी—इसकी तेरहीं खाकर मुझे सबर आवेगा। (पुत्र को चुमकारकर) ना बेटा, रो नहीं। अब की जो तुझे मारे, तो तू ईंट उठाकर मारना—इसे भी मारने का मज़ा मिल जाय।

इसी तरह वह जो मुँह में आया, सो बकती रही। ससुरजी कुछ देर तो चुपचाप कान दबाए सुनते रहे, सोचा, इस बला के मुँह कौन लगे; परंतु जब बहू का मुँह चलता ही गया, तब उन्हें भी क्रोध आ गया। वह अपनी युवावस्था का स्मरण करके उठे, और अंतःपुर के द्वार पर जाकर बोले—मार दिया, तो कौन तलवार लग गई ! अपने लड़के के गुन तो देखेंगी नहीं, दूसरों को दोष देंगी। ज़रा-से काम को कहा, सो नहीं किया, और ऊपर से बदमाश कहने लगा। ऐसी दशा में जो मैंने धमकाने के लिये ज़रा कान उमेठ दिया, तो कौन बड़ा पाप कर डाला !

बहू बोली—क्यों कान उमेठ दिया ? तुम हो कौन कान उमेठनेवाले ? बदमाश कहा, तो क्या बुरा कहा ? बदमाश तो तुम हई हो। बच्चों को मारना बदमाशों का काम नहीं, तो क्या भले आदमियों का काम है ?

अपने बदमाश होने का यह टकसाली प्रमाण सुनकर बुड्ढे ससुर को बड़ा क्रोध आया। मारे क्रोध के वह काँपने लगे। उन्होंने कहा—देखो बहू, मेरे मुँह तो लगो नहीं। तुम्हारी ये बातें मैं सहनेवाला नहीं। तुम्हारा ख़सम ही सहेगा। मेरे सामने ज़बान सँभालकर बात-चीत करो, नहीं तो ज़बान पकड़कर खींच लूँगा। यह न समझना कि बुड्ढा हो गया हूँ।

ससुर का इतना कहना था कि बहू उछलकर दरवाज़े पर पहुँच गई, और किंवाड़ों की आड़ में खड़ी होकर बोली—ले खींच ज़बान, खींच, तुझे भी क़सम है जो न खींचे। देखूँ, तू कैसे ज़बान खींचता है। अब खींचता क्यों नहीं—खींच !

मालकिन की चिल्लाहट सुनकर घर के दास-दासी दौड़ पड़े। दासी ने मालकिन को पकड़कर हटाया। दास ने वृद्ध को घसीटा। वृद्ध ने भी सोचा, इस नंगी के मुँह कौन लगे। बकते-झकते अपने कमरे में चले आए। कमरे में आकर बोले—इस हरामज़ादे रामभजना ने इसे सिर चढ़ा रक्खा है। दूसरा हो, तो इस बदमाश को एक दिन में ठीक कर दे। इसी तरह बकते-झकते रहे। उधर बहू ने भी ससुर की सात पीढ़ियों का श्राद्ध कर डाला।

(२)

शाम को जब रामभजन ऑफ़िस से लौटे, तो पहले उनकी मुठभेड़ पिता से हुई। पुत्र को देखते ही पिता ने कहा—रामभजन, अब मेरा रहना इस घर में नहीं हो सकता। तुम अपना घर-बार सँभालो। मैं सब कष्ट सह सकता हूँ, पर बहू की बेहूदा बातें नहीं सह सकता। अब तक जैसे बना, वैसे निबाहा, अब नहीं सहा जाता।

रामभजन का हृदय धड़कने लगा। स्त्री की शिकायत सुनकर उनके हृदय की धड़कन बढ़ जाती थी। उन्होंने पूछा—क्या हुआ, बात क्या है ?

पिता ने कहा—तुम्हें बतलाने से कोई लाभ नहीं। तुम उसके संबंध में कुछ नहीं कर सकते। मैं गाँव जाता हूँ। वहीं रहूँगा। तुमसे बने, तो वहीं दो रोटी दे देना; नहीं तो हरि-इच्छा, जो भाग्य में बदा है, होगा।

रामभजन—आप तो व्यर्थ की बातें करते हैं। आप भला गाँव में रह सकते हैं?

पिता—न रहूँगा, तो क्या करूँगा! यहाँ रहकर बहू की जूतियाँ खाऊँगा?

"बात बतावेंगे नहीं, अपनी ही ओटेंगे।" कहते हुए रामभजन घर के भीतर चले गए।

घर के भीतर पहुँचकर उन्होंने देखा, बहूरानी सावन-भादों के बादल की तरह भरी हुई बैठी हैं। मुँह फूला हुआ है। भौंहें चढ़ी हुई हैं। आँखों में क्रोध की लाली अब भी मौजूद है। वह विकराल मूर्ति देखकर रामभजन के देवता कूच कर गए। इच्छा हुई कि कुछ पूछें, पर हिम्मत नहीं हुई। इसी से चुपचाप अपने कमरे में चले गए। वहाँ से कपड़े बदलकर निकले, और इधर-उधर कतराते हुए दासी के पास पहुँचे। उससे पूछा—क्यों री, क्या हुआ, तुझे कुछ मालूम है?

दासी बोली—बड़े बाबू ने लल्ला को मारा, इसी पर दोनों जनों में खूब लड़ाई हुई।

"हूँ!" कहकर रामभजन फिर पत्नी के पास पहुँचे, और हिम्मत करके बोले—आज उदास क्यों बैठी हो?

बहूरानी ने छूटते ही कहा—आज वह बुड्ढा मर गया है न! उसी के सोग में बैठी हूँ।

रामभजन चुप, काटो तो खून नहीं। कुछ देर बाद फिर हिम्मत करके अत्यंत नम्रता-पूर्वक पूछा—बात क्या है?

बहू—बात उसी निगोड़े से पूछो, जिसे खिला-खिलाकर संडा कर रक्खा है। निगोड़े को बुढ़ापे में मस्ती सवार हुई है।

रामभजन मृदु हास्य करके बोले—तुम तो व्यर्थ बातें करती हो, असली बात नहीं बतलातीं।

बहू—एक तो बच्चे को बेक़सूर मारा, और ऊपर से मेरी जीभ खींचने को आया था। घड़ी-साइत अच्छी थी, बच गया, नहीं तो आज मूछें बीन लेती।

पिता के प्रति ये अपशब्द सुनकर रामभजन को क्रोध आ गया। अतएव वह कुछ कर्कश स्वर में बोले—ये क्या वाहियात बातें बकती हो! उनके लिये ऐसे शब्द कहते तुम्हें शर्म भी नहीं मालूम होती!

उपर्युक्त शब्द रामभजन ने बड़े साहस से कहे थे—वह साहस, जो क्रोध से उत्पन्न होता है, और कुछ देर के लिये कायर को भी वीर बना देता है।

पति का कथन सुनकर पत्नी ने लाल-लाल नेत्रों से पति की ओर घूरकर कहा—आप ही तो खोद-खोदकर पूछा, और जब मैंने सच्ची बात कही, तो उलटे बुड्ढे की हिमायत करते हुए मुझे डाँटने लगे। अच्छी बात है, खूब हिमायत करो। देखती हूँ, हिमायती बनकर मेरा क्या कर लेते हो? मैं भी इस बुड्ढे को घर से निकालकर ही पानी पियूँगी।

पत्नी की यह 'भीष्म-प्रतिज्ञा' सुनकर रामभजन का सारा क्रोध काफ़ूर हो गया। क्रोध के स्थान में भय का आगमन हुआ। उन्होंने सोचा, इस संबंध में अधिक कहने-सुनने में कल्याण नहीं; कल्याण है केवल इसे किसी-न-किसी तरह रफ़ा-दफ़ा कर देने में। अतएव वह फिर नम्रता-पूर्वक बोले—ख़ैर, जो हुआ सो हुआ, अब गुस्सा थूक दो। मैं उन्हें भी समझा दूँगा।

बहूरानी तुनककर बोलीं—तुम क्या समझा दोगे, और वह क्या समझेगा! और, वह समझ भी जाय, तो मैं कब समझनेवाली हूँ! अब तो इस घर में वही रहेगा, या मैं ही!

रामभजन चिढ़कर यह कहते हुए उस स्थान से चल दिए कि जो तुम्हारे जी में आवे, सो करो।

उस दिन शाम को चूल्हा नहीं जला। सब लोग भूखे ही सो रहे। केवल श्यामू के लिये बाज़ार से भोजन मँगाया गया।

रामभजन को रात-भर नींद नहीं आई। वह अच्छी तरह समझते थे कि इसमें अधिक अपराध स्त्री ही का है। उसी ने तिल का ताल बनाया है। परंतु करते क्या, विवश थे। रात-भर वह यही सोचते रहे कि पत्नी का यह दुष्ट स्वभाव किस प्रकार दूर करें। कभी क्रोध में आकर सोचते थे कि डंडा लेकर जुट जायँ, और मारते-मारते बेदम कर दें—बस, ठीक हो जाय। परंतु जब इसके परिणाम पर विचार करते थे, तो शरीर के रोंए खड़े हो जाते थे। यदि मारा और गहरी चोट लग गई, या चोट न भी लगी, स्त्री क्रोध में आकर कुएँ में फाँद पड़ी, या उसने अफ़ीम

खा ली, तो क्या होगा? आबरू पर पानी फिर जायगा, सारी गृहस्थी का सर्वनाश हो जायगा! फिर बच्चे का पालन-पोषण कौन करेगा?

परिणाम-दर्शी मनुष्य अन्य बातों में चाहे जितना बुद्धिमान्, चतुर तथा कुशल हो, पर प्रायः हृदय का भीरु होता है। परिणाम-दर्शी आदमी वीर बहुत कम होते हैं। किंतु जो होते हैं, वे आदर्श वीर होते हैं।

अंत को बहुत सोच-विचारकर उन्होंने यह ठीक किया कि सबसे ठीक उपाय यही है कि पिताजी गाँव पर रहें। उनकी इच्छा भी यहाँ रहने की नहीं है। इधर बहू भी उन्हें निकालने को तुली हुई है। यदि एक जगह दोनों रहेंगे, तो फिर झगड़ा होने की संभावना है। इससे यही अच्छा है कि पिताजी अलग रहें।

प्रातःकाल उठकर उन्होंने पिता से पूछा—कहिए, आपने क्या तय किया?

वृद्ध ने संसार देखा था। उन्होंने इस वाक्य से पुत्र का तात्पर्य समझकर कहा—निश्चित क्या, गाँव में जाकर रहने के सिवा और दूसरा उपाय नहीं। यह तो भाग्य ही में बदा है।

रामभजन—हानि तो कुछ नहीं है, पर आपको कष्ट तो न होगा? कष्ट सारा भोजन का है। सो उसके लिये चाची वहाँ हैं ही। वही बना दिया करेंगी।

पिता पुत्र की इन बातों पर मन-ही-मन खूब हँसा। परंतु बाहर गंभीर बनकर कहा—कष्ट कुछ न होगा। कष्ट का क्या काम? यहाँ की अपेक्षा वहाँ सुख ही रहेगा। रोज़ की दाँता-किलकिल से तो जान बचेगी।

रामभजन—हाँ, मैं भी यही सोचता हूँ। मैं तो दिन-भर ऑफ़िस में रहता हूँ। पीछे किसी दिन अधिक बात बढ़ गई, तो ठीक न होगा। इसलिये यही ठीक है।

पिता पुत्र की पत्नी-भक्ति को मन-ही-मन धिक्कारते हुए गाँव जाने की तैयारी करने लगा।

(३)

इतवार का दिन था। रामभजन बाहरी कमरे में बैठे हुए अपने परम मित्र कैलाशनाथ से बातें कर रहे थे। रामभजन कह रहे थे—बस, इतनी ही-सी बात थी।

कैलाशनाथ मुसकिराकर बोले—इतनी ही-सी बात का यह परिणाम निकला कि पिताजी को गाँव में जाकर रहना पड़ा?

रामभजन—हाँ।

कैलाशनाथ विस्मय-पूर्ण स्वर में बोले—खूब! और आपने उन्हें चले जाने दिया?

रामभजन—चले जाने न देता, तो क्या करता?

कैलाश—यार, बुरा मानो या भला, मैं यह कहे विना नहीं रह सकता कि तुम पूरे जोरू के गुलाम हो।

रामभजन एक लंबी साँस खींचकर बोले—हाँ भाई, जो कहो, ठीक है। ऐसी औरत से पाला नहीं पड़ा, इसी से चाहे जो कहो।

कैलाश—अजी राम भजो! यहाँ तो ईश्वर की दया से ऐसी सुशील पत्नी मिली है कि जिसका नाम। मैं उसे चाहे जो बक-झक लूँ, वह कभी कड़ी आवाज़ से बोलती तक नहीं।

रामभजन को कैलाशनाथ के सौभाग्य पर बड़ी ईर्षा हुई। एक मनुष्य जिस बात को अपने लिये अत्यंत महत्त्व-पूर्ण समझता है, वही दूसरे के लिये इतनी साधारण बात होती है कि कभी उसका ध्यान भी इस ओर नहीं जाता कि संसार में किसी के लिये यह अत्यंत महत्त्व-पूर्ण हो सकती है। इधर रामभजन को इस बात में संदेह था कि कोई स्त्री इतनी सुशील हो सकती है, और उधर कैलाशनाथ को इसमें संदेह था कि कोई स्त्री इतनी कर्कशा हो सकती है। दोनों को परस्पर एक दूसरे की बातों में अतिशयोक्ति की बू आ रही थी। प्रत्येक मनुष्य अपने अनुभव के तराज़ू में दूसरों को तौलता है।

कैलाशनाथ ने कहा—भाई, मेरी औरत अगर ऐसा व्यवहार करने लगे, तो मैं तो उसे एक ही दिन में ठीक कर दूँ।

रामभजन संदेह-पूर्ण स्वर में बोले—संभव है, कर दो।

कैलाशनाथ—तुम भी चाहो, तो कर सकते हो।

रामभजन कुछ खिन्न होकर बोले—तुम्हीं बतलाओ, कैसे कर दूँ? मार-पीट करूँ?

कैलाश—अजी राम का नाम लो। मारने-पीटने से तो उलटा फल होगा।

रामभजन—फिर?

कैलाशनाथ—बोलना-चालना बंद कर दो।

रामभजन—पागल हो! एक घर में हर वक्त रहने पर यह कब तक निभेगा?

कैलाश—उसे उसके बाप के घर भेज दो, और जब तक वह अपने किए पर पश्चात्ताप न करे, मत बुलाओ।

रामभजन—तुम्हारा तो सिर फिर गया है! मैं न बुलाऊँ, तो क्या वह आपसे नहीं आ सकती ? इस पर शायद तुम यह कहो कि आपसे आवे, तो घर में घुसने न दो—क्यों ?

कैलाशनाथ—वह आपसे क्यों आने लगी ?

रामभजन—यार, तुम पूरे शेख़चिल्ली ही रहे! क्या कोई नई दुलहन है, जो आपसे न चली आवेगी ? वैसे चाहे आने में सौ नख़रे बघारे, पर जब यह मालूम होगा कि मैं नाराज़ होकर नहीं बुला रहा हूँ, तो दूसरे ही दिन भैया को लेकर आ धमकेगी।

कैलाश—त्याग दो ; दूसरा ब्याह कर लो।

रामभजन—हूँ, संखिया न खिला दूँ!

कैलाश—इतने उपाय बतलाए, पर तुम्हें एक भी न जँचा।

रामभजन कुछ रुष्ट होकर बोले—उपाय क्या बतलाते हो, हँसते हो, मज़ाक़ उड़ाते हो! अच्छा भाई, हँस लो।

कैलाश—पागल हो ? मैं भला तुमको हँस सकता हूँ। अच्छा, एक और उपाय है। शेक्सपियर का 'टेमिंग ऑफ़ ए श्रू' पढ़ा है।

रामभजन—सब कुछ पढ़ा है; पर क्या होता है। ये बातें पुस्तकों में ही अच्छी लगती हैं। जब सिर पर पड़ती है, तो एक नहीं चलती। शेक्सपियर का पाला किसी श्रू से पड़ता, तो सब भूल जाते। यों लिखने को तो कहो, मैं भी बीस बातें लिख दूँ।

कैलाशनाथ—हँसी नहीं, ज़रा करके तो देखो। कभी सीधे बात न करो। हर घड़ी भौंहें चढ़ी रहें। बोलो, तो डाँटकर। ज़रा कहा-सुनी हो, तो घर के बरतन उठा-उठाकर फेकना शुरू कर दो। भोजन ज़रा ख़राब हो, तो उठाकर फेक दो।

रामभजन—बौड़मपन की बातें तो करो नहीं। उल्लू बनाते हो! दिन-भर ऑफ़िस में मरूँ, और शाम को आकर यह अभिनय करूँ, तो तुम्हीं कहो, कितने दिन जियूँगा ? शाम को जब थका-माँदा लौटता हूँ, तब बोलने को तो जी चाहता नहीं, यह नाटक किस भकुए से होगा ? चीज़ों का नुक़सान अलग। बरतन टूटेंगे, तो मेरे, भोजन ख़राब होगा, तो मेरा। इस महँगी में यों ही गुज़र करना कठिन हो रहा है, उस पर तुम वह बात बताते हो कि चार ही दिनों में घर का सफ़ाया हो जाय। अच्छे मिले! दोस्ती का हक़ अदा करना इसी को कहते हैं!

कैलाशनाथ—तुम्हारे किए कुछ न होगा, यों ही जोरू की जूतियाँ उठाते रहोगे!

रामभजन—मैं ऐसे ही अच्छा हूँ। एक चुप सौ बलाएँ टालती है। आराम से दोनों वक़्त भोजन तो मिलता है। एक दिन के लड़ाई-झगड़े में दो दिन चूल्हा नहीं जलता। या तो अपने हाथ से बनाओ, या बाज़ार-घाट उतरो। इससे तो बचे हुए हैं!

कैलाशनाथ—तो तुम्हारी समझ में रोग असाध्य है ?

रामभजन—संभव है, असाध्य न हो, परंतु अभी तक मुझे तो कोई अचूक औषध मिली नहीं। 'अंधा तब पतियावे, जब दो आँखें पावे।'

कैलाशनाथ—अच्छा, अगले इतवार को मैं तुम्हें अपने पिता के एक मित्र के पास ले चलूँगा। वह बड़े अनुभवी हैं। पैंतालीस वर्ष तक गृहस्थाश्रम का सुख भोगने के बाद उन्होंने संन्यास लिया है। विद्वान् भी बड़े हैं। मनुष्य-स्वभाव का ज्ञान उन्हें जितना है, उतना बहुत कम लोगों को होगा। यह मेरी ही सम्मति नहीं, बल्कि उन सबकी है, जो उनसे मिले हैं।

रामभजन—तुम्हारे कहने से, कहो चला चलूँ; मुझे तो अधिक आशा नहीं।

कैलाश—ख़ैर, मेरे ही कहने से चले चलना।

(४)

दूसरे इतवार को कैलाशनाथ रामभजन को लेकर उन्हीं संन्यासी के पास पहुँचे, जिनके संबंध में उन्होंने रामभजन से कहा था। वह संन्यासी शहर के बाहर, नदी-किनारे, एक कुटी में रहते थे। उनकी अवस्था साठ वर्ष के लगभग होगी। मुख पर विद्वत्ता, अनुभव तथा तपस्या के तेज की झलक थी। कैलाशनाथ को देखते ही वह मुसकिराकर बोले—कहो बेटा, अच्छे तो हो ? बहुत दिनों बाद दिखाई दिए।

कैलाशनाथ हाथ जोड़कर बोले—जी हाँ, गृहस्थी के धंधों से अवकाश नहीं मिला।

यह कहकर कैलाशनाथ ने उनके सामने थोड़े-से फल रख दिए।

रामभजन की ओर इशारा करके वह बोले—यह सज्जन कौन हैं ?

कैलाशनाथ—यह मेरे एक मित्र हैं। रामभजन नाम है। मेरे साथ ही कचहरी में काम करते हैं।

वृद्ध संन्यासी ने प्रसन्न-मुख होकर कहा—बड़ी प्रसन्नता की बात है। कहिए, आप प्रसन्न तो हैं ?

रामभजन ने हाथ जोड़कर कहा—सब आपकी दया है।

कैलाश—महाराज, यह आपके पास अपने एक रोग की दवा पूछने आए हैं।

संन्यासी—रोग की दवा ! दवा मैं क्या जानूँ ? यह काम तो वैद्यों का है।

कैलाशनाथ—शरीर का रोग नहीं, मन का रोग है।

संन्यासी—अच्छा, मैं समझ गया। वह कौन-सा मानसिक रोग है ?

कैलाशनाथ ने रामभजन से कहा—बतलाओ जी !

रामभजन ने कुछ झेंपकर कहा—तुम्हीं बतला दो।

कैलाशनाथ ने कहा—अच्छा, मैं ही बतलाए देता हूँ। महाराज, यह अपनी स्त्री के मारे बड़े दुखी हैं।

संन्यासी—कैसे ?

कैलाशनाथ—इनकी स्त्री बड़ी लड़ाका, बड़ी कर्कशा है। इन्हें तो वह कुछ समझती ही नहीं कि किस खेत की मूली हैं। ज़रा-सी बात पर सैकड़ों सुनाती है।

संन्यासी ने गंभीर होकर कहा—यह रोग तो नया नहीं है। असंख्य मनुष्य इस रोग के शिकार हो रहे हैं।

कैलाशनाथ—जी हाँ, इसी की कोई अचूक औषध आपसे पूछनी है।

संन्यासी—औषध अचूक तो न होगी, पर गुणकारी अवश्य होगी। पूरा लाभ न होगा, तो कुछ-न-कुछ अवश्य होगा। औषध का गुण रोग तथा रोगी पर निर्भर है। औषध बताने के पहले मैं कुछ बातें स्पष्ट रूप से जानना चाहता हूँ। एक तो यह कि इनकी पत्नी में केवल यही दोष है, या कोई अन्य भी ?

रामभजन अभी तक इस ओर अधिक ध्यान नहीं दे रहे थे; पर संन्यासी की बात-चीत से उन्होंने समझा, कुछ-न-कुछ लाभ अवश्य होगा। अतः उन्होंने कहा—केवल यही दोष है। गृह-कार्य में बड़ी प्रवीण है। पूरी गृहस्थ है।

संन्यासी—कुछ पढ़ी-लिखी है ?

रामभजन—यों ही साधारण।

संन्यासी—कोई बाल-बच्चा है ?

रामभजन—एक पुत्र है।

संन्यासी—अवस्था क्या होगी ?

रामभजन—यही २५-२६ वर्ष के लगभग होगी।

संन्यासी—यह दोष शुरू ही से है, या बीच में पैदा हो गया है ?

रामभजन कुछ देर तक सोचकर बोले—कड़वी बात कहने की आदत तो शुरू ही से थी, पर मैंने उस पर अधिक ध्यान नहीं दिया। इसी कारण यहाँ तक नौबत पहुँच गई।

संन्यासी के होठों पर मृदु हास्य की एक हलकी रेखा दौड़ गई। उन्होंने फिर गंभीर होकर कहा—अब उसका व्यवहार कैसा है ?

रामभजन झेंपते हुए बोले—बस, यही चाहती है कि हरएक बात उसी की इच्छा के अनुसार हो। यदि उसकी इच्छा के प्रतिकूल जाने की चेष्टा की भी जाती है, तो जो मुँह में आता है, बकती है, रोती है, चिल्लाती है, भोजन नहीं करती। कभी-कभी तो जान देने पर तक उतारू हो जाती है। जब उसकी ज़बान खुलती है, तो छोटे-बड़े का कुछ विचार नहीं रखती।

संन्यासी—रोग तो निस्संदेह कष्ट-साध्य है, और उसे कष्ट-साध्य बनाने का श्रेय आप ही को है। रोग को बढ़ाना जितना सहज होता है, उतना ही कठिन उसे दूर करना हो जाता है।

कैलाशनाथ—यही तो मैं भी कहता था। इसमें सब दोष इन्हीं का है। मैंने कई उपाय इन्हें बताए, पर इन्हें कोई पसंद नहीं आया। पसंद तो तब आवे, जब साहस हो।

संन्यासी ने मुसकिराकर कहा—अच्छा, तुमने क्या उपाय बताए ? हम भी ज़रा सुनें।

रामभजन—अजी यह तो यों ही अंट-संट बकते रहे। कभी बोले, त्याग दो, दूसरा ब्याह कर लो; कभी 'टेमिंग ऑफ़ ए श्रू' की बात कही। यों ही बकते रहे।

वृद्ध संन्यासी यह सब सुनकर बहुत हँसे। हँसते हुए बोले—'टेमिंग ऑफ़ ए श्रू' की खूब रही। फिर कुछ देर बाद गंभीर होकर कहा—यह युक्ति भी बुरी

नहीं है ; परंतु इस जगह ठीक नहीं होगी । यहाँ तो सब जानी-बूझी बात हो गई है । यह पत्नी का स्वभाव जान गए हैं, और पत्नी इनका स्वभाव समझ गई है । ऐसी दशा में अकस्मात् स्वभाव-परिवर्तन होने से वह तुरंत समझ जायगी कि यह परिवर्तन मेरे ही लिये हुआ है । जब वह यह समझ जायगी, तो फिर उसका सुधरना कठिन हो जायगा । कारण, घात का उत्तर प्रतिघात से दिया जायगा ।

इसके बाद संन्यासी ने रामभजन से कहा—इसका एक और उपाय है ; परंतु पहले मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम उससे काम लेने के लिये पूर्ण रूप से तैयार हो, या नहीं ?

रामभजन—महाराज, अगर मेरे वश की बात होगी, तो मैं अवश्य करूँगा ।

संन्यासी—वश की बात तो है ही । यह समझ लो कि तुमने अपनी पत्नी के स्वभाव को बिगाड़ने का जो पाप किया है, उसका तुम्हें प्रायश्चित्त करना होगा । आजकल युवक और युवतियाँ विवाह होने के बाद जवानी का आनंद लूटने में इतने तन्मय हो जाते हैं कि उन्हें बरसों परस्पर एक दूसरे के गुण-दोषों का पता तक नहीं लगता । जब शिथिल पड़ जाते हैं, तब उनकी आँखें खुलती हैं । विवाह के बाद पहले तीन-चार वर्षों में दंपति के पारस्परिक व्यवहार के भाग्य का निपटारा सदा के लिये हो जाता है । इन तीन-चार वर्षों में जो जिस पर प्रबल हो गया, वह फिर उत्तरोत्तर प्रबल ही होता जायगा । यही समय है, जब पति अपनी पत्नी के स्वभाव में इच्छानुसार परिवर्तन कर सकता है । इसके बाद वह अत्यंत कठिन और बहुधा असंभव हो जाता है । दुःख है कि इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता । परिणाम यह होता है कि कहीं पति पत्नी को पैर की जूती समझने लगता है, और कहीं पत्नी पति को केवल धन कमाने की मशीन । ऐसे सौभाग्यशाली घर बहुत कम हैं, जहाँ पति और पत्नी में यथार्थ प्रेम और एक दूसरे के प्रति आदर का भाव विद्यमान हो ।

कैलाशनाथ—तो विवाह के बाद पहले के तीन-चार वर्षों तक पति-पत्नी के बीच कैसा व्यवहार होना चाहिए ?

संन्यासी—जैसा दो घनिष्ठ मित्रों में होता है । यदि पत्नी पढ़ी-लिखी नहीं है, तो पति का कर्तव्य है कि पहले उसे इतनी शिक्षा दे दे कि वह पुस्तकें पढ़ने योग्य हो जाय । यदि वह पढ़ी-लिखी है, तो उसे अच्छी-अच्छी पुस्तकें खूब पढ़ावे । उसके स्वभाव का ध्यान-पूर्वक अध्ययन करे, और जो दोष हों, उन्हें छुड़ाने का प्रयत्न करे । उस समय थोड़ी-सी चेष्टा ही से स्वभाव में बहुत कुछ परिवर्तन हो सकता है । कारण, उस समय परस्पर प्रेम का आवेश इतना तीव्र होता है कि एक को दूसरे की बात माननी ही पड़ती है । यदि पत्नी बुद्धिमान् है, तो वह भी पति के दोषों को दूर कर सकती है । माता-पिता का भी कर्तव्य है कि वे इस संबंध में दंपति की सहायता करें ।

कैलाशनाथ—ख़ैर, ये सब तो पहले की बातें हैं । अब बताइए, क्या होना चाहिए ?

संन्यासी—हाँ, बतलाता हूँ । मैं कह चुका हूँ कि यह एक प्रकार से पाप का प्रायश्चित्त करना होगा । अतएव इसमें धैर्य तथा दृढ़ता की बहुत आवश्यकता पड़ेगी । विना इन दो बातों के सफलता कदापि नहीं हो सकेगी ।

कैलाशनाथ रामभजन से बोले—क्यों भाई, सुनते हो ? अगर तुम चाहो कि दो-चार दिन में सब ठीक-ठाक हो जाय, तो असंभव है ।

संन्यासी—दो-चार दिन क्या, दो-चार महीने लगेंगे । संभव है, इससे भी अधिक समय लगे ।

रामभजन कुछ देर सोचकर बोले—आप बतलाइए, मैं तैयार हूँ । मैंने जो पाप किया है, उसका प्रायश्चित्त जिस तरह होगा, करूँगा ।

संन्यासी—पहली बात तो यह है कि आज से तुम यह व्रत धारण कर लो कि अपनी पत्नी से कभी प्रसन्न-मुख होकर बात न करोगे । उसको यह भली भाँति विदित कर दो कि तुम उस पर हृदय से रुष्ट हो ।

रामभजन—ऐसा व्यवहार कब तक रक्खा जायगा ?

संन्यासी—जब तक अभीष्ट पूरा न हो । मैं तो कह चुका कि यह एक प्रकार की तपस्या है ।

रामभजन—अच्छी बात है । और ?

संन्यासी—दूसरी बात यह है कि उससे बिलकुल न डरो । उस पर यह भली भाँति प्रकट कर दो कि तुम उससे बिलकुल नहीं डरते । स्मरण रक्खो, जितना ही उससे डरोगे, उतना ही वह तुमको दबाते जाने की चेष्टा करेगी ।

रामभजन—हूँ, ठीक है। और ?

संन्यासी—जब कभी वह लड़ाई-झगड़ा करे, अथवा कटु शब्द कहे, तब तुरंत उसके इस व्यवहार का तीव्र विरोध करो। विरोध करने का यह अर्थ नहीं कि तुम भी गालियाँ बकने लगो। उससे स्पष्ट कह दो कि उसका यह व्यवहार अत्यंत निंदनीय है, और यदि वह यह व्यवहार न छोड़ेगी, तो परिणाम अच्छा न होगा। दो-चार बार इस प्रकार चेतावनी देने पर भी यदि वह न माने, तो उसके गृहस्थी-संबंधी सब अधिकार छीन लो; अर्थात् घर का माल-असबाब सब अपने अधिकार में कर लो। उसको सिर्फ़ ज़रूरत-भर को अपने हाथ से दे दिया करो।

रामभजन—हूँ, और कुछ ?

संन्यासी—उसके इस दुष्ट स्वभाव को गुप्त मत रक्खो। जो स्त्री या पुरुष तुम्हारी पत्नी से मिलते-जुलते रहते हों, उनको अपनी पत्नी का यह स्वभाव विदित कर दो। उनको यह भी बतला दो कि तुम अपनी पत्नी के इस स्वभाव से अत्यंत दुखी तथा क्रुद्ध हो।

रामभजन—इससे क्या होगा ?

संन्यासी—इससे यह होगा कि वे लोग भी तुम्हारी पत्नी के मुख पर उसके बुरे स्वभाव की आलोचना करेंगे। स्त्रियों में यह बात बहुत होती है। वे एक दूसरे की तीव्र आलोचना मुँह पर ही करती हैं।

रामभजन—ठीक है। और कुछ ?

संन्यासी—यदि तुम्हारी पत्नी के पास कोई स्त्री ऐसी आती-जाती हो, जो स्वयं दुष्ट प्रकृति की हो, तो उसका आना-जाना एकदम बंद कर दो। दुष्ट-संग के कारण भी यह प्रकृति उत्पन्न हो जाती है।

रामभजन—यदि इन उपायों से भी कुछ लाभ न हुआ ?

संन्यासी—अभी से क्यों निराशावादी बने जाते हो ? पहले करके तो देखो। यदि लाभ न हो, तो समझ लेना, रोग असाध्य है। याद रक्खो, स्त्री के लिये पति की उदासीनता बड़ा कठोर दंड है, यदि भली भाँति और उचित समय तक दिया जाय। दो-चार दिन बोल-चाल बंद कर देने से कोई लाभ नहीं हो सकता।

रामभजन—ठीक है। मैं समझ गया।

संन्यासी—बस, जाओ, मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हें सफलता हो।

रामभजन के हृदय में एक नवीन बल का संचार हो उठा। आज तक जिस बात को वह असंभव समझते थे, वही उन्हें पूर्णतया संभव प्रतीत होने लगी। उन्होंने हृदय में दृढ़ संकल्प कर लिया कि चाहे जो हो, इस कार्य में सफलता प्राप्त करके ही छोड़ेंगे।

* * *

ऊपर-लिखी घटना हुए छः महीने बीत गए।

रामभजन तथा कैलाशनाथ संन्यासी की कुटी में बैठे हुए हैं।

रामभजन ने कहा—आपके अनुग्रह से मेरा अभीष्ट पूरा हुआ।

संन्यासी—ख़ैर, तुम तो निराश हो चुके थे।

रामभजन—हाँ, निस्संदेह मैं निराश हो चुका था, जैसा कि मैं एक बार बीच में आकर आपसे निवेदन कर गया था, उस युक्ति से बहुत लाभ हुआ।

संन्यासी—किस युक्ति से ?

रामभजन—वही, उसके दुष्ट स्वभाव की चर्चा मैंने उसकी सभी सखी-सहेलियों में फैला दी। परिणाम यह हुआ कि सबने उसे इतना धिक्कारा कि उसका आना-जाना, मिलना-जुलना बंद-सा हो गया।

संन्यासी—ठीक है।

रामभजन—जब मैंने घर पर अपना अधिकार जमाया, तो उसने अफ़ीम खाकर सो रहने तक की धमकी दी; पर मैंने उस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया।

संन्यासी—ठीक है। बहुत अच्छा किया।

रामभजन—पाँच महीने ही में उसको अपना जीवन भार-स्वरूप प्रतीत होने लगा।

संन्यासी—अब क्या दशा है ?

रामभजन—अब तो सब ठीक है। यहाँ तक कि ससुर को भी आप ही बुलाकर अपने अपराधों के लिये क्षमा माँगी।

संन्यासी—बहुत ठीक।

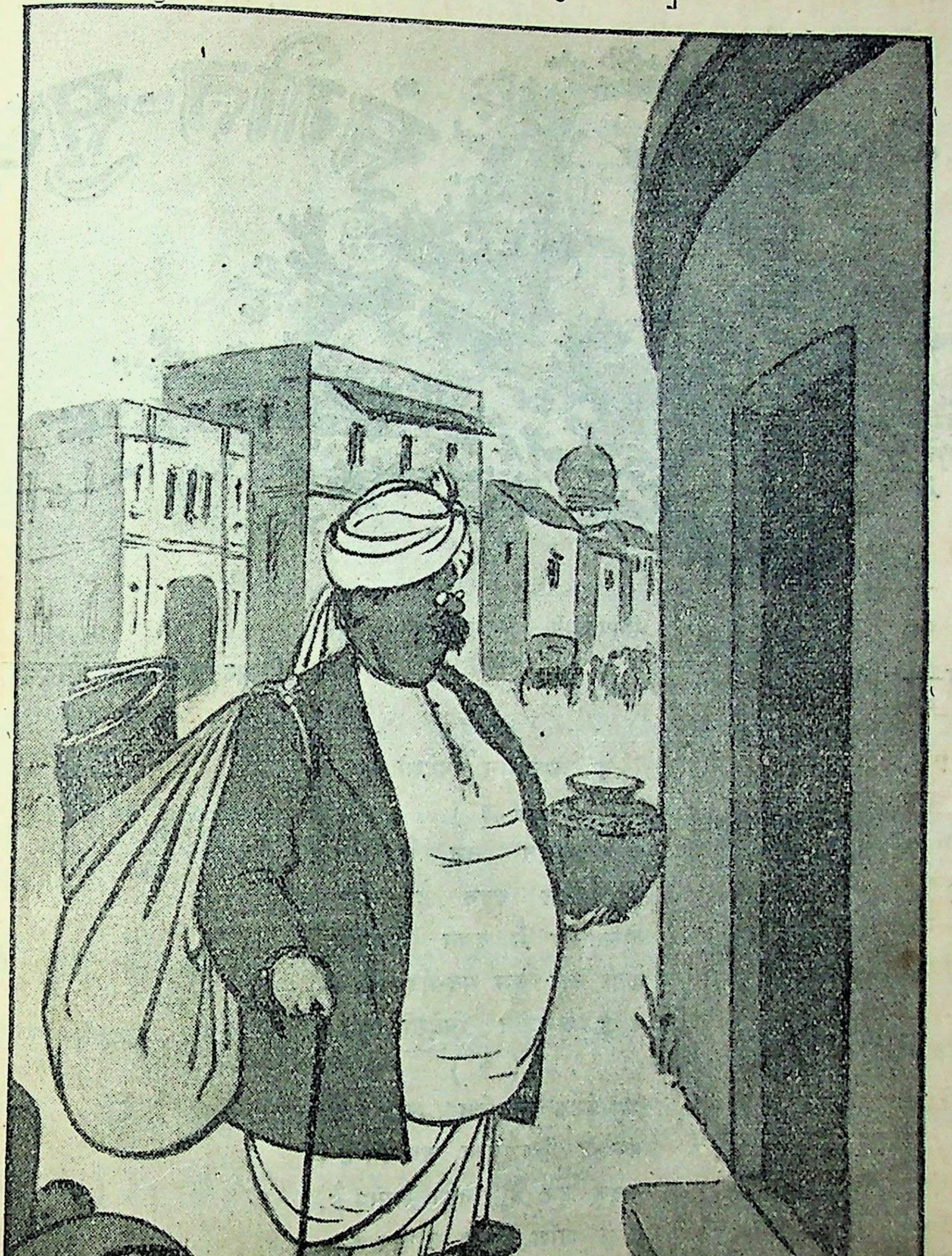
रामभजन—यह सब आपकी कृपा का फल है कि मेरा घर, जो नरक-तुल्य था, इस समय स्वर्ग-तुल्य हो गया है।

संन्यासी ने कहा—यह सब तपस्या का फल है। तपस्या करने से सब कुछ हो सकता है। यह अमोघ औषध है।

विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक

वोट का भिखारी

[चित्रकार—श्रीयुत गुरु स्वामी]



"मैं हूँ सबसे लायक़, फ़ायक़, देश-भक्त, सच्चा नेता ; फर्राटे की स्पीच झाड़कर चकित सभी को कर देता।
यह कर दूँगा, वह कर दूँगा, झगड़-झगड़कर हक़ लूँगा ; वोट दीजिए बस मुझको ही, मैं स्वराज्य दिलवा दूँगा।"



भीमपलासी—तीन ताल, मात्रा १६

स्वरकार—"निषाद"] [शब्दकार—गोविंदवल्लभ पंत

गीत

हे अनजान विदेशी आज।

(१)

धूलि-धूसरित तन है तेरा,
यात्रा-श्रांत वदन है तेरा।
अस्ताचल में डूबत दिनपति,
कहाँ चले तुम मंद-मंद गति—
हे अनजान विदेशी आज।

(२)

पशु-कंटक-परिपूरित मग है,
कर है रिक्त, नग्न तव पग है।
सदन दूर है, निशि समीप है,
ऊपर शशि, नीचे न दीप है—
हे अनजान विदेशी आज।

(३)

मेरे निभृत निलय में आओ,
पावन करो, कृतार्थ बनाओ।
कहना मानो, कहीं न जाओ,
इस रजनी को यहीं बिताओ—
हे अनजान विदेशी आज।

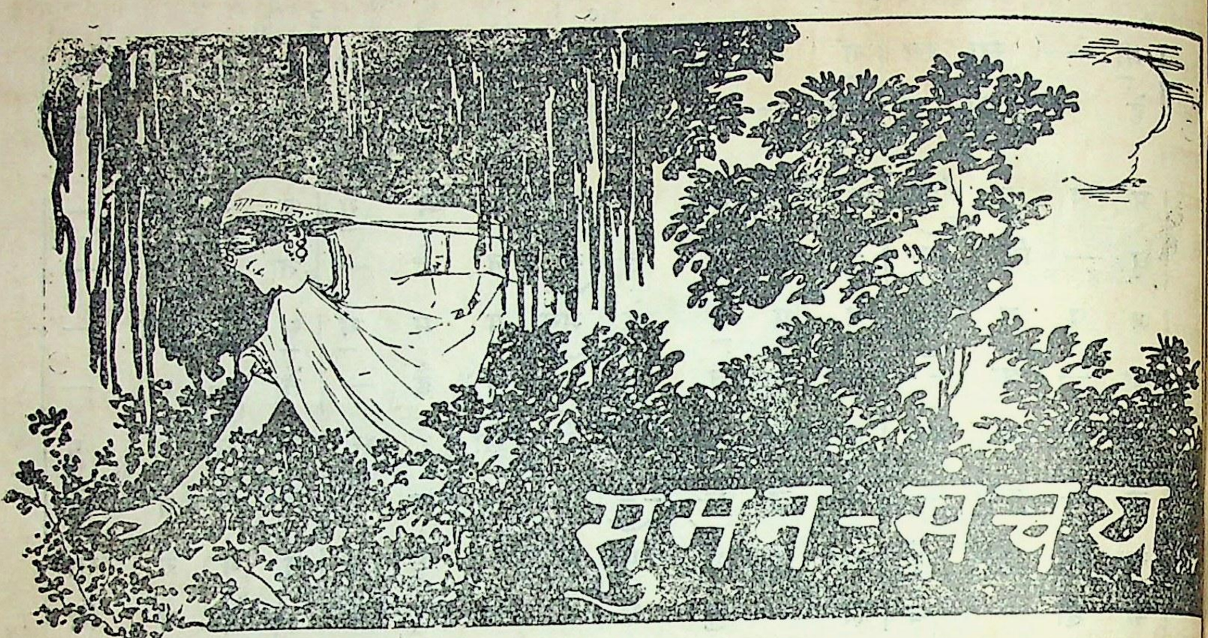
स्थायी

×				२				०				३			
नी	—	सा	सा	ग	—	म	ग	प	—	ध	प	म	ग	रे	सा
हे	—	अ	न	जा	—	न	वि	दे	—	शी	—	आ	—	—	ज

अंतरा

म	प	म	नीध	प	म	ग	रे	मग	प	म	ग	ग	रे	सा	—
धू	—	लि	धू-	—	स	रि	त	त-	न	है	—	ते	—	रा	—
म	प	म	नीध	प	म	ग	रे	मग	प	म	ग	ग	रे	सा	—
या	—	त्रा	--	श्रां	—	त	व	द-	न	है	—	ते	—	रा	—
म	प	ग	म	प	नी	पनी	सांरें	रें	सां	रें	सां	नी	सां	ध	प
अ	—	स्ता	—	च	ल	में-	--	डू	—	ब	त	दि	न	प	ति
सां	नी	सां	रें	सां	नी	ध	प	प	—	ध	प	म	ग	रे	सा
क	हाँ	—	च	ले	—	तु	म	मं	—	द	मं	—	द	ग	ति

नोट—शेष दोनों अंतरे भी इसी प्रकार बजाइए।



१. विचार-स्वातंत्र्य तथा लेखकों और संपादकों का उत्तर-दायित्व

श्रीयुत वियोगी हरि महाशय ने माधुरी वर्ष २, खंड १, संख्या ३ में श्रीमान् जयदेवजी विद्यालंकार के किसी लेख के कुछ अनौचित्य दिखलाते हुए संपादकों के कर्तव्य पर भी अपना मत प्रकट किया है। आपका विचार है कि "महान् आश्चर्य तथा शोक है उन संपादकों पर, जो आँख बंद कर, विना कुछ काट-छाँट किए, ज्यों-के-त्यों ऐसे-ऐसे लेख प्रकाशित कर दिया करते हैं। पत्र-पत्रिकाओं का इसी में गौरव नहीं है कि जैसे-तैसे उनकी पृष्ठ-संख्या बढ़ा दी जाय, और उनके संपादन में अधिक परिश्रम न करना पड़े। अभी कुछ दिन हुए एक सज्जन ने लोकमान्य तिलक को महाशय तिलक लिखा था × × ×। हमें यह देखकर अत्यंत आश्चर्य और शोक होता है कि ऐसे-ऐसे अनुचित प्रयोगों को देख-सुनकर लोग हाथ-पर-हाथ धरे चुप-चाप बैठे हैं!" इस लेख का मुख्य अभिप्राय यह था कि विद्यालंकारजी के "राम जानता था" "सीता... संदेशा भेजती है" आदि वाक्य भगवान् राम एवं महारानी सीता के गौरव के प्रतिकूल हैं। सो संपादक को विना काटे-छाँटे इन्हें न छापना चाहिए था। इन प्रयोगों को आप अनर्गल, अनुचित और अक्षम्य समझते हैं। आपका विचार है कि कोई लेखक भगवान् को चाहे परमेश्वर या देव-तुल्य न माने, किंतु उन्हें 'जी' आदि विशेषणों से विभूषित करके कम-से-कम एक शिष्ट और भले आदमी की तरह तो लिखे।

श्रीयुत वियोगी हरि महाशय के अंतिम विचार ने उनके लेख के औचित्य को बहुत कम कर दिया है। यद्यपि उन्होंने विचार-स्वातंत्र्य की महत्ता को बढ़ी हुई दिखलाकर विचार-संकुचन के दोष को भी कम कर दिया है। हम लोग स्वयं रामचंद्र, वामन कृष्ण आदि को प्रायः भगवान् कहकर इतिहास-ग्रंथों तक में लिखा करते हैं। यद्यपि हम जानते हैं कि यह हमारी कम-ज़ोरी और इतिहास ग्रंथों में ऐसा लिखना इतिहास के गौरव को कम करना है, फिर भी बाल-काल से ऐसा कुछ अभ्यास पड़ गया है कि उक्त महात्माओं के विषय में भगवान् आदि शब्द लिखे विना चित्त प्रसन्न नहीं होता। इसलिये हमारी चित्त-वृत्ति जान-बूझकर हमारे इतिहास-ग्रंथ के गौरव को कम करने के लिये हमें बाधित करती है। ऐसी चित्त-वृत्ति हमारी मानसिक उन्नति अथवा अवनति का एक चिह्न है, और इतना अधिकार किसी संपादक को नहीं है कि अपने

मानसिक उन्नति पर भरोसा करके हमारे ही लेखों से हमारी इस चित्त-वृत्ति का चिह्न उठा दे। यदि कोई संपादक हमारे लेखों पर अपने व्यक्तित्व का इतना प्रभाव डालने का साहस करे, तो उसी क्षण से हमारा-उसका लेखक-संपादक का संबंध सदा के लिये छूट जाय। वह पुरुष लेखक नहीं, वरन् रंक है, जो संपादकों से अपने व्यक्तित्व के मिटाने की भिक्षा माँगे। इससे बड़ा किसी लेखक का क्या अपमान हो सकता है कि कोई दूसरा उसके लेखों को इस तरह शुद्ध करके छापे। हमें दृढ़ आशा है कि वियोगी हरिजी भी अपने लेखों पर दूसरों का इतना बड़ा प्रभुत्व न सहन कर सकेंगे। यदि वह भगवान् रामचंद्र को महत्ता-सूचक शब्दों के साथ लिखते, और कोई संपादक उन्हें काट-छाँटकर वैसा लिखता, जैसा विद्यालंकारजी ने लिखा है, तो वियोगी हरिजी को कैसा लगता ? एक पुराना कथन है कि अपने पड़ोसी के साथ वैसा ही बर्ताव करो, जैसा कि अपने साथ होना सह्य हो। हमारे कुछ वर्तमान हिंदी-लेखकों में ऐसा ही विचार-संकुचन प्रायः पाया जाता है। अपनी आँख की धन्नी उन्हें नहीं देख पड़ती; किंतु दूसरों का तिल भी देखकर वे उछल-कूद मचाया करते हैं। अपने मन में उन्होंने एक बात दृढ़ कर ली। वह अच्छी भी सही, लेकिन दूसरे लोग उससे प्रतिकूल बात को अच्छी मान सकते हैं। संसार में ऐसे अनेक कारण हुआ करते और विचार-कोणों के पार्थक्य रहते हैं कि एक ही बात कुछ लोगों को बहुत बुरी और कुछको अच्छी प्रतीत होती है। दक्षिण आफ्रिका में भारतीयों की आज जो दशा है, उस पर डॉक्टर सप्रू और जनरल स्मट्स के व्याख्यान पढ़ने से इस विषय का एक अच्छा उदाहरण मिल सकता है। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति को अँगरेज़ी की इस किंवदंती पर ध्यान रखना चाहिए कि जियो और जीने दो (live and let live)। तात्पर्य यह कि संसार अंधों का हाथी है। इसमें सभी कुछ वर्तमान है। वह जगत्पिता गो-रक्षक और गो-भक्षक, दोनों का सम-भाव से पालन-पोषण करता है। सबसे बड़ा उदाहरण उसी परमात्मा का मानना चाहिए।

फिर अँगरेज़ी लेखन-शैली में ऐतिहासिक पुरुषों के वर्णन में मिस्टर, महाशय, तथा जी आदि सम्मान-सूचक शब्द लिखने की रीति नहीं है। ये बातें वर्तमान समय के ही लोगों के विषय में लिखी जाती हैं। कोई अँगरेज़ मिस्टर शेक्सपियर या मिल्टन स्क्वायर न लिखेगा; और यदि कोई ऐसा लिखे भी, तो वह मूर्ख समझा जायगा। अपने यहाँ भी कुछ ऐसी ही रीति है। मांधाता, हरिश्चंद्र, भगीरथ आदि के विषय में जी आदि शब्दों का व्यवहार करते हुए हमने बहुतों को नहीं देखा। संस्कृत में वाल्मीकि आदि महाकवि राम को सीधा-सादा 'राम' ही लिखते हैं। अन्य संस्कृत-कवियों में भी प्रायः यही व्यवहार पाया जाता है। हिंदी के प्राचीन-विचाराश्रयी लेखकगण राम आदि के विषय में जी आदि अवश्य लिखते हैं, और उनके विषय में सम्मान-सूचक बहुवचन का प्रयोग आवश्यक समझते हैं, किंतु स्मरण रखना चाहिए कि यह नियम ऐतिहासिक पुरुषों के लिये लागू नहीं है। यदि हम कहें कि सप्रू ऐसा कहता है, तो हमारा कथन अवश्य अनुचित है, किंतु राम-कृष्ण आदि के ऐतिहासिक पुरुष होने के कारण उनके विषय में ऐसे प्रयोग अवश्य उचित हैं। कोई कारण नहीं है कि जो लोग हिंदी में एक प्रकार का प्रयोग करते हों, वे दूसरे प्रकार के प्रयोग करनेवालों पर अपना आतंक जमाने का प्रयत्न करें। ऐसी-ऐसी क्षुद्र बातों पर इतना सोचना और क्रोध प्रकट करना विचार-संकुचन का ही उदाहरण समझा जाता है।

रही तिलक महाशय की बात। सो यह 'ग़लती' हमीं लोगों से हुई थी। उन्हें प्रायः लोग लोक-मान्य कहते हैं, किंतु हम उन्हें महाशय कहना शुद्धता समझते हैं। लोक एक बहुत बड़ा पदार्थ है। वह केवल भारत के कुछ लेखकों में सीमा-बद्ध नहीं है। इसी लोक में ऐसे लोग भी हैं, जो उन महाशय का पूरा अपमान कर चुके हैं। हम उन्हें लोक-मान्य न समझकर महान् आशय से पूर्ण व्यक्ति-मात्र समझते हैं। भारत में ऐसे लोग भी हो चुके हैं, जिन्होंने मंसूर को अद्वैत-वाद का सिद्धांत-मात्र प्रकट करने के अपराध में सूली की सज़ा दी थी। जो लोग अब भी वैसे ही बादशाहों के बराबर विचार-संकुचन के उदाहरण दिखलाना पसंद करें, वे अपनी क्षुद्रता भले ही दिखलाया करें, किंतु उन्हें इस स्वाधीन युग में दूसरों के विचारों में दास-कल्प के प्रभाव डालने का कोई अधिकार नहीं है।

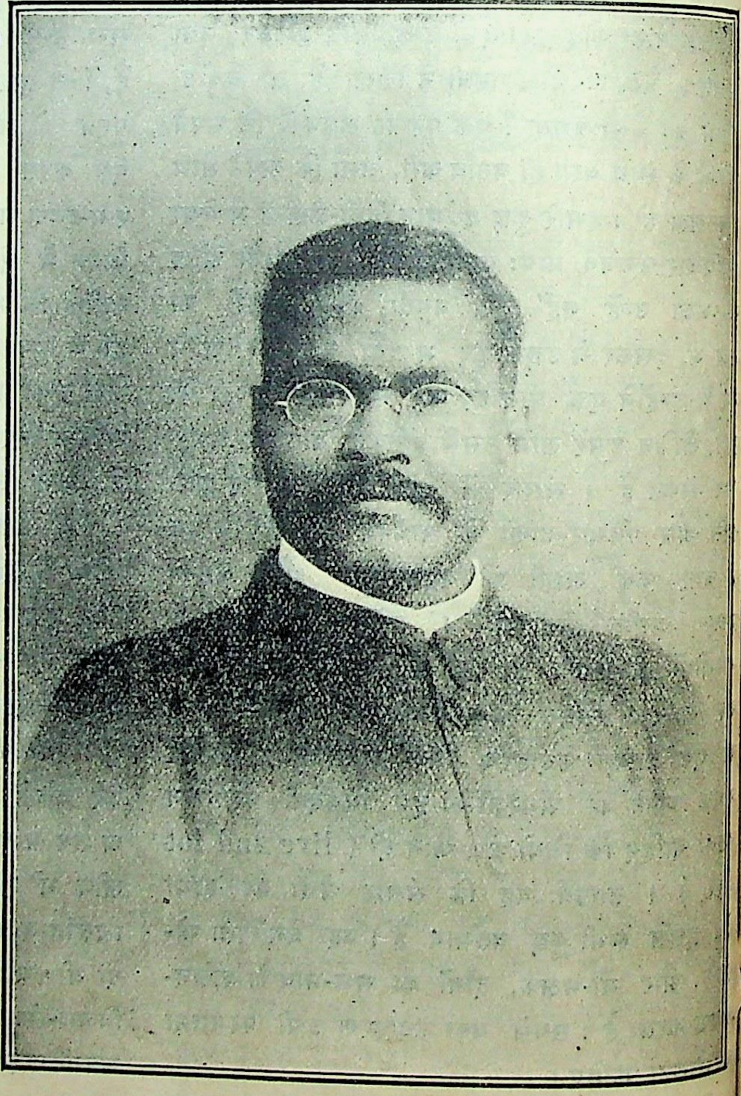
फिर यदि यह मान भी लिया जाय कि प्रत्येक मनुष्य को महात्मा गांधी, तिलक, नेहरू आदि नेताओं को पूज्यदृष्टि से देखना चाहिए, तो जो बहुतेरे लोग सरकारी नौकरी करते हैं, और 'सब तज हर भज' का उच्च उदाहरण कई कारणों से नहीं दिखला सकते, उन लोगों को क्या किसी भी विषय पर कुछ न लिखना चाहिए ? बहुतेरे लोग राज-विद्रोहियों के प्रति वास्तविक श्रद्धा रखते हुए भी केवल भय से उसे प्रकट नहीं कर सकते। बहुतेरे वास्तविक राजभक्ति रखते हैं, और बहुतेरे नरम-दल के अनुयायी होने के कारण गरम-दलवालों पर उतनी श्रद्धा वास्तव में नहीं रखते, जितनी कुछ अन्य लोग रखते हैं। फिर बहुतेरे लोग लोक-मान्य-जैसी भारी उपाधि साधारणतः किसी को भी देना पसंद नहीं करते। तिलक महाशय का लोक-मान्य कहना या न कहना केवल सामाजिक प्रश्न नहीं, वरन् राजनीतिक प्रश्न भी है। इस बात का निर्णय करना सुगम नहीं है कि किस व्यक्ति के कैसे विचार होने चाहिए, या उसकी कैसी दशा है। अतएव किसी विवाद-ग्रस्त महत्त्व-पूर्ण प्रश्न को स्वयं-सिद्ध न मानना चाहिए। हम यह नहीं कहते कि उन महाशय को कोई लोक-मान्य न लिखे। परंतु, हम उन्हें महाशय-मात्र समझते हैं। बस हो चुका। यह कोई स्वयं-सिद्ध विषय नहीं है। वही "जियो और जीने दो" की बात है। यदि आप किसी अन्य को नहीं जीने देना चाहते, तो भी वह जिएगा, आप भले ही कपड़े फाड़ा कीजिए। सारांश यह कि अपने लेखों के हम उत्तर-दाता हैं, न कि हमारे संपादक।

श्यामविहारी मिश्र
शुकदेवविहारी मिश्र

× × ×

२. श्रीयोगेंद्रनाथ समाद्दार

देवनागरी की वर्ण-माला तथा सर्व-गुणागरी हिंदी की सुगमता तथा सुंदरता को देखकर महाराष्ट्र-विद्वानों ने अपनी मातृ-भाषा मराठी की पुस्तकें देवनागराक्षरों में छपवाने का कार्य बहुत दिन पहले ही से प्रारंभ कर दिया है। उन्होंने हिंदी-भाषा की पूर्ण प्रतिष्ठा करने की भी उदारता दिखलाई है। बहुत-से महाराष्ट्र-विद्वानों ने हिंदी में ग्रंथ लिखना और अनुवाद करना भी शुरू कर दिया है। श्रीयुत पंडित माधवराव सप्रे बी० ए० ने लोक-मान्य तिलक-रचित गीता-दर्शन का हिंदी-अनुवाद करके हिंदी-प्रेमियों का महान् उपकार किया है। महाभारत-मीमांसा का भी हिंदी-अनुवाद आपने ही किया है। इसके अतिरिक्त आपने 'सरस्वती' आदि पत्रों में सैकड़ों हिंदी के लेख लिखे हैं। और भी बहुत-से महाराष्ट्र-विद्वान् हिंदी



प्रोफ़ेसर योगेंद्रनाथ समाद्दार

में ग्रंथ लिखते हैं। कुछ लोगों ने तो हिंदी में कविता करने का भी प्रयास किया है। संसार-पूज्य महात्मा गाँधी हिंदी-भाषा की सुगमता पर ऐसे मुग्ध हो गए कि उन्होंने मदरास-प्रांत में हिंदी का प्रचार करने के लिये हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का ध्यान आकर्षित किया। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने सुपुत्र को भी वहाँ इस कार्य के लिये भेज दिया। उनकी व्यवस्था के अनुसार वहाँ अनेक शिक्षक तथा उपदेशक भेजे गए। कई वर्ष के निरंतर उद्योग से अब वहाँ पर भी हिंदी पर अनुराग उत्पन्न हो गया है, और हिंदी-प्रचार का कार्य सुचारु रूप से हो रहा है। कविवर गोविंदगिल्ला भाई गुजराती होकर भी व्रज-भाषा में बड़ी अच्छी कविता करते हैं। आप व्रज-भाषा में कई ग्रंथ लिखकर प्रकाशित भी करा चुके हैं। लोक-मान्य तिलक भी अपने पत्र 'केसरी' में हिंदी का एक कॉलम देते थे। महात्मा गाँधी का तो यह विश्वास है कि हिंदी-भाषा ही राष्ट्र-भाषा बनने के योग्य है। इसीलिये उन्होंने मदरास-प्रांत में हिंदी-प्रचार का इतना उद्योग किया। परंतु खेद के साथ लिखना पड़ता है कि कलकत्ता-हाईकोर्ट के जज स्वर्गीय शारदाचरण मित्र, स्वर्गीय बाबू नवीनचंद्र राय और श्रीअमृतलाल चक्रवर्ती आदि इने-गिने विद्वानों के अतिरिक्त दूसरे बंगाली विद्वानों ने अभी तक हिंदी को नहीं अपनाया है।

आज हम जिन उदार गुण-ग्राही सज्जन पुरुष का परिचय दे रहे हैं, वह बंगाली होने पर भी हिंदी के बड़े ही प्रेमी और उपकारी हैं। आपका नाम है श्रीयोगेंद्र-नाथ समाद्दार। आप पटना-कॉलेज में इतिहास के अध्यापक (प्रोफ़ेसर) हैं, बी० ए० और एम्० ए० क्लासों में इतिहास पढ़ाते हैं। आपने अपने इतिहास-संबंधी गंभीर गवेषणा-पूर्ण विचारों से बड़े-बड़े इतिहासज्ञों को आश्चर्य में डाल दिया है। इतिहास के प्रखर पांडित्य के कारण ही बंगाल और बिहार के शिक्षा-विभाग में आपका बड़ा नाम है। सभी विद्वानों और छात्रों की जिह्वा पर आपका नाम बड़ी श्रद्धा और प्रीति से विराजमान हो रहा है। आपके पढ़ाने का ढंग भी बहुत ही सुंदर है। आपके पढ़ाए हुए छात्र परीक्षाओं में अवश्य ही उत्तीर्ण होते हैं। आपका छात्रों के प्रति दया-पूर्ण व्यवहार परम प्रशंसनीय है। आपके हृदय में बंगाली और बिहारी का भेद लेश-मात्र नहीं है। आप सदा प्रसन्न-मुख रहा करते हैं।

किंतु हम तो सबसे अधिक आपके हिंदी-प्रेम ही की विशेष प्रशंसा करेंगे। आप केवल हिंदी के प्रति प्रीति ही नहीं रखते, हिंदी-लेखक होने का भी प्रयास कर रहे हैं। आपके हिंदी-लेख 'पाटलिपुत्र', 'बिहार-बंधु' आदि बिहार के कई प्रसिद्ध पत्रों में छप चुके हैं। आपके सभी लेख ऐतिहासिक हुआ करते हैं। आप जब कभी इतिहास की नई बात पा जाते हैं, तब उसे सर्व-साधारण में प्रचारित करने का प्रबल प्रयत्न करते हैं। कई संस्थाओं में आपके ऐतिहासिक व्याख्यान भी हो चुके हैं, और तात्कालिक बिहार के लाटों ने भी आपके व्याख्यानों की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। हमने कई बार आपके व्याख्यानों में बिहार के भूत-पूर्व लाट श्रीमान् गेट साहब को सम्मिलित होते खुद देखा, और उनके मुख से सानंद आपकी प्रशंसा सुनी है। आप अँगरेज़ी और बँगला के अच्छे लेखकों में हैं। आप बँगला और अँगरेज़ी में इतिहास-संबंधी कई ग्रंथ लिखकर प्रकाशित कर चुके हैं। अब हिंदी ही की ओर आपका विशेष झुकाव है।

समाद्दार बाबू का हिंदी-प्रेम दिन-दूनी रात-चौगुनी गति से वृद्धि कर रहा है। आपको अब केवल लेख लिखने से ही संतोष नहीं होता। अब आपने ग्रंथ लिखने में हाथ लगाया है। अभी आपने हिंदी में एक पुस्तक लिखकर प्रकाशित कराई है। उसका नाम है 'चतुर्वेद'। उसमें उपदेश-पूर्ण, वैराग्योद्दीपक चार कहानियाँ हैं। कहानियों में ज्ञान तथा विराग-भरी ऐसी-ऐसी बातें हैं, जिनके पढ़ने से मनुष्य का हृदय शांति तथा विरक्ति से परिपूर्ण हो जाता है। हिंदी में उपदेश-पूर्ण कहानियाँ लिखकर समाद्दार बाबू ने दूसरे बंगाली विद्वानों के समक्ष एक आदर्श भी उपस्थित कर दिया है। इस पुस्तक में संन्यास, निर्वाक् नल, आत्मोत्सर्ग और जीवन्मुक्ति नाम की चार कहानियाँ हैं। जीवन्मुक्ति तो एक प्रकार से बुद्धदेव ही की कहानी समझी जायगी; क्योंकि इस कथा के नायक गौतम हैं। इसमें बौद्ध-धर्म के हज़ारों उपदेश भरे पड़े हैं। अन्य कहानियों में भी बौद्ध-धर्म से संबंध रखनेवाले उपदेशों ही की भरमार है। ग्रंथ पढ़ने योग्य है। इस ग्रंथ को देखकर यह कोई नहीं कह सकता कि इस ग्रंथ के लेखक कोई बंगाली महाशय हैं।

अंत में समाद्दार बाबू से हमारा यही अनुरोध है कि आप हिंदी-भाषा में इतिहास का एक ऐसा ग्रंथ लिखें,

जिसमें वैदिक काल के भारतवर्ष की अवस्था का चित्रण हो। वैदिक काल का इतिहास अभी तक अंधकार में पड़ा हुआ है। आशा है, आप हमारे अनुरोध को सहर्ष स्वीकार कर लेखनी उठावेंगे। *

अक्षयवट मिश्र (विप्रचंद)

× × ×

३. आंतरिक वेदना

प्रभु ! इस नीरव अर्द्ध निशा में मुझे रहा है कौन पुकार ?
किसकी नीरव वाणी होती मेरे अंतस्तल के पार ?
किसका है यह प्रेम, अभी जो मुझे कर रहा निपट अधीर,
बना रहा है प्रभुवर, मेरे चंचल मन को अति गंभीर ?
नभोदेश से तारे ये कर रहे इशारा मेरी ओर ;
उनका दर्शन मुझे अचानक करता है आनंद-विभोर।
मंद पवन कानों में आ-आ कहती है कोई संवाद ;
जिससे दूर हुआ जाता है मेरे मन का जड़ अवसाद।
प्रभुवर, निकलूँ घर से कैसे, जाऊँ मैं अब किसके पास ?
नाम नहीं है ज्ञात किसी का, नहीं मार्ग में तनिक प्रकाश।
यह निश्चय है, अब तो मेरी हुई कुटी यह जरा-अधीन ;
बना दिया ऋतुओं ने इसको अतिशय भग्न और प्राचीन।
इच्छा तो होती है मेरी, कर दूँ मैं अब इसका त्याग ;
निर्बल हूँ, पर नहीं तनिक भी मुझमें सत् के प्रति अनुराग।
विविध वासनाओं ने इस पर जमा लिया अनुचित अधिकार ;
दूर भगाओ इन्हें दया करके हे जीवन, जगदाधार !

मनोहरप्रसाद मिश्र

× × ×

४. साहित्य के चोर

विना दी हुई किसी की किसी वस्तु को ले लेना चोरी है। चोरी करना बुरा है। इस अपकृत्य के लिये ब्रिटिश-शासन में ही नहीं, इतिहास के अति प्राचीन काल में भी दंड का विधान था।

किसी भी वस्तु के मूल्य, प्राचीनता और उत्तमता आदि के लिहाज़ से कहना होगा कि साहित्य-रचना ही विशेष मूल्यवान्, स्थायी और एक जगत् की हित-साधक वस्तु है। इसमें अमरत्व का अंश विद्यमान है। मनुष्य-कृत स्थायी कार्यों में यही साहित्य—उसके रचित ग्रंथ—विशेष स्थायी हैं। कालांतर में मंदिर, महल आदि के खँड़हर हो जाते हैं, मनुष्य-शरीर भी नष्ट हो जाता है; पर मनुष्य-रचित पुस्तकें जीवित रहती हैं। ग्रंथ-निर्माता की मृत्यु हो जाने पर स्थूल देह का नाश हो जाता है; पर उसके अनुभव, ज्ञान और उपदेश के समूह-रूप उसकी ग्रंथ-प्रतिमाएँ चिरकाल तक जीवित रहती हैं। सैकड़ों वर्ष बीत जाने पर भी रचयिता के विचार वैसे ही ताज़े बने रहते हैं, जैसे वे रचना-काल में थे।

ऐसी बहु-मूल्य वस्तु—ग्रंथ-रत्नों—की चोरी का लोभ सँभालना आज जैसा कठिन है, वैसा ही पुरातन काल में भी था। आज जिस प्रकार एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करके ही अनुवादक महाशय मूल-रचयिता की रचना के मालिक बन बैठने की धृष्टता कर बैठते हैं, अर्थात् मूल-लेखक के नाम तक को भी उड़ा देते हैं (इतना ही नहीं, इस चोरी की कला में और भी कई प्रकार की चालाकियाँ खेली जाती हैं। मूल-पुस्तक एक भाषा में है, उससे अनुवाद हुआ दूसरी भाषा में; अब इस दूसरी भाषा से तीसरी भाषा में अनुवादित पुस्तक पर अनुवादक महाशय लिख मारेंगे 'अमुक भाषा की अमुक (मूल) पुस्तक से अनुवादित।') उसी प्रकार पुराने ज़माने में भी लोग करते थे।

श्रीसोमदेव सूरि ने कहा है—

"कृत्वा कृतीः पूर्वकृताः पुरस्तात् प्रत्यादरं ताः पुनरीक्षमाणः।
तथैव जल्पेदथ योऽन्यथा वा स काव्यचौरोऽस्तु च पातकी च।"

कवि के भावों से जान पड़ता है कि इन विलक्षण चोरों का वर्णन उन्होंने बड़े दुःख के साथ किया है। विशेष दुःख तो इस बात का है कि इन चोरों के लिये समुचित दंड का विधान न तो पहले ज़माने में ही बन पड़ा, और न इस ज़माने में ही। श्रीसोमदेव सूरि ने छोटे-से श्लोक में इन चोरों की चालाकी का भी वर्णन कर दिया है। उन्होंने इस अपकृत्य के करनेवाले को चोर ही नहीं कहा, वरन् उसके लिये पातकी-विशेषण का भी उपयोग किया है।

वास्तव में बुरा काम करनेवाले सभी पातकी हैं। चोरी भी एक बुरा काम है, अतः उसका करनेवाला भी पातकी ही है। यद्यपि इस तरह चोर का पातकीपन 'चोर'-शब्द ही से व्यक्त है, तथापि चोर के सिवा

* हर्ष की बात है कि समाद्दार महाशय ने माधुरी में लिखने का वादा किया है।—संपादक

'पातकी'-शब्द का व्यवहार किया गया। इससे इन चोरों के लिये कवि का और भी अधिक घृणित भाव प्रकट होता है।

मोहनलाल बड़जात्या

× × ×

५. उलाहना-पंचक

हिम-गिरि

गर नहीं जीने के क़ाबिल हम रहे,
तो ढहाकर शृंग, हिम-गिरि, दे दबा।
शत्रु अथवा जो हमारे हों यहाँ,
पेट में अपने उन्हें तू ले दबा।

गंगा

तारीफ़ सुनते हैं तुम्हारी हम बहुत,
सार्थक करतीं नहीं क्यों नाम को?
मात गंगे! पाप-अरि को दो बहा,
शुद्ध कर दो हिंद के हुक्काम को।

हिंद-सागर

हिंद-सागर! तुम हमारे गार्ड * थे,
हाय, की तुमने मगर कैसी दग़ा?
जब घुसा था शत्रु छाती चीरकर,
टाँग धर पाताल को देते भगा।

भरत-भूमि

वीर-प्रसवा तू भरत की भूमि है,
नाम को कैसा दबा तूने दिया!
सुत दुखी, पर हैं विरोधी सब सुखी,
देख तू ख़ुद खोल आँखें, क्या किया!

विश्व-रक्षक

विश्व-रक्षक! क्या नहीं हम विश्व में?
क्यों नहीं देते हमें हो तुम स्वराज?
ग़ैर हैं आज़ाद, घर में हम ग़ुलाम,
क्या यही इंसाफ़ है बंदहनवाज़ †?

सैयद अमीरअली 'मीर'

× × ×

६. प्यार

प्यारे प्यार, जब से तूने हृदय में वास किया, आत्मा जग उठी, मन मौज में रम गया, और संसार सुंदर हो गया। जो नहीं देख पड़ता था, वह दिखाई देने लगा। बस, अब तुझे ही देखने की अभिलाषा बाक़ी रही है।

मद्य और मादक पदार्थों से मुझे घृणा है। मुझे भय है कि कहीं तुझमें उसका संपुट तो नहीं है। मद में मत्त पुरुष को मैंने जैसे झूमता देखा है, तेरी लहर मन में आते ही वही हाल मेरा हो जाता है। लाख रोकने पर भी मैं असंबद्ध—असंयत—हो उठता हूँ, हज़ार सावधानता रखने पर भी मूर्ख बन जाता हूँ।

आँखों से अधिक प्यारी चीज़ जगत् में क्या है? सुना है, तू अंधा है। तब तू सौंदर्य की ऐसी अमोघ परीक्षा कैसे कर लेता है? तू स्वयं ही अनिंद्य-सुंदर कैसे बना हुआ है? जगत् का सौंदर्य क्या देखकर तुझ पर रीझ जाता है? आश्चर्य है! और, सुना है, तू अंधों को दिखाई देता है। इतना तो मैं भी कह सकता हूँ कि जब तेरी लहर आती है, तब मुझे कम देख पड़ने लगता है। अँधेरा-उजाला, नर्म-सख़्त, नीचा-ऊँचा ठीक-ठीक नहीं मालूम देता। सब एक-सा हो जाता है। मुझे भय है, सच कह, क्या तुझमें मद का संपुट है? जो ऐसा हो, तो तू चाहे जितना प्यारा क्यों न हो, मैं तुझे न चाहूँगा। खेद है कि मुझे मद से घृणा है।

श्रीचतुरसेन वैद्यशास्त्री

× × ×

७. क्या बौद्ध लोग हिंदू नहीं हैं?

माधुरी की गत संख्या में बौद्ध धर्म-ग्रंथों से प्रमाण देते हुए हमने लिखा था कि बौद्ध लोग वास्तव में हिंदू ही हैं। अब इस नोट में हम कुछ प्रमाण देकर अपने कथन की पुष्टि करते हैं।

बौद्ध-सभ्यता हिंदू-सभ्यता से न्यारी नहीं है; क्योंकि बौद्ध-सभ्यता की जड़ें हिंदू-धर्म और हिंदू-परंपरा में ही जमी हुई हैं। बौद्धों के इतिहास और साहित्य में ऐसी अनेक बातें मिलती हैं, जिनमें अन्य हिंदुओं के इतिहास और साहित्य से बड़ी समता पाई जाती है। यह समता ऐसी है कि यदि इसे भली भाँति समझा जाय, तो बौद्धों के हिंदू-धर्मावलंबी होने में तनिक भी संदेह न रह जायगा। इसी समता के कुछ उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं।

१. बौद्धों के यहाँ ब्राह्मणों का सम्मान। हमने यह मान लिया कि बौद्धों के यहाँ क्षत्रिय-वर्ण को

* रक्षक (Guard)। † भक्त-वत्सल।

ब्राह्मण-वर्ण से प्रधानता दी गई है; परंतु साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि प्रायः सभी हिंदुओं की भाँति उनके यहाँ भी ब्राह्मणों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता रहा है। उनके धर्म-ग्रंथों और प्राचीन लेखों में अनेक स्थलों पर सम्मान-पूर्वक श्रमण (बौद्ध साधु) नाम के साथ ही ब्राह्मण-नाम का उल्लेख मिलता है। यहाँ तक कि कहीं-कहीं तो दोनों नाम मिलकर मानो एक ही शब्द 'श्रमण-ब्राह्मण' या 'ब्राह्मण-श्रमण' बन गए हैं। अनेक ब्राह्मण बौद्ध-धर्म के नामी आचार्य भी हुए हैं। महात्मा बुद्धघोष, जिन्होंने बौद्ध-संप्रदाय के सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'विसुद्धि मग्ग' (विशुद्धि मार्ग) की रचना की, और सन् ४२० ई० के आस-पास भारतवर्ष से लंका (सिंहल-द्वीप) जाकर 'त्रिपिटक' के सिंहलीय भाष्य का फिर से पाली-भाषा में उलथा किया (क्योंकि पाली का क्षेपक-रहित आदि-संस्करण भारतवर्ष से प्रायः लुप्त हो चुका था), मगध-देश (आधुनिक बिहार-प्रांत) के रहनेवाले एक ब्राह्मण ही थे।*

ब्राह्मणों में भी वेद-पाठी ब्राह्मण का नाम बौद्ध-ग्रंथों में अधिक सम्मान के साथ लिया जाता रहा है। यहाँ तक कि 'जातक'-ग्रंथ की भूमिका में स्वयं बुद्ध भगवान् के मुँह से यह कहलाया गया है कि "हज़ारों वर्ष व्यतीत हुए, तब हम अपने एक पूर्व-जन्म में 'सुमेधा'-नामक तीनों वेदों के जाननेवाले एक ब्राह्मण थे, और तभी हमने पहले-पहल बुद्धता की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने का संकल्प किया था।"

२. बौद्धों के यहाँ ब्राह्मणों की पंडिताई और पुरोहिताई। जिस भाँति सभी अन्य संप्रदायों के हिंदुओं के यहाँ पांडिताई और पुरोहिताई प्रायः ब्राह्मणों ही की रही है, उसी भाँति बौद्धों के यहाँ भी, केवल भारतवर्ष ही में नहीं, अन्य देशों में भी, जब तक ब्राह्मण मिल सके, तब तक पंडिताई और पुरोहिताई प्रायः ब्राह्मणों ही की रही है। जैसे—

(क) सन् १८२१ ई० में बर्मा के तत्कालीन राजा बाग्यीडा ने अपने देश का एक बृहत् इतिहास लिखवाया था। उस इतिहास का अँगरेज़ी-भाषांतर—"The Glass Palace Chronicle of the Kings of Burma"—अभी ऑक्सफ़र्ड-युनिवर्सिटी-प्रेस से निकला है। उसके देखने से ज्ञात होता है कि विद्वान् साधुओं, ब्राह्मणों और राज-मंत्रियों से खोज कराकर यह इतिहास तैयार कराया गया था।

(ख) बर्मा से भी आगे स्याम-देश एक स्वाधीन बौद्ध-देश है। वहाँ के राजे भी अनेक शताब्दियों से बौद्ध-धर्मावलंबी रहे हैं। यद्यपि ब्राह्मणों का वहाँ अभाव-सा ही है, तथापि स्याम-नरेश अपने यहाँ, अपने पूर्वजों की भाँति, आज तक ब्राह्मण-पंडित और पुजारी रक्खे हुए हैं, जिनसे जन्मोत्सव, विवाहोत्सव और राज-तिलकोत्सव आदि के समय प्रायः वही काम लिया जाता है, जो पंडितों, पुरोहितों और पुजारियों से भारतवर्ष में लिया जाता रहा, और आज तक लिया जाता है।*

३. राम-भक्त बौद्ध। हिंदुओं की भाँति बौद्धों में भी राम-भक्त हुए हैं। लंका के सिंहल(सिंगर)-वंशीय महाराज कुमारदास (५१५-५२४ ई०) तो भगवान् रामचंद्र के ऐसे अनन्य भक्त थे कि उन्होंने स्वयं सिंहलीय भाषा के सुप्रसिद्ध काव्य-ग्रंथ 'जानकी-हरण' की रचना करके अपनी कवित्व-शक्ति तथा राम-पद-भक्ति का परिचय दिया था। इसी भाँति तिब्बत और स्याम के बौद्ध-प्रधान देशों में भी वहाँ की भाषाओं में आज तक रामायण के संस्करण विद्यमान हैं।†

४. बौद्धों में श्राद्ध। श्राद्ध करने की प्रथा जैसी आज तक अन्य हिंदुओं में है, वैसी ही बौद्धों में भी रही है। एक बार महाराज बिंबिसार को स्वयं बुद्ध भगवान् ने श्राद्ध करने का उपदेश दिया था, जिसमें उन्होंने ब्राह्मण (और श्रमण)-भोजन के फल का दान उन मृत बंधुओं की आत्माओं का आह्वान करके दिलाया था, जिनके उद्देश्य से श्राद्ध किया गया था।‡

५. बौद्ध-देशों की वर्णमालाएँ, भाषाएँ और साहित्य। चीन और जापान को छोड़कर शेष सभी

* देखो, ब्लाजे-कृत 'हिस्ट्री ऑफ़ सिलोन'।

* देखो, इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका ९-१०वीं आवृत्ति और ३०-१२-१९११ ई० के प्रयाग के 'पायनियर'-पत्र में, स्याम-नरेश के राज-तिलकोत्सव का वृत्तांत।

† देखो, इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, 'महावंश' और ब्लाजे-कृत हिस्ट्री ऑफ़ सिलोन।

‡ देखो, 'बुद्धदेव', मनोरंजन पुस्तक-माला, पृष्ठ २३५।

बौद्ध-देशों की वर्णमालाओं और भाषाओं का भारत की प्राचीन वर्णमाला और भाषा से घनिष्ठ संबंध है । सिंहल-द्वीप (लंका) की वर्णमाला और भाषा बुद्ध भगवान् के समकालीन भारतवर्ष की प्राचीन भाषा पाली से बहुत मिलती हुई है । तिब्बत की वर्णमाला (अ, इ, उ, ए, ओ स्वर, और क, ख, ग, घ आदि ३० व्यंजन) संस्कृत से प्रायः उसी भाँति ली हुई है, जिस भाँति बँगला आदि भारतीय भाषाओं की वर्णमालाएँ । मंगोलियनों में एक शाक्य पंडित ने (यह नाम ध्यान देने के योग्य है) १६४८ ई० से एक नई वर्णमाला बना डाली, तो भी उन लोगों में आज तक संस्कृत और तिब्बतीय भाषाओं के शब्दों को लिखने के लिये उक्त दोनों भाषाओं की वर्णमालाओं से मिलती हुई एक पुरानी वर्णमाला और भी प्रचलित है । मध्य-एशिया और मंगोलिया के बौद्धों के यहाँ 'बैतालपचीसी' (वेताल-पंचविंशतिका) के संस्करण आज तक मिलते और पढ़े जाते हैं । स्याम-देश के विषय में वहाँ की तीन पुस्तकों का नाम लिख देना ही पर्याप्त होगा—१. सुफासित (सुभाषित), २. सॉमन खोदम (श्रमण गोतम), ३. वॅत्त-चिंदामणि (वृत्त-चिंतामणि) । ये नाम कितने परिचित और हिंदू-समाज के कानों को सुहावने लगनेवाले हैं ? लंका, तिब्बत और स्याम-देशों की रामायणों का उल्लेख हम ऊपर कर ही चुके हैं । लंका, स्याम और बर्मा के बौद्ध-साधुओं में आज तक हमारे देश की पुरानी भाषा पाली का अच्छा प्रचार है ।

ऐसा कोई हिंदू न होगा, जिसे श्रीमद्भगवद्गीता को श्रद्धा-पूर्वक अपनाने में हिचकिचाहट हो । परंतु श्रीकृष्ण भगवान् के गीतांतर्गत उपदेशों और बुद्ध भगवान् के उपदेशों में भी इतना सादृश्य है कि उसे अवलोकन करके चकित होना पड़ता है । बुद्धदेव-नामक पुस्तक के पृष्ठ २३० में लिखा है—"महात्मा बुद्धदेव ने प्राचीन आर्य-धर्म के अतिरिक्त, जिसका उपदेश उपनिषद् आदि ग्रंथों में मिलता है, किसी नवीन अनोखे धर्म का उपदेश नहीं किया । उन्होंने अपने मुँह से अपने उपदेशों में स्पष्ट शब्दों में कई बार कहा—"एष धर्मो सनातनो", अर्थात् यह सनातन धर्म है ।

इस प्रकार एक-दो नहीं, ऐसे सैकड़ों प्रमाण मिलते हैं, जिनसे यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि बौद्ध हिंदू ही हैं। जब उनमें हिंदू-समाज के धर्म-कर्म ज्यों-के-त्यों आज तक विद्यमान हैं, तब निस्संदेह और निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता है कि बौद्ध हिंदू ही हैं, हिंदुओं से पृथक् नहीं ।

शिवनाथसिंह सेंगर

× × ×

८. राम-वियोग में सीता

मृदु कोकिल का गाना मेरे,
कानों में विष बरसाता है ;
अरु मलय पवन, ज्यों फनवाला,
काला पन्नग लहराता है ।
नन्हो कलियों का मुसकाना,
अंतर की पीर बढ़ाता है ;
उजियाला भी अँधियारे का,
दिन में प्रतिरूप दिखाता है ।
फल खाने का मुँह तक आते,
हाथों से ही गिर जाता है ;
गंगा-जल अंजलि भरते ही,
बह जाता है, तरसाता है ।
जीने के ज़ीने पर चढ़कर,
'शैदा' उतरा नहिं जाता है ;
बस, बसुंधरा में धँस जाऊँ,
रघुबर, यह जी में आता है ।

"शैदा"

× × ×

९. "चिकित्सा-सिंधु" की आलोचना

[माधुरी भाग २, खंड १, संख्या २ में 'चिकित्सा-सिंधु'-नामक पुस्तक की समालोचना छपी थी, उसके संबंध में पं० क्षेत्रपालजी ने हमारे पास जो उत्तर भेजा है, वह समालोचक के उत्तर-सहित ज्यों-का-त्यों नीचे दिया जाता है ।—संपादक]

पुस्तक के पृष्ठ ६ में कुनाइन की मात्रा के संबंध में जो लिखा है, वह वास्तव में भारी भूल है, उसे हम स्वीकार करते हैं । प्रत्येक पाठक भी सहज ही समझ सकेगा कि यह भूल वास्तव में छापेख़ाने की है, लेखक की नहीं । एक बालक भी आजकल कुनाइन की मात्रा से अपरिचित नहीं है, फिर लेखक तो इस विषय से नितांत अनभिज्ञ भी नहीं है । पुस्तक में भूल से लिखा गया है कि "जब ज्वर न रहे, तब १२ ग्रेन से ३० ग्रेन

तक एक-एक घंटे के अंतर से... ।" वास्तव में होना यह चाहिए था—"जब ज्वर न रहे. तब १–२ ग्रेन से ३ ग्रेन तक... ।" १, २ के बीच डैश लगाने से रह गया, और ३ के आगे कंपोज़-कर्ता ने भूल से अनुस्वार रख दिया। यदि ऐसा भूल से न हुआ होता, तो १२ से पहले और १२ तथा ३० के बीच में अंक न थे । १–२–३ के अंकों का क्रमशः लिखना स्पष्ट ही है। इसका संशोधन किया जा चुका है। समालोचक महोदयजी इसके लिये धन्यवाद के पात्र हैं।

अजीर्ण और कोष्ठ-बद्ध आदि प्रकरण ऐसा है, जिसे हम और समालोचक महाशय तय कर लेंगे। माधुरी के पाठकों का इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है।

जिन रोगों के लक्षण तथा निदान विस्तृत रूप से सैकड़ों पृष्ठों में लिखे जाते हैं, उनके लिये क्या होमियो-पैथिक की संक्षेप पुस्तकें नहीं लिखी गई हैं, और क्या उनसे समय पर काम नहीं निकल जाता है ? क्या मृगी के रोगी से कभी आपने यह पूछने की कृपा की कि मृगी का दौरा आरंभ होने से उसके भीतरी अवयवों में क्या दशा उपस्थित होती है ? पूछने पर रोगी ने क्या बताया ? क्या ग्रंथ-कर्ता ने कहीं सब प्रकार की चिकित्सा जानने का दावा किया है ? क्या ग्रंथ के ऊपर ही संग्रह करके लिखे जाने की बात स्पष्ट नहीं लिख दी गई है ? यदि इतना लिख देने पर भी चोरी समझी जाय, तो बड़े-बड़े पुराने तथा नए कवि, लेखक तथा पत्र-संपादक भी इसी, आपकी कही, श्रेणी में रहेंगे, जिसमें रहने से हमें ज़रा भी दुःख नहीं है।

अंत में आपसे निवेदन है कि यदि कहीं आपको और भी त्रुटियाँ देख पड़ें, तो सीधे हमें सूचित कीजिए। धन्यवाद-सहित हम सुधारने को तैयार हैं, और रहेंगे।

विनीत—

क्षेत्रपाल शर्मा

शर्माजी का साहस

पाठक भूले न होंगे कि माधुरी वर्ष २, खंड १, संख्या २ में हमने पं० क्षेत्रपालजी शर्मा के 'चिकित्सा-सिंधु' की आलोचना की थी। आज उसी का शर्माजी ने प्रतिवाद किया है। हम इस पर केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि यदि पाठकगण हमारी पिछली बातें भूल गए हों, तो इस प्रतिवाद के साथ फिर वे उस आलोचना को पढ़ जायँ। बस, इतने से ही मामला तय हो जायगा।

शर्माजी ने हमें आज्ञा दी है कि "यदि और त्रुटियाँ देख पड़ें, तो हम सीधे उन्हें सूचित करें।" परंतु यह आज्ञा देते समय शर्माजी को अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं रहा। उन्हें जानना चाहिए कि हम समालोचक हैं ; उनके प्रेस के प्रूफ़-रीडर नहीं। हमारे पास भेजने से पहले उन्हें अपने कृत्यों की स्वयं जाँच कर लेनी चाहिए।

"मृगी" (?) के रोगी से हम क्या-क्या पूछते हैं, और उसके संबंध में क्या-क्या जानते हैं, यह आप उस समय पूछ सकते हैं, जब हम आपकी सेवा में परीक्षा देने के लिये हाज़िर हों। अभी तो हमें आपसे सार्टि-फ़िकेट लेने की आवश्यकता नहीं है।

यदि आप 'सब प्रकार की चिकित्सा जानने का दावा' नहीं करते, तो सब प्रकार की "चिकित्साओं का संग्रह बनाकर" लोगों के मत्थे क्यों मढ़ते हैं ? हम मानते हैं कि विस्तृत और संक्षिप्त निदान आदि अवश्य होते हैं; परंतु क्या उन चिकित्साओं के विस्तृत ग्रंथों का संक्षेप करना ऐसे लोगों का काम है, जो उनके जानने का दावा नहीं करते ? क्या ऐसे लोग आपकी तरह भारतवर्ष-भर के वैद्यों को अयोग्यता का सार्टिफ़िकेट दे सकते हैं ?

हमने आपकी पुस्तक से तीन दृष्टांत दिए थे। उनमें से एक को तो आपने स्पष्ट स्वीकार कर लिया है। भेद केवल इतना है कि आप उसे कंपोज़ीटरों की भूल बताते हैं। हम आपकी पेश की हुई सफ़ाई को प्रत्यक्ष सत्य माने लेते हैं। परंतु जिन लोगों ने आपकी इस पुस्तक के अनुसार तीन घंटे में ९० ग्रेन कुनाइन खाने के बाद तड़प-तड़पकर प्राण दिए होंगे, क्या उनके ज़िम्मेदार सिर्फ़ ये कंपोज़ीटर होंगे ? आपकी पुस्तक का दूसरा संस्करण हमने देखा था। दो हज़ार पुस्तकें लेनेवालों ने अपने और पराए के लिये जो प्राण-संकट उपस्थित किया होगा, उसकी सब ज़िम्मेदारी क्या केवल कंपोज़ीटरों के मत्थे मढ़कर आप साफ़ छूट सकते हैं ? यदि इसी प्रकार 'देवो दुर्बलघातकः' से काम चल जाय, तब तो फिर दुनिया से भूल का नाम ही उठ जाय। 'प्रजा के जानोमाल की रक्षक', 'अमन और क़ानून' की जननी तथा 'मा-बाप' कहलाने की शायक़ सरकार को इतनी फ़ुरसत कहाँ, जो इस ओर आँख उठाकर भी देखे ? उसे तो देश-भक्ति की ज़रा-ज़रा-सी कविताएँ और पुस्तिकाएँ लिखनेवालों की निगरानी से ही अवकाश नहीं है।

दूसरे आक्षेप के संबंध में शर्माजी फ़रमाते हैं कि 'अजीर्ण और कोष्ठ-बद्ध की बात को हम स्वयं समालोचक से तय कर लेंगे। माधुरी के पाठकों से इससे कुछ मतलब नहीं।' जी हाँ, माधुरी के पाठकों से और इस बात से भला क्या मतलब? उन्हें तो सिर्फ़ 'सुधा-सिंधु' के नोटिस पढ़ने और उसके सार्टिफ़िकेट बाँचने से मतलब होना चाहिए।

हम शर्माजी को फिर याद दिलाते हैं कि कोष्ठ-बद्ध और अजीर्ण पर कोई विवाद नहीं है, बल्कि विवाद इस पर है, जो आपने चि० सिं० के १२वें पृष्ठ पर अजीर्ण और अतिसार को एक बताते हुए भारत के परम पूज्य महर्षि चरक, सुश्रुत आदि पर भी आक्रमण करने की धृष्टता और दुःसाहस किया है। आपके अक्षर ये हैं—"यद्यपि आर्य-चिकित्सकों ने अजीर्ण (क़ब्ज़) और अतिसार (दस्तों) को पृथक्-पृथक् लिखा है, परंतु वास्तव में इनके लक्षणों में कोई विशेष भेद नहीं है।" क्या यह भी कंपोज़ीटरों की ही भूल है? आपका कहना है कि "फिर लेखक (शर्माजी) तो इस विषय (चिकित्सा) से नितांत अनभिज्ञ भी नहीं हैं"। आपकी बात सत्य हो सकती है। परंतु आपकी अभिज्ञता का पता उन्हीं लोगों को लग सकता है, जिनका आपसे व्यक्ति-गत परिचय हो। हमें तो आपके दर्शनों का भी सौभाग्य प्राप्त नहीं है। लेकिन आपकी पुस्तक के इन उदाहरणों को देखकर कोई भी समझदार अच्छी राय क़ायम नहीं कर सकता।

हमारा तीसरा आक्षेप था "हिस्टिरिया" के संबंध में, जिसमें शर्माजी ने स्त्रियों के गले में 'गोल चीज़' अटकाई थी। इस प्रतिवाद में शर्माजी उसे बिलकुल हज़म कर गए हैं। उसका नाम तक नहीं लिया। पाठक यदि चाहें, तो पिछली आलोचना में उसे फिर से देख लें। क्या वह भी कंपोज़ीटरों की ही ग़लती है? शर्माजी यदि चाहेंगे, तो हम उनके इसी 'सिंधु' में से और भी ऐसे ही रत्न निकालकर उनकी भेंट कर सकेंगे।

शालग्राम शास्त्री

× × ×

१०. ज़ार के अनुयायी और कुटुंबी

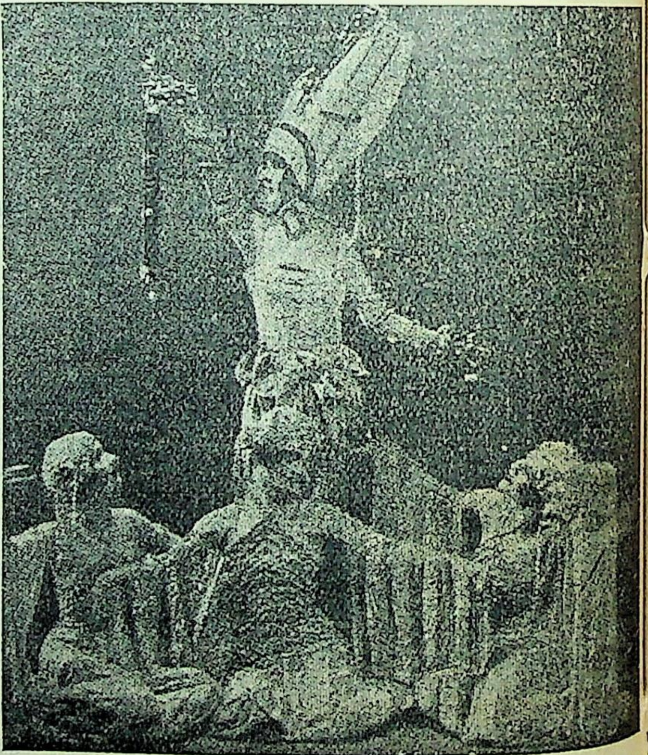
संसार-चक्र बड़ा विचित्र है। जिनके ऐश्वर्य और धाक से संसार कभी कंपायमान हो जाता था, आज वे कौड़ी-कौड़ी के लिये भटकते फिरते हैं। वे कोमलांगी ललनाएँ, जिनको असंख्य परिचारिकाएँ हाथो-हाथ लिए फिरती थीं, और फूल छूने से जिनकी कलाई उतर जाती थी, वे नाज़नीन आज होटलों और नाट्य-शालाओं में झाड़ू लगा रही हैं! रूस के ज़ार के अनुयायियों और कुटुंबियों की वर्तमान स्थिति उक्त कथन का ज्वलंत प्रमाण है। कहा जाता है कि लगभग बीस लाख रूसी नोबुल्स रूस से भागकर अन्य देशों में आए, और बहुत-से रोमनफ़ (ज़ार-वंशज) लोग कुस्तुंतुनिया, पेरिस और अन्य स्थानों में अपनी जीवन-लीला समाप्त कर रहे हैं। हाल ही में एक अमेरिकन समाचारपत्र में प्रकाशित हुआ था कि ज़ार के वंश की और निकट-संबंधी कई युवतियाँ कुस्तुंतुनिया के एक होटल में, जिसका स्वामी एक निग्रो है, काम कर रही हैं। दो-एक ने तो अपना जीवन सुखमय बनाने के लिये बहुत ही साधारण मनुष्यों से विवाह भी कर लिया है! ज़ार की भतीजी और संबंधी युवतियाँ, जिनकी मधुर मुसकान इँगलैंड और जर्मनी के युवराजों को मोहित कर देती, आज कुस्तुंतुनिया में होटलों की परिचारिकाएँ बनी हुई हैं! फ़िलीपाइन-द्वीप के मनीला-नगर में भी बहुत-से रूसी लोग अपना जीवन बिता रहे हैं। परंतु पेरिस तो इन भगोड़ों के लिये काशी-सा हो रहा है। इस समय वहाँ जो अनेक रूसी हैं, उनके प्रमुख ज़ार के सबसे बड़े चचेरे भाई ग्रांड ड्यूक डिमिट्री (The Grand Duke of Dimitri) हैं। कहा जाता है कि रूस के साम्राज्य-वादियों की एक-मात्र आशा यही हैं, और रूस के राहु रासपुटिन की हत्या का श्रेय इन्हीं को प्राप्त है। यह बड़ी कठिनाई से रूस से निकलकर आए थे। जिस समय यह पेरिस में पहुँचे, उस समय इनके पास सौ फ़्रैंक (लगभग २५ रुपए) और एक फ़ालतू कमीज़ थी। इनके साथ इनका दामाद या साला भी है, जिसका नाम राजकुमार पौशियटाइन है। इस राजकुमार की पत्नी मेरी पौलोवना (The Grand Duchess Marie Pavlovna) है। जनरल रैंगल, जिन्होंने मित्र-राष्ट्रों के बल से बोल्शेविक लोगों पर आक्रमण किया और जो बोल्शेविक लोगों द्वारा मार भी डाले गए, यहाँ पर अपना चिह्न छोड़ गए हैं। इनकी सलहज या साली मैडम टैब (Madam Yteb) अपनी वस्तुओं को पेरिस में बेच रही हैं। इन लोगों ने मिलकर एक दर्ज़ी की



ज़ार के कुटुंबी स्त्री-पुरुष झुके हुए दर्ज़ी का काम कर रहे हैं

दूकान खोली है, और ज़ार के भ्राता से लेकर उनकी साली तक इस उद्योग-धंधे में काम करती हैं। कोई कपड़ा सीता है, कोई इस्तिरी करता है, और कोई नक़ाशी का काम करता है। इस दूकान के एक विभाग में गोटे और नक़ाशी का काम भी होता है। वहाँ पर कई मशीनें भी रक्खी रहती हैं, जिन पर दर्जनों रूसी नोबुल्स और उनकी स्त्रियाँ झुकी हुई काम कर रही हैं। उनके मुख-मंडल के अनंत सौंदर्य से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ऐसे काम उन्हें मजबूरन् करने पड़ते हैं। उनके कपोलों की लालिमा फीकी पड़ती जा रही है, और उनके कोमल करों पर फफोले उनके पुराने वैभव को स्मरण दिलाकर सहृदय हृदय की तंत्री हिला देते हैं। इन कुलीन स्त्री-पुरुषों को ८-१० घंटे कठिन परिश्रम करने पर केवल उतना वेतन मिलता है, जिससे वे रूखे-सूखे भोजन से अपने शरीर को बनाए रख सकते हैं। एक दूसरी रमणी का नाम काउंटस गोरनो (The Countess Gourno) है। यह वही वीर रमणी है, जिसने ४८,००० भगोड़ों की जान बचाई थी, और अपने हाथों से तीन लाख वस्त्र कुस्तुंतुनिया में रूसी भगोड़ों को बाँटे थे। यह बड़ी रूपवती है, और इसने अब दर्ज़ी का काम करने में बड़ी निपुणता प्राप्त कर ली है।

ज़ार के भक्तों और उसके संबंधियों की जीविका के केवल ये ही साधन नहीं हैं। फ़ोलियस बरजेर नाट्य-शालाओं में रोमनफ़-कोर्ट की एक महिला की तीन अत्यंत रूपवती लड़कियाँ नाचने-गाने का काम करती हैं। अमेरिकन नटी मिस निनापेइन के साथ वे दर्शकों को अपने नाच और कोकिल-कंठ से मोहित करके जीविका चलाती हैं। उनकी बुढ़िया माता उनके साथ प्रत्येक समय रहती है। वह नहीं चाहती कि उसकी कुमारियाँ और ज़ार की लाड़िलियाँ इस प्रकार जीविका चलावें। पर पापी पेट की आग शांत करने के लिये उन्हें ऐसा करना ही पड़ता है।



रोमनफ़-कोर्ट की एक महिला की ये तीन अत्यंत रूपवती लड़कियाँ अमेरिकन नटी मिस निनापेइन के साथ नाचने-गाने का काम कर रही हैं

चित्र में वे तीन रमणियाँ बैठी हुई अमेरिकन नटी को साधे हुए हैं । इस कार्य से उन्हें पचास डालर मासिक की प्राप्ति हो जाती है । ये एक विख्यात रूसी जनरल की बेटियाँ हैं। इनके दो-एक संबंधी अब भी रूस में हैं । यह दशा है बड़े-बड़े नाम-धारी रूसी जनरलों और ज़ार के ख़ास कुटुंबियों की। अब पाठक विचार करें कि साधारण स्थिति के भगोड़ों और उन लोगों की स्थिति की क्या दशा होगी, जो बुढ़ापे या अपने मुख्य पेशे के कारण और कोई काम नहीं कर सकते। उदाहरण के लिये एडमिरल पौसोखो को लीजिए। यह महाशय रूस-साम्राज्य की आर्चैंजल में स्थित साम्राज्य-सेना के जनरल थे। इनकी अवस्था ७६ वर्ष की है। जब यह अपने दुःखों की आत्म-कहानी सुनाते हैं, तो श्रोताओं के अश्रु-पात होने लगता है। बूढ़े जनरल के चौड़े भाल पर करुणा की रेखाएँ अंकित हो जाती हैं। वह एक दुःख-भरी लंबी साँस खींचकर और अपने मस्तिष्क पर हाथ रखकर कहते हैं कि "लोग कहते हैं, अब मैं बुढ़ापे के कारण मोटर चलाने के योग्य भी नहीं हूँ । मेरे एक मित्र, जो जनरल थे, और जिनको स्वयं ज़ार ने उनकी वीरता पर सम्मानित किया था, आजकल सायंकाल तक मोटर हाँककर और आधी रात तक दरबान का काम करके अपनी जीविका चलाते हैं। मेरे एक दूसरे मित्र जनरल वैडिनो (General Wadinow) कुस्तुंतुनिया के एक अस्पताल में कुली (Porter) का काम करके अपना जीवन-निर्वाह करते हैं।" यह कहते-कहते बूढ़े जनरल के तेजस्वी और झुर्रीदार कपोलों पर आँसू ढरक जाते हैं। एक बार एक अमेरिकन यात्री ने बूढ़े जनरल से उसकी जीविका के विषय में पूछा । बूढ़े जनरल ने करुण क्रंदन करते हुए कहा कि "मेरे पास कुछ थोड़े-से नक़द रुपए हैं, जिनको मैंने आर्चैंजल में अँगरेज़ कौंसल को दे दिया था। पर वे शीघ्र समाप्त होनेवाले हैं, और अब मुझे बिसाती बनकर दर-दर घूमना पड़ेगा । यद्यपि बिसातगीरी कोई कठिन कार्य नहीं है, परंतु इससे पापी पेट की तृप्ति न हो सकेगी । कारण, आमदनी बहुत ही कम होगी।" यह तो दशा है उनकी, जो कभी रूस के भाग्य-विधाता थे। उन बेचारों की न-मालूम क्या गति होगी, जो रूस के साधारण लोगों में होंगे। लीलामय की लीला अपार है। रूसी राजकुमारियों की दशा पर भूषण का यह वाक्य चरितार्थ होता है कि—"तीनि बेर खातीं, ते वे तीनि बेर खाती हैं।" इस समय तो इनकी यह दशा है। आगे चलकर न-मालूम इन पर क्या बीते! भावी समस्या भी निकट है।

श्रीराम शर्मा

× × ×

११. तरुवर

जननि की गोद में सुख से पले, मचले, फले, फूले;
प्रकृति के साथ खेले, वायु में, ऐश्वर्य में भूले।
लगीं कलियाँ, कुसुम फूटे, महक उट्ठा विपिन सारा;
कुसुम परमेश-चरणों पर चढ़े यश भी बढ़ा प्यारा।
मधुर फल प्राप्त करते ही उन्हें भी दान कर डाला;
खगों को खूब, आश्रय दे मज़े से, प्रेम से, पाला।
दुखी, भूला हुआ भटका पथिक जो क्लांत हो आया,
दया कर दी तुरत तुमने सुशीतल, शांतिप्रद छाया।
कहाँ निज हित-अहित का ध्यान, कब कुछ जोड़ धरते हो?
कभी कर दान पल्लव-पत्र ही संतोष करते हो!
समय पर जब न रहते फूल-फल, रहती न वह छाया,
खड़ी रहती तुम्हारी ठूँठ केवल शुष्क यह काया।
कहाँ तब मुख छिपाते हो? दया अपनी दिखाते हो;
महासुख विश्व को दे अंग तुम अपने कटाते हो।
बचाते हो भुवन-भर को बड़ाई नित्य लेते हो;
मरे के साथ भी जल-मर उसे कर मुक्त देते हो।
कहाँ यह सुख मनुजता में? अभागे प्रेम करते हैं।
तुम्हारी मोहिनी इस माधुरी पर मुग्ध मरते हैं।
बनाते और की बिगड़ी लुटाकर कौन अपना घर?
भला संसार का करते, भले हो विश्व में तरुवर!

"गुलाब"

× × ×

१२. दो दोहे

[१]

भौं, चितवनि, डोरे, बरुनि ; असि, कटार, फँद, तीर ;
कटत, फटत, बंधत, बिंधति ; जिय, हिय, मन, तन बीर!

[२]

काँपैं तेरे दृगनि की कही बड़ाई जाइ?
त्रिभुवन जाकैं मुख बसै, सो जिहि रह्यौ समाइ!

"रत्नाकर"



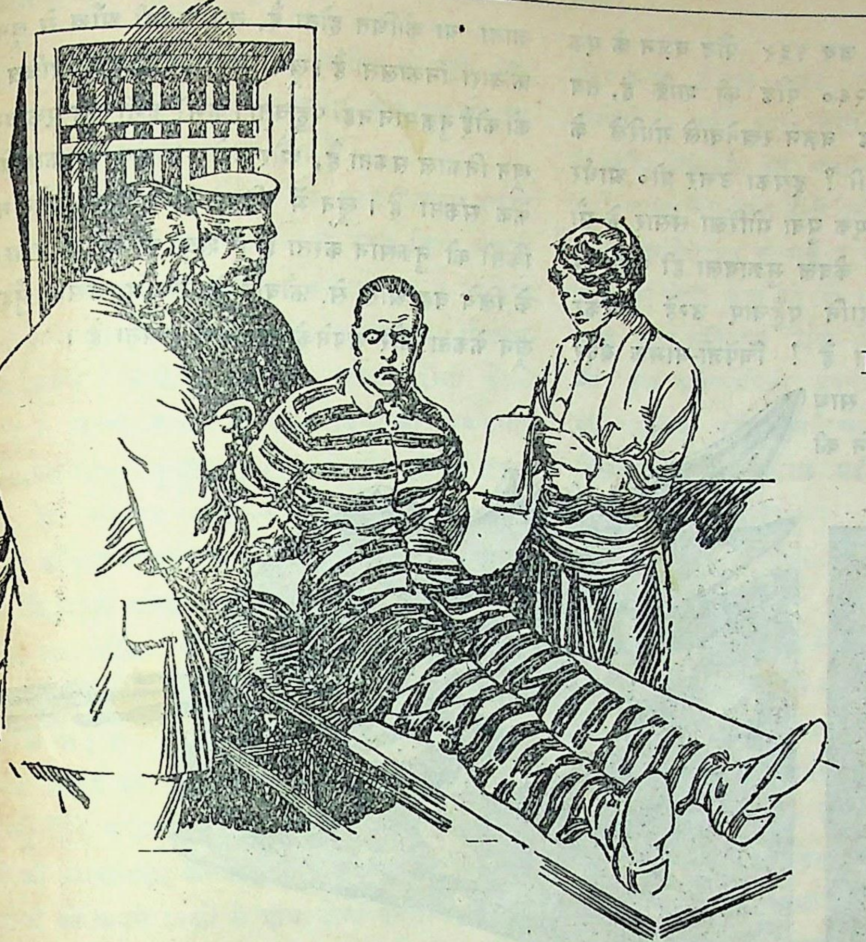
१. सच बुलवाने की ओषधि

डॉक्टर डी० ई० हौस ने एक ऐसी ओषधि का आविष्कार किया है, जो मनुष्य को खिला देने से वह सत्य के सिवा और कुछ नहीं बोल सकता। इस दवा का नाम Scopolamin या Truth Serum है। आपकी परीक्षा को देखकर डॉक्टर और अपराध-विज्ञान के विशेषज्ञ आश्चर्य-चकित हो रहे हैं। परीक्षा के समय अपराधी को चीर-फाड़ के एक टेबुल पर सुला दिया जाता है। इसके बाद उसके शरीर में सुई द्वारा ओषधि का प्रवेश कराया जाता है। फल यह होता है कि उस मनुष्य को मीठी-सी नींद आने लगती है। ऐसी हालत में वह सत्य ही बोलता है।

वैद्यक-शास्त्र में Scopolamin कोई नई दवा नहीं है। पहले भी यह हलकी नींद लाने के लिये दी जाती थी। डॉक्टर हौस ने कई बार देखा कि मनुष्य सोते समय कभी-कभी ऐसी बातें बकते हैं, जिनका उन्हें ज्ञान नहीं रहता। उन्होंने सोचा, शायद यह ओषधि मनुष्य की चेतना-शक्ति को लुप्त कर देती है, किंतु स्मृति ज्यों-की-त्यों बनी रहती है, और मनुष्य किसी भी प्रश्न का, जो वह जानता है, ठीक-ठीक उत्तर दे सकता है।

डॉक्टर हौस का कथन है—"चेतना के अधिकार के अंतर्गत जो बातें छिपी रहती हैं, उन्हें यह ओषधि असली हालत में प्रकट कराती है। एक बात छिपाकर दूसरी झूठी बात बनाकर कहने की मनुष्य में जो शक्ति रहती है, वह इस अवस्था में लुप्त हो जाती है; इसीलिये प्रश्नों के जो उत्तर मिलते हैं, वे सत्य होते हैं।" प्रायः पाँच सौ परीक्षाओं में से अब तक किसी में असफलता नहीं हुई। इस आविष्कार से अपराधियों के पकड़ने में बड़ी सहायता मिल रही है। जेल में जो निरपराध मनुष्य पड़े कष्ट भोग रहे हैं, उन्हें रिहाई मिल रही है, और असली अपराधियों का पता लगाकर उनको दंड दिया जा रहा है। मुक़दमे के समय जिन बातों का पता नहीं लगा था, वे भी इस रीति के द्वारा प्रकट हो रही हैं।

इस ओषधि के द्वारा क्या-क्या लाभ उठाए जा सकते हैं, उनकी एक तालिका भी डॉक्टर हौस ने दी है। यथा—अपराधियों का अपराध और निरपराधियों की सत्यता प्रमाणित करने के अतिरिक्त, युद्ध के समय शत्रु के गुप्त-चरों को गोली मारने के पहले उनकी गुप्त बातों का पता लगाने में भी इस दवा का व्यवहार हो सकता है। दल बाँधकर जो चोर तथा डाकू चोरी या डकैती करते हैं, उनका इसके प्रयोग से अंत हो जायगा; क्योंकि उनमें से यदि एक भी पकड़ा गया, तो समस्त दल के मनुष्यों का पता लग जायगा। पुलिस जितनी गिरफ़्तारियाँ करती है, उनमें प्रायः तिहाई निरपराध मनुष्य (भारतवर्ष में प्रायः आधे से भी अधिक) होते हैं। इनके विचार में जो अर्थ-व्यय होता है, वह भी बच जायगा। इत्यादि।



अपराधी यथार्थ बातें प्रकट कर रहा है

आगे चलकर डॉक्टर साहब कहते हैं कि मस्तिष्क का सबसे अधिक शक्तिशाली सहायक श्रवण है। बेहोशी लाने की ओषधि खाने से मनुष्य की अन्यान्य इंद्रियाँ अवसन्न हो जाती हैं, किंतु श्रवणेंद्रिय का लोप नहीं होता। अन्यान्य इंद्रियों के अवसन्न हो जाने पर भी श्रवणेंद्रिय काम देती है। इसलिये बेहोशी की हालत में जब कोई प्रश्न पूछा जाता है, तब श्रवणेंद्रिय शब्दों को मस्तिष्क में पहुँचाती है। परंतु पहले ही चेतना-शक्ति व्यर्थ हो जाने के कारण किसी प्रश्न का यथार्थ उत्तर देने के पहले कोई बनावटी बात सोचने की शक्ति जाती रहती है। स्मृति में उस समय जो बातें रहती हैं, वे ही एक-एक करके मुँह से निकलने लगती हैं।

इस दवा का प्रचार भारतवर्ष में जितनी जल्दी हो सके, होना चाहिए; क्योंकि आजकल पुलिस की कुदृष्टि से बहुत-से निरपराध व्यक्ति जेल की सज़ा भोगा करते हैं।

× × ×

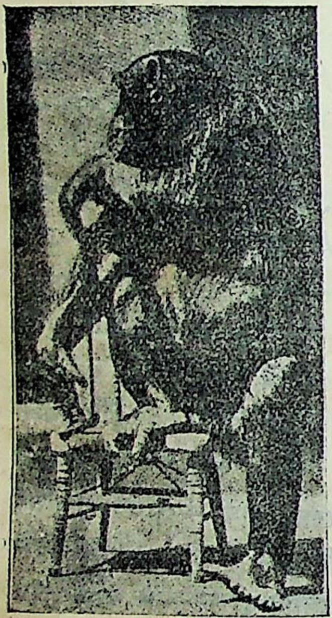
२. बंदरों की शक्ति

न्यूयार्क के चिड़ियाख़ाने में बंदरों की जो शक्ति-परीक्षा हुई है, उससे पता लगा है कि बंदर मनुष्यों से दूनी, तिगुनी, चौगुनी तक अधिक शक्ति रखते हैं। परीक्षा Dynamometer-नामक एक यंत्र के द्वारा हुई थी। इस यंत्र में एक रस्सी बाँधकर किसी से खींचने को कहा जाता है। वह जितनी शक्ति लगाता है, उसकी सूचना यंत्र में लगी हुई एक घड़ी के द्वारा मिलती है।

बंदर बंदूक़ से बहुत डरते ह। वे इस यंत्र में लगी हुई रस्सी को खींचने के लिये तैयार नहीं थे; क्योंकि वे समझते थे कि यह बंदूक़ ही-सा कोई यंत्र होगा। परंतु जब कोई मनुष्य यंत्र की दूसरी ओर एक दूसरी रस्सी बाँधकर खींचता था, तब वे भी साहस कर अपनी शक्ति लगाते थे। किंतु बंदरों से उनकी पूरी शक्ति लगवाना दुराशा-मात्र थी। इसके अतिरिक्त थोड़ी शक्ति लगाने के बाद जब वे देखते थे कि मशीन हिलती-डुलती तक नहीं, तब उसे छोड़ देते थे। उस समय तक वे अपनी पूरी शक्ति नहीं लगाते थे। इस कठिनाई के रहते हुए भी देखा गया कि एक 'चिंपेंजी' १२६० पौंड की शक्ति रखता है, और उसका वज़न है १३५ पौंड। इसी वज़न का एक साधारण मनुष्य ३३२ पौंड से अधिक शक्ति नहीं रखता। इसके सिवा सौ में केवल एक मनुष्य ऐसा निकला, जिसके शरीर में ४०० पौंड की शक्ति थी।

एक दूसरे चिंपेंजी—बोमा—की पूरी शक्ति का पता परीक्षक बहुत चेष्टा करने पर भी न पा सके। उसके केवल एक हाथ में ८४७ पौंड की शक्ति थी। ६५ पौंड वज़न का ओरांग भी मनुष्य से अधिक शक्ति रखता है।

अब प्रश्न उठता है कि जब १३५ पौंड वज़न के एक चिंपेंजी के शरीर में १२६० पौंड की शक्ति है, तब आठ फ़ीट ऊँचे ४५० पौंड वज़न रखनेवाले गोरिले के शरीर में कितनी शक्ति होगी ? इसका उत्तर प्रो० आर्थर ब्रिसवन ने यह दिया है कि एक युवा गोरिला संसार के सौ अच्छे-अच्छे पहलवानों का केवल मुक़ाबला ही नहीं कर सकता, अपनेको विना हानि पहुँचाए उन्हें चीरकर टुकड़े-टुकड़े भी कर सकता है ! चिंपेंजी-नामक बंदर किसी भी पहलवान के साथ अखाड़े में मुक़ाबला करने की शक्ति रखता है।



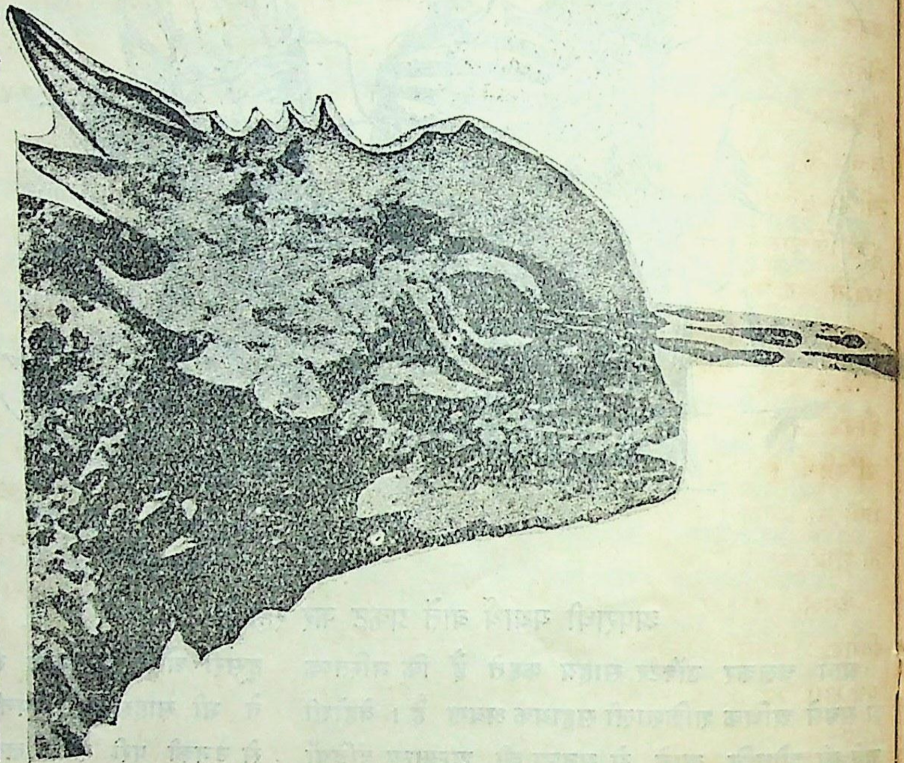
चिंपेंजी बंदर

इस चिंपेंजी की शक्ति को देखकर मनुष्यों को लज्जित होना पड़ता है। यह आसानी से १००० पौंड का बोझ उठा सकता है।

× × ×

३. एक अद्‌भुत जानवर

वैज्ञानिकों ने एक और अद्‌भुत जानवर का पता लगाया है। वह ३०५ इंच लंबा होता है। उसका शरीर काँटेदार बालों से ढका रहता है, और पूँछ मगर की पूँछ-सी होती है। उसका काँटा मनुष्य या अन्य किसी को हानि नहीं पहुँचाता। वह अपने शरीर को फुलाकर मोटा भी बन सकता है। परंतु उसकी सबसे अधिक आश्चर्य-जनक बात यह है कि जब वह डर जाता या क्रोधित होता है, तब अपनी आँख से ख़ून का फ़ौवारा निकालता है। ख़ून निकालने से उस विचित्र जीव को कोई नुक़सान नहीं पहुँचता। कभी-कभी वह एक चम्मच ख़ून निकाल सकता है, और उसे १५ इंच के फ़ासले तक फेंक सकता है। ख़ून में विष नहीं रहता, और न वह किसी को नुक़सान करता है। शत्रु से अपनी रक्षा करने के लिये वह आँख से, फ़ौवारे के रूप में, उसके मुँह पर, ख़ून फेंकता और अपनेको सुरक्षित रखता है।



एक अद्भुत जानवर आँख से ख़ून फेंक रहा है

× × ×

४. मोटर में रेडियो

संसार के प्रायः प्रत्येक नए तथा विचित्र पदार्थों के प्रति अमेरिका का प्रगाढ़ अनुराग है। उसे नए-नए आविष्कारों का एक नशा-सा हो गया है। इसीलिये जितनी नई वस्तुएँ आविष्कृत होती हैं, उनमें से अधिकांश के आविष्कार का श्रेय अमेरिका ही को प्राप्त है। कुछ दिनों से अमेरिका में रेडियो का विशेष रूप से प्रादुर्भाव हुआ है। आजकल उसकी दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति हो रही है। पहले लोग विना 'लाइसेंस' के रेडियो-यंत्र का व्यवहार नहीं कर सकते थे। इस बाधा के रहने पर भी अमेरिका

में लाइसेंस-प्राप्त १९ हज़ार यंत्र स्थापित हो चुके थे। किंतु अब वह बाधा हटा दी गई है, इससे इस यंत्र का व्यवहार और भी अधिक हो गया है।

आजकल डॉक्टरों के लिये जिस तरह सवारी रखना आवश्यक है, उसी तरह भविष्य में उनके लिये सवारी में रेडियो-यंत्र लगाना आवश्यक हो जायगा। भविष्य में रेडियो-यंत्र-धारी डॉक्टरों की उपयोगिता विस्मय-जनक होगी। डॉक्टर मोटर पर चढ़कर रोगी देखते फिरेंगे। उनके कान के पास रेडियो का श्रवण-यंत्र (Receiving apparatus) रहेगा। ज्यों ही सहसा कान में आवाज़ आई—"डॉक्टर! डॉक्टर!", त्यों ही डॉक्टर सचेत हुए। इसके बाद ही उन्हें मालूम हुआ कि अमुक जगह पर कोई दुर्घटना हो गई है। उन्होंने झट 'शोफ़र' को आज्ञा दी, और मोटर का रुख़ बदलवाकर तुरंत उस स्थान पर पहुँच गए। केस देखने के बाद अपने दवाख़ाने में—जो वहाँ से दूर है—औषध भेजने को ख़बर दे दी। बात-की-बात में दवा आ पहुँची। शीघ्रता से ख़बर पाने के कारण डॉक्टर रोगी की प्राण-रक्षा कर सके। यदि वह देर से आते, तो रोगी को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ता।

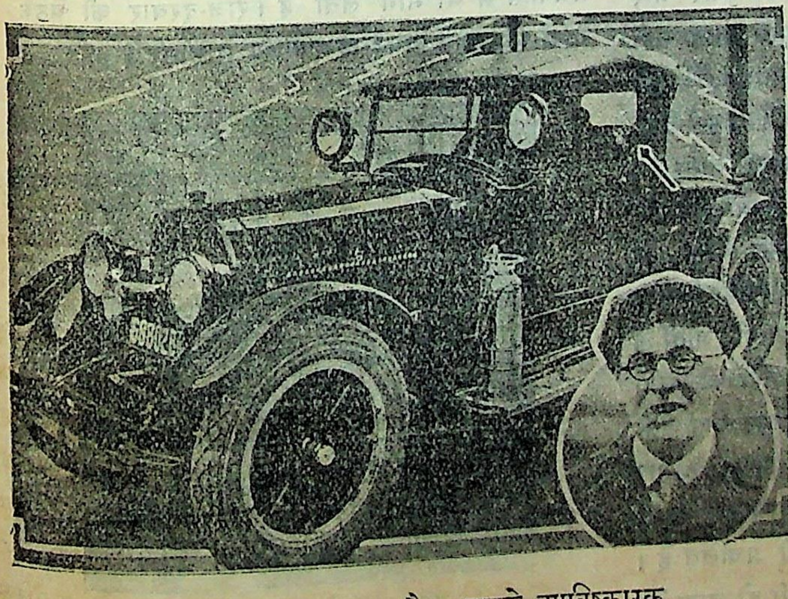
केवल डॉक्टरों ही के मोटर में नहीं, फ़ायर-ब्रिगेड, टैक्सी, निजी मोटरकार—सबमें रेडियो-यंत्र लग रहे हैं। टैक्सी बुलाने के लिये आप रेडियो द्वारा ख़बर भेजिए, वह तुरंत आपके दरवाज़े पर आ धमकेगी। कहीं आग लगी हो, रेडियो की सहायता से अग्नि-निवारक यंत्र घटना-स्थल पर बुला लीजिए। जहाँ लाखों की हानि होने की संभावना थी, वहाँ आग लगते-लगते बुझा दी गई। रेडियो के बदौलत व्यापारी चैन की बंसी बजा रहे हैं। बाज़ार की तेज़ी-मंदी का हाल उन्हें प्रतिक्षण मिल रहा है। इस प्रकार रेडियो की इस सर्वव्यापिनी उपयोगिता के बदौलत रेडियो का महत्त्व दिन-दिन बढ़ रहा है। इसके लिये रेडियो के आविष्कारक महोदय की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है।

× × ×

५. सहारा

आफ़्रिका-महाप्रदेश में हज़ारों मील तक फैली हुई जो विराट् मरु-भूमि है, उसे लोग जल-हीन और शुष्क, तप्त, बालुकामय समझते आए हैं। किंतु उसमें भी नदियाँ टेढ़ी-मेढ़ी होकर बहती और हरियाली रखती हैं। इस बीसवीं शताब्दी में कोई भी प्रदेश—विशेषकर वह, जो किसी योरपियन राज्य की सीमा पर हो—चिर-काल तक दुर्भेद्यता के गर्भ में छिपा नहीं रह सकता। प्रायः ७५ वर्ष पहले कुछ साहसी योरपियन सहारा-भ्रमण के लिये निकले थे। किंतु उनमें से केवल एक व्यक्ति, जिसका नाम बार्थ था, बचकर लौटा; बाक़ी लोगों ने रास्ते के कष्ट के कारण वहीं प्राण गँवाए। कुछ लोगों का कहना है कि इसके पहले रोम-वासी सहारा पार हुए थे; किंतु उस समय जो व्यक्ति वहाँ गए थे, वे सब-के-सब लौटकर आ गए, और उन्होंने बड़ी अद्भुत-अद्भुत बातें बतलाईं।

इस विराट् मरु-भूमि में यत्र-तत्र आकाश-चुंबी पहाड़ हैं। उनकी तल-हटी में छोटी-छोटी नदियाँ टेढ़ी-मेढ़ी होकर बहती और बालुका में लुप्त हो जाती हैं। कहीं-कहीं जल से परिपूर्ण जलाशय हैं, और उनके किनारे हरी-हरी घास और छोटी-छोटी झाड़ियाँ जम रही हैं। इन झाड़ियों में हरिण और



रेडियो-युक्त मोटरकार और उसके आविष्कारक

नाना प्रकार के पशु-पक्षी पाए जाते हैं। इस स्थान की एक विचित्र शोभा है।

यहाँ के निवासी असभ्य और निष्ठुर होते हैं। यद्यपि वे आधुनिक सभ्यता के बहुत पीछे हैं, किंतु उनको सभ्य बनाने की चेष्टा का आरंभ हो गया है। स्वभावतः वे निर्भीक, कष्ट-सहिष्णु और जातीय वीर हैं। वे स्वाधीनता-प्रिय और स्वाधीन हैं। फ़्रांसीसियों ने इसका यथेष्ट परिचय पाया है। उनके साथ तीस वर्ष तक युद्ध करने के बाद फ़्रांसीसियों ने मरु-भूमि के एक-मात्र हरे-भरे, किंतु छोटे, पहाड़ी राज्य अहागार पर अधिकार कर लिया है। फिर भी वहाँ के निवासी आज तक पूर्ण रूप से वशवर्ती नहीं हुए—वे सुविधा और सुयोग पाते ही विद्रोही हो जाते हैं।

वे कहाँ से आकर उस प्रदेश में रहे, यह नहीं कहा जा सकता। कुछ लोगों का विश्वास है कि वे उत्तरी आफ़्रिका-वासी हैं। अरबों की एक शाखा मरु-भूमि में टुकड़े-टुकड़े हो गई थी। उसके लोग इधर-उधर फैल गए, किंतु लौटकर अपने देश को नहीं गए। ये संभवतः उन्हीं के वंशज हैं। सब लोग इन्हें "तुरेग" कहते हैं। ये मुसलमान हैं। सबसे अधिक आश्चर्य-जनक रीति इनमें यह है कि मर्द अपना मुँह घूँघट में छिपाए रखते हैं; किंतु स्त्रियों का मुँह खुला रहता है। इनका घूँघट ८ इंच चौड़ा, ६ फ़ीट लंबा और नीले या पीले रंग का होता है। उसी से पुरुष अपने सिर और चेहरे को ढके रहते हैं। केवल आँखों के पास कपड़ा नहीं रहता, जिससे उनको देखने में कोई असुविधा नहीं होती। यदि कोई पुरुष घूँघट को थोड़ा अधिक खोलकर देखे, तो उसका यह कार्य असभ्यता-सूचक समझा जाता है। इस घूँघट का नाम "टेगिलमास" है। स्त्रियाँ मुँह पर बिलकुल घूँघट नहीं रखतीं; सब उनके मुँह को यथेच्छा-पूर्वक देख सकते हैं। वे भी चाहे जिसको देखें, उनमें यह बात दोष-युक्त नहीं मानी जाती। स्त्रियाँ स्वभावतः लज्जाशील होती हैं। यहाँ की स्त्रियाँ भी किसी अपरिचित मनुष्य को देखने में घूँघट काढ़ लेती हैं; किंतु घूँघट न काढ़ने से भी कोई नुक़सान नहीं होता। विवाह के पहले लड़कियों को पूर्ण स्वाधीनता रहती है। जिसे Free Love कहते हैं, वह भी प्रचलित है। कभी-कभी तो वह इनमें Romantic भी हो जाता है। विवाह के बाद स्त्रियाँ गृहस्थी तथा संतान-पालन का काम करने लगती हैं। शास्त्रीय विधान के अनुसार पुरुष चार विवाह कर सकते हैं; फिर भी साधारणतः एक पुरुष एक ही विवाह करता है।

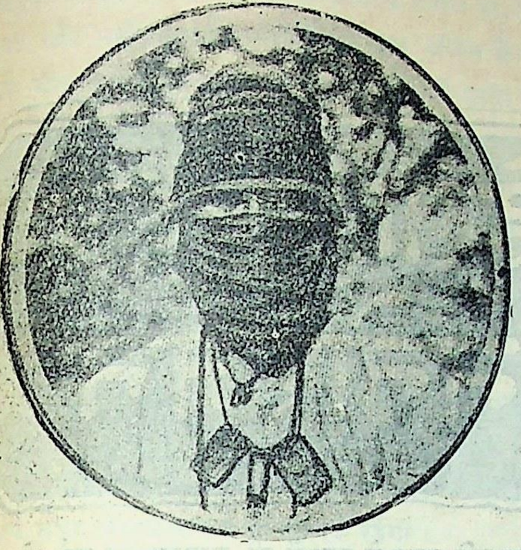
यहाँ वर्ष-भर की सभी ऋतुओं में अन्न नहीं पैदा होता, इसलिये वहाँ मनुष्य अधिकतर ऊँट या बकरी के दूध के साथ घास के बीजों को पकाकर खाते हैं। जिनके बाग़ हैं, उन्हें प्याज़ और विलायती बैंगन भी खाने को मिलते हैं।

सहारा के बीच का यह प्रदेश एक रानी द्वारा शासित होता है। इस रानी को योरपियन लोग White Queen अर्थात् श्वेत रानी कहते हैं। डेनिश वैज्ञानिक प्रो॰ जालमर ओलुफ़सेन से इस रानी की भेंट हुई थी। वह लंबी तथा सुंदर हैं। उनकी आँखें नीली हैं। अवस्था ३० वर्ष से अधिक न होगी। अब तक उनके १४ पति हो चुके हैं, और उन्होंने उन सबको तलाक़ भी दे दी है। वह अपने राज्य-काल में सौ पति करना चाहती हैं। वह वहाँ की केवल शासन-कर्त्री ही नहीं हैं, किंतु वहाँ देवी का अवतार भी मानी जाती हैं। उनका विश्वास है कि उनमें ईश्वरीय शक्ति विराजमान है।

तुरेग-जाति के प्रायः सभी मनुष्य उजले रंग के होते हैं। वे संगीत-प्रिय भी होते हैं। वहाँ की स्त्रियों को मर्दों से अधिक अधिकार तथा स्वतंत्रता प्राप्त है। वे राजनीति में भी भाग लेती हैं। राज-दरबार की बैठक रेशम और काले चमड़े के एक तंबू में होती है।



तुरेग-स्त्री



घूँघट काढ़े हुए एक पुरुष

इस देश में जाने के लिये ऊँट के सिवा और कोई सवारी नहीं मिलती। भ्रमण करनेवालों का एक दल अपने साथ दो तुरेगों को भी लाया है। सुनते हैं, फ्रांस की सरकार सहारा में रेल-पथ का विस्तार करना चाहती है।

रमेशप्रसाद

× × ×

६. खाद में मैगनीशियम की आवश्यकता

मैगनीशियम एक बहुत हलकी धातु है। परंतु इसके बर्तन नहीं बनाए जा सकते; क्योंकि पानी के संयोग से इसमें रूपांतर होने लगता है, और धीरे-धीरे यह गलकर पानी में मिल जाती है। यह आग की तेज़ आँच भी नहीं सह सकती, और चकाचौंध कर देनेवाले प्रकाश के साथ जलने लगती है। आतिशबाज़ लोग महताबी इसी से बनाते हैं। डॉक्टर लोग साधारण जुलाब के लिये जो मैगनीशिया देते हैं, वह इसी धातु और गंधक के तेज़ाब का एक लवण है।

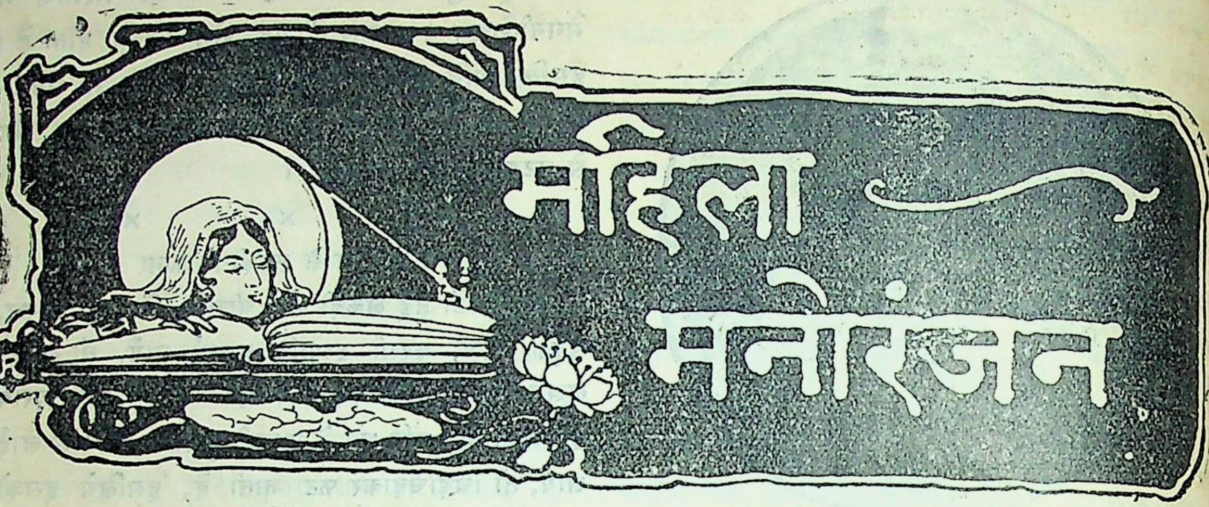
ब्युरो ऑफ़ प्लांट इंडस्ट्री की नवीन खोजों से मालूम हुआ है कि पौदे की उचित बाढ़ के लिये मिट्टी या खाद में मैगनीशियम का होना अत्यंत आवश्यक है। तंबाकू, भुट्टा तथा अन्य पौदों की पत्तियों में एक प्रकार का रोग लग जाता है, जिससे पत्ती का हरे और पीले रंगवाला बहुत ही महत्त्व-पूर्ण पदार्थ (Chlorophyll) नष्ट हो जाता है, और पत्ती नीरस होकर श्वेत हो जाती है। यह रोग पुरानी पत्तियों से आरंभ होता है। परीक्षा करने से मालूम हुआ है कि मिट्टी में उचित परिमाण में मैगनीशियम न होने से ही यह रोग उत्पन्न होता है। इसलिये यदि खाद में बहुत ही थोड़ी मात्रा में मैगनीशियम का कोई लवण मिला दिया जाय, तो इस रोग से छुटकारा मिल सकता है।

× × ×

७. ओज़ोन से लकड़ी सिझाना

ताज़ी कटी हुई लकड़ी को चीरकर किंवाड़, चौखट, संदूक़, मेज़, कुरसी इत्यादि बनाई जायँ, तो लकड़ी सूखने पर जोड़ ढीले पड़ जाते हैं, जिससे ये चीज़ें ख़राब हो जाती हैं। यदि धूप में लकड़ी सुखाकर काम में लाई जाय, तो चिड़चिड़ाकर फट जाती है, इसलिये इसको छाया में ही सुखाते हैं। परंतु इसमें बहुत देर लगती है। कभी-कभी दो-दो तीन-तीन बरस तक लकड़ी काम की नहीं होती। अतएव जल्दी करने के लिये इसको गरम हवा या उबलते हुए पानी की भाप से सुखाते हैं। गरम हवा से सुखाने में दोष यह होता है कि वह बाहर से सूख जाती है, पर कोषों के भीतर के माँडमय पदार्थ वैसे ही बने रहते हैं, जिससे लकड़ी में कीड़े लग जाते हैं। पानी की भाप से कोष के भीतर का पदार्थ उड़ जाता है, जिससे लकड़ी निर्बल पड़ जाती है। ओज़ोन से लकड़ी सिझाने की रीति सबसे अच्छी जान पड़ती है। इस रीति में मंद आँच और ओज़ोन-मिली हवा, दोनों से काम लिया जाता है, जिससे कोषों का रस ओज़ोन के साथ मिलकर रूपांतरित हो जाता है, और साथ ही पानी भी उड़ता जाता है। इस क्रिया के लिये विशेष प्रकार के दो भट्ठे बनाए जाते हैं, एक बहुत बड़ा दूर तक फैला हुआ रहता है, और दूसरे में कई ख़ाने होते हैं। लकड़ी की दशा के अनुसार यह क्रिया दस से पंद्रह दिन तक की जाती है। इतने ही समय में हरी लकड़ी इतनी सीझ जाती है, मानो वह दस बरस तक हवा और पानी का प्रभाव सह चुकी है। ऐसा करने से उसकी भौतिक रचना में कोई अंतर नहीं पड़ता, और न इसमें यांत्रिक, रासायनिक अथवा सूक्ष्म-दर्शक यंत्रों की जाँच ही से कोई अंतर देख पड़ता है। पेरिस में यह रीति व्यापारिक ढंग से बर्ती जा रही है।

महावीरप्रसाद श्रीवास्तव



१. स्त्री-शिक्षा का अंतिम फल

भारतवर्ष में बहुत लोगों का विश्वास है कि स्त्री-शिक्षा के विस्तार तथा उन्नति के साथ-साथ गृहस्थी का सुख मिटता जा रहा है ; किंतु अमेरिका में स्त्री-शिक्षा का विस्तार होने पर भी उल्टी बात सुनी जा रही है । विमेन-सिटीज़ेन-नामक पत्र में इस विषय पर एक विचार-पूर्ण लेख प्रकाशित हुआ है । उसका मर्मांश यहाँ पर दिया जाता है—

"आजकल हम लोग जिसे गृह-कार्य समझते हैं, पचास वर्ष बाद उसका कोई चिह्न न रह जायगा । इसमें संदेह नहीं कि उस समय दास-दासियों का नाम तक न रहेगा । पैट-इंस्टीव्यूट के गार्हस्थ्य-विज्ञान के अध्यक्ष मि० फ्रेडरिक डब्लू हो ने यह भविष्यद्वाणी की है । उक्त संस्था के अन्यान्य शिक्षक और शिष्यों की भी यही धारणा है ।

"मि० हो कहते हैं—'पचास वर्ष बाद घरों में दास-दासियों की आवश्यकता नहीं रहेगी ; किंतु अमेरिकन गृह-संसार उस समय आधुनिक घरों की तुलना में अधिक चित्ताकर्षक और कर्मशील होगा ।'

"मैंने कहा—'गृहस्थी चलाने और उसे सब प्रकार से सुखमय बनाने के लिये परिश्रम की आवश्यकता है, और केवल एक मनुष्य के परिश्रम द्वारा ऐसा होना संभव नहीं ।'

"उन्होंने कहा—'यह बात ठीक है, किंतु भविष्य में मनुष्य अपने सांसारिक कार्यों में अधिक समय लगावेंगे, और यदि बाहर के मनुष्यों की आवश्यकता हुई, तो घंटे, दिन या सप्ताह के हिसाब से शिक्षित विशेषज्ञ अधिक मेहनताने का काम पा सकेंगे । जिस प्रकार के काम के लिये जैसे मनुष्यों की आवश्यकता होगी, वैसे मनुष्य भाड़े पर (मज़दूरी देने पर) पाए जायँगे । घर का काम नीचा या घृणित नहीं समझा जायगा । आजकल भी इस विषय की जो हीन धारणा मनुष्यों के हृदय में है, वह कम हो रही है । भविष्य में गृह-कार्य को मनुष्य श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखेंगे । अन्य प्रकार के कामों को हम लोग जिस श्रद्धा से देखते हैं, उसी श्रद्धा से गृह-कार्यों को भी देखने लगेंगे ।'

"एक सौ वर्ष पहले घर ही सामाजिक जीवन का केंद्र था । बहुतेरे शिल्प-व्यवसायों का केंद्र भी घर ही था । गत शताब्दी से अनेक प्रकार के वैज्ञानिक आविष्कार, कारख़ानों का उद्भव तथा हमारी जीवन-यात्रा की प्रणाली में पूर्ण परिवर्तन होने से घर के बहुत-से पुराने कामों का लोप हो गया है । हम लोगों ने कुछ दिन परिवर्तन-युग में अपना समय बिताया है । इस देश के मनुष्यों में एक दोष यह भी है कि वे किसी बीच के स्थान में नहीं ठहरते; सिद्धि की चरम सीमा तक पहुँचकर ही दम लेते हैं ।

"इस विषय में भी हम लोगों ने चरम सीमा पर पहुँचने के समय घर के सब कार्यों और कर्तव्यों से उन्हें वंचित किया था । बीच की सीमा पर लौट आने के समय बहुत-से गृह-कार्यों को भी लौटा लाना होगा । पृथ्वी पर बहुत-से ऐसे कार्य हैं, जो केवल गृह-कार्य ही के अंतर्गत हैं । इसी से मैं समझता हूँ कि पारिवारिक जीवन पुनः

लौट रहा है। प्राचीन समय में जो पारिवारिक जीवन था, वह पुनः लौट नहीं सकता; किंतु इस नए जीवन में अध्ययन और गंभीर ज्ञान के फल-स्वरूप और भी दृढ़ता और उन्नति देख पड़ेगी।

"विवाहित स्त्रियों में से बहुत-सी स्त्रियाँ अपने जीवन का अधिकांश भाग गृहस्थी को सुखमय बनाने में बितावेंगी। पहले स्त्रियों को अपना भरण-पोषण करने योग्य शिक्षा दी जायगी। शिक्षा समाप्त होने पर शायद कुछ अपनी इच्छानुसार कुछ वर्षों तक कार्य करें। इसके बाद वे ब्याह करेंगी, और संतान पैदा कर उनके पालन-पोषण तथा गृहस्थी के संचालन में अपना समय बितावेंगी। इस प्रकार स्त्रियाँ मानसिक, आर्थिक तथा शारीरिक, सभी दृष्टियों से गृह-कार्य तथा संतान-पालन में अनुरक्त रहेंगी।

"स्त्रियाँ अपना काम तथा संतानों का लालन-पालन स्वयं करेंगी, तथा आवश्यकतानुसार रसोई बनाने आदि गृह-कार्यों में शिक्षित विशेषज्ञों से सहायता लेंगी। पहले जिस प्रकार विशेषज्ञ लोग संसार का एक अंग होकर रहते और विना कुछ पारिश्रमिक लिए ही दूसरों का काम कर देते थे, अब वैसा नहीं होगा। वे अब श्रेणी-मुक्त होकर अन्यान्य शिक्षित व्यवसायियों की भाँति ही रहेंगे। अपना पारिश्रमिक लेकर दूसरों का काम करेंगे, और डॉक्टर, शिक्षक तथा वकील आदि व्यवसायियों की भाँति सम्मान-भाजन होंगे।

"किसी-किसी शहर में गृह-कार्य को एक व्यवसाय में परिणत कर देने का आंदोलन हो रहा है। जीवन-व्यापी शिक्षा के प्रति हम लोगों का एक सार्वजनीन खिंचाव होने तथा शिक्षितों के कार्य का मूल्य समझने से मनुष्य-समाज की आँखों में गृह-कार्य की मर्यादा बढ़ रही है। इस कार्य के लिये मनुष्य पाना सर्व-साधारण की सम्मति पर निर्भर रहता है। मैं ऐसी बहुत-सी शिक्षित युवतियों को जानता हूँ, जो गृह-कार्य करने के लिये इस शर्त पर राज़ी हैं कि मनुष्य अपनी गृह-कार्य-संबंधी हीन धारणा छोड़ दें। सभी व्यवसायों में मनुष्य अपनी कार्य-पटुता के उपयुक्त मूल्य और सम्मान-जनक व्यवहार पाते हैं। यदि स्त्रियाँ भी अपने परिश्रम का उपयुक्त मूल्य और सम्मान पावें, तो वे अर्थ के बदले में दूसरे के घर जाकर गृह-कार्य करने के लिये तैयार हैं। सभी देशों के सभी प्रकार के श्रमिकों के मन का भाव बदल रहा है। अंतःपुर में भी इस भाव का प्रचार अवश्य होगा। पहले की भेद-रेखा क्रमशः उठी जा रही है। हो सकता है कि इसी बीच में कोई नई भेद-रेखा दिखाई दी हो; क्योंकि आजकल के मनुष्य परासक्त होते हैं, और किसी की उन्नति नहीं देख सकते।"

श्रीउमेशप्रसादसिंह

× × ×

२. गृहस्थ-जीवन और स्त्री-शिक्षा

गृहस्थ-जीवन बड़ा पवित्र और मनोरम है। यदि मनुष्य वास्तविक गृहस्थ-जीवन लाभ करे, तो उसे जीवन-भर में गृहस्थ-जीवन से बढ़कर सुखकारक और कोई जीवन न मिलेगा। संसार में रहकर इसी जीवन में मनुष्य अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है। प्राचीन काल में, भारत में, गृहस्थ-जीवन बड़ी उच्च स्थिति में था। तब के और आज के गृहस्थ-जीवन में आकाश-पाताल का अंतर है।

आजकल का गृहस्थ-जीवन शांति से सर्वथा शून्य हो रहा है। पहले गृहस्थ-जीवन का अर्थ स्त्री, पुत्र, कलत्र आदि से मिलकर एक गृह में निवास था; पर अब इसका वास्तविक अर्थ कृषकों ही पर लागू होता है। वास्तव में यदि भारतवासी पवित्र गृहस्थ-जीवन-भोगी कहलाने के अधिकारी हैं, तो वे आधुनिक कृषक ही। इतर समाजों का गृहस्थ-जीवन तो बस एक ठाठ-भर रह गया है। आजकल के गृहस्थ-जीवन में फूट, कलह एवं अनैक्य का साम्राज्य स्थापित है। इसका मूल-कारण स्त्री-समाज का अशिक्षित होना है। सच्ची बात तो यह है कि आजकल का संपूर्ण स्त्री-समाज (शिक्षित और क्या अशिक्षित) गृहस्थ-जीवन की वास्तविक महत्ता से सर्वथा परे हो रहा है। गृहस्थ-जीवन में स्त्रियों का सर्व-प्रथम कर्तव्य पति-पद-भक्ति और उसके पश्चात् बच्चों का लालन-पालन और शिक्षण ही है। बच्चों पर माता ही का प्रभाव पड़ता है। यदि माताएँ अपना पूर्ण कर्तव्य-पालन करें, तो साधारण स्थिति में पाले हुए बच्चे भी समाज और राष्ट्र के सच्चे सेवक हो सकते हैं। बच्चों की अवनति तथा उन्नति के असल उत्तरदाता माता-पिता (विशेषकर माताएँ) ही हैं। बच्चा अपनी माता ही के कार्यों का अनुसरण करता है। यदि माता विदुषी है, तो लड़का भी अवश्य सभ्य, शिष्ट और विद्वान् होगा। इस संबंध में एक कथा भी कही जाती है। वह इस प्रकार है—

"एक माता, जो गर्भवती थी, एक कुरता काट रही थी। पर कपड़ा छोटा होने के कारण प्रचलित और अभ्यस्त काट के हिसाब से कुरता नहीं कटता था। बात यह थी कि वैसा कपड़ा उन दिनों उस शहर में मिलता न था। कपड़ा किस काट के हिसाब से काटा जाय कि उतने ही कपड़े में काम चल जाय, तीन-चार दिन तक वह स्त्री यही सोचती रही। अंत को एक दिन उसे एक दूसरी काट सूझ गई, और वह उसी दूसरे तरीक़े से कुरता काटने में कृत-कार्य हुई। कहते हैं कि इस सोचने का उस बालक पर इतना प्रभाव पड़ा कि वह बड़ा होने पर एक बड़ा गणितज्ञ निकला।" इसीलिये किसी विद्वान् ने कहा है कि "मनुष्य की शिक्षा उसके पैदा होने के २० वर्ष पूर्व से आरंभ होनी चाहिए।" संसार में जितने बड़े-बड़े विद्वान् हो चुके हैं, सब पर उनकी माताओं का प्रभाव पड़ा है। इसलिये गृहस्थ-जीवन में स्त्रियों को बच्चों की आरंभिक शिक्षा पर विशेष ध्यान रखना आवश्यक है।

बच्चों के उचित लालन-पालन और शिक्षण का यह आदर्श हिंदू-समाज में तब तक कार्यरूप में परिणत नहीं हो सकता, जब तक गृहस्थ-जीवन ऐक्य-सूत्र में आबद्ध नहीं होता। परंतु यहाँ तो स्थिति ही विपरीत है। यहाँ के परिवारों में कलह का तो मानो अखंड राज्य स्थापित है। यहाँ तो सास-बहू, देवरानी-जेठानी, तथा ननद-भावज में किसी-न-किसी तरह कलह और मनोमालिन्य हो ही जाता है। फिर स्त्री-समाज के शिक्षित न होने के कारण यह गृह-कलह होना आश्चर्य-जनक भी नहीं। जिस परिवार में माता-पिता के आज्ञा-पालक भक्त पुत्र हैं, पति का पत्नी पर अटल अनुराग और पति के पाद-पद्मों में पत्नी की अविचल भक्ति है, भाइयों में अपार सौहार्द है, सास-बहू, देवरानी-जेठानी तथा ननद-भावज में परस्पर भक्ति और प्रेम-भाव है, उसी परिवार में सच्चा सुख है। वहीं स्वर्ग है, वहीं प्रेम की मंदाकिनी प्रवाहित होती है। पर अब तो होता यह है कि मनुष्य जब मज़दूरी करके दिन-भर का थका हुआ शांति-लाभ के लिये आता है, तब उसकी भार्याएँ कटु कलह से उनका सत्कार करती हैं! आज वस्त्र के लिये फूली बैठी हैं, कल आभूषण के लिये। दरिद्रता तो भारत के गृहस्थ-जीवन की मानो चिरसंगिनी ही है। परंतु जिन परिवारों में लक्ष्मी-देवी की कृपा है, वहाँ भी उसका सदुपयोग नहीं होता। बच्चों के कपड़े इतने मैले रहते हैं कि उन्हें देखकर घृणा होती है। घर कूड़ा-ख़ाना बना हुआ है। सफ़ाई की ओर उनका ध्यान ही नहीं। बच्चे रोया करते हैं, परंतु भार्याएँ लड़ने से भला कब चूकनेवाली! आचरण, व्यवहार, रहन-सहन, स्वभाव और जीवन में कलह, कटु-वाद, अनुदारता और अनैक्य पूर्ण रूप से अपना अधिकार जमाए हुए हैं। गृहस्थ-जीवन का इससे अधिक अधःपतन और क्या हो सकता है? स्त्रियों को सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे ही पति और परिवार को आनंद दे सकती हैं; वे ही उनके सुख-दुःख और आपत्ति की संगिनी हैं; उन्हीं की कार्य-पटुता से गृहस्थ-जीवन शांतिमय और सुखकर हो सकता है।

स्त्री-समाज की इस दुरवस्था का मूल कारण शिक्षा का अभाव है। जब तक स्त्री-समाज में शिक्षा का पर्याप्त प्रसार नहीं होता, तब तक यह दशा बदलने की नहीं। और, स्त्री-समाज की शिक्षा का उत्तरदायित्व आधुनिक स्थिति के अनुसार भारतीय पुरुष-समाज ही पर है।

शारदाप्रसाद भंडारी

× × ×

३. बंगीय महिला-शिक्षिका-डेपुटेशन

बेथून-कॉलेज की अध्यक्षा श्रीमती राजकुमारी दासी के नेतृत्व में एक महिला-डेपुटेशन मंत्री सर सुरेंद्रनाथ से मिला था। डेपुटेशन ने निवेदन किया कि प्राथमिक शिक्षा स्त्रियों के लिये अनिवार्य की जाय, और दस वर्ष के लड़के तथा लड़कियों को एकसाथ शिक्षा देने की व्यवस्था की जाय। उन्होंने यह भी कहा कि स्त्रियों को स्वास्थ्य-संबंधी शिक्षा देने के लिये एक डॉक्टर की नियुक्ति भी की जाय। मंत्रीजी ने उत्तर दिया कि इस संबंध में शिक्षा-विभाग भरसक प्रयत्न करने का प्रबंध करेगा।

डेपुटेशन का यह भी कहना था कि म्युनिसिपलिटी के चुनाव में वोट देने का अधिकार स्त्रियों को भी दिया जाय। उत्तर मिला कि बंगाल की सभी म्युनिसिपलिटियों की अवस्था एक-सी नहीं है। इस कारण इस प्रकार का कोई विशेष नियम नहीं बनाया जा सकता; किंतु, हाँ, नई म्युनिसिपलिटी के नियम में स्त्रियों को वोट का अधिकार देने के लिये भी कोई व्यवस्था अवश्य की जायगी।

× × ×

४. एक शुभ अनुष्ठान

अभी हाल ही की बात है कि कितने ही भद्र पुरुष तथा महिलाओं ने कलकत्ते के सर आशुतोष चौधरी के घर पर जमा होकर शिशुओं तथा स्त्रियों की रक्षा के प्रस्ताव पर विचार करने के लियें एक समिति का संगठन किया है। त्यागे हुए शिशुओं, निराश्रय बालकों तथा अधर्म से जीविका-निर्वाह करनेवाली स्त्रियों की रक्षा के लिये यह समिति एक आश्रम की स्थापना करेगी। इस आश्रम में जो रक्खे जायँगे, उन्हें गृह-शिल्प की शिक्षा दी जायगी, तथा उनके जीविका-निर्वाह की कोई-न-कोई व्यवस्था का आयोजन भी कर दिया जायगा।

हम इस समिति की शुभ इच्छा के सफल होने की कामना करते हैं। किसी भी देश में ऐसी स्त्रियों की कमी नहीं, जो दुरात्माओं के अत्याचार से पद-स्खलित तथा बुरे लोगों की मन-मानी पशु-प्रवृत्ति का शिकार बनने से बची हों। सुअवसर पाकर ये अपने जीवन की गति को बहुत अंशों में फिरा सकती हैं।

× × ×

५. चीन की स्त्रियों में जागृति

चीन-देश के नारी-समाज में जागरण की एक अद्भुत खलबली मची हुई है। कैंटन में एक महिला को इसलिये प्राण-दंड दिया गया है कि उसने एक राजनीतिक विप्लव में बहुत बड़ा भाग लिया था। एक और विदुषी महिला उस प्रांत के सहकारी शासन-कर्ता के पद पर नियुक्त हुई है। मिस पिनस्थली नाम की एक युवती कोलंबिया-विश्वविद्यालय से पी-एच्० डी० की उपाधि प्राप्त कर किसी विश्वविद्यालय के नारी-विभाग में प्रधान अध्यक्ष का काम करती हैं।

× × ×

६. वंग-महिला को डिग्री

चौबीस परगना-ज़िले के अधिवासी श्रीयुत शशि भूषण वसु की कन्या श्रीमती सुजाता वसु ने लीड्स-विश्वविद्यालय से 'मास्टर ऑफ़् एज्युकेशन' की डिग्री प्राप्त की है। वह कलकत्ता-विश्वविद्यालय से अँगरेज़ी में एम्० ए० पास कर विलायत चली गई थीं। वहाँ उन्होंने सर माइकेल सडलर के अधीन रहकर "भारतीय शिक्षा पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव"-नामक एक गवेषणा-पूर्ण प्रबंध लिखा था।

× × ×

७. मुसलमान-छात्रियों की सफलता

इस वर्ष बी० ए० की परीक्षा में अनेक छात्रियाँ विशेष सफलता के साथ उत्तीर्ण हुई हैं। मिस सैयद खावेर सुलतान नाम की एक मुसलमान-छात्री ने इतिहास में द्वितीय स्थान प्राप्त किया है। यह मुसलमान-समाज के अन्यतम नेता श्रीयुत आग़ा मजीद इस्लाम की तीसरी लड़की हैं। इनकी और दोनों बहनें भी सुशिक्षिता हैं। समाज का इतना कड़ा तथा संकीर्ण नियम रहते हुए भी इन मुस्लिम-छात्रियों ने अपनी जिस अद्भुत शक्ति का परिचय दिया है, उसे स्मरण कर हम इन्हें हृदय से बधाई दिए विना नहीं रह सकते।

× × ×

८. नारी-सदस्या

रंगून की जन-प्रिय स्त्री-डॉक्टर मिस किंगस्ली विना किसी प्रतियोगिता के रंगून-कारपोरेशन की सदस्या निर्वाचित हुई हैं। बर्मा में आप ही प्रथम म्युनिसिपल-नारी-सदस्या हैं।

मिस वेहन दिल्ली-विश्वविद्यालय की सदस्या मनोनीत हुई हैं।

गोपीनाथ वर्मा

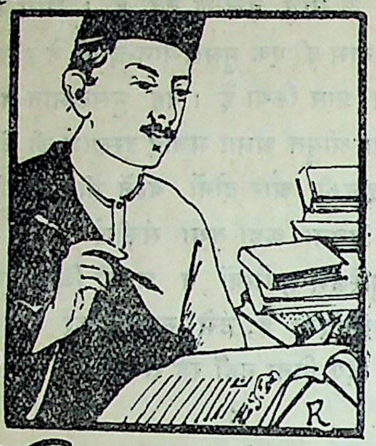
× × ×

९. अमेरिका की बारह सर्व-श्रेष्ठ महिलाएँ

अमेरिका के महिला-सम्मेलन ने निम्न-लिखित बारह स्त्रियों को उनके नाम के आगे लिखे विषयों में पारंगत या सर्व-श्रेष्ठ होने की पदवी दी है—

जेन एडम्स	...	परोपकार
सिसिलिया बो	...	चित्रकला
फ़ेनी कैनन	...	ज्योतिष
केरी कैट	...	राजनीति
आना कामस्टक	...	जीव-विज्ञान
मिनी फ़िस्के	...	अभिनय-कला
लूइस होमर	...	संगीत
जूलिया लेफ़्रोप	...	शिशुपालन
केरी टामस	...	शिक्षा देना
फ़्लोरेंस रेनासेबिन	...	शारीरक-विज्ञान
मार्था रेंसलर	...	गृह-शिल्प
एडिथ हावर्टन	...	साहित्य

कृष्णकुमारी



पुस्तक-परिचय

१. काव्य

सुमन—लेखक, पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी। प्रकाशक, साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी)। पृष्ठ-संख्या १३७। खद्दर की जिल्द। काग़ज़ तथा छपाई उत्तम। मूल्य १)

इस पुस्तक में पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी की चुनी हुई ३१ कविताओं का संग्रह है। प्रकाशक के आग्रह करने पर स्वयं लेखक महोदय ने कविताएँ चुन दी हैं। सन् १८६४ ईसवी से लगाकर १९२० तक भिन्न-भिन्न अवसरों पर इनकी रचना हुई है। ये सभी कविताएँ समय-समय पर 'सरस्वती' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। 'काव्य-मंजूषा' नाम से पहले द्विवेदीजी की कविताओं का एक और संग्रह भी प्रकाशित हुआ था; पर वह अब अप्राप्य है। प्रस्तुत सुमन-संग्रह में 'मंजूषा' में प्रकाशित अनेक कविताएँ निकाल डाली गई हैं, और कई नवीन रचनाएँ जोड़ दी गई हैं। संगृहीत ३१ कविताओं में ८ संस्कृत की हैं, शेष २३ खड़ी बोली की। विषय-विभाग के अनुसार १० कविताएँ फुटकर विषयों को लेकर बनी हैं। ७ का संबंध स्वदेश से है, तथा ६ का हिंदी-साहित्य से। ४ कविताएँ अनुवाद-मात्र हैं, तथा चार में कान्यकुब्ज-समाज का चित्र है।

वर्तमान हिंदी-साहित्य के कर्णधारों में द्विवेदीजी का स्थान बहुत ऊँचा है। कविता के संबंध में आपका यह मत अभिनंदनीय है—

"सुरम्यता ही कमनीय कांति है;
अमूल्य आत्मा रस है मनोहरे।
शरीर तेरा सब शब्द-मात्र है;
नितांत निष्कर्ष यही, यही, यही।"

द्विवेदीजी की कविता की समालोचना ही क्या? वह प्रत्येक हिंदी-प्रेमी के आदर की वस्तु है। प्रकाशक महोदय ने हिंदी-संसार के लिये यह संग्रह सुलभ करके बड़ा अच्छा काम किया। सामाजिक कविताओं में 'कान्यकुब्ज-लीलामृतम्' बहुत अच्छा बन पड़ा है। 'देशोपालंभ' में ओज का सराहनीय चमत्कार है। 'स्वदेशी आंदोलन और बॉयकाट' में पहले यह कविता गुमनाम छपी थी। 'द्रौपदी-वचन-बाणावली' में महाकवि भारवि के भावों का बड़ा ही सुंदर अनुवाद हुआ है। द्विवेदीजी की अधिकांश कविताओं में उपयोगितावाद की छाप है। हमारा विश्वास है कि इस संग्रह का हिंदी-संसार में समुचित सत्कार होगा।

× × ×

पद्य-पुंज—लेखक, पं० श्यामलाल पाठक। प्रकाशक, सिंगई मीजीलाल अमृतलाल, संचालक लोकमान्य-पुस्तक-भंडार, लार्डगंज, जबलपुर (मध्य-प्रदेश)। पृष्ठ-संख्या ७१; पद्य-संख्या २८। काग़ज़ तथा छपाई साधारण। मूल्य ।=)

पं० श्यामलाल पाठक ने समय-समय पर जिन २८ विषयों को लेकर छंदोबद्ध रचनाएँ की हैं, उन्हीं का प्रस्तुत पुस्तक में संग्रह है। इसका नाम 'पद्य-पुंज' बहुत

ही उचित रक्खा गया ; क्योंकि वास्तव में कवित्व-गुण से मंडित पंक्तियाँ इसमें बहुत ही थोड़ी हैं । पाठकजी में अनुकरण-प्रियता बहुत अधिक मात्रा में है । इस संग्रह के अनेक पद्य ऐसे हैं, जो अन्य पद्य-लेखकों की रचनाओं को सामने रखकर लिखे गए हैं । उदाहरण के लिये 'मालती'-पद्य को लीजिए । यह पद्य स्वर्गीय श्रीयुत मन्नन द्विवेदी, गजपुरी की 'चमेली'-नामक रचना की हूबहू नक़ल है । हमें यह कहने में कुछ भी संकोच नहीं कि अनुकरण करके भी पाठकजी 'मालती' में वह बात नहीं पैदा कर सके, जो 'चमेली' में है । 'पद्य-पुंज' का कोई-कोई पद्य तो कोरा पद्य-बद्ध गद्य ही है । देखिए—

प्रिय बंधुओ ! सोचो जरा
किस कर्म से तुम श्रेष्ठ थे ;
क्यों पूज्य, नायक, ज्ञान-दाता,
धर्म-विज्ञ यथेष्ट थे ।
वेद का पाठन-पठन
केवल तुम्हारा कर्म था ;
नित ब्रह्म-विद्या में बढ़ा
अनुराग सुंदर धर्म था ।

कविता करने के लिये उतावले अनेक उत्साही नवयुवक प्रारंभ में जिस प्रकार की पद्य-रचना करते हैं, पाठकजी के पद्य-पुंज में भी अधिकांश वैसी ही पंक्तियाँ हैं । फिर भी लेखक का उत्साह सराहनीय है । हमारा विचार है कि यदि पाठकजी पद्य-रचना के मार्ग में कुछ सावधानी से चलेंगे, अपने हृदय और मस्तिष्क को विशेष रूप से अभ्यस्त करेंगे, दूसरों के अनुकरण को ही सर्वस्व मानने की नीति को छोड़ देंगे, तो समय पाकर कविता करने में भी अवश्य समर्थ होंगे ।

× × ×

शक्ति-चरितामृत—लेखक, ज्यो० शिवप्रकाशजी । उन्हीं से सामीघाट, मथुरा के पते से प्राप्य । पृष्ठ-संख्या ८० । सं० १९५९ में मुद्रित । काग़ज तथा छपाई साधारण । मूल्य ।।)

यह प्रसिद्ध पुस्तक दुर्गा-सप्तशती का छंदोबद्ध अनुवाद है । अनुवाद-कार्य में दोहा तथा चौपाई की ही अधिकतर सहायता ली गई है । हमने यत्र-तत्र पुस्तक पढ़ी, तो अनुवाद सुंदर पाया । पद्य-प्रवाह सरल है, अर्थ-गौरव भी नष्ट नहीं होने पाया । दुर्गा-सप्तशती में वर्णित कथा को जो लोग हिंदी में पढ़ना चाहें, उन्हें 'शक्ति-चरितामृत' देखना चाहिए । 'दुर्गा-सप्तशती' के हिंदी में और भी कई अनुवाद हुए हैं । उनमें कविवर कुलपति मिश्र-रचित 'दुर्गा-भक्ति-चंद्रिका' की रचना बहुत अच्छी हुई है । हमारे पितृव्य स्वर्गवासी द्विजराजजी ने भी 'विजयानंद-चंद्रिका' के नाम से सप्तशती का अनुवाद किया है । नीचे हम सप्तशती के एक स्थल का अनुवाद देते हैं । पाठकगण तीनों ही कवियों का अनुवाद-कौशल देखें—

"गर्ज-गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत्पिबाम्यहम्" इत्यादि
(श्रीदुर्गा-सप्तशती)

"लटपटाति मद की उमँग बरन अरुन मुख, नैन ;
मूढ़ गरजि लै छिनक तू, कहै चंडिका बैन ।
जौं लगि मधु हौं पिवति हौं, तौं लगि तो तन प्रान ;
तोहि मरे सुर गर्जिहैं, चढ़ि-चढ़ि बिमल बिमान ।"
(कुलपति)

"मत्त भई मधु पीवत जबहीं ; बोली जननि क्रोध करि तबहीं ।
गर्जहु-गर्जहु मूढ़ अजाना ; जब लौं करौं बहुरि मद-पाना ।
मोसन यहि ठौर तुअ मारे ; गर्जहिं छिन महँ सुरगन सारे ।
(शिवप्रकाश)

"रिस-रस बोरे बंक तीछन अरुन चख,
उदित कपोल रबि-सुखमा गहत हैं ;
पुनि-पुनि पान करि पुलक नवीत अंब,
अधर-ललाई मुख आखर लहत हैं ।
गरज छनक मूढ़ जौ लौं हौं पियत मधु,
तौ लौं खल ख्याल तो सकल निबहत हैं ;
तेरो सिर-खंडि महि मंडिहौं प्रचंड असि,
आसु ही अखिल देव गरज्यो चहत हैं ।"
(द्विजराज)

× × ×

भारत-जागृति—लेखक, श्रीयुत कन्हैयालाल जैन । प्रकाशक, कन्नूजी माहूमल ऐंड सन्ज (?), सुंदर-बिल्डिंग, हबेली-हैदरकुली ख़ाँ, फ़तहपुरी, दिल्ली । पृष्ठ-संख्या ९५ । काग़ज अच्छा, छपाई साधारण । मूल्य १=)

'मंगलाप्रसाद-पारितोषिक' के संबंध में "भारत-भारती" की समालोचना करते हुए कदाचित् इसी पुस्तक को लक्ष्य करके श्रीयुत पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने लिखा था—"अन्य अनेक कवि भी इसके ढंग की

रचना करने लगे हैं। एक * ने तो इस तरह की एक पुस्तक ही लिख डाली है। उसमें कुछ फेर-फार के साथ इसके कितने ही विषयों की नक़ल-मात्र है।" † जो हो, भारत-भारती के प्रतिपाद्य विषय का अनुकरण प्रस्तुत पुस्तक में अवश्य है। भारत-जागृति की कुछ पंक्तियों में कवित्व-गुण का सन्निवेश है। कहीं-कहीं पर पद्य-प्रवाह बिगड़ गया है। कविजी से हमारी प्रार्थना है कि भविष्य में जब वे कोई दूसरा काव्य-ग्रंथ लिखें, तो 'भारत-जागृति' की निम्न-लिखित पंक्तियों पर अवश्य ध्यान रक्खें—

कविता करें सब, किंतु हो आदर्श भावों से भरी;
कुछ हो लिये वैचित्र्य और नवीनता वह सुंदरी।
हो मधुर परिमार्जित सरल भाषा सुशब्द-समूह हो;
पर साथ में ही वह न केवल शब्द-जाल-समूह हो।

मालूम नहीं, 'सुशब्द-समूह' तथा 'शब्द-जाल-समूह' से लेखक का क्या अभिप्राय है? पुस्तक का मूल्य बहुत अधिक रक्खा गया है।

कृष्णविहारी मिश्र

× × ×

मेघदूत-विमर्ष—महाकवि कालिदास-कृत मेघदूत-काव्य की समालोचना और भावानुवाद। होलकर-हिंदी-ग्रंथ-माला का ग्रंथ नं० ११। प्रकाशक, मध्य-भारत हिंदी-साहित्य-समिति, इंदौर। मूल्य २।।)

यद्यपि लेखक की जगह 'अनेक संस्कृत-हिंदी-ग्रंथों के रचयिता पंडित रामदहिन मिश्र काव्य-तीर्थ'जी ही का नाम दिया है, परंतु इसमें पं० रामचरित उपाध्यायजी का किया हुआ मेघदूत का पद्यानुवाद भी सम्मिलित है।

मिश्रजी ने बड़े परिश्रम से इस पुस्तक को लिखा है। इसमें मेघदूत की प्रायः प्रत्येक बात पर पूरी तौर से विवेचना की गई है। मेघदूत-प्रेमियों को इसे अवश्य देखना चाहिए। इसमें प्रसंगानुसार एक दर्जन चित्र भी दिए हुए हैं। खेद है, उपाध्यायजी का पद्यानुवाद उतना सरल नहीं है, जितना कि होना चाहिए था।

भरतानंद भारती

× × ×

* एक नहीं, कई कवियों ने भारत-भारती के ढंग की पुस्तकें लिखी हैं।—माधुरी-संपादक

† सम्मेलन-पत्रिका, भाग १०, अंक ८-९, पृष्ठ ३९६।

२. कहानी, उपन्यास, उपाख्यान और नाटक

आँखों में आँसू—लेखक, प्रो० शैवाल। पृष्ठ-संख्या १५६, और मूल्य १) । श्रीयुत के० के० मुकर्जी वाइस प्रिंसिपल महेंद्र-कॉलेज, पटियाला से प्राप्य।

बहुत दिनों के बाद गल्प-लेखन-कला में एक नवीन शैली के दर्शन हुए। यद्यपि इसमें परिपक्वता अभी नहीं आई, तथापि शैली चित्ताकर्षक अवश्य है। शायद प्रो० शैवाल का यह पहला प्रयत्न है। एक स्थल पर कई वाक्य 'तरह है' शब्दों से समाप्त हुए हैं। पश्चिमी हिंदी के भी बहुत-से नमूने पाए जाते हैं। यथा—'तुम्हारे से यह नहीं होता है' 'फुटबाल खेली जाती है' इत्यादि। फिर भी इन गल्पों में लेखक की नव प्रतिभा के दर्शन अवश्य होते हैं। सब कहानियाँ वियोगांत हैं। शायद लेखक ने वास्तविक घटनाओं ही के आधार पर इनकी सृष्टि की है। पहली कहानी जिस घटना को लेकर लिखी गई है, उससे तो शायद काशी का समस्त शिक्षित-समाज परिचित होगा। कुछ समय हुआ, क्रींस-कॉलेज के प्रोफ़ेसर नार्मन ने इँगलैंड से अपनी प्रेयसी के किसी दूसरे से ब्याह कर लेने की ख़बर पाकर आत्म-हत्या कर ली थी। अन्य कहानियों के रहस्य भी इसी प्रकार खुल सकते हैं। विषय वही, कहानियों का अंत भी वही। ज्यों ही मानव-प्रेम की प्रबल धारा भाग्य की चट्टानों पर टूटकर घटना-क्षेत्र और साथ ही पाठक के हृदय-क्षेत्र में प्रलय-सा मचा देती है, त्यों ही लेखक महोदय उस दृश्य पर, वहीं, परदा डाल देते और पाठकों के हार्दिक तूफ़ान को उनकी आँखों पर दरसाते हुए दूसरे घटना-क्षेत्र के परदे खोल देते हैं। फिर वही रहस्यमय हास्य, प्रेम का उद्गार और वियोग का तूफ़ान।

जो दोष हैं, वे ऐसे नहीं हैं कि आगामी संस्करण में सुधर न सकें। भाषा-संबंधी दोष तो अवश्य ही दूर हो जाने चाहिए। पुस्तक अच्छी है।

× × ×

माता—लेखक, पं० शिवनारायण द्विवेदी। प्रकाशक, राष्ट्र-भाषा-पुस्तक-भांडार, मथुरा। पृष्ठ-संख्या ३०। मूल्य ≈)

इसमें एक छोटी-सी कहानी द्वारा मातृ-स्नेह का चित्र खींचा गया है। कहानी अच्छी है। शिक्षा भी है।

× × ×

वीरबाला—लेखक, श्रीयुत लक्ष्मीसहाय माथुर विशारद। प्रकाशक, साहित्य-निकेतन, गंगधार-राज्य, झालावाड़, राजपूताना। पृष्ठ-संख्या १६; मूल्य ≈)

यह एक शिक्षाप्रद ऐतिहासिक आख्यायिका है। छपाई-सफ़ाई अच्छी है।

× × ×

अनारकली—अनुवादक, श्रीयुत उमरावसिंह कारुणिक, बी० ए०। प्रकाशक, चौधरी शिवनाथसिंह शांडिल्य, ज्ञान-प्रकाश-मंदिर, मेरठ। छपाई-सफ़ाई और काग़ज़ साधारण। पृष्ठ-संख्या ३२। मूल्य ≋)॥

यह कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर की एक गल्प का हिंदी-रूपांतर है। रवींद्र बाबू ने शाहज़ादा सलीम (अपने राज्य-काल में जहाँगीर) तथा नादिरा (उपनाम अनारकली) के ३०० वर्ष के पुराने दुःखांत प्रेम का जीता-जागता चित्र आँखों के आगे उपस्थित कर दिया है। अनुवाद अच्छा है।

× × ×

बलिदान—लेखक, श्रीयुत अखौरी कृष्णप्रकाशसिंह। प्रकाशक, हिंदी-ग्रंथ-भंडार-कार्यालय, बनारस। पृष्ठ-संख्या ३१। मूल्य ≋)

मालूम होता है, यह किसी अँगरेज़ी कहानी का अनुवाद है, किंतु लेखक महाशय ने कुछ बताने की कृपा नहीं की। कहानी अच्छी है।

× × ×

सुरेंद्र—अनुवादक, श्रीयुत नाथूराम-शालग्राम। प्रकाशक, हिंदी-ग्रंथ-भंडार-कार्यालय, बनारस। पृष्ठ-संख्या २६; मूल्य ।)

प्रस्तुत आख्यायिका गुजराती के किसी 'सच्चा मित्र' से अनुवादित है। अनुवादक महाशय के लिये यह उचित था कि इसके गुजराती-लेखक का नाम देकर भाषा-ऋण तो चुका देते। आख्यायिका साधारणतः अच्छी है।

कालिदास कपूर

× × ×

श्रीकृष्ण (सचित्र पौराणिक उपाख्यान)—लेखक, श्रीनवजादिकलाल श्रीवास्तव। प्रकाशक, रिखबदास बाहिती, प्रोप्राइटर दुर्गा-प्रेस और आर० डी० बाहिती ऐंड कं०, नं० ४, चोरबागान, कलकत्ता। ४५१ पृष्ठ। छपाई-सफ़ाई सुंदर। मूल्य ४।।।), ५) और ५1) सादी, रंगीन और रेशमी जिल्द के अनुसार।

इसमें रंगीन और सादे मिलाकर २७ चित्र हैं। इनमें कितने ही अच्छे हैं, तो कुछ भद्दे भी। पुस्तक की भाषा सरल नहीं कही जा सकती। कहीं-कहीं मुहावरों की भी हत्या की गई है। 'परिशिष्ट' (?) में जो कुछ दिया हुआ है, उसे छोड़कर हमें इस पुस्तक में कोई भी विशेषता नहीं दिखाई दी। वह 'परिशिष्ट' भी पं० रामगोविंद त्रिवेदी की 'बड़ी सहायता' का परिणाम है! कलकत्ते के कुछ प्रकाशक भड़कीले रंगों के रद्दी चित्र दे-देकर वृथा पुष्ट पुस्तकों का प्रकाशन करने पर पिल पड़े हैं। और, इस अशुभ कार्य में एक दूसरे से स्पर्धा कर रहे हैं। उनका यह काम कहाँ तक उचित है, यह हम नहीं कह सकते या नहीं कहना चाहते। रही इस पुस्तक की बात, सो एक ही पुस्तक पढ़कर श्रीकृष्ण के विषय में सब बातें जानने की जिन्हें इच्छा हो, वे इसे अवश्य पढ़ें।

× × ×

ईसबनीति-कथा (पहला भाग)—लेखक और संपादक, पं० रामदहिन मिश्र। प्रकाशक और विक्रेता, रामनरायन-लाल, प्रयाग। ६६ सफ़े; मूल्य ।–); छपाई-सफ़ाई अच्छी।

अँगरेज़ी की 'ईसप्स फ़ेबिल्स' नाम की पुस्तक से कुछ कहानियाँ लेकर छापी गई हैं। संग्रह अच्छा हुआ है। भाषा सरल है। 'हवा देह झुलसती (?) हुई बहती थी' आदि ग़लतियाँ बच्चों की पुस्तक में खटकती हैं। चित्र होते, तो और अच्छा होता।

× × ×

उर्वशी वा मोहनकुमारी (चार भाग)—पृष्ठ-संख्या कुल ४०४; मूल्य दो रुपए।

यह पुस्तक 'श्रीक्षेत्र गया, महल्ला ऊपरडीह-निवासी श्रीयुत बाबू पन्नालाल भैया गयावाल द्वारा रचित और प्रकाशित' है। पुरानी चाल का उपन्यास जी बहलाने का साधन है।

× × ×

विश्वबोध (एक आध्यात्मिक नाटिका)—लेखक, पं० मनोहरप्रसादजी मिश्र। प्रकाशक, 'हिंदी-ग्रंथ-भंडार-कार्यालय, बनारस सिटी। ३२ पृष्ठों की नाटिका का मूल्य ।)

नाटिका क्या है, अजीब गोरखधंधा है। लेखक महोदय से हमारा यही नम्र निवेदन है कि

"अगर अपना कहा तुम आप ही समझे, तो क्या समझे ;
मज़ा कहने का जब है, एक कहे और दूसरा समझे।"

पुस्तक में भाषा और छापे की भूलें पाठकों को पद-पद पर समझा रही हैं कि संसार भूल से भरा है।

भरतानंद भारती

× × ×

३. राजनीति

भारतीय शासन-पद्धति (प्रथम और द्वितीय भाग)—लेखक, पंडित अंबिकाप्रसादजी वाजपेयी। प्रकाशक, दि इंडियन नेशनल पब्लिशर्स, लिमिटेड, १५९ मछुआबाजार-स्ट्रीट, कलकत्ता। प्रथम भाग की पृष्ठ-संख्या १३६+६ और द्वितीय भाग की पृष्ठ-संख्या २२८+१०। दोनों भाग का मूल्य २)

इस पुस्तक के प्रथम भाग में सात अध्याय हैं, जिनमें भारत में योरपियनों के आने से लेकर अब तक की बृटिश-शासन-पद्धति का वर्णन है। पुस्तक में सन् १९१९ के गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया ऐक्ट का भी उल्लेख है। पुस्तक की भाषा सरल और मनोरंजक है। उपोद्घात योग्यता-पूर्वक लिखा गया है। इस पुस्तक के पढ़ने से वर्तमान शासन-पद्धति का ज्ञान हो सकता है। साथ ही उसमें आरंभ से अब तक क्या-क्या परिवर्तन हुए, यह भी मालूम हो सकता है।

द्वितीय भाग में भारतीय सेना, स्थानिक स्वराज्य, व्यवस्थापिका सभाएँ, अँगरेज़ों की भारतीय नीति, नई शासन-व्यवस्था, व्यवस्थापक-मंडल, नई व्यवस्थापिका सभाओं और प्रादेशिक व्यवस्थापिका सभाओं का वर्णन है। अंत में तीन परिशिष्ट भी दिए गए हैं। यह भाग पहले भाग से अधिक मनोरंजक हुआ है; क्योंकि स्थान-स्थान पर लेखक ने अपना मत भी प्रकट किया है। हिंदी में ऐसी up-to-date (समयानुकूल) पुस्तक की आवश्यकता थी। पुस्तक लाभ-दायक सिद्ध होगी। भाषा सरल है; किंतु बाज़-बाज़ शब्दों का प्रयोग खटकता है। जैसे वायसराय के फाँसी माफ़ करने के अधिकार के संबंध में लिखा गया है कि "किसी मनुष्य को फाँसी की आज्ञा हो चुकी हो, और प्रादेशिक शासक ने उसकी फाँसी काटना अस्वीकार किया हो, तो उसकी फाँसी काट देना।"

× × ×

हमारी सदियों की गुलामी के कारण—लेखक, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक। प्रकाशक, लत्तानिया-पब्लिशिंग-हाउस, आगरा। पृष्ठ-संख्या ३६। मूल्य दो आने।

स्वामी सत्यदेवजी ने अब एक नया व्रत लिया है। हिंदू-महासभा के मतानुसार अब आप बौद्ध-मतावलंबियों को भी हिंदू-धर्म के अंदर लाना चाहते हैं। भारतीय धर्मों का यह एशिया-व्यापी संगठन कैसा होगा, इसमें कितनी सफलता होगी, और इसका क्या परिणाम होगा, यह कुछ कहा नहीं जा सकता। किंतु इसमें संदेह नहीं कि कुछ लोग इस उद्योग में बड़े जोश-ख़रोश के साथ लगे हैं। स्वामी सत्यदेव भी उन्हीं लोगों में हैं, और उनकी यह पुस्तक उसी आंदोलन के प्रचार की भूमिका है। भूमिका पढ़ने से इस बात का संदेह होता है कि क्या सत्यदेवजी भिक्षु हो गए हैं। इस नवीन मत-परिवर्तन के कारण उनमें नया जोश भी आ गया है। भारत की सदियों की गुलामी के विषय में उनका विचार यह है कि हम हिंदुओं ने बौद्धों के साथ जो अन्याय किया था, हमने जो पाप किए थे, उनकी सज़ा हमें सैकड़ों वर्षों की गुलामी के रूप में मिली है। स्वामी सत्यदेव समझते हैं कि भारत में बौद्ध-धर्म के ह्रास का कारण हिंदू लोगों का अत्याचार है। वह लिखते हैं—"जब शकों ने भारतवर्ष पर हमला किया, तो बौद्ध-राजा के सेनापति पुष्पमित्र ने अपने राजा को जान से मारकर सारी शक्ति अपने हाथ में ले ली। पुष्पमित्र हृदय से बौद्धों का शत्रु था। उसने बौद्धों के क़त्ल-आम का हुक्म दे दिया, और यह घोषणा कर दी कि जो कोई किसी बौद्ध का सिर काट लावेगा, उसे एक अशर्फ़ी इनाम में दी जायगी। लाखों बौद्ध भिन्न-भिन्न ब्राह्मण-धर्मावलंबी राजों के हुक्म के अनुसार तलवार के घाट उतार दिए गए। हज़ारों बौद्ध-भिक्षु जहाज़ों में भर-भरकर समुद्र में डुबा दिए गए। ईर्षा-द्वेषवश सैकड़ों वर्षों का रचनात्मक कार्य मिट्टी में मिल गया, और ऊँचे दर्जे की बौद्ध-सभ्यता भारतवर्ष से लुप्त हो गई। शक्ति के लोभी पुरोहितवर्ग ने बौद्धों का बहिष्कार करने में कोई क़सर बाक़ी नहीं रक्खी। सिंधु-नदी पार करना, हिमालय पार जाना और समुद्र-यात्रा, ये तीनों धर्म के विरुद्ध क़रार दिए गए, ताकि दूसरे देशों में जाकर भारतवासी बौद्ध-धर्म न सीख आवें।" इसके पढ़ने से मालूम होता है कि

हिंदू-राजों ने बौद्धों पर जो अत्याचार किए हैं, उनकी समता नीरो या चंगेज़ ख़ाँ के ही अत्याचारों से हो सकती है। स्वामी सत्यदेव शायद समझते हैं कि एक सजीव धर्म केवल बाहरी अत्याचार से नष्ट किया जा सकता है। उनकी सम्मति ऐसी जान पड़ती है कि बौद्ध-धर्म इतना निर्बल था कि राजनीतिक शक्ति रखनेवालों के पाशविक अत्याचारों ही के कारण उसे भारत से चले जाना पड़ा। किंतु यदि यह मान भी लिया जाय, तो इतिहास ने अभी तक इस बात को प्रमाणित नहीं किया कि भारत में बौद्धों के ऊपर इस प्रकार सर्व-व्यापी अत्याचार हुए थे। स्वामी सत्यदेव इस बात की शिकायत करते हैं कि काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा ने अपनी सूर्यकुमारी-पुस्तकमाला में दो रद्दी उपन्यास निकाले हैं, जिनसे बौद्ध-धर्म के संबंध में बड़ी ग़लतफ़हमी हो जाने का भय है। किंतु वह स्वयं ऐसी बातें कह डालते हैं, जिनके कारण हिंदुओं की सभ्यता और शील पर लांछन लगता है, और जिनकी साक्षी इतिहास अभी तक नहीं देता। हम उन लोगों में नहीं हैं, जो सभी भारतीय संस्थाओं का समर्थन करने को तैयार हो जाते हैं ; किंतु अवश्य ही ऐसी बातें, जिनके बारे में इतिहास चुप है, मानने को तैयार नहीं हैं। बौद्ध-धर्म के ह्रास के कारण इतने तुच्छ नहीं थे, जैसा कि स्वामीजी हमें समझाने का उद्योग करते हैं। जो लांछन स्वामीजी ने पुरोहित-वर्ग और हिंदू-राजों पर लगाए हैं, वे स्वयं बौद्धों में भी मौजूद थे। उनका नैतिक अधःपतन और उनका बुद्ध-भगवान् के सरल उपदेशों को बाह्याडंबर से आच्छादित करना ही बौद्ध-धर्म के ह्रास का कारण था। स्वामीजी के कथन का तात्पर्य यह है कि यदि बौद्ध-धर्म भारत में होता, तो मुसलमान इस देश को न जीत सकते। यह सम्मति भी अनुमान के ऊपर निर्भर है। आगे चलकर आप इस बात की शिकायत करते हैं कि "राजपूतों के सिवा किसी ने भी मुसलमानों का मुक़ाबिला न किया, और उन राजपूत वीरों को सिर्फ़ अपने-अपने जत्थों की मान-मर्यादा बचाने का ख़याल था। देश-हित तथा राष्ट्रीयता की भावना उनमें भी न थी।" स्वामी सत्यदेव यह आशा करते हैं कि दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी में, जब देश और राष्ट्रीयता के आधुनिक अर्थ-संसार की किसी भी भाषा के कोष में न मिल सकते थे, राजपूतों में आधुनिक राष्ट्रीयता के भाव उपस्थित होते। यह तो भूमध्य-रेखा पर रात के बारह बजे सूर्योदय की आशा करना है।

अतएव हमारी सम्मति में स्वामी सत्यदेव ने जो तर्क-शैली ग्रहण की है, वह अनुचित और अनुपयुक्त है। हाँ, हम उनके उद्देश्य से किसी सीमा तक सहमत हैं। अवश्य ही बौद्ध-धर्म भारतीय धर्म है। उसमें और हिंदू-धर्म में वही सादृश्य है, जो नदी और सिंधु में। संसार के केवल ये ही दो महान् धर्म पुनर्जन्म माननेवाले हैं। हिंदुओं के बाज़-बाज़ संप्रदायों में आपस में इतना ही अंतर है, जितना बौद्ध-धर्म और हिंदू-धर्म में। फिर ये दोनों आपस में क्यों न मिलें ? राजनीतिक स्वरूप को छोड़कर इस मिलन में आनंद-ही-आनंद है। राजनीतिक परिणाम का कल्याणकर होना व्यापक दृष्टि से संदिग्ध है, भारत की दृष्टि से अच्छा हो सकता है। इस पुस्तक में इसी हिंदू-बौद्ध-मिलन का समर्थन है। पुस्तक अच्छी है, और इसमें विचार करने की सामग्री भी है। अंत में बौद्ध-धर्म के अहिंसा-तत्त्व और कर्मण्यता पर विचार किया गया है। बौद्धों को बुद्ध-गया लौटा देने के प्रस्ताव का भी समर्थन है। पुस्तक सभी विचार-वाले लोगों को पढ़नी चाहिए।

श्रीनारायण चतुर्वेदी

× × ×

४. धर्म

दानतत्त्वमीमांसा—प्रकाशक, ठाकुर दयालभाई इंदरजी चेरीताल, जबलपुर। लेखक, पंडित बालमुकुंद त्रिपाठी। आकार छोटा। पृष्ठ-संख्या ३२। प्रकाशक से विना मूल्य मिलती है।

भारतवासी अपनी परिस्थिति के अनुसार दान देने में अन्य किसी देश के निवासियों से पीछे नहीं हैं। परंतु हमारे दान का बहुत-सा भाग दान देनेवालों की लापर्वाही के कारण ऐसे व्यक्तियों के हाथों में चला जाता है, जिनसे देश को कुछ भी लाभ नहीं होता। इस पुस्तक में धर्म-ग्रंथों के आधार पर यह बहुत अच्छी तरह से बतलाया गया है कि दान किनको दिया जाना चाहिए। लेखक महाशय ने यह अनुरोध किया है कि हर ज़िले के प्रत्येक प्रधान नगर में 'दानार्थ धन-संग्रह-कारिणी'-सभाएँ संगठित की जायँ, और

उनके सदस्य ऐसा प्रबंध करें, जिससे प्रत्येक व्यक्ति का यथाशक्ति दिया हुआ दान उनके कोष में यथा-समय आता रहे, और उससे विद्या-दान के जो काम चलाए जायँ, वे भली भाँति चलते रहें। प्रस्ताव बहुत उत्तम है। प्रत्येक देश-हितैषी सज्जन को इस पर अवश्य विचार करना चाहिए। पुस्तक का प्रचार खूब होने के लिये इस पुस्तक के प्रकाशक श्रीमान् ठाकुर दयाल-भाई इंदरजी इसे विना मूल्य बाँट रहे हैं। यदि कोई महाशय इस पुस्तक की एक से अधिक प्रति मँगाना चाहते हों, तो वह भी उन्हें प्रकाशक से विना मूल्य मिल सकती हैं।

दयाशंकर दुबे

× × ×

५. विविध

तरंग—लेखक, सूर्यपुराधीश राजा राधिकारमणप्रसाद-सिंह एम्० ए०। प्रकाशक, बिहार-प्रादेशिक हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, मुजफ्फरपुर। पृष्ठ-संख्या १७७। मूल्य ॥=)

इसमें बात-चीत के रूप में वर्तमान काल के प्रचलित सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नों पर प्रकाश डाला गया है। शैली रोचक है, भाषा लच्छेदार है। लेखक महाशय ने प्रत्येक प्रश्न के दोनों पहलुओं को निरपेक्ष भाव से दिखाने का प्रयत्न किया है। असहयोग के विरोधी क्या दलीलें पेश करते हैं, और उसके समर्थक उनका क्या उत्तर देते हैं, यह राय साहब और रमेश बाबू की बात-चीत से स्पष्ट हो जाता है। पं० किशोरीलाल समाज-सुधारक, परदे के विरोधी और स्त्री-शिक्षा के पक्षपाती हैं। गुरुजी कट्टर सनातन-धर्मी हैं, और प्रचलित प्रथा के समर्थक। राजनीतिक तथा सामाजिक प्रश्नों पर प्रकाश डालने का यह ढंग सुबोध तथा मनोरंजक है।

कालिदास कपूर

× × ×

कुमारपाल-चरित—लेखक, श्रीमद्वल्लभविजयजी के शिष्य मुनि श्रीललितविजयजी। प्रकाशक, श्रीअध्यात्मज्ञान-प्रसारक-मंडल, बंबई। आकार २०×२६ अठ-पेजी। कागज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी। पृष्ठ-संख्या २१०, और मूल्य जिल्द-दार प्रति का ।=)

यह गुजरात के राजा कुमारपाल का जीवन-चरित है। राजा कुमारपाल के चरित्र के साथ उनके धर्मगुरु श्रीहेमचंद्राचार्य का जीवन-वृत्तांत भी दे दिया गया है। श्रीहेमचंद्राचार्य ने ९ वर्ष की अवस्था में जिन-दीक्षा अंगीकार की, और १७वें वर्ष में आचार्य-पद पर प्रतिष्ठित हुए। राजा कुमारपाल ने जैन-धर्म का अपूर्व प्रचार करते हुए ८० वर्ष की अवस्था में, संवत् १२३० में, शरीर-त्याग किया। इन्होंने व्याकरण, न्याय, काव्य, कोष, अलंकार, छंद, नीति, स्तुति आदि विषयों पर अनेक ग्रंथ लिखे हैं।

कुमारपाल के समय में अहिंसा का ऐसा प्रचार हुआ कि अब तक गुजरात-देश में मांसाहार की छाया तक नहीं है। महात्मा गाँधी-जैसे पुरुषोत्तम ने गुजरात में जन्म लिया, और गुजराती-जनता इतनी सदाचारी है कि महात्मा गाँधी ने सत्याग्रह-जैसे दुर्धर तपश्चरण के प्रारंभ करने का विचार गुजरात से ही किया था। महात्मा गाँधी का कथन है कि उनके जीवन पर जैन-धर्म की छाप पड़ी है। पुस्तक शिक्षा-प्रद और धर्म-भाव-प्रवर्द्धक है।

× × ×

आबू-जैन-मंदिरों के निर्माता—लेखक, श्रीललित-विजयजी। प्रकाशक, श्रीआत्मानंद-जैन-सभा, अंबाला। आकार २०×३० सोलह-पेजी। कागज़, छपाई-सफ़ाई सुंदर। पृष्ठ-संख्या १८८, जिल्द-बँधी प्रति का मूल्य ॥)

आबू-गिरि पर विमलशाह और तेजपाल-वस्तुपाल के बनवाए हुए जो जैन-मंदिर हैं, उनकी कारीगरी अनुपम है। आगरे के ताज-बीबी के रौज़े में पच्चीकारी का बारीक काम है। आबू के जैन-मंदिरों में संगमरमर में ही इतनी बारीक खुदाई का काम किया गया है कि उसका नक़शा कागज़ पर उतारना मुश्किल है। ये मंदिर ग्यारहवीं शताब्दी में करोड़ों रुपए लगकर बनाए गए हैं। इस पुस्तक में इन्हीं मंदिर बनवानेवालों के जीवन-चरित्र दिए गए हैं। मंदिरों का कुछ वर्णन परिशिष्ट-रूप में दिया गया है, जिसका अधिक भाग अँगरेज़ी-लेखों का अनुवाद है। इन मंदिरों का सविस्तर वर्णन एक-एक भाग के फ़ोटो-रूप में प्रकाशित करने की आवश्यकता है।

अजितप्रसाद

× × ×

६. पत्र-पत्रिकाएँ

'कल्पवृक्ष' (मासिक पत्र)—संपादक, डॉ० दुर्गाशंकरजी । मिलने का पता—कल्पवृक्ष-कार्यालय, कंठाल, उज्जैन । वार्षिक मूल्य २॥) है ।

भारत का प्राचीन गौरव और मान केवल भारत-संतानों की आध्यात्मिक उन्नति के कारण था । भारतीय आधिभौतिक को यथार्थ रूप में अर्थात् माया जानकर उसके फेर में नहीं पड़ते थे, और इसी कारण संसार के सिरमौर बने हुए थे । परंतु जब से भारतीय इस आधिभौतिक के फेर में पड़े, तब से वे भी संसारी दुःखों में ऐसे लिप्त हुए कि उन्हें तन-बदन की सुध नहीं रही, और वे अवनति करते हुए माया के गढ़े में गिर गए । उनमें फूट का बुरी तरह से प्रचार हुआ, और वे पराधीनता में जकड़ गए । भारत में पुनः शांति और सत्य का राज्य हो, और भारतवर्ष अपनी दशा को सँभाले, इसकी ज़रूरत है । वहाँ फिर चारों ओर प्रेम-सागर नज़र आवे, इस उद्देश्य को लेकर श्रीमान् डॉ० दुर्गाशंकरजी नागर ने 'भर्तृहरि-लाज' अर्थात् आध्यात्मिक अन्वेषण-सभा उज्जैन में क़ायम की है । इसका उद्देश्य विश्व में प्रेम का संचार करना है । भारत की आध्यात्मिक उन्नति के लिये क्षेत्र तैयार करना, आध्यात्मिक गुप्त बातों की खोज करके उनको यथासमय प्रकाशित करना और मानसिक शक्ति द्वारा सर्व-साधारण की चिकित्सा करना तथा उसका प्रचार बढ़ाना ही इसका लक्ष्य है । इसी सभा का मुखपत्र यह कल्पवृक्ष है । यह प्रतिमास प्रकाशित होता है । इसमें लेख बहुत गंभीर भावों को लिए हुए इतनी सरल भाषा में होते हैं कि बच्चे भी उन्हें समझ सकें । यह पत्र आर्य-संतानों के लिये, विशेषकर आध्यात्मिक विद्या के इच्छुकों के लिये, विशेष उपयोगी है । हम ज़ोर देकर कह सकते हैं कि इसे एक बार आधिभौतिक को ही सब कुछ माननेवालों को भी अवश्य मँगाना चाहिए । हम इसकी हृदय से उन्नति चाहते हैं ।

राधाकांत भार्गव

× × ×

हिंदी (विशेषांक)—संपादक, पं० भवानीदयाल और श्रीमाताबदल विदेशी महराज । संचालक, पं० भवानीदयाल, जगरानी-प्रेस, जेकब्स, नेटाल, दक्षिण-आफ़्रिका । आकार १८×२२ चौ-पेजी । कागज़, छपाई-सफ़ाई उत्तम । पृष्ठ-संख्या १८१ ।

दक्षिण-आफ़्रिका के प्रवासी भारतवासियों के हितार्थ, उनमें जीवन और जागृति रखने के पवित्र उद्देश्य से, देश-भक्त पं० भवानीदयालजी वहाँ से 'हिंदी'-नामक एक साप्ताहिक पत्र अँगरेज़ी और हिंदी में निकालते हैं । यह उसी का विशेषांक है, जो दीपावली के उपलक्ष्य में प्रकाशित हुआ है । इस अंक में अँगरेज़ी और हिंदी, पाठ्य-विषय के दो भाग हैं । अँगरेज़ी-खंड में ४३ पृष्ठ हैं, और हिंदी-खंड में १३७ । अँगरेज़ी-खंड में प्रवासी भारतवासियों की स्थिति के मर्मज्ञ लेखकों ने प्रवासी भारतवासियों की स्थिति और उनके भविष्य पर प्रकाश डाला है, और हिंदी-खंड में प्रवासी भाइयों की दिवाली, महर्षि दयानंद सरस्वती और दिवाली, भारत की वर्तमान अवस्था, भारत में शुद्धि-आंदोलन, दक्षिण-आफ़्रिका में स्वर्गीय माननीय गोपालकृष्ण गोखले का चिरस्मरणीय संगठन, प्रवासी भाइयों के कुछ अँगरेज़ और पारसी मित्र, दक्षिण-आफ़्रिका की तृतीय कांग्रेस, दक्षिण-आफ़्रिका के भारतीय अख़बार, उपनिवेशों में सेवा-समितियों की आवश्यकता, गुरुकुल और प्रवासी भारतवासी, दक्षिण-आफ़्रिका के भारतीयों का भविष्य आदि महत्त्व-पूर्ण विषयों पर गंभीर, मार्मिक और गवेषणा-पूर्ण लेख हैं । इन लेखों के अतिरिक्त कुछ छोटे-छोटे लेख और हैं, जो दक्षिण-आफ़्रिका के प्रवासी भाइयों की सार्वजनिक संस्थाओं से संबंध रखते हैं । अधिकांश लेख सचित्र हैं । लगभग १७५ चित्र हैं । स्वयं भवानीदयालजी के लिखे लेखों की संख्या यथेष्ट है । इस अंक के प्रकाशन में वास्तव में भवानीदयालजी ने बड़ा श्रम किया है । अंक सब प्रकार से सुंदर, सुपाठ्य और संग्रहणीय है । प्रवासी भारतवासियों की अधिकार-पूर्ति के लिये तद्विषयक साहित्य-प्रकाशन का यह उद्योग सर्वथा अभिनंदनीय है । ऐसे परम पवित्र उद्योग में सहायता देना प्रत्येक भारतवासी का कर्तव्य है ।

× × ×

सम्मेलन-पत्रिका (मासिक पत्रिका)—संपादक, श्रीयुत वियोगी हरि । प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग । आकार १८×२२ अठ-पेजी । कागज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी । पृष्ठ-संख्या ४०, और वार्षिक मूल्य २) रु० ।

यह हिंदी-साहित्य-सम्मेलन को मासिक मुख-पत्रिका १० वर्ष से प्रकाशित हो रही है । इन १० वर्षों के

जीवन में इसमें बड़े परिवर्तन हुए। अब तक यह स्वर्गीय गिरिजाकुमार घोष, माननीय पुरुषोत्तमदास टंडन, पं० इंद्रनारायण द्विवेदी तथा सम्मेलन के भूत-पूर्व प्रधान-मंत्री आदि कई संपादकों के संपादकत्व में निकल चुकी है। पहले इसका वार्षिक मूल्य १) था। भूत-पूर्व सम्मेलन का स्थायी कोष भी अत्यंत अल्प रहता था। अतएव समयानुकूल परिवर्तन होते हुए इसके आकार-प्रकार और पाठ्य-विषय में भी यथेष्ट वृद्धि हुई है। थोड़े दिन हुए, इसका काया-पलट हुआ है। पृष्ठ-संख्या भी पहले से बढ़ गई है, और साहित्यिक, विवेचनात्मक लेख तथा नोट्स भी रहने लगे हैं। कविताएँ भी अच्छी प्रकाशित होती हैं। ११वें भाग की दूसरी संख्या (आश्विन, संवत् १६८०) इस समय हमारे सामने समालोचनार्थ उपस्थित है। इस अंक में 'पंडित और मौलवी'-नामक एक छोटा प्रहसन अच्छा है। अन्य लेख, कविताएँ और संपादकीय टिप्पणियाँ भी सुंदर हैं। परंतु अभी इस पत्रिका को बहुत कुछ उन्नत बनाने की आवश्यकता है। वर्तमान रूप भी अखिल भारतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन-जैसी संस्था के गौरव के अनुकूल नहीं है, जैसा कि हम माधुरी के सम्मेलनांक में, अपने वक्तव्य में, लिख चुके हैं। आशा है, सम्मेलन-पत्रिका-संबंधी हमारे उस वक्तव्य पर स्थायी समिति ध्यान देने की कृपा करेगी।

× × ×

स्त्री-दर्पण (मासिक पत्रिका)—संपादिका, श्रीमती सुमतिदेवी बी० ए० तथा श्रीमती फूलकुमारी मेहरोत्रा। संचालिका 'स्त्री-दर्पण', फ़ीलखाना, कानपुर से प्राप्य। आकार १८×२२ अठ-पेजी। काग़ज़, छपाई-सफ़ाई साधारण। पृष्ठ-संख्या ६४, और वार्षिक मूल्य ३)

यह स्त्रियों के लिये उपयोगी मासिक पत्रिका १४ वर्ष से प्रकाशित हो रही है। पहले यह क्रमशः श्रीमती उमादेवी, श्रीरामेश्वरी नेहरू तथा श्रीरूपकुमारी बांचू के संपादकत्व में प्रयाग के लॉ-जरनल प्रेस से प्रकाशित होती थी; अब कानपुर से प्रकाशित होने लगी है। स्थान-परिवर्तन के साथ-साथ रंग-ढंग में भी परिवर्तन हो गया है। २-३ चित्र भी प्रति संख्या में रहने लगे हैं। नवंबर की संख्या इस समय हमारे सामने है। इसमें सनेहीजी की दो उत्तम कविताएँ हैं। लेख भी सुपाठ्य हैं। नवीन संपादिकाएँ यदि अंतरराष्ट्रीय स्त्री-जगत्-संबंधी लेख भी दिया करें, तो 'दर्पण' और भी अधिक रोचक बन सकता है। आख्यायिकाओं के संबंध में भी सुधार की आवश्यकता है। आख्यायिकाओं का शिक्षाप्रद तो होना आवश्यक है ही, साथ ही स्वाभाविकता का भी विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। बिना स्वाभाविकता के कहानी की उपयोगिता नष्ट हो जाती है। भाषा में भी सुधार की आवश्यकता है। नवीन संपादिकाओं का उत्साह सराहनीय है। हम हृदय से 'दर्पण' की उन्नति चाहते हैं। आशा है, हिंदी-पढ़ी-लिखी कुमारियाँ और बहनें इसे अवश्य अपनाएँगी।

× × ×

स्वतंत्र (विशेषांक)—संपादक, पं० अंबिकाप्रसाद वाजपेयी। प्रकाशक, इंडियन नेशनल प्रेस, १५९, सी० मछुआबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता। आकार ३०×४० अठ-पेजी। काग़ज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या ३८, और मूल्य ।)

'स्वतंत्र' हिंदी के दैनिक पत्रों में अपना एक विशेष स्थान रखता हुआ हिंदी की अच्छी सेवा कर रहा है। इस विशेषांक में अधिकांश लेख खोज से लिखे हुए तथा रोचक हैं। कार्टून विनोद-पूर्ण तथा अन्य चित्र भी सामयिक हैं। सब प्रकार से यह विशेषांक अच्छा निकला है। आशा है, हिंदी-संसार में 'स्वतंत्र' का आदर उत्तरोत्तर बढ़ता जायगा।

× × ×

कलकत्ता-समाचार (विशेषांक)—संपादक और संचालक, पं० झाबरमल्ल शर्मा, नं० ८।१, रामकुमार रक्षित लेन, कलकत्ता। आकार डिमाई हाफ़ शीट। काग़ज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या २१, मूल्य =)

'कलकत्ता-समाचार' सनातनधर्म का पोषक दैनिक पत्र है, और अच्छे ढंग से निकलता है। यह उसी का दीपावली के उपलक्ष्य में प्रकाशित विशेषांक है। इसमें 'पटने की ईस्ट-इंडिया-कंपनी'; "गो-ब्राह्मणहितार्थाय देशस्य च हिताय च", 'लोक-मान्य के जीवन की कुछ बातें, तथा 'सिंहावलोकन' आदि लेख विशेष रूप से पठनीय हैं। 'जर्मनी पर फ़्रांस' कार्टून भी अच्छा है। आशा है, इसी प्रकार 'कलकत्ता-समाचार' उत्तरोत्तर उन्नति और हिंदी की सेवा करता रहेगा।

× × ×

प्रणवीर (सावरकर-विशेषांक)—संपादक, राधामोहन गोकुलजी । प्रकाशक, 'प्रणवीर' कार्यालय, धंतोली, नागपुर । आकार २०×२६ चौ-पेजी । काग़ज़, छपाई-सफ़ाई सुंदर, पृष्ठ-संख्या २८, और मूल्य ।)

'प्रणवीर' हिंदी के उच्च कोटि के समाचार-पत्रों में है। इसकी समालोचना हम माधुरी की किसी पिछली संख्या में कर चुके हैं। यह उसका सावरकर-विशेषांक है। सावरकर-बंधु महाराष्ट्र-प्रांत के ही नहीं, भारत-भर के कष्ट-सहिष्णु देश-सेवकों में सर्वोपरि हैं । विशेषकर श्रीविनायक-दामोदर सावरकरजी की देश-भक्ति, वक्तृत्व-शक्ति, प्रतिभा, लेखन-पटुता तथा राष्ट्रीयता सराहनीय है। यह उस ज़माने से कष्ट सहते और कालेपानी की सज़ा भोगते रहे, जब राष्ट्रीय आंदोलन बहुत ही मंद गति से चल रहा था। शाही घोषणा के उपलक्ष्य में कालेपानी से लाकर आपको रत्नागिरी-जेल में डाल दिया गया । इस समय आप यरवदा-जेल में हैं। इस अंक में अन्य उपयोगी लेखों के साथ-साथ सावरकर-बंधुओं के जीवन और कार्यों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। इसके अवलोकन से यह स्वीकार करना पड़ता है कि सावरकर-बंधुओं की देश-भक्ति अमूल्य है । आप लोग देश-सेवा में किसी नेता से कम नहीं हैं । अब तक हिंदी-भाषा-भाषी जन-समुदाय सावरकर-बंधुओं की सेवाओं से बहुत कम परिचित था। विशेषांक निकालकर अपने देश एवं प्रांत के ऐसे सेवकों का जीवन-वृत्तांत प्रकट करना 'प्रणवीर'-जैसे राष्ट्रीय पत्र के लिये सर्वथा उचित था। देश के नेताओं को विनायक-सावरकर की मुक्ति के लिये शीघ्र उद्योग करना चाहिए। सरकार को भी उचित है कि वह ऐसे नर-रत्न का अमूल्य जीवन नष्ट न होने दे। अब उनके विचार भी उतने उग्र नहीं हैं। मुख-पृष्ठ पर एक बड़ा सुंदर रंगीन चित्र है। अंदर भी सावरकर-बंधुओं के अतिरिक्त देश के नेताओं के कई सुंदर चित्र हैं। हम इस सफलता और उद्योग के लिये 'प्रणवीर'-संपादक वयोवृद्ध राष्ट्रीय वीर श्रीराधामोहनगोकुलजी को बधाई देते हैं।

× × ×

जयाजीप्रताप (विशेषांक)—संपादक, मुं० रामस्वरूप माथुर । आकार २०×२६ चौ-पेजी । काग़ज़, छपाई-सफ़ाई सुंदर । पृष्ठ-संख्या ९९ । आलीजाह-दरबार-प्रेस, ग्वालियर से प्राप्य ।

'जयाजीप्रताप' ग्वालियर-राज्य का साप्ताहिक पत्र है, और आलीजाह-दरबार-प्रेस से निकलता है। उसी का विशेषांक, महाराज ग्वालियर के शुभ जन्म-दिन के उपलक्ष्य में, प्रकाशित हुआ है । इसमें ग्वालियर-राज्य से संबंध रखनेवाले कई उपयोगी लेखों तथा चित्रों के अतिरिक्त सर्व-साधारण के पढ़ने योग्य कई लेख हैं। अंक के अवलोकन से ग्वालियर-नरेश की उच्च कोटि के शासन की उदार आकांक्षाएँ स्पष्ट झलकती हैं।

× × ×

निम्न-लिखित पुस्तकें भी मिल गईं। प्रेषक महोदयों को धन्यवाद—

१—प्रथम-वार्षिक रिपोर्ट और ग्रंथ-सूचना—श्रीऐलक पन्नालाल दि० जैन सरस्वती-भवन, बंबई, मू० =)

२—दुखमय जीवन । मूल्य =)

३—बालिका-विद्यालय की प्रथम व द्वितीय रिपोर्ट।

४—श्रीसत्यनारायण-माधवमिश्र-विद्यालय, सलकिया का द्वितीय वार्षिक कार्य-विवरण और नियमावली।

५—श्रीहनुमान-पुस्तकालय की तृतीय व चतुर्थ वार्षिक रिपोर्ट।

६—हनुमान-चरित नौविल भूमिका, मू० =) है।

७—अजैन विद्वानों की सम्मतियाँ द्वितीय भाग, मूल्य =)। है।

८—संकट-निवारिणी, मूल्य ।)॥ है।

प्राप्ति-स्वीकार

निम्न-लिखित वस्तुएँ भी प्राप्त हो गई हैं।

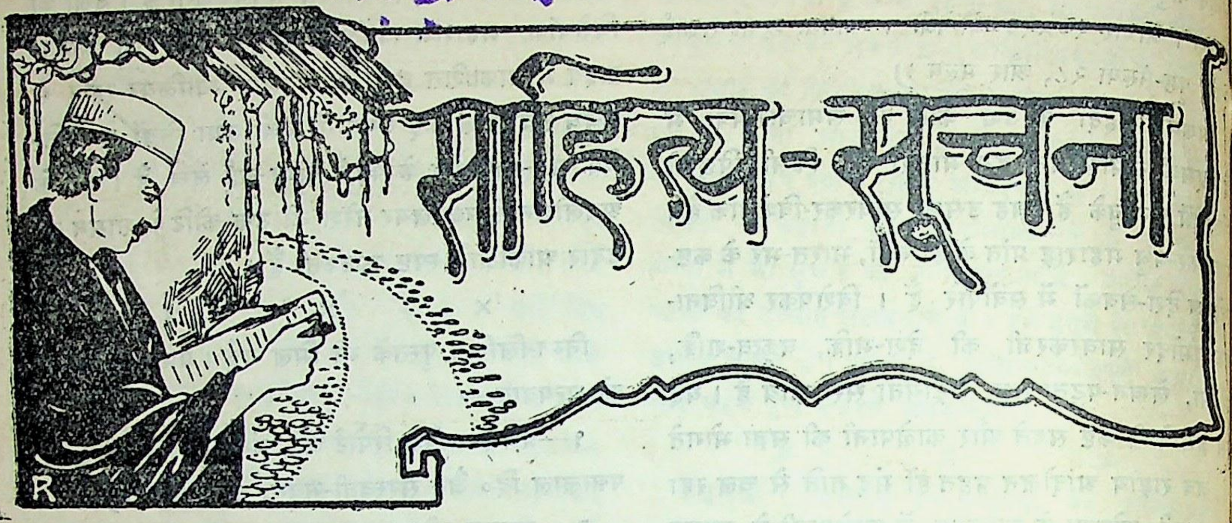
१. सुधासिंधु १ शीशी। दद्रुगजकेसरी १ शीशी। बाल-सुधा १ शीशी। (प्रेषक, श्रीयुत पं० क्षेत्रपाल शर्मा, मालिक, सुखसंचारक-कंपनी, मथुरा)

२. केश-कांति तैल १ शीशी। दंत-मंजन १ डिब्बी। (प्रेषिका, वैद्या श्रीसुरेंद्रबाला देवी गुप्ता, स्त्री-बालोपकारक आयुर्वेदीय औषधालय, मु० पो० चँदौसी, यू० पी०)

३. Tenell's Dental Fluid, १ शीशी ४ ड्राम-वाली (प्रेषक डॉक्टर एम्० एल्० टेनेल, आगरा)

४. मुख-विलास। मूल्य फ़ी डिब्बी ।) (प्रेषक, केदारनाथ-रामनाथ चिकनीडली-मेकर, सबज़ीमंडी, चौक, लखनऊ)

सभी चीज़ें अच्छी हैं। जिन्हें ज़रूरत हो, वे मँगाकर लाभ उठा सकते हैं।



इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों के सुबीते के लिये प्रति मास नई-नई उत्तमोत्तम हिंदी-पुस्तकों के नाम देते रहते हैं । गत मास में नीचे-लिखी पुस्तकें अच्छी प्रकाशित हुईं—

(१) "पहेली-पुंज", श्रीयुत श्रीराम अग्रवाल द्वारा संगृहीत । बालकों के याद करने योग्य शिक्षाप्रद ५८६ पहेलियों का संग्रह । मूल्य ।=)

(२) "तारा", कविरत्न पं० रूपनारायण पांडेय-लिखित । शिक्षाप्रद सामाजिक उपन्यास । दूसरा संस्करण । मूल्य १)

(३) "पहेली-बुझौवल", श्रीयुत ज़हूरबख़्श-संपादित । ४१८ पहेलियों का उत्तर-सहित संग्रह । मूल्य ॥)

(४) "रूप-ज्वाला", श्रीयुत दुर्गाप्रसाद खत्री-संपादित गल्प-संग्रह । मूल्य ॥)

(५) "कवि-कीर्तन", श्रीयुत वियोगी हरि-लिखित । मूल्य ॥=)

(६) "अर्थ-विज्ञान", पं० मुक्तिनारायण शुक्ल-लिखित अर्थ-शास्त्र-संबंधी ग्रंथ । मूल्य ३)

(७) "बालोपदेश", पं० रामनारायण मिश्र-लिखित । संशोधित और परिवर्द्धित तृतीय संस्करण । मूल्य ।)

(८) "रावण-राज्य", श्रीयुत बा० श्रीकृष्ण हसरत-लिखित सचित्र पौराणिक उपन्यास । मूल्य २॥।), सजिल्द ३)

(९) "गोस्वामी तुलसीदासजी", पं० रामचंद्र शुक्ल-लिखित तुलसीदासजी का आलोचनात्मक जीवन-चरित्र । मूल्य १॥)

(१०) "विनय-पत्रिका", सटीक और सचित्र । टीकाकार, पंडित महावीरप्रसाद मालवीय वैद्य "वीर" मूल्य २॥)

(११) "आकृति-निदान", लुई-कुने की अँगरेज़ी पुस्तक का पं० जनार्दन भट्ट एम्० ए०-कृत हिंदी-अनुवाद । श्रीयुत रामदास गौड़ द्वारा संपादित । मूल्य

(१२) "व्रज-माधुरी-सार", श्रीवियोगी हरि द्वारा संपादित । मूल्य २)

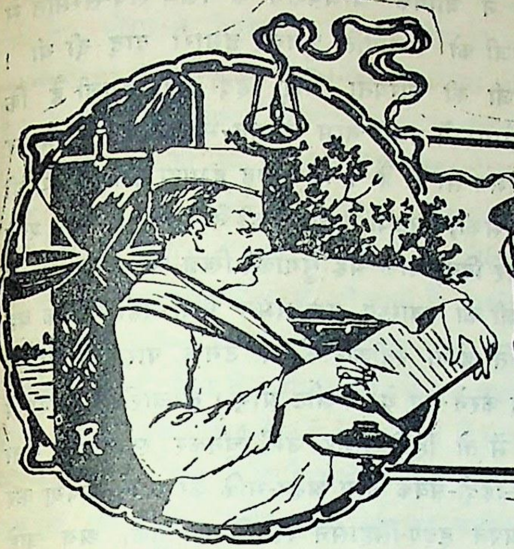
(१३) "विषाक्त प्रेम", श्रीचारुदत्त वंद्योपाध्याय के 'हेर-फेर'-नामक बँगला-उपन्यास का पं० छविनाथ पांडेय-कृत अनुवाद । मूल्य १)

(१४) "कालिदास और शेक्सपियर", पंडित छन्नूलाल द्विवेदी-लिखित तुलनात्मक समालोचना ग्रंथ । मूल्य २)

(१५) "भारत-सम्राट्", श्रीयुत जगदीश झा-लिखित सचित्र पौराणिक उपाख्यान । मूल्य १)

(१६) "प्रेम-तपस्या", पं० ज्योतिप्रसाद मिश्र-लिखित सामाजिक उपन्यास । मूल्य ॥)

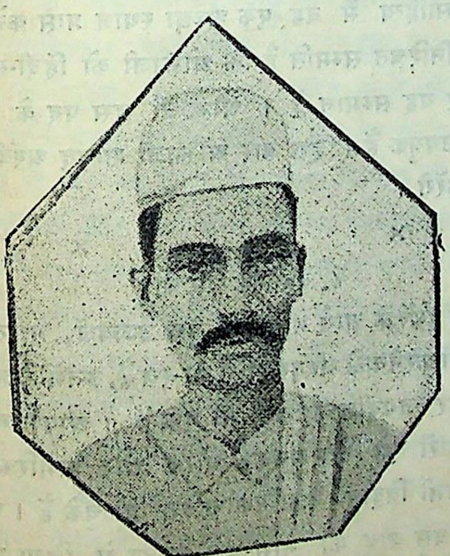
(१७) "आत्मोपदेश", श्रीनरेंद्रनारायणसिंह-लिखित यूनान के प्रसिद्ध तत्त्व-ज्ञानी महात्मा एपि के उपदेशों का संग्रह । मूल्य ॥=)



विविध विषय

१. श्रीयुत राजेंद्रप्रसादजी

हर्ष की बात है कि काकिनाड़ा में हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का जो विशेष अधिवेशन २३-२४ दिसंबर को होनेवाला है, उसके सभापति का पद प्रसिद्ध देश-भक्त, बिहार के अनन्य नेता और रत्न श्रीयुत राजेंद्रप्रसादजी ने स्वीकार कर लिया है। पहले स्वनाम-धन्य लाला लाजपतरायजी सभापति चुने गए थे; पर बीमारी के कारण आपने अस्वीकार कर दिया। राजेंद्र बाबू का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—



श्रीयुत राजेंद्रप्रसादजी

राजेंद्र बाबू का जन्म सं० १९४१ वि० में हुआ था। आप कलकत्ता-विश्वविद्यालय के एक रत्न हैं। एंट्रेंस से लेकर एम्० ए० तक आप बराबर प्रथम होते रहे। बिहार-प्रांत के आप राष्ट्रीय नेता हैं। आपने बहुत-सी पुस्तकें और लेख लिखे हैं। हिंदी के प्रेमी और हिमायती तो आप हमेशा से रहे हैं, और अब तो हिंदी में ही लेख लिखते तथा लेक्चर देते हैं। 'चंपारन में महात्मा गाँधी' नाम की पुस्तक आप ही की क़लम से निकली है। पटने से 'देश' नाम का जो पत्र निकल रहा है, वह आप ही के उद्योग का फल है। इतना ही नहीं, गत वर्ष के दिसंबर महीने तक आप ही उसके संपादक भी थे। पटना-विश्वविद्यालय में स्कूली शिक्षा का माध्यम हिंदी को बनाने के लिये आपने बड़ा उद्योग किया था। इसी तरह बाबू साहब सदा से अपने देश और अपने प्रांत की भलाई का उद्योग करते रहे हैं। आप-जैसे नर-रत्न के सभापतित्व में काकिनाड़ा का विशेष अधिवेशन अवश्य आदर्श सफलता प्राप्त करेगा, इसमें संदेह नहीं।

× × ×

२. मदरास-प्रांत में हिंदी-प्रचार का पुनीत कार्य

मदरास-प्रांत के भाई हिंदी-प्रचार में अपना अपूर्व अनुराग दिखा रहे हैं। वहाँ गए हुए हिंदी-प्रचारकों को अपने कार्य में अच्छी सहायता और सफलता मिल रही है। ट्रिप्लीकेन, मदरास से हिंदी का एक पाक्षिक पत्र निकलता है। उसका नाम है हिंदी-प्रचारक। इसका लक्ष्य है, मदरास-प्रांत में हिंदी-प्रचार के लिये प्रबल आंदोलन और संगठन करना। यह आंध्र, तामिल, केरल और कर्नाटक-प्रांतों के निवासियों में हिंदी का प्रेम उत्पन्न

कर रहा है, मदरासी युवकों को हिंदी सीखने और उसका प्रचार करने के लिये प्रोत्साहित कर रहा है। इससे दक्षिण-भारत और उत्तर-भारत के बीच प्रेम बढ़ेगा, और घनिष्ठ संबंध स्थापित होगा। इस सचित्र पत्र में अच्छे अच्छे मनोरंजक और शिक्षाप्रद लेख, कहानी, कविता आदि सामग्री के अलावा मदरास के पवित्र तीर्थों और ऐतिहासिक स्थानों का सचित्र वर्णन भी रहता है। छपाई-सफ़ाई में भी यह प्रशंसनीय है। इसका वार्षिक मूल्य ३) है। हम उत्तर-भारत के धनी, मानी, ज्ञानी सज्जनों से अनुरोध करते हैं कि वे इस पत्र के ग्राहक बनकर दक्षिण-भारत में राष्ट्र-भाषा के प्रचार का कार्य और भी अग्रसर करने में सहायक हों। हिंदी के उदीयमान नवीन और प्राचीन सुलेखकों और सुकवियों को भी अपने लेखों और कविताओं से इस पत्र की सेवा अवश्य करनी चाहिए। इस बार काकिनाड़ा में जो हिं० सा० सं० का विशेष अधिवेशन हो रहा है, उसका बहुत कुछ श्रेय इस पत्र को है। इसके व्यवस्थापक पं० हरिहर शर्माजी और संपादक हृषीकेश शर्माजी का, इस सदुद्योग के लिये, हम हृदय से अभिनंदन करते हैं। ये ही कर्मवीर मदरास में हिंदी की जड़ जमा रहे हैं। कांग्रेस में शामिल होनेवाले लोग तो इस विशेष अधिवेशन में सम्मिलित होंगे ही, किंतु हमें आशा है कि जो सज्जन कांग्रेस में सम्मिलित होने की वैसी इच्छा न रखते हों, वे भी केवल हिं० सा० सं० के इस विशेषाधिवेशन में सम्मिलित होने के लिये मदरास पहुँचें।

× × ×

३. द्विवेदीजी सभापति चुने गए थे

पाठकों को स्मरण होगा, गत संख्या में हमने हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के आगामी विशेषाधिवेशन और वार्षिक अधिवेशन के सभापतित्व के लिये क्रमशः पूजनीय लाला लाजपतरायजी, (उनके असमर्थ होने पर) वंदनीय बाबू राजेंद्रप्रसादजी और (सर्व-सम्मति से) माननीय पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी के नाम लिए थे। हमें यह समाचार सुनकर हार्दिक हर्ष हुआ कि विशेषाधिवेशन के लिये (लालाजी के अस्वास्थ्य-वश अस्वीकार करने पर) बाबू राजेंद्रप्रसादजी सभापति चुन लिए गए, और उन्होंने स्वीकार भी कर लिया। हिंदी-संसार ने वार्षिक अधिवेशन के लिये सर्व-सम्मति से द्विवेदीजी को सभापति चुनकर हमारी दाद दी थी। द्विवेदीजी की योग्यता और हिंदी-सेवा इतनी है कि हिंदी-संसार में उनके नाम पर मत-भेद होना एक प्रकार से असंभव-सा ही है। किंतु यह हमारा हर्ष चिरस्थायी न रह सका, सहयोगी अर्जुन ही ने—जिसने यह शुभ समाचार दिया था—यह सुनाकर खिन्न भी कर दिया कि द्विवेदीजी का स्वास्थ्य इस समय ऐसा नहीं है कि वह सभापति होना स्वीकार करें। उनके पास जो सज्जन प्रार्थना करने गए थे, वे लौट आए। लाचारी है। हमारी समझ में तो हिंदी-संसार उन्हें चुनकर सभापति बना चुका—हिंदी-सेवक लोग श्रद्धा-भक्ति का अर्घ्य अर्पण कर उन्हें अपने हृदय-सिंहासन पर बिठला चुके, अब चाहे वह हिं० सा० सं० के सभापति के आसन पर बैठ सकें या न बैठ सकें।

अब सभापति का प्रश्न फिर उपस्थित है। पाठकों को भूला न होगा, हमने गत वर्ष कानपुर-सम्मेलन के सभापतित्व के लिये ज्ञान-वयोवृद्ध पं० गौरीशंकर-हीराचंद ओझाजी का नाम लिया था। हमारी दृष्टि फिर उन्हीं पर जाती है। दिल्ली के अधिवेशन की शोभा और सफलता संपन्न करने की शक्ति और योग्यता ओझाजी में भरपूर है। उनका भाषण गवेषणा-पूर्ण, सार-गर्भ होगा। स्थायी साहित्य में वह एक अच्छा स्थान प्राप्त करेगा। हमारी निश्चित सम्मति है कि ओझाजी को हिंदी-संसार इस बार यह सम्मान दे। ओझाजी इस पद के लिये सर्वथा उपयुक्त हैं। इस बार ओझाजी शायद अस्वीकार भी न करेंगे।

× × ×

४. वैज्ञानिक वसु बाबू

अन्य देशों के आगे भारत का मुख उज्ज्वल, भारत का सिर ऊँचा करनेवाले जो दस-पाँच नर-रत्न हैं, उनमें विज्ञानाचार्य सर जगदीशचंद्र वसु भी एक हैं। आपके नवीन आविष्कारों को देख-सुनकर योरप और अमेरिका के नामी-नामी विद्वान् वैज्ञानिक चकित हो चुके हैं। अन्य देशों में वसु बाबू का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। भारत में तो ऐसा कोई बिरला ही पढ़ा-लिखा हो, जिसने आपका नाम न सुना हो। आपने अभी हाल ही में वनस्पति-विज्ञान में दो महत्त्व-पूर्ण आविष्कार

किए हैं। योरप में जेकोस्लाविया एक देश है, उसकी राजधानी का नाम प्रेग है। प्रेग-विश्वविद्यालय में वसु बाबू ने नवीन आविष्कारों के बारे में दो व्याख्यान दिए हैं। आपने बिजली का प्रयोग करके यह सिद्ध कर दिया है कि जैसे मनुष्य की छाती धड़का करती और अपनी हरकत से सारे शरीर में खून दौड़ाती है, वैसे ही, वही हरकत वृक्षों में भी होती है। इसी रीति से वृक्ष का रस तले से ऊपर तक दौड़ता रहता है। वृक्ष के पत्ते, जो हरे होते हैं, वायु-मंडल से एक प्रकार की हवा (कार्बोनिक एसिड-गैस) ग्रहण करते हैं। पत्तियों पर धूप पड़ने से एक शक्ति पैदा होती है। उसे 'कार्बो-हाइड्रेट' कहते हैं। साधारणतः वृक्ष का कार्बन जमा करना नज़र नहीं आता। वसु बाबू ने एक नया यंत्र बनाया है, जो बतला देगा कि वृक्ष कितनी कार्बन जमा कर रहा है। इस यंत्र ने योरप के वैज्ञानिकों को दंग कर दिया है। वसु बाबू ने खोज करके यह भी दिखला दिया है कि जैसे साँस लेने की शक्ति कम होने से मनुष्य जीवित नहीं रहता, वैसे ही कार्बन न खींच सकने पर वृक्ष सूख जाता है। अब सवाल यह पैदा हुआ कि क्या ऐसा कोई उपाय निकाला जा सकता है, जिससे वृक्ष में अधिक कार्बन खींचने की शक्ति पैदा की जा सके ? वसु बाबू ने खोज करते-करते दूसरा आविष्कार यही किया है। कुछ रासायनिक पदार्थों के सूक्ष्म मिश्रण का प्रयोग करने से वृक्षों में यह शक्ति बहुत अधिक पैदा की जा सकती है। अब विज्ञान से भी यह सिद्ध हो गया कि वृक्ष भी प्राणी हैं—प्राणियों और वृक्षों के जीवन पर घात-प्रतिघात का एक ही प्रभाव पड़ता है। इससे चिकित्सा करनेवालों को भी लाभ होगा। योरप में वसु बाबू की धूम मच गई है। प्रेग-विश्वविद्यालय के भाषण में जर्मनी के बहुत-से गवेषणा करनेवाले वैज्ञानिक उपस्थित थे। १४ नवंबर को वसु बाबू ने लंदन-युनिवर्सिटी की रॉयल-सोसाइटी में भाषण दिया था। उससे लोग बहुत प्रसन्न हुए। सभा-पति प्रो० डोनन ने कहा कि आचार्यदेव के आविष्कार से जीव-विद्या के अनेक गूढ़ रहस्यों का मर्म प्रकट हो गया है। जर्मनी, नार्वे, स्वीडन, डेन्मार्क, अमेरिका आदि देशों से वहाँ की युनिवर्सिटियाँ निमंत्रण भेज रही हैं कि वसु बाबू वहाँ जाकर अपने आविष्कारों का परिचय दें। धन्य हैं वसु बाबू! देश के गौरव को बढ़ानेवाले इन नर-रत्न का हम अभिनंदन करते हैं। ईश्वर से हमारी प्रार्थना है कि वह वसु बाबू को दीर्घजीवी करें, जिसमें आप अपने अनुसंधान से देश को लाभ पहुँचाते रहें।

× × ×

५. भारतीय व्यापारी जहाज़-कमेटी

समाचारपत्र पढ़नेवालों को मालूम होगा कि इस नाम की एक कमेटी सरकार की ओर से देश में घूम-घूमकर विशेषज्ञों की गवाही ले रही है। कुछ दिन हुए, बंबई में इसकी बैठक हुई थी। यह इस बात की जाँच कर रही है कि व्यापारी जहाज़ बनाने और चलाने के बारे में भारतीयों को क्या और कितनी स्वाधीनता एवं सुविधा दी जा सकती है, अथवा दी हुई स्वाधीनता बढ़ाई जा सकती है। कमेटी में ७ आदमी हैं—३ भारतीय और ४ अँगरेज़। १. कप्तान ई० जे० हेडलम सी० एम्० जी०, डी० एस्० ओ० (चेयरमैन), २. मि० जे० एच्० ग्रीन (सेक्रेटरी) ३. ऑनरेबुल सर आर्थर फ्रूम, ४. प्रो० जॉन वाइलस के० सी० आई० ई०, एल्-एल्० डी०, ५. श्रीयुत यदुनाथ राय, ६. ऑनरेबुल मि० लल्लूभाई सामलदास, और ७. रावबहादुर टी० रंगाचारियर।

इस कमेटी का इतिहास यह है कि सन् १९२२ की १२ जनवरी को लेजिस्लेटिव एसेंबली में सर शिवस्वामी ऐयर ने, और १६ मार्च को स्टेट कौंसिल में श्रीयुत लल्लूभाई सामलदास ने इस संबंध में प्रस्ताव किए, और वे पास भी हो गए। तदनुसार यह कमेटी स्थापित हुई। इस कमेटी के आगे प्रधान गवाहियाँ ये हुई हैं—सेंधिया स्टीम-नेविगेशन-कंपनी के सेठ वालचंद-हीराचंद की, पीतांबर-कंपनी के जीवनदास-पीतांबरदास की, श्रीयुत लालजी नारायणजी की, बंबई के चेंबर ऑफ़ कामर्स के मिस्टर विरेल की, टर्नर-मॉरिसन-कंपनी के मिस्टर बार्नेट की और विक्टोरिया टेक्निकल स्कूल के प्रिंसिपल टर्नर साहब की। भारतीयों और विदेशी गवाहों की सम्मतियाँ एक दूसरे के विरुद्ध हैं, और यही स्वाभाविक है। भारतीयों की राय है कि "यह भारत का पुराना धंधा है, और इसका फिर से उद्धार अवश्य होना चाहिए। भारतीयों को इसकी शिक्षा देना और भारत के अपने व्यापारी जहाज़ी बेड़े क़ायम करना सरकार का कर्तव्य है। इस उद्योग को अपनानेवाले भारतीयों को

सरकारी सहायता (बाउंटी) मिलनी चाहिए । विदेशी कंपनियों की प्रतियोगिता और चालबाज़ी से यह उद्योग आरंभ होते ही नष्ट न हो जाय, इस पर दृष्टि रखकर सरकार को वर्तमान 'डेफ़र्ड रिबेट' * की प्रथा उठा देनी चाहिए। डाक ले जाने-ले आने का काम भी धीरे-धीरे भारतीय बेड़ों से ही लिया जाय, और कम-से-कम इसका पूर्ण निश्चय अभी हो जाना चाहिए।" इसके विरुद्ध विदेशी प्रतिनिधि (केवल श्रीयुत टर्नर को छोड़कर) कहते हैं—"भारत तो ब्रिटिश साम्राज्य का ही एक भाग है। फिर उसका अलग जहाज़ी बेड़ा होने की क्या ज़रूरत है ? इसके अलावा ब्रिटिश बेड़ा भारतीय बेड़े से सस्ता और सुविधा-जनक होगा। अगर यहाँ इस विषय की शिक्षा के लिये शिक्षण-शाला खोली भी गई, तो शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा और योग्यता रखनेवाले विद्यार्थियों का मिलना कठिन होगा; विद्यार्थी मिलेंगे ही नहीं।" मतलब यह कि यहाँ इस उद्योग का आरंभ ही न होना चाहिए, और अगर हो भी, तो सरकारी करावलंब किसी तरह न मिलना चाहिए। इन भ्रम-पूर्ण आपत्तियों का खंडन भारतीय प्रतिनिधियों ने बड़ी योग्यता के साथ किया है। श्रीयुत टर्नर ने भी विद्यार्थी न मिलने की भविष्य-वाणी का अच्छा खंडन किया है।

भारत के बहिर्वाणिज्य की सफलता इसी प्रश्न पर निर्भर है। और, बहिर्वाणिज्य पर भारत की अन्न-समस्या का दारोमदार है। भारतीय व्यापारियों के निज के जहाज़ नहीं हैं। इसीलिये उन्हें विवश होकर विदेशी कंपनियों की शरण लेनी पड़ती है। यहाँ बनिज की सामग्री काफ़ी रहने पर भी पर-मुखापेक्षी होने के कारण देश के व्यापारियों को पूरा लाभ नहीं होता। इस देश से जो चीज़ भेजी जाती है, वह बाहर के बाज़ार में और देशों की उसी चीज़ के आगे प्रतियोगिता में ठहर नहीं सकती। कारण यह है कि विदेशी कंपनियाँ इच्छानुसार चढ़ी दर का भाड़ा लेती हैं, जिससे वह चीज़ महँगी पड़ती है। बाहर से जो माल आता है, वह भी ठीक इसी कारण से इस देश में पड़ते से बहुत अधिक दाम में बिकता है। दोनों तरह से इस देश की हानि ही हो रही है। इसके अलावा इस जहाज़ी विभाग में भारतीय लोगों के लिये नौकरी का द्वार भी एकदम बंद है। दो-चार ख़लासी भले ही भारतीय हो जायँ, ऊँचे पद उन्हें कहीं नहीं दिए जाते। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि हम अयोग्य हैं। मगर योग्यता दिखाने या योग्य बनने का रास्ता बिलकुल बंद करके ऐसा कहना कहाँ तक युक्ति-संगत है, यह किसी को बतलाना न होगा। इस देश में पहले भी जहाज़ थे, उनके द्वारा दूर-दूर के देशों में जाकर व्यापार किया जाता था, और उनके सब कर्मचारी भारतीय ही होते थे। भारत का बहिर्वाणिज्य और नौ-शिल्प विदेशियों की अवैध प्रतियोगिता से, और कहीं-कहीं ज़बरदस्ती से भी, किस तरह नष्ट किया गया, इसका ब्योरा स्वर्गीय रमेशचंद्र दत्त-कृत भारतीय अर्थ-नीतिक इतिहास पढ़ने से अच्छी तरह मालूम हो सकता है। सबसे बड़ी हानि जो इस विभाग की वर्तमान व्यवस्था से हो रही है, वह यही कि भारतीयों में से वह साहस का भाव, जिसको अँगरेज़ी में Adventurous Spirit कहते हैं, लुप्त होता जा रहा है। साहस का होना ही जीवित जाति का लक्षण है। इसका प्रतिकार इस तरह हो सकता है कि भारतीय समुद्र के किनारे के व्यवसाय भारतीयों के लिये छोड़ दिए जायँ; विदेशों में बनिज करने के लिये जानेवाले

* डेफ़र्ड रिबेट की प्रथा का खुलासा यह है कि विदेशी जहाज़ी कंपनियाँ मिलकर एक गुट्ट बना लेती हैं, जिसे शिपिंग रिंग कहते हैं। यह संगठन इसीलिये किया जाता है कि जहाज़ी व्यापारियों पर एकाधिकार कर लिया जाय, और अगर कोई नई कंपनी बने, तो वह मुक़ाबिले में टिकने न पावे। पाठकों को याद होगा, पिछले स्वदेशी-आंदोलन के युग में चिदंबरं पिल्ले की स्थापित कंपनी इसी संगठन की प्रतियोगिता में फ़ेल हो गई थी। कोई नई कंपनी खड़ी होने पर विदेशी कंपनियों का यह गुट्ट अपना भाड़ा एकदम घटा देता, और फिर उसके फ़ेल हो जाने पर मन-मानी दर कर देता है। ये कंपनियाँ व्यापारियों को अपने चंगुल में फँसाए रखने के लिये यह नियम बनाए हुए हैं कि एक नियत समय के भीतर माल लादने पर भाड़े का कुछ हिस्सा—भारत में १० फ़ी सदी—रिआयत करके छोड़ देती हैं। यही डेफ़र्ड रिबेट-सिस्टम है। यह छमाही पर बाँटा जाता है। लेकिन कोई व्यापारी अगर किसी लाचारी से या जान-बूझकर इस गुट्ट के अलावा और किसी नई कंपनी के जहाज़ में अपना माल लाद देता है, तो उसकी वह रक़म हज़म कर ली जाती है। इतना ही नहीं, उसका बॉयकाट भी कर दिया जाता है।

भारतीय जहाज़ों को साहाय्य-शुल्क दिया जाय; विदेशी कंपनियों के जहाज़ों पर एक विशेष शुल्क लगाया जाय। सभी स्वाधीन देशों में ज़रूरत पड़ने पर ऐसे ही उपाय काम में लाए जाते हैं। अपने कमज़ोर शिल्प की रक्षा करने के लिये इस तरह की संरक्षण-नीति सब देशों में चलाई जाती है। ब्रिटिश साम्राज्य में इंपीरियल प्रिफ़रेंस चलाने की चेष्टा इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। किंतु यह सब होने पर भी सरकार कभी गोरे व्यापारियों को हानि और भारतीयों को लाभ पहुँचाने के लिये तैयार नहीं हो सकती। अतएव हमें निश्चय है कि इस तरह की एक नहीं, दस कमेटियाँ स्थापित हों, भारत को उसका अधिकार वापस दिलाना उनकी शक्ति के बाहर है। जब भारत स्वराज्य प्राप्त करके सब काम करने के लिये स्वतंत्र होगा, तभी ऐसी समस्याओं का समाधान हो सकेगा।

× × ×

६. टेरिफ़ बोर्ड

भारत में अनुसंधान-कमेटियों की धूम मची हुई है। यद्यपि भारत के अनुकूल फल होने की कुछ भी संभावना नहीं है। भारतीय राजस्व-कमेटी (Indian fiscal Commission) की अनुमति के अनुसार टेरिफ़ बोर्ड (Tariff Board) नाम की एक और कमेटी अनुसंधान का काम कर रही है। इसका काम है यह जाँच करना कि भारत के शिल्प की उन्नति और विदेशी शिल्प की अनुचित प्रतियोगिता से भारत के शिल्प की रक्षा करने के लिये कहाँ-कहाँ और किस तरह संरक्षण-नीति का प्रयोग किया जा सकता है, और किसी-किसी शिल्प का पोषण सरकारी सहायता (Subsidy) से भी किया जा सकता है या नहीं? इस समय इस बोर्ड के सदस्य भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों में जाकर इस विषय के जानकारों की गवाही ले रहे हैं। यह बोर्ड आजकल ख़ास तौर पर इस बात की जाँच कर रहा है कि भारत के लोहे और इस्पात की चीज़ों के संबंध में संरक्षण-नीति का आश्रय लिया जा सकता है या नहीं, और पूर्वोक्त उद्देश्य से विदेशी लोहे और इस्पात की बनी चीज़ों पर—जो यहाँ आती हैं—इंपोर्ट-ड्यूटी बढ़ाना मुनासिब है या नहीं? यह कहने की ज़रूरत नहीं कि विदेशी व्यापारी इस संरक्षण-नीति और ड्यूटी बढ़ाने के घोर विरोधी हैं। विदेशी महाजनों ने विदेशी कपड़ों पर इंपोर्ट-ड्यूटी लगाने के विरुद्ध जैसा आंदोलन किया था, वैसा ही आंदोलन गौरांग वनिए विदेशी लोहे और इस्पात की चीज़ों पर ड्यूटी बढ़ाने के ख़िलाफ़ भी करने लगे हैं। वस्त्र की तरह लोहे और इस्पात की सामग्री भी भारत की एक प्रधान वाणिज्य की वस्तु है। विदेशी कंपनियों की अनुचित प्रतियोगिता से हमारा वस्त्र-शिल्प जैसे मिट्टी में मिल गया है, वैसे ही इस समय लोहे और इस्पात का शिल्प भी नष्ट होने को है। भारत में रेलवे की चीज़ें, और अन्य सामग्री भी, करोड़ों रुपए की विदेशों ही से मँगाई जाती हैं। यहाँ की ताता-कंपनी आदि दो-तीन कंपनियाँ, जो यह रोज़गार करती हैं, विदेशी वस्तुओं का मुक़ाबिला नहीं कर पातीं। इसका कारण यही है कि सरकार या रेलवे-कंपनियाँ उन्हें करावलंब नहीं देतीं। ताता-कंपनी के प्रतिनिधि तथा अन्य भारतीय विशेषज्ञों ने इस बोर्ड के आगे अपनी गवाही में भारतीय लोह-शिल्प के संबंध में संरक्षण-नीति के प्रयोग की आवश्यकता अच्छी तरह समझा दी है। यह बोर्ड इन सब गवाहियों को सुनकर विचार करेगा, और फिर अपनी राय देगा। किंतु बंगाल चेंबर ऑफ़ कामर्स ने, जो कि विदेशी व्यापारियों की प्रतिनिधि-सभा है, अभी से संरक्षण-नीति के विरुद्ध प्रबल आंदोलन शुरू कर दिया है। उसने एक प्रस्ताव का मसविदा तैयार किया है। उसमें कहा है कि भारतीय लोहे और इस्पात के रोज़गार में संरक्षण-नीति से काम लेना कदापि उचित नहीं है। कारण, उसका फल यह होगा कि लोहे और इस्पात की चीज़ें महँगी हो जायँगी, जिससे भारत के ग़रीब ख़रीदारों को बड़ी असुविधा होगी। भारत के वस्त्र-शिल्प के संबंध में संरक्षण-नीति चलाने की चेष्टा का भी विरोध यही कहकर किया जाता है। विदेशियों की भारत के साथ यह हमदर्दी वास्तव में बड़ी उच्च कोटि की है! पूर्वोक्त प्रस्ताव बंबई में, सब प्रदेशों के सम्मिलित विदेशी वणिक्-संघ (Associated Chambers of Commerce) के वार्षिक अधिवेशन में पेश होगा। इस संघ का वार्षिक अधिवेशन भारतीय व्यवस्थापक सभा के अधिवेशन से कम महत्त्व नहीं रखता। यहाँ पास हुआ प्रस्ताव कदापि निष्फल नहीं जा सकता। व्यवस्थापक-सभा में शासन-नीति और इस संघ के अधिवेशन में शोषण-नीति ढाली जाती है। भारत के अमले और ये

सम्मिलित व्यापारी परस्पर घनिष्ठ आत्मीय हैं, और व्यापारियों का प्रस्ताव टल नहीं सकता, यह बतलाने की कोई ज़रूरत नहीं है। इसी से हमारा चिंतित होना असंगत नहीं है। इसी संघ के अधिवेशन में मेरीन कमेटी के विषय की भी आलोचना होगी। इस संघ के प्रभाव का परिचय इससे भी मिलता है कि उक्त अधिवेशन को स्वयं बंबई के लाट सुशोभित करेंगे। उनके सचिव (Executive members) और भारत-सरकार के तीन प्रतिनिधि—सर वेसिल ब्लैकट (राजस्व-सचिव), मि० इनेस (वाणिज्य-सचिव) और मि० चटर्जी (शिक्षा-सचिव)—भी शामिल होंगे। इस विदेशी संघ ने देशी वणिक्-संघ को, और कई प्रधान-प्रधान देशी व्यापारियों को भी, निमंत्रण दिया था। मगर श्रीयुत जमसेटजी जीजीभाई, श्रीयुत डी० वाचा, श्रीयुत फ़ज़लभाई करीम भाई, श्रीयुत आर० डी० ताता आदि बंबई के कई प्रसिद्ध देशी व्यापारियों ने निमंत्रण अस्वीकार करके अपनी दूर-दर्शिता और देश-भक्ति का परिचय दिया है। उनका कहना है कि टेरिफ़ बोर्ड जिस समय लौह-शिल्प के संबंध में संरक्षण-नीति स्वीकार या अस्वीकार करने के प्रश्न पर विचार कर रहा है, उस समय संरक्षण-नीति के विरुद्ध कोई प्रस्ताव उपस्थित करना अन्याय और अत्यंत निंदनीय कार्य है। उक्त सज्जनों को यह भी खटका है कि उक्त अधिवेशन में पूर्वोक्त प्रस्ताव अवश्य पास हो जायगा, और उसका फल भारत के लिये हानिकारक होगा। हमारा भी यही मत है। हमें आशा है, भारत के अन्य प्रदेशों के देशी व्यापारी भी अपने बंबई के भाइयों का अनुसरण करेंगे।

एक और मज़े की बात है। इधर विदेशी बनिए भारत के ग़रीब ख़रीदारों के कष्ट की दोहाई देकर देशी लोहे और इस्पात की सामग्री के संबंध में संरक्षण-नीति का विरोध कर रहे हैं, और उधर उपनिवेशों के व्यापारी समस्त साम्राज्य की लोहे और इस्पात की चीज़ों पर संरक्षण-नीति चलाना चाहते हैं! इसी मतलब से विलायत-प्रवासी बंगाली इंजीनियर मिस्टर बी० एन्० दे, कई विलायती फ़र्मों के प्रतिनिधि होकर, भारत में इस व्यापार का अनुसंधान करने आए हैं। उन्होंने स्पष्ट ही बतला दिया है कि यह व्यवस्था होने पर विलायत और उपनिवेशों के व्यापारी भारतीय लोहे और इस्पात की चीज़ें कम क़ीमत में पा सकेंगे, और भारत को भी सुबीता होगा। अब पाठक ही इस रहस्य को समझने की चेष्टा करें।

× × ×

७. लखनऊ की जन-संख्या

लखनऊ एक पुराना—नवाबी—शहर है। यहाँ की इमामबाड़ा, छतरमंज़िल, मोतीमहल, शाहनजफ़, बेलीगारद आदि प्राचीन इमारतें सुप्रसिद्ध हैं। नवाबों के राज्य-काल में यह शहर बहुत उन्नत अवस्था में था। विविध उद्योग-धंधों की वृद्धि और उन्नति के कारण यहाँ के लोग सुख-चैन की बंसी बजाते थे। जन-संख्या खूब बढ़ी हुई थी। कैसे खेद की बात है कि उसी लखनऊ की जन-संख्या अब बहुत कम हो गई है, और गत ४० वर्षों से लगातार घटती ही चली आ रही है! सन् १८८१ में यहाँ २ लाख ६५ हज़ार के लगभग मनुष्य रहते थे, अब उनकी संख्या २५ हज़ार के क़रीब कम हो गई है। इसका प्रधान कारण यहाँ के उद्योग-धंधों का ह्रास ही मालूम पड़ता है। लखनऊ अनेक रेल-लाइनों का जंकशन है, संयुक्त-प्रांत के बीचोबीच बसा हुआ है। यहाँ एक अच्छी-ख़ासी नदी भी है। सफलता-पूर्वक उद्योग-धंधे चलाए जाने के सभी साधन सुलभ हैं। लेकिन, तो भी, कलकत्ते, बंबई, अहमदाबाद, कानपुर की तरह के कल-कारख़ानों की यहाँ कमी ही बनी हुई है। म्युनिसिपलिटी की चुंगी भी यहाँ उद्योग-धंधों की वृद्धि में बाधक है। म्युनिसिपल कमिश्नरों को इधर ध्यान देना चाहिए; नहीं तो यहाँ की जन-संख्या और भी कम हो जायगी।

जो हो, जन-संख्या की दृष्टि से युक्त-प्रांत के शहरों में लखनऊ का नंबर अब भी पहला है। युक्त-प्रांत की सन् १९२१ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट के अनुसार इस शहर की जन-संख्या क़रीब २ लाख ४० हज़ार है। यदि इसमें से कंटूनमेंट में रहनेवाली जनता की संख्या निकाल दी जाय, तो लखनऊ-म्युनिसिपलिटी की हद में निवास करनेवालों की संख्या २ लाख १७ हज़ार ही रह जाती है।

यह शहर ६ वार्डों में विभक्त है। भिन्न-भिन्न वार्डों और कंटूनमेंट की जन-संख्या आगे लिखे अनुसार है—

वार्ड का नाम	पुरुष (हज़ार)	स्त्री (हज़ार)	जोड़	प्रति शत मनुष्य पीछे कितनी स्त्रियाँ हैं
दौलतगंज	१२·५	११·३	२३·८	९०
सआदतगंज	९·८	९·०	१८·८	९१
चौक	९·४	८·८	१८·२	९२
यहियागंज	१९·४	१६·३	३५·७	८४
वज़ीरगंज	२२·८	१८·२	४१·०	८०
गणेशगंज	१८·६	१४·८	३३·४	८०
हज़रतगंज	१५·१	११·२	२६·३	७५
हसनगंज	९·६	६·६	१६·२	६८
रेलवे-सेटलमेंट	२·७	१·०	३·७	३७
कंटूनमेंट	१५·७	७·७	२३·४	४९
कुल	१३५·६	१०४·९	२४०·५	७७

इस कोष्ठक से मालूम होता है कि लखनऊ में स्त्रियों की बहुत कमी है। हिंदुओं में तो प्रायः सभी मुहल्लों में पुरुषों की संख्या अधिक है; परंतु कुछ मुहल्लों के मुसलमानों में स्त्रियों की संख्या अधिक है। हज़रतगंज, हसनगंज, रेलवे-सेटलमेंट और कंटूनमेंट में स्त्रियों की कमी बहुत अधिक है। वज़ीरगंज-वार्ड के ख़ासबाज़ार सरकिल की स्त्रियों की संख्या पुरुषों की ४० प्रति सैकड़ा ही है। स्त्रियों की कमी का समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है, और उसके दुष्परिणामों से किस तरह बचना चाहिए, इन प्रश्नों पर शहर के समाज-सुधारकों को ध्यान देना चाहिए।

लखनऊ बहुत विस्तृत शहर है। अन्य बड़े-बड़े शहरों के समान यह घना नहीं बसा है। जगह-जगह खुले हुए मैदान और पार्क नज़र आते हैं। यही कारण है कि युक्त-प्रांत का सबसे बड़ा शहर होने पर भी इसकी प्रति वर्गमील जन-संख्या—जो कि केवल १,३५० है—प्रांत के सब बड़े-बड़े शहरों की प्रति वर्गमील जन-संख्या से बहुत कम है। कानपुर में प्रत्येक वर्गमील में २२,६२० व्यक्ति निवास करते हैं। लखनऊ के सघन न बसे हुए होने पर भी उसके कुछ ख़ास-ख़ास मुहल्लों में फ़ी एकड़ जन-संख्या काफ़ी अधिक है। आगे के कोष्ठक में लखनऊ के आठ वार्डों की फ़ी एकड़ जन-संख्या दी जाती है, और यह भी बतलाया जाता है कि उनमें फ़ी सैकड़ा कितने कुटुंब एक, दो, तीन, चार, पाँच अथवा उससे अधिक कमरों में अपना गुज़ारा करते हैं—

वार्ड का नाम	फ़ी एकड़ जन-संख्या	प्रति शत कितने कुटुंब रहते हैं				
		एक कमरे में	दो कमरों में	तीन कमरों में	चार कमरों में	पाँच या अधिक कमरों में
दौलतगंज	१६	२२	२३	२१	१५	९
सआदतगंज	१९	१५	३०	२३	१६	१६
यहियागंज	१५	३१	२९	१५	१२	१३
वज़ीरगंज	२९	२०	३१	२२	१५	१९
चौक	९७	२२	२८	२०	१४	१६
गणेशगंज	६५	४७	२८	१२	५	८
हज़रतगंज	१५	५४	१९	११	७	९
हसनगंज	७	६०	२३	१०	५	२

इस कोष्ठक से पता लगता है कि चौक और गणेशगंज में फ़ी एकड़ जन-संख्या अधिक है। शहर के कुछ भागों में—जैसे सुलतानपुर, इमामबाड़ा, चमरटोलिया में—फ़ी एकड़ जन-संख्या क़रीब ६०० है, और चौक के कालका-बाज़ार में फ़ी एकड़ ३०० से अधिक व्यक्ति रहते हैं। लखनऊ के इंप्रूवमेंट-ट्रस्ट को इन भागों की जनता को अन्य किसी भाग में बसाने का प्रयत्न करना चाहिए। गणेशगंज, हज़रतगंज और हसनगंज-वार्डों में अधिकांश जनता सिर्फ़ एक कमरे में ही अपना गुज़ारा करती है। शहर के कुछ भागों में—जैसे ख़ासबाज़ार सरकिल, सुलतानगंज, चारबाग़, बाबूगंज खुर्द, इन स्थानों में क़रीब ८० फ़ी सैकड़ा कुटुंब केवल एक कमरे ही में रह-कर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। दिन-रात एक ही कमरे में रहने के कारण उनको काफ़ी साफ़ हवा और

रोशनी नहीं मिलती। इससे उनके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ता है। एक ही कमरे में फ़ी सैकड़े इतने अधिक कुटुंबों के रहने का कारण मकानों की कमी, किराए की अधिकता और जनता की दरिद्रता है। क्या ही अच्छा हो, यदि इंप्रूवमेंट-ट्रस्ट छोटे-छोटे, साफ़ और हवादार मकान बनवाकर ग़रीब लोगों को कम किराए पर देने की व्यवस्था शीघ्र कर दे। लेकिन वह ग़रीबों की ओर क्यों ध्यान देने लगा ?

लखनऊ में हिंदुओं की संख्या सबसे अधिक है। नीचे के कोष्ठक में यह बतलाया जाता है कि भिन्न-भिन्न धर्मों के अनुयायियों की संख्या क्या है—

धर्म	पुरुष (हज़ार)	स्त्री (हज़ार)	जोड़ा (हज़ार)	पूर्ण संख्या का प्रति सैकड़ा
हिंदू	७८·३	५८·२	१३६·५	५७
मुसलमान	५१·६	४३·६	९५·२	३९
ईसाई	४·८	२·७	७·५	३
आर्यसमाजी	०·४	०·२	०·६	} १
सिख	०·३	०·१	०·४	
अन्य	०·२	०·१	०·३	
कुल	१३५·६	१०४·९	२४०·५	१००

इस कोष्ठक में अन्य धर्मों के अनुयायियों में जैन, पारसी, बौद्ध और यहूदी भी सम्मिलित हैं। जैनों की कुल संख्या ११२, पारसियों की १३७, बौद्धों और यहूदियों की १६-१६ है। यद्यपि हिंदुओं की कुल संख्या ५७ फ़ी सदी है, तथापि लखनऊ के कुछ मुहल्लों में मुसलमानों की संख्या उनसे बहुत अधिक है। यों तो मुसलमान प्रायः सभी मुहल्लों में बसे हुए हैं, परंतु जवाहरटोला, अहीरीटोला, भीखनख़ाँ का अखाड़ा, मुफ़्तीगंज, महमूदनगर, हैदरगंज, नख़ास, दलाली-मुहाल, अकबरी दरवाज़ा, दरयायीटोला, बनजारीटोला इत्यादि स्थानों में मुसलमानों की संख्या हिंदुओं की संख्या से चौगुनी से भी अधिक है। ईसाइयों की संख्या हज़रतगंज वार्ड में सबसे अधिक है। कुछ ईसाई गणेशगंज और वज़ीरगंज-वार्ड में भी रहते हैं।

× × ×

८. लखनऊ में शिक्षा की दशा

लखनऊ अवध की राजधानी के साथ ही उच्च शिक्षा का केंद्र भी है। यहाँ, तीन वर्ष हुए, एक विश्वविद्यालय भी स्थापित हो गया है, जिसमें अनेक देशी और विदेशी सुप्रसिद्ध विद्वान् दूर-दूर से बुलाए जाकर शिक्षण-कार्य कर रहे हैं। विश्वविद्यालय के अंतर्गत डॉक्टरी की शिक्षा के लिये किंग जॉर्ज-मेडिकल-कॉलेज, लड़कों की उच्च शिक्षा के लिये कैनिंग-कॉलेज और लड़कियों की उच्च शिक्षा के लिये आइसाबेला-थाबर्न-कॉलेज हैं। लखनऊ में ५ इंटरमीजिएट कॉलेज और अनेक हाई स्कूल हैं। तीन-चार लड़कियों के भी स्कूल हैं, जिनमें महिला-विद्यालय मुख्य है। यह सब होते हुए भी, गत मर्दुम-शुमारी की रिपोर्ट के अनुसार, यहाँ अक्षर-ज्ञान-प्राप्त व्यक्तियों की संख्या केवल ३०,०७,३२३ है; अर्थात् संपूर्ण जन-संख्या की सिर्फ़ १३ प्रति शत जनता पढ़ी-लिखी है। बाक़ी—क़रीब ८७ प्रति शत—निरक्षर भट्टाचार्य है। वह पत्र न तो लिख सकती है, और न पढ़ ही। प्रयाग में क़रीब २० प्रति शत मनुष्य लिख-पढ़ सकते हैं। अतएव लखनऊ शिक्षा-प्रचार की दृष्टि से उससे पिछड़ा हुआ है।

धर्म के अनुसार पढ़े-लिखों का ब्योरा इस प्रकार है—

धर्म	पढ़े-लिखे व्यक्तियों की संख्या			फ़ी सैकड़ा कितने पढ़े-लिखे हैं
	पुरुष	स्त्री	जोड़	
हिंदू	१४,०५६	७९६	१४,८५२	११
मुसलमान	८,८४९	७३६	९,५८५	१०
ईसाई, आर्य०इ०	४,२१९	१,६६७	५,८८६	६७
कुल	२७,१२४	३,१९९	३०,३२३	१३

ऊपर दिए हुए कोष्ठक से यह मालूम हो जाता है कि हिंदू और मुसलमान शिक्षा में कैसे पिछड़े हुए हैं! हमारी क़रीब ९० फ़ी सदी हिंदू-मुसलमान-जनता बिलकुल अपढ़ है। स्त्रियाँ तो प्रायः ९९ फ़ी सदी अपढ़ हैं। उच्च शिक्षा का केंद्र होने पर भी प्रारंभिक शिक्षा के प्रचार में यह शहर फ़ैज़ाबाद और गोरखपुर-जैसे छोटे शहरों की भी बराबरी नहीं कर सकता।

इस शहर के १० से २० वर्ष तक के पढ़े-लिखे और अपढ़ लड़कों की संख्या आगे दी जाती है—

धर्म	१०से२०वर्ष तक के पढ़े-लिखे लड़कों की संख्या	१०से२०वर्ष तक के अपढ़ लड़कों की संख्या	१०से२०वर्ष तक के सब लड़कों में से फ़ी सैकड़ा कितने अपढ़ हैं
हिंदू	२,३६८	१०,६८४	८२
मुसलमान	१,५१२	८,०४३	८४
ईसाई, आर्य-समाजी इ०	८५३	२२८	२३
कुल	४,७६३	१६,२८९	८०

यद्यपि युक्त-प्रांत की व्यवस्थापक सभा में अनिवार्य तथा निःशुल्क प्रारंभिक शिक्षा-संबंधी क़ानून पास हो गया है, तो भी हमारे शहर में १० से २० वर्ष तक की उमर-वाले प्रत्येक ५ लड़कों में ४ लड़के ऐसे हैं, जिनको अक्षर-ज्ञान तक नहीं है! म्युनिसिपलिटी के सदस्य इस निरक्षरता को दूर करने के लिये क्या कर रहे हैं? सन् १९२२-२३ में यहाँ के म्युनिसिपल स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करनेवाले विद्यार्थियों की संख्या नीचे लिखे अनुसार थी—

हिंदू	४,०४०
मुसलमान	२,६६२
अन्य	४९९
कुल	७,२०१

इन ७,२०१ छात्रों में शिक्षा प्राप्त करनेवाली लड़कियों की संख्या केवल ५८२ थी। सुना गया है, यहाँ के वज़ीरगंज-वार्ड में प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य की जाने-वाली है। अन्य वार्डों का नंबर कब तक आवेगा? प्रयाग की म्युनिसिपलिटी ने केवल तीन वर्ष के अंदर शहर-भर में प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य और निःशुल्क कर देने का पक्का निश्चय कर लिया है। लखनऊ की म्युनिसिपलिटी क्या यह व्यवस्था न करेगी कि अधिक-से-अधिक ५ वर्षों के अंदर सारे शहर में प्रारंभिक शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य हो जाय। यह कार्य कठिन नहीं है। लखनऊ-म्युनिसिपल बोर्ड की वार्षिक आमदनी क़रीब २९ लाख रुपए है। उससे उसने गत वर्ष केवल ८८ हज़ार रुपए ही प्रारंभिक शिक्षा में व्यय किए थे। यदि इस संबंध में बोर्ड तीन लाख रुपए और अधिक ख़र्च करे, तो प्रारंभिक शिक्षा शहर-भर में अनिवार्य और निःशुल्क कर दी जा सकती है। इसमें दो लाख रुपए तो प्रांतीय सरकार से ग्रैंट के रूप में मिल जायँगे, अतएव उसे केवल एक लाख रुपयों ही का प्रबंध करना पड़ेगा। यदि मेंबर चाहें, तो वे बोर्ड के ख़र्च में एक लाख रुपयों की बचत आसानी से कर सकते हैं। इस प्रकार बिना टैक्स बढ़ाए ही शहर-भर में लड़कों की प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य की जा सकती है। क्या हमारे शहर के नवीन असहयोगी विधाता भी विद्या-प्रचार की तरफ़ कुछ ध्यान न देंगे?

लखनऊ में अँगरेज़ी पढ़े-लिखों की संख्या कुछ कम नहीं है। वह क़रीब १५ हज़ार है। उसका ब्योरा नीचे दिया जाता है—

धर्म	अँगरेज़ी पढ़े-लिखों की संख्या		
	पुरुष	स्त्री	जोड़
हिंदू	६,६९४	१३८	६,८३२
मुसलमान	२,५३७	६६	२,६०३
ईसाई, आर्य-समाजी इ०	३,९४०	१,५७१	५,५११
कुल	१३,१७१	१,७७५	१४,९४६

जैसा कि अनुमान किया गया था, अँगरेज़ी पढ़े-लिखों में ईसाइयों की संख्या ही सबसे अधिक है। अँगरेज़ी पढ़ी-लिखी स्त्रियों की संख्या बहुत कम है। जन-संख्या के हिसाब से हिंदुओं की अपेक्षा मुसलमान अँगरेज़ी पढ़े-लिखों की संख्या कम है।

× × ×

९. स्वर्गीय पँचकौड़ी वंद्योपाध्याय

गत १६ नवंबर बृहस्पतिवार को, तीसरे पहर, सात बजे, बँगला के सुप्रसिद्ध लेखक और प्रवीण संपादक बाबू पँचकौड़ी वंद्योपाध्याय का देहांत हो गया। आप-जैसे सुलेखक और सुसंपादक के देहांत से बंग-साहित्य की बड़ी भारी क्षति हो गई है, इसमें संदेह नहीं। आप इधर बहुत दिन से बीमार रहते थे। बहुमूत्र का रोग था। सन् १८६७ में पँचकौड़ी बाबू का जन्म हुआ था। आपके पिता श्रीवेणीमाधव बनर्जी भागलपुर की कलेक्टरी-कचहरी में नौकर थे। वहीं पँचकौड़ी बाबू का जन्म हुआ। पटना-कॉलेजिएट स्कूल और पटना-कॉलेज में



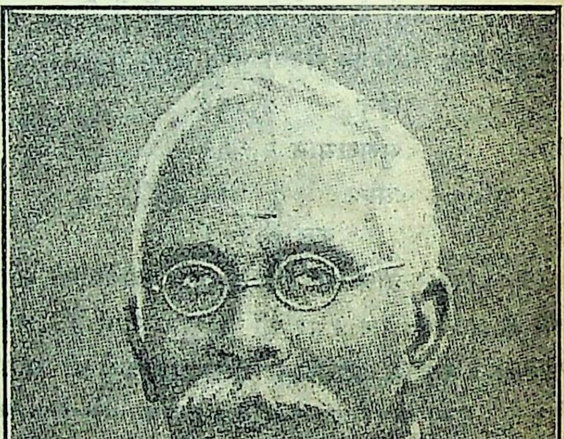
स्व० बाबू पँचकौड़ी वंद्योपाध्यायजी

पँचकौड़ी बाबू ने बी० ए० तक पढ़ा था। बी० ए० पास करके आप पटना-कॉलेज ही में प्रोफ़ेसर हो गए। कुछ दिन बाद आपने काशी में जाकर संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की। फिर कलकत्ते के सुप्रसिद्ध बंगवासी पत्र के संपादक हो गए। उसके बाद क्रमशः हितवादी, टेलीग्राफ़, बंगाली, आदि पत्रों का संपादन किया। अंत को दैनिक नायक के संपादक हुए, और अंत तक रहे। आप संस्कृत, बँगला, अँगरेज़ी के अलावा हिंदी और उर्दू भी अच्छी जानते थे। दैनिक भारत-मित्र का भी आपने कुछ दिन संपादन किया था। आप व्यंग्य और हास्य के सुप्रसिद्ध लेखक थे। आपकी समालोचना भी तीव्र होती थी। बंगाल के सामाजिक इतिहास का ज्ञान भी आपको अच्छा था। तंत्र-शास्त्र में भी आपकी अच्छी गति थी। पँचकौड़ी बाबू ने अपना अधिकांश समय समाचारपत्रों की सेवा ही में लगाया, इस कारण दो-एक पुस्तकों से अधिक नहीं लिख सके। आपके लिखे उमा उपन्यास का हिंदी-अनुवाद हो गया है। इधर मासिक पत्रों में गवेषणा-पूर्ण लेख लिखने लगे थे। पँचकौड़ी बाबू के माता-पिता अभी जीवित हैं। दो पुत्र भी आपके हैं। बड़े की अवस्था ३५ वर्ष की है। छोटा पुत्र उनसे ३-४ वर्ष छोटा है। आपकी विधवा स्त्री भी मौजूद हैं। आपके परिवारवालों को जो दुःख और शोक हुआ है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। ईश्वर उन्हें शांति और मृत बाबू साहब की आत्मा को सद्गति दें।

× × ×

१०. बाबू अश्विनीकुमार दत्त का स्वर्ग-वास

बरीसाल के बेताज के बादशाह, प्रसिद्ध देश-भक्त बाबू अश्विनीकुमार दत्त भी स्वर्ग-वासी हो गए। गत ७ नवंबर को आपकी मृत्यु, कलकत्ते में, हो गई। अश्विनी बाबू आदर्श-चरित्र पुरुष थे। बंगाल के स्वदेशी आंदोलन के युग में आपने बहुत काम किया था। पूर्व-बंगाल में आपका अप्रतिहत प्रताप देखकर सरकार भी काँप उठी थी, और उसके फल-स्वरूप कई अन्य नेताओं के साथ आप भी निर्वासित किए गए थे। अश्विनी बाबू का जन्म सन् १८५६ ई० की २३ जनवरी को हुआ था। मृत्यु के समय आपकी अवस्था ६६ वर्ष की थी। अश्विनी बाबू चुप-चाप काम करना पसंद करते थे। आप अत्यंत उत्तेजना में भी शांत बने रहते थे। भक्ति-योग-नामक पुस्तक जो आपने लिखी है, वह बंग-भाषा



बाबू अश्विनीकुमार दत्त

का एक अमूल्य रत्न है । इस पुस्तक का बड़ा आदर हुआ है। कॉलेज की शिक्षा समाप्त करके आपने वकालत शुरू कर दी थी । देश पर विपत्ति आते देखते ही आपने वकालत छोड़ दी, और अपनी सारी शक्ति देश-सेवा में लगाई । बरीसाल का व्रजमोहन-स्कूल और कॉलेज आपकी अमर कीर्ति है । यहाँ आप शिक्षा देने के साथ ही विद्यार्थियों के चरित्र-गठन पर विशेष ध्यान देते थे । आपके समय में उक्त शिक्षा-संस्था बंगाल में आदर्श समझी जाती थी । दत्त बाबू कांग्रेस के सच्चे भक्त थे । सन् १९०६ में, बरीसाल-कानफ़्रेंस के अवसर पर, आपने आदर्श निर्भीकता, तेजस्विता और देश-भक्ति का परिचय दिया था। आपके ये गुण सदा पूर्ण मात्रा में बने रहे, कभी कमी नहीं हुई । धर्म में भी आपकी अपूर्व निष्ठा थी । ऐसे त्यागी, दूर-दर्शी और आदर्श देश-सेवक के वियोग से देश की बड़ी हानि हुई है । ऐसे कर्मवीर नेता की पवित्र आत्मा के लिये मंगल-कामना केवल शिष्टाचार ही है ।

× × ×

११. मि० पियर्सन परलोक में

सब तरह से दीन-दुखी असहाय भारत से सहानुभूति रखनेवाले और उसे कार्य-रूप में परिणत करनेवाले कुछ महानुभाव अँगरेज़ भी हैं । मि० पियर्सन उन्हीं सज्जनों में थे । मि० हार्नीमैन, मि० एंड्रूज़ और मि० पोलक की तरह मि० पियर्सन भी भारतीयों के अकृत्रिम बंधु थे । आप उन महापुरुषों में थे, जो संसार की सभी जातियों को स्वजाति और सारे संसार को स्वदेश के समान समझते हैं । मि० पियर्सन श्रीयुत रवींद्रनाथ के शांति-निकेतन में रहते और कार्य करते थे । कुछ दिन हुए, आप स्वदेश को गए थे । दुर्भाग्य-वश योरप से भारत को लौटते समय, इटली में, नेपल्स के निकट, रेल-गाड़ी से गिरकर आप स्वर्ग-वासी हो गए । मृत्यु के समय भी आप भारत को नहीं भूले थे । ऐसे सच्चे सहायक के वियोग से हमको जो शोक हुआ है, वह वर्णन नहीं किया जा सकता । शांति-निकेतन में उनकी स्मृति-रक्षा के लिये रवींद्र बाबू ने एक चिकित्सालय, चंदे से, स्थापित करना चाहा है । आशा है, इस कार्य में भारतवासी यथेष्ट आर्थिक सहायता देकर परलोक-गत पियर्सन के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने में पश्चात्पद न होंगे । ईश्वर प्रिय पियर्सन की आत्मा को शांति दें ।

× × ×

१२. श्रीयुत कस्तूरी रंगा ऐयंगर का वियोग

मदरास के नेता, हिंदू-पत्र के संपादक श्रीयुत एस्० कस्तूरी रंगा ऐयंगर १२ दिसंबर को सबेरे स्वर्ग-वासी हो गए । आप मदरास के प्राचीन और प्रवीण संपादक थे । कांग्रेस से आपको विशेष प्रेम था । इधर कुछ दिनों से बीमार रहते थे । ११ दिसंबर को श्रीयुत नटराजन के सभापतित्व में नव-निर्मित अखिल भारतीय संपादक-समिति की जो बैठक हुई थी, उसमें ऐयंगर महाशय कार्यकारिणी-समिति के सभापति चुने गए थे । कौन जानता था कि आप दूसरे ही दिन चल बसेंगे ! ऐयंगर महाशय पहले कोयंबटूर-हाईकोर्ट में वकालत करते थे । सन् १९०५ में वकालत छोड़कर, प्रसिद्ध हिंदू-पत्र ख़रीदकर उसका संपादन और संचालन करने लगे । आप महाजन-सभा, नेशनल फ़ंड, इंडस्ट्रियल एसोसिएशन और आल इंडिया-कांग्रेस-कमेटी के सदस्य थे। कुछ समय तक मदरास-कांग्रेस-कमेटी के प्रेसीडेंट भी रहे । महायुद्ध के समय सरकार ने भारतीय संवादपत्र-प्रतिनिधि चुनकर आपको योरप में भेजा था । आप उच्च कोटि के नेता और देश-भक्त थे । आपकी मृत्यु से भारत-भर की—विशेष रूप से मदरास की—भारी क्षति हुई है । आपके सम्मानार्थ काकिनाड़ा-कांग्रेस का काम दो मिनट तक बंद कर दिया गया था । ईश्वर आपकी आत्मा को शांति दें ।

× × ×

१३. एक प्रवासी भारतीय का प्रशंसनीय कार्य

सिनसिनाटी, अमेरिका में प्रवासी भारतीय श्रीयुत हसनदीन रहते हैं । आप इंजीनियर, वैज्ञानिक और करोड़पती हैं । आपने वहीं विवाह भी कर लिया है । आपकी धर्म-पत्नी का नाम है श्रीमती मेरी वैलेख शिलितो । इन्होंने जेनोवा के सालेवी पर्वत पर एक वेध-शाला (आबज़र्वेटरी) बनवाने की व्यवस्था की है । यह वेध-शाला संसार में सब वेध-शालाओं से बड़ी होगी । फ़्रांस का इस पर अधिकार होगा । इसकी इमारत, यंत्र आदि और उद्घाटन-समारोह में १ करोड़ ८७ लाख ५० हज़ार रुपए ख़र्च होंगे । सालेवी-पर्वत ४,४३० फ़ीट ऊँचा है । यहाँ का वायु-मंडल बहुत साफ़ है ।

साल के अधिकांश समय में शुद्ध आकाश देखा जा सकेगा। रोज़ समाचार पहुँचाने के लिये यहाँ एक हवाई-जहाज़ भी रहेगा। वह संसार की सभी वेध-शालाओं से संबंध रक्खेगा। वायु-मंडल की हालत और परिवर्तन उससे मालूम होता रहेगा। यहाँ १०९ इंच के घेरे की एक दूरबीन रहेगी। इसका घेरा यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिका के माउंट-विल्सन की वेध-शालावाली दूरबीन के घेरे से ९ इंच अधिक होगा। २० से ६० इंच तक के घेरेवाली और भी दूरबीनें यहाँ रहेंगी। इसमें संदेह नहीं कि यह कार्य बहुत उपयोगी और प्रशंसनीय है, यद्यपि इससे लाभ विदेशियों ही को होगा।

× × ×

१४. तीन पैर की विचित्र लड़की

ईश्वर की सृष्टि में प्रकृति प्रायः अपनी विचित्र लीला दिखाकर लोगों को चकित कर देती है। उसी का एक नमूना यहाँ पर दिया जाता है। ज़िला-गोरखपुर में रुद्रपुर नाम का एक क़स्बा है। वहाँ भगेलू नाम का एक पठान रहता है। उसके एक तीन पैर की लड़की हुई है। चित्र में लड़की और उसके पिता को देखिए। लड़की के और सब अंग साधारण बच्चों के-से हैं; किंतु पीठ में कमर के पास एक तीसरा पैर है। वह पैर बिलकुल बेकार है, उससे वह लड़की कुछ काम नहीं ले सकती। लंगूर की पूँछ के समान वह ऊपर को उठा रहता है। उस पैर में न तलवा है, न पाँचों उँगलियाँ। केवल एक उँगली और उसमें नाखून भी है। उस पैर को वह इधर-उधर हिला सकती है। लड़की डेढ़ साल की है, मगर उसका शरीर बहुत ही दुर्बल है। पैर से एक असुविधा अवश्य है। वह लड़की चित होकर लेट नहीं सकती। यह चित्र हमें रुद्रपुर के बाबू महावीरप्रसादजी "विकल" से प्राप्त हुआ है। तदर्थ आपको धन्यवाद।



विचित्र लड़की

× × ×

१५. टाइटिल की कल्पना के लिये १००) का पुरस्कार

माधुरी में हर छमाही पर नया टाइटिल दिया जायगा। संचालकों ने यह निश्चय किया है कि चित्रकार महाशयों से प्रार्थना की जाय कि वे अपनी-अपनी कल्पना के अनुसार माधुरी के टाइटिल के लिये चित्र बनाकर भेजें। जिनके चित्र अच्छे समझे जायँगे, और पसंद होंगे, उन्हें १००) रु० का पुरस्कार दिया जायगा। आशा है, सुयोग्य चित्रकार इस अवसर पर अपनी चित्र-कला और कल्पना-कुशलता का परिचय देने की कृपा अवश्य करेंगे।

× × ×

१६. पत्थर का कोयला और बिजली

भारत में विज्ञान की चर्चा अधिक न होने के कारण कोयले के संबंध में विशेष चर्चा नहीं होती। यहाँ के शिक्षित पुरुष भी नहीं जानते कि कोयला आधुनिक विज्ञान-जगत् में कितना उपयोगी पदार्थ समझा जाता है। इस संबंध में अध्यापक श्री-विनयकुमार सरकार एम्० ए० ने—जो योरप और अमेरिका में घूमकर अपना ज्ञान बढ़ाने गए हैं—अग्रहन के 'भारतवर्ष' में जो कुछ लिखा है, उसका सारांश यह है—इँगलैंड, अमेरिका, फ़्रांस, जर्मनी आदि सभी देशों में कोयले के विशेषज्ञ वैज्ञानिकों का बड़ा सम्मान है। इस समय जर्मनी के

वैज्ञानिक इसकी खोज में बड़ा ध्यान दे रहे हैं । गत ४-५ वर्ष से केवल वैज्ञानिक ही नहीं, फ़ैक्टरियों के मालिक और साधारण नर-नारी भी इसकी आलोचना करते हैं, और यह उनका नित्य-कर्म हो गया है । इस समय फ़्रांस की धींगा-धींगी से जर्मनी की यह हालत हो गई है कि पहले की तरह अन्य देशों को कोयला देने की कौन कहे, वह अपने-भर को भी कोयला नहीं प्राप्त कर सकता । जर्मनी के अनेक ऐसे स्थान उसके हाथ से निकल गए हैं, जिनमें कोयले की खानें थीं । इस समय जर्मनों को अपने लिये भी बाहर से कोयला मँगाना पड़ता है । जर्मनों के लिये जितने कोयले की ज़रूरत है, उसका तृतीयांश उन्हें पाँच वर्ष से बाहर से मँगाना पड़ता है । भारतवासी पत्थर का कोयला कहने से एक काली-काली, कठिन वस्तु के सिवा और कुछ नहीं समझते । किंतु कोयले के विशेषज्ञों ने इसी वस्तु के अनेक जाति-भेद निकाले हैं । सबसे अच्छे कोयले को अन्थ्रासिट कहते हैं । बहुत ऊँचे दर्जे के लोहे और इस्पात को तैयार करने में इस कोयले का उपयोग होता है । लेकिन यह कोयला बहुत कम निकलता है । यह जर्मनी के पूर्व-अंचल में सार-नदी के दोनों किनारों पर बसे हुए शहरों में मिलता है । जर्मनी के पश्चिम-अंचल के सिलेशिया-स्थान में भी इस कोयले की खानें हैं । रूर-अंचल में जो खानें हैं, उनमें से अधिकांश इसी कोयले की हैं । सार-नदी-तट के सब स्थान वार्सा-संधि के अनुसार जर्मनी के हाथ से निकल गए हैं । जेनेवा की लीग ऑफ़ नेशन्स के विचार से सिलेशिया का एक अंश पोलैंड को दे दिया गया है । रूर-अंचल फ़्रांस दबाए बैठा है । मतलब यह कि अन्थ्रासिट-कोयले की सब खानें शत्रुओं ने जर्मनी से छीन ली हैं । लाचार होकर जर्मनी विलायत से अन्थ्रासिट मँगाता है । परंतु अन्थ्रासिट की इतनी कमी होने पर भी जर्मनी एकदम निराश नहीं हुआ । असल में जर्मनी के लौह-शिल्प या अन्य शिल्प को कोयले का अभाव करके नष्ट करना सहज बात नहीं है । जर्मनी के वैज्ञानिक इस समस्या को हल करने के लिये प्राण-पण से चेष्टा कर रहे हैं । सिलेशिया का कुछ हिस्सा इस समय भी जर्मनी के हाथ में है । युद्ध के पहले जर्मन लोग खानों से पूरा कोयला नहीं निकालते थे । आज इस दुर्दिन में लाचार होकर फ़ैक्टरियों के मालिक उनसे पूर्ण रूप से काम ले रहे हैं । इसके सिवा जर्मनी के मध्य-प्रदेश में और एक तरह का कोयला होता है, जिसमें पत्थर की मात्रा बहुत कम है । मिट्टी, बालू और जल ही उस कोयले में प्रधान पदार्थ हैं । इसे इगनिट ब्राउन कोल (नरम कोयला) कहते हैं । यद्यपि अन्थ्रासिट की तुलना में इसे मिट्टी ही कहना चाहिए, कोयला नहीं, तथापि इस इगनिट का उपयोग करके भी अनेक शिल्प चलाए जा सकते हैं । जर्मनों का विज्ञान-बल बहुत बढ़ा-चढ़ा हुआ है । वे वैज्ञानिक प्रक्रिया से इगनिट को ही कठिन और उन्नत श्रेणी में परिणत कर लेते हैं । बहुत दिन तक गवेषणा करने का यह सुफल जर्मनों को प्राप्त हुआ है । राइन-प्रदेश की अधिकांश खानें इसी इगनिट की हैं । जर्मन वैज्ञानिक इगनिट को अन्थ्रासिट के समकक्ष करने की चेष्टा बहुत दिन से कर रहे थे, और आज तो वह चेष्टा चरम सीमा को पहुँच गई है । इगनिट-कोयले को कड़ा बनाकर उसकी ईंटें ढाल ली जाती हैं । ये ईंटें यद्यपि अन्थ्रासिट की-जैसी तेज़ आँच नहीं दे सकतीं, तथापि घर गरम करने और फ़ैक्टरियों की भट्ठियाँ जलाने का काम इनसे मज़े में चल जाता है । अतएव जब तक जर्मनी में इगनिट का अत्यंताभाव नहीं होता, तब तक जर्मन गृहस्थ और फ़ैक्टरीवाले सिर पर हाथ रखकर हाय-हाय नहीं करेंगे । अरसे से जर्मन धन-कुबेर कोयला-समस्या हल करने के लिये वैज्ञानिकों के आगे धन के ढेर लगा रहे हैं ।

इसके सिवा जर्मन शिल्प संसार में एक और परिवर्तन हो रहा है । कोयले का व्यवहार यथासंभव कम करके बिजली से काम लेने की चेष्टा भी चल रही है । इतने ही समय में जर्मनों ने बिजली की सहायता से अन्थ्रासिट और इगनिट की आवश्यकता बहुत कम कर दी है । रेल-गाड़ियाँ बिजली की ताक़त से चलाई जाने लगी हैं । मतलब यह कि जिस काम में कोयले का प्रयोग निहायत ज़रूरी है, उसके बिना काम ही नहीं चलता, उसी काम के लिये कोयला बचाया जाता है । कोयले के बदले बिजली से एंजिन चलाने का काम जल्दी नहीं हो सकता, तथापि बर्लिन के भीतर और उसके आस-पास बिजली के एंजिन काम करने लगे हैं । केवल रेलें ही बिजली से नहीं चलतीं, बहुत-से कारख़ानों के एंजिन भी बिजली से

चलने लगे हैं। बिजली ने जर्मनी में एक नया शिल्प-युग उपस्थित कर दिया है। कोयले की जगह बिजली से काम लेने के कारण मज़दूरों का स्वास्थ्य भी अब उतना ख़राब न होगा। जर्मनी की देखा-देखी आस्ट्रिया में भी बिजली से काम लेना शुरू हो गया है। आस्ट्रियनों ने आल्प्स-पहाड़ की रेलवे में बिजली का सामान लगाना शुरू कर दिया है। जान पड़ता है, दुनिया से कोयले का व्यवहार उठकर बिजली का व्यवहार शुरू हो जायगा। इस बिजली के युग में भी जर्मनी विशेष प्रभावशाली रहेगा। बर्लिन के बिजली के कारख़ाने बहुत दिनों से जगत्प्रसिद्ध हैं। आज जगत् के सभी देशों के इंजीनियर बर्लिन को तीर्थ-क्षेत्र समझते हैं। चीना, जापानी, चिलियन, ब्रेजिलियन आदि सभी जातियों के शिल्पज्ञ लोग बर्लिन के कारख़ाने देखने और उनमें काम सीखने आ रहे हैं। बिजली में एक सुबीता यह भी है कि कारख़ाने से बहुत दूर तक—डेढ़-दो सौ मील तक—बिजली की ताक़त पहुँचाई जा सकती है। बर्लिन के एंजिन-घरों में जिस बिजली की सहायता ली जाती है, वह गोलपा-शहर से आती है। वही शहर बर्लिन की बिजली का केंद्र है। इस तरह का बड़ा शक्ति-केंद्र सैक्सनी-ज़िले हैं। बीच-बीच के छोटे शक्ति-केंद्र बड़े किए जा रहे हैं। नए शक्ति-केंद्रों की भी स्थापना हो रही है। इस तरह जर्मनी के इलेक्ट्रिकल इंजीनियर देश को कोयले की समस्या से उबार रहे हैं। इसी को कहते हैं सच्ची स्वदेश-सेवा।

× × ×

१७. किस मिल में कहाँ का सूत लगता है

खद्दर का आंदोलन जब ज़ोरों पर था, तब भी बहुत-से लोग स्वदेशी मिलों के बने कपड़े पहनते थे। मिल-मेड कपड़े का संपूर्ण बहिष्कार अभी चल भी नहीं सकता। कारण, इतना खद्दर बनता ही नहीं कि सब लोग खद्दर ही पहनें। फिर जो लोग देश-भक्त भी हैं, और शौक़ीन-मिजाज़ भी किसी हद तक हैं, उन्हें मिल-मेड पहनने देना युक्ति-युक्त होगा। एक प्रश्न यह उठाया जाता है कि मिलों के कपड़ों में अधिकतर विलायती सूत काम में लाया जाता है। अतः उनके कपड़े प्रकारांतर से विलायती ही होते हैं। यद्यपि हमारा मत यह है कि विदेश के बने कपड़ों की अपेक्षा स्वदेश में विलायती सूत से बने कपड़े पहनना भी किसी हद तक अच्छा है (क्योंकि उनसे अपने देश के कुछ मज़दूरों का तो पेट पलता है, देश का कुछ धन तो बाहर जाने से बचता है), तथापि हम यह मानने के लिये तैयार हैं कि जो लोग मिल-मेड ही पहनते हैं, उन्हें उन्हीं मिलों के कपड़े ख़रीदने चाहिए, जिनमें स्वदेशी सूत लगाया जाता है। नीचे देशी और विदेशी सूत का इस्तेमाल करनेवाली भारतीय मिलों के नाम दिए जाते हैं। हमारे पाठकों में जो मिल-मेड पहननेवाले हैं, उन्हें स्वदेशी सूत का व्यवहार करनेवाली मिलों के ही कपड़े ख़रीदने चाहिए। देशी सूत का व्यवहार करनेवाली मिलें ये हैं—जेठराज बाबू स्पिनिंग ऐंड वीविंग कंपनी, सर शापुरजी भरूचा मिल, कस्तूरचंद मिल, ब्राडबरी मिल, फ़िनिक्स मिल, क्राउन स्पिनिंग ऐंड वीविंग कंपनी, माखनजी गोकुल-दास स्पिनिंग ऐंड वीविंग कंपनी, विक्टोरिया मिल, राजा गोकुलदास मिल, रुबी मिल, बांबे काटन मैनुफ़ैक्चरिंग कंपनी, कुचला स्पिनिंग ऐंड वीविंग कंपनी एडवर्ड स्पिनिंग ऐंड वीविंग कंपनी, प्रेसीडेंसी मिल, जमशेद मिल, कोहि-नूर मिल, डायमंड स्पिनिंग कंपनी, सवान मिल, खटाउ मानिकजी स्पिनिंग कंपनी, फ़िनले मिल, हिंदुस्तान स्पि-निंग कंपनी, ग्लोब मैनुफ़ैक्चरिंग कंपनी, एल्फ़िंस्टन स्पिनिंग कंपनी। विदेशी सूत का व्यवहार करनेवाली मिलें ये हैं—मथुरादास मिल, सिंप्लेक्स मिल, प्लानेट मिल और माधवजी मिल। निम्न-लिखित मिलें केवल किनारी में विदेशी सूत का व्यवहार करती हैं—करीम भाई मिल, ई० पाबने मिल, फ़ज़लुल भाई मिल, क्रेसेंट मिल, इंडियन ब्लीचिंग कंपनी, इंदौर मालवा मिल, पार्लर्स मिल, प्रीमियर मिल, करीम भाई स्पिनिंग प्रेसिंग कंपनी, बांबे इंडस्ट्रियल मिल, ताता मिल। निम्न-लिखित मिलें ख़ास इँगलैंड का सूत काम में लाती हैं—मलिक पेटिट कंपनी, बांबे मैनुफ़ैक्चरिंग कंपनी, दिनशा पेटिट मैनुफ़ैक्चरिंग कंपनी और बांबे पेटिट मैनुफ़ैक्चरिंग कंपनी।

× × ×

१८. भारत के बड़े-बड़े शहरों की आबादी

कलकत्ते में १३ लाख ७२ हज़ार ५४७, बंबई में ११ लाख १५ हज़ार ३१४, मदरास में ५ लाख २६ हज़ार ९११, हैदराबाद में ४ लाख ४६ हज़ार १८७, रंगून में

२ लाख ४१ हज़ार ६६२, दिल्ली में ३ लाख ४ हज़ार ४२०, लाहौर में २ लाख ८१ हज़ार ७८१, अहमदाबाद में २ लाख ७४ हज़ार ७, लखनऊ में २ लाख ४० हज़ार ५६८, बँगलोर में २ लाख ३७ हज़ार ४६६, कराँची में २ लाख १६ हज़ार ८८३, कानपुर में २ लाख १६ हज़ार ४३६ और पूने में १ लाख १४ हज़ार ७६६ आदमी रहते हैं।

× × ×

१९. साहित्य में तुलना-वाद

धीरे-धीरे साहित्य में तुलना-वाद को बड़ा महत्त्व-पूर्ण स्थान प्राप्त होता जा रहा है। समालोचना में तो इसकी आवश्यकता अनिवार्य-सी हो गई है। विना तुलना-वाद का आश्रय लिए समालोचना महत्त्व-हीन समझी जाने लगी है। विद्वान् समालोचक तुलना-वाद के आश्रय से समालोचना-मंदिर का निर्माण करने लगे हैं। तुलना-वाद की यह महत्त्व-वृद्धि समाज की सुरुचि का परिचय देती है, इसमें संदेह नहीं। परंतु इस प्रश्न पर विचार-पूर्वक दृष्टिपात करने से सहसा यह प्रश्न उठता है कि वास्तव में तुलना-वाद की उपयोगिता का आधार क्या है, और समाज का ध्यान उस आधार पर कहाँ तक है? समालोचक लोग प्रायः कहा करते हैं कि अमुक कवि का अमुक काव्य अमुक कवि के अमुक काव्य से कहीं बढ़कर है। परंतु विचार-पूर्वक देखा जाय, तो यह स्थिर करना कि वह काव्य उस कवि के काव्य से वास्तव में बढ़कर है या नहीं, उतना सरल नहीं है, जितना कि समझा जाता है। कला की उच्च और निम्न कोटि की परीक्षा में निर्णयकार की प्रकृति और उसके आंतरिक मनोविकारों का प्रभाव विद्यमान रहता है। निर्णयकार यदि भावुक है, तो भावना-सौंदर्य पर वह मुग्ध हो जायगा; कला के अन्य अंगों की ओर दृष्टिपात न करेगा। यदि वह मनोभावों का तत्त्व-दर्शी है, तो सदा मानव-प्रकृति की यथार्थ प्रतिमा ही के अन्वेषण में लगा रहेगा। उसी का आभास और उदय पाकर वह कवि की—कला-कुशल की—कुशलता पर लट्टू हो जायगा। यदि वह प्राकृतिक सौंदर्य का उपासक है, तो उसी के संदर्शन में उसका मनामयूर नाच उठेगा। मतलब यह कि उसका निर्णय उसके मनोभावों के अनुसार ही होगा। तुलना-वाद के इस पहलू पर विवेचना करने से सचमुच हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि वास्तव में कोई समालोचक यह कहने का साहस नहीं कर सकता कि मेरी तुलनात्मक विवेचना निष्पक्ष, निर्विवाद और सर्वथा मान्य है। इसीलिये हम प्रायः देखते हैं कि विचारशील समालोचक भी कभी-कभी सच्चे हृदय से यह स्वीकार कर लेते हैं कि यद्यपि मेरी विवेचना पक्षपात-रहित है, तथापि मैं अपनी विवेचना में विवेच्य वस्तु की यथार्थता का दावा नहीं कर सकता। तुलना-वाद की उपयोगिता की यथार्थता ऐसे विचारशील विवेचकों के कथन से बिलकुल स्पष्ट हो जाती है।

खेद है कि विश्व-साहित्य के विस्तीर्ण क्षेत्र में ऐसे विचारशील समालोचकों का अभाव-सा है। कभी-कभी हिंदी के कुछ अहम्मन्य समालोचक जब यह कहने का दम भरने लगते हैं कि अमुक कवि अथवा नाट्यकार की कृतियाँ कुछ नहीं हैं; न उनमें कवित्व-पूर्ण प्रतिभा ही का कुछ चमत्कार है, न भाषा ही विशुद्ध है इत्यादि, तो हमें उनकी इस विवेचना पर तरस आता है। यही कहना पड़ता है कि कला की उच्चता का निर्णय इतना सरल नहीं है, जितना कि समालोचक समझा करते हैं। यदि किसी निर्णयकार को कवि की कृतियों में कवित्व का चमत्कार नहीं मिलता, तो यही इस बात का प्रबल प्रमाण नहीं है कि सचमुच उसकी रचना में कवित्व का समावेश नहीं है। कवि अपना कौशल शब्दों के आवरण में रखता है। आश्चर्य नहीं, समालोचक की पहुँच ही शब्दावरण के अंतर्गत, छिपे हुए, भावों की तह तक न पहुँची हो। यह असंभव भी नहीं। निर्विवाद रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि समालोचक सदा कवि के भावों तक पहुँच ही जाता है (कारण, इसके लिये समालोचक में भी कवि के समान अथवा कुछ न्यूनाधिक सहृदयता, योग्यता, अनुभव, बहुज्ञता आदि की मात्रा होनी चाहिए; और यह बात आजकल के अधिकांश स्वयंसिद्ध समालोचकों में कम ही पाई जाती है। अंध-भक्ति, बात का पक्षपात, जीवित कवियों के संबंध में व्यक्ति-गत द्वेष आदि कई बातें योग्य समालोचक को भी न्याय्य तुलना नहीं करने देतीं। आजकल तो यहाँ तक देखा जाता है कि किसी व्यक्ति-विशेष से कोई बिगड़ गया, बस, चट क़लम पकड़कर समालोचना के बहाने जले फफोले फोड़ने लगा)। सच्ची बात

तो यह है कि बिरले ही सफल समालोचक कवि के यथार्थ भावों तक पहुँच पाते हैं। फिर यदि यह मान लिया जाय कि समालोचक की दृष्टि कवि के यथार्थ भावों तक पहुँची है, तो भी कवि के यथार्थ भावों तक पहुँचना और बात है, और उन भावों पर पहुँचकर उनकी यथार्थ विवेचना करना और बात। अतएव समालोचकों का यह गर्व मिथ्या है कि उनका विवेचन ऐसा निष्पक्ष और यथार्थ है कि समग्र समाज उसको मान्य ही समझेगा।

× × ×

२०. हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के लिये प्रस्ताव

अपने एक हिंदी-प्रेमी मित्र की सम्मति के अनुसार हम निम्न-लिखित प्रस्ताव हिं० सा० सम्मेलन के चतुर्दश अधिवेशन के लिये उपस्थित करते हैं। उनके कथनानुसार सम्मेलन में इस समय कई त्रुटियाँ आ गई हैं। उनके सुधार की बड़ी आवश्यकता है। आशा है, हिंदी-प्रेमी सज्जन इन पर पूर्ण रीति से विचार करेंगे—

(क) सम्मेलन की आंतरिक दशा दिन-दिन हीन होती जाती है। इसका विशेष रूप से उल्लेख हमारे हिंदी-प्रेमी मित्र सम्मेलन में करेंगे। बहुत-से व्यक्ति इन बातों से परिचित भी हैं। अतः इसकी जाँच के लिये पाँच व्यक्तियों का एक कमीशन नियुक्त किया जाय, जो तीन मास के भीतर गवाहियाँ लेकर अपनी सम्मति स्थायी समिति और पत्रों में प्रकाशित कर दें। स्थायी समिति उचित समझे, तो उस सम्मति से लाभ उठा सकती है।

(ख) किसी संस्था के एक स्थान पर रहने से वह वहीं के व्यक्तियों की संपत्ति-सी हो जाती है, और क्रमशः उसका ह्रास होने लगता है। सम्मेलन की भी वही दशा है। अतः सम्मेलन का ऑफ़िस, एक स्थान पर न रखकर, जहाँ सम्मेलन हो, वहीं वर्ष-भर रक्खा जाय। इससे सब प्रांतों को सेवा करने का अवसर मिलेगा, और सार्वजनिक भाव भी बना रहेगा।

(ग) अब तक सभापति और प्रधान मंत्री स्थायी समिति के आजन्म सदस्य समझे जाते हैं। परंतु मंत्रियों को आजन्म सदस्य रखना उचित नहीं है। इससे बहुत-सी त्रुटियाँ उपस्थित हो जाती हैं। अतः केवल सम्मेलन का सभापति ही स्थायी समिति का आजन्म सदस्य माना जाय। अन्य व्यक्ति जब तक चुनाव में न आ जायँ, सदस्य न माने जायँ।

(घ) कोई सम्मेलन का अधिकारी ३ वर्ष से अधिक लगातार एक ही पद पर न रक्खा जाय, और कोई व्यक्ति ७ वर्ष से अधिक लगातार अधिकारी न चुना जाय।

(ङ) सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पुस्तकें सम्मेलन ही की ओर से बुकसेलरों के पास भेज दी जायँ, और हो सके, तो ग्राहकों को भी वही भेजा करे। किसी संस्था को होल सेल एजेंट न बनाया जाय।

(च) सम्मेलन से वे ही पुस्तकें प्रकाशित की जायँ, जो अन्यत्र प्रकाशित न हुई हों। वियोगी हरि-कृत 'रहिमन के दोहे सटीक'-जैसी पुस्तकें प्रकाशित करने की आवश्यकता नहीं है। ऐतिहासिक, साहित्यिक, प्राचीन, मौलिक और उत्तम पुस्तकें प्रकाशित की जायँ। उनके चुनाव के लिये योग्य विद्वानों की एक समिति बना दी जाय। परंतु जो उस समिति में सम्मिलित हों, उनकी पुस्तकें न चुनी जायँ। जिनकी पुस्तकें चुनी जायँ, वे सब बाहर के व्यक्ति हों।

(छ) सम्मेलन के कुछ कार्य किसी संस्था के हित की दृष्टि से और कुछ किसी संस्था के विरोध-स्वरूप किए जाते हैं। यह बात सम्मेलन-जैसी संस्था के योग्य नहीं है। इसके कुछ उदाहरण भी दिए जा सकते हैं। अतः जो कार्य अन्य संस्थाएँ कर रही हैं, उन्हें इस संस्था को अपने हाथ में न लेना चाहिए। यदि दूसरों को प्रोत्साहन दिया जाय, तो और भी अच्छा हो।

(ज) साहित्य-सम्मेलन परीक्षाएँ लेता है। परंतु उसका कोई विद्या-पीठ नहीं है। जो था, वह टूट गया। अतः उत्तम रूप से चलाने के लिये एक विद्या-पीठ पुनः प्रयाग में स्थापित किया जाय।

× × ×

२१. हिंदी में सचित्र साप्ताहिक

हिंदी-संसार में जो लोग काम करनेवाले हैं, उनमें अधिकांश गतानुगातिक ही हैं। कोई नई बात सोचना और उसे कार्य रूप में परिणत करना वे शायद जानते ही नहीं। पुस्तक-मालाएँ निकलना शुरू हुआ, तो सैकड़ों पुस्तकमालाएँ ही निकलने लगीं। प्रायः उनमें रद्दी और अनुवाद की पुस्तकें ही निकलती नज़र आती हैं। किसी-किसी माला में तो एक-दो पुस्तकें ही निकलकर रह

गई। पत्र निकलने लगे, तो पत्रों का ही सिलसिला जारी हो गया। आजकल पत्रों की जैसी भरमार हो रही है, वह देखते ही बन पड़ती है। तरह-तरह के छोटे-बड़े मासिक, पाक्षिक, अर्ध-साप्ताहिक, साप्ताहिक, दैनिक पत्र जगह-जगह से निकल रहे हैं। पर अधिकांश पत्रों में न कोई विशेषता देख पड़ती है, और न उनका कोई विशेष लक्ष्य ही होता है। हिंदी में ग्राहकों और पाठकों के साथ ही अच्छे लेखकों की संख्या भी परिमित ही है। फल यह होता है कि ऐसे पत्र कुछ दिन निकलकर ग्राहकों के अभाव की दोहाई देते हुए बिदा हो जाते हैं। पत्र निकालनेवाले अगर यह सोचकर पत्र निकालें कि इस समय कैसे पत्र का अभाव है, किस विषय की कमी है, पत्र चलाने के लिये आवश्यक साधन उनको सुलभ हैं या नहीं, तो उन्हें अवश्य सफलता मिले। आज हम एक ऐसा ही क्षेत्र बतलाते हैं, जिसमें काम करने से अवश्य सफलता होगी। हिंदी-साहित्य में सचित्र साप्ताहिक का संपूर्ण अभाव है। सचित्र के नाम से तो कोई साप्ताहिक नहीं निकलता। हाँ, कभी-कभी साप्ताहिकों में रद्दी सामयिक चित्र निकल जाते हैं। हम चाहते हैं, हिंदी में भी अच्छे सचित्र साप्ताहिक पत्र निकलें। उनमें सब विषयों के लेख रहें। वे अच्छे काग़ज़ पर छपें। उनमें तिरंगे चित्र (कम-से-कम हर संख्या में एक) रहें। सादे चित्र भी यथेष्ट हों। सचित्र लेख भी मासिक पत्रों की तरह प्रकाशित हों। मतलब यह कि मासिक पत्रों की तरह वे भी संग्रहणीय हों। हमें याद आता है, एक बार हमारे एक मित्र ने इस विषय पर किसी पत्र में लिखा था। पर उस पर ध्यान नहीं दिया गया। हम आशा करते हैं, हिंदी के क्षेत्र में प्रकाशन-कार्य करनेवाले हिंदी-प्रेमी अवश्य इस अभाव की पूर्ति करने का शीघ्र ही प्रयत्न करेंगे। गुजराती, बँगला, अँगरेज़ी आदि भाषाओं में सचित्र साप्ताहिकों का अभाव नहीं है। राष्ट्र-भाषा हिंदी में यह अभाव बेतरह खटक रहा है। आशा है, हमारी यह प्रार्थना निष्फल न होगी।

× × ×

२२. सच्ची लगन

कोई भी काम हो, सच्ची लगन के बिना नहीं हो सकता। हमारे बहुत-से काम इसी सच्ची लगन के न होने से सिद्ध नहीं होते। हिंदुओं का संगठन इसका एक ताज़ा उदाहरण है। हिंदू-संगठन की कितनी आवश्यकता है, यह बात अब सब शिक्षित हिंदू जान गए हैं। उन्हें अपनी कमज़ोरी का अनुभव हो चुका है, और उसका फल भी वे पा चुके हैं। फिर भी संगठन का काम क्यों जहाँ-का-तहाँ रुका पड़ा है? इसका एक-मात्र उत्तर यही है कि कार्य-कर्ताओं में अभी सच्ची लगन नहीं पैदा हुई। हिंदू-महासभा को हुए इतना समय हो गया; परंतु अभी तक बड़े-बड़े शहरों में भी हिंदू-सभाओं की स्थापना नहीं की जा सकी। कार्य-कर्ता लोग महासभा से लौटकर फिर जैसे-के-तैसे हो गए। पूजनीय मालवीयजी या स्वामी श्रद्धानंदजी के ऊपर सब भार छोड़कर निश्चिंत हो बैठने से काम नहीं चल सकता। काम सुझाना, उसका रास्ता बतलाना इन नेताओं का काम है, और वह काम करना, उस रास्ते पर चलना अन्य कार्य-कर्ताओं का कर्तव्य है। इस सुस्ती का दोष सर्व-साधारण जनता के सिर नहीं मढ़ा जा सकता। कारण, अधिकांश अपढ़ जनता, जिसके प्रतिनिधि महासभा में उपस्थित हुए थे, यह नहीं जानती कि हिंदू-संगठन के प्रश्न का कितना अधिक महत्त्व है, यह जाति के जीवन-मरण का प्रश्न है। उसको संगठन के लिये तैयार करना इन प्रतिनिधियों और कार्य-कर्ताओं ही का काम है। अधिकांश कार्य-कर्ता तो शायद इसलिये भी इधर से उदासीन जान पड़ते हैं कि उनकी समझ में संगठन करने से मुसलमान-भाई नाराज़ हो जायँगे—हिंदू-मुसलिम-ऐक्य को धक्का लगेगा। पर ऐसा समझना ग़लती है। एक तो हम लोग मुसलमान-भाइयों के विरुद्ध यह काम करना नहीं चाहते। हमारा तो लक्ष्य है निर्बल हिंदू-जाति को संगठन से सबल बनाकर कार्यक्षम करना, और हिंदू-जाति के विभिन्न अंगों में जो कुछ भेद-भाव या विरोध है, उसे दूर करना। जब हमारा उद्देश्य उच्च है, तब हमें किसी के नाराज़ होने या विरोध करने की पर्वा न करनी चाहिए। हमारे कार्य-क्रम को देखकर मुसलमान-भाइयों का भ्रम आप ही दूर हो जायगा। दूसरे, मुसलमान-भाई भी तो अपना संगठन—वह भी खुलासा हिंदुओं के विरुद्ध काम करने की घोषणा के साथ—कर रहे हैं। मौलाना अब्दुल बारी, जो महात्माजी के मित्र समझे जाते थे, और लखनऊ में महात्माजी जिनके यहाँ ठहरे थे, खुलासा हिंदुओं के विरुद्ध संगठन की घोषणा कर रहे हैं। मौलाना शौकत

भली सब काम छोड़कर ख़िलाफ़त के संगठन की धूम मचा रहे हैं। मुसलमान लोग जगह-जगह मसजिदों के आगे किसी भी समय बाजे न बजाने देने की ज़िद कर रहे हैं, और सरकारी कर्मचारी उनकी पीठ ठोंक रहे हैं। झाँसी में तो एक हिंदू की बरात का जलूस भी मसजिद के आगे बाजे न बजाने देने का हठ करके रोक दिया गया! कच्छ में ५०० से ऊपर हिंदू मुसलमान बना डाले गए। आग़ा ख़ाँ के चेले लाखों हिंदुओं को मुसलमान बनाने की चेष्टा कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में हिंदू-मुसलिम-एके को धक्का लगने का ख़याल करके अपने संगठन-कार्य को शिथिल करना हिंदुओं की बड़ी भारी मूर्खता होगी। हमारा मतलब यह नहीं है कि मुसलमान-भाइयों के पूर्वोक्त कार्यों का जवाब देने के लिये संगठन किया जाय। हम यही कहते हैं कि हम संगठन अपने बचाव के लिये करें। हममें संगठन होने से ये सब आक्रमण बंद हो जायँगे। अंत में हमारा यही कहना है कि संगठन में शिथिलता के गौण कारण चाहे जो हों, मुख्य कारण हिंदू-कार्यकर्ताओं में सच्ची लगन का न होना ही है। जैसे धातुओं के टूटे टुकड़े आग की गरमी से पिघलकर जुड़ जाते हैं, वैसे ही सच्ची लगन की आँच से हिंदू-जाति के टूटे-फूटे बिछुड़े अंग एक में मिल जायँगे। हमारी कार्य-कर्ताओं से यही विनम्र प्रार्थना है कि वे अपने में सच्ची लगन पैदा करें, और उसके बाद सर्व-साधारण हिंदू-जनता में भी, वस्तु-स्थिति बतलाकर, सच्ची लगन पैदा करने की कोशिश करें। इसके बिना कुछ काम न होगा। अगर हिंदू-जाति को जीवित रहना अभीष्ट है, तो संगठन के सिवा उसका और कोई उपाय नहीं है; और संगठन की सफलता के लिये सच्ची लगन का होना अत्यंत आवश्यक एवं अनिवार्य है।

× × ×

२३. साधारण और गंभीर

हमारे कुछ कृपालु समालोचकों और मित्रों की यह शिकायत है कि माधुरी के संपादकीय वक्तव्य गंभीर नहीं होते। बात हमारी समझ में नहीं आई। क्या वे यह चाहते हैं कि माधुरी के नोट महाभाष्य की फक्किकाओं या वेदांत की कारिकाओं के नए एडीशन हों? हिंदी के पाठकों में कितने इतने योग्य हैं कि बहुत गंभीर विषयों को समझ सकें? फिर माधुरी केवल कुछ "हमचुनीं, दीगरे नेस्त" समझनेवाले संपादकों या उपसंपादकों ही के लिये नहीं निकाली जाती। वह सर्व-साधारण पाठकों के लिये निकाली जाती है। अगर कुछ गंभीर पत्रों की शैली ग्रहण की जाती, तो आज माधुरी के भी १००-१२५ से अधिक ग्राहक न होते, और उसे भी बोरिया-बसना समेटकर 'भूतपूर्व' हो जाना पड़ता। इसके अलावा किसी भी विषय को सरल भाषा में समझाने ही से क्या वह साधारण हो जाता है! जटिल शब्दों के जाल में वक्तव्य को दुरूह बनाना हमें नहीं आता, और न हम उसे पसंद ही करते हैं। और, हमारा ख़याल यह भी है कि पाठक की योग्यता के अनुसार हरएक विषय साधारण या गंभीर माना जा सकता है। अर्थात् जो विषय एम० ए० की योग्यतावाले के लिये साधारण है, वही मिडिल की योग्यतावाले के लिये गंभीर। अतः हम अपने कुशल समालोचकों की राय नहीं मान सकते, इसका हमें दुःख है। हमारे वे सर्वज्ञ, बहुज्ञ, अगाध योग्यता रखनेवाले, गंभीरता-प्रिय समालोचक हमें क्षमा करें। हम न इतने बड़े दिग्गज पंडित हैं, न पंडिताई का गर्व रखते हैं, और न अपनी पंडिताई दिखाने के लिये पाठकों के विराग-भाजन बनना चाहते हैं।

× × ×

२४. कुछ जानने योग्य बातें

(संकलित)

१—अमेरिका, इँगलैंड, स्वीडन और स्विज़रलैंड में फ़ी सदी ९९ शिक्षित हैं। इसी तरह आस्ट्रिया में ६१, हालैंड में ९०, बेलजियम में ८०, आयर्लैंड में ७१, इटली में ५६ और रूस में २५ आदमी फ़ी सदी शिक्षित हैं। पर भारत में ६-७ से अधिक न होंगे।

२—गत वर्ष अमेरिका में मोटर-दुर्घटनाओं से ११,०६६ मृत्युएँ हुईं।

३—भारत-सरकार प्रतिवर्ष टेक्स बढ़ाती ही जाती है। पिछले वर्षों में हरएक भारतीय के ऊपर टेक्स किस तरह बढ़ा है, उसका हिसाब इस प्रकार है—सन् १९११-१२ में हर आदमी को सब मिलाकर २॥≡) ८ पाई टैक्स देना पड़ता था। वह सन् १९१४-१५ में २॥=) ७ पाई, सन् १९१८-१९ में ३॥≡) ८ पाई, सन् १९१९-२० में ४/)

४ पाई और सन् १९२०-२१ में ४॥।≈) २ पाई हो गया। सन् १९२१ में और भी कई तरह के टैक्स लगे हैं।

४—इंजीनियर वालेस ने अपने एक मित्र के साथ मिल-कर एक ऐसी कलाई की घड़ी बनाई है, जिसमें केवल स्वाभाविक अंग-संचालन से कूक भर जाती है। यह भी व्यवस्था की गई है कि ज़रूरत से ज़्यादा कूक न हो।

५—उत्तर-पश्चिम सीमांत में महसूद आदि जातियों के डाकुओं के उपद्रवों की संख्या क्रमशः घटती जाती है। सन् १९१९ में डेरा इस्माइलख़ाँ, बन्नू, कोहाट और पेशावर के ज़िलों में कुल ६११ डाके पड़े थे। १९२०-२१-२२ सनों में डाकों की संख्या क्रमशः ३९१, १९४ और १२५ रह गई। इन डाकों से जन-धन की हानि इस प्रकार हुई—सन् १९१९ में २९८ मनुष्य मरे, ३९२ घायल हुए, और ४६३ को डाकू उठा ले गए। सन् १९२० में १५३ आदमी मरे, १९७ घायल हुए, और ३१० को डाकू उठा ले गए। सन् १९२१ में ८० आदमी मरे, ७२ घायल हुए, और १४८ को डाकू उठा ले गए। सन् १९२२ में ४७ आदमी मरे, ४८ घायल हुए, और ६० को डाकू उठा ले गए। आर्थिक क्षति की मात्रा भी २१,३०,२०१ रु० से घटकर ७७, ५४० रु० रह गई है।

६—मिस मौलाबख़्श और मिस सेडिनिया धात्री-विद्या सीखने के लिये लेडी रीडिंग-महिला-भांडार की सहायता से इँगलैंड गई हैं। धात्री-विद्या सीखने के लिये भारतीय महिला की विलायत-यात्रा यही सर्व-प्रथम है।

७—पंजाब में सन् १९११ में १,००,७८३ आर्य-समाज थे। सन् १९२१ में उनकी संख्या २,२३,१५३ हो गई। पंजाब में सिखों की संख्या क्रमशः बढ़ती जाती है। सन् १८८१ से अब तक होनेवाली मर्दुमशुमारियों में उनकी संख्या क्रमशः १७,०६,१६५; १५,४९,३७१; २१,०२,८९६; २८,८३,७२९; ३१,१०,०६० थी। कहा जाता है, विधवा-विवाह की प्रथा प्रचलित होने ही से सिखों की संख्या बढ़ रही है। किंतु मुसलमानों और हिंदुओं की बढ़ती कम नज़र आती है।

८—अमेरिका में प्रतिवर्ष ९९ अरब पौंड दूध पैदा होता है। उसका फ़ी सदी साढ़े तीन भाग आईस-क्रीम तैयार करने में खप जाता है।

९—घोड़े और गधे के मेल से ख़च्चर की पैदाइश का हाल सभी जानते हैं। हाल में, ब्रिटिश पूर्व-आफ़्रिका में, घोड़े और जेब्रा के मेल से जेब्रुला-नामक एक नए प्राणी की सृष्टि की गई है। वह ख़च्चर से कहीं अच्छा है।

१०—एक पैसे की कोई औक़ात नहीं समझी जाती। लेकिन ३०-३२ करोड़ भारतवासी अगर एक पैसा रोज़ बचावें, तो साल में १,०८, ५०,००,००,००० पैसे जमा हो जायँ, जिनकी गिन्नियाँ ११,४०,००,५०० होंगी।

११—भारत में हिंदू २१ करोड़ ६७ लाख ३४ हज़ार ५८६ हैं। इनके अलावा ३२ लाख ३८ हज़ार ८०३ सिख, ११ लाख ७८ हज़ार ५९६ जैन और १ करोड़ १५ लाख ७१ हज़ार २६८ बौद्ध हैं। इनका भी शुमार हिंदुओं ही में करना चाहिए। यहाँ पारसी १ लाख २ हज़ार ७७८ हैं। ईसाई ४७ लाख ५४ हज़ार ६४ हैं। यहूदी २१ हज़ार ७७८ हैं। मुसलमान ६ करोड़ ६७ लाख ३५ हज़ार २३३ हैं। ९७ लाख ३४ हज़ार ६११ आदमी लामज़हब भी हैं।

१२—अमेरिका के अंतर्गत कैलिफ़ोर्निया में सैनडीगो एक स्थान है। वहाँ एक घड़ी है, जो २१ फ़ीट ऊँची है। उसमें समय बतानेवाले २० डायल हैं। ये डायल अलग-अलग संसार-भर के बीस प्रसिद्ध स्थानों के (दिन-रात्रि के) समय दिखलाते हैं। इसके सिवा महीने की तारीख़ और दिन भी ये बताते हैं। घड़ी मोटे शीशे के केस में रक्खी है। हरएक डायल पर क़ीमती रत्न लगे हैं। डायल बड़े हैं। चार डायलों की गोलाई तो चार-चार फ़ीट की होगी। रात को हर डायल पर बिजली की रोशनी हो जाती है। एक अलग रक्खी हुई मशीन इस घड़ी में चाबी देती है।

१३—संसार का सबसे लंबा पुल विलायत की फ़ोर्थ-नदी का है। यह सात वर्ष में बना था, और ४००० आदमी बराबर इसमें काम करते रहे थे। ऐसे ही सबसे ऊँचा पुल आफ़्रिका की जैंबेसी-नदी के ऊपर बना है।

१४—अनुमान किया गया है कि अमेरिका में ४८०० के लगभग लखपती हैं, जिनके पास १० लाख से अधिक रुपए हैं। १०४५ लखपती तो केवल न्यूयार्क-नगर में हैं।

१५—आदमियों के अँगूठे की रेखाएँ प्रायः भिन्न ही हुआ करती हैं। इसी से अँगूठे की छाप लेने का नियम बहुत-से विभागों में जारी है। एक विशेषज्ञ का कहना है कि ६४ अरब आदमियों में शायद एक अँगूठे का निशान दूसरे से मिल सके।

१६—महायुद्ध के समय प्रायः सभी बड़े देश अमेरिका के ऋणी हो गए हैं। फ़्रांस को सूय सू ८७ करोड़ पौंड, इटली को ४४ करोड़ पौंड तथा अन्य १९ छोटे राज्यों को १ अरब २४ करोड़ पौंड अमेरिका का 'देना' देना है। इँगलैंड भी अमेरिका का ऋणी है, और वह कुछ अदा भी कर चुका है। अन्य किसी ऋणी ने अभी एक पाई भी नहीं दी।

× × ×

२५. अक्षरों की संख्या

संसार में न-जाने कितनी और कितने प्रकार की भाषाएँ हैं। हरएक भाषा के भिन्न-भिन्न छोटे-बड़े नियम हैं। अँगरेज़ी में २६ अक्षर हैं। फ़्रेंच में २५ ही अक्षर हैं। इसी तरह बाल्टिक में १७, इटालियन में २०, लेटिन और हेब्रू में २४-२४, स्पेनिश-भाषा में २७, तुर्की और अरबी में २८, फ़ारसी में ३१, रूसी-भाषा में ३६ और संस्कृत में ४४ अक्षर हैं। किंतु चीनी-भाषा में २१४ अक्षर हैं!

× × ×

२६. स्थिति-बोध (Sense of balance)

पाठकों को सुनकर आश्चर्य होगा कि आकाश-मार्ग में एअरोप्लेन आदि पर चढ़कर घूमते समय मनुष्य को स्थिति-बोध नहीं होता। इसी से एअरोप्लेन उड़ते-उड़ते अगर तिर्छा हो जाता है, या उलट भी जाता है, तथापि उसके सवार या संचालक उस स्थिति को नहीं जान सकते। लेकिन एअरोप्लेन किधर जा रहा है, यह ठीक मालूम होता रहता है। एअरोप्लेन चलानेवाले अक्सर अपने साथ एक यंत्र रखते हैं, जिसे देखकर वे समझ सकते हैं कि एअरोप्लेन किस तरह जा रहा है। पृथ्वी की ओर देखकर भी इसका कुछ-कुछ अनुमान कर लिया जाता है। मगर कुहासे में कुछ नहीं देख पड़ता। इसी से एअरोप्लेन चलानेवाले कुहासे से बहुत डरते हैं। कुहासे के भीतर होकर चलते समय उनकी अनुभव-शक्ति (Sense) जाती रहती है, और एअरोप्लेन किधर जा रहा है, यह नहीं मालूम पड़ता। एक दफ़े एक मनुष्य एअरोप्लेन उड़ाता हुआ किसी तरह घने कुहासे के भीतर पहुँच गया। किधर जा रहा है, यह न जान सकने के कारण एअरोप्लेन एकदम उलट गया। लेकिन चलानेवाले को कुछ भी नहीं मालूम हुआ। उसका सिर नीचे लटकने लगा। एअरोप्लेन के चलानेवाले अपनी कमर को एअरोप्लेन से कसकर बाँध रखते हैं। अंत को जब उस बंधन में झटका लगा, और जेब से काग़ज़ वग़ैरह नीचे गिरने लगे, तब उसे होश हुआ।



१. रंगीन चित्र

पहला चित्र 'आत्मबल' है। इसकी कल्पना भारतवर्ष के उदय-काल पर की गई है। उस ज़माने के युवक ऐसे आत्म बल-संपन्न होते थे कि उनके पास बाघ और बकरे समान रूप से निर्वैर रहते थे। एक युवक शांत मुद्रा से बैठा है। एक बग़ल में बकरा है, तो दूसरी बग़ल में बाघ। बाघ भी आकाश की ओर मुख किए पंजे समेटे बैठा है। उदय-काल की सूचना देती हुई अरुण की लालिमा आकाश में छाई हुई है। बकरा भी निर्भय है। इस चित्र के बनानेवाले प्रोफ़ेसर ईश्वरीप्रसादजी वर्मा एक उच्च कोटि के चतुर चित्रकार हैं।

दूसरा चित्र 'छवि' है। भाव उसके नीचे के दोहे में स्पष्ट है। सौंदर्य, शरीर की कांति और दृश्य बहुत ही सुंदर है। इसके बनानेवाले श्रीयुत बब्बनजी भी एक प्रसिद्ध चित्रकार हैं।

तीसरा चित्र 'पुत्र-स्नेह' है। एक माता काम करते-करते पुत्र-स्नेह से उल्लसित होकर पालने पर झूक रहे बालक का मुख चूमती है। बालक भी माता के मुख में हाथ लगाकर अपना आनंद प्रकट कर रहा है। चित्र की स्वाभाविकता दर्शनीय है। चित्रकार श्रीयुत काशिनाथ-गणेश खातूजी हमारे पाठकों के परिचित हैं।

२. व्यंग्य-चित्र

मूछों की बहार पाठक देख ही चुके थे, अब 'दाढ़ियों की महफ़िल' में तरह-तरह की दाढ़ियों का जमघट भी देख लें। इस चित्र में सबसे बड़ी दाढ़ीवाले सभापति हैं, और शेष सदस्य। सब अपनी-अपनी दाढ़ी की चर्चा और प्रशंसा कर रहे हैं। चित्रकार श्रीयुत रामेश्वर-प्रसाद वर्माजी को धन्यवाद दीजिए।

दूसरा व्यंग्य-चित्र 'वोट का भिखारी' श्रीयुत गुरु स्वामीजी की कल्पना है। वोट माँगने के लिये भिक्षुक-रूप से एक उम्मेदवार महाशय वोटर के द्वार पर मोटर लिए खड़े हैं। वोट-भिक्षा का मज़ा पाठक अभी देश में देख ही चुके हैं। उसी का यह भी एक दृश्य है।

माधुरी पर नवीन सम्मतियाँ

श्रीयुत हेमचंद्र जोशी बी० ए० (बर्लिन)— माधुरी मिली। अत्यंत आनंद प्राप्त हुआ। ××× माधुरी की उन्नति देखकर आश्चर्य होता है। क्या छपाई, क्या सफ़ाई और लेखों की सजावट! उस रोज़ अंडर-ग्राउंड रेलवे से जा रहा था, हाथ में माधुरी थी। उसके लेख पढ़ रहा था। इतने में मेरे बग़ल का जर्मन बोल उठा—महाशय, क्षमा कीजिएगा। यह कौन-सी भाषा है? मैंने कहा—यह हिंदुस्थान की मुख्य भाषा हिंदी है। बोला—क्या आपके हाथ में यह पत्र है? मैंने कहा—हाँ। तब वह बोला—आपकी भाषा में भी ऐसे पत्र हैं, जो योरपियन पत्रों से टक्कर लेते हैं! यह सज्जन विश्व-विद्यालय के अध्यापक थे। मुझे उसकी बात सुनकर बड़ा गर्व हुआ कि हिंदी में भी अब ऐसी पत्र-पत्रिकाएँ निकलने लगी हैं, जिन्हें मनुष्य गर्व के साथ योरप और अमेरिका में खुले पढ़ सकता है। मैं माधुरी के लेख बड़े चाव से पढ़ता हूँ। आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ कि आपने माधुरी भेजकर मुझे इस कर्कश योरप में भारतीय मधुरता का आनंद दिया है।

श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव्य बी०ए०, एल्-एल्० बी०—××× टाइटिल-पेज पर का चित्र तो इतना नेत्र-रंजक और चित्ताकर्षक है कि जी चाहता है कि घंटों इसी को देखा करें। विशेषकर चित्रकार ने इस चित्र की आँखें बनाने में कमाल ही कर दिया है। 'अमी हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार' का पूरा भाव यह 'ज़ालिम निगाहें' टपका रही हैं। प्रेम भी है, वियोग भी है, मस्ती भी है, भोलापन भी है, गंभीरता भी है, अरे इन कंबख़्त आँखों में सभी कुछ है। ××× ऐसे चित्र टाइटिल-पेजों पर ग़ज़ब ढाते हैं।

श्रीयुत शिवनंदनसहाय—माधुरी सर्वदा नए-नए रंग-ढंग, ठाट-बाट और हाव-भाव से छटा छहराती साल-भर ठीक समय पर आ-आकर हर्ष उपजाती रही। लेखों के लालित्य, चित्रों की चमत्कारी एवं काया-कलेवर की उत्तरोत्तर पुष्टता और सुंदरता से रसिक पाठकों को मुग्ध करती हुई इतने अल्पकाल ही में ग्राहकों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। यह गुण और ऐसी योग्यता इसकी अन्य बहनों में नहीं देखने में आई। हम आशा और आशीर्वाद करते हैं कि यह आगे भी दैव-कृपा से सदैव कला-वृद्धि करती रहेगी।

श्रीयुत शिवपूजनसहाय हिंदी-भूषण—××× मुख-पृष्ठ पर एक लावण्यवती ललना विराजती है। लावण्य खूब है। सलज्जता और प्रसन्नता का भाव उसके मुख पर झलक रहा है। ××× जब-जब माधुरी आती है, बस गुड़-चिउँटा की दशा हो जाती है। इस बार तो वह बे-तरह बन-ठनकर आई है। लोग लट्टू हैं। कवर जो देखता है, वही हाय मार-कर रह जाता है! इस बार के कवर में जादू भरकर आया है। कलकत्ता बँगला के प्रसिद्ध मासिक पत्रों का अड्डा है। अतएव बँगला के मासिक पत्रों को देखने पर लज्जित होकर कहना पड़ता था कि हिंदी में ऐसे एक भी पत्र नहीं। किंतु माधुरी ने यह कलंक-पूर्ण लज्जा का भाव हृदय से ज़बरदस्ती निकाल दिया, क्या करूँ? विवश होकर निकाल ही देना पड़ा। जहाँ तक बन पड़े, माधुरी को सिंगारते जाइए। इसने हिंदी की लाज रख ली, इसमें संदेह नहीं। यों तो निंदक और प्रशंसक हर चीज़ के होते हैं।

पं० ईश्वरीप्रसाद मिश्र—तुलसी-संख्या बड़ी ही उत्तम निकली। बिना आद्यंत पाठ किए नहीं रहा गया। ऐसा सुंदर और चित्र-बहुल विशेषांक आज तक किसी हिंदी-पत्र या पत्रिका का नहीं निकला। इस सफलता पर मैं आप दोनों संपादकों को बधाई देता हूँ।

प्रोफ़ेसर रामस्वरूप कौशल एम्० ए०—अभी थोड़े ही दिनों की बात है कि आँखें इस बात के देखने को तरसा करती थीं कि हिंदी-साहित्य-संसार में भी कभी बँगला

भारतवर्ष के लगे की कोई पत्रिका निकलेगी, अथवा नहीं। यों तो जिस दिन से माधुरी प्रकाशित होने लगी थी, उसकी प्रत्येक संख्या को देखकर मन प्रफुल्लित हो उठता था, पर तुलसी-संख्या देखकर तो मेरे आनंद की सीमा न रही। उसे बार-बार देखता था, पर आँखों को तृप्ति नहीं होती थी, मेरी आशाएँ पूर्ण हुईं। मैं देखता हूँ कि माधुरी सरस्वती, श्रीशारदा इत्यादि अपनी सभी बड़ी बहनों को बहुत पीछे छोड़ गई, और सच तो यह है कि अब भारतवर्ष-सरीखी लब्ध-प्रतिष्ठ पत्रिका भी इसके मुक़ाबले में नहीं खड़ी रह सकेगी। सभी विद्वान् मुक्त कंठ से इसकी प्रशंसा कर रहे हैं। मातृ-भाषा-प्रेमियों को चाहिए कि इसका यथेष्ट आदर करें, इसे अपनाएँ, और जी खोलकर इसकी सहायता करके इसके संचालकों और संपादकों का उत्साह बढ़ाएँ, और अपना कर्तव्य पालन करें। मेरी ईश्वर से सच्चे हृदय से प्रार्थना है कि वह हमारी माधुरी को शीघ्र ही उन्नति के उच्चतम शिखर पर पहुँचाए।

प्रोफ़ेसर योगेंद्रनाथ समाद्दार बी० ए०, एफ़० आर० ई० एस्० एफ़० आर० हिस्ट० एस्०, एम० आर० ए० एस्०—उपहार-स्वरूप आपका पत्र (माधुरी) पाते मुझे सदा ही आनंद होगा; क्योंकि मैं आप-के पत्र को भारतीय किसी भी मासिक पत्र से बढ़कर नहीं, तो बराबर अवश्य समझता हूँ।

गनपतराय दुबे—× × × यह सब देखकर हिंदी-संसार में यदि हम इस पत्रिका को अद्वितीय कह दें, तो अत्युक्ति न होगी। इसकी मधुर भाषा, साहित्य-विषयक लेख तथा सामाजिक और शिक्षाप्रद आख्यायिकाएँ पाठकों को आनंद देते हुए उनके चित्त को आकर्षित करती हैं। वास्तव में आपका उद्योग सराहनीय है, और हिंदी-साहित्य पर आपका बहुत उपकार है।

श्रीयुत श्रीराम अग्रवाल—मान्यवर संपादक महोदय, आज मैं आपसे माधुरी की एक शिकायत कर रहा हूँ। मैं माधुरी का ग्राहक क्या बना, मैंने तो एक बला मोल ले ली! जिस रोज़ मुझे पोस्ट-ऑफ़िस में माधुरी मिलती है, उस दिन पोस्ट-ऑफ़िस से घर तक आने में घंटों लग जाते हैं। कारण, पैकेट खोलते ही बीसों आदमी झूम जाते हैं, और छीना-झपटी आरंभ हो जाती है। किसी प्रकार यहाँ से छुट्टी मिलती है, तो फिर पोस्ट-मास्टर साहब के पास अटकना पड़ता है। वे जब अच्छी तरह माधुरी के दर्शन कर लेते हैं, तब कहीं जाकर पोस्ट-ऑफ़िस से छुटकारा मिलता है। फिर भी कुशल नहीं। मार्ग में बीसों जगह इस माधुरी के कारण ठहरना पड़ता है। कोई-न-कोई माधुरी-प्रेमी टपक ही पड़ता है, और जब तक माधुरी उसके नेत्रों को संतुष्ट नहीं कर देती, तब तक मुझे बाध्य होकर रुकना पड़ता है। विलंब हो जाने के भय से कभी किसी मित्र से यह कह देता हूँ कि "अभी नहीं दिखा सकता। देरी हो रही है। फिर कभी देख लेना।" तब तो वह वक्र दृष्टि से मेरी ओर देखता है, और व्यंग्य-भाव से कहता है—"अरे भैया, पढ़ने को नहीं देते, तो न सही, भला देख लेने-भर तो दो।" ठहरने की इच्छा न रहते हुए भी विवश होकर ५-७ मिनट खड़ा ही रहना पड़ता है। इस प्रकार घर पहुँचते-पहुँचते पैर दुखने लगते हैं, और विलंब हो जाने के कारण पिताजी से बुरी-भली बातें सुननी पड़ती हैं। जब गालियाँ सुनता हूँ, तो क्षणिक क्रोधावेग में मन-ही-मन इस प्रकार कह बैठता हूँ "अब की बार मैं माधुरी लाने के लिये पोस्ट-ऑफ़िस जाऊँगा ही नहीं। पोस्टमैन स्वयं घर पर ला देगा।" किंतु जब माधुरी आने के एक-दो दिन बच रहते हैं, तो मैं अपने मन में कही हुई उस बात को भूल जाता हूँ, और नवीन माधुरी के दर्शनार्थ पोस्ट-ऑफ़िस जाने को उत्सुक हो उठता हूँ।

जब तीन-चार महीने यही हालत रही, तो मैंने गत मास माधुरी को डाक-घर से छिपाकर लाने का विचार किया। अपने विचार को कार्य रूप में परिणत करने के लिये मैं इस मास की माधुरी को यत्न-पूर्वक छिपाकर अपने घर लाया। किंतु इससे क्या होता था! दो ही घंटे बाद मेरे एक मित्र आ पहुँचे और पूछने लगे—आज माधुरी आई या नहीं? इस प्रश्न के उत्तर में न तो हाँ कहते बनता था और न नहीं। कारण, मुझे यह भय था कि कहीं वे माधुरी को पढ़ने के लिये उठा न ले जायँ। अस्तु। कहना पड़ा कि "आई है।" यह सुनते ही वे उत्सुकता-पूर्वक बोले—"देखें कहाँ है?" मैंने वह माधुरी निकालकर उन्हें दिखाई। किंतु मुझे जो आशंका थी, वह ठीक निकली। वे मेरे "नहीं,

नहीं" कहने पर भी माधुरी को उठा ले गए, और मैं अतृप्त ही रह गया। माधुरी देते समय मैं सब मित्रों से यह प्रतिज्ञा करवा लेता हूँ कि तुम और किसी को मत देना। दूसरे दिन जब उनसे माधुरी माँगने जाता हूँ, तो उत्तर मिलता है कि "उसे अमुक महाशय ले गए।" इसीलिये मैं कभी-कभी किसी मित्र से यह बहाना कर देता हूँ कि माधुरी मेरे पास नहीं है, उसे अमुक महाशय ले गए हैं; यद्यपि उस समय माधुरी मेरे पास रहती है। माधुरी बहुत दिनों तक न देने के कारण कई मित्र मुझ-से रुष्ट हो जाते हैं। संपादक महाशय! आप ही बतलाइए, मैं किसे-किसे माधुरी दूँ, और किसे-किसे नहीं। इसमें मेरा क्या अपराध है? दोष तो आपकी माधुरी का है, जिसने लोगों पर इतनी मोहनी डाल रक्खी है कि वे माधुरी के दर्शन किए विना नहीं रह सकते। इसने हिंदीवालों पर ऐसी मोहनी डाल रक्खी है कि बहुत-से ऐसे महाशय, जो यह नहीं जानते थे कि मासिक पत्र किस चिड़िया का नाम है, वे भी 'माधुरी'-नाम से परिचित हो गए हैं। संपादकजी, कृपया आप अपनी माधुरी से कहिए कि वह अपनी मोहनी-मात्रा कम करे। अन्यथा विवश होकर मुझे माधुरी की ग्राहकी छोड़नी पड़ेगी। कारण, मेरे पास माधुरी माँगने के लिये इतने माधुरी-प्रेमी आते हैं कि नाकों-दम हो गया है। इसीलिये ग्राहकी छोड़ने की बात कह रहा हूँ। फिर उलहना न दीजिएगा।

स्वतंत्र—अब यह कहने की आवश्यकता नहीं रही कि माधुरी ने अब हिंदी-मासिक पत्रों में सर्व-श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर लिया है।

सम्मेलन-पत्रिका—माधुरी के विशेष परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। माधुरी ने एक ही वर्ष में अपने दिव्य माधुर्य से हिंदी-संसार को मोहित, चकित और लुब्ध-सा कर दिया है। यह इसका दूसरा वर्ष है। हमारे सामने दूसरे वर्ष की पहली संख्या उपस्थित है। ××× सुमन-संचय, विज्ञान-वाटिका, महिला-मनोरंजन, पुस्तक-परिचय, साहित्य-सूचना, विविध विषय और चित्र-चर्चा के अतिरिक्त सुप्रसिद्ध सिद्ध-हस्त लेखकों के लेख और कुशल शब्द-चित्रकार कवियों की कविताओं का सुमनोहर, सुंदर समुच्चय है। लेख प्रायः हिंदी के सभी आवश्यक अंगों की पूर्ति करनेवाले हैं। ××× इसमें संदेह नहीं कि हिंदी के मासिक साहित्य में माधुरी ने सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया है। हम इसके सुयोग्य संपादक-द्वय को सप्रेम और सहर्ष बधाई देते हैं।

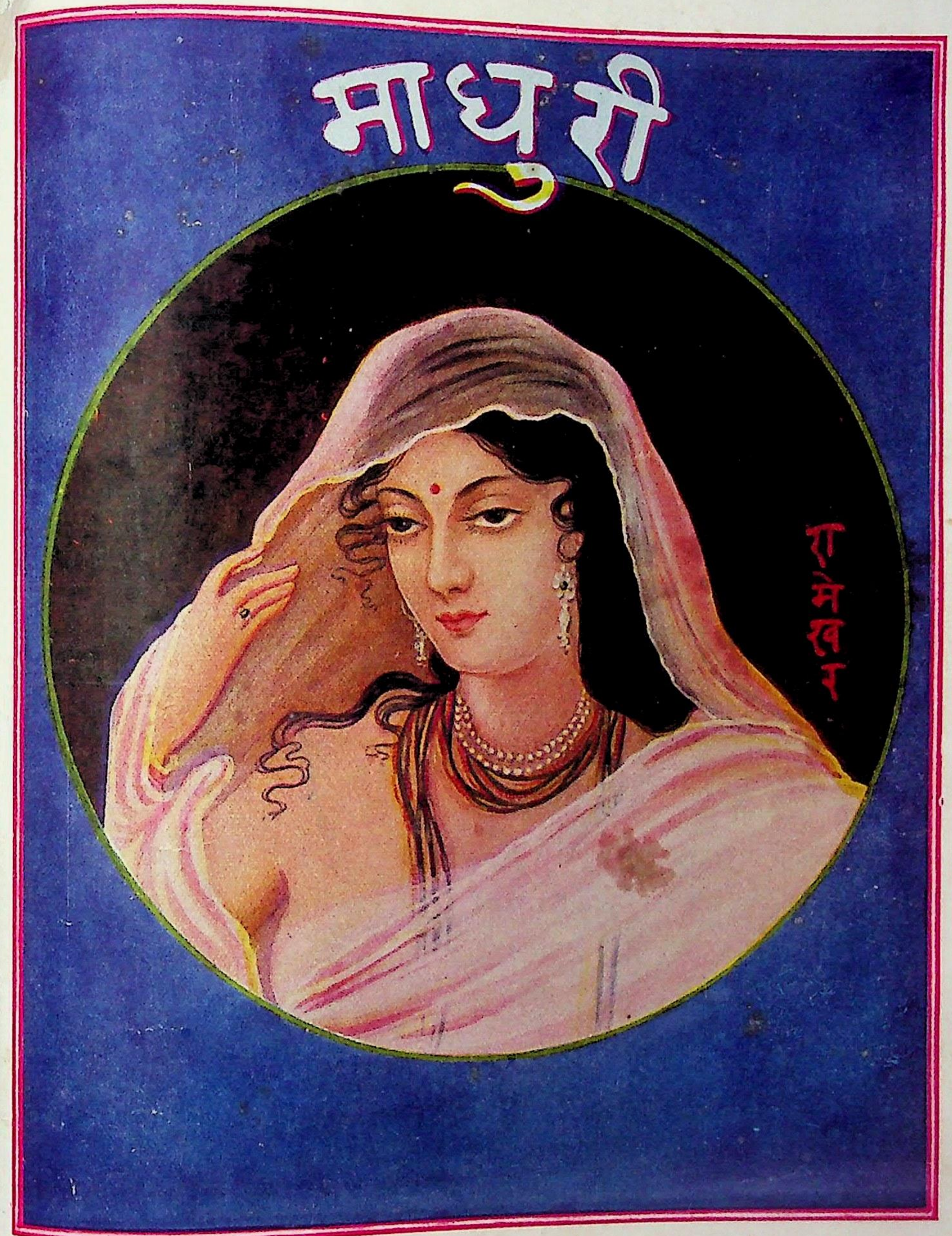
कलकत्ता समाचार—माधुरी हिंदी की शोभा है। मासिक साहित्य में इसका स्थान बहुत ऊँचा है। माधुरी के माधुर्य से हिंदी-संसार को मुग्ध कर देनेवाले संपादक-द्वय को बधाई देते हुए हम पाठकों से अनुरोध करते हैं कि वे ६॥) भेंट देकर इस माधुर्य का रस लेने से न चूकें।

हिंदी-प्रचारक (ट्रिप्लिकेन, मदरास)—हिंदी में 'सरस्वती', 'प्रभा', 'श्रीशारदा' आदि कई उत्तम मासिक पत्रिकाएँ निकलती हैं। परंतु लखनऊ की माधुरी आज-कल खूब बढ़ी-चढ़ी है। ××× दक्षिण भारतीय हिंदी-प्रेमियों से हमारा अनुरोध है कि आपको यदि साहित्य का माधुर्य देखना हो, तो इस माधुरी को देखें। यदि राष्ट्र-भाषा हिंदी के सौंदर्य-निरीक्षण की इच्छा हो, तो माधुरी का एक बार निरीक्षण करें। ईश्वर इसे दीर्घायु एवं साहित्य की सर्व समृद्धि से विभूषित करें।

आज—लखनऊ के सुप्रसिद्ध नवलकिशोर-प्रेस से निकलनेवाली हिंदी की सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका माधुरी का प्रथम वर्ष समाप्त हो गया। ××× इस एक वर्ष की अल्प अवधि में ही माधुरी ने अपने गुणों से हिंदी-मासिक पत्र-पत्रिकाओं में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया। आकार-प्रकार, अधिकारी पुरुषों के लिखे विविध विषयों के ज्ञान-वर्द्धक और मनोरंजक लेखों, नोटों, कविताओं और चित्रों में उसकी समता करनेवाला आज हिंदी में कोई भी पत्र या पत्रिका नहीं है। यही नहीं, यह बँगला, मराठी आदि भाषाओं के उच्च कोटि के मासिक पत्रों से समता की स्पर्द्धा करने की सर्वथा अधिकारिणी है। प्रचार और आदर की दृष्टि से भी यह हिंदी-मासिक संसार में सर्वाधिक भाग्यशालिनी सिद्ध हुई है। इस सफलता के लिये माधुरी-संचालक और संपादकों की जितनी प्रशंसा की जाय, उचित होगी। हम आशा करते हैं कि माधुरी की इस दूसरी कला का विकास हिंदी-संसार को द्विगुणित आनंदित करेगा, और इसी प्रकार प्रत्येक कला के विकास के साथ उसके गुण गुणित होते रहेंगे।

Printed and Published by K. D. Seth, at the Newul Kishore Press, Lucknow.

वर्ष २ ; खंड १] पौष, ३०० तुलसी-संवत् [संख्या ६ ; पूर्ण संख्या १८



संपादक—

श्रीदुलारेलाल भार्गव

श्रीरूपनारायण पांडेय

वार्षिक मूल्य ६॥)

छमाही मूल्य ३॥)

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ में छपकर प्रकाशित

सुंदर गुच्छेदार चमकीले बाल



कामिनिया ऑइल

हरएक स्त्री की शोभा बढ़ाकर, उसकी कुदरती सुंदरता को दुगुना बढ़ाता है। क्या आप ऐसा नहीं चाहते कि अपने और अपनी स्त्री तथा बच्चों के बाल घने, लंबे, काले, चमकीले और रेशम के तुल्य मुलायम हों? यदि चाहते हों, तो दुनिया में मशहूर रजिस्टर्ड "कामिनिया ऑइल" का व्यवहार करें। 'कामिनिया ऑइल' एक सच्चा वनस्पति-मिश्रित सुगंधित द्रव्यों से बनाया हुआ नुमाइशी सुगंधित तेल है। दाम प्रति-शीशी १) रु०। डाक-म० ।=), ३ शीशी २॥=) डा०-म० ।॥)

ओटो दिलबहार (रजिस्टर्ड)



ओटो दिलबहार को सेंट कहो, चाहे इत्र कहो; क्योंकि इसमें स्पिरिट का नाम तक नहीं है। इस "ओटो दिलबहार सेंट" का कपड़े पर दाग़ नहीं पड़ता। यह सेंट कई क़िस्म के नए-नए फूलों के अर्क़ से बनाया गया है। इसके दो या चार बूँद कपड़े पर डालने से कपड़े की सुगंधि कई दिन तक क़ायम रहती है।

दाम छोटी शीशी ॥), मँझली ॥।), आध औंस २) डा०-म० अलग।

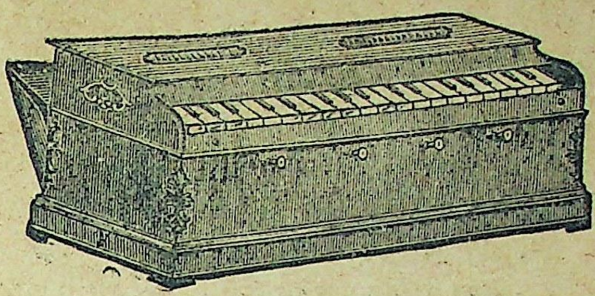
नमूना देखना हो, तो पहले "ओटो दिलबहार का सुगंधित कार्ड" एक आने का टिकट भेजकर मँगाइए।

सोल एजेंट्स—

दि ऐंग्लो इंडियन ड्रग ऐंड केमिकल कंपनी,

१५५, जुम्मामसजिद—बंबई

लेख-सूची



चित्र-सूची



माधुरी

[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, तिय-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह साहित-माधुरी नव-रस-मयी अनन्य !

वर्ष २ खंड १ — पौष-शुक्ल ७, ३०० तुलसी-संवत् (१९८० वि०)— १३ जनवरी, १९२४ ई० — संख्या ६, पूर्ण संख्या १८

श्रृंगारमयी

शरच्चंद्रिका-सी वह सुंदर गोरी—
अभी खिली मृदु गंध कली की मंद-मंद मुसक्कान,
यौवन-मदिरा पीकर ज़रा नशीली
अलस हुई कुछ नीची चितवन,
छिपी हृदय में वह प्रियतम के
किसी सलज्ज षोड़शी-सी पहचान,
विरह-विधुर पर मधुर कंठ की निकली—
वह अंबर-पथ पर स्वर-सरिता-सी बहती —
थी सरस इमन की तान,
श्रृंगारमयी वह खड़ी हुई
कविजन-मन-मानस-तट पर
प्रिय-ध्यानमयी थी इस दुनिया की बातों से अनजान।
चंचल अंचल उसका लहराता था—
खिंची सखी-सी वह समीर से
गुपचुप बातें करता—
कभी ज़ोर से बतलाता था ;
विकसित कुसुम...

कुंचित कच बादल-से काले-काले
उड़ते, लिपट उरोजों से जाते थे,
मार-मार थपकियाँ प्यार से इठलाते थे,
झूम-झूमकर कभी चूम लेते थे स्वर्ण-कपोल,
जलतरंग-सा रंग जमाते हुए सुनाते बोल ;
शिशिर-बिंदु रस-सिंधु बहाता सुंदर
अंगना-अंग पर गगनांगण से गिरकर
कविता की सरिता में, उसे देखकर,
उठती थी जो लहर, ठहर जाती थी
अरुण कमल-कोमल उसके चरणों पर।
"कैसे चित्रित करूँ ?"—
कहा जब कवि ने भरकर आह—
"सुनी भी मेरी करुण पुकार ?
व्यर्थ हो गए देवि, देखते तुम्हें सभी उपचार",
कहा प्यार से उसने—उस देवी ने—
"हाँ, ठीक तो, यह लो मेरा हार,
पहन लो, और ज़रा अनुराग-परागों में खोजो,
उपहार नहीं,—देखो, क्या मिलता है तुमको श्रृंगार।"

सूर्यकांत त्रिपाठी

तुलनात्मक भाषा-विज्ञान
(COMPARATIVE PHILOLOGY)

प्रोफ़ेसर मैक्समूलर कहते हैं—"यदि मुझसे पूछा जाय कि १९वीं सदी में सबसे महत्त्वपूर्ण आविष्कार या खोज कौन-सी हुई है, तो मैं इसका उत्तर एक वाक्य में इस प्रकार दूँगा—"(संस्कृत) द्यौष्पितर =(ग्रीक) ज्यूस् पेटर (Zeus Pater) =(लैटिन) जूपिटर (Jupiter) ।" इसका अर्थ यह है कि रोम और ग्रीस में जिस महान् देवता जूपिटर अथवा ज्यूस् की पूजा होती थी, वह संस्कृत के 'द्यौष्पितर' ही का रूपांतर है। हमारी पुस्तकों में भी द्युलोक को सर्वोच्च देव-लोक कहा गया और वह 'पिता' माना गया है।

परंतु उपर्युक्त बात एक बड़े रहस्य का निदर्शन-मात्र है। १९वीं सदी में जब योरप में संस्कृत का प्रचार हुआ, तो वहाँ दो नए विज्ञानों का—(१) तुलनात्मक भाषा-विज्ञान (Comparative Philology) और (२) तुलनात्मक धर्म-विज्ञान (Comparative Religion or Mythology) का—जन्म हुआ। यहाँ हम 'तुलनात्मक भाषा-विज्ञान' पर दृष्टि डालना चाहते हैं। प्रोफ़ेसर मैक्समूलर की उपर्युक्त उक्ति का अर्थ यह है कि १९वीं सदी के आविष्कारों में 'तुलनात्मक भाषा-विज्ञान' की स्थापना सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।

सर विलियम जोंस ने—जिन्हें पाश्चात्य-विद्वानों में सबसे प्रथम संस्कृत के प्रचारक होने का यश प्राप्त हुआ, और जिन्होंने इसी उद्देश्य से सन् १७८४ ई० में, बंगाल में, 'एशियाटिक सोसाइटी' की स्थापना की—एशियाटिक सोसाइटी के आगे १७८६ में अपना एक निबंध पढ़ते हुए यह महत्त्वपूर्ण घोषणा की थी—

"The Sanskrit Language, whatever be its antiquity, is of a wonderful structure; more perfect than the Greek, more copious than the Latin, and more exquisitely refined than the either, yet bearing to both of them a stronger affinity, both in the roots of verbs and in the forms of Grammar, than could possibly have been produced by accident; so strong indeed that no philologer could examine them all without believing them to have sprung from *some common source* which perhaps no longer exists."

अर्थात् संस्कृत-भाषा की प्राचीनता कुछ भी हो, परंतु उसके शब्दों की बनावट अद्भुत है। वह ग्रीक की अपेक्षा अधिक पूर्ण, लैटिन की अपेक्षा अधिक प्रचुरता-युक्त और दोनों की अपेक्षा कहीं अधिक सुपरिष्कृत है। परंतु संस्कृत दोनों भाषाओं से धातुओं और धातु-रूपों में इतनी अधिक समता रखती है, जो कि आकस्मिक नहीं कही जा सकती। यह समता इतनी अधिक है कि कोई भाषा-शास्त्री उनकी परीक्षा करने से इस विश्वास पर पहुँचे बिना नहीं रह सकता कि उन भाषाओं का कोई एक ही स्रोत है, जो कि अब विद्यमान नहीं है।

जोंस ने जिस समय यह घोषणा की थी, उस समय तक भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन नहीं हुआ था। यह रहस्य उनकी ओजस्विनी प्रतिभा को एक प्रकाश के रूप में देख पड़ा, जो कि उन्होंने प्रकट कर दिया। परंतु इस विषय में जर्मनी के महाकवि फ़्रेडरिक श्लीगल ही आगे बढ़े। यह

भारतीय प्रतिभा पर मोहित हो रहे थे, और रात-दिन भारत के गौरव के गीत गाते थे। इन्होंने कहा कि संस्कृत ही ग्रीक, लैटिन तथा योरप की अन्य भाषाओं की माता है। किसी समय संस्कृत ही से वे सब भाषाएँ निकली थीं। श्लीगल के बाद वस्तुतः जर्मनी के विद्वान् 'फ्रैंज वाप्प' (Bopp) को तुलनात्मक भाषा-विज्ञान का 'बाप' (पिता) होने का यश प्राप्त है। उन्होंने जब संस्कृत के धातु-रूपों की ग्रीक, लैटिन, जर्मन और पर्शियन भाषाओं से तुलना करते हुए अपना ग्रंथ प्रकाशित किया, तब भाषाओं के संबंध पर गहरा प्रकाश पड़ा, और एक प्रकार से 'तुलनात्मक भाषा-विज्ञान' की बुनियाद रक्खी गई।

कहा जाता है, 'संस्कृत' के कारण ही तुलनात्मक भाषा-विज्ञान की स्थापना हुई। इसका क्या अर्थ है ? जब हम दो भाषाओं की तुलना करते हैं, तो उनके शब्दों की आंतरिक रचना (Inner structure) पर विचार करना पड़ता है, न कि उनके बाह्य रूप पर। शब्द की रचना समझने के लिये उसकी प्रकृति और प्रत्यय (Radical and formative) को जानना आवश्यक है। जैसे 'पाचक' शब्द में 'पच्' प्रकृति है, जिसका अर्थ है पकाना, और 'अक' प्रत्यय है, जिससे 'कर्तृत्व' द्योतित होता है। भारतीयों ने व्याकरण-विज्ञान की बहुत प्राचीन काल में उन्नति की थी। 'यास्क' के समय से भी पहले वे प्रकृति-प्रत्यय के भेद को जानते थे। पाश्चात्य पंडितों की समय-कल्पना के अनुसार भी, जिसमें प्राचीन काल को बहुत ही अर्वाचीन कर दिया है, यास्क का समय ५०० बी० सी० से इधर नहीं होता। ग्रीक लोगों को इसके बहुत दिन बाद तक प्रकृति-प्रत्यय का बोध नहीं हुआ था। कदाचित् इसका कारण यह भी है कि 'ग्रीक' आदि भाषाओं में प्रकृति और प्रत्यय परस्पर इतने मिल गए कि उनका विभाग होना एक प्रकार से कठिन ही नहीं, असंभव-सा हो गया था। इसलिये जब तक योरपवालों को संस्कृत का पता नहीं लगा, वे ग्रीक और लैटिन आदि के शब्दों की केवल बाह्य तुलना में लगे हुए थे। और ईसाई-मत के सांप्रदायिक विश्वास के अनुसार, जिस प्रकार सारी सभ्यता का घर मिसर समझा गया—जहाँ यहूदी-मत का जन्म हुआ—अथवा सारी भूगर्भ-विद्या-संबंधी घटनाओं (Geological facts) का समाधान 'नूह के जलप्लावन' की घटना से किया गया, ठीक उसी प्रकार सब भाषाओं का स्रोत 'हेब्रू'-भाषा को समझा गया, जिसमें पुरानी बाइबिल लिखी गई थी। हेब्रू-भाषा से अनेक भाषाओं के होने का कारण, बाइबिल के अनुसार, यह था कि "जब मनुष्य बैबल में ऊँचा टावर बनाने लगे, और ईश्वर को उनके स्वर्ग तक पहुँचने का भय हुआ, तो ईश्वर ने उनकी भाषा में गड़बड़ी डाल दी, जिससे वे मिलकर अपना काम न कर सकें।" ऐसे ही निर्मूल विचारों के आधार पर भाषा-शास्त्री अपनी-अपनी खिचड़ी पकाते थे। चाहे उन्हें बाइबिल की इन बातों पर विश्वास न भी हो, परंतु उनकी यह धारणा अवश्य थी कि ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं का मूल हेब्रू-भाषा है। आज तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के प्रकाश में एक बालक भी इस सिद्धांत पर हँसेगा। हेब्रू से योरप की भाषाओं का निकलना तो दूर रहा, उनका कोई सुदूरवर्ती भी पारस्परिक संबंध नहीं है। और, वे दोनों एक भाषा-परिवार (Family of languages) की भी नहीं हैं। संस्कृत की तो बात ही क्या, ग्रीक और

लैटिन का भी सुदूरवर्ती संबंध हमारी हिंदी या मराठी से स्थापित हो सकता है, पर हेब्रू से कोई नहीं।

परंतु, प्रारंभ में, 'भाषा-विज्ञान' के क्षेत्र में, काम करनेवाले लोग शब्दों की केवल बाह्य आकृति में कुछ समता देखकर उनकी एकता स्थापित करते थे, और इसी बाह्य सादृश्य के आधार पर उनका श्रेणीकरण (Classification) भी करते थे। ठीक उसी प्रकार की अवस्था थी, जैसे 'वनस्पति-विज्ञान' (Botany) के जन्म से पूर्व साधारण आदमी कुछ वृक्षों के पत्तों और फूलों में बाह्य समता देखकर उन्हें एक श्रेणी में रख देते थे; अथवा प्राणिविज्ञान (Zoology) के जन्म से पूर्व पशुओं के बाह्य आकार और बाह्य अंगों की समता से प्राणियों का श्रेणीकरण लोगों ने किया था, जो कि सर्वथा अवैज्ञानिक था। प्राणिविज्ञान के अनुसार दो प्राणी, जो कि ऊपरी आकार में एक दूसरे के समान देख पड़ते हैं, संभव है कि भिन्न-भिन्न श्रेणियों के हों, और दूसरे दो प्राणी, जो देखने में विलकुल विपरीत हैं, अपनी आंतरिक रचना के सादृश्य से एक श्रेणी में गिने जाने लायक़ हों। ठीक यही बात भाषा-विज्ञान के संबंध में भी कही जा सकती है। जो शब्द सर्वथा असमान प्रतीत होते हैं, वैज्ञानिक दृष्टि से उनकी एकता हो सकती है। भाषा-विज्ञान-वेत्ता परिवर्तन के नियमों पर दृष्टि डालता हुआ उन शब्दों को सर्वथा एक ही रूप में देखता है, चाहे उनमें कितना ही बाह्य भेद हो। उदाहरणार्थ अँगरेज़ी का 'हेराल्ड' (Herald) शब्द संस्कृत के 'कारु'-शब्द का प्रतिरूप है, यद्यपि उन दोनों में इतना अधिक भेद है; क्योंकि भाषा-विज्ञान के अनुसार 'क' का परिवर्तन 'ख' और उस 'ख' से 'ह' हो जाता है। इसी प्रकार और भी परिवर्तन होते हैं। एक और भी इससे अच्छा उदाहरण इसी विषय का दिया जा सकता है। अँगरेज़ी का शब्द 'व्हील' (Wheel=पहिया) संस्कृत के 'चक्र'-शब्द का प्रतिरूप है। यद्यपि बाह्य रूप देखने से उनमें एक वर्ण का भी सादृश्य नहीं देख पड़ता, परंतु वैज्ञानिक रीति से हमें पता है कि जहाँ संस्कृत में 'च' है, वहाँ पाश्चात्य भाषाओं में 'क' हो जाता है। जैसे 'चत्वारः' (चार) और लैटिन का शब्द Quarter (क्वार्टर) परस्पर संबंध रखते हैं। यह भी हमें पता है कि संस्कृत में जहाँ 'क' होता है, वहाँ ट्यूटानिक भाषाओं (जर्मन, इँगलिश, डच आदि) में 'wh' मिलता है। जैसे 'कः' के समान 'who' मिलता है। 'क' क्यों 'wh' के रूप में परिणत होता है, इसका भी भाषा-विज्ञान पूरा पता देता है। परंतु इस विषय की वैज्ञानिक गहराई में जाना यहाँ कठिन है, और पाठकों के लिये अरुचिकर भी होगा।

एक ही उदाहरण हमारे इस सिद्धांत को पुष्ट कर देगा कि जो शब्द बहुधा बाह्य रूप में समान प्रतीत होते हैं, वे एक नहीं हैं। प्रत्युत वे दूसरे शब्द के साथ एक हो सकते हैं, जो कि बाह्य रूप में उनसे भिन्न है। बहुत दिन हुए, एक महानुभाव ने, जिन्होंने शायद 'भाषा-विज्ञान' का 'ककहरा' भी न पढ़ा होगा, भाषाओं का तुलनात्मक विचार करते हुए लिख मारा था कि अँगरेज़ी का 'ट्री' (Tree=वृक्ष)-शब्द संस्कृत के 'तरु' (=वृक्ष)-शब्द से निकला है। ऊपरी तौर से यह बात ठीक भी मालूम पड़ती है, क्योंकि संस्कृत 'त' और अँगरेज़ी 'ट' एक ही बात है, और 'र' भी दोनों शब्दों में समान है।

परंतु भाषा-विज्ञान-शास्त्री इस प्रकार की शाब्दिक तुलना पर हँसे बिना नहीं रह सकता। भाषा-विज्ञान-शास्त्र बतलाता है कि अँगरेज़ी का 'ट्री'-शब्द संस्कृत के 'द्रु'(=वृक्ष)-शब्द का प्रतिरूप है। बाह्य दृष्टि से 'द्रु'-शब्द 'ट्री'-शब्द से इतना नहीं मिलता, जितना कि 'तरु' मिलता है; परंतु ग्रिम-सिद्धांत (Grimm's Law)—जो संस्कृत और ट्यूटानिक (जर्मन, इँगलिश, डच आदि) भाषाओं में संबंध स्थापित करता है,—के अनुसार संस्कृत का 'द' अँगरेज़ी में 'त'='ट' हो जाता है। जैसे कि द्वौ=Two (टू), अथवा दश=Ten (टेन)। यह असंभव है कि संस्कृत का 'द' ट्यूटानिक भाषाओं में 'ट' हुए विना रह जाय। इसीलिये ऊपर के दो उदाहरणों के समान द्रु= ट्री (Tree) होगा। साथ ही यह भी देखना चाहिए कि संस्कृत का 'त' ट्यूटानिक भाषाओं में 'थ' =Th हो जाता है, जैसे कि त्रयः=Three है। इसी प्रकार भ्रातर्=Brother, में भी 'त' की जगह 'th' (थ) है, यद्यपि उच्चारण में हम 'ब्रादर' अर्थात् 'द' ही बोलते हैं। इस प्रकार वैज्ञानिक जानता है कि यह सर्वथा असंभव है कि 'तरु'-शब्द से 'ट्री' शब्द बन सके।

मनुष्य अपनी साधारण बुद्धि से भेद के वैज्ञानिक कारणों को नहीं देख सकता, इसलिये वह ऊपरी समता देखता है। परंतु वैज्ञानिक उन परिवर्तनों पर ध्यान रखता है, जो कि एक स्थिर नियम (Fixed Law) के अनुसार होते हैं, और फिर आंतरिक रचना के अनुसार समता और असमता का निर्णय करता है। यह बात सभी विज्ञानों में पाई जाती है, जैसा कि ऊपर दिखा चुके हैं। संस्कृत का 'शत'-शब्द और अँगरेज़ी का 'Hundred' (हंड्रेड)-शब्द, दोनों एक ही हैं, यद्यपि उनका बाह्य रूप बिलकुल भिन्न है। भाषा-विज्ञान उनके एक-एक परिवर्तन की (अर्थात् किस प्रकार 'क' के स्थान में 'ह' आया; और अनुनासिक 'न्' कहाँ से आया) प्रत्येक बात का पूरा पता देता है।

इस प्रकार हमने देख लिया कि विना आंतरिक रचना और भाषा-विज्ञान के सिद्धांतों को दृष्टि में रक्खे हुए शब्दों की परस्पर तुलना करना एक व्यर्थ प्रयास है। जो लोग भाषा-विज्ञान को न जानते हुए केवल बाह्य रूप को देखकर दो भाषाओं के शब्दों का मेल मिलाने लगते हैं, वे केवल अपना समय नष्ट करते हैं। इसी विषय में प्रोफ़ेसर मैक्समूलर की यह उक्ति प्रसिद्ध है—"Sound Etymology is never based on sound." अर्थात् वास्तविक शब्दों का निर्वचन (उनके मूल-रूप और सदृश शब्दों की खोज) शब्द के बाह्य सादृश्य पर कभी निर्भर नहीं होता।

परंतु 'तुलनात्मक भाषा-विज्ञान' की स्थापना के पूर्व जो कुछ काम इस क्षेत्र में हो रहा था, वह सब इसी प्रकार का था; अर्थात् बाह्य और ऊपरी सादृश्य को देखकर शब्दों की तुलना की जाती थी, जिससे कोई संतोष-जनक वैज्ञानिक परिणाम नहीं निकल सकता था। किंतु पाश्चात्य पंडितों को संस्कृत का बोध होते ही अवस्था बिलकुल बदल गई। ऊपर कहा जा चुका है कि यहाँ के वैयाकरणों को बहुत प्राचीन समय से संस्कृत के शब्दों में प्रकृति और प्रत्यय के भेद का पता था। संस्कृत के शब्दों में उनकी बनावट और आंतरिक रचना स्पष्ट प्रतीत होती है। इसीलिये सारे 'आर्य' अथवा 'इंडो-योरपियन' भाषा-परिवार में (जिसमें संस्कृत,

पर्शियन, ग्रीक, लैटिन, ट्यूटानिक, स्लैवोनिक, केल्टिक, आर्मीनियन आदि भाषाएँ सम्मिलित हैं) संस्कृत-भाषा 'पारदर्शक' अर्थात् 'Transparent' भाषा समझी जाती है। इसका अर्थ यही है कि जिस प्रकार शीशे में प्रत्येक भीतर की वस्तु दिखाई देती है, उसी प्रकार 'संस्कृत' के शब्द ऐसे हैं, जिनकी बनावट (आंतरिक रचना) स्पष्ट देख पड़ती है—हमारी दृष्टि मूल-धातु तक चली जाती है। इसीलिये शाकटायन, यास्क, और पाणिनि समय-समय पर इस सिद्धांत की ज़ोरदार घोषणा करते रहे हैं कि संस्कृत के शब्द 'यौगिक' अर्थात् धातुओं से बने हुए हैं। शब्दों के वास्तविक रचना-क्रम में धातुओं का स्थान पहले है, अथवा शब्दों का (जिनसे पीछे धातु निकाल लिए गए), इस पर हमें विवाद नहीं करना ; किंतु इतना स्पष्ट है कि संस्कृत में सदा से प्रकृति और प्रत्यय के भेद को समझते हुए शब्दों पर विचार हुआ है। इसका गहरा असर शब्दों के अर्थों में पड़ता है। प्रत्येक शब्द अपने रूढ़ (प्रसिद्ध) अर्थ को अपने धातु के मौलिक अर्थ के साथ-साथ प्रकट करता है। उदाहरण के लिये 'मनुष्य'-शब्द से एक प्राणी ही का बोध नहीं होता, बल्कि यह भी सामने आ जाता है कि मनुष्य मनन करनेवाला, अर्थात् 'रैशनल' (Rational), प्राणी है। मनुष्य और पशु-जगत् में भेद करनेवाला लक्षण 'मनन' (Reasoning) ही है। इस प्रकार 'मनुष्य'-शब्द ही में हमें 'मनुष्य' की यथार्थ वैज्ञानिक परिभाषा भी मिल जाती है। हरएक शब्द से 'रूढ़' अर्थ तो मिलता ही है, साथ ही हरएक शब्द और भावों को भी द्योतित करता रहता है। इस प्रकार शब्द की अभिव्यंजक शक्ति (Suggestiveness) बहुत बढ़ जाती है, और भाषा या कविता का यह सबसे बड़ा अलंकार है। ऋषि दयानंद ने वेदार्थ-प्रणाली में एक नया युग उपस्थित कर दिया, जिसकी अरविंद घोष-जैसे प्रकांड पंडितों ने भी प्रशंसा की है। वह इसी यौगिक अर्थ के आधार पर है। इस यौगिक प्रणाली से वेद-मंत्रों के अनेक अपूर्व गहरे अर्थ हमारे सामने आते हैं। इस विषय में जितना ही सोचा जाय, उतना ही यह विषय रहस्यमय प्रतीत होता है। परंतु अब प्रश्न यह है कि संस्कृत-शब्दों के पारदर्शक (Transparent) या यौगिक होने से भाषा-विज्ञान की स्थापना कैसे हुई ? हम पहले कह चुके हैं कि ग्रीक और लैटिन के शब्दों में प्रकृति और प्रत्यय का भेद संस्कृत के समान स्पष्ट नहीं है। इसीलिये योरप में संस्कृत के ज्ञान से पहले ग्रीक और लैटिन के शब्दों पर विचार करते हुए उनकी आंतरिक रचना उतनी अच्छी तरह नहीं समझी जा सकती थी। परंतु जब योरप में संस्कृत का प्रचार हुआ, और संस्कृत तथा ग्रीक, लैटिन आदि के शब्दों की समानता का अनुभव किया गया, तो (क्योंकि संस्कृत में प्रकृति-प्रत्यय का भेद और आंतरिक रचना स्पष्ट थी) उसी के सहारे ग्रीक और लैटिन आदि भाषाओं की शब्द-रचना (Word-structure) का पूरा-पूरा पता चलने लगा। इस प्रकार संस्कृत के द्वारा योरप की भाषाओं की भी रचना का बोध हुआ, और फ्रैंज बाप्प के, जिनका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं, निबंध—"A treatise on conjugational system of Sanskrit in comparison with that of Greek, Latin, Persian and German" (अर्थात् संस्कृत-भाषा के धातु-रूपों का ग्रीक, लैटिन, पर्शियन और जर्मन

के रूपों के साथ तुलनात्मक निबंध)—ने योरप में नया युग उपस्थित कर दिया, और योरप में पिछली ही सदी (१९वीं) में तुलनात्मक भाषा-विज्ञान की नींव पड़ी।

जिस प्रकार इस वैज्ञानिक युग में आल्केमी (लोहे से सोना बनाने की विद्या) के अंध-विश्वास के स्थान में रसायन-शास्त्र (Chemistry) का जन्म हुआ, जिस प्रकार डेलूवियनिज़्म (Diluvianism) अर्थात् नूह के तूफ़ान की घटना से पार्थिव परिवर्तनों के समाधान के स्थान में सच्चे विज्ञान—भू-गर्भ-विद्या (Geology)—का प्रादुर्भाव हुआ, उसी प्रकार शब्दों की भद्दी और अयुक्त तुलनाओं और हिब्रू-भाषा से उनकी उत्पत्ति-संबंधी विचारों के स्थान में तुलनात्मक भाषा-विज्ञान का, १९वीं सदी में, जन्म हुआ, और इसकी उत्पत्ति का श्रेय हमारी संस्कृत-भाषा ही को प्राप्त है।

धर्मेंद्रनाथ

अनहिलवाड़े के सोलंकियों का इतिहास

(माधुरी, वर्ष २, खंड १, संख्या २ से सम्मिलित)

भीमदेव (प्रथम)

भीमदेव (प्रथम) के बिरुद 'परमभट्टारक', 'महाराजाधिराज' और 'परमेश्वर' मिलते हैं।

महमद ग़ज़नवी की सोमनाथ पर चढ़ाई

भीमदेव को राज्य-सिंहासन पर आरूढ़ हुए अधिक समय नहीं बीता था कि इतने में ग़ज़नी के सुल्तान महमूद ने सोमनाथ का प्रसिद्ध मंदिर तोड़ने के विचार से गुजरात पर चढ़ाई कर दी। इस घटना का उल्लेख तक गुजरात के किसी प्राचीन इतिहास-लेखक ने नहीं किया; परंतु 'कामिलुत्तवारीख़', 'तारीख़-अल्फ़ी', 'तबकात-इ-अकबरी', 'तबकात-इ-नासिरी', 'रोज़ेतुस्सफ़ा', 'तारीख़ फ़रिश्ता' आदि फ़ारसी तवारीख़ों में इसका वर्णन मिलता है। मुसलमानों का लिखा हुआ वृत्तांत पक्षपात और आत्मश्लाघा से ख़ाली नहीं है, तो भी हिंदुओं का लिखा हुआ कुछ भी वर्णन न होने से मुसलमानों के लिखे हुए वृत्तांत ही की शरण लेनी पड़ती है। मुसलमान-लेखकों में इस घटना का वर्णन करनेवाला सबसे पुराना इब्न-असीर है, जिसने अपनी 'कामिलुत्तवारीख़' वि० सं० १२८७ के आसपास (अर्थात् उस घटना से दो सौ से कुछ अधिक वर्ष पीछे) लिखी थी। उसके पीछे के मुसलमान-इतिहासकारों ने बहुधा उसी का आधार लिया है। इसीलिये हम उसी के आधार पर सोमनाथ की उक्त चढ़ाई का वृत्तांत नीचे उद्धृत करते हैं—

"हिजरी सन् ४१४[1] (४१६=? वि० सं० १०८२) में महमूद ने हिंद के कई क़िले और शहर छीने, और सोमनाथ की मूर्ति भी हस्तगत की। हिंद की मूर्तियों में यह मूर्ति सबसे बड़ी थी। प्रत्येक ग्रहण के समय हिंदू लोग वहाँ पर यात्रा के निमित्त जाते थे, और १,००,००० मनुष्य वहाँ एकत्र होते थे। पुनर्जन्म के सिद्धांत के अनुसार हिंदू लोग ऐसा मानते हैं कि शरीर छोड़ने के बाद मनुष्य की आत्मा सोमनाथ में मिल जाती है, और ज्वार-भाटे के रूप में समुद्र भी उनका पूजन

---

१. कामिलुत्तवारीख़ के अँगरेज़ी-अनुवाद में हिजरी सन् ४१४ (मूल-लेखक के दोष से) छपा है, जिसके स्थान में हि० स० ४१६ (वि० सं० १०८२) होना चाहिए; क्योंकि उसी पुस्तक से पाया जाता है कि शाबान-महीने में सुल्तान ग़ज़नी से चला। रमजान में मुल्तान, जिलकाद के प्रारंभ में अनहिलवाड़े और जिलकाद के मध्य में सोमनाथ पहुँचा। फिर हि० स० ४१७ के सफ़र में ग़ज़नी को लौटा। इस चढ़ाई में कुल ६ महीने लगे थे। इसलिये ग़ज़नी से उसका प्रयाण हिजरी सन् ४१६, ता० १० शाबान को होना चाहिए। तारीख़ फ़रिश्ता ने सुल्तान का हिंदुस्तान में ढाई बरस रहना माना है, जिसका कारण भी वही दो वर्ष की मूल-पुस्तक की अशुद्धि है।

करता है। हिंदुस्तान की सबसे अधिक मूल्यवान् वस्तुएँ वहाँ पहुँचाई जाती थीं। वहाँ के पुजारियों को बहुमूल्य भेंटें मिलती थीं। १०,००० से अधिक गाँव उस मंदिर की भेंट किए गए थे। मंदिर में सर्वोत्तम और अमूल्य रत्नों का संग्रह था। हिंदुस्तान में गंगा नाम की एक बड़ी नदी है, जिसको लोग बड़ी पवित्र मानते और मरने के बाद स्वर्ग में जाने के भाव से अपने महत् पुरुषों की हड्डियाँ उसमें डालते हैं। यह नदी सोमनाथ से २०० फ़रसंग (१,२०० मील) दूर है, फिर भी उस मूर्ति के अभिषेक का जल प्रतिदिन वहीं से आता था। वहाँ पर १,००० ब्राह्मण प्रतिदिन पूजन करते तथा यात्रियों को दर्शन कराते थे। यात्रियों के मुंडन के लिये ३०० नाई वहाँ रहते थे। मंदिर के द्वार पर गाने और नाचनेवाले ३५० आदमी रहते थे, जिनमें से प्रत्येक को प्रतिदिन नियत वेतन मिलता था। जब महमूद उत्तरी हिंदुस्तान को विजय करने और वहाँ की मूर्तियों को तोड़ने में लगा था, उस समय हिंदू कहते थे कि इन मूर्तियों पर सोमनाथ का कोप हुआ है। यदि सोमनाथ उनसे प्रसन्न होते, तो कोई उनको तोड़ न सकता। जब उनका यह कथन महमूद ने सुना, तब उसने इस विचार से उस मूर्ति को तोड़ने के लिये चढ़ाई करना निश्चय किया कि जब हिंदुओं को यह मालूम होगा कि सोमनाथ की प्रार्थना और भक्ति करना निरर्थक है, तब वे इस्लाम को स्वीकार कर लेंगे।

"इसलिये सहायता के अर्थ ईश्वर की प्रार्थना कर उसने ता० १० शाबान, हि० स० ४१४ (४१६ ?= आश्विन-शुक्ल ११, वि० सं० १०८२) को ३०,००० सवारों के साथ ग़ज़नी से कूच किया। वह रमज़ान के बीच (कार्तिक) मुलतान पहुँचा। वहाँ से मार्ग जन-शून्य रेगिस्तान में होकर गुज़रता था, जहाँ ख़ुराक नहीं मिल सकती थी। इसलिये उसने ३०,००० ऊँटों पर अन्न और जल लादकर अनहिलवाड़े की ओर प्रस्थान किया। रेगिस्तान पार करने पर उसने एक तरफ़ मनुष्यों से परिपूर्ण एक क़िला[1] देखा, जहाँ पर बहुत-से कुएँ थे। वहाँ के मुखिए लोग सुलतान को समझाने आए; परंतु उसने उनको घेरकर जीत लिया, इस्लामी हुकूमत में लाकर वहाँ के लोगों को क़त्ल किया तथा मूर्तियाँ तोड़ डालीं। वहाँ से फिर जल भरकर वह आगे बढ़ा, और ज़िलक़ाद के प्रारंभ (पौष) में अनहिलवाड़े पहुँचा।

"अनहिलवाड़े का राजा भीम[1] वहाँ से भागा, और अपनी रक्षा के लिये एक क़िले में जाकर रहा। महमूद सोमनाथ की तरफ़ चला। मार्ग में बहुत-से क़िले आए, जिनमें सोमनाथ के दूत-रूप बहुतेरी मूर्तियाँ थीं, जिनको वह शैतान कहता था। उसने वहाँ के लोगों को मारा, क़िले तोड़े, और मूर्तियाँ नष्ट कीं। फिर वह निर्जल रेगिस्तान के मार्ग से सोमनाथ की ओर बढ़ा। उस रेगिस्तान में उसको २,००० वीर पुरुष मिले। उनके सर्दारों ने उसकी अधीनता स्वीकार न की। इस पर उसने अपनी कुछ सेना उन पर चढ़ाई के लिये भेजी। उस सेना ने उनको हराकर भगा दिया, और उनका माल-असबाब लूट लिया। वहाँ से वह देवलवाड़े[2] पहुँचा, जो सोमनाथ से दो मंज़िल दूर था। वहाँ के लोगों को यह विश्वास था कि सोमनाथ शत्रु को भगा देंगे, जिससे वे शहर ही में रहे। परंतु महमूद ने उसे जीतकर लोगों को क़त्ल किया, और उनका माल लूटने के बाद सोमनाथ की ओर प्रस्थान किया।

"ज़िलक़ाद के बीच (पौष-शुक्ल के अंत में) गुरुवार के दिन सोमनाथ पहुँचने पर उसने समुद्र-तट पर एक सुदृढ़ क़िला देखा, जिसकी दीवारों के साथ समुद्र की लहरें टकराती थीं। क़िले की दीवारों पर से लोग मुसलमानों की हँसी उड़ाते थे कि हमारा देवता तुम

१. यह स्थान कौन-सा था, यह निश्चित नहीं है, तो भी अनुमान होता है कि यह नाडौल होगा; क्योंकि रेगिस्तान को पार करने के बाद अनहिलवाड़े के मार्ग में यही पुराना स्थान आता है।

१. मिरात-इ-अहमदी तथा आईन-इ-अकबरी में महमूद की चढ़ाई के समय चामुंड का अनहिलवाड़े का राजा होना लिखा है, जो भूल है; क्योंकि चामुंड (चामुंडराज) के राज्य की समाप्ति वि० सं० १०६६ में हुई, और महमूद की चढ़ाई वि० सं० १०८२ में। उस समय वहाँ का राजा भीमदेव ही था।

२. देवलवाड़ा—यह प्रभासपाटन के पूर्व का, ऊनागाँव के पास का, देलवाड़ा होना चाहिए। इससे अनुमान होता है कि महमूद अनहिलवाड़े से मोढ़ेरा होता हुआ पाटड़ी के पास रण (रेगिस्तान) को पार कर झालावाड़, गोहिलवाड़ और बाबरिआवाड़ होकर देलवाड़े पहुँचा होगा।

सबको नष्ट कर देगा। दूसरे दिन अर्थात् शुक्रवार को मुसलमान हमला करने के लिये आगे बढ़े। उनको वीरता से लड़ते देखकर हिंदू क़िले की दीवारों पर से हट गए। मुसलमान सीढ़ियाँ लगाकर उन पर चढ़ गए। वहाँ से उन्होंने दीन की पुकार कर इस्लाम की ताक़त बतलाई, तो भी उनके इतने सैनिक मारे गए[1] कि लड़ाई का परिणाम संदेह-युक्त प्रतीत हुआ। कितने ही हिंदुओं ने सोमनाथ के मंदिर में जाकर दंडवत् प्रणाम और विजय के लिये प्रार्थना की। फिर रात्रि होने पर युद्ध बंद रहा।

"दूसरे दिन प्रातःकाल ही से महमूद ने फिर लड़ाई शुरू कर दी, और हिंदुओं का अधिक संहार कर उनको शहर से सोमनाथ के मंदिर में भगा दिया। मंदिर के द्वार पर भयंकर युद्ध होने लगा। मंदिर की रक्षा करनेवालों के झुंड-के-झुंड मंदिर में जाने और रो-रोकर प्रार्थना करने लगे। फिर बाहर आकर उन्होंने लड़ाई ठान दी, और प्राणांत तक वे लड़ते रहे। थोड़े-से जो बचे, वे नावों पर चढ़कर समुद्र में चले गए। परंतु मुसलमानों ने उनका पीछा किया, कितनों ही को मार डाला तथा औरों को पानी में डुबा दिया। सोमनाथ के मंदिर में सीसे से मढ़े हुए, सागवान के, ५६ स्तंभ थे। मूर्ति एक अँधेरे कमरे में थी। मूर्ति की ऊँचाई ५ हाथ और परिधि ३ हाथ थी। इतनी तो बाहर थी। इसके सिवा दो हाथ ज़मीन के भीतर और थी। उस पर किसी प्रकार का खुदाई का काम नहीं देख पड़ता था। महमूद ने उस मूर्ति को हस्तगत कर उसका एक हिस्सा जलवा दिया, और दूसरा हिस्सा वह अपने साथ ग़ज़नी ले गया, जिससे वहाँ की जुमा-मसजिद के दरवाज़े की एक सीढ़ी बनवाई। मूर्तिवाले कमरे में रत्न-जटित दीपकों की रोशनी रहती थी। मूर्ति के निकट सोने की साँकल में घंटे लटकते थे। उस साँकल की तोल २०० मन[2] थी। रात्रि में पहर-पहर भर पर उस साँकल को हिलाकर घंटे बजाए जाते थे, जिससे पूजन करनेवाले दूसरे ब्राह्मण जग जाते थे। पास ही भंडार था, जिसमें सोने-चाँदी की मूर्तियाँ रक्खी हुई थीं। भंडार में रत्न-जटित वस्त्र थे, और हरएक रत्न बहुमूल्य था। मंदिर से २०,००,००० दीनार[1] से अधिक मूल्य का माल हाथ लगा, और ५०,००० से अधिक हिंदू मारे गए।

"सोमनाथ की विजय के बाद महमूद को ख़बर मिली कि अनहिलवाड़े का राजा भीम (भीमदेव) कंदहत[2] के क़िले में चला गया है, जो वहाँ से ४० फ़रसंग (२४० मील) की दूरी पर, सोमनाथ और रण के बीच है। उसने वहाँ पहुँचने पर कितने ही मनुष्यों से, जो वहाँ पर शिकार कर रहे थे, ज्वार-भाटे के विषय में पूछा। उन्होंने उत्तर दिया कि पानी उतरने लायक़ है; परंतु थोड़ी-सी भी हवा चली, तो उतरना कठिन होगा। महमूद ईश्वर से प्रार्थना कर पानी में उतरा। उसने अपनी सेना सहित वहाँ पहुँचकर शत्रु को भगा दिया। फिर वहाँ से लौटकर उसने मंसूर[3] की तरफ़ जाने का विचार किया, जहाँ के राजा ने इस्लाम-धर्म का परित्याग किया था। महमूद के आने की ख़बर पाकर वहाँ का राजा खजूर के जंगल में भाग गया। सुल्तान ने उसका पीछा कर उसके साथियों में से बहुतेरों को मार डाला, और बहुतों को डुबा दिया। थोड़े-से भाग भी निकले। वहाँ से वह भाटिया पहुँचा। वहाँ के लोगों को अपने अधीन कर ग़ज़नी की ओर चला, और तारीख़ १० सफ़र, सन् ४१७ हिजरी (वि० सं० १०८३, चैत्र सुदी ११) को वहाँ पहुँचा[4]।"

ऊपर उद्धृत किए हुए इब्न-असीर के कथन से सोमनाथ के मंदिर के उस समय के वैभव का अनुमान हो सकता है।

सोमनाथ का मंदिर

परंतु इस समय तो उस वैभव का नाम-निशान भी

१. सोमनाथ के मंदिर की रक्षा के लिये भीमदेव आदि कई आसपास के राजे गए थे। तारीख़-फ़रिश्ता में लिखा है कि भीमदेव ने ३,००० मुसलमानों को सोमनाथ की लड़ाई में मारा था। (ब्रिग्ज़ फ़रिश्ता, जि० १, पृ० ७४)।

२. दो सौ मन अर्थात् ४०० पाउंड (४० तोले का १ पाउंड) था, ऐसा फ़रिश्ता के अँगरेज़ी-अनुवादक ब्रिग्ज़ का कथन है (ब्रिग्ज़ फ़रिश्ता, जि० १, पृ० ७३ का टिप्पण)।

१. दीनार एक सोने का सिक्का था, जिसकी तौल ३२ रत्ती होती थी (द्वात्रिंशद्रक्तिकापरिमितं कांचनं इति भरतः। शब्द-कल्पद्रुम, जि० २, पृ० ७१७)।

२. कंदहत शायद कच्छ का कंथकोट-नामक क़िला हो।

३. मंसूर—सिंध का उक्त नाम का स्थान।

४. इलियट, हिस्ट्री ऑफ़् इंडिया, जि० २, पृ० ४६८-४७१, और २४९।

नहीं रहा । प्राचीन मंदिर का, जो समुद्र-तट के एक चट्टान पर बना हुआ था, कुछ अंश अब तक विद्यमान है । उसमें मूर्ति नहीं है । उसके आसपास दूर-दूर तक मंदिर के प्राचीन स्तंभ आदि के तथा टूटी हुई मूर्तियों के टुकड़े पड़े हुए हैं, जिससे अनुमान होता है कि पहले शायद उस मंदिर का विस्तार बहुत बड़ा होगा । इब्न-असीर के कथन से यह भी पाया जाता है कि महमूद के समय में सोमनाथ का मंदिर या उसका कुछ अंश लकड़ी[2] का बना हुआ था । महमूद के लौट जाने पर भीमदेव ने उसे पत्थर का बनवाया, और भावबृहस्पति के उपदेश से कुमारपाल ने जीर्णोद्धार कराकर उसे बहुत कुछ बढ़ाया[3] । यह बात वहाँ के भद्रकाली-मंदिर के बाहर लगे हुए, बलभी-संवत् ८५० (वि० सं० १२२६) के, शिला-लेख से जानी जाती[1] है । भीमदेव तथा कुमारपाल के जीर्णोद्धार कराए हुए उक्त मंदिर की नई मूर्ति को, वि० सं० १३५४ के आस-पास, अलाउद्दीन ख़िलजी की सेना ने तोड़ा[2] । फिर, वि० सं० १४५२ के क़रीब, गुजरात के हाकिम ज़फ़र ख़ाँ ने सोमनाथ की मूर्ति को तोड़ा, और मंदिर में कुछ फेरफार कर वहाँ पर मसजिद बनवाई[3], जो अब विद्यमान नहीं है । उस मंदिर को छोड़कर हिंदुओं ने प्रभासपाटन के बीच एक छोटा-सा सोमनाथ का नया मंदिर[4] बनवाया, जिसका वैभव इस समय एक साधारण मंदिर से कुछ भी अधिक नहीं है ।

१. जूनागढ़ के नवाब साहब ने, जिनके राज्य में यह मंदिर है, उसके बचे हुए हिस्से की चारों ओर दीवार बनवाई है । टूटी-फूटी मूर्तियों आदि का एक स्थान में, वहीं, संग्रह करवाकर उस प्राचीन स्थल की यादगार बनी रखने का सराहनीय कार्य भी किया है ।

२. सोलंकियों के समय से पूर्व गुजरात में मंदिर आदि बहुधा ईंट और लकड़ी के बनाए जाते हों, ऐसा अनुमान होता है । कुमारपाल-चरित से पाया जाता है कि कुमारपाल का प्रधान मंत्री आदिनाथ की यात्रा के लिये शत्रुंजय (काठियावाड़ में पालिताना के निकट के पर्वत पर का प्रसिद्ध जैन-तीर्थ) को जा रहा था । उस समय आदिनाथ का मंदिर, जो काष्ठ-निर्मित था, दीपक की बत्ती चूहे के ले जाने से जलकर भस्म हो गया । उक्त मंत्री ने लकड़ी के बने हुए मंदिरों के इस प्रकार जल जाने का भय देखकर आदिनाथ का मंदिर पत्थर का बनवाया । मेगास्थिनीज़ ने पाटलिपुत्र-नगर की शहरपनाह लकड़ी की बनी हुई बतलाई है ।

३. भीमदेव ने लकड़ी के बने हुए सोमनाथ के मंदिर का कुछ हिस्सा ही पत्थर का बनवाया होगा, और बाक़ी कुमारपाल के समय में बना होगा, ऐसा प्रतीत होता है ; क्योंकि प्रबंध-चिंतामणि में लिखा है कि "एक दिन राजा कुमारपाल ने हेमचंद्र सूरि से पूछा कि मेरा यश किस प्रकार कल्पांत-स्थायी हो सकता है ? हेमचंद्र ने राजा का यह कथन सुनकर उत्तर दिया कि या तो विक्रमार्क राजा की तरह जगत् का ऋण चुका देने से अथवा लकड़ी के बने हुए सोमेश्वर (सोमनाथ) के मंदिर का, जो समुद्र-जल की छींटों से भग्नप्राय हो रहा है, जीर्णोद्धार कराने से कीर्ति युगांत-स्थायी हो सकती है । यह सुनकर राजा ने उक्त मंदिर को नए सिरे से बनाने का कार्य आरंभ करा दिया ।" (प्रबंध-चिंतामणि, पृ० २०७) । इससे स्पष्ट है कि कुमारपाल के समय तक सोमनाथ के मंदिर का कुछ अंश लकड़ी का बना हुआ अवश्य था ।

१. एवं राज्यमनारतं विदधति श्रीवीरसिंहासने
श्रीमद्वीरकुमारपालनृपतौ त्रैलोक्यकल्पद्रुमे ।
गंडो भावबृहस्पतिः स्मररिपोरुद्वीक्ष्य देवालयं
जीर्णं भूपतिमाह देवसदनं प्रोद्धर्तुमेतद्वचः ॥ ११ ॥
आदेशात् स्मरशासनस्य सुबृहत्प्रासादनिष्पादकं ××× ॥१२॥
सौवर्णं सोमराजो रजतमयमथो रावणोदारवीर्यः
कृष्णश्रीभीमदेवो रुचिरतरमहाग्रावभीरत्नकूटम् ।
तं कालाज्जीर्णमेष क्षितिपतितिलको मेरुसंज्ञं चकार
प्रासादं सप्रभावः सकलगुणनिधेर्गंडसर्वेश्वरस्य ॥१५॥
(भावनगर इन्स्क्रिप्शंस, पृ० १८७)

२. बेले, हिस्ट्री ऑफ़् गुजरात, पृ० ३७ ।

३. वही, पृ० ७६, और तबक़ात-इ-अकबरी से टिप्पण ।

४. जिस नगर में सोमनाथ का मंदिर है, उसको प्रभास-पाटन और देवपाटन भी कहते हैं । यह शहर वेरावल से क़रीब दो मील के अंतर पर, समुद्र-तट पर, बसा है ।

५. उस नवीन मंदिर की रचना ऐसी की है कि उसकी कुर्सी ऊँची रखकर द्वार के सामने ही मुख्य मंदिर में एक बड़ा शिवलिंग नाम-मात्र के लिये स्थापित किया है, जो द्वार के खुलते ही नज़र आता है । परंतु दूसरा शिवलिंग, जो सोमनाथ के नाम से प्रसिद्ध है, ठीक उक्त लिंग के नीचे एक अँधेरे तह-

सोमनाथ की मूर्ति और इतिहास-लेखकों का भ्रम

कुछ मुसलमान इतिहास-लेखकों ने अपनी पुस्तकों में कई बे-सिर-पैर की कल्पित बातें भी लिखी हैं, जिनको प्रामाणिक मानकर बड़े-बड़े योरपियन विद्वानों ने भी भूल की है। ऐसी कपोल-कल्पित बातों में सोमनाथ की मूर्ति की कथा भी है। उक्त मूर्ति के संबंध में प्रसिद्ध मुसलमान इतिहास-लेखक फ़रिश्ता ने लिखा है कि "मंदिर के बीच सोमनाथ की पाषाण की मूर्ति थी। महमूद ने उसके पास जाते ही अपने गुर्ज़ से उसकी नाक तोड़ डाली। फिर उसके टुकड़े करवाकर उनमें से दो ग़ज़नी पहुँचाए, और दो मक्का-मदीना भेजने के लिये रक्खे। जिस समय महमूद उस मूर्ति को तोड़ने चला, उस समय बहुत-से ब्राह्मणों ने उसके सरदारों से यह निवेदन किया कि यदि यह मूर्ति न तोड़ी जाय, तो वे उसके बदले में बहुत-सा द्रव्य देने को तैयार हैं। इस पर उन्होंने सुल्तान से अर्ज़ किया कि इस एक मूर्ति के तोड़ने से मूर्ति-पूजा तो नष्ट होगी नहीं, अतएव इसके तोड़ने से कुछ लाभ न होगा। किंतु इतना द्रव्य यदि मुसलमानों को दान किया जाय, तो लाभदायक होगा। इस पर सुल्तान ने कहा कि ऐसा करने से तो मैं 'मूर्ति बेचनेवाला' कहलाऊँगा। मेरी इच्छा तो यह है कि मैं 'मूर्ति तोड़नेवाला' कहलाऊँ। फिर उसने उस मूर्ति को तोड़ने की आज्ञा दे दी। दूसरे प्रहार से सोमनाथ के पेट का हिस्सा टूटा, जो भीतर से पोला था। उससे हीरे, मानिक और मोतियों का संग्रह निकला, जिसका मूल्य, जितना द्रव्य ब्राह्मण देते थे, उससे कहीं अधिक था[1]।" ऐसा ही वृत्तांत 'तारीख़-अल्फ़ी' में भी मिलता है[2]। इन लेखकों के कथन से पाया जाता है कि सोमनाथ की मूर्ति गोल आकृति का ठोस लिंग नहीं, किंतु हाथ-पैरवाली पोली मूर्ति थी, जिसके पेट में रत्न भरे हुए थे। इन्हीं लेखकों के कथन को विश्वसनीय मानकर हिंदुस्तान के योरपियन इतिहास-लेखकों में से कर्नल डो, गिबन, मॉरिस, जेम्स मिल, प्राइस, एल्फ़िंस्टन आदि विद्वानों ने भी अपनी पुस्तकों में वैसा ही लिखा है, और कुछ हिंदी-पुस्तकों में, जो उन्हीं के आधार पर लिखी गई हैं, वैसा ही उल्लेख पाया जाता है[6]। परंतु यह सारा कथन कल्पित है; क्योंकि प्रसिद्ध मुसलमान ज्योतिषी अबुरिहाँ अलबेरूनी, जो सुल्तान महमूद ग़ज़नवी के समय में कई बरसों तक हिंदुस्तान में रहा और जिसने सोमनाथ की टूटी हुई मूर्ति को देखा था, अपनी अरबी-पुस्तक तहक़ीक़-इ-हिंद में लिखता है कि सोमनाथ की मूर्ति गोल आकृति का ठोस लिंग थी, जिसका शिरोभाग सुल्तान ने तुड़वा डाला, और बाक़ी हिस्सा उस पर के रत्न-जटित सोने के ज़ेवर तथा ज़रदोज़ी कपड़ों सहित ग़ज़नी पहुँचा दिया। उसका एक टुकड़ा, थानेश्वर से लाई गई और पीतल की बनी हुई चक्रवर्ती (चक्र-स्वामी=विष्णु) की मूर्ति के साथ, शहर (ग़ज़नी) में घुड़दौड़ की जगह पड़ा हुआ है, और दूसरा मसजिद के

खाने में स्थापित है। तहखाने में उतरने के लिये एक तंग नाल रक्खी गई है, जिसका द्वार ऊपर के शिवलिंगवाले मंदिर के द्वार की बाईं तरफ़ के किंवाड़े के पीछे है। किंवाड़ों के खुलते ही तहखाने की नाल का द्वार किंवाड़े की आड़ में आ जाता है, जिससे तहखाने का कुछ भी हाल मालूम नहीं हो सकता। ऐसी रचना तहखानेवाले शिवलिंग को मुसलमानों से बचाने के लिये ही की गई होगी, ऐसा अनुमान होता है। वहाँ के पुजारी उक्त लिंग को सोमनाथ की असली मूर्ति बतलाकर कहते हैं कि महमूद ग़ज़नवी ने सोमनाथ पर जब चढ़ाई की, उस समय यह शिवलिंग वहाँ से उठाकर यहाँ स्थापित किया गया था। परंतु उनका यह कथन किसी प्रकार विश्वासयोग्य नहीं है।

१. ब्रिग, फ़रिश्ता, जि० १, पृ० ७२-७३।

२. इलियट, हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, जि० २, पृ० ४७२।

३. कर्नल डो, हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, पृ० ५५-५६।

४. 'डिक्लाइन ऐंड फ़ॉल ऑफ़ रोमन् अंपायर', जिल्द ७, पृ० १४९ (सं० १८८७ का संस्करण)।

५. मॉडर्न हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, जि० १, भाग १, पृ० २९६।

६. हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, जि० १, पृ० १७७ (सन् १८५८ का संस्करण)।

७. रिट्रॉस्पेक्ट ऑफ़ मोहॅमेडन् हिस्ट्री, जि० २, पृ० २८९ (सन् १८२१ का संस्करण)।

८. हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, पृ० ३३६ (सन् १७७४ का संस्करण)।

९. राजा शिवप्रसाद, इतिहासतिमिर-नाशक, भाग ३, पृ० १३, और 'ऐतिहासिक कहानियाँ' नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, मनोरंजन पुस्तक-माला, (संख्या ३७), पृ० ७।

पास इस अभिप्राय से रक्खा गया है कि लोग उस पर पैर रगड़ें । इसी तरह फ़रिश्ता से पहले की बनी हुई 'कामिलुत्तवारीख़', 'हबिबुस्सिअर', 'रोज़ेतुस्सफ़ा' आदि फ़ारसी तवारीख़ों में, जिनसे फ़रिश्ता ने बहुत कुछ वृत्तांत उद्धृत किया है, उक्त मूर्ति के हाथ-पैर आदि होना या उसके पेट में से रत्नों का निकलना कहीं नहीं लिखा।

सोमनाथ की चढ़ाई में विजय पाने के बाद महमूद ने गुजरात पर अपना अधिकार बनाए रखने का जो प्रबंध किया या करना चाहा, उसके विषय में मीर ख़ंद अपनी तवारीख़ 'रोज़े-

मुसलमान-लेखक और गुजरात की राज्य-व्यवस्था

तुस्सफ़ा' में लिखता है—"ऐसा कहा जाता है कि सोमनाथ की फ़तह के पीछे महमूद ने वहीं रहना चाहा; क्योंकि वह देश बहुत बड़ा था, उसमें सोने की कई खानें थीं, और हिंदुस्तान के मानिक गुजरात के ताबे के सरनदीप से लाए जाते थे। इस पर उसके मंत्रियों ने कहा कि कई लड़ाइयाँ लड़ने के बाद शत्रुओं से जीते हुए ख़ुरासान को छोड़कर सोमनाथ को राजधानी बनाना उचित नहीं है। अंत में सुलतान ने लौटने का निश्चय कर आज्ञा दी कि इस देश के प्रबंध के लिये किसी को नियत करना चाहिए। इस पर मंत्रियों ने कहा कि इस देश को कोई विदेशी अपने अधिकार में रख सके, यह तो असंभव है, अतएव यहीं के किसी राजा को उसे दे देना चाहिए। राजा को चुनने और पसंद करने के विषय में सुलतान ने वहाँ के निवासियों से, जो उसके पक्ष में थे, सलाह की। उनमें से कितनों ही ने निवेदन किया कि पहले के राजवंशों में दाबशिलीम के-जैसा उच्च कुल किसी का नहीं है। परंतु उस कुल का केवल एक ही आदमी मौजूद है, जो ब्रह्म-वृत्ति धारण कर तत्त्व-ज्ञान और तप में लगा हुआ है[१]।"

यदि मीर ख़ंद के इस कथन में सत्यता हो, तो संभव है कि सुलतान ने ग़ज़नी को लौटते समय गुजरात का राज्य किसी हिंदू-राजा को सौंपना चाहा हो, और उसके लिये भीमदेव का कोई शत्रु पसंद किया गया हो; क्योंकि भीमदेव तो सुलतान का शत्रु था। हम ऊपर लिख आए हैं कि दुर्लभराज ने ख़ुशी से राज्य न छोड़ा हो, किंतु भीमदेव

१. अलबेरूनी-रचित 'तहक़ीक़-इ-हिंद का अँगरेज़ी-अनुवाद (डॉक्टर एडवर्ड सँचू का किया हुआ), जि० २, पृ० १०३। अलबेरूनी ने सोमनाथ के लिंग को ठोस पत्थर का बना हुआ बतलाया है। इतना ही नहीं, उसने लिंगों के बनाने की रीति तथा उनकी बनावट के अनुसार होनेवाले शुभाशुभ फल का भी विस्तार से वर्णन किया है। 'मॅडिएवल इंडिया' के कर्ता स्टैन्ली लेनपूल ने लिखा है कि फ़रिश्ता का यह कथन कि महमूद के प्रहार करने पर उक्त मूर्ति के भीतर से रत्नों का बड़ा संग्रह निकल आया, बिलकुल मिथ्या है; परंतु साथ ही यह कल्पना भी की गई है कि शायद मूर्ति के नीचे छिपाए हुए रत्न खोदकर निकाले गए हों (पृ० २६ का टिप्पण)। यह कल्पना भी सर्वथा निर्मूल है; क्योंकि ऐसी मूर्तियों के नीचे कभी रत्नों का संग्रह छिपाया नहीं जाता था, और न कोई आज तक ऐसा प्रत्यक्ष उदाहरण मिला है। फ़रिश्ता तथा उसी के आधार पर लिखे हुए अँगरेज़ी तथा हिंदी-ग्रंथों में लिखी हुई इस कपोल-कल्पित बात को पढ़कर कितने ही हिंदुओं को भी ऐसा विश्वास हो गया है कि जिनको ज्योतिर्लिंग कहते हैं, वे भीतर से पोले होते हैं, और उनमें ज्योतिर्मय रत्न भरे रहने के कारण उनको ज्योतिर्लिंग कहते हैं। मुझसे एक बड़े इतिहासवेत्ता मित्र से इस विषय पर विवाद हुआ, और उन्होंने इसके प्रमाण में फ़रिश्ता की फ़ारसी-पुस्तक बतलाई। इस पर मैंने अलबेरूनी की पुस्तक का अँगरेज़ी-अनुवाद उनको सुनाया। तब उनकी भ्रांति निवृत्त हुई, और उन्होंने स्वीकार किया कि फ़रिश्ता और उसके आधार पर लिखनेवाले विद्वानों का यह कथन सरासर कल्पित है।

२. ईसवी सन् १८४२ (वि० सं० १८९९) में गवर्नमेंट की सेना के अफ़सर काबुल की चढ़ाई से लौटते समय ग़ज़नी की मसजिद के किंवाड़ों को वहाँ से निकालकर हिंदुस्तान में लाए। उस समय उनका अनुमान यह था कि वे किंवाड़ प्रसिद्ध सोमनाथ के मंदिर के चंदन के किंवाड़ हैं, जिनको सुलतान अपने साथ ले गया था। ऐसी प्रसिद्धि भी है। इस बात को गवर्नमेंट ने प्रजा की जानकारी के लिये भारतवर्ष-भर में विज्ञापन द्वारा प्रसिद्ध भी किया था। परंतु वास्तव में वे सोमनाथ के मंदिर के किंवाड़ नहीं हैं, और न हिंदुस्तान के बने हुए ही हैं। अनुमानतः बीस वर्ष पूर्व हमने उन किंवाड़ों को आगरे के क़िले में देखा, तो प्रतीत हुआ कि वे न तो इतने पुराने हैं, और न हिंदू-शैली के। वास्तव में वे अफ़ग़ानिस्तान के बने हुए नए किंवाड़ हैं।

१. इलियट, हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, जि० २, पृ० ४७५-७६।

ने उसका राज्य छीन लिया हो। अतएव मीर ख़ुंद के दाबशिलीम का दुर्लभराज होना संभव है।

मीर ख़ुंद ने एक ही दाबशिलीम का उल्लेख किया है; परंतु 'मजमा-इ-बसाया'-नामक पुस्तक में भिन्न-भिन्न तीन पुरुषों को दाबशिलीम कहकर उस वृत्तांत को और भी भ्रम-पूर्ण कर दिया है। जितना वृत्तांत हमने 'रोज़ेतुस्सफ़ा' से ऊपर उद्धृत किया है, उतना तो उक्त पुस्तक में भी बहुधा वैसा ही है; परंतु उसमें उसके अतिरिक्त यह भी लिखा है कि "कितने ही लोगों ने सुल्तान से निवेदन किया कि राज्य उस (ब्रह्म-वृत्ति धारण करनेवाले दाबशिलीम) को देना चाहिए। दूसरों ने उनका विरोध कर कहा कि वह दुष्ट प्रकृति का है। वह ख़ुशी से विरक्त होकर तपस्या में नहीं लगा, किंतु उसके भाइयों ने कई बार उसको क़ैद किया था, और वह अपने प्राण बचाने के लिये तीर्थ-स्थान में जा रहा है। उसी के कुल का एक दूसरा दाबशिलीम है, जो बड़ा बुद्धिमान्, विद्वान् तथा चतुर है, और तत्त्व-ज्ञानी होने के कारण सब लोग उसका सम्मान करते हैं। वह इन्हीं दिनों यहाँ का राजा था। यदि आप उसको राज्य दें, और उसके पास फ़र्मान भेजें, तो वह आपके पास उपस्थित होकर राज्य-प्रबंध अपने हाथ में लेगा। वह बड़ा प्रामाणिक और अपने वचन का दृढ़ है, इसलिये यदि वह ख़िराज़ देना स्वीकार कर ले, तो प्रतिवर्ष उसे ग़ज़नी पहुँचाता रहेगा। इस पर सुल्तान ने कहा कि यदि वह मेरे पास उपस्थित हो जाय, तो यह बात स्वीकृत हो सकती है। परंतु जो राजा अब तक मेरे पास नहीं आया, और न जिसने मेरी अधीनता स्वीकार की, उसको मैं ऐसा बड़ा राज्य क्यों दूँ? अंत को सुल्तान ने उस भले दाबशिलीम को बुलाकर राज्य दे दिया। उसने ख़िराज़ देना स्वीकार किया, और ज़िंदगी-भर सुल्तान की आज्ञा के विरुद्ध आचरण न करना तथा गुजरात की खानों से जो सोना और मानिक निकले, उसको ग़ज़नी भेजना स्वीकार कर सुल्तान से कहा कि मेरे कुटुंबियों में से एक दूसरा दाबशिलीम है, जो मेरा परम शत्रु है, और उसके साथ मेरी लड़ाई भी हो चुकी है। मुझे निश्चय है कि आपका लौटना सुनते ही वह मुझसे लड़कर मेरा राज्य छीन लेगा। यदि आप उस पर हमला कर मेरा खटका मिटा दें, तो मैं ख़ुरासान, ज़ाबुलिस्तान और काबुलिस्तान की आमद के बराबर ख़िराज़ हर साल भेजता रहूँगा। इस पर सुल्तान ने उस दाबशिलीम के राज्य पर चढ़ाई कर उसे पकड़ लिया, और उक्त भले दाबशिलीम के सिपुर्द कर दिया। इस पर उसने सुल्तान से कहा कि राजा को मारना इस देश में पाप माना जाता है; और यदि कोई राजा ऐसा पाप करे, तो उसकी सेना उसके विरुद्ध हो जाती है। यहाँ पर ऐसी प्रथा है कि जब एक राजा दूसरे राजा को क़ैद करता है, तो वह उसको अपनी गद्दी के नीचे ऐसे अँधेरे कमरे में रखता है, जिसमें केवल एक ही खिड़की होती है, और उसी के द्वारा उसको भोजन पहुँचाया जाता है। इस तरह मैं उसको यहाँ नहीं रख सकता। अतएव आप उसे ग़ज़नी ले जायँ, और जब मेरा राज्य दृढ़ हो जाय, तब आप उसे अँधेरे कमरे में रहने के लिये यहाँ भेज दें। सुल्तान ने उसका कहना स्वीकार कर ग़ज़नी को कूच किया, और भला दाबशिलीम सोमनाथ की गद्दी पर बिठलाया गया। अपना राज्य दृढ़ हो जाने पर उसने ख़िराज़ और रत्न भेजकर सुल्तान से कहलाया कि अब मेरे शत्रु को यहाँ भेज दीजिए। सुल्तान ने कुछ आना-कानी के बाद उसके तईं भले दाबशिलीम के सेवकों को सौंप दिया। जिस समय वे उसको लेकर राजधानी के निकट पहुँचे, उस समय वह भला दाबशिलीम शिकार को गया हुआ था। वह वहाँ थकान के कारण मुँह पर लाल रंग का रूमाल डालकर सोया हुआ था। इसी बीच में एक शिकारी पक्षी उड़ता हुआ उधर आ निकला। वह उस रूमाल को मांस समझकर उस पर झपटा, और अपने पंजों से उसने राजा की दोनों आँखें निकाल लीं। इससे लोगों में बड़ी हलचल मच गई। इतने में वह युवा क़ैदी भी वहाँ आ पहुँचा। भला दाबशिलीम अंधा हो जाने के कारण राज्य करने के योग्य नहीं रहा। सिवा उस क़ैदी दाबशिलीम के दूसरा कोई राज्य का हक़दार भी न था। इससे वही राजा बनाया गया। भला दाबशिलीम शत्रु के लिये तैयार करवाए हुए क़ैदख़ाने में डाला गया।"[१]

उपर्युक्त वृत्तांत में दाबशिलीम-शब्द व्यक्तिवाचक नहीं, किंतु राजा या राजवंश का—जैसे चौहान, राठौर आदि

१. इलियट, हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, जि० २, पृ० ५००।

हैं—सूचक होना चाहिए। और, संभव तो यही है कि गुजरात के सोलंकी-राजों के लिये उसका प्रयोग हुआ हो। ऊपर तीन दाबशिलीमों का उल्लेख है, जिनमें से पहले को हम चामंडराज मान सकते हैं; क्योंकि वह व्यभिचारी था, और उसी दुष्टता के कारण राज्य-च्युत हुआ। दूसरा (अर्थात् भला) दाबशिलीम, जिसके विषय में यह लिखा है कि 'वह इन्हीं दिनों यहाँ का राजा था' दुर्लभराज हो सकता है; क्योंकि सुल्तान महमूद की सोमनाथ पर चढ़ाई से थोड़े ही समय पूर्व गुजरात का राजा वही था। तीसरा दाबशिलीम कौन हो सकता है, इस विषय में कुछ भी कहा नहीं जा सकता। परंतु इतना तो निश्चित है कि वह भीमदेव नहीं था; क्योंकि सुल्तान के लौटते समय उसका मार्ग रोकनेवालों में मुख्य वही (भीमदेव) था। गुजरात के उस समय के इतिहास पर दृष्टि डालने से यही अनुमान होता है कि 'मजमा-इ-बसाया' की लिखी हुई दाबशिलीमों की यह सारी कथा वैसी ही कल्पित है, जैसी कि फ़रिश्ता आदि की सोमनाथ की मूर्ति के पेट में से रत्नों के निकलने की कथा; क्योंकि सुल्तान के लौटते ही गुजरात का राजा भीमदेव ही हुआ था, और न गुजरात में सोने या रत्नों की खानें थीं, न हिंदू-राजों में क़ैद किए हुए राजा को क़ैद करनेवाले राजा की गद्दी के नीचे अँधेरे कमरे में रखने की प्रथा थी, और न इस कथा का उल्लेख इब्न-असीर ने कहा किया है, जो महमूद की सोमनाथ की चढ़ाई का हाल लिखनेवालों में सबसे पहला लेखक है।

सुल्तान महमूद ने लौटते समय गुजरात की चाहे जो व्यवस्था की हो, या करनी चाही हो, परंतु यह निश्चित है कि सुल्तान के लौटते ही गुजरात का स्वामी भीमदेव ही बना था। फ़रिश्ता ने लिखा है—"महमूद ढाई[1] बरस इधर व्यतीत कर ग़ज़नी को चलने लगा। उस समय ख़बर मिली कि नहरवाले (अनहिलवाड़े) के राजा बिरहमदेव[2] (भीमदेव) अजमेर[3] के राजा तथा दूसरे राजों ने सेना एकत्र कर उसका रास्ता रोकने की तैयारी की है, जिससे उसने सिंध के मार्ग से मुलतान पहुँचने का इरादा किया। मार्ग में उसकी सेना के बहुत-से सिपाही असह्य गरमी और प्यास के मारे पागल हो-होकर मर गए[4]।" इससे भी सुल्तान के लौटने के समय गुजरात पर भीमदेव का अधिकार होना पाया जाता है।

(क्रमशः)

गौरीशंकर-हीराचंद ओझा

---

१. दाबशिलीम-शब्द देखकर कर्नल टॉड ने अनुमान किया है कि वह डाभी-जाति के शलीम का सूचक होगा। रासमाला के कर्ता ने उसे दुर्लभराय का सूचक बतलाया है। हमारा अनुमान है कि यह शब्द दुर्लभसेन (दुर्लभराय) के नाम का बिगड़ा हुआ रूप होगा, और राजा के अर्थ में इसका प्रयोग किया गया होगा, जैसे मुसलमान लेखकों ने 'बलहरा'-शब्द का, जो वल्लभराज का बिगड़ा हुआ रूप है, पहले दक्षिण के राठौर राजों के लिये प्रयोग किया, और पीछे से 'बड़े राजा' या 'राजों के राजा' के अर्थ में सामान्य रूप से उसका प्रयोग होने लगा। सोलंकी-राजा कुमारपाल के समकालीन लेखक अल्-इद्रिसी ने अपनी पुस्तक 'नज़हतुल् मुश्ताक़' में अनहिलवाड़े के राजा कुमारपाल को बलहरा लिखा है, और उक्त शब्द का अर्थ राजों का राजा किया है (इलियट, हिस्ट्री ऑफ़् इंडिया, जि० १, पृ० ८८)।

१. सुल्तान केवल ६ महीने हिंदुस्तान में रहा था। उसका ग़ज़नी से कूच हिजरी सन् ४१६ में होना चाहिए। उसके स्थान पर ४१४ मानने से फ़रिश्ता को ढाई बरस यहाँ रहना लिखना पड़ा होगा।

२. तारीख़-फ़रिश्ता में भीमदेव की जगह 'बिरहमदेव' लिखा है, जिसका कारण फ़ारसी-लिपि की अपूर्णता है। फ़ारसी में लिखा हुआ 'भीमदेव' शब्द 'बिरहमदेव' पढ़ा जाय, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। इसी तरह तबक़ात-इ-अकबरी में भीमदेव के स्थान पर परमदेव लिखा है, जिसको कोई-कोई विद्वान् आबू का परमार-राजा अनुमान करते हैं। यह भ्रम है। परमदेव और बिरहमदेव फ़ारसी में एक-से लिखे जाते हैं। अंतर केवल 'बे' और 'पे' के नुक़्तों ही का है, जो बहुधा लगाए नहीं जाते। बिरहमदेव और परमदेव, दोनों भीमदेव के ही अशुद्ध रूप हैं।

३. सुल्तान महमूद की चढ़ाई के समय अजमेर बसा भी न था। उस समय चौहानों की राजधानी साँभर थी; परंतु पीछे से उनकी राजधानी अजमेर हुई, जिससे पिछले लेखकों ने साँभर के स्थान पर अजमेर लिखा होगा, यह संभव है, जैसे कि इस समय भी कई लेखक मेवाड़ की राजधानी उदयपुर क़ायम होने के पहले के चित्तौड़ के राजों को भी उदयपुर के राजा लिखते हैं।

४. ब्रिग, फ़रिश्ता, जि० १, पृ० ७५।

बुढ़ापे का ब्याह

[चित्रकार—श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा]



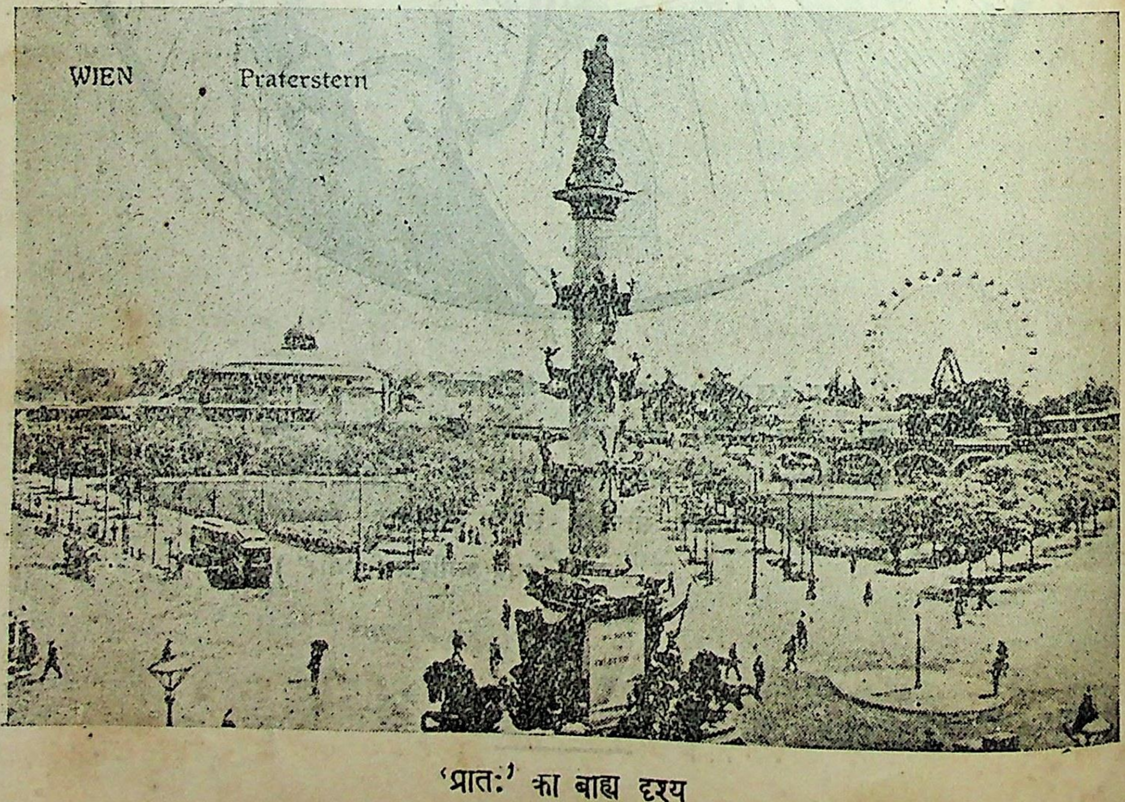
" बना देखने को सब दौड़े, जहाँ मिली जब ख़बर जिसे ;
लगे लोग आपस में कहने, 'बना' कहें या 'नना' इसे !
इस प्रकार जिसने जब देखा, दूल्हे को धिक्कार दिया ;
चंपा का भवितव्य सोचकर, सबने हाहाकार किया ।"

(सैयद अमीरअली 'मीर')

वीयना की प्रदर्शिनी

प्राच्य तथा पाश्चात्य सभ्यता का मेल यदि कहीं पर देखा जा सकता है, तो इस वीयना-शहर में। वीयना ने सुंदरता, स्वच्छता तथा वैज्ञानिक संगठन पाश्चात्य सभ्यता से ग्रहण किया, और प्राच्य देशों के आरामपसंद, भोग-विलास-प्रिय, लचकीले तथा ढिल्लम-ढिल्ले स्वभाव का परित्याग किया। यह मेरी ही धारणा नहीं है, मेरे अनेकों आंग्ल-मित्रों ने भी इसका पूर्ण रूप से अनुभव किया है। अभी कुछ ही दिनों की बात है, मैंने श्रीमती एजक्यूल से पूछा—"आप वीयना में पुनः क्यों लौटकर आ गईं? क्या बर्लिन पसंद नहीं आया?" उत्तर मिला—"बर्लिन के लोग व्यावहारिक तथा रूखे-सूखे मिज़ाज के हैं। वीयना के लोग हिंदुस्थान के लोगों की तरह ढिल्लम-ढिल्ले स्वभाव के तथा मिलनसार हैं।" श्रीमती एजक्यूल की रिश्तेदारी बंगाल के प्रसिद्ध 'सेन'-घराने से है, और वह हिंदुस्थान से अपरिमित प्रेम रखती हैं।

पिछले दिनों वीयना पर विशेष रंग चढ़ गया था। एक तो वीयना पहले ही सुंदरता तथा आमोद-प्रमोद में संसार के अंदर अपना सानी नहीं रखता; वाद्य-कला तथा संगीत-सम्मिलन में वीयना ने आज तक किसी से भी पराजय नहीं पाई; उस पर प्रदर्शिनी ने तो उसकी सुंदरता को चौगुना बढ़ा दिया। प्रदर्शिनी के अध्यक्षों ने प्रदर्शिनी के लिये 'प्रातः'-नामक स्थान चुनने में विशेष बुद्धिमत्ता तथा दूरदर्शिता से काम लिया; क्योंकि 'प्रातः' स्थान वीयना-शहर का जीवन, नवयुवक तथा नवयुवतियों का आमोद-प्रमोद-स्थान, बालकों का क्रीड़ागृह, वृद्धों के लिये रामबाण और मुर्दा लोगों



'प्रातः' का बाह्य दृश्य

के लिये संजीवनी औषध है। यह पहला ही स्थान है, जिसने मुझको विशेष रूप से आकृष्ट किया, और जहाँ मैं योरप के वास्तविक जीवन का अनुभव करने में समर्थ हो सका।

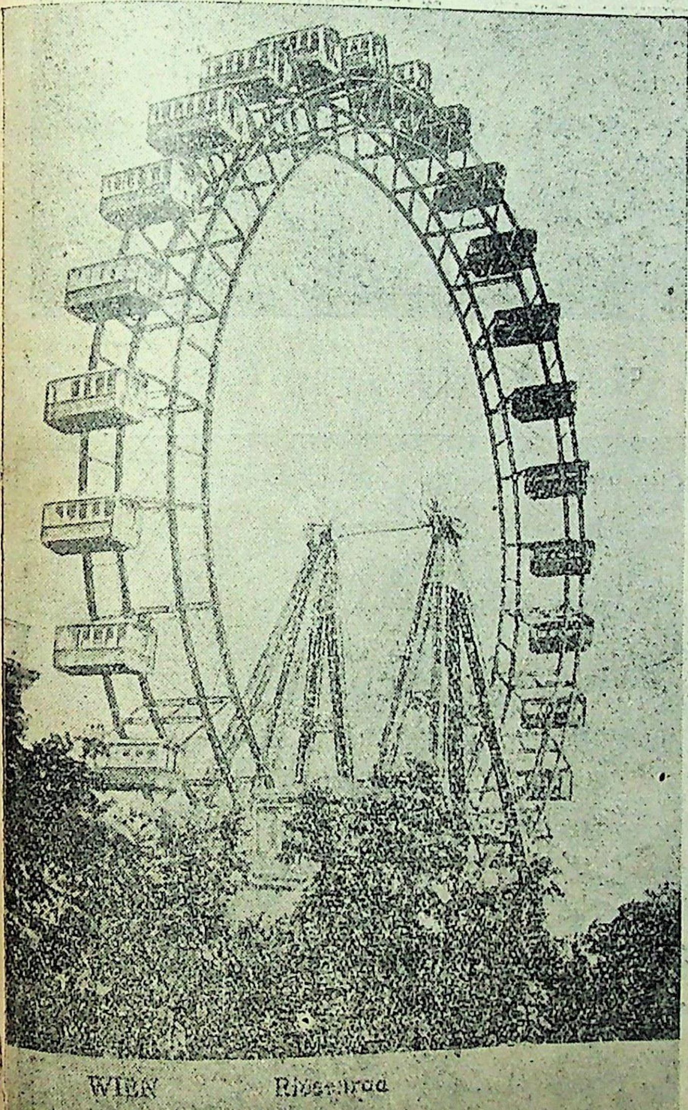
रविवार के दिन ज्यों ही मैं अपने मित्रों के साथ पहलेपहल 'प्रातः' देखने के लिये पहुँचा, त्यों ही मुझको मालूम हुआ, जैसे रामनगर की रामलीला या नाटी इमली का भरत-मिलाप हो रहा है। हज़ारों बालक-बालिकाओं, युवक-युवतियों तथा भिन्न-भिन्न देश-वासियों का जमघट दिखाई पड़ा। सैकड़ों आदमी आकाश-गामी हिंडोले में चक्कर खाते दिखाई पड़े। पाठकों की अभिरुचि के लिये 'प्रातः' का बाह्य दृश्य दिया जा चुका है।

दूसरे चित्र से पाठकों को हिंडोले की उँचाई मालूम हो गई होगी। यह हिंडोला माधवराव के धौरहरे के सदृश ऊँचा है, और बिजली के ज़ोर से घूमता है। बालक-बालिकाओं के चीख़ने, हँसने तथा शोर मचाने से आसपास के प्रदेशों में एक नया जीवन आ जाता है। ऊपर से नीचे आते ही भयंकर घबराहट और फिर नीचे से ऊपर जाते ही अत्यंत अधिक आनंद मालूम पड़ता है, तथा कालिदास के "नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण" का पूर्ण रूप से अनुभव होने लगता है।

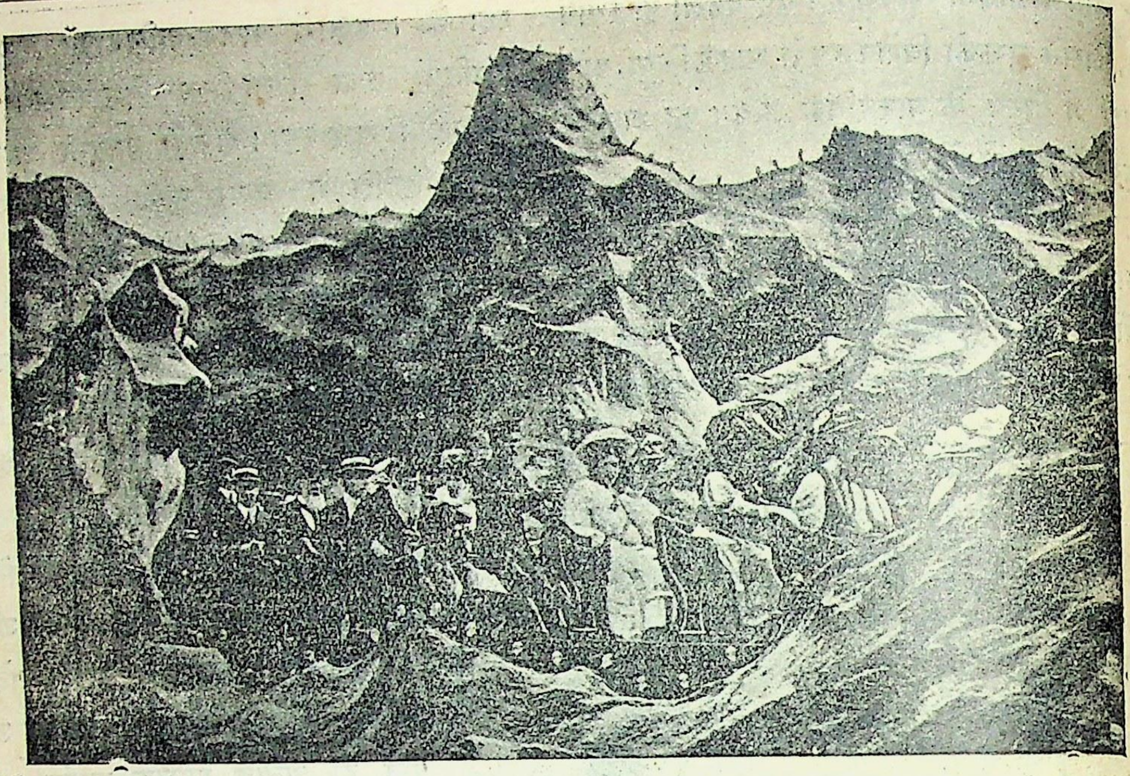
आकाशगामी हिंडोले के सदृश 'पहाड़ी रेल' का आनंद भी अनोखा है। यह रेल एक छोटे-से टीले को काटकर बनाई गई है। रेल बनाते समय इस बात का ध्यान रक्खा गया है कि कहीं भी रेल समान तथा समतल भूमि पर न दौड़े। या तो एकदम नीचे उतरे और या एकदम ऊपर चढ़े और बीसों 'टनलों' के अँधेरे में से पार हो।

तीसरे चित्र में यह दिखाया गया है कि किस प्रकार लोग पहलेपहल इस रेल पर सवार हुए।

चौथे चित्र में रेल का नीचे गिरना दिखलाया गया है। जिस समय यह रेल



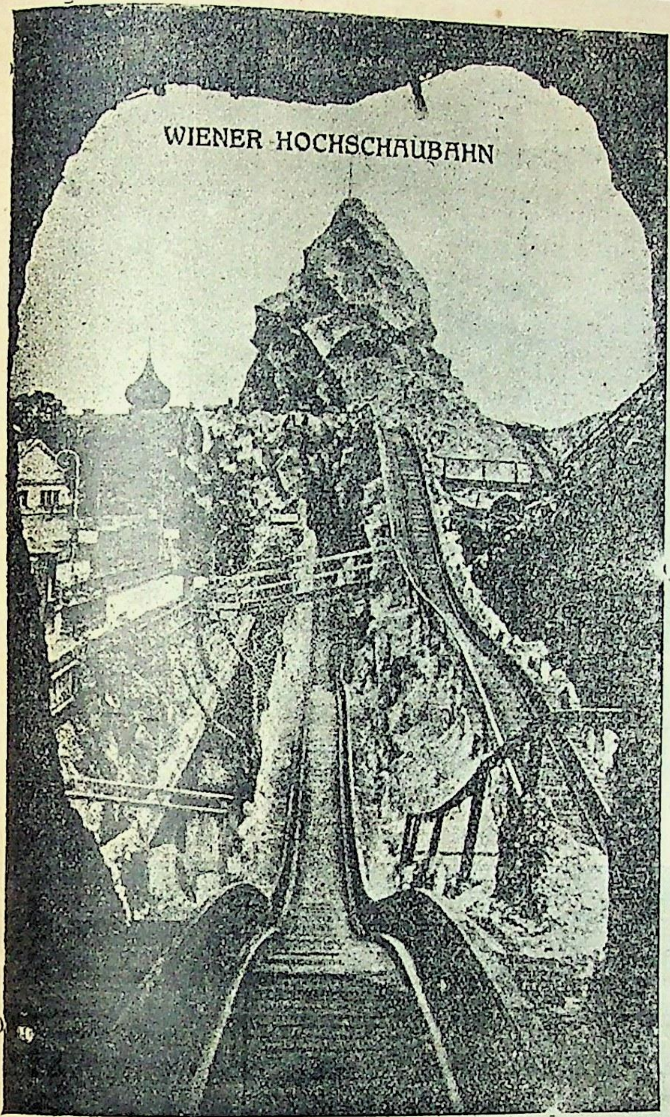
बिजली से घूमनेवाला आकाशगामी हिंडोला



पहाड़ी रेल



पहाड़ी रेल का ऊपर-नीचे गमनागमन



पहाड़ी रल का टनल पार करना

नीचे आती है, हृदय थर-थर काँपने लगता है; परंतु कुछ ही सेकिंडों के बाद जब रेल ऊपर चढ़ती है, हृदय गद्‌गद हो जाता है।

पाँचवें चित्र में रेल का टनल के अंदर से पार होना दिखलाया गया है। यह पहाड़ी रेल बहुत लंबी नहीं है। संपूर्ण यात्रा १४ मिनट में समाप्त हो जाती है।

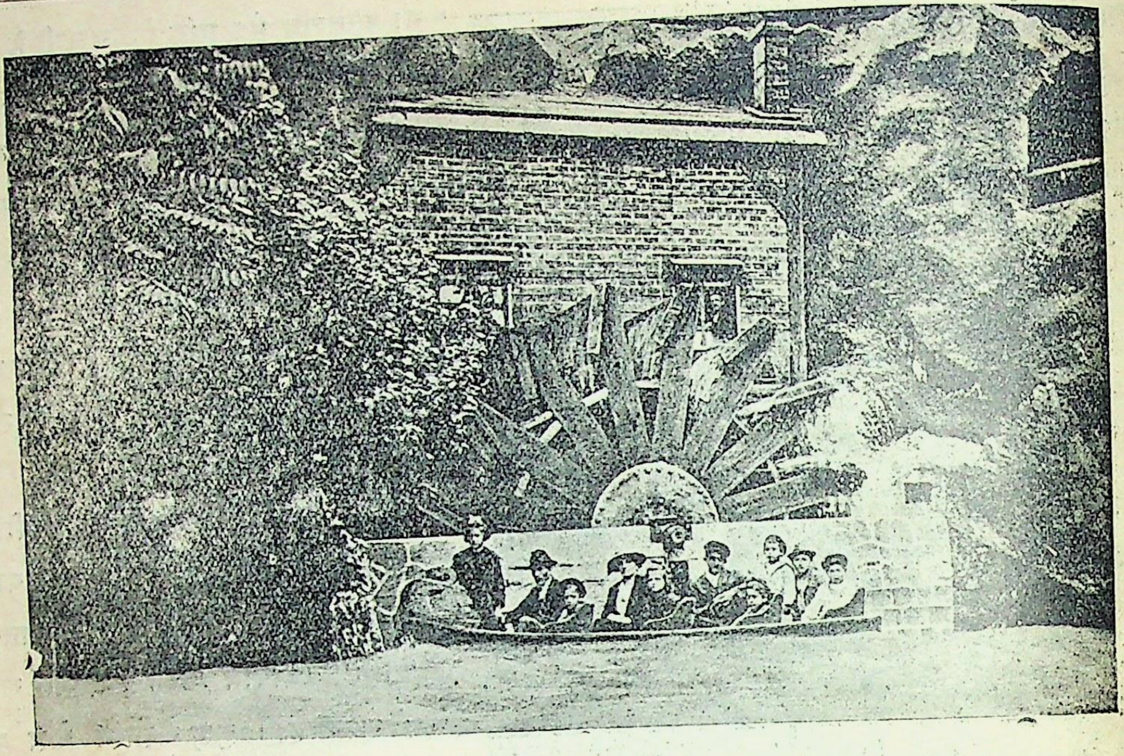
पहाड़ी रेल ही की शैली पर पानी में नाव भी चलती है। यह नाव कभी भयंकर तेज़ी से और कभी अतिशय मंद गति से चलती है। छठा तथा सातवाँ चित्र इसी दृश्य को दिखाता है।

रेल, नाव तथा हिंडोले के सदृश ही लकड़ी के घोड़ों, मोटरों, रेलों, गाड़ियों पर सवारी का आनंद लिया जा सकता है। 'प्रातः' में ऐसे खेलों की कुछ भी कमी नहीं है। घोड़ों पर सवार स्त्रियाँ तथा पुरुष जब बिजली के ज़ोर से घूमते हैं, तो यह दृश्य बहुत ही कौतूहल-पूर्ण मालूम होता है।

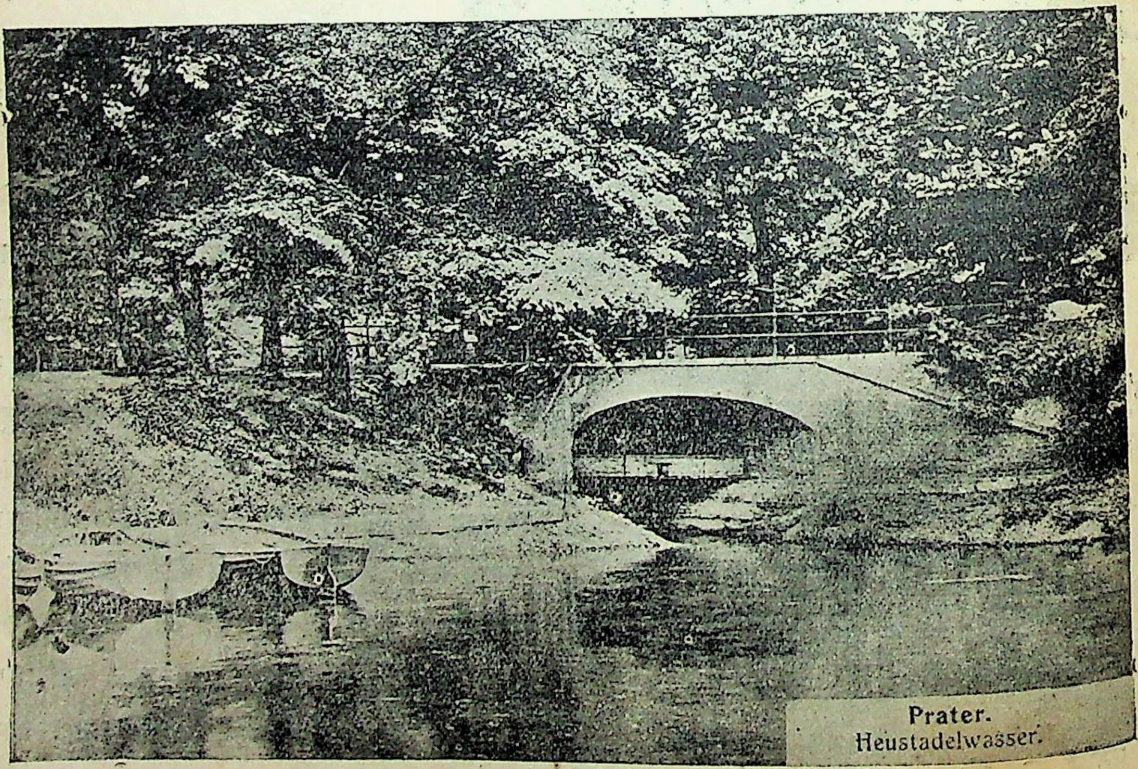
'प्रातः' में जादू के तमाशों की भी कुछ कमी नहीं है। उनके विज्ञापनों तथा बाहरी स्वरूप का नमूना आठवें चित्र में दिया जाता है।

'प्रातः' व्यायाम करने का भी सबसे उत्तम स्थान है। कुछ खेलों में खेल और व्यायाम एकसाथ होता है। खेल का खेल और व्यायाम का व्यायाम। दसवाँ चित्र इसी दृश्य को दिखाता है। जो लोग नृत्य देखना पसंद करते हैं उनके लिये भी 'प्रातः' सबसे उत्तम स्थान है। प्रायः ग्रामीण लोग ही यहाँ पर विशेष रूप से आनंद उठाते हैं। ग्यारहवाँ चित्र इस बात का स्पष्ट दर्शक है।

'प्रातः' में प्रदर्शिनी करने से प्रदर्शिनी में विशेष रौनक़ आ गई थी। जर्मनों की दुकानें बहुत ही अधिक थीं। क्रय-विक्रय भी बहुत अधिक हुआ। पहली सितंबर से ८ सितंबर तक वीयना की रौनक़ पहले की अपेक्षा बहुत ही अधिक रही। राज्य ने भी इसके बढ़ाने में कोई कसर नहीं उठा रक्खी। इन्हीं दिनों रात को बल्वडियर-पार्क के पास पानी के फ़ौवारों के नीचे लाल, पीले, हरे, नीले तथा कासनी रंग के सैकड़ों बिजली के लैंप लगाए गए। क्षण-क्षण के बाद भिन्न-भिन्न रंगों के लैंपों में बिजली का संचार होते ही



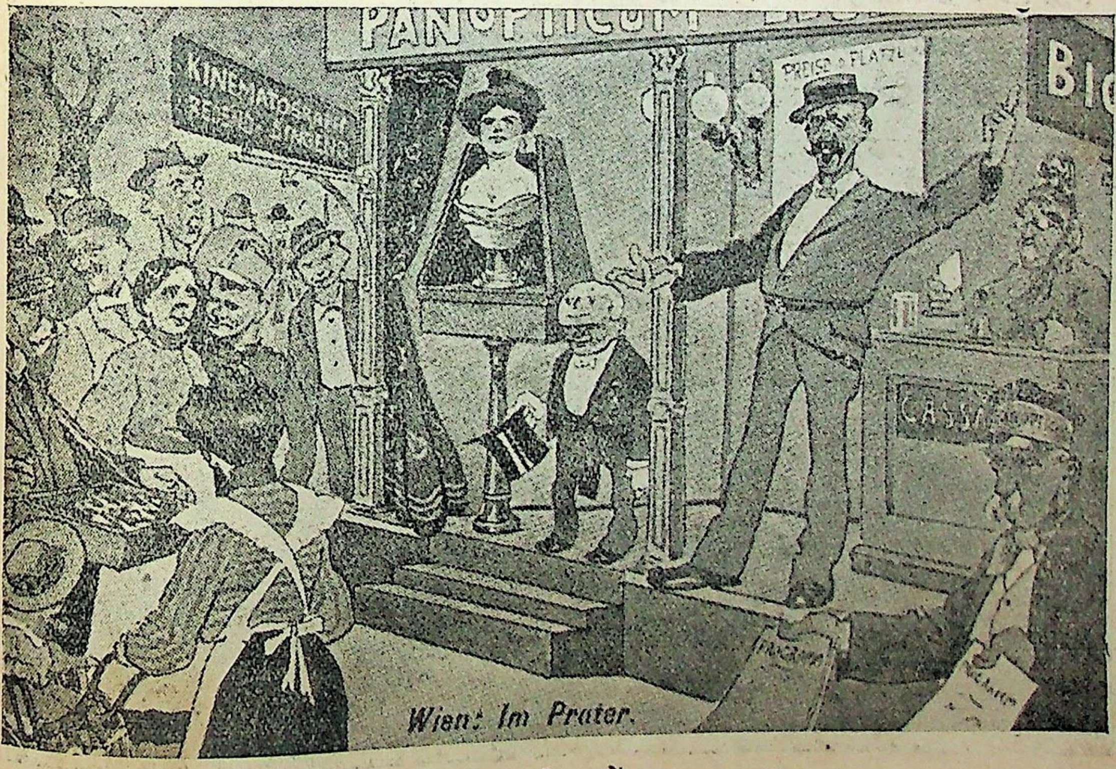
पहाड़ी रेल ही की शैली पर बनी हुई नाव



पहाड़ी रेल ही की शैली पर बनी हुई एक और नाव



बिजली से घूमनेवाले लकड़ी के घोड़ों की सवारी



जादू के तमाशों के विज्ञापनों का बाह्य दृश्य



खेल और व्यायाम का एकसाथ होना



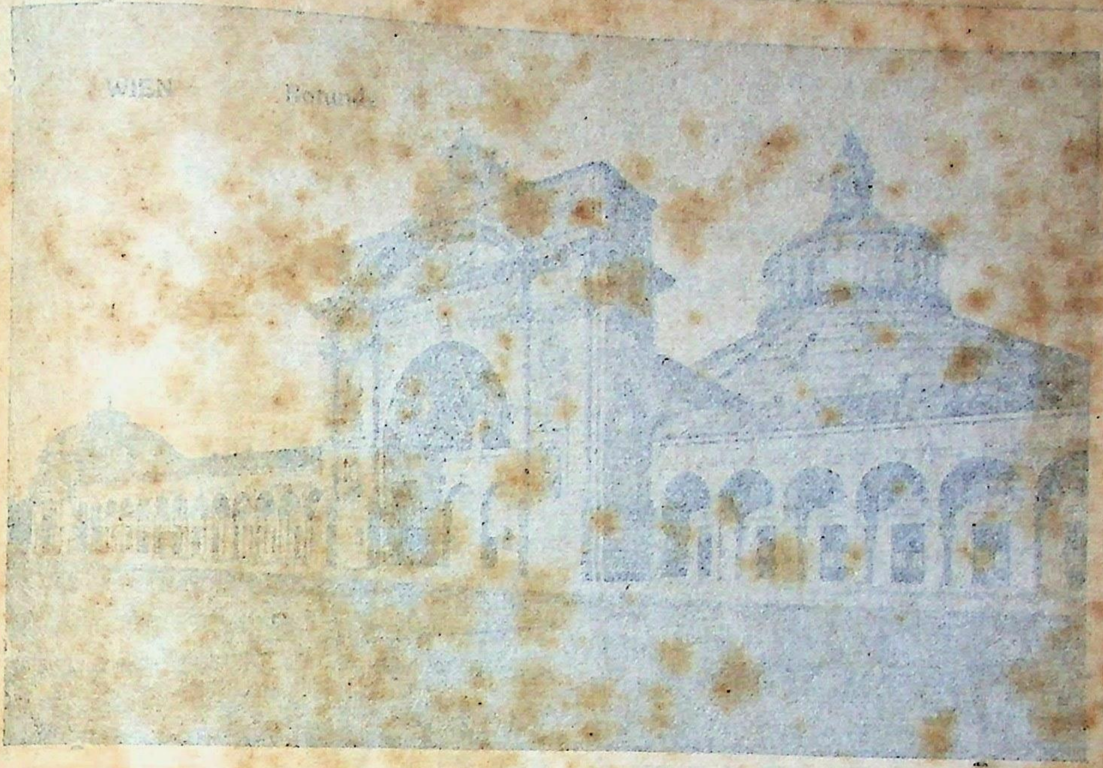
ग्रामीण नृत्य



रंगीन फ़ौवारा

[वीयना की प्रदर्शिनी]

N. K. Press, Lucknow.

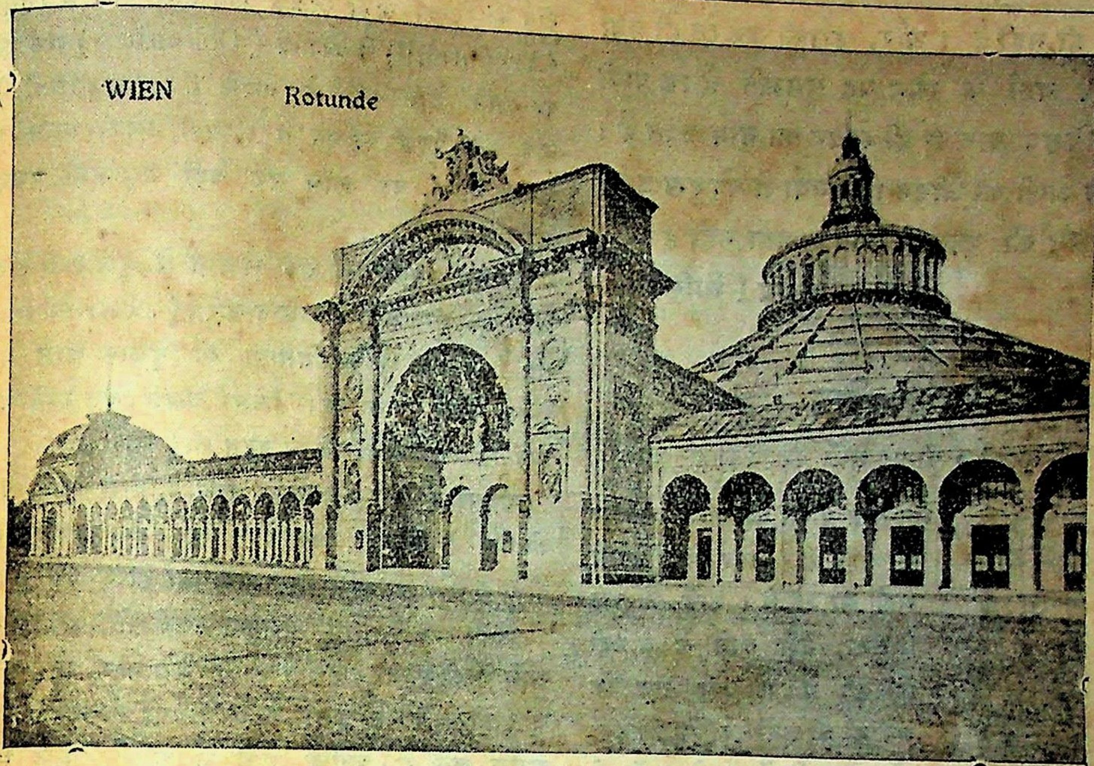


'प्रात' का प्रदर्शिनी-भवन

फ़ौवारे कभी लाल, कभी पीले और कभी नीले रंगों से प्रकाशित होने लगे। रंगीन फ़ौवारे का चित्र देखिए। दूर से कभी-कभी ऐसा मालूम होता था कि पार्क में आग लग गई है। लाल रंग की रोशनी से सारे फ़ौवारे लाल हो जाते थे। परंतु शीघ्र ही यह भ्रम दूर हो जाता था, जब नीले तथा हरे रंग की रोशनी से फ़ौवारों के नीला, हरा होते ही आँखों को शांति मिलती थी।

प्रदर्शिनी समाप्त हो जाने के बाद अब आतिशबाज़ी का प्रबंध किया गया है। फ़ौवारों का मनोहर दृश्य खतम हो गया। अब आतश-बाज़ी का नया दृश्य आरंभ हो गया है। रात को बलवडियर-पार्क के पास आतिशबाज़ी होती है। लाखों मनुष्य चारों ओर से इस दृश्य को देखने के लिये आते हैं। मुझको रोज़ यहीं आना पड़ता है, [illegible] है [illegible] की [illegible] इमली का भरत-मिलाप, रामनगर की राम-लीला, दशाश्वमेध या प्रयाग का दशहरा, माघी का मेला, हरद्वार का कुंभ अथवा वारुणी का मेला अपनी आँखों से देख रहा हूँ। अपने देश में सब चीज़ों के आधार में धर्म जुड़ा है; परंतु यहाँ धर्म के स्थान पर भोग-विलास का ही राज्य है। बनारस में जितने मंदिर तथा घाट हैं, उतने ही यहाँ पर काफ़ी-हाउस हैं। प्रमाद से पूर्ण लोगों का जमघट दोनों ही स्थान पर एक-सा है। अंतर केवल हृदय तथा मानसिक भाव का है। हम लोग जब मंदिर तथा घाट पर जमघट लगाते हैं, उस समय कपड़ों तथा भूषणों के प्रति हमारी किसी सीमा तक निरपेक्षता हो जाती है; परंतु हार्दिक भावों के लिए होने के काफ़ी-हाउसों में इसी बात की विशेष आवश्यकता का अनुभव होता है। यहाँ ईश्वर के स्मरण करने का कोई

N. K. Press, Lucknow.



'प्रात:' का प्रदर्शिनी-भवन

फ़ौवारे कभी लाल, कभी पीले और कभी नीले [रं]ग से प्रकाशित होने लगे। रंगीन फ़ौवारे [क]ा चित्र देखिए। दूर से कभी-कभी ऐसा [म]ालूम होता था कि पार्क में आग लग गइ [है]। लाल रंग की रोशनी से सारे फ़ौवारे लाल हो [उ]ठते थे। परंतु शीघ्र ही यह भ्रम दूर हो जाता था, [ज]ब नीले तथा हरे रंग की रोशनी से फ़ौवारों के [नी]ला, हरा होते ही आँखों को शांति मिलती थी। [अब] प्रदर्शिनी समाप्त हो जाने के बाद अब [आ]तिशबाज़ी का प्रबंध किया गया है। फ़ौवारों [क]ा मनोहर दृश्य खतम हो गया; अब आतिश[बा]ज़ी का नया दृश्य आरंभ हो गया है। रात को [रो]ज़ बल्वडियर-पार्क के पास आतिशबाज़ी [हो]ती है। लाखों मनुष्य चारों ओर से इस दृश्य [क]ो देखने के लिये आते हैं। मुझको रोज़ यही [मा]लूम पड़ता है, जैसे मैं बनारस की नाटी इमली का भरत-मिलाप, रामनगर की रामलीला, दशाश्वमेध या प्रयाग का दशहरा, माघी का मेला, हरद्वार का कुंभ अथवा वारुणी का मेला अपनी आँखों से देख रहा हूँ। अपने देश में सब चीज़ों के आधार में धर्म जुटा है; परंतु यहाँ धर्म के स्थान पर भोग-विलास का ही राज्य है। बनारस में जितने मंदिर तथा घाट हैं, उतने ही यहाँ पर काफ़ी-हाउस हैं। प्रमाद से पूर्ण लोगों का जमघट दोनों ही स्थान पर एक-सा है। अंतर केवल हृदय तथा मानसिक भाव का है। हम लोग जब मंदिर तथा घाट पर जमघट लगाते हैं, उस समय कपड़ों तथा भूषणों के प्रति हमारी किसी सीमा तक निरपेक्षता हो जाती है; परंतु हार्दिक भावों के भिन्न होने से काफ़ी-हाउसों में इसी बात की विशेष आवश्यकता का अनुभव होता है। यहाँ ईश्वर के स्मरण करने का कोई

मौक़ा ही नहीं है । और, उसकी ज़रूरत ही क्या है, जब यहाँ के लोग यह समझते हैं कि पापी या अतिशय पाखंडी ही ईश्वर का नाम जपते हैं। मध्यम श्रेणी का जीवन बितानेवालों को इस प्रपंच में फँसने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है।

प्राणनाथ (आस्ट्रिया)

दो मित्र

(गी-द-मोपासाँ * की एक छोटी कहानी का अनुवाद)

जर्मन-सेना पेरिस को चारों तरफ़ से घेरे पड़ी थी। शहर के निवासी भूखों मर रहे थे। उन्हें जो कुछ मिलता, उसे खाने से वे नहीं हिचकते थे । यहाँ तक कि मकानों की छतों पर से चिड़ियों को और बिलों में से चूहों को पकड़कर खा जाते थे।

एक रोज़ सबेरे, माघ के महीने में, म० मोरीस्सो (M. Morissot) अपनी फ़ौजी पतलून की जेब में हाथ डाले, बहुत ही रंजीदा, ख़ाली पेट, क़िले की चहारदीवारी पर घूम रहे थे । इनका पेशा घड़ी-साज़ी का था । पर इस समय किसी से बातचीत करके मन बहलाने की फ़िक्र में थे। एक हमजोली को सामने आते देख खड़े हो गए । वह इनके नदी-किनारे के मित्र म० सोवाज़ (M. Sauvage) निकले।

लड़ाई के पहले हर इतवार को मोरीस्सो तड़का होते ही हाथ में एक बाँस की बंसी और पीठ पर एक टीन का डिब्बा लेकर निकल खड़े होते थे। आरज़ेंतुई (Argenteuil) से कोलोंब (Colombes) तक रेल पर जाते और वहाँ से मारांटे (Maranted)-टापू तक पैदल पहुँचते थे । यही उनकी पसंद की जगह थी । वह शाम तक यहीं मछलियाँ पकड़ा करते थे।

हरएक इतवार को म० सोवाज़ से मुलाक़ात होती थी। म० सोवाज़ नोत्र-दाम-द-लॉरेत (Notre-dame de Lorette) में बिसाती की दूकान करते थे। इनका शरीर ठिंगना था। हमेशा प्रसन्न-चित्त रहते थे। इन्हें भी मछली पकड़ने का बहुत शौक़ था ।

अक्सर दोनों पास-पास बैठे हाथ में बंसी लिए, पैरों को पानी में लटकाए, सारा दिन बिता देते थे। ऐसे ही दोनों के बीच धीरे-धीरे मित्र-भाव पैदा हो गया ।

किसी रोज़ ये मित्र बिलकुल न बोलते थे। कभी-कभी थोड़ी-बहुत बातचीत करते थे। परंतु बग़ैर बात-चीत ही के वे एक दूसरे के मनोभावों को अच्छी तरह समझ लेते थे; क्योंकि दोनों के आमोद-प्रमोद और विचार आदि एक ही-से थे।

वसंत-ऋतु में प्रातःकाल जब सूर्य की किरणें निर्मल बहते हुए जल पर पड़ती थीं, उनके हृदयों में एक विचित्र प्रकार की खलबली उठती थी। मोरीस्सो अपने मित्र से कहता—"आहा! क्या ही अच्छा दिन है!" सोवाज़ भी उत्तर देता—"मैंने ऐसा सुहावना दिन कभी नहीं देखा।" बस, इतने ही से दोनों एक दूसरे के भाव को समझ जाते थे।

हेमंत में डूबते हुए सूर्य की किरणों से सारा आकाश लाल हो जाता था, और रक्त-वर्ण बादलों की परछाइँ से जल में आग-सी लग जाती थी। तब सरदी से काँपते और मुसकिराते हुए म० सोवाज़ के मुँह से निकल जाता था—"वाह! कैसा अच्छा दृश्य है!" विस्मय से भरे मोरीस्सो बग़ैर निगाह उठाए ही कहते थे—"यह बूलेवा (Boulevard) * के दृश्य को भी मात करता है।"

---

* Guy-de-Maupassant का जन्म १८५० ईसवी में, फ्रांस में, हुआ था। यह एक बहुत ही विख्यात लेखक हैं। इनकी लिखी छोटी कहानियाँ ख़ास तौर से मशहूर हैं। इनकी कहानियों से उस समय की फ्रांस की सामाजिक दशा का बहुत ठीक पता लगता है। इस कहानी में पिछली शताब्दी के फ्रैंको-जर्मन-युद्ध की एक घटना का वर्णन है।—अनुवादक।

* बूलेवा—सुंदर चौड़ी सड़कें, जिनके दोनों किनारे पेड़ होते हैं, और उनके पीछे दूकानें और रहने के मकान आदि बने रहते हैं।—अनुवादक।

आज पहचानकर दोनों ने ऐसे नाज़ुक समय में मिलने पर जोश के साथ हाथ मिलाया। म० सोवाज़ ने गहरी साँस लेकर कहा—"कैसा विकट समय है!", और मोरीस्सो ने भी दुःखित होकर कहा—"और, आज ही साल का पहला सुहावना दिन है!"

आकाश सचमुच मेघ-रहित स्वच्छ था। उसका नीला रंग बहुत ही सुंदर मालूम होता था। दोनों साथ-साथ शोकाकुल भाव से घूमने लगे। मोरीस्सो ने पिछले दिन याद करके फिर कहा—"जब हम लोग मछली पकड़ने जाते थे, वे दिन कैसे रमणीय होते थे?"

म० सोवाज़ ने पूछा—"अब हम लोग वापस चलें न?"

दोनों एक छोटे-से 'काफ़े' में घुसे। साथ बैठकर एक-एक ग्लास आबसैंट (Absinthe) पिया, और फिर बाहर निकलकर सड़क के किनारे टहलने लगे।

मोरीस्सो एकदम रुक गया। प्रश्न किया—"एक और ग्लास आबसैंट का?" म० सोवाज़ ने मंजूर किया—"आपकी आज्ञा मानने के लिये तैयार हूँ।" दोनों एक दूसरे शराबख़ाने में जा पहुँचे।

बाहर निकलने पर उन्हें कुछ-कुछ मस्ती हो चली थी; क्योंकि उन्होंने ख़ाली-पेट शराब पी ली थी। समय भी सुहावना था। ठंडी हवा धीरे-धीरे चल रही थी।

म० सोवाज़ ने ज़रा धीमी आवाज़ में कहा—"अगर वहाँ जा सकें।"

"वहाँ कहाँ?"

"मछली पकड़ने।"

"लेकिन कहाँ?"

"कहाँ? अपने टापू पर। फ्रेंच-सेना कोलोंब तक पड़ी है। मैं कर्नल दुमूलें को जानता हूँ। वह हम लोगों को बग़ैर किसी दिक़्क़त के बाहर जाने की आज्ञा दे देंगे।"

मोरीस्सो ने भी अपनी इच्छा प्रकट की—"बहुत ठीक, मैं भी राज़ी हूँ।" दोनों अपना-अपना सामान लेने को अलग हुए।

एक घंटे बाद बड़ी सड़क पर फिर से उनका साथ हुआ। थोड़ी देर बाद जिस गाँव में कर्नल साहब का पड़ाव पड़ा था, वहाँ वे जा पहुँचे। वह इनकी इच्छा सुनकर मुसकिराया, और आज्ञा दे दी। दोनों बाहर जाने का परवाना लेकर चल पड़े।

दोनों आदमी संतरियों को नाँघ करके उजड़े कोलोंब में पहुँचे, और उसके आगे अंगूर के खेतों के पास होकर निकले। ये खेत नदी के किनारे तक चले गए थे। इस समय दिन के ग्यारह बज चुके थे। सामने आरजैंतुई का शव-परिपूर्ण गाँव था। ओरजमाँ (Orgemont) और सानवा (Sannois) की ऊँची भूमि और बड़ा मैदान, जो नानटैर तक फैला हुआ था, बिलकुल ख़ाली था। सिर्फ़ पेड़ों के ठूँठ ही नज़र आते थे।

म० सोवाज़ ने उँगली से ऊँची भूमि की तरफ़ इशारा करके कहा—"वहाँ पर जर्मन हैं।" चिंता और आशंका से दोनों उस निर्जन मैदान में घबरा उठे।

जर्मन! उनको अभी तक नहीं देखा था। पर एक महीने से वे पेरिस को घेरे पड़े थे, और फ्रांस को लूट-खसोटकर बरबाद कर रहे थे। दिखलाई न पड़ते थे, परंतु, फिर भी, उनकी ताक़त छिपी न थी। दोनों के हृदयों में छिपे हुए दुश्मन का भय समा गया।

मोरीस्सो ने घबराकर कहा—"हैं! अगर उन लोगों से भेंट हो गई, तो?"

"तो क्या, उन्हें भी एक भुनी मछली दे देंगे।"—यह म० सोवाज़ ने फ्रेंच-प्रकृति की लापर्वाही से हँसकर कहा।

मगर दोनों खुले मैदान में होकर निकलने से हिचकते थे। चारों तरफ़ के सन्नाटे ने उनको डरा दिया था।

अंत को म० सोवाज़ ने कहा—"चलो भी। मगर होशियार रहना!" वे खेतों में होकर खाई, ख़ंदकों और ढूहों के पीछे छिपते हुए, कानों को खोले, बहुत ही होशियारी से आगे बढ़ने लगे। अंत को उनके और नदी के बीच सिर्फ़ एक छोटा-सा मैदान रह गया। उन्होंने उसको दौड़कर पार किया, और नदी-किनारे की घनी घास में लेटकर छिप रहे।

मोरीस्सो ने, ज़मीन से कान लगाकर, चलनेवालों की आहट ली; पर कुछ सुनाई न पड़ा। वे दोनों बिलकुल अकेले थे।

निश्चिंत होकर दोनों मछली पकड़ने में लग गए। उनके सामने मारांटे-टापू बिलकुल वीरान पड़ा हुआ था। भोजनालय की छोटी इमारत बंद थी। ऐसा मालूम पड़ता था कि बरसों से किसी ने उसका इस्तेमाल नहीं किया।

म० सोवाज़ ने पहली मछली पकड़ी, मोरीस्सो ने दूसरी। फिर एक के बाद एक छोटी-छोटी चमचमाती हुई मछलियों को पकड़कर किनारे लाने लगे। विचित्र दृश्य था।

वे मछलियों को होशियारी से एक जाल की थैली में रखते जाते थे, जो उनके पैरों के नीचे पानी में रक्खी थी। उनका मन ख़ुशी के मारे फूला न समाता था। इतने दिनों बाद उनके मन की इच्छा पूर्ण हुई थी।

धूप से उनका ठंडा बदन गरम हो चला था। उनका ध्यान किसी ओर तरफ़ न था, और न वे कुछ और सोच ही रहे थे—सारे संसार को भूले हुए मछली पकड़ने में मशगूल थे।

परंतु एकाएक ज़मीन हिलाती दबी हुई गरजने की आवाज़ें सुनाई पड़ने लगीं। तोपों का दगना शुरू हो गया था। मोरीस्सो ने सिर घुमाया। उसे वालेरियन-पहाड़ की चोटी पर सफ़ेद घटाएँ छाई हुई दिखलाई पड़ीं। बारूद का धुआँ धीरे-धीरे उड़ रहा था। इतने में एक और फुहारा धुएँ का निकला। थोड़ी देर बाद तोप की बाढ़ दगने की आवाज़ सुनाई पड़ी। तदनंतर और गोले चलने लगे। क्षण-क्षण पर पहाड़ मृत्यु उगलने लगा, और सफ़ेद धुआँ धीरे-धीरे शांत आकाश में उड़कर बादल के रूप में दिखलाई पड़ने लगा।

म० सोवाज़ ने अँगड़ाई लेते हुए कहा—"देखो, फिर युद्ध शुरू हो गया।"

मोरीस्सो शांत स्वभाव का था। वह बंसी के कार्क को बारंबार डूबते देख रहा था। वह एकाएक युद्ध और योद्धाओं पर ख़फ़ा होकर बड़बड़ाने लगा—"इस तरह मार-काट करना पागलपन की निशानी नहीं, तो और क्या है?"

म० सोवाज़ ने उत्तर दिया—"ये जानवरों से भी गए-बीते हैं।" मोरीस्सो काँटे से मछली छुड़ाते हुए बोला—"जब तक संसार में भिन्न-भिन्न राज्य रहेंगे, तब तक ऐसा ही होगा।"

म० सोवाज़ ने रोककर कहा—"यह लड़ाई फ़्रांस के प्रजा-तंत्र राज्य ने नहीं छेड़ी है—"

मोरीस्सो बात काटकर बोल उठा—"राज्यों के होने से दूसरे देश से लड़ाई होती है। पर प्रजा-तंत्र राज्य होने से अपने ही देश में रण-भूमि हो जाता है।"

दोनो राजनीतिक विषयों पर भलेमानसों की तरह धीरे-धीरे बहस करने लगे। विषय भी ऐसा था कि हरएक की राय बिलकुल अलग-अलग। वालेरियन-पहाड़ पर के क़िले से अभी तक लगातार फ़्रेंच मकानों पर गोले बरस रहे थे। लोग मर रहे थे। ज़िंदगी के अरमानों, आनेवाली प्रसन्नताओं और मनोवांछित भावी घटनाओं पर पानी फिर रहा था। दूर देश की रहनेवाली स्त्रियों, माताओं और बाल-बच्चों के हृदयों पर वह आपत्तियों का पहाड़ गिर रहा था, जो ज़िंदगी-भर न मिटेगा।

"यही ज़िंदगी है!"—सोवाज़ ने कहा।

मोरीस्सो ने हँसते हुए जवाब दिया—"नहीं! कहो कि यह मृत्यु है।"

परंतु एकाएक वह चौंककर उठ खड़े हुए। ऐसा मालूम हुआ, जैसे कोई पीछे चल रहा है। आँख फेरकर देखा, चार आदमी—चार हथियार-बंद, बड़े डीलवाले, दाढ़ीबाज़ आदमी, फ़ौजी वर्दी पहने इनके पीछे खड़े हैं, और कंधे पर बंदूक़ रक्खे इनको निशाना बना रहे हैं।

दोनो की बंसियाँ हाथ से छूटकर पानी में जा गिरीं।

सिपाही इन्हें पकड़कर, एक नाव में डालकर, सामने के टापू में ले गए। उस भोजनालय के पीछे, जिसको ये ख़ाली समझे थे, इन्हें बीस जर्मन सिपाही दिखलाई पड़े।

एक ख़ूब घनी दाढ़ी-मूछवाला आदमी एक कुर्सी पर बैठा पोर्सिलेन का लंबा पाइप पी रहा था। उसने आगंतुकों से बहुत ही साफ़ फ़्रेंच भाषा में पूछा—"कहिए महाशय, मछलियों का शिकार अच्छा हुआ न?"

इसी समय एक सिपाही ने अफ़सर के पैरों के पास मछली-भरा जाल रख दिया।

मछलियाँ देखकर जर्मन ने कहा—"आहा! शिकार तो ख़ूब हुआ है। परंतु अब एक दूसरे ही विषय पर बातचीत करना ज़रूरी है। मेरी तरफ़ ध्यान दीजिए, और कुछ फ़िक्र न कीजिए। आप लोग दो जासूस हैं, और मेरे पास सज़ा देने के लिये लाए गए हैं। मैं आप लोगों को गोली मारने का हुक्म दे सकता हूँ। आप मछली पकड़नेवालों का वेष रखकर हम लोगों का भेद लेने आए हैं। यह बहुत ही बुरा हुआ कि आप लोग मेरे हाथ में आ पड़े। ख़ैर, यह तो लड़ाई है। परंतु, आप सामने की फ़ौज के संतरियों को नाँघकर आए

है, इसलिये दुबारा अंदर जाने के वास्ते आपके पास ज़रूर कोई गुप्त संकेत होगा। मुझे वह संकेत बतला दीजिए, बस, मैं आपको तुरंत छोड़ दूगा।"

दोनों मित्र चुप रहे। उनके चेहरे का रंग उतर गया था, हाथ काँप रहे थे।

अफ़सर ने फिर कहा—"किसी को कभी कुछ न मालूम होगा। आप अपने घर बेखटके लौट जा सकेंगे। यह गुप्त वार्तालाप किसी को न मालूम होगा। परंतु अगर आपने इनकार किया, तो मृत्यु सामने है, और वह भी तुरंत। जो चाहो, पसंद कर लो।"

दोनों बिना हिले-डुले, जैसे-के-तैसे, खड़े रहे। जर्मन ने नदी की तरफ़ हाथ बढ़ाकर कहा—"सोचो, पाँच मिनट में तुम उस पानी के अंदर पड़े होगे—सिर्फ़ पाँच मिनट में! क्या तुम अपने कुटुंबियों से फिर भेंट नहीं करना चाहते?"

वालेरियन-पहाड़ बराबर गर्जना कर रहा था। दोनों मछली पकड़नेवाले खड़े रहे, और बिलकुल न बोले।

जर्मन ने अपनी भाषा में चंद सिपाहियों को हुक्म दिया, और क़ैदियों के पास से अपनी कुर्सी दूर हटा ली। १२ सिपाही बंदूक़ें भरकर क़ैदियों से बीस क़दम की दूरी पर जा खड़े हुए।

अफ़सर ने फिर कहा—"अब मैं तुमको सिर्फ़ एक मिनट और देता हूँ। इससे एक सेकिंड भी ज़्यादा न मिलेगा।"

वह कुर्सी पर से उठकर फ्रेंचों के पास गया। मोरीस्सो की बाँह पकड़कर, उसे दूर अकेले में ले जाकर, उसने कहा—"जल्दी से मुझे संकेत बतला दो। तुम्हारे मित्र को न मालूम होगा, और मैं इस ढंग से बर्ताव करूँगा, जिसमें वह समझेगा कि मैंने दया करके तुम दोनों को छोड़ दिया है।"

मोरीस्सो इस पर भी चुप रहा।

वह जर्मन तब म० सोवाज़ को दूर ले गया, और उससे भी वही प्रश्न किया।

म० सोवाज़ ने भी कुछ उत्तर न दिया।

फिर दोनों अपनी जगह पर पास-पास खड़े कर दिए गए।

अफ़सर ने हुक्म दिया। फ़ौरन् सिपाहियों ने बंदूक़ें उठाकर निशाना साधा।

इतने में मोरीस्सो की निगाह मछली-भरे जाल पर जा पड़ी। थैली घास में, उससे थोड़ी ही दूर पर, रक्खी थी।

सूर्य की किरणें रुपहली मछलियों पर पड़ रही थीं। मोरीस्सो की अवस्था कुछ-कुछ मूर्च्छा की-सी हो चली थी। बहुत कुछ कोशिश करने पर भी उसकी आँख भर आई थीं। हिचकते हुए दबी आवाज़ से उसने कहा—"म० सोवाज़ विदा, हमेशा के लिये विदा!"

म० सोवाज़ ने भी उत्तर दिया—"जैसी ईश्वर की इच्छा!"

दोनों ने अंतिम बार हाथ मिलाए। उनका शरीर सिर से पैर तक काँप रहा था।

अफ़सर चिल्लाया—"फ़ायर!"

बारह बंदूक़ों ने एकसाथ ही फ़ायर किए।

म० सोवाज़ कटे वृक्ष की तरह नाक के बल धरती पर आ रहे। मोरीस्सो का बड़ा शरीर थोड़ी देर तक लड़खड़ाया, और फिर अपने साथी के ऊपर जा गिरा। मुँह आकाश की ओर था, और कोट खून से लाल हो रहा था।

जर्मन ने नए हुक्म जारी किए।

उसके आदमी इधर-उधर चले गए, और तुरंत रस्सियाँ और पत्थर लेकर लौट आए। मुर्दों के पैरों से पत्थर मज़बूत बाँधकर नदी के किनारे पर ले गए।

अभी तक वालेरियन-पहाड़ मृत्यु की भयानकता उगल रहा था। उसकी चोटी धुएँ के बादलों से ढकी थी।

दो सिपाहियों ने मोरीस्सो को, सिर और पैर पकड़कर, उठाया। इसी तरह और दो ने म० सोवाज़ को उठाया। दोनों मुर्दे पानी में दूर पर फेंक दिए गए। वे चक्कर खाते हुए पैरों के बल पानी में गिरकर ग़ायब हो गए।

पानी उछला। कुछ बुलबुले उठे और फिर बैठ गए। छोटी-छोटी लहरें किनारे से आकर टकराने लगीं। थोड़ा खून भी उतरा आया।

हमेशा प्रसन्न-चित्त रहनेवाला जर्मन अफ़सर बोला—"अब मछलियों की पारी है।"

एकाएक उसकी निगाह घास में रक्खे हुए जाल पर पड़ी। उसने मुसकिराकर आवाज़ दी—"विलियम!"

कंधे पर तौलिया रक्खे हुए एक सिपाही दौड़ आया। जर्मन ने उसे मुर्दों की मछलियाँ देकर कहा—"इन्हें जल्दी से तल दो। ये अभी तक ज़िंदा हैं, और खूब स्वादिष्ट होंगी।" फिर वह अपना पाइप पीने लगा।

श्यामाचरण राय

पाँच सूचनाएँ

(१)

संदेहों में ग्रस्त प्रेम-सा अस्त हुआ दिनकर था ;
विरहोन्माद समान चंद्र का उदय बड़ा सुखकर था।
एक बृहत् संगीत-महोत्सव अभी समाप्त हुआ था ;
मन को मोद और रसना को कलरव प्राप्त हुआ था।

(२)

साबुन और तेल से धोए लिपे-पुते चमकीले ;
मूछों की अनेक कट-छँट से चित्रित परम सजीले।
मुखमंडल-रूपी परदों में भिन्न-भिन्न आकृति के ;
कितने ही सुर, असुर छिपे बैठे थे भिन्न प्रकृति के।

(३)

आँखों की खिड़कियाँ खोलकर दृश्य निहार रहे थे ;
बातों की सुंदर रचना से सुख विस्तार रहे थे।
प्रेम-पूर्ण नेत्रों से सबकी ओर देख सुख पाके ;
मन-ही-मन सुखदास मुदित था अपना विभव दिखाके।

(४)

सोने-चाँदी के पात्रों में व्यंजन विविध रसीले—
सज्जित देख मुदित, उत्सुक, आतुर थे मित्र रँगीले।
इतने ही में एक अपरिचित व्यक्ति दिव्य तनु-धारी—
हुआ उपस्थित, देख चकित हो गई मंडली सारी।

(५)

अभिमानी सुखदास क्रुद्ध हो बोला ऊँचे स्वर में—
"बिना बुलाए, बिना सूचना दिए, किसी के घर में—
यों घुस आना है असभ्यता, ओ मनुष्य अज्ञानी !"
वह बोला—"चुप रहो, शांत हो, ऐ मनुष्य अभिमानी !

(६)

"मेरा नाम काल है ; मैं हूँ आया पास तुम्हारे ;
तुमने अपनी करनी द्वारा मुझे बुलाया प्यारे !
अति अभिमानी धन-यौवन का, मित्र तुम्हारा मन है ;
विषय-वासना-लिप्त, कलंकित, पापपूर्ण जीवन है।

(७)

"संयम-हीन शरीर तुम्हारा रोग-ग्रस्त अपकारी ;
मुझे बुलाने को है भाई, यही पुकार तुम्हारी।
अस्त्र-शस्त्र-सज्जित सेना से रक्षित राजमहल में,
तोपों से नित सावधान अति दुर्गम सैनिक दल में।

(८)

"सागर की छाती पर, गिरि पर, सूने में, हलचल में,
सिंहों के घर में, कुंजों में, मरुस्थलों में, जल में,
रोक-टोक आने-जाने का मुझको कहीं नहीं है ;
आवश्यकता मुझे सूचना देने की न कहीं है।

(९)

"ऐ सुखदास, सुनो, मैं जाता हूँ जिस दिन उपवन में,
मच जाती है एक भयानक हलचल जड़-चेतन में।
गिरा-गिराकर फूल नाम के आँसू तरु रोते हैं ;
नोच-नोचकर पक्षी अपने पर व्याकुल होते हैं।

(१०)

"धन-यौवन के मद में तुमको मेरा तनक न डर है ;
चलो, देर मत करो, ठहरने का न मुझे अवसर है।"
सहम गया सुखदास काल की सुनकर निर्भय वाणी ;
होते हैं डरपोक प्रकृति के प्रायः विषयी प्राणी।

(११)

वह था जेंटलमैन, सँभलकर शीघ्र होश में जागा ;
सोचा, बातों में न फँसेगा क्या यह काल अभागा ?
बोला—"सच है, काल, मिली है तुमको शक्ति निराली,
निमिष-मात्र में कर सकते हो तुम इस तनु को ख़ाली।

(१२)

"पर तुम एक बार क्षण-भर भी सोचो अपने मन में,
अभी कौन-सा सुख भोगा है मैंने इस जीवन में ?
धन-यौवन से सुख पाने का अभी समय है आया ;
मित्रों से आनंद-प्राप्ति का अब अवसर है पाया।

(१३)

"मैंने नया विवाह किया है, आज वही उत्सव है ;
गृह-सुख, बाल-विनोद आदि का कहाँ हुआ अनुभव है ?
फिर भी मुझको ले जाने को तुम इतने आतुर हो !
काल, सच कहो, तुम क्यों ऐसे वज्रहृदय निष्ठुर हो ?

(१४)

"तुमने कभी खिले फूलों को देखा है उपवन में ?
तो भी क्या कुछ कोमलता उपजी न तुम्हारे मन में ?
मुझे छोड़ दो, दान, पुण्य, व्रत, धर्म-कर्म कुछ कर लूँ ;
जग में आया हूँ, तो जग के सुख से भी मन भर लूँ।

(१५)

"धर्म-पुण्य का मैंने अब तक कुछ न प्रयत्न किया है ;
विषय-वासना ही में यौवन, धन सब सौंप दिया है।

घरवालों का, उद्यम का, परलोक प्राप्त करने का,
कुछ प्रबंध कर लेने दो, तब भय न रहे मरने का।"

(१६)

सुनकर कहा काल ने "अच्छा, ऐ सुखदास तुम्हारी—
विनय मान लेता हूँ मैं, तुम बनो पुण्य-अधिकारी।
एक नहीं, मैं पाँच सूचना देकर अब आऊँगा;
आशा है, तैयार उस समय मैं तुमको पाऊँगा।

(१७)

"अब तो तुम पाषाण-हृदय, निर्दयी मुझे न कहोगे?
जाता हूँ; आशा है, अंतिम दिन तैयार रहोगे।"
काल गया, सुखदास लौटकर मित्र-वर्ग में आया;
प्रमुदित हुआ कि आज काल को कैसा मूढ़ बनाया!

(१८)

क्षण-भर में क्षण-भर पहले की सारी बात बिसारी;
फिर आमोद-प्रमोद परस्पर हुए पूर्ववत् जारी।
निर्भय हो सुखदास समय विषयों में लगा बिताने;
राग-द्वेष-वश उसने कुत्सित कर्म किए मनमाने।

(१९)

जगदीश्वर ने दिए कई अवसर उसके जीवन में;
पर कुछ भी चेतना न उपजी उस लंपट के मन में।
कई दिनों से भूख-प्यास से विकल एक घरवाले,
बैठे थे असहाय दशा में, कोई पुण्य कमा ले।

(२०)

जगदीश्वर थे बाट जोहते, पर सुखदास न आया;
मछली के शिकार में उस दिन वह था बहुत लुभाया।
निस्सहाय, धन-हीन, दुखों से जर्जर एक निबल की,
मार्ग-पतित असमर्थ व्याधि से पीड़ित एक विकल की,

(२१)

ईश्वर ने आहें लाकर उसके कानों में डाली;
सुख में विघ्न समझकर उसने और शराब चढ़ा ली।
ग़रीबिनी थी एक, साथ थे बच्चे कई अभागे;
हरि ने लाकर खड़े किए सुखदास मूढ़ के आगे।

(२२)

दुखिया के आँसू बनकर हरि ने निज रूप दिखाया;
पर सुखदास देखकर उसको नौकर पर झुँझलाया।
हरि अवसर देते थे उसको सदुपदेश करने का;
वह कहता था, भला मुझे अवकाश कहाँ मरने का!

(२३)

इस प्रकार निश्चिंत मूढ़-सा उसने समय बिताया;
राग-रंग में उसे काल का ध्यान भी नहीं आया।
अंग शिथिल हो गए, कामना गई न उसके मन से;
भला किसी का हो न सका उसके समस्त जीवन से।

(२४)

एक दिवस बैठा था सुख से वह प्रमोद-कानन में;
आ पहुँचा फिर काल वहीं तत्काल निकुंज-भवन में।
"अहो, मित्र सुखदास! समय तो भली भाँति से बीते?
इस संसार परीक्षा-स्थल में तुम हारे या जीते?"

(२५)

"कहो क्या हुए सिर के सुंदर काले बाल तुम्हारे?"
"जी हाँ, चालिस बरस हुए, ये श्वेत हो गए सारे।"
"मित्र, एक भी दाँत नहीं मुँह में अब तो दिखता है।"
"जी हाँ, बीस-पचीस बरस से उनका भी न पता है।"

(२६)

"टाँगों में क्या हुआ? कमर क्यों तन न सँभाल रही है?"
"जी हाँ, पंद्रह वर्ष हुए, इनमें भी शक्ति नहीं है।"
"सुनते हो कम, मुझे जान पड़ता है, बहुत दिनों से।"
"जी हाँ, कुछ ऊँचा सुनता हूँ दस-बारह बरसों से।"

(२७)

"आँखों में भी तेज नहीं है; धुँधलापन है छाया।"
"जी हाँ, पाँच बरस से; यह सब ईश्वर की है माया।"
"अच्छा, हो तैयार? तुम्हें ले चलने को हूँ आया।"
सुनते ही सुखदास चकित, पीड़ित-सा हो घबराया।

(२८)

कहने लगा—"हाय! मैंने तो कुछ भी की न तयारी;
बातों-ही-बातों में मैंने उम्र बिता दी सारी।"
समय-चातुरी से धीरज धर फिर उसने की आशा;
बातों ही से पिंड छुड़ाने की उपजी अभिलाषा।

(२९)

कहा, "महाशय काल, निठुर तुम हो, यह विश्वविदित है;
पर झूठे भी हो, इस गुण से जगत नहीं परिचित है।
पाँच सूचनाएँ देकर तब तुम्हें चाहिए आना;
एक सूचना भी न मिली, तुम आ धमके मनमाना।"

(३०)

सुनकर युक्ति काल के मुख पर कुछ मुसकाहट आई;
बोला—"ऐ सुखदास, सूचना पाँचों तुमने पाई।

है पहली सूचना सफ़ेदी बालों पर फिर जाना ;
तथा दूसरी, दाँतों का है टूट-टूट गिर जाना ।

(३१)

"और तीसरी, टाँग और कटि का निर्बल हो जाना;
चौथी है सूचना, कान का निर्गुण हो सा जाना ।
और पाँचवीं है, आँखों में धुँधलापन छा जाना ;
तुमने इन पाँचों का मिलना स्वयं अभी है माना ।

(३२)

"चलो, उठो, अब मैं न सुनूँगा कोई नया बहाना ;
समय हाथ से निकल गया, अब निष्फल है पछताना !"
व्यथित हुआ सुखदास, कर सका कुछ न प्रबंध किसी का,
साथ रहे अरमान लगा जब धक्का काल बली का ।

(३३)

काल पकड़ ले गया, गया सुखदास बहुत पछताता ;
किंतु गया वह एक सुखद उपदेश हमें बतलाता—
"रात बीत जाती है केवल निद्रा और व्यसन में ;
दिन पर-निंदा, राग-द्वेष, अभिमान, उदर-पालन में ।

(३४)

सोचो मित्र, आत्म-चिंतन का समय कहाँ रह जाता ;
हीरा-सा यह जीवन है कौड़ी के बदले जाता ।
काल सदा है सावधान, हम ग़ाफ़िल क्यों सोते हैं ?
क्यों न उच्च जीवन धारणकर काल-जयी होते हैं ?"

रामनरेश त्रिपाठी

"व्रज-माधुरी-सार"*

(आलोचना)

इस पुस्तक में व्रज-भाषा के कुछ कवियों पर आलोचनात्मक लेख हैं । उनकी कविताओं का संग्रह भी है । फुटनोटों में, टिप्पणियाँ देकर, बहुतेरी कविताओं में आनेवाले कुछ शब्द आदि भी समझाए गए हैं । आरंभ में २८ पृष्ठ का एक वक्तव्य है, और अंत में सहायक ग्रंथों की एक सूची भी । कुल २६ कवियों का वर्णन है । ग्रंथ का प्रारंभ महात्मा सूरदासजी से होता है । सबके अंत में स्वर्गीय सत्यनारायणजी (कविरत्न) का परिचय है ।

पुस्तक के नाम को देखते यह जान पड़ता है कि इसमें व्रज-भाषा के सभी नामी-नामी कवियों की चुनी हुई रचनाएँ होंगी ; पर बात ऐसी नहीं है । पृष्ठ २४३ में लिखा है—"हमने (लेखक ने) व्रज-माधुरी-सार में उन्हीं कवियों को स्थान दिया है, जिनका व्रज अथवा व्रज-भाषा से संबंध रहा हो, जो भगवत्-रस-माधुरी के मधुव्रत हों..." इत्यादि । तो क्या सभी बड़े-बड़े वैष्णव कवियों की मधुरता-परिपूर्ण रचनाओं को इस पुस्तक में स्थान मिला है ? यह भी नहीं है ; क्योंकि लेखक ने, प्रस्तुत पुस्तक में, २४वें पृष्ठ पर लिखा है—"व्रज-साहित्य के उसी सर्वोत्कृष्ट अंश का संकलन किया है, जिसमें श्रीराधा-कृष्ण के विशुद्ध शृंगार और प्रेमपरा भक्ति का विशद वर्णन किया गया है ।" इस संग्रह में केशव, बलभद्र, चिंतामणि, मतिराम, तोष, दास, रघनाथ, बनी प्रबीन, बेनी, आलम, भूपति, सेवक आदि कवियों को स्थान न मिलने का कारण, लेखक की राय में, यह है कि इन कवियों को 'भगवत्-रस-माधुरी का मधुव्रत' नहीं कह सकते । और, श्रीतुलसी तथा सेनापति आदि को सम्मिलित न करने का कारण यह है कि उन्होंने श्रीकृष्ण और श्रीराधा के विशुद्ध शृंगार का वर्णन नहीं किया । नहीं जानते, श्रीव्रजवासीदास का बहिष्कार क्यों हुआ । संभव है, उनके काव्य में 'व्रज-साहित्य का सर्वोत्कृष्ट अंश' संकलन के लिये उपलब्ध न हुआ हो । परंतु 'कविता की दृष्टि से बहुत ऊँचा ग्रंथ' (पृष्ठ १३२) न लिखने पर भी श्रीभट्टजी को स्थान मिला है, तथा 'कविता के बाहरी चमत्कार के न रहते' (पृष्ठ १०४) भी स्वामी हरिदासजी का सत्कार किया गया है । मीराबाई का भी नाम नहीं है । बहुत विचार करने पर भी हमारी समझ में न आया कि मीराबाई क्यों अलग रक्खी गईं । श्रीविहारीलाल ने कुछ भक्ति-संबंधी दोहे अवश्य लिखे हैं, पर उनकी अधिकांश कविता में तो परकीया और गणिका ही का वर्णन है । फिर भी वह भक्त माने गए, और व्रज-माधुरी-सार में उनको स्थान दिया गया । यदि इन दस-बीस फुटकर दोहों के बदौलत विहारीलालजी श्रीराधा-कृष्ण के भक्त

---

* सुलभ साहित्य-माला का १५वाँ पुष्प । संपादक, श्रीवियोगी हरि । पृष्ठ-संख्या ६३५ ; मूल्य २) रु० । छपाई और काग़ज़ अच्छा । खद्दर-कपड़े की जिल्द बँधी हुई । प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग ।

कहे जा सकते हैं, तो केशव, कुलपति, मतिराम, सोमनाथ, दास, आलम, भूपति, पद्माकर और तोष को भी उसी श्रेणी के भक्तों में स्थान मिलना चाहिए। किंतु समालोच्य पुस्तक में ऐसा नहीं किया गया। कहने का तात्पर्य यह कि पुस्तक का नाम कुछ भ्रामक-सा है। पुस्तक में किन कवियों को स्थान मिलना चाहिए था, तथा किनको मिला है, इस विषय में भी मत-भेद की पूरी गुंजाइश है। हमारी अपनी राय यह है कि पुस्तक का नाम 'अतिव्याप्ति' का परिचायक है। उसमें, कवियों को स्थान देने में, किसी निर्धारित नीति का अनुसरण नहीं किया गया; बल्कि मनमानी नीति का प्राधान्य है। इसके अतिरिक्त, धार्मिक संप्रदाय-विशेष के कवियों की कविता का अलग संग्रह करना लेखक की संकुचित प्रवृत्ति की सूचना देता है।

शिवसिंह-सरोज, Modern vernacular literature of Hindustan तथा मिश्र-बंधु-विनोद आदि ग्रंथों के आधार पर ही यह संग्रह-ग्रंथ लिखा गया है। केवल श्रीराधा-कृष्ण के उपासक वैष्णव कवियों की उक्तियों का संग्रह होने के कारण यह पुस्तक व्रजभाषा-काव्य के एक ही अंश का दिग्दर्शन कराती है। कवियों के चुनाव के विषय में ऊपर लिखा जा चुका है कि मत-भेद की जगह है। उसके विषय में हमें यहाँ कुछ नहीं कहना। परंतु संग्रहकार ने अपने वक्तव्य के पृष्ठ १७ पर जो कुछ लिखा है, वह विचारणीय है। संपादक महोदय लिखते हैं—"रसराज शृंगार दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—दिव्य और अश्लील अथवा प्राकृत और अप्राकृत। दिव्य शृंगार के परिपोषक सूर, हितहरिवंश, स्वामी हरिदास, गदाधर भट्ट, व्यास, रसखानि, ध्रुवदास, नागरीदास, ललितकिशोरी, भगवत रसिक, हरिश्चंद्र आदि तथा अश्लील शृंगार के प्रचारक मतिराम, सुखदेव, कुलपति, बलभद्र, पजनेश, बोधा, पद्माकर, ग्वाल, द्विजदेव आदि हैं। विहारी और देव का दोनों ही वर्गों में प्रवेश है" इत्यादि। हमारी राय में, ऊपर जो विभाग किया गया है, वह ठीक नहीं है। पहले तथा दूसरे, दोनों ही विभागों के कई कवि विहारी और देव ही के समान अश्लील शृंगार की कविता करनेवाले कहे जा सकते हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्रजी वैष्णव थे, यह ठीक है; पर "यहि पाखै पतिव्रत ताखै धरौ" (२६२)-जैसी उक्तियों के रचयिता को अकेले दिव्य विभाग में रखना हमें ठीक नहीं समझ पड़ता। हमारी राय है कि स्वकीया-नायिका के स्वाभाविक तथा आदर्श प्रेम का वर्णन करनेवाले कवि भी दिव्य शृंगार के रचयिता कहे जा सकते हैं; और इसीलिये मतिराम, पद्माकर, कुलपति आदि कई कवियों की वैसी सूक्तियों को दिव्य शृंगार के अंतर्गत न मानना असंगत होगा।

केवल वैष्णव होने से किसी कवि को दिव्य शृंगार का रचयिता नहीं माना जा सकता। वैष्णव कवि की कविता में भी अश्लीलता पाई जा सकती है। उसी प्रकार वैष्णवेतर कवि भी दिव्य शृंगार के रचयिता होते हैं। कविता की उत्तमता की कसौटी उसके हृदय पर होनेवाले प्रभाव तथा कला का उत्कर्ष है। किसी धर्म-विशेष से संबंध रखने के कारण ही कोई कविता उत्तम हो, यह व्यापक नियम नहीं स्थापित किया जा सकता। खेद के साथ कहना पड़ता है कि 'व्रज-माधुरी-सार' के संपादक ने अपने इस संग्रह में श्रीराधा-कृष्ण के भक्त अनेक कवियों को, कविता के उत्कर्ष की दृष्टि से नहीं, केवल वैष्णव होने के कारण ही स्थान दिया है। फिर भी संग्रहकार ने इन सब कवियों को 'महाकवि' मान लिया है; क्योंकि उनका स्पष्ट कथन है कि "प्रस्तुत ग्रंथ में मैंने सूरदास से लेकर सत्यनारायण तक २६ महाकवियों के पद्यों का संक्षिप्त संग्रह किया है।" (पृष्ठ २६)। श्रीसत्यनारायण तथा अन्य कई कवियों को महाकवि कहना उनकी स्तुति भले ही हो, पर उसका औचित्य भी मानने के लिये कम-से-कम हम तो तैयार नहीं हैं।

यह परम संतोष की बात है कि अब धीरे-धीरे हिंदी के प्राचीन कवियों का समय-निरूपण अच्छे ढंग से होता जाता है। इस संबंध में प्राचीन इतिहास-लेखकों ने जो काम कर रक्खा है, उसी का फल इस समय फल रहा है। इस समय के उद्योग का फल भविष्य में होगा। ज्यों-ज्यों खोज का काम बढ़ रहा है, त्यों-त्यों नित्य नई बातें मालूम होती जाती हैं। अनेक पुराने मत बदल गए हैं। बहुत-सी किंवदंतियाँ विशुद्ध ऐतिहासिक बातें प्रमाणित हुई हैं। और, जो बहुत सी बातें पहले ध्रुव सत्य समझी जाती थीं, उनका अब ऐतिहासिक आधार तक

नहीं मिल रहा है। मतलब यह कि खोज का काम सुचारु रूप से हो रहा है। व्रज-माधुरी-सार के लेखक ने, उक्त पुस्तक में आनेवाले कवियों के समय-निरूपण में, खोज से जो नई बातें मालूम हुई हैं, उनसे लाभ उठाया है। यह अच्छी बात है। इससे कई कवियों का समय वह नहीं रह जाता, जो पहले माना गया था। फिर भी अभी कोई बात निश्चय-पूर्वक नहीं कही जा सकती। एक बात हमें खटकती है। वह यही कि पूर्ववर्ती इतिहास-लेखकों से जहाँ पर माधुरी-सार के संपादक का मतभेद हुआ है, वहाँ उन्होंने उन पूर्ववर्ती लेखकों पर व्यंग्य-पूर्ण वचनावली का प्रयोग किया है। यह नीति गंभीर लेखन-शैली के प्रतिकूल है। साहित्यिक आलोचना में तो ऐसे कथन बहुत ही खटकते हैं। संपादकजी को यह शिकायत है कि "वैष्णव कवियों के समय का निर्णय करने में पूर्ववर्ती इतिहास-लेखकों ने परिश्रम नहीं किया, विशेष छान-बीन नहीं की। कम-से-कम वैष्णव-संप्रदाय के आचार्यों से यदि पूछ लिया गया होता, तो मतभेद का अवसर ही न आता।" यही उनकी राय है। ऐसा हो सकता है; पर यह भी संभव है कि जाँच करने पर भी, परिस्थिति और साधन की अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता से, यथार्थ बात का निर्णय न हो सका हो। हिंदी-कविता के इतिहास-लेखकों में कई ने आज़मशाह को औरंगज़ेब का बड़ा लड़का लिखा है। यह भूल परंपरागत रूप से पूर्ववर्ती और परवर्ती, सभी लेखक करते गए हैं। स्वयं व्रज-माधुरी-सार के लेखक ने भी यह भूल की है। पृष्ठ २६६ में वह लिखते हैं—"इन्होंने ... ... औरंगज़ेब के बड़े पुत्र काव्य-रसिक आज़मशाह को सुनाया।" पर आज़मशाह औरंगज़ेब का बड़ा पुत्र न था। संपादकजी औरंगज़ेब के इतिहास को देखकर इस भूल से सहज ही बच सकते थे। औरंगज़ेब के १० बेटी-बेटे थे। सबसे प्रथम ज़ेबुन्निसा (कन्या) का जन्म हुआ था। उसके बाद मुहम्मद का जन्म हुआ। वह पिता के सामने ही मर गया। उसके बाद मुअज़्ज़म का जन्म हुआ। औरंगज़ेब के बाद, बहादुरशाह के नाम से, यही बादशाह हुआ। इससे छोटी तीन लड़कियाँ और थीं। उनसे छोटा आज़म था। उसके दो और छोटे भाई और एक छोटी बहन थी। अतः यह स्पष्ट है कि आज़म तीसरा पुत्र था। परंतु क्या यह उचित होगा कि वियोगी हरिजी के परवर्ती लेखक उनकी इस ऐतिहासिक भूल के लिये उन पर व्यंग्य-पूर्ण वचनावली का प्रयोग करें?

इधर दो वर्ष में महाकवि देव तथा विहारी की कविता पर अनेक आलोचनाएँ लिखी गई हैं। इससे उभय कविवरों की कविता से सर्वसाधारण का परिचय बढ़ गया है। कुछ लेखक देव को विहारी से बढ़कर मानते हैं, तो कुछ विहारी को देव से बढ़कर। इन भिन्न प्रकार के मतों का समर्थन अथवा खंडन उपर्युक्त आलोचनाओं में हुआ है। व्रज-माधुरी-सार के लेखक ने भी इन दोनों कवियों—देव और विहारी—में कौन बड़ा है, इस संबंध में अपना मत दिया है। उक्त पुस्तक के पृष्ठ २७१ पर आपने लिखा है—"वह (देव की कविता) केशव और विहारी से भी आगे नहीं बढ़ सकती है।" अर्थात् देव का नंबर केशव और विहारी के बाद है। इस बात को पृष्ठ २७० पर लेखक ने और भी स्पष्ट रूप से लिखा है। वह वाक्य यह है—"महाकवि विहारीलाल के बाद भाव-व्यक्तीकरण में इन्हीं (देव) का स्थान है।" देव की कविता विहारी की कविता से क्यों घटकर है, इसके कारण कदाचित् लेखक ने निम्न-लिखित वाक्यों द्वारा प्रकट किए हैं—

(१) "इन्होंने शब्दों का तोड़-मरोड़ बुरी तरह से किया है।" (पृष्ठ २७०)

(२) "देवजी ने अपनी प्रखर प्रतिभा के प्रताप से पूर्ववर्ती सुकवियों के कई भाव ज्यों-के-त्यों उठाकर अपनी रचनाओं में रख दिए हैं।" (पृष्ठ २७१)

(३) "यह भी नहीं कहा जा सकता है कि इनके ग्रंथ बिलकुल निर्दोष हैं।" (पृष्ठ २७१)

(४) "इनके छंद प्रायः जटिल हैं और दूसरे गूढ़ोक्तियों के कारण वे दुर्बोध-से हो गए हैं।" (पृष्ठ २७२)

उपर्युक्त कारणों के संबंध में निवेदन यह करना है कि शब्दों की तोड़-मरोड़ और पूर्ववर्ती कवियों के भाव अपनाने में विहारी का नंबर देव से कहीं आगे है। विहारी की कविता भी सर्वथा निर्दोष नहीं है। जटिलता और दुर्बोध होने की बात तो दोनों कवियों की कविता के जो उदाहरण उद्धृत किए गए हैं, उन्हीं से मालूम पड़ सकती है। यदि व्रज-माधुरी-सार में उद्धृत देवजी के पद्य विहारीलाल के पद्यों की अपेक्षा अधिक जटिल और दुर्बोध होते, तो संपादकजी उन्हीं पर अधिक टीका-टिप्पणी करने को विवश होते। पर

बात ऐसी नहीं है। पाठकगण दोनों कवियों के पद्यों को पढ़कर देख सकते हैं कि विहारीलाल ही के दोहों पर अधिक टीका-टिप्पणी की गई है। कदाचित् वियोगी हरिजी को यह रुह्य नहीं है कि कोई देवजी को विहारीलाल से बढ़कर लिखे; क्योंकि आप हमारी 'देव और विहारी'-नामक आलोचना के द्वारा हिंदी-साहित्य की हत्या होने * की बात कहते हैं। यह धारणा हमें इस कारण हुई कि उक्त पुस्तक में हमी ने देव और विहारी की तुलना की है। तुलनात्मक समालोचना की उपयोगिता वियोगी हरिजी मानते ही हैं। महा-कवियों से विहारी की तुलना करने की सलाह भी आपने श्रीपद्मसिंहजी को दी है †। अतः हमारी तुलना का विषय तो माधुरी-सार के लेखक को पसंद ही है। ऐसी दशा में, हो-न-हो, हमारा देव को विहारी से बढ़कर लिखना ही संभवतः साहित्य-हत्या का कारण हो गया हो। हम वियोगी हरिजी के बड़े ही कृतज्ञ होंगे, यदि वह हमें "देव और विहारी" में ऐसे कथन दिखलावें, जिनसे यह प्रमाणित हो सके कि हमने कहीं पर भी महाकवि विहारीलाल के साथ अन्याय किया है। पाठकगण सच समझें, यदि हमें अपने ऐसे कोई कथन मिलेंगे, तो हम केवल उन्हें वापस ही न लेंगे, बल्कि उनके लिये खेद भी प्रकट करेंगे। परंतु जब तक ऐसा नहीं किया जाता, तब तक वियोगी हरिजी जिसे साहित्य-हत्या मानते हैं, उसे हम साहित्य-सेवा समझते हुए जारी रक्खेंगे; क्योंकि बड़े-बड़े विद्वानों (श्रीरत्नाकर, श्रीभानु, श्रीश्रीधर पाठक श्रीश्याम-सुंदरदास आदि) ने हमें ऐसी ही आलोचनाएँ लिखने का सत्परामर्श दिया है। साथ ही पटना-विश्वविद्यालय ने उस आलोचना को बी० ए० ऑनर्स कोर्स में नियत करके हमारा उत्साह भी बढ़ाया है।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, ब्रज-माधुरी-सार के देववाले निबंध में देवजी के कई दोषों को दिखलाकर लेखक ने देव और विहारी की तुलना करनेवालों को गंभीरता-पूर्वक यह सलाह दी है कि "तुलना का काम बड़ा कठिन है। सहसा किसी को इतना ऊँचा (चे ?) चढ़ा देना, और किसी को इतना नीचा (चे ?) गिरा देना न्याय-संगत नहीं है" इत्यादि। (पृ० २७२)। इस पर विचार करने की बात यह है कि सहसा देव को किसी ने विहारीलाल से बड़ा नहीं कह दिया है। भारतेंदुजी की यही राय थी। स्व० सुकवि बदरीनारायणजी चौधरी भी यही कहते थे। सुकवि सेवक और कविवर अयोध्याप्रसादजी वाजपेयी (औध) आदि का भी यही मत था। रत्नाकरजी, भानुजी, शालग्राम शास्त्रीजी आदि विद्यमान विद्वान् भी, कम-से-कम, देव को विहारी से घटकर नहीं मानते। वियोगी हरिजी भी विहारी के बाद देव ही को मानते हैं। ऐसी दशा में, देव को विहारी से बढ़कर बतलाना न तो सहसा किसी को गिराना है, न किसी को बढ़ाना। ऐसे कथनों से केवल एक ही बात की सूचना मिलती है, और वह यह है कि कुछ लोगों को देव का उत्कर्ष असह्य है। ब्रज-माधुरी-सार में विहारीलाल पर जो निबंध दिया गया है, उसमें उक्त कवि के किसी दोष की ओर पाठकों का ध्यान नहीं आकर्षित किया गया; न टिप्पणियों ही में कहीं कोई ऐसी बात आने पाई है। आश्चर्य है कि जो लेखक श्रीपद्मसिंहजी शर्मा को संजीवन-भाष्य में विहारी के दोष भी दिखलाने की सलाह दे, वही स्वयं अपनी पुस्तक में इस सलाह की उपेक्षा करे।

हर्ष है कि इसमें कुछ साधारण कवियों की कविता को छोड़कर शेष महाकवियों की कविताओं का संग्रह अच्छा दिया गया है। छंदों का चुनाव सुंदर है। अधिकतर पाठ भी शुद्ध दिए गए हैं। फिर भी कहीं-कहीं छपाई की त्रुटि से, अथवा संपादक की असावधानी से, छंदोभंग-दोष झलक रहा है। उदाहरण के लिये देखिए—

"राधा नव जीवन बिलास को बसंत जहाँ,
अंग-अंग रंगन बिकास ही की भीर है।
* * *
स्वेद मकरंद और मनोरथ मधुप पुंज,
मंजु बृंदाबन और जमुना के तीर है।"

---

* "देव-विहारी आदि तुलनात्मक आलोचनाओं से वृथा पक्षपात के कारण साहित्य-हत्या हो रही है।"

† "भूमिका-भाग में लेखक ने सूर, तुलसी, (पृष्ठ २७१) कबीर प्रभृति महाकवियों से तुलना नहीं की है। यह कमी है, जिसे लेखक किसी अगले संस्करण में पूर्ण कर सकता है।"—श्रीधर पाठक, रामदास गौड़, वियोगी हरि। (सम्मेलन-पत्रिका भाग १०, अंक ८-९, पृष्ठ ४१२)

पहले पद में ३१ अक्षर हैं, तो चौथे में ३२। अंतिम पद के 'और' को 'औ' कर देने से यह दोष सहज ही दूर हो सकता है। और भी देखिए—

"चहूँ ओर सुंदर, सवन बन देखियत,
कुंजन में सुनियत 'सु' गुंजनि अलीन की।"

इसमें 'सु' व्यर्थ ही बढ़ा दिया गया है। इसको निकाल डालने से छंदोभंग नहीं होता, और न अर्थ ही में कुछ गड़बड़ होती है। शुद्ध पाठ में 'सु' का प्रयोग हुआ भी नहीं है।

छंदोभंग आदि दोषों के अनेकों उदाहरण उन कवियों की कृतियों में भी मौजूद हैं, जिनको, वैष्णव कवि होने के कारण महाकवि की पदवी देकर, व्रज-माधुरी-सार में स्थान दिया गया है। ये छंदोभंग पिंगल के नियमों का पालन न कर सकने के कारण स्वयं कवियों द्वारा हुए हैं। इसलिये उनका उत्तरदायित्व संपादकजी पर नहीं है।

पद्यों पर संपादकजी ने जो टिप्पणियाँ लिखी हैं, उनसे उनके गहरे अध्ययन तथा गंभीर विचार का पता नहीं चलता। कहीं-कहीं पर तो उन्होंने पद्य के प्रसंग पर ध्यान दिए विना ही टिप्पणी लिख दी है। पर ऐसे स्थल बहुत नहीं हैं। साधारणतः टिप्पणियाँ अच्छी हैं। टिप्पणियों के अनौचित्य-संबंधी कुछ उदाहरण लीजिए। पृष्ठ २७३ में,—

(१) "पारावार पूरन, अपार, परब्रह्म-रासि,
जसुदा के कोरे एक बारक कुरै परी।" *

इस पद्यांश में संपादकजी ने 'कोरे' का अर्थ 'कोने' किया है। इस अर्थ में चमत्कार नहीं है। कोण-शब्द से कोर बना है, यह ठीक है; पर ऊपर के पद्यांश में जो 'कोरे' आया है, वह दूसरा ही अर्थ रखता है। वह संस्कृत के 'क्रोड़' शब्द से बना है। 'ड़' का परिवर्तन 'र' के रूप में हो गया है। पीड़ा, करोड़ आदि शब्द पीरा, करोर आदि रूप में जिस प्रकार व्यवहृत होते हैं, उसी प्रकार 'क्रोड़' का रूप 'क्रोर' हो जाता है। फिर जैसे 'क्रूर' आदि शब्दों को व्रज-भाषा में 'कूर' आदि लिखते हैं, उसी प्रकार 'क्रोर' से 'कोर' बन गया है। 'क्रोड़' का अर्थ गोद है, और यहाँ 'कोर' भी उसी अर्थ में व्यवहृत हुआ है। इसी अर्थ में चमत्कार भी है। यशोदा की गोद में परब्रह्म-राशि के आ जाने की सूचना देनेवाला अर्थ ही समीचीन है। यशोदा के कोने में परब्रह्म-राशि डाल दी गई, यह अर्थ कोई विशेषता नहीं रखता। संपादकजी ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया। इसी पद्य में व्यवहृत 'कुरै परी' को वियोगी हरिजी बुँदेलखंडी बतलाते हैं; पर ऐसा तो हमारे अवध में भी इसी अर्थ में बोला जाता है।

(२) "फटिक सिलानि सों सुधारयो सुधा-मंदिर,
उदधि दधि को-सो अधिकाई उमँगे अमंद।"
(पृ० २८३)

उद्धृत अंश में सुधा का अर्थ संपादकजी ने अमृत किया है। पर प्रसंग देखने से स्पष्ट जान पड़ता है कि यहाँ पर सुधा-मंदिर से सुधा-धवलित मंदिर या चूने से पुते हुए मकान का अभिप्राय है। सुधा का एक अर्थ संस्कृत-कोशों के अनुसार चूना भी है, और इस अर्थ में संस्कृत के कवियों ने इसका प्रयोग भी किया है।

(३) "आसा त्रिसनासी, बहू-बेटी लै निकसि भाजी,
माया-मेहरी पै देहरी पै न रहि परयो।"
(पृ० २९०)

ऊपर जिस मेहरी-शब्द का प्रयोग हुआ है, उसका अर्थ संपादकजी ने दासी किया है। पर हमारी राय में उसका अर्थ 'स्त्री' है। मेहरी, मेहरिया, मेहारू, मेहरारू आदि शब्द पर्यायवाची हैं, और इनका प्रचलित अर्थ स्त्री है। स्त्री-स्वभाववाले पुरुष को 'मेहरा' कहते हैं। वह इसी शब्द से बना है। प्रसंगानुकूल यहाँ पर 'मेहरी' का अर्थ 'घर की मालकिन' है; अर्थात् घर की मालकिन बहू-बेटी को लेकर घर से निकल पड़ी। वियोगी हरिजी ने कदाचित् 'मेहरी' को महरी (कहारी) का पर्याय मानकर उसका दासी अर्थ कर डाला है। उन्होंने इस बात पर बिलकुल ध्यान ही नहीं दिया कि प्रसंग से कौन अर्थ ठीक बैठता है।

कहीं-कहीं पर कठिन शब्द का अर्थ तो किया नहीं गया, पर सरल शब्द पर टिप्पणी लिखी गई है। देखिए—

---

* "पारावार पूरन अपार परब्रह्म-रासि
जसुदा की गोदी एक बारक कुरै परी।"

यह पाठांतर भी है। स्वर्गीय श्रीबदरीनारायणजी चौधरी को यही पाठ याद था।—लेखक

(४) "रैनि साँई दिनु, इंदु दिनेस,
जुन्हाई है घाम घनो विषघाई ।

*　　*　　*

बाहर भीतर भ्वैहरै ऊन,
रह्यो परै देव सु पूछन आई ।"

उक्त पद्य में, हमारी राय से, साधारण पाठक की समझ में 'भ्वैहरै ऊन' के समझने में ही सबसे अधिक कठिनता होगी । पर टिप्पणी-लेखक ने उस पर कुछ नहीं लिखा । 'जुन्हाई' का अर्थ 'चाँदनी' बहुत ही सरल है ; फिर भी उसका अर्थ किया गया है । देव-संबंधी वे सभी छंद, जो इस पुस्तक में पाए जाते हैं, हमारी 'देव और विहारी'-नामक पुस्तक तथा 'देव की दिव्य दृष्टि'-नामक लेख में मौजूद हैं । ऊपरवाला छंद भी हमारी पुस्तक में है । उसमें जिस रूप में 'भ्वैहरै ऊन' दिया है, ठीक उसी रूप में वियोगी हरिजी ने भी दिया है । प्रेस-मिस्टेक के कारण हमारी पुस्तक में शब्द के खंड हो गए हैं, जिससे भ्रम होता है । यह इस प्रकार छपना चाहिए—'भ्वैहरैऊ न रह्यो परै ।" इसका अर्थ है कि भ्वैहरे में भी नहीं रहा जाता । भ्वैहरा या भुँइहरा का अर्थ तहख़ाना है । यह स्पष्ट है कि इस शब्द पर अवश्य टिप्पणी होनी चाहिए थी ।

महाकवि देव के छंदों पर जो टिप्पणियाँ लिखी गई हैं, उनमें हमें अनेक भूलें दिखलाई पड़ीं । इन टिप्पणियों में देवजी के पूर्ववर्ती कवियों की तत्तुल्य भाववाली कई उक्तियाँ उद्धृत की गई हैं ; पर श्रीविहारीलालजी के दोहों पर जो टिप्पणियाँ हैं, उनमें ऐसे तत्तुल्य भाव नहीं दिखलाए गए । देवजी के एक छंद का अंतिम अंश है—"तेरी अनीति तुही सहि रे मन ।" इस पर यह टिप्पणी लिखी गई है—"यह तेरी का प्रयोग व्याकरण-विरुद्ध है । ऐसा नहीं बोला जाता है कि तू तेरी अनीति सह ले, बल्कि 'तू अपनी अनीति सह ले ।' (पृष्ठ २६२) इस संबंध में निवेदन है कि यह वाक्य व्याकरण-विरुद्ध तो नहीं है । हाँ, आजकल की प्रचलित खड़ी बोली के महावरे के विरुद्ध अवश्य है, यद्यपि ऐसे वाक्य, जैसे "देखो ये तुम्हारी बुरी हरकतें अंत में तुम्हीं को दुखदाई होंगी", आज भी सुनने में आते हैं । व्याकरण और महावरा, दो भिन्न-भिन्न विषय हैं । यदि देवजी की उक्ति आजकल के महावरे के विरुद्ध हो, तो इससे यह नहीं कहा जा सकता कि वही वाक्य व्रज-भाषा में भी, जिस समय वह लिखा गया था, महावरे के विरुद्ध था । यही क्यों, हमारी राय में तो प्राचीन हिंदी-कविता की भाषा में वह वाक्य कभी महावरे के विरुद्ध भी नहीं है । देखिए—

(१) "स्वामि गुसाइहिं सरिस गुसांई ;
मोहिं समान मैं स्वामि दोहाई ।"

(तुलसी)

(२) "है बड़भागिनि तो सम तू,
पति को बस राखति है हित वेरी ।"

(गुलाब)

ऐसे ही और अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं । हम तो यही कहेंगे कि आचार्य या तत्तुल्य सत्कवियों की कविता में जो प्रयोग बेरोक-टोक प्रचलित हो, वही महावरा है । 'माधुरी-सार' के वक्तव्य में एक और भी बड़ी विचित्र बात पढ़ने को मिली । संपादक महोदय की राय है कि जो लोग कृष्ण और राधा के साथ 'श्री' और 'जी' नहीं जोड़ते, वे उनके प्रति अश्रद्धा प्रकट करते हैं । इसी प्रकार 'राधा मोहित हो गई'-जैसे वाक्य लिखने के कारण संपादकजी प्रोफ़ेसर वेणीप्रसादजी से असंतुष्ट हैं । आपकी राय है कि अँगरेज़ी की शैली का अनुकरण करके ही कुछ लेखक ऐसे प्रयोगों का प्रचार कर रहे हैं । हमें राधा और कृष्ण के पहले श्री या और कोई सम्मान-सूचक शब्द जोड़ने में कुछ भी आपत्ति नहीं है, तथैव 'राधा मोहित हो गई' के स्थान पर 'श्री-राधिका महारानी मोहित हो गईं' लिखने को भी हम तैयार हैं ; पर पहले ढंग से लिखनेवालों पर हम अश्रद्धा का दोष कभी नहीं लगा सकते । पंजाब में बड़ों के लिये भी आया था आदि प्रयोग होते हैं । तो क्या ऐसे प्रयोग करनेवाले अपने गुरुजनों का अनादर करने की नियत से ऐसा करते हैं ? उर्दू और बँगला में भी ऐसे प्रयोग होते हैं । प्राचीन समय से हिंदी के लेखक भी ऐसे प्रयोग करते आए हैं । इसलिये वियोगी हरिजी के इस कथन को मानने में हम असमर्थ हैं । उदाहरण लीजिए—

(१) "कहते हैं, अगले ज़माने में विश्वामित्र-नामी एक बड़ा तपस्वी था ।"

(राजा शिवप्रसाद-कृत उर्दू मज़ामीन, १८७३ ई०)

(२) "यह सुनते ही झट कृष्ण को गोद से उतार (यशोदा) उठ धाईं और जाके दूध बचाया।"

(प्रेमसागर, लल्लूलाल-कृत, १८८१ ई०)

(३) "काव्यालंकार ग्रंथ का कर्ता 'रुद्रट' भी महाराजा भोज से पहले हुआ है।"

(जसवंत-जसोभूषण, मुरारिदान, १८६७ ई०)

उक्त उदाहरणों से पाठकगण जान सकते हैं कि प्राचीन लेखक भी 'श्री' या 'जी' नहीं लगाते थे। उनको अश्रद्धालु कहना ठीक नहीं।

एक ही कवि को दो आलोचक भिन्न-भिन्न दृष्टि से देख सकते हैं। वही कवि एक आलोचक को सेनापति का समकक्ष समझ पड़ सकता है, तो दूसरे को सूर का समकक्ष। ऐसी दशा में, यदि दोनों आलोचकों की सम्मतियों पर कोई तीसरा पुरुष विचार करना चाहे, तो वह आलोचकों के दिए हुए उन्हीं कारणों पर विचार करेगा, जिनसे प्रेरित होकर उन्होंने अपनी सम्मति स्थिर की है। जिसके कारण सबल होंगे, उसी का मत मानने को वह तटस्थ व्यक्ति बाध्य होगा। ऐसी दशा में, यदि 'माधुरी-सार' के संपादक का मत अपने पूर्ववर्ती आलोचकों के मत से कुछ कवियों के संबंध में नहीं मिलता, तो उन्हें चाहिए कि वह अपने मत के समर्थन में प्रबल कारण दिखलावें। यों ही दूसरे के श्रेणी-विभाग पर आक्षेप करने से कुछ भी नतीजा न निकलेगा।

अंत में हमें यही कहना है कि 'ब्रज-माधुरी-सार' प्राचीन ब्रज-भाषा-कविता का एक संग्रह-ग्रंथ है। इसमें श्रीराधा-कृष्ण के भक्त वैष्णव कवियों की चर्चा तथा उनकी कविताएँ हैं। पर संग्रह में संपूर्णता नहीं है। कई कवि छूट गए हैं। जिन कवियों को संग्रह में स्थान दिया गया है, वे सभी महाकवि नहीं कहे जा सकते। कविताओं का चुनाव प्रायः अच्छा हुआ है, और पाठ भी अधिकतर शुद्ध है। टिप्पणियाँ अच्छी हैं; पर उनके लिखने में अधिक परिश्रम नहीं किया गया। इस संग्रह पर संप्रदाय-विशेष की छाप है। फिर भी कई महाकवियों की कविताओं का इसमें अच्छा संग्रह है। संपादकजी का उत्साह प्रशंसनीय है।

कृष्णविहारी मिश्र

जातीयता का बीज

लोकोक्ति है कि "जातियाँ शहीदों के खून से बनती हैं।" यह समझना कठिन-सा प्रतीत होता है कि जाति-निर्माण का शहीदी खून से कौन-सा घनिष्ठ संबंध है। इसके उत्तर में, समझाने के लिये, कई उदाहरण दिए जाते हैं। उद्यान में जाकर देखिए, फूल-फल कैसे मनोहर हैं, पत्ते कैसे हरे-भरे हैं। यह सच है कि बाग़-बग़ीचे की रौनक़ फूल-पत्तों से होती है। किंतु, वास्तव में, इन सबको पैदा करनेवाले वे बीज हैं, जिन्होंने ज़मीन की तह में जाकर चुपचाप अपना सर्वस्व खो दिया। उनका बलिदान पहले होता है, बाग़ का रूप पीछे दिखाई देने लगता है। बीज को न कोई जानता है, न कोई देखता। वह हमें इतना छोटा दिखाई देता है कि हम समझते हैं, उसमें क़ुर्बानी का भाव ही नहीं है। जापान-रूस-युद्ध में जापानी सैनिकों ने यही करतब दिखाया। एक क़िले पर धावा करना था। क़िले के बाहर खाईं भरने की आवश्यकता हुई। सब मृतक खाईं में डाल दिए गए। उन पर ज़ख़्मी सैनिक डाले गए। किंतु खाईं न भर पाई, और रास्ता न बन सका। इस पर कई साहसी वीर आप-से-आप मृतकों के साथ लेट गए, ताकि खाईं भर जाय, पुल बन जाय, और उनके साथी खाईं पार करके क़िले पर धावा कर सकें। क़िला जीत लिया गया, और विजय भी हो गई। परंतु विजय-घोषणा जापानी सेना-नायक के नाम पर हुई। तो भी हमें स्मरण रखना चाहिए कि विजय प्राप्त

करनेवाले वे गुमनाम सैनिक ही थे, जिन्होंने अपने जीवित शरीरों को खाई के अर्पण किया, और नाम-इनाम की पर्वा न की।

तार्किक-समुदाय कहता है कि प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक कार्य अपनी इच्छा-पूर्ति के लिये ही करता है। यह दुरुस्त होगा—यह हमारा विषय नहीं है। किंतु इससे एक नियम निकलता है। मनुष्य दो प्रकार के होते हैं—एक वे, जो अपनी मनोकामना को पूर्ण करने के लिये समस्त देश तथा जाति को या अन्य मनुष्यों को कष्ट में डालने के तईं तैयार हो जाते हैं; दूसरे वे, जिन्हें अन्य प्राणियों के दुःख-निवारण के लिये अपने प्राण देने में आनंद मिलता है। इन दो प्रकार के मनुष्यों तथा इनके आनंद-विशेष में आकाश-पाताल का अंतर है।

पहले प्रकार की क़ुर्बानी के उदाहरण तो प्रतिदिन देखने में आते हैं। दूसरे प्रकार का एक उज्ज्वल उदाहरण रोम के उस वृद्ध पादरी का है, जिसने मनुष्य-वध के तमाशे को बंद करने के लिये अपने प्राण दे दिए, और संसार को अपना यथार्थ नाम तक न बताया। प्राचीन काल में, रोमनगर में, बड़ी-बड़ी रंगशालाएँ थीं। सहस्रों मनुष्य उनमें नाटक देखने के लिये इकट्ठे होते थे। एक तमाशा यह भी होता था कि दास, जो तमाशे के लिये सिखाए जाते थे, हाथ में कटारें लेकर मैदान में उतरते और परस्पर एक दूसरे के क़त्ल का प्रयत्न करते थे। एक बार तमाशे में दो दास लड़ाई के लिये निकले। एक वृद्ध, जिसके बाल सफ़ेद थे, अपने स्थान से उठकर उनके बीच में जा खड़ा हुआ। दर्शक चिल्ला उठे—"हट जाओ!—हट जाओ!" पर बूढ़ा पादरी वहीं डटा रहा। लड़नेवालों ने, जिनको बचाने के लिये वह नीचे उतरा था, कटारों से उसका अंत कर दिया। इस पादरी की शहादत का परिणाम यह हुआ कि मनुष्यों की लड़ाई का तमाशा रोम में सदा के लिये बंद हो गया।

यही बात गुरु तेग़बहादुर ने औरंगज़ेब से पीड़ित काश्मीरी ब्राह्मणों से कही थी—जब वह ख़ास गुरु के लिये काश्मीर से चलकर पंजाब आए थे—कि "किसी महात्मा की बलि ही इस मुसलमानी अत्याचार को रोक सकती है।" यह एक पहेली थी, जो आसानी से समझ में नहीं आती। क़त्ल तो प्रतिदिन होते थे, हज़ारों-लाखों प्राण व्यर्थ में जाते थे, फिर एक महात्मा की बलि उस अत्याचार को कैसे रोक देती?

नियम यह है कि स्वार्थ-रहित होकर अपनी जान और माल को देश और जाति के लाभ के लिये क़ुर्बान करना ही जातीयता का बीज है। जब मनुष्य केवल अपने व्यक्तिगत लाभ को देखते हैं, तब उनमें जातीयता का भाव नहीं रहता। जब स्वार्थ और जातीयता एक दूसरे के विरुद्ध हो जाते हैं, तब एक की बढ़ती से दूसरे की घटती होती है। जहाँ जातीयता सीमातीत हो जाती है, वहाँ स्वार्थ नहीं रहता। जहाँ स्वार्थ अत्यधिक हो जाता है, वहाँ जातीयता लुप्त हो जाती है।

हमें याद रखना चाहिए कि एक हद तक तो प्रत्येक मनुष्य स्वार्थी होता है। अपना पेट भरने के लिये, अपने बाल-बच्चों के भरण-पोषण के लिये प्रत्येक प्राणी को मेहनत करना आवश्यक है। परंतु जन-संख्या बढ़ने से जब कुछ मनुष्य परिवार या जाति के पद को ग्रहण करते हैं, तब उनके सामने एक नई आवश्यकता, अथवा नया धर्म—जातीय लाभ—पेश होता है।

जिन मनुष्यों के अंदर जातीय लाभ का विचार उत्पन्न नहीं होता, या न होने के समान होता है, वे एक जाति नहीं कहला सकते, तथा जातियों के आंदोलन में जीवित नहीं रह सकते।

हमारे सामने वर्तमान समय में दो प्रकार के मनुष्य हैं—एक अँगरेज़, दूसरे हिंदुस्थानी। अँगरेज़-जाति में सबसे बढ़कर जातीयता पाई जाती है। हिंदुस्थानियों में यह भाव है ही नहीं। दोनों में स्वार्थ अवश्य है, परंतु अँगरेज़ों का स्वार्थ जाति के लाभ के अधीन है। क्लाइव इस देश से लाखों रुपए ले गया। उसके अंदर नैतिक गुण कम पाए जाते थे। किंतु उसके अंदर स्वदेश तथा स्वजाति-प्रेम नाम के ऐसे गुण थे, जिनके सामने अन्य गुण फीके पड़ जाते हैं। क्लाइव का बड़प्पन उसके जाति-प्रेम में था। एक क्लाइव क्या, यहाँ तो जो अँगरेज़ आता है, वही क्लाइव का दूसरा भाई होता है।

इँगलैंड के स्कूलों तथा घरों में शिक्षा ऐसी दी जाती है कि वहाँ शायद ही कभी कोई ऐसा मनुष्य होता है, जिसने अपने व्यक्तिगत लाभ के लिये जातीय लाभ की उपेक्षा की हो। इसी में इँगलैंड के साफल्य का रहस्य है।

अब देखिए हिंदुस्थान को। इस देश में हज़ारों जयचंद और मीर जाफ़र पैदा हुए, और लाखों अब भी हैं। चंदेरी के स्थल पर राना साँगा का साथी हरयावल बाबर से मिलकर यों ही भाग निकला। बाबर की सेना को जान के लाले पड़े थे। वे राना के नाम से डरते थे। एक हरयावल की करतूत ने देश के भाग्य को मिट्टी में मिला दिया। महाराष्ट्र में 'जयचंद' राघोबा और उसका पुत्र बाजीराव सानी थे। सिखों में 'मीर जाफ़र' लालसिंह और तेजासिंह थे।

गए-गुज़रों की बात छोड़ दीजिए, अब क्या हो रहा है? हमारे यहाँ सैकड़ों मनुष्य ऐसे हैं, जो अपने देश के पशुओं की हड्डियाँ इकट्ठी करके विदेशों को रवाना करते हैं। बंबई में कितने ही कारख़ाने हैं, जो इन हड्डियों को पीसकर चूरा बना देते हैं, ताकि उनका बाहर भेजना सहल हो जाय। ये लोग अपना पेट भरना जानते हैं; यह नहीं जानते कि इनकी जननी-भूमि का खाद्य पदार्थ दिन-ब-दिन कम हो रहा है। हड्डियाँ उसका बड़ा भोजन है। उसके बिना हमारी भूमि हमें कब तक पैदावार देगी? कौन नहीं जानता कि 'स्वदेशी' में देश का हित है। हमारे बीच कितने ही ऐसे मनुष्य हैं, जो विदेशी खाँड़ में गुड़ मिलाकर उसे 'देशी' बना देते और देश को धोखा देकर धनी बनना चाहते हैं। बंबई के कई कारख़ानों ने जापान से खद्दर मँगाकर देश को धोखा दिया, ताकि वे कुछ रुपया कमा सकें। क्या हम-में से प्रत्येक केवल अपने स्वार्थ के लिये सरकार की नौकरी नहीं करता? क्या हमारी वकालत के अंदर स्वार्थ छोड़ अन्य भी कोई भाव होता है? बंबई के बहुत-से लखपती क्या काम करते हैं? वे यहाँ का कच्चा माल बाहर विदेशों को भेजते और अन्य देशों का बना हुआ माल यहाँ मँगवाते हैं, ताकि उन्हें बीच में से दलाली मिल जाय। कभी कोई विचार तक नहीं करता कि उसमें देश का लाभ है या हानि?

हमारे धार्मिक नेता क्या करते हैं? देश-भक्ति और धर्म के नाम पर लोगों से अपील कर दान इकट्ठा करते हैं, और उससे सरकारी ढंग के विद्यालय तथा महाविद्यालय खड़े करके वे वह शिक्षा देते हैं, जो हमारी जातीयता, धर्म तथा देश-भक्ति की जड़ें काट रही है। वे बेचारे क्यों

न ऐसा करें, जब कि इसके द्वारा दोनों ओर से—राजा और प्रजा से—मान और सुख प्राप्त होता है। जातीयता की रक्षा या नाश के लिये उन्हें चिंता की ज़रूरत ही क्या है? सबसे बड़े पापी वे इसलिये हैं कि लोगों की धर्म के प्रति श्रद्धा को भी वे उनके नाश में लगा रहे हैं। लोग निस्संदेह वही शिक्षा चाहते हैं। इस देश के सब निवासी तो स्वार्थ में फँसे हैं, उनमें जातीयता का भाव ही कहाँ? परंतु दान के धन से लोगों के स्वार्थ-भाव को पूर्ण करना मूर्खता की परा काष्ठा है। नहीं, नहीं, इसमें देश-द्रोह की भी गंध है।

भारत के अर्वाचीन इतिहास में दो स्थलों पर जातीयता प्रकट हुई है, यह इतिहास के पन्ने बताते हैं—

शिवाजी ने महाराष्ट्र में जातीयता का भाव फैलाना आरंभ किया। किंतु महाराष्ट्र उस समय एक जाति नहीं बना था। जाति-निर्माण के लिये महाराष्ट्र को बीस वर्ष तक युद्ध करना पड़ा। इस काल में मराठों ने विना किसी बड़े नेता के, विना किसी युद्ध-सामग्री के, विना किसी सेना के युद्ध-क्षेत्र में औरंगज़ेब का मुक़ाबला किया। इस आंदोलन में उनके अंदर उन सब गुणों का संचार हो गया, जो जाति-निर्माण में सहायक होते हैं। इस आंदोलन द्वारा उन्हें वीरता, साहस, धैर्य तथा सहनशीलता प्राप्त हुई, उन्हें युद्ध का अनुभव हो गया। इन सबसे बढ़कर उनके अंदर परस्पर मेल तथा अपने सजातियों के साथ सहानुभूति के भाव उत्पन्न हो गए।

इधर पंजाब में गुरु गोविंदसिंह के चले जाने पर 'वीर वैरागी' ने समस्त प्रांत जीत लिया। परंतु खालसा में गुण-संचय होने के लिये पचीस वर्ष तक मुसीबतों का सामना करना आवश्यक था। सिखों की इस काल की क़ुर्बानियों ने ही वर्तमान खालसा को बनाया है। यदि यह पचीस-साला आंदोलन न होता, तो खालसा में ये गुण कभी न पैदा होते। कष्ट और दुःख का सहन तथा संकट का मुक़ाबला करना ही जातीयता उत्पन्न करता है। सुख-भोग और आराम में पड़कर कभी कोई जाति न बनी है, न बनेगी।

शहीदों का खून वह सीमेंट होता है, जो जाति के बिखरे हुए टुकड़ों को मिलाकर एक कर देता है। यह खून स्वार्थ की जड़ काट डालता है। यही खून जोश और पारस्परिक सहानुभूति का जन्मदाता होता है। यह तरंग जातीयता की लहर कहलाती है।

भाई परमानंद

उपचेतना

उपक्रम

जैसे तिल में तेल है, जैसे ईख में रस है, जैसे शरीर में वीर्य है, और जैसे मणि में कांति है, ठीक उसी प्रकार हमारे मन में चेतना है। यह परमात्मा की शक्ति है। इसकी व्युत्पत्ति स्वयंप्रकाश परमेश्वर से है। जिस प्रकार एक सूर्य की रश्मियाँ भिन्न-भिन्न पात्रों में एक ही साथ पड़ती हैं, ठीक उसी प्रकार यह चेतना भी उस स्वयंप्रकाश परमेश्वर से निकलकर घट घट में व्याप्त होती है। इसकी परिभाषा हम लोग इस प्रकार कर सकते हैं। परमात्मा प्रकाशमान है। उसका प्रकाश चारों ओर पड़ता है। इसी प्रकाश को हम चेतना कहते हैं। यही मन को इतर पदार्थों से पृथक् करता है; मन को मन बनाता और मन की सार्थकता सिद्ध करता है। मन के सब कार्यों का संभव इसी से

होता है। हम सोचते हैं, विचारते हैं, काम करते हैं; सबमें चेतना रहती है। विना चेतना के कुछ भी नहीं हो सकता। टिचनर साहब ने इसकी परिभाषा यों दी है—"चेतना वह है, जिसे हम सोकर उठने में अधिक-अधिक मात्रा में पाते हैं, और सोने के समय जो कम होती जाती है।" सारांश यह कि हम चेतना का अनुभव करते हैं; हम चेतना को जानते हैं; हमें इसका अनुभवगत ज्ञान है। पर यह ज्ञान तभी तक रहता है, जब तक हमसे यह नहीं पूछा जाता कि चेतना है क्या? ज्यों ही यह प्रश्न उठा कि हम लोगों का ज्ञान जाता रहा, और हम अवाक् रह गए। बहुत हुआ, तो हम इसका विवरण-भर दे सकते हैं। पर आज हमारा विषय यह नहीं है, और न आज इसकी चर्चा ही करेंगे। आपने उपसंपादक, उपमंत्री इत्यादि शब्द सुने हैं। आप इनके अर्थ से भी अवगत हैं। यहाँ पर हम आपका समय इनके अर्थ बताने में न लेंगे। जब आप उप-संपादक, उपमंत्री इत्यादि शब्द जानते हैं, और जब आप चेतना भी समझ गए हैं, तब उपचेतना को आसानी से समझ सकते हैं। वह स्वभावतः शक्ति में चेतना से कम, तथा चेतना की अनुपस्थिति में उसका काम सँभालने-वाली है। आज हम और आप इसी के रूप, रंग, कार्य तथा उपयोग की चर्चा करेंगे; यही इस छोटे निबंध का लक्ष्य है।

चेतना की भिन्न-भिन्न मात्राएँ

"जे जड़ चेतन जगत जहाना"—गोस्वामीजी का यह वाक्य भ्रमोत्पादक है। इससे यह मालूम होता है कि संसार में कुछ ऐसे भी पदार्थ हैं, जिनमें चेतना बिलकुल ही नहीं रहती, और जो सर्वथा जड़ हैं। यह मेरा विचार नहीं है। मैं सत्कार्य-वाद में विश्वास रखता हूँ। मुझे इस पर भी पूरा विश्वास है कि संसार की उत्पत्ति चेतन ब्रह्म से हुई है, जड़ प्रकृति से नहीं। मैं इस विषय में शंकर स्वामी से सहमत हूँ, कपिल से नहीं। मेरा विश्वास है कि परमात्मा की वह रश्मि, वह चेतना संसार में सर्वत्र रमी हुई है। पर हाँ, यह भी कहता हूँ कि संसार में सब पदार्थ एक-से चेतन नहीं हैं। कुछ खनिज पदार्थ ऐसे होते हैं, जिनको हम साधारण दृष्टि से जड़ ही समझते हैं; और यदि हम उन्हें चेतन कहें, तो साधारण दृष्टि में पागल समझे जायँगे। चेतना की मात्रा घटती-बढ़ती रहती है। कहीं कम चेतना है, तो कहीं अधिक। खनिज पदार्थों से लेकर मनुष्यों तक चेतना की मात्रा भिन्न-भिन्न है। इसके अतिरिक्त, एक व्यक्ति में भी चेतना सदा एक-सी नहीं रहती। निद्रा की अवस्था में चेतना बिलकुल ही घट जाती है। जब मनुष्य सजग होता है, तब, जाग्रत् अवस्था में, इसकी मात्रा बिलकुल बढ़ जाती है। जब हम किसी पदार्थ का ध्यान करते हैं, तब हमारी चेतना उस पदार्थ के संबंध में बहुत ही बढ़ जाती है। समाधि की अवस्था में हम अपनी सारी चेतना को एक जगह केंद्रीभूत कर देते हैं। हमें और बातों की कुछ भी ख़बर नहीं रहती। एक समय की बात है कि एक कारीगर अपने काम में लगा हुआ था। सारा बारात उधर से हो गुज़री, पर उसकी समाधि नहीं उचटी। वह ज्यों-का-त्यों अपने काम में लगा रहा। जब सिपाही लड़ाई में जाते हैं, उन्हें चोट लगती है। पर वे कुछ भी पर्वा नहीं करते, लड़ते ही जाते हैं। उनकी चेतना बिलकुल लड़ाई की ओर होती है।

अचेतना असंभव है

अब हम यह समझ गए कि चेतना की मात्रा परिमित नहीं है। वह समयानुसार बढ़ती-घटती रहती है। ब्रह्म का प्रकाश सर्वत्र पड़ता है। उससे कोई स्थान वंचित नहीं है। चेतना की मात्रा पदार्थ की बनावट के साथ पृथक्-पृथक् होती रहती है। पदार्थ की बनावट की क्लिष्टता के साथ-साथ उसकी चेतना भी बढ़ती है। परमाणु-वादियों का कहना है कि सब पदार्थ छोटे-छोटे तत्त्वांशों से बनते हैं, जिनको हम लोग परमाणु कहते हैं। कुछ पदार्थ ऐसे हैं, जिनमें ये परमाणु एक दूसरे से संबद्ध रहते हैं, और कुछ ऐसे होते हैं, जिनमें ये शिथिल होते हैं। अतः पहले में तो चेतना अधिक तथा दूसरे में कम होती है। अर्थात् चेतना क्लिष्टता तथा सरलता के अनुसार बढ़ती-घटती रहती है। क्रूट साहब एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक हो गए हैं। उनका मत भी इससे मिलता-जुलता है। अँगरेज़ी में आपने (Protyle) मत चलाया। अब Protyle परमाणु (Atoms) से भी सूक्ष्म होते हैं। इन सभों से पदार्थ बनते हैं। अब संसार में कोई भी पदार्थ नहीं है, जो चेतन नहीं। चाहे आप गहरी-से-गहरी नींद में हों, आप अचेतन नहीं

कहला सकते। कल्पना कीजिए कि श्याम और हरि एक चारपाई पर गहरी नींद में सोए हुए हैं। हम और आप कहते हैं कि वे दोनों अचेत पड़े हैं। लो, अब उनकी नींद खुली। श्याम अपनेको श्याम तथा हरि अपनेको हरि पहचानते हैं। वे कहते हैं कि भाई बड़े आनंद से समय कटा। खूब गहरी नींद आई। अब यदि चेतना बिलकुल नहीं थी, तो यह ज्ञान कैसे हुआ? एक और उदाहरण लीजिए। हम अमुक व्यक्ति को देखते हैं। देखते ही प्रेम का संचार हो जाता है। किसी दूसरे व्यक्ति को देखते हैं, और मन में घृणा आ जाती है। इससे यह मालूम होता है कि ये सब पूर्व जन्म की बातें हैं, और मृत्यु के उपरांत भी चेतना बनी रहती है। भूत-प्रेत इत्यादि की घटनाओं से भी यही सिद्ध होता है।

हमारे भारतवासी भूत-प्रेत से बहुत ही परिचित हैं। उनको भूत-लीला का प्रायः नित्य अनुभव हुआ करता है। कुछ पर देवता खेलते हैं, कुछ पर भूत आते हैं, कुछ पर बैठक और कुछ पर औलिया की करामात नज़र आती है। किसी के दाँत लग जाते हैं, कोई बेहोश हो जाता है, और कुछ उछलते हैं। ये प्रश्न बहुत ही रोचक हैं। इन समस्याओं को हल करने में बहुत कुछ मन लगता है। ये सब विषय भी हमारे निबंध के अंतर्गत हैं। पर इन सबका समुचित वर्णन करने से लेख बढ़ जाने का डर है। इन सब पर "व्यक्तिबहुत्व"-शीर्षक लेख में विचार करेंगे।

इन सब तर्कों का निष्कर्ष यह है कि अचेतना असंभव है। चेतन और जड़ का भेद करना भूल है। इनमें केवल मात्रा का भेद है। अतएव अचेतना बिलकुल नहीं है।

अचेतना का अर्थ

अब प्रश्न यह उठता है कि अचेतना का अर्थ क्या है? यदि अचेतना है ही नहीं, तो फिर इसका नाम कहाँ से आया? सर्वथा निरर्थक रहते हुए भी इसका प्रयोग साधारणतः क्यों हुआ? क्या इस शब्द का अर्थ किसी भाँति हो ही नहीं सकता? इन सब प्रश्नों के समाधान के लिये ही अब प्रयत्न करेंगे।

हम पहले जान चुके हैं कि चित्त की चेतना परिमित नहीं है। इसका मात्रा घटती-बढ़ती रहती है। आपने गरमी नापने का यंत्र—थर्मामिटर—देखा है? संसार में सभी पदार्थों में ताप है। ताप सर्वत्र विद्यमान है। कहीं इसका अभाव नहीं। फिर शीत से क्या तात्पर्य? फिर हम यह क्यों कहते हैं कि अमुक पदार्थ में ताप का सर्वथा अभाव है? हम यह जानते हैं कि ताप ही सर्वथा संसार का आधार है। यह भी हमें मालूम है कि इसकी मात्रा घटती-बढ़ती रहती है। घटते-घटते जब इसकी मात्रा एक नियत सीमा तक पहुँच जाती है, तब हम कहते हैं कि ताप की मात्रा शून्य पर है। अब वहाँ से भी यदि ताप की मात्रा घटी, तो हम कहते हैं कि यह शैत्य की अमुक मात्रा है। यहाँ पर शैत्य केवल आपेक्षिक है। अमुक वस्तु की अपेक्षा अमुक वस्तु में शैत्य अधिक है। ठीक इसी प्रकार अचेतना भी आपेक्षिक है। जब हम इसका प्रयोग करते हैं, तब हमारा उद्देश्य आपेक्षिक से ही रहता है।

चेतना, उपचेतना तथा अचेतना

अब हम इस अवस्था पर पहुँच गए कि इन तीनों के भेद समझ सकें। इनको हम चेतना की भिन्न-भिन्न मात्रा कहें, तो कुछ भूल न हो। यदि हम किसी पदार्थ पर पूरा ध्यान दें, तो कह सकते हैं कि अमुक वस्तु की चेतना हमें है। इस अवस्था में हम बिलकुल सजग रहते हैं। परमात्मा का वह ज्योतिर्मय प्रकाश हमारी मानसिक क्रियाओं पर आलोक फैलाता रहता है। हमारी मानसिक क्रियाएँ भी उस प्रकाश के आलोक में प्रतिभासित होती रहती हैं। हम उनको, एक को दूसरे से, आसानी से अलग कर सकते हैं। हमें इस अवस्था में सबका पूर्ण ज्ञान होता है। अब आगे बढ़िए। इसकी मात्रा घटी। प्रकाश कुछ कम हुआ। चारों तरफ़ कुछ अंधकार हो गया है। इस अवस्था में हमें सबका पूर्ण ज्ञान नहीं है। हमारी मानसिक क्रियाएँ प्रेत की भाँति मँडराती रहती हैं। उनकी आकृति क्षीण हो जाती है। वे एक दूसरे से टकराती रहती हैं। यद्यपि हमें उनकी उपस्थिति का कुछ भी ध्यान नहीं रहता, तथापि उनकी अनुपस्थिति से हमारे चेतना-मंडल में गड़बड़ मच जाती है। वे इस भाँति प्रमुख तो हैं नहीं कि उनकी उपस्थिति का प्रभाव हमारी चेतना पर कुछ पड़े, पर, हाँ, उनकी अनुपस्थिति से चेतना अवश्य डावाँडोल हो जाती है। अचेतना के विषय में तो हम पहले ही अधिकरण में जान चुके हैं कि आपेक्षिक अचेतना के अतिरिक्त अचेतना

का कुछ अर्थ ही नहीं हो सकता। संसार में कोई भी वस्तु सर्वथा अचेतन नहीं है। जड़ कहना केवल साधारण दृष्टि ही से क्षम्य है। यदि दार्शनिक दृष्टि से देखा जाय, तो आपेक्षिक जड़ ही हो सकता है।

उदाहरण

गत अधिकरण में हम लोग उपचेतना की परिभाषा नियत कर चुके हैं। पर उदाहरण के बिना परिभाषा का काम अधूरा ही रह जाता है। उदाहरण देना भी परिभाषा ही का अंग है। अतएव प्रस्तुत अधिकरण में हम आपके आगे उदाहरणों के द्वारा उपचेतना की व्याख्या कर देंगे।

कल्पना कीजिए कि हम अपने पढ़ने की कोठरी में हैं। सामने स्टाउट साहब की "The Principle of Human understanding"-नामक पुस्तक खुली हुई है। हमारा बिलकुल ध्यान उसी ओर है। पुस्तक की रोचकता इतनी है कि हम उसी में निमग्न हैं। सामने नेशनल कैलेंडर टँगा हुआ है। टेबुल पर अलार्म-टाइम-पीस रक्खी हुई है। उसका टिक्-टिक् शब्द हमारे कानों में पड़ता है। पर उधर हमारा ध्यान कुछ भी नहीं है। इसी बीच में हमारे मित्र बाबू मुरलीधर ने हमारी घड़ी उठा ली। तब हमारा ध्यान उस ओर गया। अब प्रश्न यह है कि घड़ी की चेतना थी, अथवा नहीं। यदि थी, तो किस अवस्था में थी; और यदि नहीं थी, तो फिर यह चेतना आई कहाँ से? उत्तर में हम यही कहेंगे कि वह हमारी उपचेतना में थी। जब उपचेतना पुष्ट हो गई, तब वह चेतना में परिणत हो गई।

एक योद्धा लड़ाई में लड़ रहा है। उसका पूरा ध्यान लड़ाई की ओर है। वह बहुत घायल हो चुका है। बहुत-सी चोटें आई हैं। पर वह अपनी धुन में मस्त है, लड़ता ही जाता है। घावों की उसे कुछ भी पर्वा नहीं है। पर ज्यों ही लड़ाई पर से आता है कि उसके चित्त में अपने घावों की उपचेतना बिलकुल चेतना के रूप में परिणत हो जाती है। अब उसे बहुत कष्ट होता है।

हम अच्छे हैं। हमारी पाचन-क्रिया अच्छी तरह चलती जाती है। हमें इसकी केवल उपचेतना ही है। पर आज हम बीमार पड़ गए हैं। आज वह उपचेतना, परिणत होकर, चेतना का रूप रख चुकी है।

स्थान

अब प्रश्न यह है कि स्मृति का स्थान कहाँ है? उपर्युक्त उदाहरण में जब हम अपने पाठ में निमग्न हैं, जब हमें और कुछ का ध्यान नहीं, तब हमारी घड़ी की चेतना कहाँ रहती है? यदि वह भी हमारी चेतना में है, तो हमें उसका ध्यान क्यों नहीं है? फिर यदि वह हमारी चेतना में है ही नहीं, तो फिर चेतना में आती कैसे है? कुछ वर्ष हुए, हमने अपने मित्र जनार्दन को गाते हुए सुना था। आज थिएटर में जाने पर एक गाना सुनने में आया। वह अतीत की स्मृति फिर भी हरी हो गई। स्मरण रखने की बात है कि यह घटना चार वर्ष पूर्व की है। उन दिनों हम भागलपुर में इंटरमीज़िएट-परीक्षा के लिये पढ़ रहे थे। हम जनार्दन के साथ ही होस्टल में रहते थे। समान विपत्ति में रहने के कारण हम लोगों में गाढ़ी मित्रता हो गई थी। जब हम दोनों होस्टल के झंझटों से दूर होते थे, तब हमारे मित्र हमें अपने गान से आनंदित करते थे। एक-एक करके सारी बातें आँखों के सामने आ गईं। अब प्रश्न यह है कि ये घटनाएँ हमारी चेतना में कहाँ थीं? इन घटनाओं के उपरांत अनेकों परिवर्तन हुए; वह संसार ही नहीं रहा। उन परिवर्तनों के बीच में ये सब घटनाएँ कहाँ थीं?

कुछ लोगों का कहना है कि मानसिक क्रियाओं के कारण मस्तिष्क-पटल पर मार्ग बन जाता है, और भविष्य में यदि कोई समान मानसिक क्रिया हुई, तो वह उसी मार्ग पर होकर चलती है, और वह अतीत की स्मृति फिर भी सजीव बनकर हरी-भरी हो जाती है।

दूसरे मतवालों का कहना है कि जब कोई मानसिक क्रिया चेतना-जगत् में घटती है, तब उसे करने के लिये मानसिक प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। इन प्रवृत्तियों को हम मानसिक संस्कार कह सकते हैं, और उनको स्नायविक संस्कार। इस प्रकार हम उनको पृथक् कर सकते हैं कि मानसिक संस्कार मानसिक प्रवृत्ति को और स्नायविक संस्कार स्नायविक प्रवृत्ति को कहते हैं। अब हम इन दोनों मतों को प्रवृत्ति-वाद कह सकते हैं। इस वाद के उक्त दोनों मतों को क्रम से मानसिक तथा स्नायविक कह सकते हैं।

तीसरे मतवाले उपर्युक्त दोनों वादों से पृथक् हैं। वे

मस्तिष्क की नाट्यशाला की रंगभूमि से उपमा देते हैं। साधारण रंगभूमि के सदृश इस रंगभूमि के भी दो विभाग हैं। एक अंतर्भूमि, और दूसरा दृश्य स्थल। हम अंतर्भूमि से तैयार होकर दृश्य स्थल पर आते हैं, और वहाँ अपना काम दिखाकर फिर अंतर्भूमि में चले जाते हैं। ठीक उसी प्रकार मानसिक क्रियाएँ अचेतना-विभाग से तैयार होकर चेतना-विभाग में आती हैं, और वहाँ अपना काम दिखाकर अचेतना-विभाग में छिप जाती हैं। इस मतवालों को हम अचेतना-वादी कहेंगे।

चौथे मतवालों को हम उपचेतना-वादी कह सकते हैं। उनका कहना है कि हमारी स्मृतियाँ उपचेतना में रहती हैं। वे मस्तिष्क की नदी से उपमा देते हैं। उन लोगों का कहना है कि जैसे नदी का जल कभी तो किनारे तक पहुँचता है, और कभी किनारे से हट जाता है (जो जल किनारे पर था, वह नीचे चला गया, और जो नीचे था, वह किनारे पर चला आया), ठीक वैसे ही जो घटना उपचेतना में थी, वह चेतना में चली आई, और जो घटना चेतना में थी, वह उपचेतना में चली गई।

यहाँ पर यदि हम इन मतों का खंडन-मंडन करने लगें, तो उसके लिये न तो समय है, और न स्थान ही। अतएव इन विवादों को किसी आगे के स्वतंत्र लेख पर छोड़कर हम इतना ही निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि हमारे विचार में, चौथे मत में, सत्य की मात्रा औरों की अपेक्षा अधिक है। अतएव हमारे मत में अचेतना बिलकुल हो ही नहीं सकती। अधिक-से-अधिक चेतना की मात्रा घट-बढ़ सकती है।

उपचेतना की आवश्यकता

जब हम यह जान गए कि उपचेतना क्या है, जब हम इसके उदाहरणों को समझ गए, जब हम इसका संबंध भी जान गए, तब स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि आखिर इसकी आवश्यकता क्या है? क्यों यह आवश्यक है कि उपचेतना हो? किसी विशेष विषय को समझने के लिये केवल यही आवश्यक नहीं कि हम उसकी परिभाषा कुछ शब्दों में कर दें, कुछ वाक्यों में उसका विवरण कर दें, उसके उदाहरण द्वारा उसकी व्याख्या कर दें, औरों से उसका संबंध बता दें; किंतु यह भी आवश्यक है कि उसकी आवश्यकता तथा उपयोगिता का निर्देश कर दें। प्रस्तुत अधिकरण और अगले अधिकरण में क्रम से हम यही करेंगे।

किसी वस्तु की आवश्यकता हम तभी समझ सकते हैं, जब यह अच्छी तरह समझ लें कि उसके अभाव से क्या-क्या हानि है? हम अब उपचेतना के अभाव पर विचार करेंगे। इस विषय को कतिपय उदाहरणों के द्वारा समझना अच्छा होगा।

कल्पना कीजिए कि कोई वकील है। वह नित्य कई मुक़दमों में कचहरी जाता है। उसे प्रतिदिन कई मुक़दमे समझने पड़ते हैं। अब वह यदि सब बातें याद रक्खे, तो कोई भी मुक़दमा नहीं समझ सकता। वह जब एक मुक़दमा समझने लगता है, तब दूसरे मुक़दमे की बातों को बिलकुल भूल जाता है। अन्यथा वह पागल हो जा सकता है। पर इससे यह आशय नहीं निकलता कि वह सब बातें बिलकुल भूल ही जाता है। नहीं, अवसर पर वे सब बातें उसे याद हो जाती हैं। वे सब, जैसा हम बतला चुके हैं, उपचेतना में चली जाती हैं।

किसी अतीत काल के मित्र का नाम स्मरण कर रहे हैं। पहले बिलकुल कुछ भी स्मरण नहीं होता। उसके उपरांत याद पड़ता है कि उनका नाम 'ज' पर है। कुछ आगे बढ़े, मालूम हुआ कि नाम किसी देवता के नाम पर है। थोड़ा और विचार किया, स्मरण आया कि नाम विष्णु भगवान् का है। कुछ समय के उपरांत यह मालूम हुआ कि नाम जनार्दन है। यदि जनार्दन हमारी स्मृति में बराबर बने रहते, तो हमारा मस्तिष्क विचारों से लद जाता, और हम पागल हो जाते।

अब हम यह समझ गए कि मस्तिष्क की रक्षा के लिये उपचेतना अत्यंत आवश्यक है। यदि यह न होती, तो हम पागल हो जाते।

उपचेतना के उपयोग

गत अधिकरण में हम बतला चुके हैं कि उपचेतना क्यों आवश्यक है। अब प्रस्तुत अधिकरण में हम यह बतलावेंगे कि उपचेतना किस काम आती है; दूसरे शब्दों में हम यह कहेंगे कि उपचेतना के उपयोग क्या हैं। यह चेतना से कम उपयोगी नहीं है। इस पर एक पूरा निबंध अथवा एक पूरा ग्रंथ लिखा जा सकता है।

प्रस्तुत अधिकरण में उन उपयोगों में से कुछ का निर्देश-मात्र करेंगे।

आजकल शिक्षक-मंडली में इसकी चर्चा बढ़ती जा रही है। सभी शिक्षक शिक्षा के कार्य में इस विभाग से काम लेते हैं। उनका कहना है कि हम लोगों का काम आवश्यकतानुसार उपचेतना की मात्रा बढ़ाकर चेतना के रूप में परिणत करना है। वे कहते हैं कि सभी ज्ञान लड़कों को हैं। पर उनकी चेतना उनको नहीं है। हमारा कार्य उन्हीं को चेतना में लाना है। जैसा हम पहले किसी लेख में, संभवतः 'असत्य'-शीर्षक लेख में, बतला चुके हैं कि ज्ञान का मार्ग अज्ञान से ज्ञान की ओर नहीं, पर अनियत से नियत की ओर है।

मेसमेरिज़्म, हिपनॉटिज़्म इत्यादि योग के अंगों के विषय में आप लोग बहुत कुछ सुन चुके हैं, और इनके बहुत-से खेल-तमाशे भी आपने देखे हैं। इन लोगों का भी काम इसी उपचेतना-विभाग को कार्य में लाना है। ये सब तमाशे उपचेतना की करामात हैं। जिस पर ये खेल किए जाते हैं, उसकी उपचेतना को आवश्यकतानुसार चेतना में और चेतना को उपचेतना में ले जाना ही इन सब तमाशों का मूल-मंत्र है।

कुछ मनोवैज्ञानिक डॉक्टर भी इसे रोग हटाने के काम में ला रहे हैं। बहुत-से रोग मन के विकार से भी होते हैं। शारीरिक रोगों का तो निबटेरा साधारण डॉक्टर कर सकते हैं; पर मानसिक रोग उनके मान के नहीं हैं। हम जब एम्० ए० के लिये पढ़ रहे थे, तब हमारे एक प्रोफ़ेसर कहा करते थे कि उनकी नाक में कोई रोग हो गया है। इस तरह का विचार उनके मन में उठा, और साथ-ही-साथ उनको कष्ट का अनुभव होने लगा! थोड़े दिनों तक आप इस कष्ट का अनुभव करते रहे। डॉक्टरों ने इलाज किया, पर लाभ कुछ न हुआ। इसके उपरांत एक मित्र के कहने से धीरे-धीरे उन्होंने उस विचार को हटाया, और कष्ट से त्राण पाया। इस प्रकार के अनेक उदाहरण खोजने से मिलेंगे। पर हम उन सबका विवरण देकर लेख को बे-तरह बढ़ाना नहीं चाहते।

आपने प्रेत-लीलाएँ बहुत कुछ सुनी होंगी। अब इस प्रेत-लीला में सयानों और डायनों का काम आप लोगों से छिपा नहीं है। ये भी इसी उपचेतना से काम लेते हैं। हमारे पाठक इस पर हँस उठेंगे। अस्तु। यह भी सौभाग्य की बात है। हम कहते हैं कि हम बहुत-से पदार्थों का नाम नहीं जानते, पर उनका उपभोग करते हैं। एक लड़के को हलवाई की दूकान पर ले जाइए। उसे कुछ बर्फ़ी या जलेबी मोल ले दीजिए। वह कुछ का नाम नहीं जानता। पर यह आशा मत रखिए कि वह मिठाई नहीं खाएगा। वह खाएगा, और उसका आस्वादन भी करेगा।

टेलीपैथी का नाम आपने सुना होगा। जिस प्रकार विद्युत् का उपयोग तार में होता है, ठीक उसी प्रकार उपचेतना (टेलीपैथी) मानसिक तार में काम आती है। इससे बहुत दूर-दूर की ख़बर आती रहती है। इसकी गति बहुत है। यह इसी लोक में नहीं, सूर्य-लोक, चंद्र-लोक इत्यादि की भी ख़बर ला सकती है।

उपसंहार

अब हम यह बता चुके कि चेतना की मात्रा घटती-बढ़ती रहती है। हम यह भी जान चुके कि अचेतना सत्य में असंभव है। अचेतना केवल आपेक्षिक अचेतना है। हमने यह भी बतला दिया कि उपचेतना क्या है, उसके उदाहरण क्या हैं, उसकी आवश्यकता क्या है, उसके उपयोग क्या हैं, तथा योग के साथ उसका संबंध क्या है। पहले हम यह बतला चुके हैं कि तर्कशास्त्र का उद्देश्य सत्य है। अतएव हमारे मन में स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि इस उपचेतना का उपयोग सत्य-प्राप्ति में अथवा (दूसरे शब्दों में) तर्कशास्त्र में कुछ है या नहीं? उपसंहार में इस विषय की चर्चा ठीक नहीं जँचती। पर, हाँ, इतना हम यहाँ कह सकते हैं कि प्राचीन तार्किकों के अनुसार यह बिलकुल अनावश्यक है। पर स्टर्ट, शिलर इत्यादि नव्य तार्किकों के मत के अनुसार यह सत्य-प्राप्ति के लिये आवश्यक है। और, हम भी इससे सहमत हो सकते हैं; क्योंकि उपर्युक्त उदाहरणों पर विचार करने से यह मालूम होता है कि उपचेतना से भी सत्य-प्राप्ति होती है।

"बाण"

एस्किमो

उत्तरी ध्रुव-प्रदेशवर्ती आर्टिक-द्वीप-समूह में ग्रीनलैंड-नामक एक बड़ा भारी द्वीप है। लंबाई-चौड़ाई में वह आस्ट्रेलिया के आधे के लगभग होगा। उसका अधिक भाग—यदि संपूर्ण भाग कहा जाय, तो अतिशयोक्ति न होगी—प्रायः निरंतर बर्फ़ से ढका रहता है। उसमें कई महीने का दिन और कई महीने की रात होती है। वहाँ इतनी सर्दी होती है कि मानव-जाति का रहना एक प्रकार से असंभव है। पर नहीं, वहाँ पर भी मनुष्य—हमारे ही-जैसे अच्छे ख़ासे मनुष्य—रहते हैं। वे एस्किमो कहलाते हैं।

वीरान होने पर भी वह द्वीप ग्रीनलैंड (हरी भूमि) कहलाता है, यह सुनकर पाठकों को आश्चर्य होगा। पर लोगों को आश्चर्य में डालने तथा उनका ध्यान उसकी ओर आकर्षित करने के लिये ही तो उसका नाम ग्रीनलैंड रक्खा गया है। कहा जाता है, पहल-पहल नार्वे के एक नाविक ने इस द्वीप का पता लगाया था। उसने जब इसे बिलकुल उजाड़ तथा मानव-जाति के रहने के अयोग्य देखा, तो उसकी इच्छा हुई कि यदि संसार का ध्यान इसकी ओर आकृष्ट हो, तो अच्छा हो। इसी से उसने इसका नाम ग्रीनलैंड रख दिया। अनेक योरपियन तथा अमेरिकन यात्री उत्तरी ध्रुव की खोज में वहाँ गए, और उन्हें एस्किमो-जाति के निरीक्षण का अच्छा अवसर मिला। उन्हीं के वर्णनों के आधार पर यह लेख लिखा जाता है।

इस विषय में पहले बहुत मत-भेद था कि एस्किमो किस जाति के हैं। उन्हें कोई काकेशियन, कोई मंगोल और कोई नीग्रो बतलाता था। पर अब एक प्रकार से तय हो चुका है कि वे मंगोल-जाति के हैं। लंडन की रॉयल जाग्रफ़िकल सोसाइटी के भूतपूर्व सभापति सर मार्खम का भी यही मत है। और भी अनेक विद्वान् उनके इस मत से सहमत हैं। उनके विचार में इस जाति के लोग किसी समय मध्य एशिया



नार्थपोल के चार एस्किमो

में रहते थे; पर तातारों के हमलों से भागकर वे उत्तरी टापुओं—विशेषकर ग्रीनलैंड—में बस गए।

चीनी और जापानियों की तरह एस्किमो क़द के नाटे होते हैं। मंगोल-जाति का यह एक विशेष चिह्न है। पर उनमें ऐसे मनुष्यों की भी कमी नहीं है, जो साढ़े पाँच फ़ीट से भी अधिक लंबे होते हैं। स्त्रियाँ छोटी और मोटी होती हैं। उनका रंग भूरा या गेहुँआ होता है।

ये लोग लिखना-पढ़ना नहीं जानते। इनकी बोल-चाल की भाषा बड़ी सरल है। दो या तीन महीने में वह भली भाँति सीखी जा सकती है। इसके सिवा उनमें एक और गुप्त भाषा प्रचलित है। इस भाषा को उस जाति के बड़े-बूढ़ों के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। यद्यपि योरपियन तथा अमेरिकन-जातियों से इनका बहुत कुछ संपर्क रहा, और समय-समय पर ध्रुव-प्रदेश के यात्रियों के साथ वे वर्षों रहे, पर उनमें एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं, जिसने ज़रा भी अँगरेज़ी सीखी हो।



एस्किमो-बच्चे

प्रसिद्ध अमेरिकन यात्री कप्तेन पियरी, जिनसे बढ़कर सभ्य-संसार के किसी व्यक्ति को एस्किमो-जाति का अधिक ज्ञान नहीं है, उनके संबंध में कहते हैं—

"यद्यपि वे सभ्य नहीं हैं, पर, वहशियों के काम नहीं करते। यद्यपि उनमें किसी प्रकार की गवर्नमेंट नहीं है, पर वे क़ानून के विरुद्ध कोई काम नहीं करते। यद्यपि वे अशिक्षित हैं, पर बड़े बुद्धिमान् हैं। उनका स्वभाव बच्चों का-सा है। वे सहनशीलता में सभ्य-संसार के सभ्य-से-सभ्य व्यक्ति का मुक़ाबला कर सकते हैं। यद्यपि उनका कोई धर्म नहीं है—यहाँ तक कि ईश्वर को भी नहीं मानते—पर वे इतने धार्मिक हैं कि यदि कोई भूखा व्यक्ति उनके यहाँ आ जाय, और उनके पास अपने खाने-भर को भी भोजन पर्याप्त न हो, तथापि वे उसे भोजन में अवश्य शरीक कर लेंगे। उनके यहाँ जो वृद्ध तथा निरुपाय हैं, उनकी सेवा-सुश्रूषा करने में वे ज़रा भी कोर-कसर नहीं रखते। वे सदैव नीरोग तथा हृष्ट-पुष्ट रहते हैं। उनमें कोई भी बुरे व्यसन या ऐब नहीं है। जुआ खेलना और मदिरा-पान करना वे बिलकुल नहीं जानते। इस भू-मंडल पर वे एक अद्वितीय पुरुष हैं।"

एस्किमो बड़े घुमक्कड़ होते हैं। वे

सदैव एक ही स्थान पर जमकर नहीं रहते। यदि कहीं पर बहुत रहे, तो साल-दो साल। इससे अधिक नहीं। पर जाड़े में वे यात्रा नहीं करते। उस समय वे एक प्रकार के झोपड़ों में रहते हैं, जिन्हें 'इग्लू' कहते हैं। ये झोपड़े पत्थर और मिट्टी के होते हैं। थोड़ी ऊँचाई के और गोलाकार बने होते हैं। एक 'इग्लू' में एक ही दरवाज़ा होता है, और वह प्रायः इतना नीचा होता है कि बिना हाथ-पैरों के बल चले कोई उसमें प्रवेश नहीं कर सकता। उस दरवाज़े से सटी हुई एक सुरंग होती है, जो दस से लेकर बीस फ़ीट तक लंबी होती है। उसका दूसरा छोर मकान के ठीक बीचोबीच में होता है। बाहर के दरवाज़े से प्रवेश करके सुरंग में रेंगते हुए चलकर ही 'इग्लू' में प्रवेश किया जा सकता है, अन्यथा नहीं। प्रत्येक 'इग्लू' में बाहर देखने-भालने के लिये एक छोटी-सी खिड़की भी होती है। पशुओं की झिल्ली लग जाने से यह शीशा-लगी खिड़की का काम देती है। गरमियों में वे अधिकतर चमड़े के ख़ेमों में रहते हैं, जो 'तूपिक' कहलाते हैं। एक 'तूपिक' में सील-मछलियों के दस या बारह चमड़े लगते हैं। गरमी में 'इग्लू' रहने लायक़ नहीं रहते। तब उनकी छतें खोल दी जाती हैं, और उन्हें सूखने दिया जाता है।

वे चारपाइयाँ इस्तेमाल नहीं करते। 'इग्लू' का फ़र्श एक-आध स्थल पर और स्थानों की अपेक्षा ऊँचा छोड़ देते हैं। बस, ये ही उनकी चारपाइयाँ हैं। एस्किमो का बिस्तरा भी अजीब होता है। सबसे नीचे घास होती है। उसके ऊपर सील-मछलियों के चमड़े बिछे हुए होते हैं। उसके ऊपर बारहसिंहों या क़स्तूरी-मृगों (Musk-oxen) के चमड़ों का एक बड़ा-सा बोरा होता है। रात को सोते समय वे अपने दिन के वस्त्र उतारकर उसी बोरे में घुस रहते हैं।



एस्किमो-माँ और बच्चा

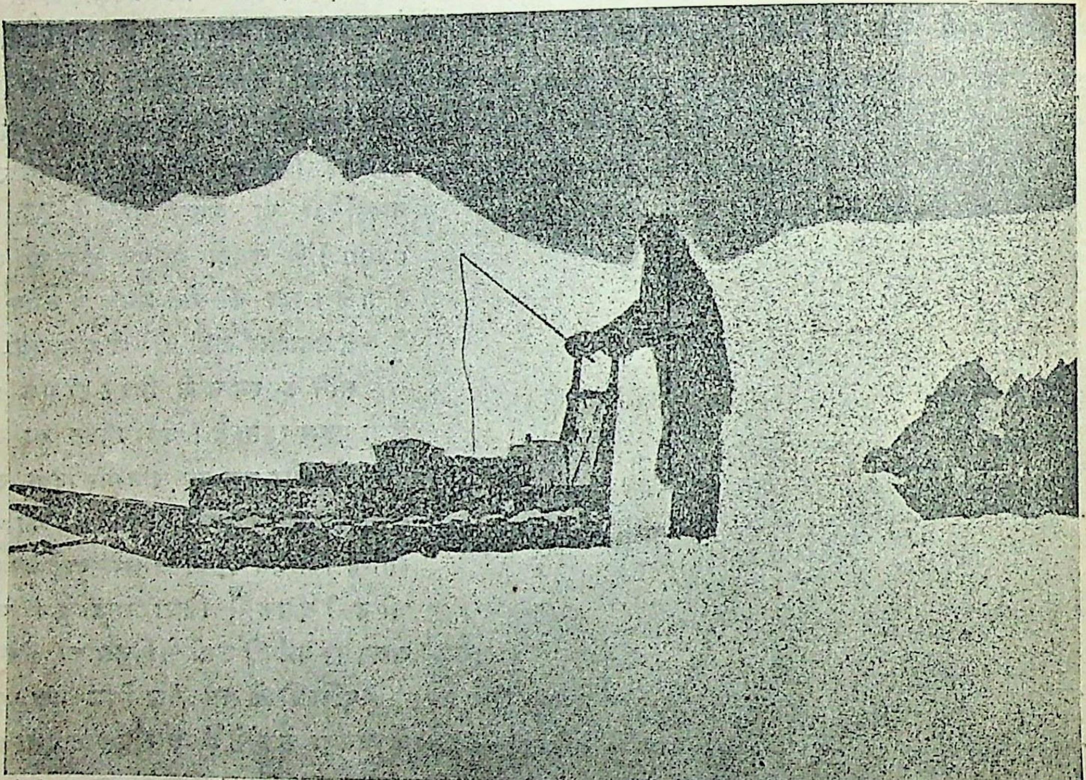
सोने के स्थान के निकट ही एक और ऊँचा पत्थर रहता है। वह दीवट का काम देता है, और उस पर रात-भर दिया जला करता है। सील-मछली की चर्बी तेल का काम देती है। भोजन पकाने के लिये चूल्हे का काम भी उसी दीपक से लिया जाता है। प्यास लगने पर बर्फ़ को उसी से पिघलाकर पीते हैं।

एस्किमो के सब वस्त्र भिन्न-भिन्न पशुओं के चमड़ों के होते हैं, और उनका ऐसा होना आवश्यक भी है। सभ्य-संसार के जो यात्री उनके देश में गए हैं, उन सबको उन्हीं के वस्त्र पहनने की आवश्यकता पड़ी है। ऊन के मोटे-से-मोटे वस्त्र से भी वहाँ काम नहीं चल सकता।

एस्किमो बारहसिंहे की खाल का एक चुस्त कुर्ता पहनते हैं। इसमें बाल नीचे और चमड़ा ऊपर रहता है। इसके ऊपर एक कोट पहनते हैं। इसमें बटन नहीं रहते, और इससे सिर भी ढका रहता है। यही

इसकी विशेषता है । गरमी के लिये यह सील के चमड़े का और जाड़े के लिये लोमड़ी की खाल का बनाया जाता है। लोमड़ी की रोएँदार पूँछें इसके उस स्थान पर सिली हुई रहती हैं, जो मुँह के चारों ओर रहता है। इनके अतिरिक्त भालू के चमड़े का पाजामा, ख़रगोश की खाल के मोज़े तथा दस्ताने और सील के चमड़े के जूते भी पहनते हैं। इन सब चीज़ों के काटने-कतरने तथा सीने का काम स्त्रियाँ ही करती हैं। इस काम में वे बड़ी ही चतुर होती हैं। डोरे के स्थान में मज़बूत ताँत से काम लिया जाता है।

उसमें अठारह फ़ीट लंबा एक चाबुक लेकर बैठता और कुत्तों को चलाता है। उनका चलाना सरल काम नहीं है। इसके लिये बहुत परिश्रम और अनुभव की आवश्यकता होती है। अच्छे स्थान में यह एक घंटे में बारह से लेकर बीस मील तक जा सकती है। एस्किमो लोग पहले यह गाड़ी हड्डियों की बनाते थे, पर अब योरपियन यात्रियों के संपर्क से लकड़ी की भी बनाने लगे हैं। ग्रीनलैंड में लकड़ी तो एक अप्राप्य वस्तु है। फिर भला वे उसका हाल क्या जानते। पर जब उन्हें कहीं से लकड़ी मिल जाती है, तो उसका अवश्य इस्तेमाल करते हैं।



एस्किमो-स्लेज

अपने सामान को एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाने के लिये उनके पास एक प्रकार की गाड़ी होती है, जिसे 'स्लेज' कहते हैं। इस गाड़ी में पहिए नहीं होते; क्योंकि पहिएवाली गाड़ी का बर्फ़ पर चलना असंभव है। यह इस प्रकार की बनी होती है कि बर्फ़ पर थोड़े ही परिश्रम से खींची जा सकती है। इसे चलाने के लिये कुत्ते जोते जाते हैं। कम या अधिक बोझ के अनुसार कुत्ते भी कम या अधिक संख्या में जोते जाते हैं। सवार

एस्किमो की प्रायः सभी चीज़ें पहले हड्डी, पत्थर और चमड़े ही की बनती थीं; पर अब उनमें भी उन्होंने बहुत उन्नति की है।

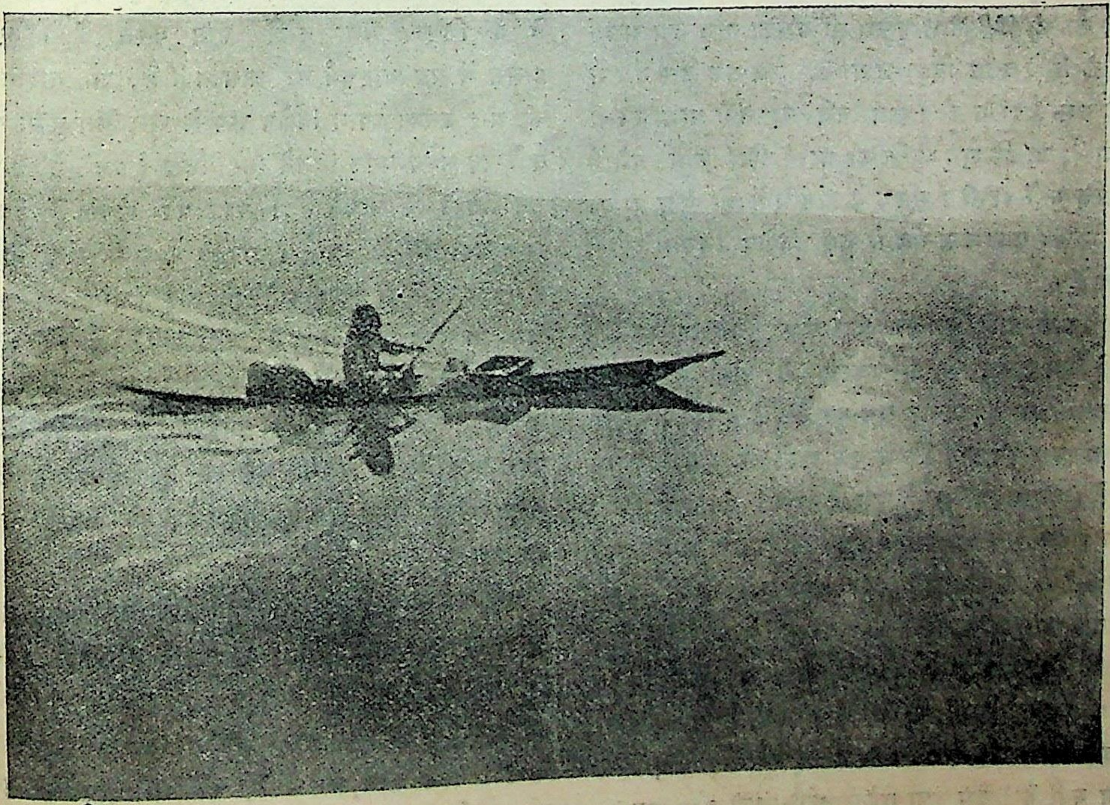
धर्म क्या वस्तु है, यह बात एस्किमो नहीं जानते, और न उनके कोई धार्मिक सिद्धांत ही हैं। हाँ, उनका ख़याल है कि मृत्यु के बाद भी मनुष्य जीवित रहता है। भूत-प्रेतों के प्रति उनका पूरा विश्वास है, और उनके विचार में वे मनुष्य-जाति को कष्ट देने के लिये हरदम तैयार

रहते हैं। प्रेतों का एक अधिपति है, जिसे वे 'तारनरसुक' कहते हैं। वह अन्य प्रेतात्माओं की अपेक्षा अधिक ढीठ और दुष्ट है। अनेक प्रकार के मंत्रों द्वारा एस्किमो उसे हरदम प्रसन्न करने की चेष्टा किया करते हैं। जब उन्हें कोई शिकार मिलता है, तो पहले 'तारनरसुक' का भाग निकाला जाता है। यदि हवा सनसनाहट के साथ चलने लगे, तो समझ लो कि 'तारनरसुक' का चक्कर लग रहा है। यदि कुत्ते विना किसी विशेष कारण के भूकने लगें, तो जान लो कि 'तारनरसुक' का शुभागमन हुआ है। ऐसी अवस्थाओं में एस्किमो अपना अठारह फ़ीटवाला चबुक लेकर बाहर निकल पड़ता है, और सड़ासड़ ज़मीन पीटने लगता है, जिससे आगंतुक महाशय चलते बनें।

जिस प्रकार इन दुष्टात्माओं से एस्किमो सदैव डरता रहता है, उसी प्रकार अपने पूर्वजों की मृतात्माओं से सहायता लेना भी जानता है। जब कभी कोई नाव बर्फ़ से रुक रहती है, तो एस्किमो चट अपने पिता की मृतात्मा को बर्फ़ हटाने के लिये बुलाता है। जब कभी तूफ़ान के कारण नाव डूबने लगती है, तब भी पिता की, और यदि आवश्यकता अधिक हुई तो पितामह इत्यादि की भी, आत्माओं का आवाहन किया जाता है।

उनके यहाँ मुर्दे को गाड़ने का रवाज़ है। जब कोई एस्किमो घर पर मरता है, तो यह निहायत ज़रूरी है कि उसका शव तुरंत हटा दिया जाय। देर करना मुनासिब नहीं समझा जाता। पहले उसे वस्त्रों से खूब ढक देते हैं। ज़्यादातर मृतक का बिछौना ही इस काम के लिये अधिक मौज़ूँ समझा जाता है। शव को एक मज़बूत रस्सी से बाँधते हैं। फिर उसे बाहर निकालते हैं। निकालते समय सिर आगे होना चाहिए। मुर्दे को हाथ से छूना एस्किमो पसंद नहीं करते, इसलिये रस्सी का एक छोर पकड़कर उसे घसीटते हुए ले जाते हैं। घर से थोड़ी दूर पर जहाँ कहीं उन्हें पत्थर बहुतायत से दिखाई पड़ते हैं, बस, वहीं उसे डाल देते और पत्थरों से ढक देते हैं।

मृतकों को परलोक में सुख मिले, इस बात का उन्हें बहुत ख़याल रहता है। शायद उनके परलोक में भी



कायक या एस्किमो-डोंगी

अंधकार और बर्फ़ की अधिकता है । जब कोई शिकारी मरता है, तो उसके हथियार, उसकी स्लेज तथा उसके कुत्ते भी उसी के साथ गाड़ दिए जाते हैं । गाड़ने के पहले कुत्तों को मार डालते हैं । जब कोई स्त्री मरती है, तो कुछ मांस, मांस पकाने के बर्तन तथा एक दिया उसके साथ क़ब्र में रख देते हैं । सुई, चमड़ा और चमड़े के धागे भी रक्खे जाते हैं । मा के मरने पर उसका दूध-पीता बच्चा भी उसके साथ दफ़न होता है । पर विदेशी यात्रियों के अनुरोध से यह प्रथा उनमें बहुत कुछ कम हो गई है ।

जिस घर में किसी की मृत्यु होती है, उसमें फिर बहुत दिन तक कोई नहीं रहता । यदि ख़ेमे में कोई मरता है, तो मृतक-संस्कार करने के बाद ख़ेमे के डंडे (जो प्रायः हड्डी के होते हैं) उखाड़ लिए जाते हैं, और उसका शेष अंश वहीं छोड़ दिया जाता है । यदि 'इग्लू' में किसी की मृत्यु होती है, तो वह ख़ाली कर दिया जाता है, और फिर बहुत दिन तक उसमें कोई नहीं रहता ।

मृतक पुरुष का नाम लेना वर्जित है । यदि किसी और का भी वही नाम हुआ, तो उसका नाम उस समय तक के लिये बदल दिया जाता है, जब तक उस वंश में कोई बच्चा पैदा न हो । उस बच्चे का वही नाम रक्खा जाता है, जो कि मृत व्यक्ति का था । फिर नाम लेने में आपत्ति नहीं रहती । मृतक के संबंधियों को कुछ समय तक भोजन तथा वस्त्र-संबंधी कुछ विशेष नियम मानने पड़ते हैं ।

एस्किमो-जाति में स्त्रियाँ कम और पुरुष अधिक हैं । इससे विवाह बहुत छोटी अवस्था में होता है । प्रारंभ में माता-पिता ही विवाह तय कर देते हैं ; पर पति-पत्नी को अधिकार रहता है कि वे एक दूसरे के साथ रहें या न रहें । उनमें परीक्षा-विवाह (trial marriage) का ख़ूब प्रचार है । जब तक पुरुष को अपने मन की स्त्री और स्त्री को अपने मन का पुरुष नहीं मिल जाता, तब तक पति और पत्नियाँ ख़ूब बदलती रहती हैं । फिर अंत को स्थायी रूप से विवाह हो जाता है । यों भी जब कोई पुरुष किसी स्त्री के साथ नहीं रहना चाहता, तो वह उससे कह देता है कि मेरे 'इग्लू' में तुम्हारे लिये स्थान नहीं है । बस, स्त्री तुरंत चली जाती और अवसर पड़ने पर फिर विवाह कर लेती है । स्त्रियाँ भी अपनी मर्ज़ी से पति को छोड़ सकती हैं । सुंदरता की अपेक्षा पत्नी की गृह-कार्य-निपुणता ही का एस्किमो को अधिक ख़याल रहता है ।

जब कभी दो या अधिक व्यक्ति एक ही स्त्री को चाहते हैं, तब दोनों में जो अधिक ताक़तवर होता है, उसी की वह पत्नी बन जाती है । कुश्ती लड़ना, पंजा लड़ाना या हाथ दबाना ही ताक़त की परीक्षा के ढंग हैं । व्यर्थ में एक दूसरे का ख़ून बहाना एस्किमो नहीं जानते ।

स्त्रियों के कुछ भी अधिकार नहीं हैं । जिस प्रकार एस्किमो लोगों के कुत्ते उनके वश में रहते हैं, उसी प्रकार उनकी स्त्रियाँ भी । परीक्षा-विवाह से जो संतान होती है, उसके संबंध में यह पुरुष की इच्छा पर निर्भर है कि अलग होने पर वह उसे स्वयं रक्खे, या स्त्री को ले जाने दे । बच्चे अपने माता-पिता को नाम लेकर पुकारते हैं ।

ग्रीनलैंड ऐसा स्थान है, जहाँ महीनों अंधकार-ही-अंधकार रहता है । चंद्रमा तथा तारागण ही एस्किमो लोगों को प्रकाश-दान करते हैं । उन्हीं की सहायता से वे शिकार तथा दूसरे काम करते हैं । ऐसी हालत में यह आश्चर्य की बात नहीं है, जो तारागणों की ओर उनका ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ है । वहाँ पर मुख्य-मुख्य जितने तारे दिखाई पड़ते हैं, प्रायः उन सबको वे जानते हैं । पर उनके संबंध में उनका ज्ञान बड़ा ही विचित्र है । उनकी नज़र में कोई तारा-समूह बारहसिंहों का झुंड है, तो कोई कुत्तों का । कोई चमकता हुआ तारा भालू है, और उसके साथ के छोटे-छोटे तारे कुत्ते हैं, जो कि उसका पीछा कर रहे हैं । कहीं पर कोई तारा 'इग्लू' है, तो कोई उसके द्वार पर रक्खा हुआ पत्थर है । चंद्रमा एक स्त्री है, जो डर के मारे भाग रही है, और सूर्य एक पुरुष है, जो उसका पीछा कर रहा है ।

ठंडे जल-वायु ने एस्किमो-जाति को बड़ा गंदा बना रक्खा है । नहाना क्या चीज़ है, यह वे जानते ही नहीं । हाँ, यदि दैवात् पानी में गिर पड़ें, तो दूसरी बात है । जब उनके शरीर पर इतना अधिक मैल जम जाता है कि उन्हें कष्ट होने लगता है, तब वे थोड़ा-सा तेल लगाकर मैल छुड़ा डालते हैं । बस, यही उनकी सफ़ाई

का आदि-अंत है। दाँत साफ़ करना भी वे नहीं जानते। उनके घरों में भी बड़ी गंदगी रहती है। एक 'इग्लू' में कभी दस-बारह व्यक्ति तक एकसाथ सोते हैं, और हवा के आने जाने का तिल मात्र भी स्थान नहीं रहता।

एस्किमो-जाति में प्रत्येक मनुष्य के समान अधिकार हैं। कोई किसी का अफ़सर नहीं, और न कोई किसी पर दबाव डालता है। हाँ, उनमें एक प्रकार के व्यक्ति होते हैं, जो 'अंग-काक' कहलाते हैं। ये एक प्रकार के ओषधि-पुरुष (वैद्य या हकीम कहना ठीक न होगा) या मंत्र-पुरुष होते हैं। इनका बड़ा दबदबा रहता है। जब कोई एस्किमो बीमार पड़ता है, तो 'अंग-काक' की शरण लेता है। 'अंग-काक' किसी प्रकार की औषधि नहीं रखता, मंत्र पढ़-पढ़कर ही रोगी को चंगा करता है। नाचने-गाने में भी वह बड़ा प्रवीण होता है। कभी-कभी जोश में आकर वह इस प्रकार नाचता, गाता तथा कूदता है कि देखनेवाले अवाक् रह जाते हैं। एस्किमो का विश्वास है कि 'अंग-काक' को मृतात्माओं को वश में करने की क्रियाएँ मालूम हैं, और इसी कारण वे उससे दबते रहते हैं। वह ज्योतिष में भी दख़ल रखता है, और सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत भावी आपत्तियों को बहुत पहले से बतला देता है। उपहारों द्वारा संतुष्ट हो जाने पर उनका निराकरण भी वह कर सकता है।



एस्किमो-कुत्ता

एस्किमो का सबसे उपयोगी पशु उसका कुत्ता है। जन्म से लेकर अंत तक वह उसके साथ रहता है। बिना उसके एस्किमो का क्षण-भर भी काम नहीं चल सकता। शिकार वह करता है, बोझ वह ढोता है, और अवसर पड़ने पर स्नेही-से-स्नेही मित्र का काम देता है।

एस्किमो-कुत्तों का वर्णन करते हुए कैप्टेनपियरी लिखते हैं—"ये मज़बूत और सुंदर जानवर होते हैं। संसार में इनसे बड़े और सुंदर कुत्ते भी हो सकने में हमें संदेह है। संभव है, उचित भोजन मिलने पर दूसरे कुत्ते भी इनका-जैसा काम कर सकें, इन्हीं की तरह तेज़ दौड़ सकें और दूर तक चलने पर भी न थकें; पर सारे संसार में एक भी ऐसा कुत्ता नहीं है, जो सर्द-से-सर्द स्थान में बहुत कम खाय, और इतना काम कर सके, जितना कि ये करते हैं।"

उनका वज़न एक मन से लेकर डेढ़ मन तक होता है। उनका थूथन नुकीला, कान खड़े हुए तथा आँखें परस्पर पास-पास होती हैं। उनके शरीर पर मुलायम तथा चिकने बालों की मोटी तह होती है। एस्किमो-कुत्ते होते सब एक ही नस्ल के हैं,

पर उनके रंग में अंतर होता है। वे काले, सफ़ेद, भूर, पीले, चितकबरे इत्यादि सभी रंगों के होते हैं। उनका भोजन मांस है। मांस के अतिरिक्त और किसी आहार पर वे जीवित नहीं रह सकते। जल के स्थान पर वे बर्फ़ के टुकड़े खा जाते हैं।

एस्किमो-कुत्ते मकानों में नहीं रहते। 'इग्लू' या ख़ेमे के पास ही बाहर बाँध दिए जाते हैं। कड़े-से-कड़ा जाड़ा वे इसी प्रकार गुज़ार देते हैं। बेचारों का जीवन आदि से अंत तक दुःखमय रहता है।

स्वयं एस्किमो का जीवन भी तो सुखमय नहीं होता। घोर अंधकार, असह्य सरदी, काटती हुई वायु तथा भूख की यंत्रणाओं को सहते हुए उन्हें सुख नहीं हो सकता। कभी-कभी तो सारा वंश-का-वंश और कभी-कभी गाँव-के-गाँव विना भोजन के उजड़ जाते हैं। प्रकृति-देवी, जो हमारे लिये आनंद के साज-सामान सजती है, दानवी की तरह उन बेचारों को कष्ट के अतिरिक्त और कुछ नहीं देती। एस्किमो को मौत भी शांति-पूर्वक नहीं आती। प्रायः भयानक रूप में ही मृत्यु हर-दम उनके सिर पर नाचा करती है। परिपक्व वृद्धावस्था तक जीवित रहना तो एस्किमो जानते ही नहीं। घर में पड़े हुए किसी विरले ही की मृत्यु होती है। चमड़े की डेढ गज़ की नाव चलाते हुए जा रहे हैं, उधर कहीं से हज़ारों टन की भारी तैरती हुई हिम-शिला ऊपर आ पड़ी। स्लेज पर बैठे हुए शिकार को जा रहे हैं, ज़रा-सा चूके, बस, सैकड़ों गज़ नीचे पत्थरों पर जा पड़े। हड्डियाँ चूर हो गईं। किसी दिन शिकार करते-करते दूर निकल गए। थककर वहीं बर्फ़ पर पड़कर आराम करने लगे, नींद आ गई, फिर भला बर्फ़िस्तान की उस नींद से कौन जाग सकता है?

इतना सब होने पर भी एस्किमो के चेहरे पर शिकन नहीं पड़ती। वह हमेशा प्रसन्न रहता है। आप चाहे जहाँ देखें—घर में, स्लेज पर, या नाव में—उसे सदैव संतुष्ट तथा प्रसन्न पावेंगे। इस जाति की इन्हीं ख़ूबियों ने उसे आज दिन तक जीवित रक्खा है। यदि उसमें ये बातें न होतीं, तो आज के बहुत पहले एस्किमो-जाति का नाम संसार से उठ गया होता।

भूपनारायण दीक्षित

कुछ का कुछ

(१)

हम यह आशा करके मन में हुए मुदित थे अपने-आप,
बन करके शीतांशु हरेगा सभी हमारा वह संताप।
पर कैसा दुर्भाग्य हमारा, हुई सब तरह उलटी बात!
हाय, तीक्ष्ण किरणों से हमको, जला रहा है वह दिन-रात।

(२)

किया विचार और ही कुछ था, हुआ और ही कुछ है हाल;
अहो, कुहकिनी आशा भी है चलती कैसी चाल कराल!
जिसको हमने यह माना था, होगा हमें मुक्ति का द्वार,
अखिल बंधनों से परिपूरित हुआ हमें वह कारागार।

(३)

हमने यह सोचा था मन में, मिला कल्पतरु हमें उदार,
जो कुछ चाहेंगे हम उससे, ले ही लेंगे हाथ पसार।
पर जो कुछ अपना था, वह भी खो बैठे हम सभी प्रकार,
अपने तन, मन, धन, जीवन पर हुआ उसी का है अधिकार।

(४)

प्रेम-विवश होने पर नर को रहता कुछ न विवेक-विचार;
इसका दुखमय अनुभव हमको नित्य हो रहा वारंवार।
जिसको हमने निज रोगों का समझा था उपयुक्त इलाज,
हाय, वही हो गया हमारी सभी व्याधियों का सरताज।

(५)

लगता था कमनीय, मनोहर कैसा प्रेम-रूप उद्यान,
उस पर ऐसे मुग्ध हुए हम, रहा न अपना भी कुछ ध्यान।
पर जैसा सोचा था मन में, हुआ नहीं वैसा परिणाम,
काँटे तो चुभ गए हृदय में, हाथ न आया कुसुम ललाम।

(६)

जिसका गुणानुवाद श्रवण कर उपजा मन में भाव नवीन,
जिसके प्रेम-पयोनिधि में फिर हम हो गए सभी विधि लीन।
हाय, वही निकला निरीह अब निराकार, निर्मम, रति-हीन,
कहाँ जायँ, क्या करें, हुए हम पराधीन, गति-हीन, मलीन।

गोपालशरणसिंह

तिथि तथा वार मिलाने की सरल और शुद्ध रीति

उपक्रम

माधुरी वर्ष १, खंड २, संख्या १ में कविवर रत्नाकरजी ने 'तिथि और वार मिलाने की एक सुगम रीति' लिखकर हिंदी-संसार के सामने एक बहुत ही रोचक और उपयोगी विषय की चर्चा छेड़ी है । इस रीति से कुछ लोग काम भी ले रहे हैं, इसका पता माधुरी वर्ष २, खंड १, संख्या २ में प्रकाशित पं० लोचनप्रसादजी पांडेय के 'तिथियों तथा वारों की गणना'-नामक लेख से मिला, जिसमें उन्होंने कई बातों पर प्रश्न करते हुए 'भानु' कवि-लिखित 'काल-प्रबोध' की चर्चा की है । मैंने यह पुस्तक मँगाकर देखी, तो सचमुच अच्छी निकली । परंतु यह विषय इतना सूक्ष्म है कि ऐसी सुगम रीतियों में स्थूलता रही जाती है, जिससे कभी-कभी ठीक मिलान नहीं मिलता । इसलिये इस विषय पर यदि ऐसा लेख लिखा जाय, जो सूक्ष्म, संक्षिप्त, सरल और उपपत्ति-सहित हो, तो आशा है कि तिथि और वार मिलानेवाले महानुभावों को बहुत सुबीता हो जायगा । इसी धारणा से यह लेख लिखा गया है । इस संबंध में कोई लेख लिखने से पहले ज्योतिःशास्त्र की कुछ आवश्यक बातें लिख देना उचित है, जिससे इसका तत्त्व समझने में कठिनाई न पड़े, और न कोई शंकाएँ ही उपस्थित हों । वर्ष दो प्रकार के प्रचलित हैं । मेष की संक्रांति से जिस वर्ष का आरंभ होता है, उसे सौर वर्ष कहते हैं, और चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा से जिस वर्ष का आरंभ होता है, उसे सौर-चांद्र वर्ष । हमारे यहाँ व्यवहार में प्रायः दूसरे ही प्रकार का वर्ष प्रचलित है । सौर वर्ष, सूर्यसिद्धांत के अनुसार (जिसका चलन आज-कल प्रायः सर्वत्र है) ३६५.२५८७६ दिन का होता है, और सौर-चांद्र वर्ष ३५४.३६७०६ दिन का । इस प्रकार एक चांद्र मास २९.५३०५९ दिन का होता है । यदि चंद्रमा और सूर्य की चाल सर्वदा एक-सी होती, तो हमारा चांद्र मास या चांद्र वर्ष सदा उतने ही दिन का होता, जितना ऊपर लिखा गया है । परंतु उनकी चाल एक-सी नहीं है, इसलिये मध्यम चांद्र मास और स्पष्ट चांद्र मास में अधिक-से-अधिक १५ घंटे का अंतर पड़ सकता है । प्रत्येक चांद्र मास का आरंभ उस क्षण से होता है, जिस क्षण में सूर्य और चंद्रमा एक सूत्र में आ जाते हैं, और जिस क्षण में पंचांगों में अमावस का अंत होना लिखा रहता है ; अथवा उस क्षण से होता है, जिस क्षण में सूर्य और चंद्रमा के बीच में पृथ्वी आ जाती है, और पंचांगों में पूर्णिमा का अंत होना लिखा रहता है । परंतु अमावस या पूर्णिमा का अंत दिन में किसी समय हो सकता है । इसलिये व्यवहार में अमावस या पूर्णिमा के दूसरे दिन से, जब कि सूर्योदय के समय साधारणतः प्रतिपदा होती है, चांद्र मास का आरंभ माना जाता है । अमावस से अमावस तक के चांद्र मास को अमांत चांद्र मास, और पूर्णिमा से पूर्णिमा तक के मास को पूर्णिमांत चांद्र मास कहते हैं । ज्योतिष-सिद्धांत में अमांत मास से ही गणना करने की विधि है । महाराष्ट्र, मदरास इत्यादि दक्षिण के प्रांतों में इसी का चलन है । युक्त-प्रांत पंजाब, बंगाल, सी० पी० इत्यादि प्रांतों में पूर्णिमांत मास का चलन है । इन दोनों प्रकार के मासों में शुक्ल-पक्ष में कोई भेद नहीं पड़ता ; परंतु कृष्ण-पक्ष में भेद पड़ जाता है । पूर्णिमांत गणना से कृष्ण-जन्माष्टमी भाद्रपद-कृष्ण ८ को होती है ; परंतु अमांत गणना के अनुसार इसी को श्रावण-कृष्ण अष्टमी कहते हैं । पूर्णिमांत गणना के अनुसार फाल्गुनी पूर्णिमा के दूसरे दिन से जिस कृष्ण-पक्ष का आरंभ होता है, उसे चैत्र का कृष्ण-पक्ष कहते हैं, और चैत्र का आरंभ इसी दिन से हो जाता है ; परंतु अमांत गणना से यह फाल्गुन ही का कृष्ण-पक्ष कहलाता है, और चैत्र का आरंभ चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा से होता है । इसी प्रकार और मासों के बारे में भी समझना चाहिए ।

एक चांद्र मास में ३० तिथियाँ होती हैं । प्रत्येक तिथि का मध्यम मान ०.९८४३५३ दिन अर्थात् ५९ घड़ी ४ पल का होता है, जो चांद्र मास के दिन को ३० से भाग देने पर आया है । ऊपर कहा जा चुका है कि अमावस का जिस क्षण में अंत होता है, उस क्षण में सूर्य और चंद्रमा एक सूत्र में रहते हैं, इसके पश्चात् चंद्रमा अपनी द्रुत

गति से आगे बढ़ जाता और इसी समय से प्रतिपदा लग जाती है। जब चंद्रमा सूर्य से १२ अंश आगे हो जाता है, तब प्रतिपदा का अंत और द्वितीया का आरंभ हो जाता है। इस प्रकार सूर्य से चंद्रमा के बारह-बारह अंश आगे बढ़ने से तिथि बदलती है। जिस समय सूर्य और चंद्रमा का अंतर १८० अंश का हो जाता है, उस समय पूर्णिमा अर्थात् १५वीं तिथि का अंत हो जाता है। जब १६वीं तिथि का आरंभ होता है, तब कृष्ण-पक्ष लगता है। १६वीं तिथि को कृष्ण-पक्ष की प्रतिपदा, १७वीं तिथि को कृष्ण-पक्ष की द्वितीया इत्यादि कहते हैं। ३०वीं तिथि को फिर अमावास्या होती है। इसीलिये पंचांगों में अमावस को ३० की संख्या से प्रकट करते हैं।

सूर्य और चंद्रमा की विषम गतियों के कारण तिथियों का मान भी सदा उतना ही नहीं होता, जितना ऊपर लिखा गया है। कभी-कभी एक तिथि ६६-६७ घड़ियों की होती है, और कभी ५३-५४ घड़ियों की। परंतु दिन सदा ६० घड़ियों का होता है। इसलिये कभी-कभी एक ही तिथि दो दिनों में पड़ जाती और कभी-कभी एक ही दिन में तीन तिथियों का मेल हो जाता है। सूर्योदय के समय जो तिथि होती है, वही उस दिन (दिन और रात) मानी जाती है, चाहे उस तिथि का अंत सूर्योदय के बाद दो-तीन मिनट ही में क्यों न हो जाय। इसलिये यदि किसी तिथि का प्रारंभ सूर्योदय से एक घड़ी या दो-चार पल पहले ही हो जाय, और उस तिथि का मान ६६ घड़ी या ६२-६३ घड़ी ही का हो, तो वह तिथि दूसरे सूर्योदय के समय भी वर्तमान रहेगी, और इसलिये वह दो दिन मानी जायगी। परंतु यदि तिथि का आरंभ सूर्योदय के थोड़ी ही देर पीछे हो, और उसका मान ५५ या ५८-५९ घड़ी का हो, तो वह तिथि दूसरे सूर्योदय के पहले ही बीत जायगी, और सूर्योदय के समय दूसरी तिथि लग जायगी। इसलिये इस तिथि का मान लौकिक व्यवहार में नहीं होता। ऐसी तिथि को क्षय-तिथि या अवम-तिथि कहते हैं। साधारण भाषा में कहते हैं कि इस तिथि की हानि है। इसी कारण किसी पक्ष में १६ दिन होते हैं, और किसी में १४ दिन। कभी कभी १३ दिनों का ही पक्ष होता है; परंतु यह संयोग कई वर्षों में पड़ता है। शायद ही कोई महीना ऐसा होता हो, जिसमें अधि-तिथि या अवम-तिथि न पड़ती हो। इस वर्ष के गत आश्विन-मास में आश्विन-कृष्ण प्रतिपदा के दो दिन थे, और आश्विन-शुक्ल तृतीया की हानि। कभी एक ही पक्ष में अधि और अवम-तिथियाँ पड़ जाती हैं। जैसे इस वर्ष के गत कार्त्तिक-मास के कृष्ण-पक्ष में पंचमी अधितिथि थी, और एकादशी क्षय-तिथि।

सूर्योदय सब जगह एक ही समय नहीं होता, आगे-पीछे होता है। इसलिये संभव है कि जो तिथि पूर्व के प्रांतों में सूर्योदय के समय वर्तमान हो, वह पश्चिम के प्रांतों में न हो। इसलिये पूर्व और पश्चिम के भेद से भी तिथियों में एक दिन का अंतर पड़ सकता है। कभी-कभी काशी और लखनऊ के पंचांगों में ही यह अंतर देखा जाता है, यद्यपि काशी से लखनऊ केवल २० पल या ८ मिनट पश्चिम है। अर्थात् जिस समय काशी में सूर्योदय होता है, उससे केवल ८ मिनट पीछे लखनऊ में।

इसी प्रकार चांद्र मासों में भी अधिमास और क्षय-मास होता है। एक संक्रांति से दूसरी संक्रांति तक के महीने को सौर मास कहते हैं, जिसका सबसे बड़ा मान ३१·६४४७२ दिन का और सबसे छोटा मान २९·३१७७७ दिन का होता है। एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक के समय को अथवा एक आधीरात से दूसरी आधीरात तक के समय को दिन कहते हैं। भारतवर्ष में आजकल पहले ही तरह का दिन सर्वत्र प्रचलित है। ऊपर कहा गया है कि मध्यम चांद्र मास २९·५३०५९ दिन का होता है। इसलिये यह स्पष्ट है कि कोई सौर मास चांद्र मास से भी छोटा होता है। जिस क्षण में संक्रांति होती है, उसमें थोड़ी ही देर पीछे यदि अमावस का अंत हो, तो दूसरी अमावस उसी सौर मास में पड़ जाती है, अर्थात् दो संक्रांतियों के बीच में दो अमावसें पड़ जाती हैं। बस, इसी चांद्र मास को दुहरा देते हैं, और उसको अधिमास, मलमास या लौंद का महीना कहते हैं। ऐसा करने से सौर और चांद्र मासों में एक महीने से अधिक अंतर नहीं पड़ने पाता, तथा चांद्र मासों और ऋतुओं का मेल भी नहीं बिगड़ने पाता। मुसलमानों में यह प्रथा नहीं है। इसीलिये उनके चांद्र मास तथा उसके आश्रित पर्व-त्योहार सब ऋतुओं में पड़ा करते हैं। प्रायः तीसरे वर्ष कोई महीना अधिमास होता है। इस नियम

के कारण मेष की संक्रांति अमांत गणना से चैत्र-मास में तथा पूर्णिमांत गणना से चैत्र के शुक्ल-पक्ष अथवा वैशाख के कृष्ण-पक्ष ही में पड़ती है। यह बात याद रखनी चाहिए। कभी-कभी ऐसा होता है कि दो संक्रांतियों के बीच में कोई अमावस नहीं पड़ती। ऐसी दशा में वह चांद्र मास छोड़ दिया जाता है। इसी को क्षय मास कहते हैं। कार्त्तिक, मार्गशीर्ष और पौष के महीने ही क्षय होते हैं। जब ऐसा संयोग आ पड़ता है, तब उस वर्ष दो अधिमास होते हैं। सौभाग्य से यह संयोग सौ वर्ष में एक या दो बार पड़ता है।

तिथि और मास की चर्चा यहाँ तक हो चुकी। अब गत और वर्तमान संवतों के संबंध में भी थोड़ा-सा लिख देने की आवश्यकता है, जिससे कोई भ्रम में न पड़े। हमारे यहाँ शास्त्रीय पद्धति 'गत' संवत् लिखने की है। इस वर्ष हम संवत् १९८० विक्रमीय अथवा १८४५ शालिवाहन-शकाब्द लिखते हैं। इसका अर्थ यह है कि इस वर्ष के आरंभ में, जो चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा या मेष की संक्रांति से हुआ है, विक्रम के १९८० वर्ष बीत गए, और १९८१वाँ लगा। इसलिये यदि इस वर्ष को हम १९८० विक्रमीय लिखें, तो गत संवत् का प्रयोग होगा, और यदि १९८१ लिखें, तो वर्तमान संवत् का। परंतु हमारे यहाँ आजकल तो वर्तमान संवत् लिखने की प्रणाली है ही नहीं, भूतकाल में भी बहुत कम थी। पंचांगों में इसीलिये संवत् के साथ 'अतीत' या 'गत'-शब्द भी लिखते हैं। जैसे विक्रमादित्यस्यातीताब्दाः १९८०, कलेर्गताब्दाः ५०२४ इत्यादि। हिंदी में इसी बात को 'बीते' या 'याते' शब्द से सूचित करते हैं, जैसा कि पांडेयजी के उदाहरण में प्रयुक्त हुआ है। ईसवी सन् वर्तमान होता है। वर्तमान अँगरेज़ी सन् १९२३ ई० है। इसका अर्थ यह है कि पिछली जनवरी की पहली तारीख़ जिस समय आरंभ हुई, उस समय ईसा के १९२२ वर्ष व्यतीत हो गए, और १९२३वाँ वर्ष लगा। इतिहास की तिथियों को मिलाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए; नहीं तो बड़ी गड़बड़ हो जाती है। ऊपर यह बतलाया जा चुका है कि आजकल अथवा प्राचीन काल में गत संवतों के ही लिखने की परिपाटी थी। इसलिये यदि किसी प्राचीन संवत् को कोई महाशय वर्तमान समझकर लिखें, तो कृपा करके यह भी स्पष्ट कर दें कि वह 'वर्तमान' है; नहीं तो इससे बड़ा धोखा हो जायगा। तिथि, मास और संवतों के बारे में इतनी चर्चा करके अब मैं मुख्य विषय की ओर आता हूँ। आशा है, अब तिथि तथा वार मिलाते समय किसी को कोई भ्रम न होगा।

किसी प्राचीन संवत् की तिथि और वार मिलाने के लिये किसी तिथि को आधार-तिथि मानना चाहिए। ज्योतिष में कलियुग के आरंभ-काल में जो तिथि और वार थे, वे ही आधार माने गए हैं। परंतु इस समय हमको उतनी दूर जाने की आवश्यकता नहीं है।

सुविधा के लिये संवत् २६४ विक्रमीय (गत) की मेष-संक्रांति और चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा के आरंभ-काल को आधार माना जायगा; क्योंकि इस संवत् में चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा का आरंभ और मेष-संक्रांति एक ही दिन अर्थात् सोमवार को थी, और मेष-संक्रांति से चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा साढ़े पंद्रह घड़ी अथवा ·२५९३५ दिन पहले हुई थी। २६४ विक्रमीय में शालिवाहन-शकाब्द १२९, और ईसवी सन् २०७ था।

सारिणी की व्याख्या

ऊपर बतलाया गया है कि एक सौर वर्ष ३६५·२५८७६ दिन का होता है, जो ५२ सप्ताह और १·२५८७६ दिन के समान है। इसलिये यह स्पष्ट है कि यदि किसी संवत् की मेष-संक्रांति रविवार को सूर्योदय के समय लगे, तो १ वर्ष बाद वह सोमवार को सूर्योदय से ·२५८७६ दिन पर, और दो वर्ष बाद मंगलवार को सूर्योदय से ·५१७५२ दिन पर लगेगी। इस प्रकार प्रतिवर्ष १·२५८७६ दिन आगे बढ़ते-बढ़ते छठे वर्ष संक्रांति फिर रविवार को सूर्योदय से ·५५२५४ दिन पर लगेगी। बस, इसी नियम के अनुसार कोष्ठक १ के स्तंभ २ की संख्याएँ आई हैं।

अब चांद्र वर्ष की ओर आइए। एक चांद्र वर्ष ३५४·३६७०६ दिन का होता है। इसलिये यदि किसी संवत् में चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा का आरंभ और मेष-संक्रांति एक-साथ हों, तो दूसरे वर्ष चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा का आरंभ ३६५·२५८७६-३५४·३६७०६ अर्थात् १०·८९१७० दिन पहले ही हो जायगा, अथवा यों कहिए कि चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा के आरंभ से १०·८९१७० दिन पीछे संक्रांति लगेगी।

तीसरे वर्ष चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा का आरंभ १०·८६१७० दिन और पहले होगा, अर्थात् चैत्र-शुक्ल १ के आरंभ से १०·८६१७०×१०·८६१७०=२१·७८३४० दिन पीछे मेष-संक्रांति होगी। इसी प्रकार चौथे वर्ष मेष की संक्रांति से चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा १०·८६१७०×३=३२·६७५१० दिन पहले होगी। परंतु चांद्र मास २९·५३०५९ दिन का होता है, इसलिये मेष-संक्रांति के पहले एक अमावस और पड़ जायगी, बीच में कोई महीना अधिमास का कर दिया जायगा, और चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा का आरंभ ३२·६७५१०-२९·५३०५९=३·१४४५१ दिन पहले माना जायगा। इसी प्रकार प्रतिवर्ष अंतर पड़ता जाता है, और जब अंतर एक चांद्र मास के दिनों से अधिक होता है, तब पूरे चांद्र मास के दिन निकाल दिए जाते हैं। इसी नियम के अनुसार कोष्ठक १ के स्तंभ ३ की संख्याएँ प्राप्त हुई हैं, जिससे तुरंत जाना जा सकता है कि किस सौर वर्ष की मेष-संक्रांति चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा के आरंभ से कितने दिन पीछे पड़ी।

जिस संवत् को आधार माना गया है, उसमें चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा के आरंभ से ·२५९३५ दिन पीछे मेष की संक्रांति पड़ी थी। इसलिये यह कोष्ठक में सबसे ऊपर लिखा गया है। उस दिन सोमवार था, और सोमवार को सूर्योदय से ·५४५६९ दिन पर संक्रांति थी। इसलिये दूसरे स्तंभ के ऊपर २·५४५६९ की संख्या रक्खी गई है। हमारे यहाँ सप्ताह रविवार से आरंभ होता है। इसलिये सप्ताह का पहला दिन रविवार हुआ। रविवार को १ के अंक से, सोमवार को २ के अंक से, मंगलवार को ३ से, बुधवार को ४ से, गुरुवार को ५ से, शुक्रवार को ६ से, और शनिवार को ७ या ० शून्य से प्रकट किया जायगा।

कोष्ठक २—एक चांद्र मास २९·५३०५९ दिन का होता है, जो ४ सप्ताह और १·५३०५९ दिन के समान है। इसलिये यह स्पष्ट है कि यदि किसी शुक्ल-पक्ष की प्रतिपदा रविवार को सूर्योदय के समय आरंभ होती है, तो आनेवाले शुक्ल-पक्ष की प्रतिपदा सोमवार को ·५३०५९ दिन सूर्योदय के उपरांत आरंभ होगी। इसके बाद शुक्ल-पक्ष की जो प्रतिपदा आवेगी, उसका आरंभ बुध को ·०६११८ दिन सूर्योदय के उपरांत होगा। ५ महीने पूरे होने पर फिर शुक्ल-पक्ष की प्रतिपदा का आरंभ रविवार को सूर्योदय से ·६५२९४ दिन पर होगा। इसी नियम के अनुसार कोष्ठक २ की सारिणी बनाई गई है।

कोष्ठक ३ की सारिणी भी इसी प्रकार तिथियों के मध्यम मान से बनाई गई है।

कोष्ठक ४ से यह ज्ञात होता है कि चैत्र-शुक्ल-प्रतिपदा के आरंभ से कितने दिन पीछे मेष-संक्रांति के होने से कौन महीना अधिमास का होगा।

अब इन चार कोष्ठकों के सहारे तिथि और वार मिलाने का उदाहरण लिया जाता है।

(१) उदाहरण—

"संवत रस ग्रह अंग शशि, बीते अंक प्रमान,
भादों शुक्ल गनेस तिथि, बुद्ध बार शुभखान।"

इस दोहे से प्रकट होता है कि संवत् १८९६ विक्रमीय (गत) में भादों-सुदी चौथ बुधवार को थी। इसलिये यह जाँचना है कि क्या यह बात ज्योतिष से भी सिद्ध होती है ?

१८९६-२६४=१६३२=१०००+६००+३०+२

संवत् २६४ में मेष-संक्रांति	२·५४५६९ वार को	चैत्र-शुक्ल	प्रतिपदा के	आरंभ से	·२५९३५	दिन	पीछे थी	कोष्ठक १ के अनुसार
१००० सौर वर्षों में वह	५·७५६४८ दिन पर	,,	,,	,,	२४·४४४७६	,,	पड़ेगी	
६०० ,, वह	६·२५३८९	,,	,,	,,	८·७६०७४	,,	पड़ेगी	
३० ,, वह	२·७६२६९	,,	,,	,,	१·९१४५७	,,	पड़ेगी	
२ ,, वह	२·५१७५१	,,	,,	,,	२१·७८३४०	,,	पड़ेगी	
जोड़ने से संवत् १८९६ की मेष-संक्रांति	१९·८३६२६ वार को	,,	,,	,,	५७·१६२८२	,,	पड़ेगी	

१९·८३६२६ को ७ से भाग देने पर ५·८३६२६ वार आया। इसलिये १८९६ की मेष-संक्रांति सप्ताह के पाँचवें दिन, अर्थात् गुरुवार को, सूर्योदय से ·८३६२६ दिन पर लगी।

५७·१६२८८२ दिन एक चांद्र मास से अधिक हैं, इसलिये इनमें से १ चांद्र मास के दिन घटाने पर शेष हुए (५७·१६२८८२-२६·५३०५६) २७·६३२२३ दिन। इससे सिद्ध होता है कि संवत् १८६६ वि० की चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा से २७·६३२२३ दिन पीछे मेष की संक्रांति हुई। अब यह जानना है कि संवत् १८६६ की चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा का आरंभ किस वार को हुआ। इसके लिये मेष-संक्रांति के वार में से २७·६३२२३ दिन घटा देने चाहिए। परंतु ऐसा हो नहीं सकता; क्योंकि मेष-संक्रांति का वार ५·८३६२६ है। इसलिये इसमें उतने सप्ताह के दिन जोड़ देने चाहिए, जिनके जोड़ने से २७·६३२२३ घट सकें। इस प्रकार ४ सप्ताह के दिन अर्थात् २८ जोड़ देने पर ३३·८३६२६ वार आया। इसमें २७·६३२२३ दिन घटाए, तो ६·२०४०३ वार शेष हुआ। बस, संवत् १८६६ की चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा का आरंभ सप्ताह के छठे दिन शुक्रवार को सूर्योदय से ·२०४०३ दिन पर हुआ।

अब देखना चाहिए कि संवत् १८६६ वि० में कोई महीना अधिमास का था या नहीं। ऊपर यह बतलाया भी जा चुका है कि चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा के आरंभ से २७·६३२२३ दिन पीछे मेष की संक्रांति हुई, इसलिये कोष्ठक ४ से प्रकट है कि इस संवत् में ज्येष्ठ का महीना अधिमास का होगा; क्योंकि २७·६३२२३ दिन २६·२३६२ दिन से अधिक है। इस कारण चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा के आरंभ से भाद्र-शुक्ल प्रतिपदा के आरंभ तक ६ चांद्र मास हुए; क्योंकि—

चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा के आरंभ से वैशाख-शुक्ल प्रतिपदा के आरंभ तक	१ मास
चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा के आरंभ से पहले जेठ की शुक्ल १ के आरंभ तक	२ मास
चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा के आरंभ से दूसरे जेठ की शुक्ल १ के आरंभ तक	३ मास
चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के आरंभ से आषाढ़ की शुक्ल १ के आरंभ तक	४ मास
चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा के आरंभ से श्रावण की शुक्ल १ के आरंभ तक	५ मास
चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा के आरंभ से भाद्रपद की शुक्ल प्रतिपदा के आरंभ तक	६ मास हुए।

फिर भाद्र-शुक्ल १ के आरंभ से भाद्र-शुक्ल ४ के अंत तक ४ तिथियाँ हुईं। इसलिये ६ चांद्र मासों में पूरे सप्ताहों की संख्या निकालने के बाद २·१८३५३ दिन आए (देखो कोष्ठक २), और ४ तिथियों के दिन हैं ३·६३७४१,

इसलिये १८६६ वि० की चैत्र-शुक्ल १ के आरंभ का वार है	६·२०४०३
इसलिये १८६६ वि० की भाद्र-शुक्ल १ के आरंभ का दिन है	२·१८३५३
इसलिये १८६६ वि० की भाद्र-शुक्ल १ के आरंभ से भाद्र-शुक्ल ४ के अंत का दिन है	३·६३७४१
∴ १८६६ की भाद्र-शुक्ल ४ का अंत (मध्यम मान से)	१२·३२४६७

वार अथवा ५·३२४६७ वार को हुआ, जो कि सप्ताह का ५वाँ दिन गुरुवार है। अतएव भादों-सुदी ४ का अंत गुरुवार को सूर्योदय से ·३२४६७ दिन पर हुआ। परंतु पहले बतलाया जा चुका है कि तिथि का स्पष्ट अंत मध्यम अंत से अधिक-से-अधिक ·६ दिन आगे-पीछे होता है। इसलिये स्पष्ट है कि चौथ का अंत या तो गुरुवार को ·६२४६७ दिन तक में हुआ हो, या बुधवार को ·७२४६७ दिन के आसपास। इसलिये भादों की गणेश-चौथ या तो बुधवार को थी, या गुरुवार को। दोहे में बुधवार दिया हुआ है, इसलिये ठीक है।

इस विधि को अच्छी तरह समझ लेने पर यह क्रिया दस मिनट में की जा सकती है। दूसरे उदाहरण के लिये अनहिलवाड़े के सोलंकी-राजा मूलराज के दान-पत्र की तिथि और वार लिए जाते हैं—

(२) उदाहरण—

"सूर्यग्रहणपर्वणि संवत् १०४३ माघ-वदी १५ (अमावास्या) रवौ।" *

इस उदाहरण में यह स्पष्ट नहीं है कि १०४३ वि० गत है, या वर्तमान। पहले इसको 'गत' ही मानकर क्रिया की जाती है। यदि गत से ठीक आवेगा, तो अच्छी बात है; नहीं तो इसको १०४२ मानकर क्रिया की जायगी। यदि १०४२ से ठीक हुआ, तो समझना होगा कि दान-पत्र में लिखा १०४३ संवत् 'वर्तमान'-पद्धति के अनुसार प्रयुक्त हुआ है।

* इंडियन एंटीक्वेरी, पृष्ठ १९१-१९२

१०४३–२६४=७७९ सौर वर्ष=७००+७०+९ सौर वर्ष

संवत्			
२६४	२·५४५६६ वार	०·२५९३५ दिन	
७००	६·१२९५४ दिन	५·२१९१० ,,	
७०	४·११२९५ ,,	२४·१५४३८ ,,	
९	४·३२८८१ ,,	९·४३३५५ ,,	
योग १०४३	१७·११६९९ वार	३९·१४६३८ दिन	
मेष-संक्रांति का वार	वा ३·११६९९ वार	२९·५३०५९	चांद्र मास के सौर दिन घटाए
	वा १०·११६९९ ,,	९·६१५७९ दिन	(चैत्र-शुक्ल १ के आरंभ से मेष-संक्रांति तक के दिन)
	९·६१५७९ दिन		

०·५०१२० वार, अर्थात् चैत्र-शुक्ल १ का आरंभ शनिवार को सूर्योदय से ·५०१२० दिन पर हुआ। कोष्ठक ४ से ज्ञात होता है कि इस वर्ष कोई महीना अधिमास का नहीं था; क्योंकि चैत्र-शुक्ल १ से केवल ९·६१५७९ दिन पर संक्रांति थी। इसलिये चैत्र-शुक्ल १ के आरंभ से माघ की अमावास्या तक १० चांद्र मास होते हैं, जिसमें से पूरे सप्ताहों के दिन निकाल देने पर (दूसरे कोष्ठक से) १·३०५८९ दिन आते हैं । इसलिये इसको ·५०१२० में जोड़ा, तो आए १·८०७०९ वार। इसलिये १०४३ वि० की माघी अमावास्या का मध्यम अंत रविवार को सूर्योदय से ·८०७०९ दिन पर हुआ । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अमावास्या या तो रविवार ही को रही हो, या सोमवार को । दान-पत्र में रविवार दिया हुआ है, इसलिये इसकी तिथि और वार मिलता है। और, १०४३ संवत् गत है ।

(३) उदाहरण—

"शरधर्मांगानिशेशं विक्रमरविभूपवत्सरे याते ।
आश्विनकृष्णनवम्यां सौम्ये ग्रंथः समाप्तोऽयम् ।"

संवत् १८९५ वि० (गत) आश्विन-कृष्ण ९ बुधवार—

१८९५–२६४=१६३१=१०००+६००+३०+१

२६४	२·५४५६९	·२५९३५
१०००	५·७५६४८	२४·४४४७६
६००	६·२५३८९	८·७६०७४
३०	२·७६२६९	१·९१४५७
१	१·२५८७६	१०·८९१७०
योगफल १८९५	१८·५७७५१	४६·२७११२
	—१६·७४०५३	२९·५३०५९
चैत्र-शुक्ल १ का वार	१·८३६९८	१६·७४०५३
५ चांद्र मासों का वार	०·६५२९४	(कोष्ठक २)
२४ तिथियों का वार	२·६२४४७	(कोष्ठक ३)
आश्विन-कृष्ण ९ के अंत का वार	५·११४३९	

१८९५ वि० की मेष-संक्रांति का वार १८·५७७५१ आया, जिसमें से पूरे सप्ताहों के दिन निकालने पर ४·५७७५१ वार हुआ । इसलिये मेष-संक्रांति बुधवार को सूर्योदय से ·५७७५१ दिन पर हुई। चैत्र-शुक्ल १ के आरंभ से मेष-संक्रांति तक १६·७४०५३ दिन होते हैं, इसलिये इस वर्ष मलमास नहीं है। चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा का आरंभ १·८३६९८ वार को, अथवा रविवार को सूर्योदय से ·८३६९८ दिन पर हुआ। चैत्र-शुक्ल १ के आरंभ से भाद्रपद की अमावस तक ५ महीने हुए । भाद्रपद-शुक्ल १ से आश्विन-कृष्ण ९ के अंत तक २४ तिथियाँ हैं ।

इसलिये आश्विन-कृष्ण ९ या तो गुरुवार को रही हो, या बुधवार को, श्लोक में बुधवार दिया है, इसलिये ठीक है। इस प्रकार पांडेय लोचनप्रसादजी के दिए हुए सब दोहों की तिथि और वार ठीक मिलते हैं ।*

* इस लेख के लिखने तथा सारिणी बनाने में लेखक को Indian Chronology, ज्योतिर्गणित और भारतीय ज्योतिः-शास्त्र से बहुत सहायता मिली है। इसलिये लेखक इन ग्रंथों के लिखनेवाले महानुभावों का बड़ा ऋणी है ।

कोष्ठक १			कोष्ठक २		कोष्ठक ३	
संवत् २६४	मेष-संक्रांति का वार वार२·५४५६६	चैत्र शुक्ल १ के आरंभ से मेष-संक्रांति तक ·२५६३५ दिन				
सौर वर्ष	मेष-संक्रांति का दिन	चैत्र-शुक्ल १ के आरंभकाल से कितने दिन पीछे मेष-संक्रांति होती है	चांद्र मास	सप्ताह के किस दिन चांद्र मास बदलता है	तिथि शुक्ल पक्ष	सप्ताह के किस दिन तिथि पड़ती है
१	१·२५८७६	१०·८९१७०	१	१·५३०५९	१	·९८४३५
२	२·५१७५१	२१·७८३४०	२	३·०६११८	२	१·९६८७१
३	३·७७६२७	३·१४४५२	३	४·५९१७६	३	२·९५३०६
४	५·०३५०३	१४·०३६२२	४	६·१२२३५	४	३·९३७४१
५	६·२९३७८	२४·९२७९२	५	०·६५२९४	५	४·९२१७६
६	०·५५२५४	६·२८९०३	६	२·१८३५३	६	५·९०६१२
७	१·८११३०	१७·१८०७३	७	३·७१४१२	७	६·८९०४७
८	३·०७००५	२८·०७२४३	८	५·२४४७०	८	०·८७४८२
९	४·३२८८१	९·४३३५५	९	६·७७५२९	९	१·८५९१८
१०	५·५८७५६	२०·३२५२५	१०	१·३०५८८	१०	२·८४३५३
२०	४·१७५१३	११·११९९१	११	२·८३६४७	११	३·८२७८८
३०	२·७६२६९	१·९१४५७	१२	४·३६७०६	१२	४·८१२२४
४०	१·३५०२६	२२·२३९८१	१३	५·८९७६४	१३	५·७९६५९
५०	६·९३७८२	१३·०३४४७			१४	६·७८०९४
६०	५·५२५३९	३·८२९१३			१५	०·७६५२९
७०	४·११२९५	२४·१५४३८			कृष्ण-पक्ष १ या १६	१·७४९६५
८०	२·७००५२	१४·९४९०४			„ २ „ १७	२·७३४००
९०	१·२८८०८	५·७४३७०			„ ३ „ १८	३·७१८३५
१००	६·८७५६५	२६·०६८९५			„ ४ „ १९	४·७०२७०
२००	६·७५१३०	२२·६०७३१			„ ५ „ २०	५·६८७०६
३००	६·६२६९५	१९·१४५६६			„ ६ „ २१	६·६७१४१
४००	६·५०२५९	१५·६८४०२			„ ७ „ २२	०·६५५७६
५००	६·३७८२४	१२·२२२३८			„ ८ „ २३	१·६४०१२
६००	६·२५३८९	८·७६०७४			„ ९ „ २४	२·६२४४७
७००	६·१२९५४	५·२९९१०			„ १० „ २५	३·६०८८२
८००	६·००५१९	१·८३७४६			„ ११ „ २६	४·५९३१८
९००	५·८८०८३	२७·९०६४१			„ १२ „ २७	५·५७७५३
१०००	५·७५६४८	२४·४४४७६			„ १३ „ २८	६·५६१८८
२०००	४·५१२९६	१९·३५८९४			„ १४ „ २९	०·५४६२३
३०००	३·२६[illegible]४४	१४·२७३१२			अमावस „ ३०	१·५३०५९
४०००	२·०२५९३	९·१८७३०				
५०००	०·७८२४१	४·१०१४७				

कोष्ठक ४

किस संवत् में कौन महीना दो होगा ?

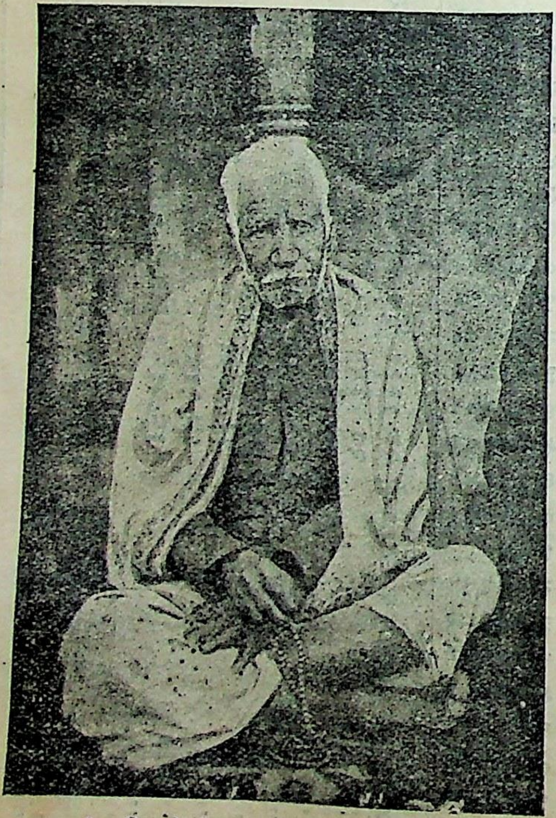
यदि चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा के आरंभ से २८·१२५९ दिन बाद मेष की संक्रांति हो, तो वैशाख दो होंगे।
„ „ „ „ २६·२३६२ „ „ „ „ जेठ „
„ „ „ „ २४·१२२१ „ „ „ „ आषाढ़ „
„ „ „ „ २२·१७७४ „ „ „ „ श्रावण „
„ „ „ „ २०·६८८४ „ „ „ „ भाद्रपद „
„ „ „ „ १९·७७८६ „ „ „ „ आश्विन „
„ „ „ „ १८·६३८९ „ „ „ „ चैत्र „
„ „ „ „ १८·६३८९ दिन के भीतर मेष-संक्रांति लगे, तो इस वर्ष मलमास न होगा।

फागुन और कार्तिक बहुत कम मलमास होते हैं। कार्तिक, मार्गशीर्ष या पौष के महीने क्षय होते हैं, अधिक नहीं।

महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

कविवर श्रीगोकुलप्रसादजी "व्रज"

हिंदी कविता के अगाध रत्नाकर में अभी कुछ ऐसे प्रतिभा-पुंज अमूल्य रत्न पड़े हैं, जिनसे अधिकांश हिंदी-काव्य-मर्मज्ञ रसिक जन पूर्ण रूप से अनभिज्ञ हैं। ये शोभा-सिंधु रत्न किसी समय बड़े-बड़े भूपालों के मौलि-मुकुट-मणि होकर अपनी ज्योत्स्ना से दिगंत को देदीप्यमान कर रहे थे; परंतु अब काल की कुटिल गति के कारण उनकी वह अनुपम आभा अज्ञात-सिंधु के अतल तल में अव्यवस्थित रूप से पड़ी हुई विलीयमान हो रही है। इन्हीं रत्नों में बलरामपुर-राज्य के प्रतिष्ठित कविवर स्वर्गीय श्रीयुत गोकुलप्रसादजी भी हैं।



श्रीकविवर गोकुलप्रसादजी "व्रज"

लाला गोकुलप्रसादजी का जन्म चैत्र-कृष्ण १, सं० १८७७ विक्रमीय में बलरामपुर, ज़िला गोंडा में, कायस्थ (श्रीवास्तव दूसरे) जाति के प्रसिद्ध अखावरी-वंश में हुआ था। आपके पूर्वज अपने प्राचीन स्थान (विहार-प्रांत) से लगभग ३०० वर्ष हुए, बलरामपुर में आकर बसे थे। अपने जन्म-काल के विषय में कविजी स्वयं इस प्रकार लिखते हैं—

"संवत ⁷रिषि मुनि⁷ नाग⁸ ससि, संवत सोहत स्वच्छ;
नषत रेवती, लगन झष, गोकुल जन्म प्रत्यच्छ।"

हिंदी, संस्कृत और फ़ारसी में योग्यता प्राप्त करने के बाद राजा बहादुर की अमलदारी में, कटरा और पहाड़ापुर (गोंडा-प्रांत) में, यह कोतवाल के पद पर नियुक्त हुए। यहाँ यह कई वर्ष रहे। इस कार्य से इन्हें रियासत के प्रबंध-कार्य का पूर्ण अनुभव और ज्ञान हो गया। उसके बाद कुछ काल तक यह तुलसीपुर के राजा दिग्राजसिंह के इलाक़े (बाँकी) में तैनात रहे।

काव्य और साहित्य में इनका प्रगाढ़ प्रेम पहले ही से था; परंतु इन्हें स्वयं काव्य-रचना करने की कामना तीस वर्ष की अवस्था में हुई। उस समय इन्होंने परिश्रम के साथ काव्य-ग्रंथों का अध्ययन आरंभ किया। ये ग्रंथ इन्होंने दीवान श्रीयुत रामप्रसाद, 'शिवसिंहसरोज' के रचयिता भिनगर के प्रसिद्ध ठाकुर शिवसिंहजी श्रीयुत पं० गदाधरप्रसाद और परमहंस बाबा दीनदयाल* गिरि से पढ़े, और अपने अदम्य अध्यवसाय

* इनके मुख्य गुरु बाबा दीनदयाल गिरि थे। इसका प्रमाण 'चित्र-कलाधर' के निम्न-लिखित दोहे से मिलता है। विद्या-गुरु-वंदना—

"पाए जा पद-प्रीति सों, कबित-रीति-सारंस;
श्रीगुरु दीनदयाल गिरि, परमहंस-अवतंस।"

और विलक्षण बुद्धि के कारण यह थोड़े ही काल में काव्य-शास्त्र में निपुण हो गए।

संवत् १८४८ वि० में बलरामपुर-नरेश महाराज दिग्विजयसिंह ने इनको अपने दरबार में बुलाकर रक्खा। वहाँ यह ज़िंदगी भर रहे। कविजी स्वयं लिखते हैं—

"बुधि, बिद्या, दुइ चंद्रमा, सोहै भादौं मास;
महाराज दिग्बिजयसिंह, बोलि पठै निज पास।"

इनकी अपूर्व योग्यता और प्रखर बुद्धि देखकर महाराज इनका बड़ा मान और सत्कार करने लगे। महाराज का इन पर इतना विश्वास हो गया कि वह इनको अच्छे अच्छे महत्त्व के कार्य सौंपने लगे। पहले तोशाख़ाना सौंपा। फिर धीरे-धीरे सीर के गाँवों का अफ़सर कर दिया। आगे चलकर इनके ज़िम्मे अपने महल फूलपुर और अन्यान्य महलों तथा बाज़ारों के बनवाने का काम भी कर दिया। सोहागिनपुर और छिनौनी दो गाँव इनके ठेके में रहे। राज्य की ओर से इनकी सवारी के लिये एक घोड़ा रहा करता था। इनकी सुजनता सच्चरित्रता तथा कुशलता का यह प्रबल प्रमाण है कि इनके लिये महल के भीतर पर्दा न था, दरबार में प्रवेश करने के लिय किसी समय रोक-टोक नहीं थी। यह लगातार २० वर्ष पर्यंत बलरामपुर-म्युनिसिपलिटी के मेंबर रहे, और राज्य-कार्य में भी योग देते रहे।

कुछ समय बाद इनका चित्त राजनीतिक कामों से हटने लगा, और केवल काव्य-शास्त्र-विनोद ही की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हुई। इस समय इन्होंने निम्न-लिखित एक छोटीसी कविता लिखकर महाराज के सम्मुख रक्खी—

"एक दिवस अस मन अनुमाना;
जग में नाम कवन बिधि माना।
कितौ पुंज करि पुन्य को, कितौ पुंज करि पाप;
गोकुल द्वै बिधि लोक में, जाहिर नाम प्रताप।
अमर होत है नाम जग, कीरति कबिता जाहि;
बाग, बावली, ताल, पुर, गिरत परत मिटि जाहिं।"

महाराज इस कविता को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसी दिन से गोकुलप्रसादजी को प्रसन्नता-पूर्वक काव्य-रचना तथा काव्य-ग्रंथ-निर्माण करने की आज्ञा दे दी। गोकुलप्रसादजी ने क्रम से रियासत के सब काम छोड़ दिए। केवल ख़ैरातख़ाना इनके अधीन रहा।

इनके ग्रंथ बलरामपुर के श्रीजंगबहादुर के यंत्रालय से लीथो-टाइप में छपकर प्रकाशित हुए हैं।

इनके बनाए हुए लगभग बीस काव्य-ग्रंथों का पता लगता है। इनका सर्व-प्रथम ग्रंथ अष्टयाम-प्रकाश है। इनका रचना-काल सं० १६१८ वि० है। इस ग्रंथ में कवि ने महाराज दिग्विजयसिंहजी का आठो याम का समय-विवरण (time-table) दिया है। इसमें महाराज की दिन-चर्या, और रात्रिचर्या का वर्णन करते हुए कविजी ने आठो याम के व्यवहार में उपदेशात्मक रीति से राजों के कर्तव्यों का दिग्दर्शन कराया है। उदाहरणार्थ इस ग्रंथ का एक दोहा नीचे दिया जाता है—

"राजनीति औषध बिमल, धर्म-दान जल धोय;
दृग अंजन अंजित करै, तौ मद अंध न होय।"

वाह! कैसा बढ़िया अंजन है!

इसी ग्रंथ में वर्णन करते हुए गोकुलजी ने प्रोषितपतिका नायिका का कैसा उत्तम चित्र खींचा है, देखिए—

"बारन मुक्त कि ब्योम सितारन मंगल की 'व्रज' माँग में सेंदुर;
बेसरि बेसकि वै कबि के छबि, केसरि आड़ कि बेसुर के गुर।
कान के बीर हलैं कि चलैं रथ, हैं दृग की मृग जोरें जवांकुर;
चाँदनी चंद कि चंद-मुखी-मुख, जानि परै न हमैं दुख से फुर।"

आगे चलकर प्रवत्स्यत्पतिका नायिका का कैसा विशद वर्णन है! देखिए—

"झर-झर लता द्रुम-दल ह्वैहैं हरे-हरे,
सारे हीरे करिकै समीर मौन भरैगो ;
कूकैं कोकिला की सुनि मन उपजावैं मोद,
सिलीमुख-धुनि पुनि आनि कान परैगो।
'गोकुल' प्रकास बन बिकसे पलास पेस,
मंजु मंजरी रसाल देखि दुःख हरैगो ;
सुख की समाज जो पै आवै ऋतुराज आज,
जाहु ब्रजराज, रतिराज काह करैगो।"

इनका दूसरा ग्रंथ 'चित्र-कलाधर' है। यह संवत् १९२३ वि० में रचा गया था। बड़ा विचित्र ग्रंथ है। इसके आदि में अवध का अँगरेज़ों के अधीन होने का इतिहास, महाराज दिग्विजयसिंह का पहले नवाब से परिचय और फिर लॉर्ड कैनिंग से मिलाप तथा बलरामपुर-राज्य का बृटिश-राज्य द्वारा सम्मान आदि वर्णित है। इसके साथ ही इसमें अनेक प्रकार के वर्णन, नीति के दोहे और कवित्त भी हैं। जैसे—

प्रीति-वर्णन

"खाय, खवावै, दय कछु, लेय कछुक लखि रीति ;
गोप्य बात पूछै, कहै, षट् लच्छण है प्रीति।"

राजा-वर्णन

"देव-द्विज मानै, सनमानै कवि-कोविद को,
सीमा सावधान सदा रहै सब काज सों ;
जोगी जो अजीत जीत राखै सत्रु संगर में,
नीति प्रजा पालै घालै बद नीति राज सों।
न्याय बिना पच्छ सुनै दीन-फरियाद स्वच्छ,
गनी औ गरीब सब मामले के साज सों ;
दया धर्म दान, किरपान कर गहै जोई,
सोई महिपाल में महान महाराज सों।"

(पृ० २६, छ० ४)

दल-वर्णन

"धुरवारे धुरवा धुरेटें गंज गैंजर के,
बहै गंधबाह बाँह बेग बलवाने की ;
दादुर दमामे जानि झिल्ली झलै बेतपानि,
केका पपिहा के बैन हाँकैं बीर बाने की।
चाप मघवा के बक पाँति ह पताके "ब्रज",
चपला चमक चंद हाँस ओपसाने की ;
मान गढ़ गब्बर गनीम कटा करै हत,
घटा है कि छटा सैन मैन मरदाने की।"

(पृ० २७, छ० ७)

अनेक नीति के दोहे और एक सुंदर प्रश्नोत्तरी भी वर्णित है। नीति का एक दोहा—

"दुरजन सज्जन हेत हित, भाई भामिनि रीति ;
बिपति परे पहिचानिए, बैर, भलाई, प्रीति।"

(पृ० ४१, छ० १११)

"बेद पुरान पुरातन लोग गए कहि बात अलीक न कोई ;
सो 'ब्रज' देखो बिचारि अजौं जस बीज बए फरिहै फल वोई।
यामें न झूठी है बात कछू, यह नीति निरूपन मैं करि जोई ;
खोटो सो खोटो, खरो सो खरो, निखरैगो कसौटी कसे रँग सोई।"

(पृ० ४१, छ० ११२)

'चित्र-कलाधर' में उक्त कविताओं के अतिरिक्त मुख्य भाग चित्र-काव्य का है। इसमें मध्याक्षर, तलवार, ढाल, कट्टार, धनुष-बाण, मुद्गर, त्रिशूल, चक्र (दो प्रकार के), अंकुश, मूसल, चौकी, पताका, चंद्रमा (दो प्रकार), मेरु सुमेर, डमरू, कमल (दो भाँति), बाग, अरण्य, तड़ाग, जंत्र (दो प्रकार), छत्र (दो प्रकार), दुर्ग, नाग, मुकुट, हार, सितार, मृदंग, वृक्ष, चौपड़, गज, अश्व, अश्वगति, गोमुखिका, कपाट, त्रिपदी, मंत्रीमति, मंत्री अश्वगति, कामधेनु-पद, आदि वर्णयति, मध्याक्षरी, सर्वतोभद्र आदि ४५ प्रकार की चित्र-बद्ध कविताएँ हैं, जिन्हें कविजी ने अनेक विषयों पर रचा है।

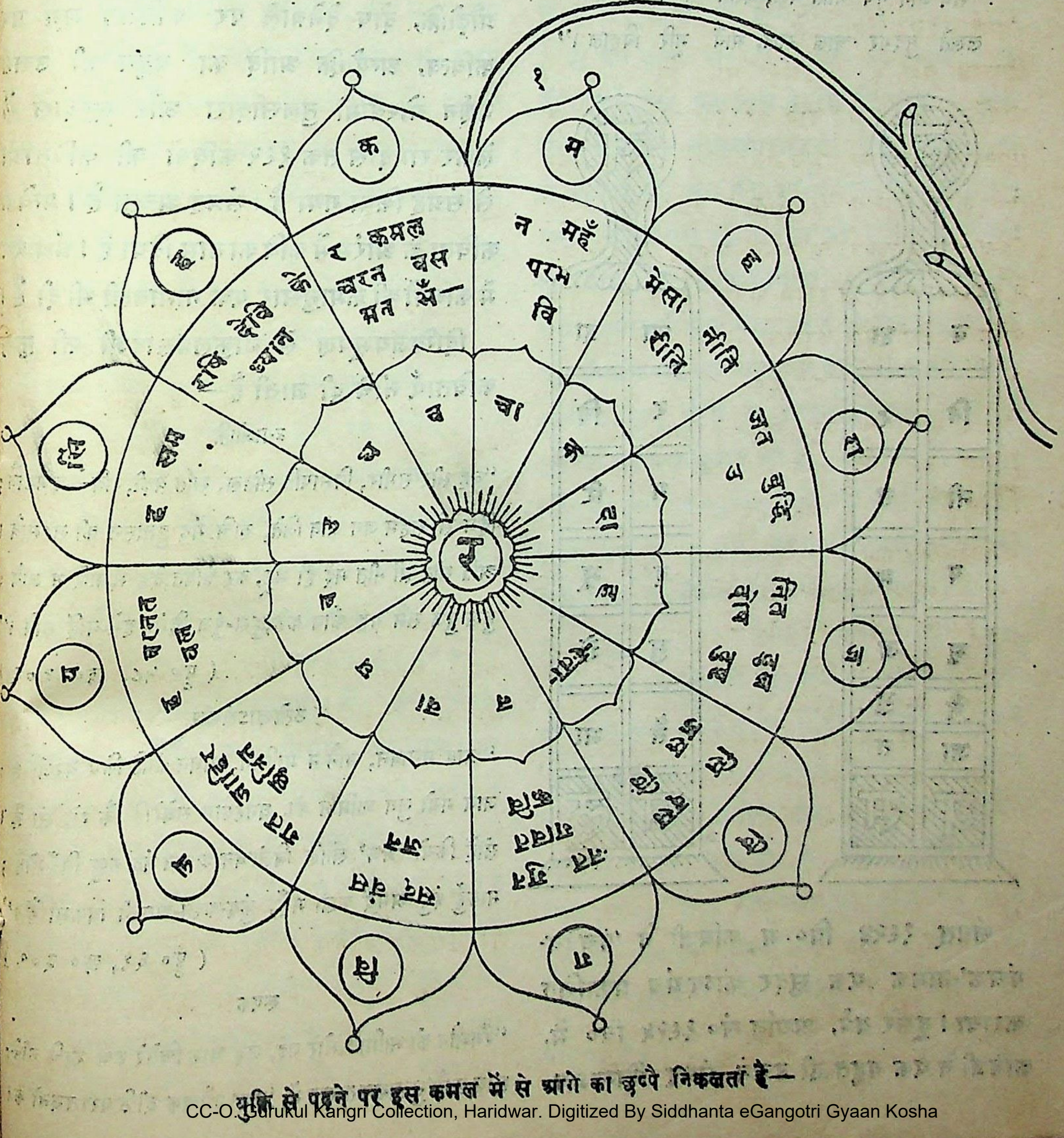
इनमें तीन चित्र-बद्ध कविताएँ नीचे उदाहरणार्थ दी जाती हैं—

१—खड्ग-बद्ध चित्र

"झँपि ढपि-ढपि जाती नजरि, डरि-डरि शत्रु बेहाल ;
भूप दिग्विजयसिंह की कढ़त जबै करवाल।"



२---कमल-बद्ध चित्र (छप्पय-छंद)

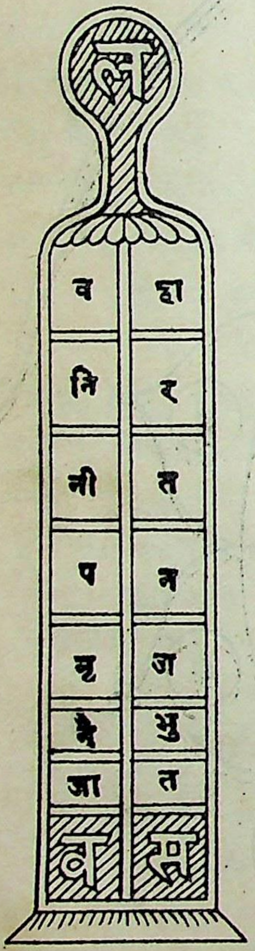


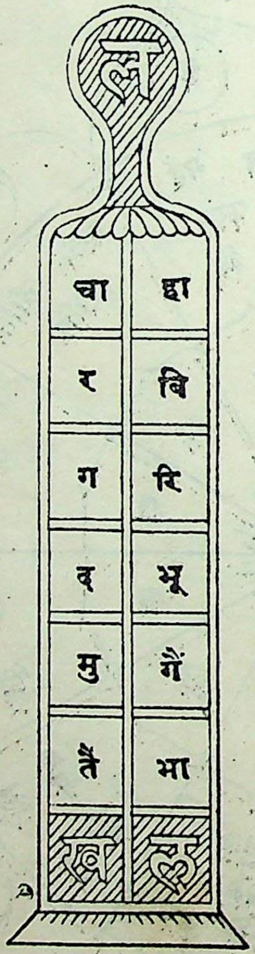
युक्ति से पढ़ने पर इस कमल में से आगे का छप्पै निकलता है—

"मन महँ परम बिचार हमेसा नीति रीति कर ;
राजत बुद्धि उदार जनित दुख दोष दुष्ट हर।
दिसि दस जस बिस्तार गनत गुन गावत कबि नर ;
बिसद बंस जनवार जगत जाहिर छत्रिन घर।
यह वरनत बलवरसिंह सम उर हरषि देवि के ध्यान धर ;
कर कमल चरन बस मन भँवर महराज दिगबिजयसिंह कर।"

३—मुद्गर-बद्ध चित्र

"सब जानै नृप नीति बल; बसत भुजन तर हाल ;
लखतै मुदगर चाल खल, मागैं भूरि बिहाल।"





संवत् १६२४ वि० में कविजी ने 'पंचदेव-पंचक'-नामक एक सुंदर काव्य-ग्रंथ प्रकाशित कराया। दूसरे वर्ष, अर्थात् सं० १६२५ वि० में, कविजी ने एक बहुत ही उत्तम संग्रह 'दिग्विजय-भूषण' नाम से छपवाया। इसका संपादन सं० १६१६ वि० से आरंभ हुआ, और यह शनैः-शनैः छः वर्ष में समाप्त हुआ था। दिग्विजय-भूषण में सृष्टि-वर्णन, सूर्यवंशियों का हाल, चंद्रवंश का विवरण, राज-वंशावली, अलंकारों का वर्णन और उनकी व्याख्या, क्रम से संसृष्टि, प्रश्नोत्तर, अनुप्रासावली, वीप्सा, श्लेष में छत्तीस प्रकार की दूती, नख-शिख-वर्णन, षट्ऋतु-वर्णन, नायिका-भेद, कवि-प्रौढ़ोक्ति, दोष देनेवाले पर कविता, सूम पर कवित्व, अन्योक्ति आदि का बहुत ही उत्तम वर्णन गोस्वामी तुलसीदास और सूरदास से लेकर रामदास तक १६२ कवियों की कविताओं से संग्रह किया गया है। संग्रह अच्छा है। प्रत्येक कविता के आरंभ में कवि का नाम दिया है। ग्रंथारंभ में कवियों की क्रमानुसार एक नामावली भी दी है।

दिग्विजयभूषण से गोकुलप्रसादजी की कुछ कविताएँ नीचे दी जाती हैं—

व्याजोक्ति

"वह सीर समीर, निसापति सीतल, राति बढ़ी, रबि-तेज घटावै ;
हिम सों सहमे जग जीव जिते, रुचि मंद हुतासन की सरसावै।
अति सीत सों भीत भई हौ भटू, कर कंपित, देह सँभारि न जावै ;
सुख-पुंज समै यह कौन कहै, दुख-पुंज हिमंत हमैं नहिं भावै।"

(पृ० ५८, छ० ३०६)

उत्प्रेक्षाऽलंकार

"आए मनावन, मानै न मानिनि, साधन कोटि किए बरजो है ;
जाम गयो जुग जामिनि को, घनस्याम सबेरेहि कै रहे सो हैं।
सोहैं कियो 'ब्रज' खोलि बिलोचन, आनन मंद कछू बिहँसोहैं ;
मानहुँ इंदु अमंद कला महँ, कुंद-कली-अवली बिकसो हैं।"

(पृ० ६१, छ० ३०९)

रूपक

"रँगमौन को भामिनि मेरे गई, जहँ चारु चितेरे रचे रुचि नीके ;
कबि कहै मुलसल नागर मैं, ब्रज औचक दीठि परी तरुनी की।

पग पानि चलै, न हलाए हलै, न कहै कछु बैन, सुनै न सखी के ;
ब्रजचंद के चित्र विचित्र चितै, चख चंद पषान भे चंदमुखी के ।"

(पृ० ६५, छ० ३१५)

दिग्विजयभूषण के प्रकाशित होने के दूसरे वर्ष, अर्थात् सं० १६२६ वि० में, कविजी ने 'नीतिमार्तंड' की रचना की। इस ग्रंथ में कविजी ने सम्राट् नौशेरवाँ की नीति जो 'तवक़ियात क़िसरा' * में लिखी है, अनेक छंदों में, मंत्री और राजा के प्रश्नोत्तर रूप में, वर्णन की है। कविजी ने इसी के टक्कर का एक उत्तम नीतिग्रंथ 'नीतिरत्नाकर', १६२१ वि० में, लिखकर महाराज दिग्विजयसिंह के नाम से छपाया था। नीतिरत्नाकर का एक कवित्त नीचे दिया जाता है—

"साधु तौलिबे को तोष, बुध को बिचार तौल,
राग तौलिबे को सुर सात लय लीजिए;
छत्री तौलिबे को रन, मन बिजै भूप भनि,
कबि तौलिबे को उक्ति-जुक्ति रस भीजिए।
धीरज, धरम, नारि तौलिए बिपत्ति-काल,
मित्र-बंधु तौल समै साँकरे पतीजिए।
शासन में प्रजा-प्रीति, राजा-मति राज-नीति,
मंत्री-मति मामिला तुला में तोल कीजिए।"

(पृ० ३९, छ० ३२)

इसके अतिरिक्त नीतिरत्नाकर में नायिका-भेद, अनेक लक्षण, हाव, भाव, विभाव, अनुभाव तथा रस और अलंकारों का भी वर्णन देकर कवि ने इसे अच्छा साहित्य-पूर्ण ग्रंथ बना दिया है।

सं० १६३० वि० में कविजी ने एक छोटी पुस्तक 'सुतोपदेश' नाम की लिखी। इसके दूसरे वर्ष (१६३१ वि० में) एक 'वामा-विनोद' नाम का ग्रंथ रचा। इसमें स्त्रियों के लिये अनेक उपदेश-पूर्ण कविताएँ हैं।

इसी वर्ष कविजी ने एक बड़ा भारी ग्रंथ 'चौबीस औतार' रचकर तैयार किया। इस ग्रंथ में विष्णु भगवान् के चौबीस अवतारों का सुविस्तृत पद्यमय वर्णन, अनेक पुराणों के आधार पर, किया गया है। यह ग्रंथ दो बृहद्भागों में समाप्त हुआ है। दोनों भाग तोल में ४॥ सेर से अधिक होंगे।

दो वर्ष बाद, सं० १६३३ वि० में, कविजी के तीन पुत्रों का एकसाथ देहांत हो गया। पुत्र-शोकानल-दग्ध गोकुलप्रसादजी ने इस महादुःख से पीड़ित हो, मन को शांति देने के लिये, एक उत्तम वेदांत-ग्रंथ की रचना की। इस ग्रंथ-रत्न का नाम है 'सोक-बिनास'। इसमें पुराणों तथा रामायण और महाभारत से लेकर पुत्र-शोक के अनेक उदाहरण दिए गए हैं। साथ ही गीता आदिक कुछ ग्रंथों से वैराग्योत्पादक भाव-पूर्ण श्लोकों का पद्यानुवाद भी है। जैसे—

"हित मातु पिता सुत बंधु जिते, मिलि जात है बाट बटोही किते।
बिसराम करैं यकठौर भले, पथ-मध्य किते पथिका न चले।
निसि नासत कर्म सँजोग जबै, अपने-अपने मग जात सबै।"

(पृ० ९, छ० ६०)

सं० १६३६ वि० में गोकुलप्रसादजी ने अद्भुत-रामायण का संस्कृत से हिंदी-पद्यानुवाद करके 'शक्तिप्रभाकर' रचा। इसमें रामायण की कथा आद्योपांत एक अनोखे ढंग से लिखी गई है। आगामी वर्ष कविजी ने 'टिट्टिभ-आख्यान', 'सुहृदोपदेश' और 'मृगयामयंक' नाम की तीन पुस्तकें रचकर प्रकाशित कीं। इनमें से प्रत्येक अपनी-अपनी विशेषता अलग-अलग रखती है।

* "तवक़ियात क़िसरा" फ़ारसी का प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसमें नौशेरवाँ की नीति विशद रीति से वर्णित है।—लेखक

महाराज दिग्विजयसिंह के० सी० एस्० आई० कविता-प्रेमी थे। उनके दरबार में दूर-दूर से कवि लोग आया करते और यथोचित सम्मान पाते थे। कुछ कवियों की वार्षिक वृत्ति बँधी थी।

इनमें यदि कोई कवि किसी प्रकार की अनुचित धृष्टता करता, तो उसका समुचित उत्तर कविवर गोकुलप्रसादजी दिया करते थे। इनके इस प्रकार के अनेक मनोरंजनकारी कवित्त हैं। उदाहरण के लिये एक प्रसंग और उसकी कविता यहाँ दी जाती है। एक बार बचन कवि काशी से आए। महाराजा साहब ने प्रसन्न होकर उन्हें एक पहाड़ी टाँघन पारितोषिक में दिया। उसे लेकर बचनजी संतुष्ट हो अपने घर वापस गए। कुछ समय बाद आपने फिर बलरामपुर में पदार्पण किया। दरबार में आकर आपने अपने पूर्वोपलब्ध टाँघन की प्रशंसा में निम्न-लिखित सवैया सुनाया—

"सद सुंदर चाल चलै मग में, बिगरै पछरैं कबहूँ न अरै ;
पर बाजि बिलोकत ही निकरै, अस पौन के बेग सों गौन करै।
दिगभूपबिजैसिंह स्वच्छ महा, कहि बचन जो मन मोद भरै ;
अस ऐगुन एक कहा कहिए, जल देखत ही तहँ लोटि परै।"

यह सवैया सुनते ही सामने बैठे हुए गोकुल-प्रसादजी से न रहा गया। आपने रोष में आकर एक कवित्त तत्काल ही बनाकर सुनाया—

"कमर कलाई कान कल्ला छबि छोट छाजै,
सीना सागरीय, सुम चाकले बखानी मैं ;
माल है विशाल, माल भौंर शुभ ठौर आजैं,
लच्छन विलच्छन हैं देखि मन मानी मैं।
ऐसे वर बाजी महाराजन के कहै पाजी,
नीर माँहि हलै हेतु गोकुल यों जानी मैं।
असुचि सवारन को सुचि करिबे के काज,
धाय बाजी पैठि जात बैठि जात पानी में।"

इसे सुनकर बचनजी निरुत्तर हो रहे, और सब दरबारियों सहित महाराज ने गोकुल कवि की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

सं० १९३९ वि० में महाराज दिग्विजयसिंह-जी का देहांत हो गया। इस समय कविजी को अत्यंत दुःख हुआ, और उन्होंने महाराज के जीवन से संबंध रखनेवाला 'दिग्विजयप्रकाश'-नामक एक ग्रंथ रचा। इसमें कविजी ने महाराज के प्रति-वर्ष की जीवन-संबंधी बातें—उनके कामों की विवरणी—लिखी हैं। यह ग्रंथ बाद को, सं० १९४६ वि० में, स्वर्गीय महाराज की बड़ी महा-रानी श्रीमती इंद्रकुँअरि देवी द्वारा छपाया गया।

'दिग्विजयप्रकाश' का एक उद्धरण नीचे दिया जाता है—

"चाँदी केर चाँदमाल, हेम के हमेलजाल,
हाथी हेम हौदा पर सोहै मघवान ते ;
हलका मतंगन के, तुरप तुरंगन के,
कंपनी तिलंगन के, तेज भासमान ते।
सोई महाराज सब त्यागिकै अकेले चले,
चिता पालकी पै चढ़ि शंभुपुर जान ते ;
कर्म-करतार काल-गति को विलोकि व्रज,
का न भयो, का न होय, का न सुने कान ते ?"

महाराज दिग्विजयसिंहजी की मृत्यु के बाद बलरामपुर-राज्य कोर्ट (Court of wards) के अधीन हो गया। इन दिनों रियासत का खर्च घटाने के लिये कर्मचारियों की कमी की गई। दरबार के नवरत्न तथा महाराज के अनेक प्रति-ष्ठित विद्वान् एवं गुणी लोग अलग कर दिए गए। इसी झमेले में, सन् १८८० ईसवी में, गोकुलप्रसाद-जी को भी पेंशन देकर अलग कर दिया गया।

इस समय यद्यपि गोकुलप्रसादजी की अवस्था कुछ ढलने लगी थी, परंतु उनका ग्रंथ-रचना-कार्य

बराबर जारी रहा। इस बीच में उन्होंने मनुस्मृति का हिंदी-पद्यानुवाद कर डाला। इसे छोटी महारानी श्रीमती जयपालकुँअरि ने बड़े आदर से, 'महारानी-धर्मचंद्रिका' के नाम से, पटने में छपाया। इन महारानी से कविजी को ५०) रु० वार्षिक मिलता रहा।

उक्त प्रकाशन के ही समय गोकुलप्रसादजी ने 'एकादशी-माहात्म्य' नाम का एक ग्रंथ बनाकर प्रकाशित किया।

इनकी प्रायः सभी कविताएँ बलरामपुर-दरबार के लिये, विशेषकर महाराज श्रीदिग्विजयसिंह की प्रशंसा में, होती थीं। फिर भी प्रायः सभी ग्रंथों में इनका प्रगाढ़ पांडित्य, साहित्यिक ज्ञान एवं कवित्व-शक्ति का आभास स्थल-स्थल पर मिलता है। कुछ ग्रंथ अन्यान्य देशी नरेशों ने भी इनसे बनवाए थे। गोंडा-नरेश राजा कृष्णदत्त-राम ने 'कृष्णदत्तभूषण', और मेहनौन के राजा अचलसिंह ने 'अचलप्रकाश' इनसे बनवाया था। एक पुस्तक 'महावीरप्रकाश' इन्होंने पयागपुर के प्रतिष्ठित भया विजय-राजसिंह के लिये, उनकी आज्ञा के अनुसार, लिखी थी।

इनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। यह अपने गाँव से एक कोस पैदल ही चलकर प्रायः बलरामपुर आया करते थे।

पेंशन पाने के बाद गोकुलप्रसादजी सब काम छोड़कर घर पर ही रहा करते थे। प्रायः इनका सारा समय भगवद्भजन ही में बीतता था। रात को सोते बहुत कम थे। अधिकांश रात्रि राम-नाम जपते ही बीतती थी। इसी प्रकार राम-नाम लेते हुए कविवर गोकुलप्रसादजी ने ८७ वर्ष की आयु भोगकर बलरामपुर में, वैशाख शु० ६, सं० १९६२ वि०, शनिवार को, २॥ बजे रात के समय, नश्वर शरीर त्यागकर गोलोक-गमन किया।

काव्य-रचना गोकुलप्रसादजी के वंश में परंपरा से चली आई है। इनके वर्तमान कुटुंबी जन भी हिंदी के बड़े प्रेमी हैं। इनके ज्येष्ठ भ्राता संगमलालजी को भजनों से तथा गुंगदासजी को भूलना से बड़ा प्रेम था। इनके दूसरे भाई शीतल-प्रसादजी सूर और विनय के पद खूब गाया करते थे। गोकुलप्रसादजी के बड़े पुत्र लालसाहब को काव्य में बड़ी रुचि थी; परंतु खेद है कि उनका देहांत पचीस वर्ष की अवस्था ही में हो गया। दूसरे पुत्र दूधनाथप्रसादजी को भी हिंदी में बहुत रुचि है। इन्होंने वेदांत की कुछ पुस्तकें पढ़ी और कुछ पद भी कहे हैं। कविजी के पौत्र स्वर्गीय बाबू सर्वजीतलालजी उपनाम 'जीत' बहुत प्रसिद्ध कवि और महात्मा हो गए हैं। इनका जीवन-चरित 'जीतजीवनचरित' के नाम से, सं० १९६७ वि० में, प्रकाशित हो चुका है। इनके दो काव्य-ग्रंथ 'जीतविनोद' और 'राज्याभिषेक' स्वर्गीय महाराज भगवतीप्रसाद-सिंह साहब की गद्दी के विषय में छप चुके हैं। इनके पुत्र जगदंबिकालालजी भी कविता करते हैं। इन्होंने कई छोटी-छोटी पुस्तकें लिखी हैं, जो अभी तक नहीं छपीं। जीतजी के रचे हुए 'हनुमानचरित्र-स्तोत्र' में से वंदना के नव सुंदर कवित्त संगमरमर पर खुदवाकर उनके ज्येष्ठ भ्राता श्रीयुत मुंशी रामरत्नलालजी डिपुटी-कलक्टर ने अयोध्याजी में हनुमानगढ़ी के फाटक पर लगवा दिए हैं। इन्हीं डिपुटी साहब के नाम से श्रीयुत गोकुलप्रसादजी ने एक ग्रंथ 'रामरत्न-रामायण' नाम का लिखा था। इस ग्रंथ का कहीं

पता नहीं लगता, यह अप्रकाशित रह गया। इसके कुछ अंश मिलते हैं।

कविवर गोकुलप्रसादजी के प्रपौत्र बाबू सूर्यमलजी बलरामपुर हाई स्कूल में मास्टर थे। वेदांत-विषय में इन्होंने दो अपूर्व ग्रंथ 'स्वरूप-दर्शन' और 'वेदांतविवेक' रचकर छपाए हैं। हिंदी की महिमा वर्णन करते हुए आपने 'हिंदी-भाषाभूषण'-नामक एक ग्रंथ, सन् १६०२ ई० में प्रकाशित किया था। इनकी भी कविता बड़ी सरस और मनोहर है। 'जीतजीवनचरित' के रचयिता आप ही हैं। खेद है कि आप इस समय संसार में नहीं हैं। आपके बड़े चाचा सरकार से सम्मानित एवं अद्वितीय विद्याप्रेमी वयोवृद्ध उपर्युक्त मुंशी रामरत्नलालजी * रिटायर्ड डिपुटी-कलक्टर और स्पेशल मजिस्ट्रेट आजकल गोंडे में रहते हुए धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं। इन्होंने गोकुलप्रसादजी की कुछ कविताओं को लाला सीतारामजी बी० ए० द्वारा कलकत्ता-युनिवर्सिटी के पाठ्य-ग्रंथों में स्थान दिलाया है। स्वर्गीय गोकुलप्रसादजी, श्रीयुत सर्वजीतलालजी तथा मुं० सूर्यमलजी के समस्त ग्रंथ उक्त डिपुटी साहब के पास मौजूद हैं, जिनका आप प्रायः पाठ किया करते हैं।

रामनारायण मिश्र

---

* इन्हीं डिपुटी साहब की कृपा से मुझे गोकुलप्रसादजी की पुस्तकें तथा उनका जीवन-विषयक विशेष विवरण प्राप्त हुआ है, एतदर्थ मैं उनका कृतज्ञ हूँ।—लेखक

धर्म-रक्षा

(१)

शारीरिक सौंदर्य बड़े भाग्य से मिलता है। यदि इसके साथ चरित्र-सौंदर्य भी हो, तो सोने में सुगंध ही समझना चाहिए। लक्ष्मी में ये दोनों बातें परा काष्ठा तक विद्यमान थीं। यद्यपि प्रकृति ने इस देवी के सँवारने में अत्यंत उदारता से काम लिया था तो भी यह संसार में आकर उन दुःखों से न बच सकी, जिनका उत्पत्ति तथा विनाश के साथ घनिष्ठ संबंध है।

लक्ष्मी के पिता अमरनाथ एक प्रसिद्ध व्यवसायी थे। सभी जगह उनका सम्मान होता था। संपत्ति की प्रचुरता थी। अत्यंत अपव्ययी होने पर भी वह लक्ष्मी के लिये इतना धन छोड़ गए थे, जो उसकी समस्त आयु के निर्वाहार्थ यथेष्ट था। अमरनाथ एक उत्साही मनुष्य थे। उनके मित्रों की संख्या बहुत अधिक थी। वह उत्सवों और भोजों में हज़ारों रुपए पानी की तरह बहाते थे। सार्वजनिक कामों से भी गहरी सहानुभूति थी। वह प्रत्येक वर्ष तीर्थ-यात्रा में एक ख़ासी रक़म 'मुफ़्तख़ोरों' की भेंट करना अपना मुख्य कर्तव्य समझते थे। बात यह है कि वह बिलकुल अकेले आदमी थे। समझते थे, घर में ले-देकर केवल एक धर्मपत्नी है, सो उसके निर्वाह के लिये बहुत कुछ बच रहेगा। हम तो दुनिया में आकर कुछ नाम कर जायँ।

पाठकगण कहीं यह न समझें कि अमरनाथ संतानोत्पत्ति की ओर से लापर्वाह थे। नहीं, ऐसा नहीं था। भरसक प्रयत्न कर चुके थे। परंतु अभाग्यवश लाखों रुपए बिलट गए, और अंत को निराश होकर बैठना पड़ा। तब से धन का अपव्यय और भी अधिक बढ़ गया। कई वर्षों के पश्चात् पंडितों के पूजा-पाठ ने यदि पूरा नहीं, तो कुछ प्रभाव अवश्य दिखाया। दूसरी ओर 'पीरों' और 'शहीदों' की मृतात्माओं ने भी कुछ सहारा दिया। अमरनाथ के घर एक लड़की पैदा हुई। इस समय उनकी आयु ५० साल के ऊपर हो चुकी थी। सेठजी अपने निजी अनुभव के आधार पर संसार के अमूल्य पदार्थों में धन को सर्वश्रेष्ठ मानते थे। इसी कारण उन्होंने पुत्री का नाम 'लक्ष्मी' रक्खा। इस अवसर पर जो-जो ख़ुशियाँ

मनाई गई, उनका उल्लेख करने के स्थान में केवल अनुमान कर लेना सुगम होगा।

परंतु संसार में सुख-दुःख साथ-ही-साथ हैं। अमरनाथ को इस हार्दिक वेदना के साथ स्वीकार करना पड़ा। लड़की साल-भर की भी न होने पाई थी कि अकस्मात् उनकी धर्मपत्नी का शरीरांत हो गया। बेचारे कर ही क्या सकते थे? किसी-न-किसी प्रकार धैर्य धारण किया, और पुत्री के साथ मन बहलाने लगे, जिसमें शनैः-शनैः उनको सफलता प्राप्त होती गई।

लक्ष्मी दूज के चाँद की तरह बढ़ी। दिन जाते विलंब नहीं लगता। वह शीघ्र ही उस अवस्था को पहुँच गई, जिसके आगे कन्या को अविवाहित रखना अमरनाथ के सिद्धांत के अनुसार महापाप था। अर्थात् पुत्री की आयु अब ७ वर्ष के लगभग थी। पिता को विवाह की बड़ी चिंता हुई। इस निंद्य प्रथा के अनुकरण में तो वह पक्के 'लकीर के फ़क़ीर' थे, परंतु आश्चर्य है कि इस समय उन्हें एक नई बात भी सूझी। वह कन्या के लिये ऐसे वर की खोज करते थे, जो प्रतिष्ठित कुल का तथा उत्तम स्वास्थ्ययुक्त अवश्य हो। और कोई बात विचारणीय न थी। यदि किसी निर्धन का बालक हो, तो बहुत अच्छा। यदि बे मा-बाप का हो, तो और भी ठीक।

यह निश्चय बड़ा विचित्र था। परंतु अमरनाथ दुनिया के रंग-मंच पर कोई नए अभिनेता तो थे नहीं, अतः उक्त भावना में भी कुछ-न-कुछ रहस्य था। या तो यह बात थी कि इस प्रकार जाति के सामने एक सुधार का उदाहरण रक्खा जाय, या फिर यह ख़याल था कि विवाह के बाद लड़का अपनी ससुराल ही का होकर रहे, और ससुर के लिये 'बुढ़ापे की लाठी' बने। सांसारिक प्रसंगों को ध्यान में रखते हुए यही अंतिम बात अधिक युक्ति-युक्त प्रतीत होती थी।

खोजनेवाले के लिये कोई वस्तु अलभ्य नहीं। अमरनाथ ने कुछ दिनों में इच्छानुसार वर खोज ही लिया। अनाथ बालक का सहायक या तो परमात्मा था, या वे दस-पाँच मनुष्य, जिनकी सम्मिलित सहायता पर ही उसके पालन-पोषण तथा शिक्षा का भार था। अजीत की उम्र १० साल से ज़्यादा न थी। सूरत-शकल से बड़ा होनहार मालूम होता था। अमरनाथ की दृष्टि उस पर पड़ी, तो फिर आगे न जा सकी। अंत को बड़ी धूमधाम के साथ विवाह हो गया। बेचारी लक्ष्मी यह भी न समझी कि यह क्या हुआ, और किसलिये हुआ।

परंतु अमरनाथ के भाग्य में सुख न था। अजीत को ससुराल में रहते कदाचित् साल भी पूरा न हुआ था कि एक दिन सहसा वह ग़ायब हो गया। खोज शुरू हुई। इधर-उधर आदमी दौड़े, विज्ञापन दिए गए, परंतु कुछ पता न चला। अब अमरनाथ की आँखों में दुनिया अँधेरी हो गई। लोक बिगड़ा, तो परलोक की चिंता हुई। समय का अधिकांश माला जपने में व्यतीत होने लगा।

* * *

तेरह वर्ष और बीत गए। बूढ़े अमरनाथ को मरे दो साल हो चुके हैं। अब लक्ष्मी अकेले घर में रहती है, और एक वृद्धा दासी उसकी संगिनी है। लक्ष्मी का प्रत्यक्ष तथा परोक्ष समान रूप से चित्ताकर्षक था। उजड़े हुए उद्यान में गुलाब का एक सुंदर पुष्प खिला हुआ था, जिसकी सौरभ चारों ओर फैली हुई थी।

अब वह कोई अजान बालिका तो थी नहीं। अपनी शोकमयी दशा का पूर्ण रूप से अनुभव कर सकती थी। पति का अज्ञातवास, पिता का स्थायी वियोग, संबंधियों का अभाव—इन सब कारणों से बेचारी को जीना दूभर हो रहा था। परंतु सौभाग्यवश थी पढ़ी-लिखी। जब चित्त की उद्विग्नता अधिक बढ़ जाती, तो पुस्तकों का अध्ययन संतोषप्रद प्रमाणित होता, और वह ईश्वर को धन्यवाद देती कि विद्या के हाथों उसके हृदय को ऐसे घोर दुःख में भी कुछ शांति प्राप्त हो जाती थी।

(२)

पूर्वोल्लिखित घटना को हुए कई वर्ष व्यतीत हो गए।

सायंकाल का समय है। तूफ़ानी हवा अत्यंत वेग के साथ चल रही है। समुद्र का धरातल, जो अभी ज़रा देर पहले एक चौरस मरुभूमि के सदृश देख पड़ता था, अब असंख्य पर्वतमालाओं का दृश्य उपस्थित कर रहा है। मेघों की गरज का भीषण नाद उन प्रवासियों का कलेजा हिलाए देता है, जो एक छोटे-से जहाज़ पर चढ़े हुए फ़िजी-द्वीप से हिंदुस्तान को लौट रहे हैं। प्रकृति उस जहाज़ के साथ अत्यंत भयानक रीति से खेल रही है। जहाज़ फ़ुटबाल की तरह इधर-उधर मारा-मारा फिरता है। कभी ज़मीन पर है, तो कभी आसमान पर। नाविकगण

इस दैवी विपत्ति से त्राण पाने के लिये अपनी-अपनी जगह तत्परता-पूर्वक काम कर रहे हैं।

जान बड़ी प्यारी होती है। ग़रीब मुसाफ़िर भी इस समय उनकी सहायता पर कटिबद्ध हैं। विशेषकर एक २६-३० वर्ष का नवयुवक प्रशंसनीय साहस तथा दृढ़ता के साथ मानवीय कर्तव्य की पूर्ति में संलग्न है। वह भी जहाज़ के कप्तान के साथ उसी स्थान पर जा पहुँचता है, जहाँ सहायता की अत्यधिक आवश्यकता होती है।

परंतु क्या मनुष्य की शक्ति, और क्या उसकी प्रयत्न-शीलता! लक्षण अच्छे नहीं देख पड़ते। जहाज़ क़ाबू के बाहर है। आनेवाली तबाही उस पर अपने चिह्नों को शीघ्रता-पूर्वक अंकित कर रही है। सबको यही आशंका है कि जहाज़ किसी समुद्री चट्टान से अब टकराया और अब टकराया।

जहाज़ की दशा प्रतिक्षण बिगड़ती गई। अंत को नावें खोल दी गईं, और लोग अपना सारा सामान जहाज़ पर छोड़कर किसी तरह नावों पर जा सके। परंतु अंतिम मनुष्य ने तख़्ते पर पाँव रक्खा ही था कि एक स्त्री चिल्ला उठी—"हाय, मेरा नन्हा-सा बच्चा जहाज़ पर रह गया!" आर्त-नाद ने यात्री के करुणा-पूर्ण हृदय को तड़पा दिया। वह बालक को ढूँढ़ने के लिये उलटे पैरों ऊपर चढ़ गया। इधर नावें उछलती-कूदती हुई चल दीं। वायु तथा जल की सम्मिलित शक्ति के सामने ये हलकी-फुलकी नावें भला कब ठहर सकती थीं?

* * *

सबेरा हो गया। न तो जहाज़ का पता है, न कोई नाव ही दिखाई देती है। हाँ, एक बड़ा 'मस्तूल' पानी पर धीरे-धीरे बह रहा है, जिससे कोई मनुष्य लिपटा हुआ है। अब वायु के प्रकोप में बहुत कुछ कमी आ गई है। अब समुद्री लहरों में भी हलचल नहीं है। आकाश स्वच्छ है। निकलते हुए सूर्य की किरणें उस मनुष्य के मुख पर पड़ रही हैं, वह नितांत निस्तब्ध है। वह या तो संज्ञाशून्य है, या फिर मरा हुआ। तनिक ध्यान से देखो! आह, यह तो वही नवयुवक है, जो गत सायंकाल के विपत्ति-पूर्ण समय में उन अभागे मनुष्यों को ढारस बँधा रहा था, जो जहाज़ पर सवार थे। चित्र में दो रुख़ हुआ करते हैं, किंतु जीवन-चित्र में कितने रुख़ होते हैं, इसकी गणना कोई नहीं कर सकता।

आधा घंटा और बीत गया। मस्तूल बराबर बह रहा है। लाश वैसी ही लिपटी हुई है। सामने से एक बड़ा जहाज़ इसी ओर आ रहा है। अब वह मस्तूल के निकट ही पहुँच गया। जहाज़वालों ने देखा, तो एक नौका छोड़ी। मस्तूल से लिपटा हुआ मनुष्य शीघ्र ही जहाज़ पर लाया गया। डॉक्टर ने देखा-भाला। उक्त मनुष्य केवल निश्चेष्ट था। जान अभी बाक़ी थी। अस्तु। डॉक्टर की आज्ञा के अनुसार उसे जहाज़ की एक कोठरी में आराम से लिटा दिया गया। वहाँ उसकी चिकित्सा आरंभ हुई।

दवाएँ अपना असर दिखाए बिना नहीं रहीं। थोड़ी देर बाद रोगी ने आँखें खोलीं। ऐसा प्रतीत होता था, मानो वह अभी कोई स्वप्न देख रहा था, जिससे बरबस उसे जाग्रत् कर दिया गया; क्योंकि प्रथम वाक्य जो उसकी जिह्वा से निकला, वह यह था—"आह, अबोध बालक! मैं प्रसन्नता-पूर्वक उसी समय प्राणोत्सर्ग कर देता, यदि मुझे यह संतोष हो जाता कि तू सकुशल बच गया।" इस कथन के पश्चात् वह उन्मत्त की तरह इधर-उधर देखने लगा। चिकित्सक ने तुरंत ही कोई उपयुक्त ओषधि दी कि रोगी को शांति मिले। कुछ दिनों में जहाज़ बंबई पहुँच गया। रोगी मनुष्य अभी अच्छी तरह स्वस्थ नहीं हुआ था, अतः यहाँ भी उसके साथ वही सहानुभूति-पूर्ण व्यवहार होता रहा, जो जहाज़ पर होता था, और जिसका वह पूर्ण रूप से अधिकारी था। उसकी 'आप-बीती' क्या थी, दुःख, प्रेम, साहस तथा बलिदान की एक सच्ची कहानी! एक बार तो पत्थर का दिल भी पसीज जाता था।

(३)

अँधेरी रात है। सावन-भादों की रातें अँधेरी हुआ ही करती हैं। ऊपर छत के एक कमरे में लक्ष्मी बैठी हुई है। कमरा अत्यंत सुंदरता तथा सादगी के साथ सजाया गया है। सामने मेज़ पर एक लैंप जल रहा है। उसी मेज़ पर कुछ पुस्तकें सुश्रृंखला के साथ चुनी हुई हैं। दीवाल में एक क्लॉक (घड़ी) लगी हुई है, जो नव का समय बतला रही है। लक्ष्मी मेज़ के पास ही कुर्सी पर बैठी कोई पुस्तक देख रही है। वृद्धा दासी अभी नहीं आई; नीचे भोजन करने में लगी है।

अब लक्ष्मी की आयु २६ वर्ष की है। परंतु समय का प्रमाण इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं देख पड़ता कि वह

अब पहले की अपेक्षा अधिकतर कृश तथा दुखी प्रतीत होती है। घर की शेष बातें पूर्ववत् ही हैं।

कुछ समय के पश्चात् उसने पुस्तक बंद कर दी। फिर अपने दाहने हाथ की उँगली से एक सुंदर अँगूठी उतारी, जिसमें साधारण से अधिक बड़ा नगीना जड़ा हुआ था। उसकी ओर बड़ी देर तक ऐसी दृष्टि से देखती रही, जिसमें आशा तथा निराशा के भावों का सम्मिश्रण था। इस बीच में अँगूठी कई बार उँगली में पहनी और उतारी गई। अँगूठी क्या थी, कोई प्रेममयी गाथा थी, जिसके अवलोकन से जी नहीं भरता था।

घड़ी ने १० बजा दिए। लक्ष्मी की आँखों से आँसू निकल पड़े। अँगूठी हाथ में पहनी, और एक निःश्वास छोड़ती हुई कुर्सी से उठ खड़ी हुई। पास ही एक पलँग बिछा हुआ था। उसी पर लेट गई कि निद्रा द्वारा अपने दुःख को भुला दे। परंतु उत्तेजना-पूर्ण चिंताओं के मारे चैन कहाँ? करवट-पर-करवट बदली गई, किंतु नींद के नाम पलक तक न झपकी। आख़िर कुछ ख़याल आया। उठी, और खिड़की के पास जा खड़ी हुई। आकाश काले-काले बादलों से घिरा हुआ था। प्रकाश के नाम से न चंद्रमा था, न कोई तारा। चारों ओर बिलकुल अँधेरा था। हाँ, इस घोर अंधकार में भूली-भटकी निगाह के लिये यदि कोई पथ-प्रदर्शक था, तो वह केवल विद्युत् की अस्थायी चमक। कुछ-कुछ बूँदें भी पड़ रही थीं। समय अतीव आह्लाद-जनक था। परंतु किनके लिये? कृतकृत्य प्रेमियों के लिये; विरहिणी लक्ष्मी के लिये नहीं। यह दृश्य तो उसके दुःख को और भी बढ़ाए देता था। हृदय था, या व्यग्रतारूपी झूलना। एक ख़याल जाता था, तो एक आता था। परंतु जहाँ तक शरीर की बाह्य दशा से संबंध था, इस उद्विग्नता का कोई प्रभाव प्रकट नहीं हो रहा था। वह प्रतिमा के सदृश चुपचाप खड़ी हुई थी। वृद्धा दासी ने कमरे में प्रवेश किया, परंतु उसे आहट तक न मिली।

वृद्धा की आँखें कुछ तो स्वभावतः अशक्त थीं, कुछ आयु का भी प्रभाव था—वह लगभग दृष्टिहीन हो चुकी थी। जब लक्ष्मी को पलँग पर न पाया, तो आँखें फाड़-फाड़कर इधर-उधर देखने लगी। कुछ झलक पाकर यों बोली—

वृद्धा—बेटी! अभी तक नहीं सोई? वहाँ खड़ी-खड़ी क्या करती हो?

लक्ष्मी—(चौंककर) कुछ नहीं, यों ही जी कुछ घबराया; सो खिड़की के पास तनिक खड़ी हो गई। यहाँ हवा अच्छी आती है।

वृद्धा—तो लाओ, पलँग उसी ओर लगा दूँ।

लक्ष्मी—नहीं, कोई आवश्यकता नहीं। मैं अब आती हूँ। तुम भी अपना बिस्तर लगा लो। फिर सो रहें।

वृद्धा 'अच्छा' कहकर अपना बिछौना उठा लाई। उसे झाड़ने लगी, तो कोई वस्तु खड़खड़ाहट के साथ निकलकर अलग पृथिवी पर जा पड़ी। वह एक बड़ा लिफ़ाफ़ा था। वृद्धा को तुरंत ही स्मरण हो आया। चौंककर बोली—बेटी लक्ष्मी! इधर तो आओ। यह लिफ़ाफ़ा उठा लो। मुझे काहे को मिलने लगा। अभागी आँखें तो किसी काम की नहीं।

लक्ष्मी—(दौड़कर लिफ़ाफ़ा उठाते हुए) यह कब आया?

वृद्धा—बेटी, माफ़ करना। आया तो सबेरे ही था, पर तब तुम पड़ोस में गई थीं। मैंने इसे बिछौने में रख दिया था। फिर भूल गई। बुढ़ापा क्या आया, बड़ी आफ़त आई। होश ठिकाने ही नहीं रहते।

लक्ष्मी—(लैंप के पास लिफ़ाफ़ा खोलते हुए) अच्छा, तो इसमें हानि ही क्या है। मिल तो गया; कुछ घंटों के बाद ही सही।

संसार में यदि लक्ष्मी के पास कोई पत्र भेजने-वाला था, तो केवल एक मनुष्य। फिर भी लिफ़ाफ़ा खोलते हुए हाथ काँप रहे थे। मुख पर एक रंग आया, एक चला गया। लिफ़ाफ़ा खुला, पत्र निकला, और आशा तथा निराशा के पारस्परिक संघर्ष का अंत हो गया। लक्ष्मी प्रसन्न हो गई। मन-ही-मन इस प्रकार पढ़ने लगी—

"प्रिय लक्ष्मी

छः-सात महीने बीते होंगे कि मैंने तुम्हें एक अँगूठी भेजी थी, जो अवश्य ही मिली होगी। एक पत्र भी भेजा था, जो पहुँचा होगा। तुमने उत्तर भी भेजा ही होगा, परंतु अभाग्यवश मुझे न मिल सका। उक्त पत्र में मैंने यह भी लिखा था कि शीघ्र आऊँगा। परंतु सोचा कुछ और, होता कुछ और है। फ़िज़ी से नियत समय पर चल दिया था। परंतु नसीब में तो परे-

शान होना था। रात में तूफ़ान आया। सारा माल-असबाब समुद्र की भेंट हुआ। कदाचित् तुम्हें देखना बदा था। किसी प्रकार बच गया। अब तीन मास से बंबई में पड़ा हूँ। बहुत अस्वस्थ रहा। मौत आते-आते रह गई। अब अच्छा हूँ। गई-बीती बातों का रंज न करना। मैंने दो-तीन पत्र तुम्हारे पिता के नाम फ़िज़ी से भेजे थे। संभव है, वे तुम्हारे यहाँ न पहुँचे हों। यह भी संभव है कि कोई जीवित ही न हो। यह भी संभव है कि पत्रोत्तर ही मेरे पास तक न पहुँचा हो। ख़ैर कुछ भी हो, मेरे न आने का यह भी एक बहुत बड़ा कारण था। मैंने सोचा कि यदि मैं तुम्हारे यहाँ गया भी और वहाँ घर को जन-शून्य पाया, तो सिवा इसके कि मेरे चोट खाए हुए दिल पर और एक चोट लगे, कुछ प्राप्त न होगा। इसी असमंजस में कुछ दिन और बीत गए। अंत को मैंने अँगूठी तुम्हारे पास भेजी। उस समय मैंने यह बात दिल में ठान ली थी कि जो कुछ होना होगा, सो होगा; किंतु एक बार तो जन्म-भूमि के दर्शन कर ही लूँ। यही सोचकर चल दिया। राह में वह विपत्ति पड़ी। अब इसे अभाग्य समझो या सौभाग्य कि जीता बच गया। आज अमावास्या है। कदाचित् पूर्णिमा को तुम तक पहुँच जाऊँ। मुझे तुम्हारे जीवित होने में अब भी संदेह ह। ईश्वर करे, यह संदेह केवल संदेह प्रमाणित हो। हाँ, यदि तुम जीवित हुईं, तो भी निश्चय ही मुझे कदापि न पहचान सकोगी। कदाचित् मेरे लिये भी यही बात हो। अस्तु। इसका निर्णय यथासमय हो ही जायगा।

तुम्हारा अजीत"

पत्र समाप्त हो गया। लक्ष्मी ने उसे फिर लिफ़ाफ़े में रख दिया, और पलँग पर बैठ गई। वृद्धा के नेत्र उसी ओर लगे हुए थे। लक्ष्मी के बैठते ही उसने कहा—बेटी, किसका पत्र है ?

लक्ष्मी—(लज्जित स्वर में) भला मेरे पास पत्र और कहाँ से आ सकता है? तुम आप ही जान सकती हो।

वृद्धा—(बात समझकर) बेटी, इस समय बड़ा आनंद हुआ। भगवान् सुखी रक्खें। क्या लिखा है ?

लक्ष्मी—बंबई से पत्र आया है। पूर्णमासी के दिन आने को लिखा है।

वृद्धा—(अधिक प्रसन्न होकर) भला वह दिन भी आवे कि मैं उन्हें इन आँखों से देखूँ। नारायण बड़ा मालिक है। आदमी को निरास न होना चाहिए।

दोनों अपनी-अपनी जगह लेट गईं। देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं। आज लक्ष्मी का स्वप्न अत्यंत सुंदर तथा आशापूर्ण था।

(४)

मूलराज का संबंध एक ऐसे घराने से था, जो किसी समय अपनी प्रतिष्ठा तथा महत्ता के लिये प्रसिद्ध था। परंतु दुनिया कभी एक दशा में नहीं रहती। संसार परिवर्तनशील है। मूलराज ऐसा कुल-कलंक उत्पन्न हुआ, जिसने बची-खुची मर्यादा को भी धूल में मिला दिया। इंद्रायण (कुँदरू) का फल देखने में बहुत सुंदर होता है, परंतु स्वाद में विषतुल्य। मूलराज का बाह्य सौंदर्य जितना चित्ताकर्षक था, उसकी आंतरिक चेष्टाएँ उतनी ही घृणित। दुनिया में शायद ही ऐसी कोई बुराई थी, जो अंशतः उसमें विद्यमान न हो। विशेषकर उसका जीवन मद्य-सेवन तथा व्यभिचार के तो अर्पण ही था। इसी निंद्य आचरण के हाथों बची-बचाई पैतृक संपत्ति का नाश हो चुका था। लेकिन उसे इसकी कोई पर्वा न थी। यदि किसी समय अपने हाल में मस्त था, तो अब अपनी खाल में मस्त है। हृदय में तो सज्जनता का लेश-मात्र न था, हाँ, उसके बदले ऊपरी सज-धज अवश्य थी। पढ़ने-लिखने के नाम से भी कुछ शद-बुद जानता था। पत्नी कुढ़-कुढ़कर परलोक सिधार चुकी थी। इसको घर से तो कभी प्रेम न था। अब रहा-सहा संबंध भी विच्छिन्न हो चुका था। सर्वथा स्वच्छंद था।

दुराचारी मनुष्य विशेष रूप से भ्रमण-प्रिय होते हैं। मूलराज के स्वभाव में भी इस नियम का अपवाद न था। आजकल उसका यही कार्य था कि जहाँ-तहाँ घूमता फिरता था। स्थान का कुछ ठीक न था। यदि आज एक जगह है, तो कल दूसरी जगह।

आज ७-८ दिन से वह उस गाँव में है, जहाँ लक्ष्मी का घर है। प्रकृति-पूजक मनुष्य के नेत्रों में चकाचौंध पैदा कर देने के लिये लावण्यपूर्ण सौंदर्य की केवल एक झलक काफ़ी होती है। मूलराज दिन-रात इसी टोह में तो रहता ही था। एक दिन चलते-फिरते लक्ष्मी पर दृष्टि पड़ गई। बरसों के दुराचरण से चित्त में एक प्रकार का साहस उत्पन्न हो गया। बस, सूरत देखने

की देर थी कि वह अत्यंत उत्सुकता और बेचैनी के साथ उसकी मुहब्बत का दम भरने लगा। प्रतिक्षण इसी चिंता में व्यस्त रहता कि किसी भाँति प्रेमिका से मिलन हो। कई मर्तबा उधर होकर निकला। लालसापूर्ण दृष्टि बार-बार ऊपर को उठी, परंतु अभाग्यवश प्रत्येक बार निराश होकर लौट आई।

मूलराज हताश नहीं हुआ। प्रेमिका की अदर्शनीय स्थिति ने हृदयस्थ वासनाओं को और भी उत्तेजित कर दिया। प्रेम-पथ में वह कोई नया पथिक तो था नहीं, सफलता का उपाय सोचने लगा। दीर्घ अनुभव ने विचार-शक्ति को सहायता दी। अंत को उसने यह निश्चय किया कि सर्व-प्रथम प्रेमिका के हाल से अभिज्ञता प्राप्त करनी चाहिए। मूलराज-जैसे चलते मनुष्य के लिये यह काम कौन कठिन था ? कुछ प्रयत्न अवश्य करना पड़ा। शीघ्र ही सब बातें ज्ञात हो गईं।

अब उसने एक नया उपाय सोचा। मन में ठान ली कि किसी भाँति एक दफ़े लक्ष्मी से मिलना चाहिए, चाहे इसके लिये उसके घर ही में क्यों न जाना पड़े। उसे अपने प्रकृति-प्रदत्त सौंदर्य पर कुछ कम गर्व न था। सफलता का काल्पनिक चित्र उसके नेत्रों के आगे उपस्थित था, जिसका प्रत्येक संकेत आशासूचक था।

* * *

उपर्युक्त स्तंभों में जिस बात का उल्लेख किया गया है, उसे घटित हुए छः-सात दिन हो चुके हैं। रात्रि का समय है। आठ बजा चाहते हैं। मूलराज अपनी धुन में मस्त लक्ष्मी के मकान के पास सड़क पर टहल रहा है। आज उसका पूर्ण विचार है कि किसी प्रकार उस रूप-राशि का दर्शन करे। प्रेमिका तक पहुँच हो जाय, फिर आगे जो कुछ हो—इसकी निर्भरता तो सामयिक परि-स्थितियों पर थी।

अनेक कल्पनाओं से छुटकारा पाते-पाते कुछ समय और व्यतीत हो गया। अंत को वह गृह-द्वार की ओर चला। पुकारने ही को था कि उसे पृथिवी पर कोई श्वेत वस्तु देख पड़ी, जो कुछ दूर पर पड़ी हुई थी। विचार-प्रवाह दूसरी ओर हो गया। उठाकर देखा, तो एक बड़ा लिफ़ाफ़ा था, जिसके अंदर एक पत्र मिला। मूलराज ने सोचा, इसे पढ़ना चाहिए। कदाचित् कोई बात और मालूम हो जाय। वहाँ खड़े होकर पढ़ना उचित न जान पड़ा। द्वार से लौटना पड़ा। कुछ दूर जाकर वह सड़क की बग़ल में खड़ा हो गया। चंद्रमा का प्राकृतिक दीपक आकाश पर प्रकाशित था, जिसने मूलराज की दृष्टि-शक्ति को काफ़ी मदद दी। उसने पत्र को बड़े चाव के साथ पढ़ा। साथ ही हृदय में एक नवीन विचार उत्पन्न हो गया। कुछ देर सोचा किया, और यह कहते हुए कि 'हाँ बस यही ठीक है' अपने निवास-स्थान को पलटा। पुराने विचार बिदा हो चुके थे; उनका स्थान नई योजनाओं ने ले लिया था।

(६)

आज पूर्णिमा है। चंद्रमा आकाश के नीले फ़र्श पर लोट-लोटकर हँस रहा है। या तो यह अपनी पूर्ण वयस्कता के मद में उन्मत्त है, या फिर लक्ष्मी को किसी आनेवाली ख़ुशी पर बधाई देते हुए अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रहा है।

अभी बहुत रात नहीं गई। लक्ष्मी आज सबेरे ही से अपने प्रिय पतिदेव की बाट जोह रही है। परंतु प्रतीक्षा की लड़ी अब तक आशा-रूपी शृंखला के सदृश बढ़ती ही जाती है। अब हृदय में भाँति-भाँति की शंकाएँ उत्पन्न होने लगी हैं। परंतु लक्ष्मी की सहन-शक्ति अतीव प्रबल है। विपत्ति की आवृत्तियों ने उसके स्वभाव को अत्यंत सुदृढ़ बना दिया है। चित्त में एक ऐसी स्थिति का प्रादु-र्भाव हो गया है, जिसे हम न सुखमयी कह सकते हैं, न दुःखमयी। वह शीघ्र हताश नहीं हो सकती। अपनी शंकाओं के मिटाने का प्रयास कर रही है। "पूर्णिमा के समाप्त होने में तो अभी कई घंटे बाक़ी हैं, आते होंगे। यदि आज न भी आए, तो कल आ जायँगे। जिस परमात्मा की अपार दया से मुझे उनकी ख़बर मिली है, वही परमात्मा मुझे उनकी मूर्ति का दर्शन भी करावेंगे। यदि मेरे हृदयस्थ प्रेम में इतना आकर्षण था कि वह उन्हें एक सुदूर द्वीप से इस देश में खींच लाया, तो अब बंबई से यहाँ तक लाने के लिये उसमें काफ़ी से अधिक शक्ति मौजूद है। मैं निराश क्यों हूँ ? निराश होने का समय ही कहाँ है ?", लक्ष्मी इसी प्रकार की भावनाओं से अपने मन को बहला रही थी कि बाहर किसी गाड़ी की घर-घराहट सुनाई दी, जो शीघ्र ही बंद हो गई। लक्ष्मी का दिल धड़कने लगा। सुंदर मुख पर ख़ुशी का रंग एकदम चढ़ गया। क्षण-भर में एक नुकीला-सजीला युवक घर

में प्रविष्ट हुआ। लक्ष्मी स्वागत के लिये आगे बढ़ी। लज्जावश आँखें चार न हो सकीं। आगंतुक पर एक लज्जापूर्ण दृष्टि डाली, और झट उसके पैरों पर गिर पड़ी।

आनेवाला—लक्ष्मी, यहाँ ठहरने का अवकाश नहीं है। जो कुछ मूल्यवान् पदार्थ हों, उन्हें शीघ्र ही ले लो, और मेरे संग चली चलो। इस समय न मुझे कहने की अधिक आवश्यकता है, न तुम्हें सुनने की।

लक्ष्मी यह सुनकर चौंक पड़ी। दिल में एक और संदेह उत्पन्न हो गया। तुरंत ही अलग होकर खड़ी हो गई। उसने ख़याल किया कि उसे अधिक सुनने की आवश्यकता थी। आत्मसंवरण से काम लिया। दृढ़ता-पूर्वक बोली—आप कौन हैं ?

आनेवाला—(हँसते हुए) आह, मेरा अनुमान ठीक निकला। मैंने प्रथम ही लिख दिया था कि शायद तुम मुझे न पहचान सकोगी। मैं हूँ कौन ? अजीतसिंह, और कौन ?

लक्ष्मी को इससे संतोष न हुआ। उसने आनेवाले को कड़ी दृष्टि से देखा, और पूछा—मुझे कैसे विश्वास हो ?

आनेवाला—मैं इससे अधिक और तुम्हें क्या विश्वास दिला सकता हूँ कि मेरी अँगूठी तुम्हारी उँगली में मौजूद है। निस्संदेह मेरी प्रार्थना पर तुमको आश्चर्य हुआ होगा। परंतु आशा है कि मैं तुम्हें इस शीघ्रता का कारण पीछे बतला सकूँगा। यहाँ से ज़रा चलें तो सही।

लक्ष्मी का संदेह अभी निवृत्त नहीं हुआ था। वह कुछ कहने ही को थी कि एक दूसरा मनुष्य घर में आता हुआ देख पड़ा। प्रथमागत मनुष्य इससे कुछ घबरा गया; किंतु उसने साहस से काम लिया। नवागंतुक पर तीव्र दृष्टि डालते हुए पूछा—आप कौन हैं, जो ऐसी स्वच्छंदता के साथ अंदर चले आते हैं, मानो यह आप ही का घर है ?

नवागंतुक—(आश्चर्यपूर्ण स्वर में) क्या यह लक्ष्मी का घर नहीं है ?

पहला मनुष्य—तो फिर इससे तुम्हारा क्या प्रयोजन ?

नवा०—इससे मेरा यह प्रयोजन कि लक्ष्मी मेरी धर्मपत्नी है।

पहला मनुष्य—यह अच्छी कही। परंतु कोई चिंता की बात नहीं। लक्ष्मी स्वयं जानती है कि वह किसकी पत्नी है। अब मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यह निरर्थक तथा कपटपूर्ण बकवाद का अवसर नहीं है। या तो स्पष्टतः अपने आने का प्रयोजन कहिए, या तुरंत निकल जाइए, जिसमें मुझे कोई दूसरा उपाय न ग्रहण करना पड़े।

नवागत मनुष्य समझ गया कि उसे क्या करना चाहिए। उसने बड़े धैर्य से काम लिया। उसके ओठों पर एक तिरस्कारपूर्ण हास्य था। लक्ष्मी को देखते हुए बोला—तनिक वह अँगूठी मुझे दे दो, जो तुम्हारी उँगली में है। बस, यही अँगूठी अभी सच-झूठ को प्रकट कर देगी।

लक्ष्मी चित्रवत् स्तंभित खड़ी थी। पाँव जहाँ थे, वहीं जम गए थे। कभी एक की ओर देखती थी, कभी दूसरे की ओर। चकित थी कि यह क्या रहस्य है।

परंतु पतिव्रता स्त्रियों के हृदय में एक प्रकार का साहस होता है। इस समय वही साहस इस देवी की सहायतार्थ उपस्थित था। लक्ष्मी ने पूर्ण रूप से यह निश्चय कर लिया था कि मैं उस समय तक किसी पर विश्वास न करूँगी, जब तक उस विश्वास के लिये यथेष्ट कारण न हो। नवागंतुक की बात सुनकर उसने अँगूठी उतारी, और उसे दे दी। उस मनुष्य ने अँगूठी लेकर ध्यान-पूर्वक उसे इधर-उधर देखा। फिर एक ओर तनिक दबा दिया। बड़ा नग तुरंत खुल गया, और उसके भीतर एक छोटा-सा फ़ोटो देख पड़ा।

नवागंतुक—(लक्ष्मी को अँगूठी लौटाते हुए) बस, देख लो। यही तुम्हारा पति अजीतसिंह है, जिसने तुमको यह अँगूठी भेजी थी।

लक्ष्मी ने अधीरता-पूर्वक अँगूठी ले ली। उसके भीतर ध्यान से देखा। फिर देनेवाले के मुख पर एक दृष्टि डाली। निस्तब्धता जाती रही। संदेह का स्थान विश्वास ने ले लिया, और वह तुरंत ही उसकी छाती से लिपट गई। प्रेमावेश ने लज्जा का ख़याल तक हृदय में न आने दिया। क्षण-भर के लिये दोनों पर एक प्रकार की विस्मृति छा गई। आँखें उठीं, तो कोई तीसरा मनुष्य वहाँ विद्यमान न था।

थोड़े अंतर पर काग़ज़ का एक टुकड़ा देख पड़ा। उठाकर देखा, तो एक 'मुलाक़ाती कार्ड' था, जिस पर 'मूलराज' छपा हुआ था।

इक़बाल वर्मा 'सेहर'

कच्ची कली

(गद्य-गीत)

(१)

हे माली !
निष्ठुर माली !—
क्यों कली तोड़ ली कच्ची ?
उपवन विशाल था तेरा,
थे उसमें फूल अनेकों ;
उनमें कितने थे ऐसे—रसमय सौरभ जो अपना—
खिल-खिलकर लुटा चुके थे,
मिल-मिलकर लूट चुके थे—
क्षण-भंगुर जीवन का सुख—मधु-प्यासे मधुकर के सँग—
अपने अब शेष दिवस हा !—कंटक में काट रहे थे ;
मुरझाकर थे गिरने को ।
चुन लेता यदि कोई तू—उन पके हुए कुसुमों में,
तनु पाकर मृदुल सुमन-सा—
पृथिवी पर उन्हें अंत में—गिरकर पड़ती न चाटनी—
धूल,
हाय !
किंतु, अरे मतवाले ! तुझको यह क्या सूझी ?
उस निरीह पर जो कुदृष्टि हा ! तूने डाली ।
हाँ ! डाली—
कर दी सूनी ;
हे माली !
निष्ठुर माली !—
क्यों कली तोड़ ली कच्ची ?

(२)

इसी भाँति, यदि जीवन उसका नष्ट तुझे था करना !
वृथा सींचकर—फिर उसको—क्यों पृथ्वी पर उपजाया ?
क्या इसीलिये ?—जब कोई अलि अनुरागी—
अपनाकर उसे नेह से प्यार करेगा ।—
तब निष्ठुर होकर तू, उसको—उसके उस प्रिय धन को—
लेगा छीन लताओं की हा ! उस कोमल गोदी से ।
क्या पता, किसे, उस प्याली में—वह कैसा था मकरंद मधुर !
रह गया छिपा उसका सौरभ,
रह गई सभी हा ! मन-ही-मन—
क्या जानें, कितनी आशाएँ—कर चुका हाय, था रसिक मधुप !
पर, रे पाषाण-हृदय तूने—हा ! किया न ध्यान किसी का कुछ ।
थे कोमल फूल रँगीले !—हा, कठिन कलेजा ऐसा !
होगी फिर कैसे, बतला—इस उपवन की रखवाली ?
हे माली !
निष्ठुर माली !—
क्यों कली तोड़ ली कच्ची ?

मदनमोहन मिहिर

क्या भारत की भूमि भी कामधेनु हो सकती है ?

"कृषि-विज्ञान भूमि को करता कामधेनु, यह ध्यान धरो ।"

धन्य है वह देश, जहाँ के ज्ञान-वृहस्पति विद्वज्जन अपनी विद्वत्ता को अपने देश की श्री-वृद्धि के उपाय ढूँढ़ने में लगाए रक्खा करते हैं । धन्य है वह देश, जहाँ के धन-कुबेर लोग अपना धन उन उपायों को काम में लाने में लगाया करते हैं, जिन्हें उनके देश के खोज करनेवाले अपने देश को समृद्धिशाली बनाने के लिये खोज निकालते हैं । धन्य है वह देश, जहाँ के किसान उन उपायों को सादर काम में लाने के लिये तत्पर रहा करते हैं, जिन्हें उनके देश के विद्वान् लोग धरती की उपज को अधिक-से-अधिक बढ़ाने के लिये खोज निकालते हैं । धन्य है वह देश, जहाँ के ब्रह्मचारी विद्यार्थी स्नातक होने के पश्चात् अपनी जन्म-भूमि को धन-धान्य-संपन्न बनाने के उपायों की खोज में लगे रहते हैं । धन्य है वह देश, जहाँ के साक्षर लोग अपने देश-बंधुओं में सत्यता, न्याय परायणता और धर्म-भीरुता की मात्रा को उत्तरोत्तर बढ़ाते रहते हैं । धन्य है वह देश, जहाँ के माता-पिता अपनी दोनों प्रकार की संतति को लिखाना-पढ़ाना सिखाकर उन्हें संसार के समस्त आवश्यक कार्य करने में दक्ष बनाया करते हैं । धन्य है वह देश, जहाँ के साधु-संन्यासी लोग निर्दंभ होकर लोगों को कल्याणदायक उपदेश देने में लगे रहते हैं । धन्य है वह देश, जहाँ के अल्पज्ञ लोग थोथी श्रेष्ठता की आड़ में अपने निरक्षर भाइयों को ठगने तथा उनकी संपत्ति को, नीचातिनीच मार्ग का अवलंबन

कर, अपहृत करने से दूर रहा करते हैं। धन्य है वह देश, जहाँ का राजा अपनी प्रजा में अर्थकरी विद्या का पूर्ण रूप से प्रचार कर उसे सुख-संपत्ति-संपन्न बनाने में निरंतर लगा रहता है; और साथ ही यह भी देखता रहता है कि उसके कर्मचारी उसकी प्राणप्रिय प्रजा को न्याय के बहाने अन्याय की चक्की में पीसने तो नहीं पाते हैं। धन्य है वह देश, जहाँ की प्रजा पारस्पारिक सहानुभूति और स्नेह-भाव के अमृत-रस में सदा सनी रहकर धर्मनिष्ठ और राजभक्त बनी रहती है।

निसर्गजात सद्विद्वानों ने जो चिरकालपर्यंत अनुसंधान करके गंभीर विचार-प्रमुख साहित्य प्रस्तुत किया है, उससे ज्ञानार्जन-लोलुप लोगों को ज्ञात हो सकता है कि मनुष्य को संसार में उत्तमोत्तम खाद्य पदार्थ तथा पहनने-ओढ़ने के लिये जो कपड़े आवश्यक हैं, उन सबकी एक-मात्र दात्री धरती ही है। उन पदार्थों को कच्चे रूप में धरती से प्राप्त करनेवाले कृषक ही हैं। संसार के समस्त देशों में भारत प्राचीनतम देश है। यहाँ के सद्विद्वानों को सर्वप्रथम कृषि की उपयोगिता का बोध हुआ था। अतः उन लोगों ने घोषणा कर दी थी कि आत्महित-चिंतकों को चाहिए कि वे लोग किसानों को बुद्धिमानी के साथ किया करें—"कृषिः कार्या, कृषिः कार्या कार्या नात्र विचारणा।" संस्कृत में 'कृषि-पद्धति' नाम का एक बहुत प्राचीन ग्रंथ है। उसके देखने से पाठकों को यह बात ज्ञात हो सकती है कि भारत के प्राचीन ऋषि-महर्षि कृषि को किस आदर की दृष्टि से देखते थे, और मरीच-ऋषि ने कृषि की उन्नति के लिये कौन-कौन-से काम किए थे। उनके द्वारा कृषि की उन्नति को देखकर तत्कालीन लोगों ने कृषि को 'मरीचिपुत्री के' नाम से पुकारना आरंभ कर दिया था।

श्रीमद्भागवत के विद्वान् पाठकों तथा श्रोताओं को भली भाँति विदित होगा कि राजा पृथु ने कृषि की उन्नति करने के लिये अपने समय के विद्वानों को किस प्रकार उस कार्य में नियुक्त किया था। राजा पृथु का यह कार्य भागवत में 'धरणी-दोहन' के नाम से प्रसिद्ध है।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने रामचरित-मानस में लिखा है—

"भूप प्रतापभानु-बल पाई,
कामधेनु भइ भूमि सोहाई।"

अर्थात् प्रतापभानु राजा ने अपनी प्रजा को सुखी करने के लिये सर्वप्रथम वह प्रबंध किया, जिससे उसके राज्य की भूमि कामधेनु हो गई। सारांश यह कि उसने अपने किसानों में उस कृषि-विज्ञान का प्रचार करा दिया, जिससे वे लोग अपनी किसानी से अधिक-से-अधिक उपज पाने लगे।

श्रीमद्भागवत और श्रीरामचरित-मानस की उक्त चर्चा को पढ़कर माधुरी के पाठक यह प्रश्न कर सकते हैं कि क्या आजकल भारत की भूमि कामधेनु नहीं है? और, यदि नहीं है, तो क्या वह कामधेनु बनाई जा सकती है? उनके इस प्रश्न के उत्तर में हम उन्हें यह विश्वास दिलाते हैं कि आजकल भारत की भूमि कामधेनु नहीं है। कारण, भारत की समूची प्रजा को जितना गेहूँ, चना आदि भोज्य पदार्थ आवश्यक होता है, उससे दो करोड़ टन कम वह पैदा करती है। भारत के किसान जितना बीज बोते हैं, उससे वे उसकी तीन से सातगुनी तक उपज पाते हैं। इतनी उपज देनेवाली धरती कामधेनु नहीं कही जा सकती। अमेरिका, योरप और जापान आदि देशों की धरती से वहाँ के लोग बीस से बत्तीस-गुनी तक उपज पाते हैं। इतनी उपज देनेवाली धरती निःसंदेह कामधेनु कही जा सकती है। जिस प्रकार उक्त देशों के लोगों ने कृषि-विज्ञान की कृपा से अपने देश की धरती को, सत्ययुग की तरह, आजकल कामधेनु बना दिया है, ठीक उसी प्रकार यदि उद्योग किया जाय, तो हमारे भारत-देश की भूमि आज दिन भी कामधेनु बनाई जा सकती है।

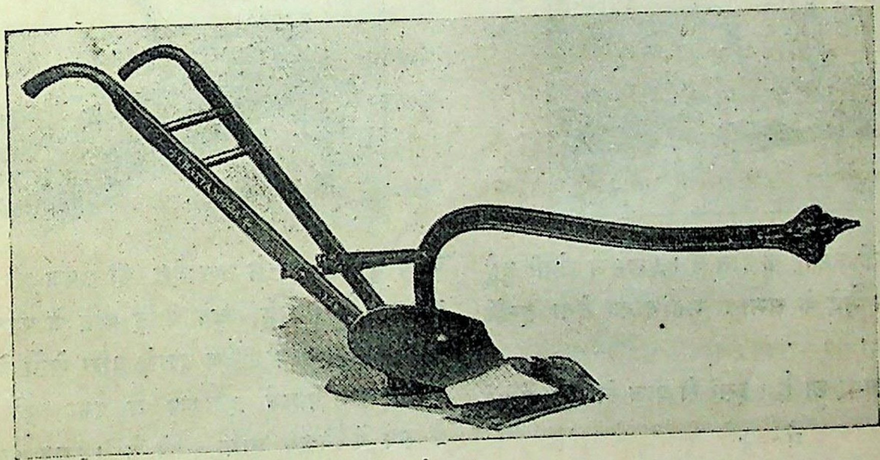
अमेरिका आदि राष्ट्रों के देश-हितैषी धन-कुबेरों और विद्वानों ने मिल-जुलकर अपने देश के किसानों में कृषि-विज्ञान फैलाने के लिये पर्याप्त साहित्य प्रस्तुत कर दिया है, उसे उनके पास पहुँचाने का यथोचित प्रबंध कर दिया है, अर्थात् कृषि-विज्ञान की यह चर्चा उनके पास समाचारपत्रों द्वारा पहुँचाई जाती है। किसानी के ऐसे-ऐसे औज़ार बनाकर प्रचलित कर दिए हैं, जिनकी सहायता से वहाँ के किसान थोड़े ख़र्च और थोड़े समय में अधिक-से-अधिक उपज पा सकते हैं। हमारे देश के धन-कुबेर यदि मिल-जुलकर यत्न करें—क्योंकि अब उन्हें वैसा यत्न किसानों के नहीं, तो निज की भलाई के अभिप्राय से अवश्य ही करना चाहिए—तो भारत में भी कृषि-

विज्ञान का साहित्य प्रस्तुत किया जा सकता है, और उसके प्रचारार्थ अभी दैनिक नहीं, तो साप्ताहिक पत्र निकाले जा सकते हैं।

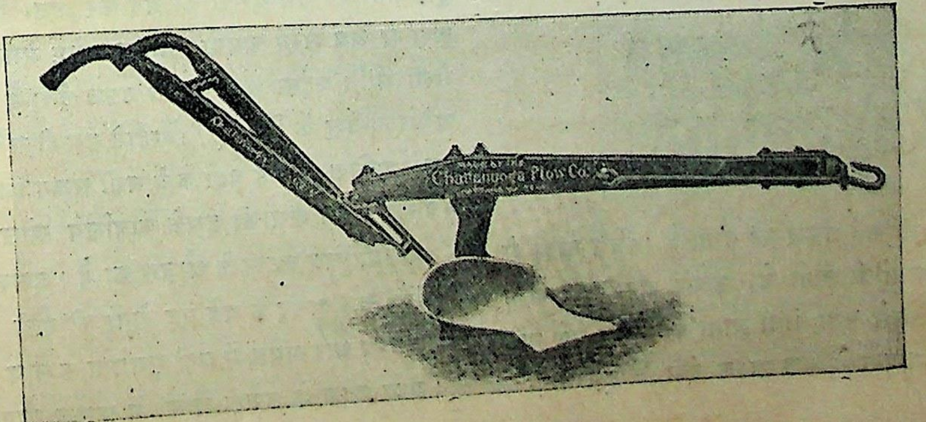
अमेरिका के लोगों ने किसानों की उपज बढ़ाने के लिये सत्ताइस औज़ार तैयार किए हैं। उनमें से थोड़े से औज़ारों का वर्णन माधुरी के देश-हितैषी धनी, ज्ञानी पाठकों के विचारार्थ नीचे प्रकाशित किया जाता है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि हमारे देश में हज़ारों वर्ष पूर्व मरीचि ऋषि ने कृषि के जिन हल, बक्खर और नाड़ी की रचना की थी, उन्हीं से आज तक काम लिया जा रहा है। पर अमेरिका के विद्वानों तथा धनिकों को कृषि-विज्ञान की कृपा से जब यह ज्ञात हुआ कि भिन्न-भिन्न प्रकार की धरती के भिन्न-भिन्न गुण-धर्म हुआ करते हैं, उन्हें जोतने, बखरने तथा उनमें भिन्न-भिन्न प्रकार के बीज बोने के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार की नाड़ियों की आवश्यकता हुआ करती है, तब उन लोगों ने वैसे ही औज़ार बनाए। आज दिन उनके पास काली, पीली, पथरीली, रेतीली, पहाड़ी आदि ज़मीनों को जोतने के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के हल हैं। इन हलों की सहायता से वे लोग अपने खेतों को उतनी गहराई तक जोत सकते हैं, जितनी उन्हें आवश्यक होती है। कृषि-विज्ञान की कृपा से वहाँ के किसानों को यह ज्ञात हो गया है कि गेहूँ, चना, अलसी, मटर और कपास आदि के पौदों की जड़ें धरती में कितनी दूर तक जाया करती हैं। तात्पर्य यह कि जिस जो चीज़ बोनी होती है, वह उतनी ही गहरी जुताई करता है, और उस जोती हुई धरती को बोने के पहले बक्खरों से मैदे के समान महीन तथा मृदु कर देता है, जिससे बोया हुआ बीज बड़ी सुविधा के साथ धरती में जाकर अंकुरित और पल्लवित होता है। वहाँ का किसान इस बात पर पूरा-पूरा ध्यान रखता है कि उसके बोए हुए बीज का प्रत्येक कण अंकुरित होता है, और बोए हुए सब कण एकसाथ अंकुरित होकर पल्लवित होते हैं। यहाँ हम तीन हलों के चित्र देते हैं। उनमें से एक हल कपास के लिये, दूसरा अमरूद-संतरे आदि

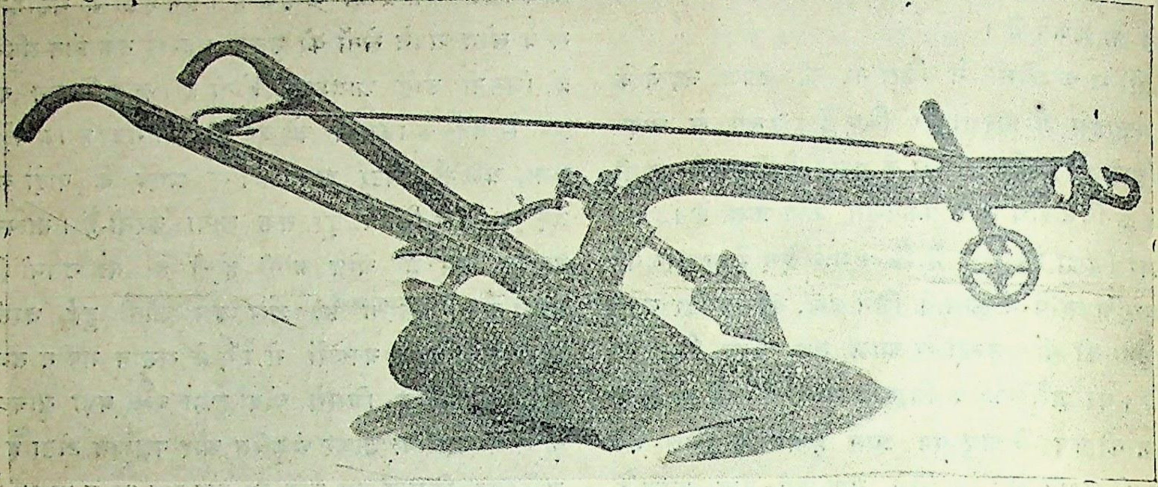
नं० १



नं० २



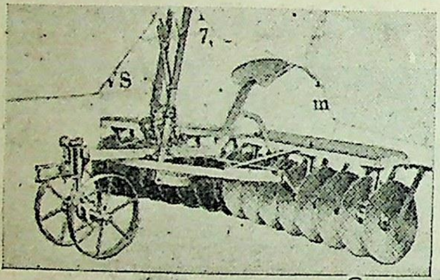
नं० ३



फल-फूलों के पेड़ों के लिये, और तीसरा पहाड़ी धरती को जोतने के लिये काम में लाया जाता है।

चौथा चित्र एक प्रकार के बक्खर का चित्र है। हलों

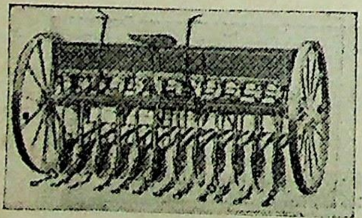
नं० ४



की तरह ये भी कई प्रकार के होते हैं। हलों से जोती हुई धरती के ढेलों को मैदे के समान महीन कर देना इन्हीं का काम होता है।

पाँचवाँ चित्र नाड़ी का है। इसी से बीज खेतों में बोया

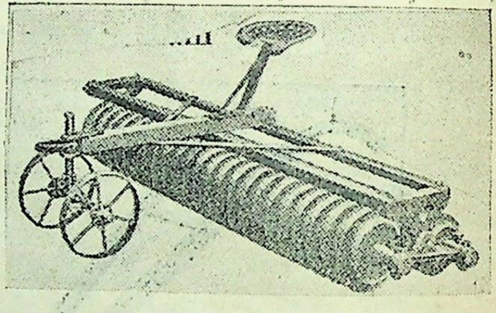
नं० ५



जाता है। ये भी कई प्रकार की होती हैं। जिस नाड़ी से कपास का बीज बोया जाता है, उससे चना नहीं बोया जाता, और जिससे चना बोया जाता है, उससे गेहूँ नहीं बोया जाता। माधुरी के विज्ञ पाठक देखें कि इस नाड़ी के द्वारा कितने दाने एकसाथ बोए जा सकते हैं। हमने पढ़ा है कि बत्तीस पंक्तियाँ एकसाथ बोनेवाली नाड़ियाँ बना ली गई हैं।

छठे औज़ार का नाम 'कल्टीपैकर' है। जब से इसका

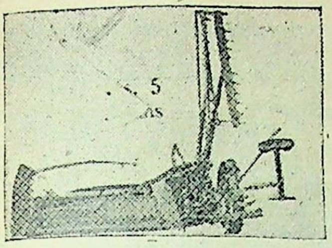
नं० ६



जन्म हुआ, तब से उस देश की उपज की मात्रा कहीं बढ़ गई है। गेहूँ, चने आदि बोने के पश्चात् खेतों में दरारें पड़ जाती हैं। उन दरारों द्वारा खेतों के नीचे पौदों के जो खाद्य पदार्थ द्रव-रूप में रहा करते हैं, वे भाप के रूप में निकल जाया करते थे। यह कल्टीपैकर बोए हुए खेतों की उन दरारों को बंद कर देता है। इसकी कृपा से अब शस्य अपना भोजन यथेष्ट मात्रा में पाकर भली भाँति बढ़ता और बढ़िया उपज देता है। धन्य हैं अमेरिका-देश के विद्वान्, जिन्होंने इसकी सृष्टि की; और उनसे अधिक धन्य हैं वहाँ के वे धनी सज्जन, जिन्होंने इसके प्रचारार्थ धन लगाकर इसके कार्यालय खोल दिए हैं।

सातवाँ चित्र कटनी के औज़ार का है। इसकी सहायता से गेहूँ, चने आदि के बड़े-बड़े खेतों की पकी हुई फ़सलें अल्प व्यय और समय में बड़ी सुगमता के साथ काटी जाती हैं। मध्य-प्रदेश के उत्तरी ज़िलों में फ़सल काटने के समय

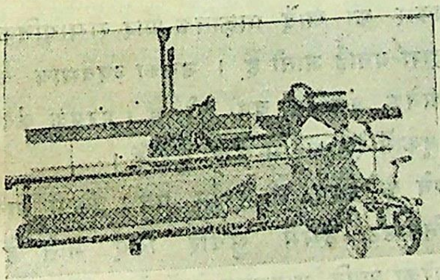
नं० ७



बुंदेलखंड से श्रमजीवी लोग पहुँच जाया करते हैं। सं० १९८० की फ़सल काटने के समय वे लोग नहीं आए। उनके न आने के कारण फ़सल कटाने में जो कष्ट और हानि हुई, उसे भुक्तभोगी ही जानते हैं। जबलपुर के एक बड़े भारी मालगुज़ार—जो सैकड़ों गाँवों के मालगुज़ार हैं—उक्त प्रकार की अवस्था को देखकर लेखक से कहते थे कि फ़सल कटाने में सुविधा उत्पन्न करनेवाला कोई उपाय यदि हो, और उसे काम में लाने के लिये यदि आवश्यकता हो, तो हम पचास हज़ार रुपए तक ख़र्च करने को उद्यत हैं। हमारे पास समय पर रुपए न होंगे, तो हम उस काम के लिये क़र्ज़ लेकर रुपए देंगे। लेखक की ईश्वर से प्रार्थना है कि वह उक्त भाव को उनके तथा अन्य धनी लोगों के चित्त में दृढ़ रूप से स्थित कर दे, जिससे कृषि-सुधार को पर्याप्त मात्रा में सहायता मिल सके।

आठवाँ चित्र गाहनी के औज़ार का है। इसकी

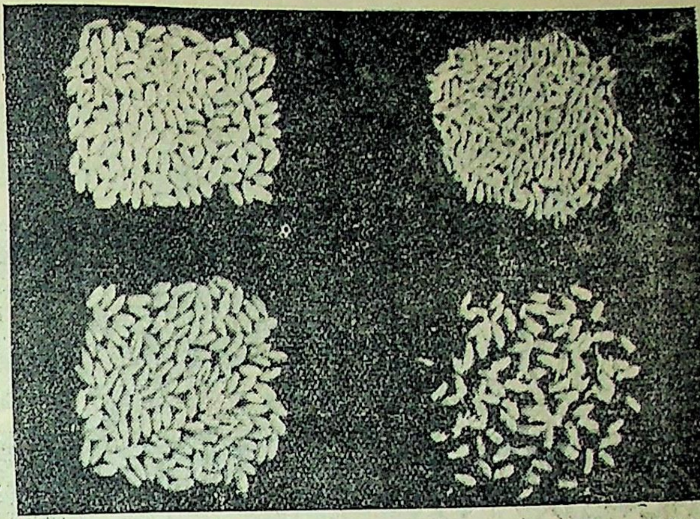
नं० ८



सहायता से लाखों मन धान्य की गाहनी बात-की-बात में की जा सकती है। भूसे से धान्य इतनी उत्तमता के साथ अलग कर दिया जाता है कि धान्य के आकार-प्रकार में अणु-मात्र भी न्यूनता का दोष नहीं आने पाता।

इस यंत्र के द्वारा प्रस्तुत किए हुए धान्यों के रूप नवें चित्र में प्रदर्शित किए गए हैं। पाठक उन्हें ध्यान-पूर्वक देखें। हमारे यहाँ के हज़ारों मन गेहूँ बोनेवाले मालगुज़ार लोग तब तक अपनी फ़सल की गाहनी नहीं

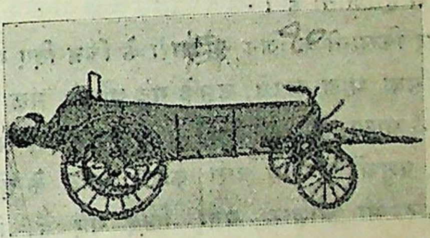
नं० ९



कर पाते, जब तक वर्षा का आरंभ होता है। वर्षा के जल से माल ख़राब हो जाता है। उस हानि को दुखी होकर वे सह लेते हैं; पर उससे बचने का उपाय नहीं सोचते। अब उन्हें इस ओर अधिक ध्यान देना चाहिए।

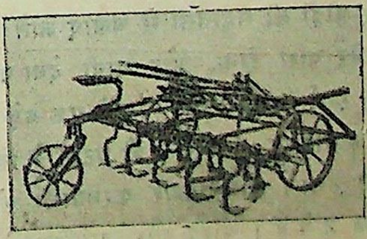
दसवाँ चित्र उस औज़ार का है, जिसमें खाद भरकर खेतों में फैलाई जाती है।

नं० १०



ग्यारहवाँ चित्र उस हल का है, जिससे चुकंदर बोने के लिये खेत तैयार किया जाता है।

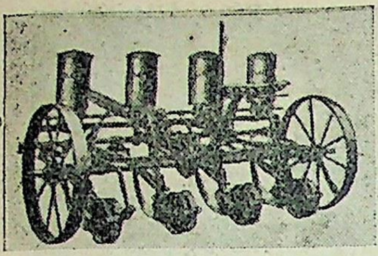
नं० ११



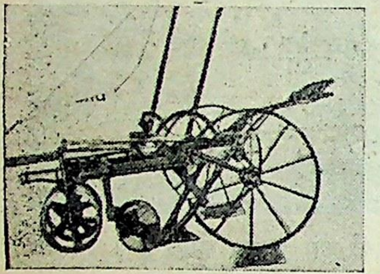
बारहवाँ चित्र उस नाड़ी का है, जिससे चुकंदर का बीज खेत में बोया जाता है।

तेरहवाँ चित्र उस औज़ार का है, जिससे, पक जाने पर, चुकंदर खेत से खोदकर निकाले जाते हैं।

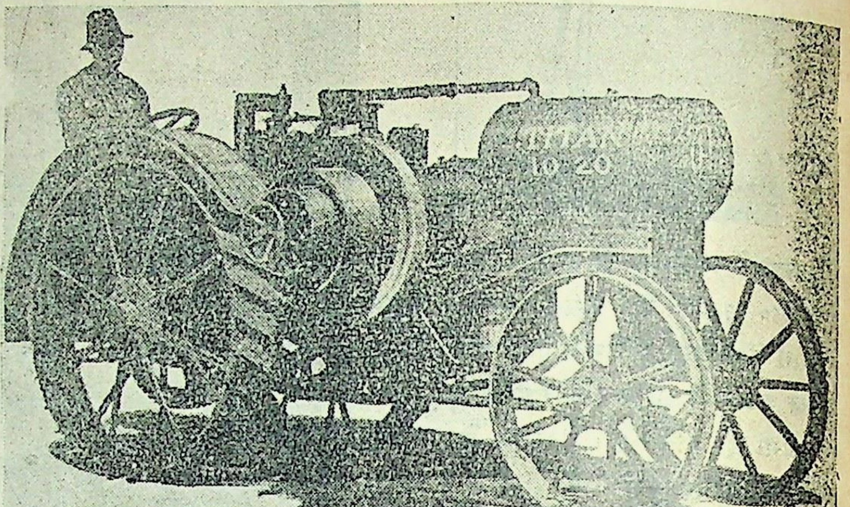
नं० १२



नं० १३



नं० १४



उड़ावनी के पंखों का प्रचार आजकल भारत में भी हो गया है। जब हवा नहीं चलती, तब इनसे जो काम होता है, उसे लोग जानने लगे हैं। अमेरिका में ये पंखे भाप के यंत्रों द्वारा चलाए जाते हैं। कहना न होगा कि इनसे काम बहुत कम व्यय और समय में हो जाता है।

ऊपर किसानी के जिन औज़ारों के चित्र दिए गए हैं, उनके सिवा घास काटने, उसके गट्ठे बाँधने, मक्का-जुआर आदि के धान्य को उनके भुट्टों से अलग करने, खेतों को सींचने, पशुओं के लिये चारा काटने आदि के छोटे-बड़े और-और भी औज़ार बना लिए गए हैं, जिनकी सहायता से किसानी के सब काम बड़ी सुगमता से, ठीक समय पर, अल्प व्यय में किए जाते हैं।

योरप और अमेरिका में हल, बक्खर आदि किसानी के औज़ार घोड़ों की सहायता से चलाए जाते थे। घोड़ों को साल-भर चारा, दाना और पानी देना पड़ता था। उनका यह ख़र्च किसानी की उपज के एक बड़े भाग को खा जाया करता था। उस ख़र्च को घटाने के लिये उपाय सोचा जाने लगा। सोच-विचार करनेवालों को बहुत-से उपाय मिल जाते हैं। योरप और अमेरिका के लोगों ने 'ट्रॉक्टर' नाम का एक यंत्र बनाया है, जो उनके खेती के सब औज़ारों को खेतों में चलाने का काम करता है। वह खेती की उपज को उनके घरों और बाज़ारों में पहुँचाने का काम भी करता है।

चौदहवाँ चित्र उसी ट्रॉक्टर का है। ये ट्रॉक्टर छोटे-बड़े, सभी आकारों के बनाए जाते हैं। एक घोड़े से लगाकर चालीस घोड़े तक की शक्ति इनमें रक्खी जाती है। जब काम करते हैं, तभी इन्हें तेल और कोयले का भोजन देना पड़ता है। ये ट्रॉक्टर ऊँचे, नीचे, समान मैदान के और पहाड़ी, सभी खेतों में काम करते हैं। कहते हैं, ये इतने हलके होते हैं कि इनके नीचे मुरग़ी का अंडा आ जाता है, तो वह नहीं फूटता।

खेतों की उत्पादिका-शक्ति को बनाए रखने के लिये नाना प्रकार की खादें प्राकृतिक और रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा बनाई जाती हैं। उनका व्यवसाय करने के लिये अनेक कंपनियाँ बनी हुई हैं। हरएक कंपनी की सैकड़ों दूकानें देश-भर में फैली हुई हैं।

सींचने के लिये भी पर्याप्त प्रबंध किया गया है, और नित-उठ उसमें सुधार किए जाते हैं।

अमेरिका आदि पाश्चात्य देशों के धनी तथा ज्ञानी लोगों ने मिल-जुलकर अपने देश की भूमि को जिस प्रकार कामधेनु—अधिक-से-अधिक उपज देनेवाली—बनाया है, उसके उक्त संक्षिप्त वर्णन को पढ़कर माधुरी के विवेकी पाठक इस बात को संभवतः मान लेंगे कि उसी प्रकार का यत्न यदि भारत में भी किया जाय, तो भारत की नैसर्गिक उर्वरा भूमि भी कामधेनु बनाई जा सकती है। भारत के धनी, ज्ञानी लोग भारत की भूमि को कामधेनु बनाने में अब जितना विलंब करेंगे, उतना

ही भारत को दुःखी होना होगा। अतः भारत के सच्चे हितैषियों को उचित है कि वे मिल-जुलकर भारत की भूमि को कामधेनु बनाने का शीघ्र उद्योग करें।

इस लेख को पढ़ते ही माधुरी के पाठक सहसा कह उठेंगे कि भारत के किसानों के पास इतना धन कहाँ है, जिससे वे उन क़ीमती औज़ारों को ख़रीद सकें ? ऐसा प्रश्न करनेवाले पाठकों की सेवा में हमारी यह विनम्र प्रार्थना है कि अभी हमारे किसानों को वैसे यंत्रों की उतनी आवश्यकता नहीं है। अभी केवल इतनी ही आवश्यकता है कि हमारे किसानों के पास उपज बढ़ानेवाली जो चीज़ें विद्यमान हैं, और अज्ञानवश वे जिनसे लाभ नहीं उठाते, उनका उन्हें ज्ञान करा दिया जाय। हमारे किसानों के पास गोबर, गोमूत्र और गोवंश की अस्थियाँ विद्यमान हैं; पर वे उनसे लाभ उठाना नहीं जानते। हमारे किसानों में कृषि-विज्ञान की चर्चा साप्ताहिक पत्रों द्वारा फैला दी जाय, तो उक्त पदार्थों की खाद से वर्तमान उपज की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। इस प्रकार पाँच-सात वर्षों में जब उपज की मात्रा बढ़ जायगी, तब किसानों में सुधारे हुए औज़ार ख़रीदने की शक्ति भी आ जायगी।

भारत के प्रत्येक प्रांत के धनी, ज्ञानी लोगों को चाहिए कि वे अपने प्रांत की किसानी की उन्नति के लिये किसानी का एक साप्ताहिक पत्र निकालें। उस पत्र की कम-से-कम एक प्रति प्रांत के प्रत्येक गाँव में पहुँचाने का प्रबंध किया जाय। प्रत्येक गाँव में पढ़नेवाले लोग अभी नहीं हैं। अतः प्रांतिक सरकार से लिखा-पढ़ी करके यह आज्ञा प्रचारित कराई जाय कि प्रत्येक गाँव का पटवारी उस गाँव के किसानों को वह पत्र पढ़कर सुनाया और समझाया करे। ऐसा करने से दो-तीन वर्षों में, हमारे किसानों में, कृषि-विज्ञान का प्रचार हो ही जायगा। उस पत्र का मूल्य गाँव के लोग दो-दो चार-चार आने का चंदा करके सुगमता और ख़ुशी से दे सकेंगे।

भारत के प्रत्येक प्रांत से किसानी के जो साप्ताहिक पत्र निकाले जायँ, उनमें निम्न-लिखित विषयों की चर्चा की जाया करे—

(१) धरती के गुण-धर्म, अर्थात् कौन-सी धरती किस धान्य को अधिकता के साथ उपजा सकती है।

(२) जो धरती जिस धान्य को प्रचुरता के साथ पैदा कर सकती है, उसमें वही धान्य बोना चाहिए।

(३) जिस धान्य की जड़ें जितनी गहरी धरती में जाती हैं, उसे बोने के लिये उस खेत की जुताई उतनी ही गहरी की जानी चाहिए, और वह उसी औज़ार से की जानी चाहिए, जिससे वह ठीक और सस्ती हो सके।

(४) बोई हुई फ़सल के भोज्य द्रव्यों को उत्पन्न करनेवाली खाद कैसे बनानी चाहिए, और उसे खेतों में किस प्रकार देना चाहिए।

(५) शीत और वसंत-ऋतु में जो धान्य बोए जाते हैं, उनके लिये किस प्रकार का धरती को तैयार करने के लिये कौन-सा औज़ार अधिक उपयोगी हो सकता है।

(६) शुद्ध और पुष्ट बीज तैयार करना और उत्तरोत्तर उसकी वृद्धि करते रहना।

(७) किसानी की आय और उसके व्यय का ठीक-ठीक लेखा रखना।

(८) खेती की उपज से सबसे पहले अपनी जोत का लगान दे देना।

(९) खेती करनेवाले पशुओं को उत्पन्न करना; उन्हें बलवान् बनाना और उनकी रक्षा तथा वृद्धि करना।

(१०) अपनी आय से व्यय को कभी बढ़ने न देना।

(११) अपने तथा अपने बाल-बच्चों के विवाह के लिये अपनी धरती को न कभी बंधक रखना और न कभी उसे बेचना।

(१२) लड़कों के विवाह तब करने चाहिए, जब वे अपना भरण-पोषण करने को स्वयं समर्थ हो जायँ।

(१३) लड़के-लड़कियों को कृषि-विज्ञान की शिक्षा अनिवार्य रूप से देना।

(१४) किसानों में पारस्परिक सहानुभूति तथा भ्रातृ-भाव उत्पन्न करना, और क्रमशः उसकी वृद्धि करते रहना।

(१५) स्वास्थ्य-रक्षा के उपाय समझाते रहना।

(१६) बंदोबस्त के तत्त्व और सिद्धांत किसानों को समझाना, और उनसे लाभ उठाने की ठीक समय पर सूचना देना।

(१७) अन्याय-पीड़ित किसानों की व्यथा की कथा को न्याय-दाताओं के कानों तक पहुँचाना, और उनके द्वारा उन्हें न्याय का सात्त्विक दान दिलाना।

(१८) प्रांतिक सरकारी कृषि-विभाग जिन आविष्कारों को लाभदायक प्रमाणित करे, उनको सब किसानों को ठीक समय पर सूचना देते रहना।

(१९) किस धान्य की कहाँ पर कितनी माँग है, और उसका मूल्य कितना मिल सकता है आदि बातों की सूचना देते रहना।

इस समय भारत के जो लोग स्वराज्य-प्राप्ति के लिये उद्योग कर रहे हैं, उनमें से थोड़े-से लोग देशवासियों के लिये पर्याप्त मात्रा में अन्न-वस्त्र उत्पन्न करने में लग जायँ, तो भारत का बड़ा भारी उपकार हो सकता है। भरोसा है कि माधुरी के विज्ञ पाठक हमारे इस छोटे-से लेख पर गंभीर भाव के साथ विचार करने की कृपा करेंगे। इस लेख को अन्य पत्र-पत्रिकाओं के संपादक महोदय यदि उपयोगी और महत्त्व-पूर्ण समझें, तो वे भी अपने पाठकों के विचारार्थ इसे अपने पत्रों में प्रकाशित करने की उदारता प्रदर्शित करें।

भारत की वर्तमान कृषि की दीन-हीन दशा को सुधारने में भारत के जिन धनाढ्य लोगों का धन लगेगा, वे निःसंदेह सात्त्विक दान का पुण्य पावेंगे, और उनका नाम राजा पृथु तथा भानुप्रताप के नाम के सदृश अमर हो जायगा। जो लोग इस काम के लिये आठ आने सैकड़े के ब्याज पर रुपया लगा सकेंगे, वे दानी ही समझे जायँगे। अब हम इस लेख को निम्न-लिखित प्रार्थना के साथ समाप्त करते हैं—

"देवें धनी दान शुचि धन का, ज्ञानी ज्ञान-प्रदान करें;
कामधेनु हो भारत-धरती, भारत सुख-भंडार भरें।"

माधुरी के पाठक इस विषय में यदि और कुछ पूछ-ताछ करना चाहें, तो उनकी सेवा करने के लिये हम उत्सुक हैं।

पो० आ० केसली,
ज़ि० सागर, म० प्र० } गंगाप्रसाद अग्निहोत्री

बिदा

"अच्छा तो अब जाता हूँ," सुन
मुखमंडल की रेखाएँ—
मानस से प्रतिबिंबित होकर
शशि-तरंग-तल-सी झलकीं।
"कब आऊँ", का भेद न देकर
मौन-निमंत्रण देतीं-सी—
प्रणय-भाव की विमल व्यंजिका
उनकी वे अँखियाँ छलकीं।
... ...
वाहन बहा ले चला सुझको,
पद-तल से पृथिवी खिसकी,
दिखलाई दी दूर दृगों से,
मूर्ति मोहनी चिलकी-सी।
धुँधला हुआ दृष्टि-पथ, जड़-सा
कहाँ चला मैं सुध न रही,
भाव-भवन में देख उन्हें फिर
बँधी हृदय की हिलकी-सी।

गोकुलचंद्र शर्मा

दूर

हूँ दूर—सदा मैं दूर
कल्लोलिनी-कला-कल-कलरव
सुमन-सुरभि-समीर-सुख-अनुभव
कुमुद-किरण-अभिसार-केलि नव
देख, रहा तू भूल; शूर!
हूँ दूर—सदा मैं दूर।

सूर्यकांत त्रिपाठी

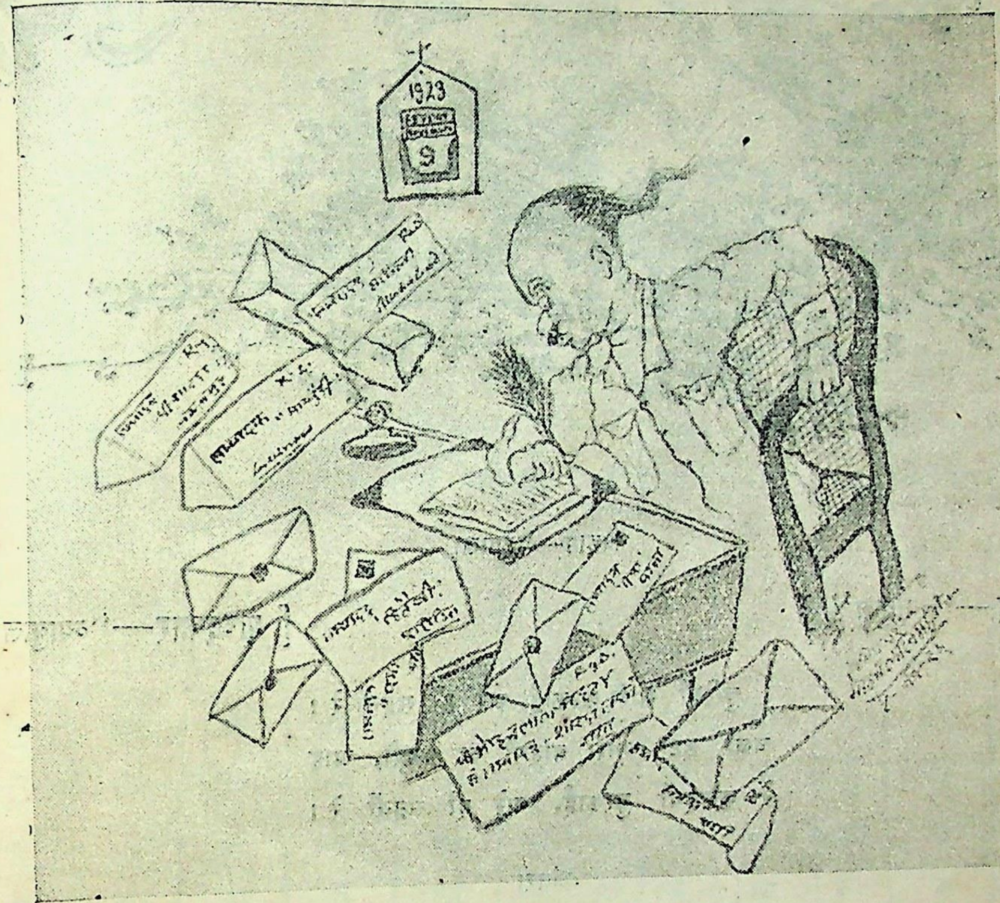
स्मृति

तू अतीत के अंधकार में लीन एकदम रहती है;
पर, अज्ञात रूप से मानस महलों बीच विचरती है।
तेरे सुमधुर आघातों से हृत्तंत्री के सारे तार,
विना शब्द के झंकृत झटपट हो उठते हैं सौ-सौ बार।
तू अज्ञात शक्ति से खिंचकर आती है जिस काल;
'भूत' चित्र-सा वर्तमान हो जाता है तत्काल।
दिव्य शक्ति-संपन्न महा!
हे स्मृति, तू है धन्य अहा!

मोहनलाल महत्तो (वियोगी)

बेढब लेखक की उग्र मूर्ति

[चित्रकार—श्रीयुत मोहनलाल महत्तो]



सब विषयों के दिग्गज पंडित, स्वयंसिद्ध प्रतिभा की मूर्ति ;
कालम-के-कालम कर काले क़लम करे 'पत्रों' की पूर्ति ।
बेढब लेखक की बलिहारी, हैं कलियुग के व्यास नवीन ;
लेखों की टकसाल, टकलची कविता की क़ीमती मशीन ।



बिहाग—एकताला

स्वरकार—"व्याकुल"] [शब्दकार—"व्याकुल"

चुरियाँ मोरी करकाईं, अरे हाँ सइयाँ रे।
चलो, हटो, मोरी बहियाँ ना पकरो, आह
रे कलइयाँ मुरकाईं, अरे हाँ सइयाँ रे।

अंतरा

तुम्हरी तो चितवन और ही कहत कछु,
'व्याकुल पिया' अब, जाओ जी, काहे
मोरी निंदिया उचटाईं, अरे हाँ सइयाँ रे।

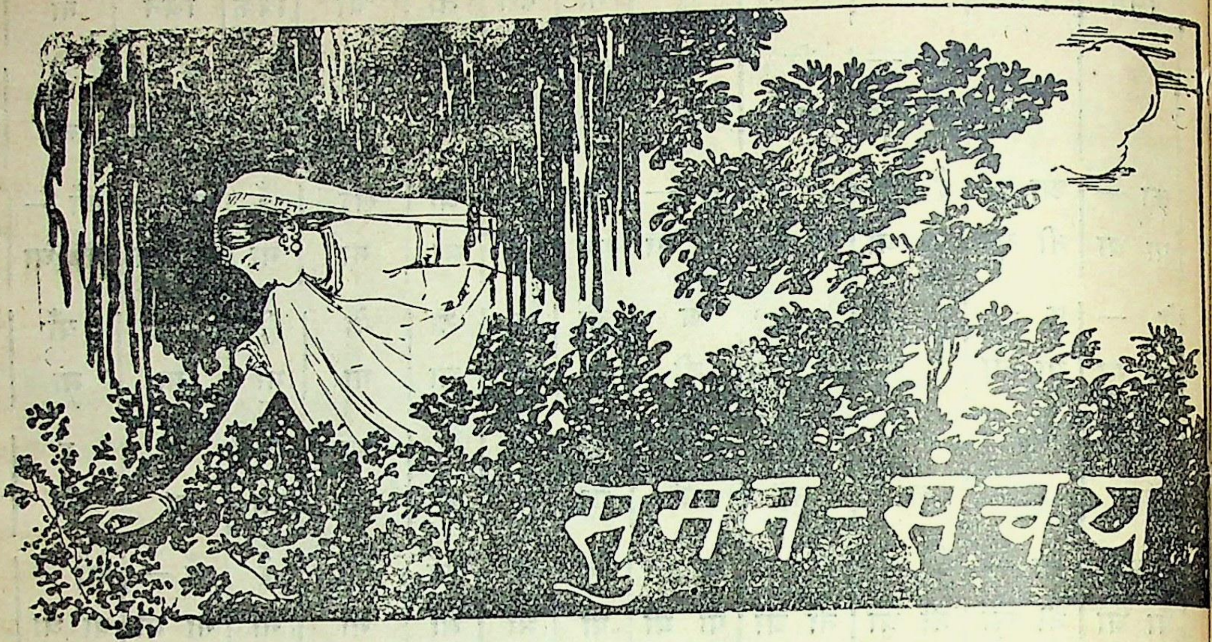
स्वरलिपि का परिचय

(१)—यह डैश का चिह्न जिस स्वर या अक्षर के आगे हो, उसी स्वर या अक्षर की एक मात्रा और बढ़ानी चाहिए। जो ऐसे चिह्न दो हों, तो दो मात्राएँ, और तीन हों, तो तीन मात्राएँ बढ़ानी चाहिए।
(२)—यह डैश का चिह्न जिस स्वर के नीचे हो, उसे कोमल समझना चाहिए।
(३) १ का चिह्न पहले ग्राम या सप्तक का है।
(४) ३ का चिह्न तीसरे ग्राम या सप्तक का है।
(५) जिस पर कोई चिह्न नहीं है, उसे बीच के ग्राम या सप्तक का स्वर समझना चाहिए।

धित	धिन	ना	त्रिक	तू	ना	कत	ता	धा	त्रिक	धिन	ना
		चू —	रि	याँ	आँ	मो	ओ	री	ई	क —	र
		सा नी$_{1}$	सा	गा	मा̱	पा	मा	पा	पा	नी धा	नी
का —	आ —	ई —	ई —	अ —	रे	हाँ	आँ	सइँ	इँ	याँ —	आँ —
पा धा	नी सा$_{3}$	नी धा	नी धा	पा मा	पा	मा̱	मा̱	गा	गा	गा मा	पा धा
रे —	ए —			च	लो	ह	टो	मो	री	बाँहिं	याँ
पा मा̱	गा सा			नी$_{1}$	पा$_{1}$	नी$_{1}$	सा	गा	मा̱	पा	मा
ना	प	क	रो	आ	ह	रे	क	लइ	याँ	मु	र
गा	मा̱	गा	सा	सा	गा	मा̱	पा	नी	सा$_{3}$	पा	नी
का	आ —	ई —	ई —	अ —	रे	हाँ	आँ	सईं	ईं	याँ —	आँ —
पा धा	नी सा$_{3}$	नी धा	नी धा	पा मा	पा	मा̱	मा̱	गा	गा	गा मा	पा धा
रे —	ए —										
पा मा̱	गा सा										

अंतरा

तु	म्ह	री	तो	चि	त	व	न	औ	र	ही	क
मा̱	मा̱	पा	नी	सा$_{3}$	सा$_{3}$	सा$_{3}$	सा$_{3}$	सा$_{3}$	रे$_{3}$	सा$_{3}$	नी
ह	त	क	छु	व्या	कु	ल	पि	या	आ	अ	ब
धा	पा	धा	नी	सा$_{3}$	नी	धा	पा	मा̱	मा	गा	सा
जा	ओ	जी	का	हे	मों	री	निं	दि	याँ	उ	च
सा	गा	मा̱	पा	नी	सा$_{3}$	सा$_{3}$	पा	नी	सा$_{3}$	रे$_{3}$	सा$_{3}$
टा —	आ —	ई —	ई —	अ —	रे	हाँ	आँ	सइँ	इँ	याँ —	आँ —
पा धा	नी सा$_{3}$	नी धा	नी धा	पा मा	पा	मा̱	मा̱	गा	गा	गा मा	पा धा
रे —	ए —										
पा मा̱	गा सा										



१. 'मिश्र-बंधु-विनोद' का नया संस्करण

हिंदी-भाषा के प्रेमियों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि उक्त ग्रंथ का द्वितीय संस्करण निकालने का प्रबंध हो रहा है । इस ग्रंथ की जितनी प्रतिष्ठा हिंदी-संसार ने की, उसकी आशा हमें स्वप्न में भी न थी । दो-तीन वर्षों से इसके नवीन संस्करण की माँग हो रही है ; पर हमें ऐसा अवकाश ही न मिला कि आवश्यक परिवर्तन और संशोधन करके उसे प्रकाशित कर देते । इतने भारी ग्रंथ का नूतन संस्करण प्रकाशित करने में भले-चंगे परिश्रम की आवश्यकता है । हिंदी-प्रेमियों से अविदित नहीं है कि इसमें १६०० पृष्ठों से कुछ अधिक मैटर एवं हिंदी के प्रायः ४००० प्राचीन तथा नवीन कवियों और लेखकों का वर्णन है । बहुतों की रचनाओं के नमूने भी दिए गए हैं ।

यह भारी ग्रंथ संवत् १६७० में प्रकाशित हुआ था । तब से हिंदी के बहुतेरे नए लेखक प्रकट अथवा उत्पन्न हुए हैं, एवं बहुतों के विषय में नई-नई बातें ज्ञात हुई हैं । ग्रंथ में कुछ भूलें भी अवश्य ही रह गई थीं, जिनका यथा-संभव ठीक होना भी नितांत वांछनीय है । प्रथम संस्करण की जिल्दें अब प्रायः अप्राप्य भी हो रही हैं। इन सब कारणों से अब शीघ्र द्वितीय संशोधित संस्करण निकालना निश्चित हो गया है । अतः समस्त हिंदी-रसिकों से हमारी विनीत भाव से प्रार्थना है कि इस महत्कार्य में हमारी यों सहायता करने की उदारता दिखलावें कि अपनी एवं अपने जाने हुए अन्य कवियों और लेखकों की जीवनियाँ लिख भेजें । साथ ही उनके विरचित ग्रंथों के नाम, विषय, विस्तार, निर्माणकाल, (यदि वे मुद्रित हो चुके हों, तो) छापेख़ाने का नाम और पता, अन्य जानने योग्य बातें तथा रचनाओं के कुछ नमूने भी भेजने की कृपा करें । इस हमारे ग्रंथ में जो स्पष्ट भूलें जान पड़ें, उन्हें भी लिख देना अच्छा होगा । पर जहाँ केवल मत-भेद हो, उन झगड़ों में पड़ने की विशेष आवश्यकता नहीं प्रतीत होती । जिन सज्जनों से इस प्रकार की कुछ भी विशेष सहायता मिलेगी, उनके शुभ नाम ग्रंथ की भूमिका में अथवा अन्यत्र छापे जायँगे । सहायता की मात्रा का भी वर्णन कर दिया जायगा । यदि अन्य समाचारपत्र अथवा सामयिक पत्र-पत्रिकाओं के संपादक इस सूचना को प्रकाशित करेंगे, तो हम उनके विशेष कृतज्ञ होंगे ।

"मिश्र-बंधु"

× × ×

२. व्रजभाषा-साहित्य के अंतिम दिवस

सन् १८०१ में लल्लूजीलाल का प्रेमसागर कलकत्ते में छपकर प्रकाशित हुआ था। यद्यपि प्रेमसागर में जहाँ-तहाँ व्रजभाषा का मिश्रण है, तथा कुछ पद्य भी इधर-उधर छिटके हुए हैं, तो भी यह खड़ी बोली गद्य का प्रथम ग्रंथ कहा जा सकता है। प्रेमसागर का यह मिश्रित रूप हिंदी-साहित्य के भावी बृहत् परिवर्तन का संकेत-मात्र था। १९वीं शताब्दी का यह प्रथम वर्ष खड़ी बोली के शुक्ल-पक्ष की प्रतिपदा थी। इसके बाद खड़ी बोली के साहित्य की दिन-दिन उन्नति होती गई। व्रजभाषा का साहित्य भी पतनोन्मुख होता गया। प्रेमसागर का गद्य में होना भी सार्थक था। यह एक प्रकार से नवीन गद्य-युग का पथप्रदर्शक नायक था।

ईसा की १९वीं शताब्दी में व्रजभाषा का एक भी ऐसा कवि नहीं हुआ, जिसकी गिनती नवरत्नों में हो सकती। इस शताब्दी के प्रथम प्रसिद्ध कवि पद्माकर की गिनती मिश्र-बंधुओं ने तृतीय श्रेणी में की है। पद्माकर की रचनाओं में श्रृंगार-रस प्रधान नहीं है। इनके सात ग्रंथों में केवल जगत्विनोद श्रृंगार-रस का काव्य है। किंतु लोगों की रुचि के कारण पद्माकर का यही ग्रंथ सबसे अधिक प्रसिद्ध हुआ। इनके अन्य प्रसिद्ध ग्रंथों में गंगालहरी तथा प्रबोधपचासा भक्ति-रस प्रधान हैं, तथा हिम्मतबहादुर-बिरदावली वीर-रस का काव्य है। पद्माभरण में अलंकारों का वर्णन है।

पद्माकर के समकालीन दो अन्य कवियों से भी हिंदी-संसार कुछ-कुछ परिचित है। इनमें प्रथम, यमुनालहरी तथा नखशिख इत्यादि ग्रंथों के रचयिता ग्वाल कवि हैं, तथा दूसरे चंद्रशेखर, जिनका हम्मीरहठ-नामक वीर-रस प्रधान काव्य सुप्रसिद्ध है।

इस समय के कवियों में कुछ राजों की भी गिनती करनी पड़ेगी। प्रसिद्ध काशी के नरेश महाराजा चेतसिंह के पुत्र कुमार बलवानसिंह (उपनाम काशिराज) ने चित्र-चंद्रिका नाम का एक ग्रंथ रचा था। यह चित्रकाव्य है, अतः साहित्य की दृष्टि से अधिक आदरणीय नहीं हो सकता। अयोध्या-नरेश महाराजा मानसिंह (उपनाम द्विजदेव) भी अच्छी कविता करते थे। रसकुसुमाकर में इनके बहुत-से उत्तम छंद हैं। रीवाँ-नरेश महाराजा विश्वनाथसिंहजू तथा उनके सुपुत्र महाराजा रघुराजसिंह-जू ने भी अनेक ग्रंथ रचे हैं, यद्यपि इनके संबंध में हिंदी-संसार प्रायः अनभिज्ञ है। महाराजा रघुराजसिंहजू अत्यंत सहृदय तथा कवियों के कल्पतरु थे।

इस शताब्दी के अंतिम कविगण बिलकुल साधारण श्रेणी के थे। देव, बिहारी, मतिराम इत्यादि दिग्गजों के सामने ये छौनों से भी छोटे दिखलाई पड़ते हैं। इनमें मुख्य पजनेस, सेवक, सरदार तथा ललितकिशोरी गिने जा सकते हैं। पजनेसप्रकाश में सवा सौ के लगभग छंद हैं, जो प्रायः मधुर हैं। सेवक का 'बरवै नायिका-भेद'-नामक ग्रंथ अधिक प्रसिद्ध है, यद्यपि इनका मुख्य ग्रंथ वाग्विलास है। इस अंतिम ग्रंथ में भी नायिका-भेद ही का वर्णन है। सरदार के अनेक ग्रंथों में उनका 'षट्-ऋतु' अत्यंत लोकप्रिय है। वृंदावन के सुविख्यात 'साहजी के मंदिर' के निर्माता साह कुंदनलाल (उपनाम ललितकिशोरी) की कविता भी अत्यंत ललित है। यह श्रृंगार-रसपूर्ण है। इनके प्रायः सब ग्रंथों का विषय केवल एक—कृष्णचंद्र का अष्टयाम—है। न-मालूम अपने प्राचीन कवियों को नायक-नायिकाओं के भेद बतलाना तथा उनके समय का टाइम-टेबिल बनाना इतना रुचिकर क्यों था? ललितकिशोरी व्रजभाषा के अंतिम कवि कहे जा सकते हैं; क्योंकि इनके बाद केवल व्रजभाषा में रचना करनेवाला कोई भी उल्लेखनीय कवि नहीं हुआ है।

सन् १८५७ में अँगरेज़ों के विरुद्ध हिंदुस्तानियों का विद्रोह तो सफल नहीं हुआ, किंतु खड़ी बोली का व्रजभाषा के विरुद्ध विद्रोह अवश्य सफल हुआ। सन् १८५७ के बाद व्रजभाषा के एक भी ऐसे उत्कृष्ट कवि का नाम नहीं लिया जा सकता, जिसकी कीर्ति व्रजभाषा में कविता करने के कारण स्थायी कही जा सकती हो।

नवीन वर्तमान युग, जिसका बीजारोपण सन् १८०१ में हुआ था, वास्तव में सन् १८५७ के बाद से आरंभ होता है। ये साठ वर्ष परिवर्तन में बीत गए। इस नवीन युग की आवश्यकताएँ भी ऐसी थीं, जिनकी पूर्ति व्रजभाषा नहीं कर सकती थी। सुप्रसिद्ध कवियों की प्रतिभा द्वारा सैकड़ों वर्षों से मँजी हुई श्रृंगारिक तथा भक्ति-रस प्रधान ललित व्रजभाषा का, केवल-मात्र गद्य में, नीरस-विषयों के लिखने में, सफलता-पूर्वक

प्रयोग करना संभव नहीं था । इसमें व्रजभाषा का दोष नहीं दिया जा सकता । सोना यद्यपि धातुओं में सर्वोत्तम है, किंतु वह कामिनियों के आभूषण तथा राजों के मुकुट ही बनाने के काम में आ सकता है । उससे हल और फावड़े नहीं बन सकते । इस नवीन युग को तो हल और फावड़ों की आवश्यकता थी—अलंकारों के महीन काम करने तथा देखने का उसे अवकाश कहाँ ? अतः उसे लोहे के समान कठोर, किंतु उपयोगी खड़ी बोली को अपनाना पड़ा ।

सन् १८६० के बाद से खड़ी बोली प्रधान हो गई थी। कुछ समय तक प्राचीन प्रथा के पक्षपाती कोई-कोई कवि व्रजभाषा में कविता अवश्य करते रहे, किंतु जैसे विना नायक के साधारण सिपाही युद्ध का मैदान छोड़कर भाग खड़े होते हैं, वैसे ही ये लोग भी व्रजभाषा के किसी उत्कृष्ट कवि के न होने से धीरे-धीरे खड़ी बोली के हाथ में मैदान देकर पीछे हट गए ।

खड़ी बोली की तूती के ज़माने में अंतिम बार राय देवीप्रसाद (पूर्ण) ने व्रजभाषा की सरस कविता का कुछ-कुछ रसास्वादन कराया था । आगे तो इतनी आशा करना भी व्यर्थ है ।

धीरेंद्र वर्मा

× × ×

३. हिंदी में अंध-परंपरा (प्रतिवाद)

गत कार्त्तिक की माधुरी में, ४८८ पृष्ठ पर, पं० अक्षय-बट मिश्र महोदय का 'हिंदी में अंध-परंपरा'-शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ था । उसे पढ़कर हमें बड़ी हँसी आई । हमें इस अवसर पर संस्कृत का एक श्लोक याद आ गया—

"वैयाकरणकिरातादपशब्दमृगाः क यान्ति संत्रस्ताः ;
यदि नटगणकचिकित्सकवैतालिकवदनकन्दरा न स्युः ।"

(बेचारे अपशब्दरूप हरिण वैयाकरण व्याध से डरकर कहाँ जायँ, यदि नट, गणक, चिकित्सक और बैतालिक लोगों के मुखरूप कंदराएँ न हों ?)

हमें तो प्रतीत होता है कि मिश्रजी अब कठोर संस्कृत-वैयाकरण होकर जन-साधारण की हिंदी-भाषा के उपवन पर भी तीर तानकर खड़े हो गए हैं, और व्याकरण के सूत्रों का जाल बिछाकर स्वतंत्र लेखकों की प्रतिभा-रूप हरिणी को उछलने-कूदने नहीं देना चाहते ।

हम मिश्रजी की भ्रांति के कुछ नमूने दिखाने के पहले यह बतला देना चाहते हैं कि लोक-भाषा सदा व्याकरण के नियमों से जकड़ी नहीं रहा करती, और न रह सकती है । वैयाकरण अपनी कहा करते हैं, और प्रतिभा इच्छानुसार विहार किया करती है । श्रीहर्ष का यह वाक्य सदा स्मरण रखना चाहिए कि—

"भङ्क्तुं प्रभुर्व्याकरणस्य दर्पं
पदप्रयोगाध्वनि लोक एषः ;
शशो यदस्यास्ति शशीति चाको
मृगो यदस्यास्ति मृगीति नोक्तः ।"

(पद-प्रयोग के मार्ग में व्याकरण का दर्प तो यह लोक ही तोड़ डालता है । शश चंद्र के (पेट में) है, इस कारण उसको शशी तो कहते हैं, परंतु मृग इसके (पेट में) है, फिर भी इसे मृगी कोई नहीं कहता ।)

इसी प्रकार हिंदी-संसार में भी व्याकरण-सिद्ध प्रयोगों को आगे रखकर मिश्र महोदय ने जो हिंदी-संसार के प्रवाह को बाँधना चाहा है, वह ठीक नहीं ।

(१) आप लिखते हैं, संस्कृत में 'कोऽप्यपि' अशुद्ध है, इसलिये 'कोई भी' यह हिंदी-प्रयोग भी अशुद्ध है; क्योंकि 'भी' का अर्थ 'कोई' में ही आ जाता है । इस पर मिश्रजी से निवेदन है कि जो प्रयोक्ता 'कोई भी,' इन दो पदों का प्रयोग करता है, वह वस्तुतः रूढ़िवश 'कोई' पद में 'भी' की विद्यमानता का अनुभव नहीं करता ।

दूसरी बात यह है कि यदि थोड़ी देर के लिये यह मान भी लें कि कोई=कः+अपि है, तब भी 'कोई'-शब्द के अंदर छिपा हुआ 'अपि' या 'भी' वस्तुतः 'भी' का अर्थ नहीं देता । तभी तो वक्ता उस अर्थ को पूरा करने के लिये 'कोई' के साथ 'भी' का भी प्रयोग करता है ।

'कोई'-शब्द में जो 'भी' छिपा है, वह 'चित्' के अर्थ का द्योतक है । जैसे संस्कृत में 'कश्चिदस्ति' 'कश्चिदप्यस्ति'—इन दोनों के अर्थों में भेद है, वैसे ही हिंदी में 'कोई' और 'कोई भी', इन दोनों के अर्थों में भी भेद है । संस्कृत में 'चित्' और 'अपि' दो निपात हैं। दोनों समानार्थक भी हैं, और भिन्नार्थक भी । परंतु हिंदी में 'चित्' और 'अपि', दोनों के स्थान में 'ई' का प्रयोग होता है । संस्कृत के कोऽपि और कश्चित्, दोनों के लिये एक 'कोई'-शब्द ही का प्रयोग होता है । इसलिये जहाँ संस्कृत में 'कश्चिदपि' प्रयुक्त होता है, वहाँ हिंदी में 'कोई भी'

का प्रयोग होना स्वाभाविक ही है । इसलिये 'कोई भी'-शब्द का प्रयोग हिंदी में सर्वथा शुद्ध है।

यदि मिश्रजी कहें कि 'कश्चिदपि' भी अशुद्ध है, तो इसके खंडन में भृगु-प्रोक्त मानव-धर्मशास्त्र का यह श्लोक मौजूद है—

"न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम् ।"

(२) 'और भी' और 'अभी भी', 'कभी भी' इन प्रयोगों पर भी मिश्रजी नाराज़ हैं। आपने इन प्रयोगों पर अशुद्धि की छाप लगाते हुए लिखा है—"कदाप्यपि और अद्याप्यपि यदि शुद्ध हैं, तो 'कभी भी' और 'अभी भी' भी शुद्ध हो सकते हैं।" यह भी ठीक नहीं है। मिश्रजी, 'अद्यापि' का अर्थ है 'आज भी', न कि 'अभी'। इसलिये आप 'अभी' के लिये 'अधुना'-शब्द समझिए । अब कहिए, 'कदाचिदपि' के लिये क्या कहिएगा ? देखिए—

"कदाचिदपि पर्यटन् शशविषाणमासादयेत्—" (भर्तृहरिः)

अब समझ लीजिए कि जिसको आप पहला 'अपि' समझते हैं, वह अपि नहीं, किंतु 'चित्' का रूप है। 'और भी' क्यों अशुद्ध है, यह मिश्रजी ने नहीं बतलाया। 'और भी' संस्कृत के 'अन्यदपि' का रूपांतर है।

मिश्रजी ने इतना विचारने का कष्ट नहीं उठाया, और काशी के उपन्यास-लेखकों पर सब दोष लाद दिया।

(३) आगे चलकर आपने 'इनने', 'इन्होंने', 'उनने', 'उन्होंने' और 'ये', 'वे', 'यह', 'वह' की शुद्धता और अशुद्धता पर प्रकाश डाला है । परंतु इसका विवेचन करते हुए कोई प्रमाण नहीं दिया । यदि सब प्रकार के रूपों में बहुवचन ही अभीष्ट है, तो फिर रूपों पर क्या विवाद ? जैसा 'इनने', वैसा 'इन्होंने' । 'इनने' तो गँवारू प्रयोग-सा मालूम होता है । जैसे 'इनने मारा' इत्यादि।

(४) इसके बाद मिश्रजी ने लिंग-विचार पर विचार किया है । आपका मत है कि पाणिनि की चिल्लाहट हिंदी में लिंगों का निर्णय कर सकती है। आप कहते हैं—"हमको उस समय बड़ी हँसी आती है, जब लोग दाढ़ी और मूछ-शब्दों को स्त्रीलिंग लिखते हैं। अरे बाबा, जिस दाढ़ी और मूछ के कारण मनुष्य पुरुष कहलाता है, उसी को स्त्रीलिंग कहते हो ! हाय री अंध-परंपरा !"

मिश्रजी ने दाढ़ी और मूछ-शब्द का कहीं भी पुंलिंग-प्रयोग नहीं दिखलाया । यह नहीं विचारा कि जिस चिह्न ने आदि-काल से पुरुष को स्त्रियों से भिन्न रक्खा, वह भी स्वयं नपुंसकलिंग है । फिर दाढ़ी-मूछ तो बहुत पीछे पैदा होती हैं । संस्कृत में भी दाढ़ी और मूछ, दोनों नपुंसक हैं । परंतु हिंदी-संसार में तो नपुंसकों की दाल नहीं गलती। यहाँ तो सब देवी-देवतों का राज्य है। सिर पर चोटी और पगड़ी, बालों पर कंघी, मुँह पर नाक, मुँह में जीभ, गले में माला, पैरों में जूती, घर में औरत और बाहर सड़क, चढ़ने को गाड़ी, चलने को जोड़ी । इस प्रकार हिंदी में सर्वत्र स्त्रीलिंग का साम्राज्य है, फिर नपुंसक क्योंकर नपुंसक-रूप में रहने पाते । वे सब अपना रूप बदले रहते हैं। कोई स्त्रीलिंग बन जाता है, तो कोई पुंलिंग। फिर पता नहीं, मिश्रजी को हँसी क्यों आती है। संस्कृत का नपुंसक 'हास्य' और पुंलिंग 'हास' अब मिश्रजी के मुख से स्त्रीलिंग 'हँसी' बनकर क्यों निकल रहा है। मिश्रजी, हँसने से कुछ न होगा। लोक-प्रवाह के पीछे चलना होगा। हिंदी-संसार में आप मूछ और दाढ़ी की रक्षा के लिये नपुंसकों का नया राज्य स्थापित नहीं कर सकते।

(५) 'कहाँ पर', 'वहाँ पर', 'यहाँ पर', इन प्रयोगों पर भी मिश्रजी विचार करते और इनको अशुद्ध बतलाते हैं। आप कहते हैं—"कहाँ, वहाँ, यहाँ इत्यादि पहले ही विभक्त्यंत हैं, फिर 'पर' विभक्ति कैसे लगती है ? यदि 'तस्मिन्नस्मिन्' ठीक है, तो 'वहाँ पर' भी ठीक हो सकता है।" कदाचित् मिश्रजी समझते हैं कि यह 'पर' विभक्ति का चिह्न है। परंतु ध्यान रहे, हिंदी का 'पर'-शब्द संस्कृत की किसी विभक्ति का अपभ्रंश नहीं, बल्कि 'उपरि'-शब्द का रूपांतर-मात्र है । जैसे संस्कृत में 'उपरि'-शब्द का प्रयोग विभक्त्यंत पद के साथ होता है, वैसे हिंदी में 'पर'-शब्द का प्रयोग विभक्त्यंत के साथ होता है। हिंदी में वह विभक्ति संस्कृत के समान ही कहीं लुप्त हो जाती है, और कहीं नहीं भी लुप्त होती । जैसे 'घोड़े पर', 'घोड़े के ऊपर' इत्यादि। इसी प्रकार 'यहाँ पर', 'वहाँ पर', 'कहाँ पर' इत्यादि शब्दों में 'पर'-शब्द 'उपरि'-शब्द का शेष अंश है, जो यत्, तत्, किम्, आदि शब्दों के विभक्त्यंत अव्ययों के साथ जुड़कर अपना अर्थ दे रहा है।

(६) भेड़ियाधसान में मिश्रजी फिर घुस गए। आप 'पेटी में से' कोई वस्तु नहीं निकालना चाहते। आप चाहते हैं कि पंचमी और सप्तमी, दोनों विभक्तियों का एकसाथ प्रयोग न हो ; एक ही हो। आप लिखते हैं— "संस्कृत में मंजूषायाः अथवा मंजूषायां, दोनों में एक ही शुद्ध है, न कि मंजूषांयाः।"

खूब कही मिश्रजी ! 'मंजूषांयाः' इसमें कौन-कौन विभक्ति आपने मिला दी ? यदि दो विभक्तियाँ भी आप मिलाते, तो 'मंजूषायांयाः' कहते। अस्तु। संस्कृत में विभक्ति के आगे विभक्ति नहीं आती, परंतु हिंदी ने तो विभक्ति के आगे विभक्ति न लगाने की कोई क़सम नहीं खाई। इसीलिये हिंदी में दो क्या, तीन विभक्तियाँ तक एकसाथ आती हैं। जैसे—

"पेटी में से चार आम निकालो।"

"ये हीरे पेटी में के हैं।"

"यह लड़का मेरा है। तूने मेरे के चपेट क्यों दी।"

"तुम उसके में से मत लो ; लो, मेरे में से ले लो।"

यदि ध्यान देकर देखा जाय, तो विदित होगा कि हिंदी की विभक्तियाँ संस्कृत की विभक्तियों के समान नहीं हैं। वे प्रत्ययों के समान हैं। इस कारण प्रत्यय के बाद जैसे प्रत्यय लगता है, वैसे ही हिंदी में विभक्ति के बाद विभक्ति लगती और अर्थ का बोध कराती है।

'में' 'मध्य'-शब्द का अपभ्रंश है (मध्य, मज्झ, माँहि, में)। पुरानी हिंदी में 'विषे' लगता था जिसका बिगड़ा हुआ रूप अब भी पंजाबी में 'बिच' रह गया है। यह संस्कृत 'विषय'-शब्द का रूपांतर है। इस प्रकार विचारने से प्रतीत होता है कि 'पेटीमध्यात्' का अर्थ है पेटी में से ; अर्थात् 'पेटी के बीच में से'।

मिश्रजी के मत में 'पेटी से' और 'पेटी में से' का अर्थ एक ही है। परंतु मिश्रजी के इस भ्रम को एक पाँच वर्ष का बच्चा भी समझ लेगा।

ध्यान रखिए, प्रत्ययांतों के आगे प्रत्ययों का जुड़ना संस्कृत में बाहुल्य के साथ देखा जाता है—जैसे 'तावकेन', 'अस्माकेषु', 'तत्रत्यः' आदि।

इस प्रकार के संकीर्ण अर्थों को संक्षेप में कहने के लिये मानव-भाषाओं में प्रत्यय-माला का प्रयोग हुए विना रह नहीं सकता। मिश्रजी-जैसे वैयाकरण संस्कृत के व्याकरण की डोरी से हिंदी को बाँध नहीं सकते।

(७) मिश्रजी कहते हैं, 'इस कारण से' प्रयोग अशुद्ध है। क्यों ? कोई युक्ति नहीं। हेतु में पंचमी और तृतीया दोनों होती हैं। हर तरह 'से' से पीछा छूटना मुशकिल था। इसलिये मौन रहना ही बड़ी युक्ति है। इस प्रसंग पर तो सभी विभक्तियाँ संगत हैं। फिर 'से' ही से क्यों घबराना ? इस तरह मिश्रजी के सभी आक्षेप निर्मूल सिद्ध होकर उन्हीं की भूल प्रमाणित करते हैं। *

जयदेव शर्मा

× × ×

४. हेमंत की वायु

दिन अंत होत ही घनेरे करै एरेफेरे,
परसत अंग, बरजोरी बलवंत की ;
सीसी मुख बाजत बतीसी, राखै सेज ही में,
गति अति बाढ़त है हियरा कँपत की।
बतिया कढ़ै न मुख, छतिया छुअन छिपि,
होत है रुमंच भटू भेंट सों इकंत की,
सखी, तोहिं "छैल" ही छकायो मेरी जान आजु,
नाहीं सखी, सीरी, धीरी वायु है हिमंत की।

पन्नालाल गयावाल (छैल)

× × ×

५. जिज्ञासा का उत्तर

गत आश्विन की 'माधुरी' में मेरे 'जनमेजय'-नाटक के दो स्थलों के विषय में पंडित कामताप्रसाद पांडेयजी की जिज्ञासा प्रकाशित हुई है। आपका पहला जिज्ञास्य विषय यह है कि 'पाणिगृहीता'-शब्द उक्त नाटक में विपरीत अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ; क्योंकि व्याकरण के अनुसार 'पाणिगृहीता'-शब्द से वेश्या आदि का बोध होता है।

इस पर मेरा वक्तव्य यह है कि यहाँ पाणिगृहीता-शब्द विशेषण-रूप से व्यवहृत हुआ है, संज्ञा-रूप से नहीं। इसीलिये विशेष्य-वाचक भार्या-शब्द का उसी के साथ प्रयोग किया गया है। पाणिगृहीता-शब्द विशेषण-वाचक है, संज्ञा-वाचक नहीं। कौमुदी, काशिका अथवा भाष्य में, कहीं भी इसका अर्थ भोगिनी भार्या या वेश्या नहीं माना गया। शब्दकल्पद्रुम, वाचस्पत्य, मेदिनी,

* 'हिंदी में अंध-परंपरा' के प्रतिवाद में हमारे पास कई लेख आए हैं। स्थानाभाव से हम सबको नहीं प्रकाशित कर सके। प्रायः ऐसी ही बातें सबने लिखी हैं।—संपादक

त्रिकांडशेष, अभिधानचिंतामणि आदि किसी भी कोष में खोजने से 'पाणिगृहीता'-शब्द का अर्थ वेश्या नहीं मिला। विशेषण-वाचक 'पाणिगृहीता' के साथ प्रयुक्त भार्या-शब्द से न किसी को धोखा होगा, और न कोई इसका विपरीत अर्थ ही समझेगा।

दूसरी बात यह है कि प्रचलित हिंदी और संस्कृत-भाषा का भेद स्वयं विचार करके भी आप संतुष्ट नहीं हैं, यद्यपि हिंदी के शिष्ट लेखक संस्कृत-व्याकरण की इन बारीकियों का इतना ध्यान नहीं रखते, और 'पाणिगृहीता'-शब्द का प्रयोग भार्या के अर्थ में बराबर करते हैं। पदज्ञों का अनुसरण पदकार नहीं करते, प्रत्युत पदज्ञ ही पद-कारों का मुँह ताका करते हैं। पर आपके विचार में यह आपत्ति-जनक है। अच्छा हिंदी की बात जाने दीजिए। जिस संस्कृत के आधार पर आप 'गृहीती' और 'गृहीता' की यह व्यवस्था कर रहे हैं, उसी संस्कृत में स्मृतिकार वसिष्ठ महाराज ने 'पाणिगृहीता'-शब्द का विवाहिता पत्नी के अर्थ में प्रयोग किया है। देखिए—

"यस्तु पाणिगृहीताया आस्ये × × ×
भवन्ति पितरस्तस्य तन्मांसरेतसो भुजः।"

(१२। १३ डॉक्टर फुहरर का संस्करण)

और देखिए—

"वेश्याकामिनोऽयमदोषोऽन्यतोऽपि परिहार्यः स्यादिति वात्स्यायनः। (७। २३)

इस कामसूत्र की प्रामाणिक टीका में वेश्या और पत्नी का स्पष्ट भेद-बोध कराया गया है। इस स्थल में टीका-कार जयमंगल ने उसी वसिष्ठ-वचन को इस रूप में उद्धृत किया है—यदाह वसिष्ठः—

"यस्तु पाणिगृहीताया मुखे × × ×
पितरस्तस्य नाश्नन्ति दशवर्षाणि पंच च।"

अब कहिए, यदि 'पाणिगृहीता'-शब्द भार्या-वाचक न होकर वेश्या-वाचक होता, तो यहाँ कैसे काम चलता? तात्पर्य यह कि संस्कृत के प्राचीन समाज-शास्त्री भी पाणि-गृहीता-शब्द का जो अर्थ आप समझते हैं, वह नहीं मानते।

आपका दूसरा जिज्ञास्य विषय यह है—"अग्नि-होत्र एक कार्य का नाम है। वह कोई जंगम वस्तु नहीं है, जो किसी के साथ फिरा करे"—इत्यादि। ठीक है, अग्नि-होत्र-शब्द कर्म का वाचक भी है। किंतु अग्निहोत्र उस अग्नि को भी कहते हैं, जिसमें अग्निहोत्र होता है, और वह अग्नि अग्निहोत्री के साथ समय पड़ने पर फिरा भी करता था। यदि ऐसा न होता, तो आर्यों के लिये यह पवित्र कर्म बड़ा बंधन हो जाता, और वे घर छोड़कर कहीं आ-जा न सकते। पर बात ऐसी नहीं है। देखिए—

"सहाग्निर्वा सपत्नीको गच्छेत्तीर्थानि मानवः;
पुराणवचनात्साग्नेः प्रवासोऽस्तीति केचन ॥ ५८ ॥
क्लिष्टश्चेत्स तु कृत्यर्थं मनसा सह गच्छति;
अनस्यारोपयेदग्नींस्तत्पात्राण्यपि तत्र च ॥ ६१ ॥
स्वांगेन वा नयेदग्निं कात्यायनमतादपि;
नयेद्वा ब्राह्मणस्त्वन्यो यो याज्येन समन्वितः ॥ ६२ ॥"

(पारस्करगृह्यसूत्र का गदाधर-भाष्य)

आशा है, पांडेयजी को इससे संतोष हो जायगा।

जयशंकरप्रसाद

× × ×

६. सामयिक पत्रों को चिरस्थायी करने के कुछ साधन

हिंदी-भाषा-भाषियों के लिये यह परम सौभाग्य की बात है कि अब उनके सामयिक साहित्य की ख़ासी क्रमोन्नति हो रही है। यदि कुछ दिनों तक यही क्रम चलता रहा, तो आशा है कि उक्त साहित्य के संघटक अवयव चिरस्थायी भी होने लगेंगे। कारण, तब तक उन्हें चिर-स्थायी बनानेवाले साधनों की ओर उनके उत्पादक और संचालक लोगों का ध्यान यथेष्ट मात्रा में आकृष्ट हो जायगा। आज हम अपने विद्या-व्यसनी पाठकों के जानने के लिये नीचे उन कुछ साधनों की चर्चा करते हैं, जिनकी सहायता से सामयिक पत्रों का संचालन चिरस्थायी हो सकता है—

(१) किसी सामयिक पत्र को चिरस्थायी बनाने के लिये सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि उसके संचालक के पास उसका निज का अच्छा प्रेस हो। जो लोग विना निज का सर्वांग-पूर्ण प्रेस स्थापित किए पत्र-प्रकाशन का काम आरंभ कर देते हैं, उन्हें उस पत्र की अपमृत्यु के लिये बहुत शीघ्र दुःखी होना पड़ता है।

(२) पत्र जिस अभिप्रेतार्थ की सिद्धि के लिये निकाला जाता है, उसके पूर्ण पंडित ही उसके संपादक और सहायक संपादक बनाए जाने चाहिए। उन्हें इतना वेतन दिया जाना चाहिए, जिससे वे सांसारिक चिंताओं से मुक्त रहकर अपने पांडित्य के द्वारा उस पत्र

को ज्ञानप्रद, मनोमोहक और चित्ताकर्षक बनाने में पूर्ण रूप से समर्थ हो सकें।

(३) पत्र के प्रधान संपादक को यथेष्ट सहायता देने के लिये उसके समकक्ष विद्वान् सहायक संपादक नियत किए जाने चाहिए।

(४) संपादक और उपसंपादकों को यथेष्ट सहायता देने के लिये पत्र के उद्देश्य से संबंध रखनेवाले साहित्य का एक सुवृहत् पुस्तकालय उनके निकट रहना चाहिए।

(५) आवश्यकता पड़ने पर संपादक और उपसंपादकों की यात्रा के लिये ऐसी सवारियों का प्रबंध सदा रहना चाहिए, जिनकी सहायता से वे अभीष्ट स्थान पर शीघ्र-से-शीघ्र पहुँच सकें, और अपने काम को पूरा करके लौट सकें।

(६) पत्र की ग्राहक-संख्या बढ़ाने के लिये ऐसे कर्मचारी रक्खे जाने चाहिए, जो अपने पत्र के उद्देश्य को भली भाँति समझते हों; साथ ही सर्व-साधारण के आगे वह उद्देश्य प्रकट करके पत्र का ग्राहक बनने के लिये उनके मन में अनिवार्य लालसा उत्पन्न करने की शक्ति भी रखते हों।

(७) जिस उद्देश्य से पत्र निकाला जाय, उसके ज्ञाता सज्जनों को ढूँढ़कर उनसे यह प्रार्थना की जाय कि वे उस पत्र के लिये लेख लिखा करें। उनके इस परिश्रम के लिये उन्हें उचित धन दिया जाय।

(८) पत्र के पाठकों की, मनोरंजन-पूर्वक, ज्ञान-वृद्धि के अभिप्राय से उसमें सदा ताज़े समाचार छापे जाने के लिये स्थान-स्थान पर विज्ञ और वैतनिक संवाददाता नियत किए जाने चाहिए।

(९) उक्त सब कार्यों को करते हुए सदा इस बात पर भी ध्यान रखने का पूरा-पूरा प्रबंध रखना चाहिए कि अकारण सरकार से विरोध न होने पावे।

हमारा विनम्र निवेदन है कि जो सज्जन पत्र-पत्रिकाएँ निकालकर भारत का हित करना चाहते हैं, वे हमारी इन सूचनाओं पर विचार करने की कृपा करें। यदि वे ऐसा करेंगे, तो उनका यत्न चिरस्थायी होकर उनके अभिप्रेतार्थ को अवश्य ही सिद्ध करेगा। आज दिन भारत के प्रत्येक प्रांत में एक-एक किसानों के लिये उपयोगी पत्र की बड़ी भारी आवश्यकता है। जो सज्जन उस पत्र को निकालने में पूँजी लगावेंगे, उनका भारत पर अनंत उपकार होगा। साथ ही उन्हें भी ख़ासा अर्थ-लाभ होता रहेगा।

गंगाप्रसाद अग्निहोत्री

× × ×

७. तुम्हारी विभूति

(१)

व्योम-विचुंबी प्रासादों में, कृत्रिमतामय आह्लादों में,
कोमल कुसुम-कलित कुंजों में, सुंदर शैल-शृंग-पुंजों में,
तुझे ढूँढ़ आया;
किंतु नहीं पाया।

(२)

हृदय-विपंची के तारों में, ऊर्जित जीवन-उद्गारों में,
दलित हृदय के चीत्कारों में, पीड़ा-जनित अश्रु-धारों में,
तव विभूति देखी;
मंजु मूर्ति पेखी।

"कुसुम"

× × ×

८. पेशगी समालोचना

पुस्तक छप जाने पर पत्र-संपादकों या सर्व-साधारण को यह स्वतंत्रता प्राप्त है कि वे उसके गुण-दोषों का विवेचन कर पुस्तक-प्रेमियों को उसका यथार्थ परिचय प्रदान करें, जिसमें अच्छी पुस्तकों का प्रचार बढ़े और बुरी पुस्तकों की बाढ़ रुके। परंतु किसी ग्रंथ के बिना छपे ही उसकी निंदा करना और ख़ासकर ऐसे व्यक्ति की ओर से ऐसी काररवाई होना, जिसने उस ग्रंथ की हस्तलिपि का मुँह भी नहीं देखा हो, अनुचित चेष्टा-मात्र है। पुस्तक प्रकाशित हो जाने पर यदि कोई किसी पुस्तक को व्यर्थ ही बदनाम करने की चेष्टा करता है, तो विद्वान् समालोचकों को उसकी यथार्थता पर विचार करने का अवसर रहता है, पर अप्रकाशित पुस्तक पर ऊटपटाँग विचार प्रकट करके ये पेशगी समालोचक केवल अपनी द्वेष-बुद्धि का ही परिचय देते हैं। इस नोट में हम पाठकों के सामने एक ऐसा ही नमूना पेश करते हैं, जिसमें कोरे द्वेष के ही कारण एक गुमनाम समालोचक ने छिपे-छिपे हमारे ऊपर वार किया है।

आपने अपना परिचय 'राष्ट्रीय पथिक' नाम से दिया है, और आश्विन की माधुरी में वर्तमान नाटककारों के अनौचित्य पर विचार करते हुए हमारे अप्रकाशित 'सूर्योदय',

नाटक की पेशगी समालोचना कर डाली है। यह नाटक गत ४वीं मई को हमारी मनोरंजन-नाटक-मंडली द्वारा अभिनीत हुआ था। इस अभिनय में कितने ही विद्वान् पत्र-संपादक भी पधारे थे। देश के संपादक ने अभिनय के मध्य में रंगमंच पर आकर ही इसकी प्रशंसा की थी। इसके बाद भिन्न-भिन्न पत्रों में इसकी प्रशंसात्मक सूचनाएँ निकलीं। बस, हमारे राष्ट्रीय पथिकजी को इसकी इतनी प्रशंसा असह्य हो गई, और आपने माधुरी का वह नोट ख़ासकर सूर्योदय की निंदा करने के ही अभिप्राय से लिख मारा; क्योंकि वर्तमान नाटकों के तूफ़ान पर तो 'कटुवादी' के विचार पहले ही माधुरी में प्रकाशित हो चुके थे। पिष्टपेषण की तो कोई आवश्यकता नहीं थी।

बात यह है कि राष्ट्रीय पथिकजी को इन दिनों नगर के सभी श्रेणी के लोगों की निंदा करने का स्वभाव-सा पड़ गया है। कई मामलों में तो उन्होंने बुरी तरह मुँह की खाई, और माफ़ी भी माँगी, तो भी आपकी आदत नहीं छूटी। आपको हमसे, नागरी-प्रचारिणी सभा से हमारा संबंध होने के कारण, व्यक्तिगत द्वेष-सा हो गया है; क्योंकि आप सभा की प्रतिद्वंद्विता में खुले हुए बाल-हिंदी-पुस्तकालय के पुस्तकालय-कार्य-संपादक हैं। गत फाल्गुन में सभा की ओर से प्रांतीय गवर्नर को जो अभिनंदनपत्र दिया गया था, उस मामले में भी आपने खूब क़लम चलाई थी; पर अंत में आपको चुप ही हो जाना पड़ा।

हमारा आपसे निवेदन यही है कि 'सूर्योदय' प्रकाशित हो जाने दीजिए। उस समय आप चाहे जो कुछ लिखें, हम कुछ नहीं बोलेंगे; पर इस तरह व्यक्तिगत ईर्षा-द्वेष को लेकर एक साहित्य-पत्रिका का कलेवर कलुषित करना अच्छा नहीं। उस रात का अभिनय देखकर जहाँ अनेक पत्र-संपादकों को संतोष हुआ, वहाँ आप ही को उसकी प्रत्येक बात क्यों बुरी लगी। यह एक समझने-सोचने की बात है।

अपने उसी नोट में आप लिखते हैं कि एक बार एक नए नाटककार मेरे पास अपने नाटक की कापी लेकर आए; उसे देखकर मुझे बड़ी निराशा हुई। पर यह आपकी कोरी कपोल-कल्पना है। भला आरे में कौन ऐसा नाटककार है, जो आपसे अपने नाटक के विषय में राय लेने जायगा? अथवा आपने ही कब से हिंदी-संसार में ऐसा अभूतपूर्व सम्मान अर्जित किया है। जिसके कारण बाहर से आपके पास कोई अपनी किताब दिखलाने आवेगा? कृपानिधान! अभी चेहरे पर कम-से-कम मूछें तो आ जाने दीजिए, फिर बड़े-बूढ़ों की पगड़ी उछालने का प्रयास कीजिएगा।

ईश्वरीप्रसाद शर्मा

× × ×

९. शंकराचार्यजी के प्रयोग अशुद्ध नहीं हैं

एक उपाध्यायजी ने माधुरी की किसी पिछली संख्या में स्वामी शंकराचार्यजी के कुछ प्रयोगों पर अशुद्धि का दोषारोपण किया है। पर यह उन्हीं की बड़ी भारी ग़लती है। उपाध्यायजी 'अचतुरविचतुर' ४।४।४७ लिखकर पाणिनि की दुहाई देते हैं। परंतु यह सूत्र आपके लिखे अंक में नहीं मिलता। शायद पाणिनि ने ग़लती की हो। यह है ५।४।४७। १ अ० खं० ६। आपने श्लोक १ की टीका में 'ऋक्सामनी' ग़लत बताया है; यही ग़लत है। ६।३।१६३ अंक के सूत्र ही ने साफ़ बतला दिया है कि समासांत विधि नित्य नहीं है। इससे 'अचतुर'-सूत्र ही ग़लत ठहरता है, 'ऋक्सामनी' ठीक है। परंतु उपाध्यायजी यह तो बतलावें कि यह श्लोक कौन-से छंद का है? अगर कोई छंद नहीं है, तो आप उसे श्लोक कैसे लिख बैठे? और सुनिए—'गच्छेयाताम्' आपको बहुत खटकता है। हम आपको सलाह देते हैं कि आप किसी पाणिनि की अष्टाध्यायी पढ़नेवाले से पूछ देखें। सम्-उपसर्ग के परे गम् का रूप आत्मनेपदी होता है। पीछे ५।३।८३ के सूत्र के वार्तिक से, प्रत्यय के बिना भी, पूर्व और उत्तरपद का लोप विकल्प से होता है। इससे 'सम्' पूर्वपद का लोप करके—'गच्छेयाताम्' पद साधु है। आचार्यों के लिये यह सब हस्तामलक होने से उन्होंने गच्छेयाताम् लिख दिया। ऐसे ही "मरिष्ये पद चिंत्य है" यह लिखना ही चिंत्य है। उपाध्यायजी, यह मृङ् धातु का रूप नहीं है। यह मृ हिंसायाम् धातु का रूप है। क्र्यादिगण का धातु है। यहाँ कालेन अहं मरिष्ये, इस भाव को लेकर मरिष्ये-पद लिख दिया है। अच्छा, आपने यह जो लिखा कि 'मृ' धातु भविष्यत्काल में परस्मैपदी ही रहता है; सो किस प्रमाण से? पाणिनि का तो ऐसा कोई सूत्र नहीं है। आपके मत में तो 'मृषीष्ट'-रूप न होना चाहिए; क्योंकि वह भी सामान्य भविष्यत्-

काल का है। आशीर्वाद में भी धनवान् हो, यह स्पष्ट भविष्यत्काल है। अतः भविष्यत्काल में परस्मैपदी रहता है, यह कहना सर्वथा भ्रम है। मालूम होता है, उपाध्यायजी आजकल के सुधारक मत के हैं। तभी तो उन्होंने आचार्य के 'भाष्य' नाम को न लिखकर 'टीका' पद लिखा है। आपको भाष्य और टीका-पद एक ही समझ पड़ता होगा, परंतु संस्कृत-साहित्य में यह नियम नहीं है। भाष्य का दरजा ऊँचा है। टीके का दरजा नीचा है।

बालचंद शास्त्री

× × ×

१०. सुख

पूरे पचास वर्ष हाड़ पेले, पर वह न आया। अंत को हारकर उस दिन, जब सब कुछ त्यागकर कुटिया में बैठा था, आधी रात के समय, चोर की तरह चारों तरफ़ से अपनेको ढककर वह आया। उस समय वह हँस रहा था। मुझे 'मान' आ गया। मैंने उसकी तरफ़ नहीं देखा। मैं मुँह फुलाकर बैठ गया। अब से ४० वर्ष पहले, जब मेरा ब्याह हुआ था, मेरी नववधू, देर तक मेरी प्रतीक्षा करके, मेरे आने पर इसी तरह बैठ गई थी। और, तब मैंने जैसे प्यार से अपनी स्त्री से कहा था, वैसे ही उसने मेरे कंधे पर हाथ रखकर कहा—'नाराज़ हो गए क्या ?' मैंने मान में भरकर कहा—'तुम अब आए हो ?' उसने कहा—'तुमने मुझे बुलाया कब था ? मैं तो तुम्हारी प्रतीक्षा करते-करते बूढ़ा हो गया।' मैंने झुँझलाकर कहा—'क्या मैंने उस प्यार की पुतली को तुम्हारे ही लिये जान होमकर नहीं प्राप्त किया ? तुम्हारे ही लिये क्या मैंने धन के पहाड़ लगाने में दिन-रात एक नहीं कर दिए ? तुम्हारी ही ख़ातिर ज्ञान प्राप्त करने के झंझट में क्या मैं अंधा और रोगी नहीं हो गया ? यश के लिये क्या मैंने तन-मन को चूर-चूर करनेवाली विपत्ति और अटूट परिश्रम से अपना शरीर मिट्टी में नहीं मिला दिया ?'

उसने हँसकर कहा—'क्या मैं तुम्हारी सुंदरी प्यार की पुतली का ग़ुलाम था, जो उसके साथ दौड़ा आता ? या तुमने मुझे सट्टे-बाज़ार का अर्थ-पशु समझ रक्खा था, जो धन के पलड़े पर चढ़ा चला आता ? तुम्हारे यश और ज्ञान से मेरा क्या वास्ता था ?'

मैंने आँखें फाड़-फाड़कर उसकी तरफ़ देखा। मान जाता रहा। मैंने कहा—'आख़िर तुम थे कहाँ ? मैंने तो तुम्हें इन्हीं वस्तुओं का साथी समझा था।' उसने हँसकर कहा—'मूर्ख ! मैं तो अपने ही घर में, यहीं, तेरे पड़ोस ही में था। एक आवाज़ सुनते ही चला आता।' मैंने रोकर कहा—'जाओ, अब मुझे तुम्हारी ज़रूरत नहीं है, मेरी चाह अब मर गई है।' उसने सहानुभूति से कहा—'चाह तुमने की कब थी ? तुमने जो चाहा, वह मिला। धन चाहा, धन मिला। परी-सी सुंदर स्त्री चाही, वह मिली। ज्ञान चाहा, ज्ञान मिला। यश चाहा, यश मिला। मुझे चाहते, तो क्या मैं न मिलता ?' मैंने रुष्ट होकर कहा—'तो अब क्यों आए हो ? मेरे पास अब क्या रक्खा है ? मुझे शांति भी तो नहीं मिली।' उसने मधुर तिरस्कार के साथ कहा—'तुम्हारे पास कुछ नहीं रक्खा, तो मैं भी भिखारी बनकर कुछ तुम्हारे पास नहीं आया हूँ। शांति की भी तुमने कब चाह की थी ? कल तक तुम यह करो—वह करो करते रहे। अभिमानी पुरुष ! विना बुलाए कौन-कौन तुम्हारे द्वार पर आवेगा ? हम लोग दहेज की वस्तु नहीं हैं।'

इतना कहकर उसने आँचल में से शांति का हाथ पकड़कर मेरी गोद में बिठा दिया, और स्वयं मुझे गोद में लेकर बैठ गया।

मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मैं बर्फ़ की डली के आर-पार हो रहा हूँ। या मानो ओस की बूँद के ऊपर अधर बैठा हूँ। अथवा पानी की गिरती धार पर खड़ा हूँ। नहीं तो किसी पुष्प की गंध को प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। मानो मृगतृष्णा ने सचमुच मेरी प्यास बुझा दी है।

श्रीचतुरसेन

× × ×

११. ओसकण

पँखड़ी पर मोती पड़े, मंगल उदित दिनेश ;
उषा लाल कुंकुम लिए, लाई सुखद सँदेश।
सूरज भीगे स्नेह में, चिड़िया गावें गीति ;
सरसिज सँग नाचे सलिल, अहो विश्व की प्रीति।
कली रही यह चटक अब, बोल रहे सब मोर ;
सरस प्रेम बरसें, झरें, अंबुद हृदय हिलोर।
फूल-फूल पर ओसकण, हरे, लाल या पीत ;
मोती के गोती बने, इंद्रचाप-छवि जीत।

प्रभु, लो जीवन-पुष्प यह, रक्खो निज पद पास ;
ध्रुवा ओसकण हों अटल, फैले सदा सुवास ।

कुँअर रामसिंह

× × ×

१२. श्रीउर्मिलाजी

माधुरी के वर्ष १, खंड १, पृ० ४६९ में श्रीराम-लक्ष्मण के वन-गमन के समय श्रीउर्मिलाजी के पति-प्रेम-प्रदर्शन के संबंध में रामायणों में कुछ वर्णन न होने से उसका कारण जानने की चेष्टा की गई है कि क्या उन्हें पातिव्रत धर्म का पाठ ही नहीं मिला था, या उनके मन में पति-प्रेम ही नहीं था, या निष्ठुर-हृदय होने के कारण उन्होंने अपने पति के साथ वन जाने के लिये अनुनय-विनय नहीं की, अथवा रामायण के कवियों के कृपा-भाव से उनकी प्रीति और प्रार्थना को रामायण में स्थान प्राप्त नहीं हुआ? उत्तर में निवेदन यह है कि वह श्रीजानकी-जी की कनिष्ठा सहोदरा भगिनी थीं। यह तो संभव नहीं कि उन्हें पातिव्रत धर्म का पाठ न पढ़ाया गया हो, या उनका हृदय पति-प्रेम-शून्य या ऐसा निष्ठुर हो कि लक्ष्मण-जी का वन जाना उन्हें न अखरा हो। उनकी बात कौन कहे, श्रीरामचंद्रजी और अपनी बहन श्रीजनकनंदिनी ही के वन जाने का संवाद सुनकर उनके कोमल हृदय पर वज्रपात-सा हुआ होगा। यदि ऐसा न हुआ हो, तो क्रूरता और निष्ठुरता में वह मंथरा और कैकेयी की भी नाक काटनेवाली कही जायँगी। कारण, वे दोनों तो सरस्वती के द्वारा बुद्धि-भ्रष्टा की गई थीं—उचित या अनुचित रूप से उनके कोप, अतएव निष्ठुरता, का कुछ कारण भी माना जा सकता है—पर यहाँ तो कारण ढूँढ़ने से भी नहीं मिलेगा। वस्तुतः उनमें न पातिव्रतधर्म या पति-प्रेम का अभाव ही माना जायगा, और न उन्हें कठोर-हृदय ही कह सकते हैं।

गोसाईंजी ने सिया-राम ही को मुख्य रक्खा है। जहाँ अत्यावश्यकता नहीं हुई, वहाँ उन्होंने अन्य भाइयों के, या उनकी भार्याओं के, या किसी दूसरे प्राणी के विषय में कुछ नहीं कहा।

शिशुविनोद-वर्णन में प्रायः राम ही का नाम अधिक आया है, और उन्हीं का क्रीड़ा-कौतुक विशेष रूप से वर्णित हुआ है। हाँ, कहीं-कहीं 'चारिहु भाई' इत्यादि अवश्य कह दिया गया है। पढ़ने के बारे में कहा है—

"भए कुमार जबहिं सब भ्राता, दीन्ह जनेऊ गुरु, पितु, माता।
गुरु-गृह गए पढ़न रघुराई; अल्पकाल विद्या सब पाई।"

तो क्या और भाई गुरु के घर नहीं गए, और उन लोगों ने विद्याध्ययन नहीं किया? गोसाईंजी ने विचारा कि एक ही को कहना पर्याप्त होगा। उनके जाने से सभी का जाना समझा जायगा।

विवाह-काल में भी श्रीसिया-राम का विवाह विस्तार-पूर्वक वर्णन करके आगे कह दिया गया—

"जस रघुबीर-ब्याह-बिधि बरनी, सकल कुँअर ब्याहे तेहि करनी।"

विवाहानंतर जनकपुर से बिदाई के समय देखिए—

"पुनि-पुनि सीय गोद कर लेहीं; देइ असीस सिखावन देहीं।
होइहहु संतत पियहिं पियारी; चिर अहिवात असीस हमारी।
सासु, ससुर, गुरु-सेवा करेहू। पतिरुख लखि आयसु अनुसरेहू।"

यह सीताजी ही से कहा गया है। हाँ, आगे चलकर यह अवश्य है कि "सादर सकल कुँअरि समुझाई।" उन लोगों को भी उपदेश दिया गया—इसका संकेत-मात्र यही है।

इससे सर्वत्र देखा जाता है कि गोसाईंजी ने सिया-राम ही की प्रधानता रक्खी है। परंतु अन्य स्थानों में जहाँ दूसरे लोगों की ओर कुछ संकेत करते गए हैं, वहाँ उर्मिलाजी के संबंध में कुछ सांकेतिक वाक्य भी नहीं हैं।

हमारी समझ में इसका कारण यह है कि यदि श्रीरामचंद्र निर्वासित ही होकर क्यों न हो, अपने पिता-माता के संग कुछ वर्षों के लिये वनवास करने को जाते होते, तो सीताजी निश्चय उनके संग जाने के लिये इतना आग्रह और हठ न करतीं। समझतीं कि जब माता-पिता के सहित जाते हैं, तब चिंता कैसी? पति-वियोग-संताप से हृदय संतप्त होते हुए भी उस समय संकोच और लज्जावश उन्हें यह साहस नहीं होता कि उन लोगों के पास पहुँचकर यह कहने लगतीं कि हमें छोड़कर मा-बाप के संग कहाँ जाते हो? हमें भी साथ ले चलना ही होगा। उस समय उनके ऐसे कार्य की प्रशंसा न होकर संभवतः अन्य प्रकार से उसकी आलो-चना होने लगती; क्योंकि इस समय की अवस्था और उस अवसर की अवस्था में बहुत प्रभेद हो जाता। वैसे ही श्रीरामचंद्र तथा श्रीलक्ष्मणजी के वन-गमन की अवस्थाओं में भी प्रभेद है।

लक्ष्मणजी अकेले नहीं जाते । वह निज माता-पिता क्या, सब कुटुंब-परिवार के तुल्य अपनी भाभी और भाई के संग अपनी इच्छा से जा रहे हैं। उन्होंने स्वयं कहा है—

"गुरु, पितु, मातु न जानेउ काहू ; कहउँ सुभाव नाथ पतियाहू ।
जहँ लगि जगत सनेह सगाई, प्रीति प्रतीति निगम निज गाई ।
मोरे सबइ एक तुम स्वामी ।"

और सुमित्राजी कहती हैं—

"तात, तुम्हार मातु बैदेही ; पिता राम सब भाँति सनेही ।"
"जो पै सिया-राम बन जाहीं ; अवध तुम्हार काज कछु नाहीं ।"

जब वह अपने तथा अपनी माता के विचारानुसार पिता-माता के संग वन-गमन कर रहे थे, तब ऐसी दशा में वियोग-जनित दुःख से चित्त व्यथित होते हुए भी उर्मिलाजी का आकर संग चलने के लिये प्रार्थना और हठ करना, या कवियों का उन्हें वहाँ लाकर संग जाने के निमित्त उनसे आग्रह कराना नहीं सोहता। और, किसी प्रकार लक्ष्मणजी उन्हें संग ले भी नहीं जाते । इसमें उर्मिलाजी को और भी दुःसह दुःख होता, और न-जाने तब लोग उस घटना की कैसी आलोचना करते । इसी से उन्होंने मौन-भाव ही अवलंबन कर पति-वियोग-संताप सहन करना उत्तम समझा, जैसा कि आज भी विशेष-विशेष अवस्थाओं में नव वधुओं को सहन करना पड़ता है। इसी से गोसाईंजी ने भी उन्हें अपने दुःख को चुपचाप सहने दिया, और उसे व्यक्त करना या कराना निष्प्रयोजन समझा । उसमें कुछ लाभ नहीं देखा। उनके मुख से पुनः पातिव्रत धर्म की व्याख्या कराने और महिमा जताने में, शब्दों की न हो, आशय की तुरंत ही पुनरुक्ति समझी।

आदि-कवि ने भी कदाचित् इसी प्रकार के विचार से उर्मिलाजी की वियोग-व्यथा का वर्णन नहीं किया। नहीं तो इन कवियों को उनसे द्वेष का क्या कारण हो सकता है ? और, यदि सचमुच द्वेष होता, तो ऐसे अवसर में वे चुप ही नहीं रहते, बरन् या तो संग जाने की प्रार्थना में उनकी असफलता दिखाकर उन्हें नीचा दिखाते, अथवा उनके चुप बैठे रहने पर उन्हें आड़े हाथों खूब लेते । यहाँ तो कवियों ने उभय अवस्थाओं में, वस्तुतः कोई अवस्था क्यों न हो, उनकी सम्मान की रक्षा ही की है।

फिर यदि उन कवियों ने उर्मिलाजी का प्रकरण न छेड़ने में भूल और त्रुटि की है, तो हताश होने की कोई बात नहीं । अब तो लोगों का उस ओर ध्यान आकृष्ट हुआ है। आपके कोई इष्ट-मित्र इस विषय पर अलग ग्रंथ लिखें या नहीं, क्षेपककारों की कृपा से रामायण में अब इसे शीघ्र ही स्थान मिल जायगा। इसमें संदेह नहीं।

शिवनंदनसहाय

× × ×

१३. च्यवन का आश्रम

गत आश्विन-मास की माधुरी में श्रीयुत पं० शांति-प्रसाद शुक्लजी ने मुझसे पूछा है कि कोइलवर के पुल के पास शोण के पूर्वी तट पर च्यवन का आश्रम था। इसमें क्या प्रमाण है ? लोग कहते हैं कि बलरामपुर जाने-वाली सड़क के पास, सुभागपुर गाँव के पास, च्यवन का आश्रम था।

उत्तर में निवेदन है कि मैंने हर्षचरित की निम्न-लिखित पंक्तियों के आधार पर शोण के किनारे च्यवन का आश्रम माना है—

"इतश्च गव्यूतिमात्रं तस्य भगवतश्च्यवनस्य स्वनाम्ना निर्मितव्यपदेशं च्यावनं नाम चैत्ररथकल्पं काननं निवासः ।"

(ह० च०, प्रथम उच्छ्वासः)

अर्थात् यहाँ से दो कोस की दूरी पर शोण के उस पार भगवान् च्यवनऋषि का आश्रम है। जो चैत्ररथ के सदृश और उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध है। जब लोग मगध की निंदा करते ह, तब पंडितमंडली गया-तीर्थ तथा च्यवना-श्रम आदि की दुहाई देती है कि—

"कीकटेषु गया पुण्या नदी पुण्या पुनःपुनः ;
च्यवनस्याश्रमः पुण्यः पुण्यं राजगृहं वनम् ।"

इस श्लोक से भी कहीं मगध में च्यवनाश्रम सिद्ध होता है।

यदि सौभाग्यपुर के पास च्यवनाश्रम प्रसिद्ध है, तो संभव है, वहाँ भी उक्त ऋषि कुछ दिनों तक रह चुके हों।

सकलनारायण शर्मा

× × ×

१४. जुगनू

(१)

वह गाने ही जा रही थी कि पपीहा बोल उठा—"पी कहाँ !" जान पड़ता था, ऐसी नीरव निशा में उसे अपने गान की प्रतिध्वनि सुनने की अभिलाषा थी।

रात बहुत बीत गई थी ; आकाश तारों से खचाखच भरा था। चारों ओर सन्नाटा छाया था। संसार प्रकृति की गोद में सो रहा था। हवा भी न-जाने कहाँ सोने चली गई थी। लताएँ भी वृक्षों से लिपटी हुई आनंद में मग्न थीं। कमल-कोषों में भ्रमरों को छोड़कर और कोई जागता न था। हाँ, केवल एक घर की खिड़की में कुछ प्रकाश हो रहा था। खिड़की खुली थी। सुंदरी बैठी हुई बाहर अँधेरे उद्यान की ओर ताक रही थी। वह उसी खिड़की में चित्रित-सी थी। चारों ओर से लता-प्रतानों ने उसे आच्छादित कर दिया था। ऐसा जान पड़ता था कि किसी ने उस चित्र को माला पहना दी है।

सुंदरी फिर से कुछ गुनगुना ही रही थी कि पपीहे ने उत्तर में कह दिया—"पी कहाँ!"। सुंदरी ने ठंडी साँस भरकर कहा—"पपीहे, तुझे अपनी ही सूझती है!" यही कहकर खिड़की के बाहर झुककर उसने पेड़ की पत्तियों को पकड़ लिया। अँधेरे में ताकती हुई वह मन में कुछ कह रही थी। इतने में पपीहे की ध्वनि फिर आई। उद्यान में से सुगंध भी आई। पर ज्यों-ज्यों सुगंध से उसका मन भर रहा था, त्यों-त्यों उसका हृदय भी न-जाने क्यों भरा आता था।

खिड़की के नीचे झाड़ियों में दृष्टि जाते ही उसे एक छोटी-सी चमकीली वस्तु दिखाई पड़ी।

सुंदरी ने कहा—"तुम कौन हो?"

उत्तर मिला—"मैं तो हूँ जुगनू। क्या तुमने मेरे प्रियतम को देखा है?"

"नहीं, मैंने तो नहीं देखा। क्या तुम जानते हो कि मेरे प्रियतम कहाँ हैं?"

"क्या कहूँ—"

इतना सुनकर पेड़ की टहनी पकड़े-पकड़े वह मूर्च्छित-सी हो गई। होश में आकर फिर सुंदरी ने कहा—"क्या संसार-भर को यही दुःख है? क्या तुम उड़कर अपने प्रियतम के पास नहीं जा सकते?"

"नहीं, मैं उड़कर जाऊँ, तो उधर वह भी कहीं उड़ जायँ। फिर मिलना ही कठिन होगा।"

"तो क्या तुम्हारी तरह उनके भी पंख हैं?"

"हाँ, और क्या। इसी से तो मैं यहाँ बैठे-बैठे चमकता रहता हूँ। वह जब आवेंगे, मुझे यहीं पा जायँगे।"

"अच्छा, तो यह भी मेरे दीपक की भाँति है। देखो, मैं दीपक जलाती हूँ। पर, तुम्हारे प्रियतम हैं कैसे?"

"मैंने तो उन्हें देखा ही नहीं है।"

"सचमुच, मुझे तो याद है, शायद मैंने अपने प्रियतम को देखा है।" सुंदरी ने यह कहकर आँखें मूँद ली, और दीवार से पीठ अड़ाकर मौन रह गई।

"अच्छा, तो वह कैसे हैं?"

"ओफ़्, क्या कहूँ! सबसे सुंदर हैं। उनका सौंदर्य अनिर्वचनीय है। उनके गुण बेचारी यह जिह्वा नहीं कह सकती।"

जुगनू बोल उठा—"हाँ, हाँ, ऐसे ही तो वह भी हैं मेरे प्यारे। क्या कहूँ, यदि उन्होंने कहीं मुझे देखा होता!"

"क्या उन्होंने भी तुम्हें नहीं देखा?"

"नहीं, इसी से तो मैं प्रतीक्षा में यहाँ चमका करता हूँ।"

"पर वह देखो, सारी झाड़ियाँ चमक रही हैं। उधर तो कितने ही जुगनू हैं। चार, पाँच, ओहो, वे तो कितने ही हैं।—" यही कहते-कहते सुंदरी के कपोलों पर आँसुओं की धारा बहने लगी।

जुगनू ने कहा—"पर, क्या तुम्हारी भी यही दशा नहीं है? क्या और कितनी ही युवतियाँ तुम्हारी भाँति दीपक नहीं जलातीं? वे तुम्हारे प्रियतम को लुभा न लेंगी?"

"तुम मेरे प्रियतम को जानते नहीं।"

"क्या करूँ, मेरा तो अपने ही प्राणाधार से परिचय नहीं है।"—यह कहकर जुगनू चमक-चमककर ऐंठने लगा। जान पड़ता था, उसकी प्रभा फूटकर आकाश में विलीन हो जायगी।"

सुंदरी ने यह सब तो देखा नहीं। उसने प्रसन्न होकर कहा—"मेरे प्रियतम मुझे छोड़कर और किसी को ध्यान में भी नहीं लाते। वह आते ही होंगे। आज नहीं, तो कल अवश्य मिलेंगे। फिर क्या कहना है! आनंद मनाया जायगा, राग, रंग होगा। थोड़े दिन बाद हम अपने प्रासाद में रहेंगे। फिर स्वर्गीय सुख प्राप्त होगा, अविरल आनंद की सीमा नहीं रहेगी।"

"क्या मुझे भी यह सुख प्राप्त होगा? कभी नहीं, मेरे प्रियतम तो न-जाने कब मिलेंगे। और कौन जाने, क्या होगा?"

"हाय, हाय, क्या यह भी जानने का सुख नहीं प्राप्त है?"

इतने में सुंदरी फूट-फूटकर रोने लगी। फिर सिसकते-सिसकते उसने कहा—"क्या मैं तुम्हारी कुछ सहायता

नहीं कर सकती ? पर, अब तो सोने का समय हो गया है। जाकर सोऊँ, नहीं तो आँखें लाल हो जायँगी, और कल मेरे प्रियतम यह देखकर खिन्न होंगे।"

"नहीं, तुम उन्हें अप्रसन्न न करो।"—यह कहकर जुगनू उड़कर पृथ्वी पर जा बैठा। सुंदरी ने खिड़की बंद कर ली। चारों ओर फिर सन्नाटा छा गया।

परंतु जुगनू ने विश्राम न लिया। वह चमकता ही रहा। प्रातःकाल सूर्य निकला। उसकी प्रभा ऐसी फैली कि संसार के और प्रकाश न-जाने क्या हो गए।

(२)

दो दिन हो गए। सुंदरी संध्या समय अपने प्रियतम के साथ उद्यान में गई।

उसी झाड़ी के पास वह खड़ी थी। इधर-उधर देखकर उसने कोई चीज़ झपटकर पृथ्वी पर से उठा ली। उसके प्रियतम ने पूछा—"क्या है ?" सुंदरी चुप रह गई।

उसके हाथ में वही जुगनू था। पर वह रेंग न सकता था। उसमें उस रात की वह चमक न थी।

"उस दिन जब आपकी प्रतीक्षा कर रही थी, तो यह रात को यहीं मिला था।"—यह कहते ही सुंदरी का गला भर आया। वह सिसक रही थी। उसके प्रियतम ने उसके आँसू पोंछते हुए कहा— "हाँ, ठीक है, इससे प्रियतम का सम्मिलन हुआ तो, पर तुरंत इसकी मृत्यु हो गई। उनका सुख क्षणिक था। हमारा सुख ऐसा नहीं है। हम अनंत काल तक अपूर्व आनंद का अनुभव करते रहेंगे।

"कौन जाने। पर बेचारे जुगनू की सुख की अभिलाष तो मेरी-सी ही थी।"

(३)

रात बीत गई थी। सुंदरी अब तक वहीं खड़ी थी। मरे हुए जुगनू को हाथ में लिए वह टकटकी बाँधे देख रही थी। पर उसका प्रकाश तो आकाश के तारों में चला गया था। क्रमशः उसे सारा दृश्य देख पड़ा। पपीहे का "पी कहाँ" और वृक्षों की वह अंधकारमयी हरियाली, सब कुछ उसके सम्मुख आ गया। पर उसकी सारी स्मृति में जुगनू ही सबसे सुंदर और सबसे निकट था।

उसके प्रियतम ने कहा—"तुम तो बहुत ही भली लगती हो।" सुंदरी सचमुच इस समय बड़ी सुंदर थी। प्रियतम की ओर उसने हाथ बढ़ाया। उसके हाथ में कुछ न आया। जुगनू पृथ्वी पर गिर पड़ा था। सुंदरी ने जो देखा, तो वह चमक-चमककर नाच रहा था।

वह आश्चर्य से अवाक् रह गई।*

श्रीरामाज्ञा द्विवेदी

× × ×

१५. वैदिक प्रार्थना

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ;
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।
(यजु० ३४ । १)

भावानुवाद

बिचरत जाग्रत दशा माहिं मन दूर-दूर जो नित ही ;
सुप्त अवस्था हू महँ जो मन भ्रमत रहत अविरत ही।
ज्योति पुंज की ज्योति अपूरब दूर गमन गुनधारी ;
निकट तथा दूरस्थ विषय को संतत चिंतनकारी।
अति चंचल जो है स्वभाव सों, सो मन प्रभु, तुम चेरो ;
शिव संकल्प विधानन में हरि, ताकी गति नित फेरो।

लोचनप्रसाद पांडेय

× × ×

१६ प्रतिकूल

सोऊँगी—यह सोच, सेज में सोई मैं अलबेली ;
उस निशीथ में रही देखती स्वप्न अनेक, अकेली।
तुम प्रदीपवाले उमंग की मदिरा-नदी बहाते ;
क्या जानूँ, क्या रहे रात-भर गुन-गुन-गुन-गुन गाते।
बैठी परम तपस्या में मैं ध्यान तुम्हारा धरती ;
देख तुम्हारी मीठी चितवन मुग्ध आप मैं मरती।
घूँघट-पट को खोल देखती किस पथ से तुम आते ;
सुनती हूँ, कालिंदी-तट तुम मोहन बेणु बजाते।
मचली, सिसक रही कोने में अपना रूप छिपाए ;
निधड़क इस सूने कुटीर में घुसे चले तुम आए !!
अपना करस्पर्श फिर देकर मुझको छेड़ रिझाया।
रसिक, रूप के अलंकार से तुमने मुझे सजाया।
सबका लय है इस चिंता में क्या निकुंज में लेती ?
तोड़-तोड़कर मैं फूलों को फेक धूल में देती !
किंतु उन्हें चुनकर तुम करते प्रस्तुत हार निराला !
मुझे बिठा करके प्राणों में पहनाते वह माला !

'गुलाब'

---

* एक डेनिश (Danish) कहानी के आधार पर।



१. टूटनेवाले तारे

टूटते हुए तारों को देखकर किसे आश्चर्य नहीं होता? बहुत-से लोगों की धारणा है कि जब तारे टूटते हैं, तब कोई अनिष्ट होता है, किसी बड़े आदमी की मृत्यु होती है इत्यादि। वाराहीसंहिता में लिखा है कि "स्वर्ग में शुभ कर्म का फल भोगकर जो जीव भूमि पर जन्म लेने के लिये गिरते हैं, वे ही उल्कारूप में देख पड़ते हैं"।* भौतिक विज्ञान से इनके विषय में जो कुछ जाना गया है, उससे सिद्ध होता है कि इनमें पत्थर बनानेवाले पदार्थ अधिक मात्रा में, लोहे के साथ या अकेले ही, होते हैं। इनकी बनावट ज्वालामुखी-पहाड़ से निकले हुए 'कीट' की बनावट से बहुत मिलती है, और इनमें ऐसी कोई धातु नहीं होती, जो पृथ्वी में न पाई जाती हो। वैसे तो कोई रात ऐसी नहीं बीतती, जिसमें एकआध टूटते हुए तारे न दिखाई पड़ें, परंतु किसी-किसी मास में, रात के तीसरे पहर के अंत में, ये बहुत-से देख पड़ते हैं। दसवीं अगस्त के दो-एक दिन आगे-पीछे परशुमंडल के तारों के पास से, १४, १५, १६, नवंबर को सिंह-राशि के तारों के पास से, तथा २३, २४ नवंबर को 'अंतरमदा' (Andromeda) के तारों के पास से झुंड-के-झुंड तारे टूटते हुए देख पड़ते हैं।

इनकी चमक साधारणतः लुब्धक, अगस्त्य, अभिजित् इत्यादि प्रथम श्रेणी के तारों की चमक की तरह होती है। परंतु कभी-कभी ये इतने बड़े देख पड़ते हैं कि जान पड़ता है, मानो आग का गोला गिर रहा हो। ऐसे आग के गोलों से शुक्र की चमक भी मात हो जाती है, और ऐसा जान पड़ता है, मानो एक नया चंद्रमा भागा जा रहा हो। परंतु ऐसे चमकीले गोले बहुत कम देख पड़ते हैं।

यह बात तो बहुत दिनों से मालूम है कि टूटनेवाले तारे अन्य आकाशीय पिंडों की अपेक्षा हमारे बहुत पास होते हैं, तथा ये भी पृथ्वी की नाईं सूर्य की परिक्रमा लगाते और अंत को पृथ्वी में आकर मिल जाते हैं। जब तक ये ख़ाली जगहों में हमारे वातावरण से बहुत ऊपर रहते हैं, तब तक ठंडे और अदृश्य रहते हैं, परंतु ज्यों ही हवा से इनकी भेंट होती है, त्यों ही गति मंद पड़ जाती और चलने की शक्ति गरमी के रूप में बदल जाती है, जिससे क्षण-भर के लिये (२-४ सेकिंड से अधिक नहीं) ये चमक उठते और दो-चार बड़े-बड़े पिंडों को छोड़कर, सभी हवा ही में धूल हो जाते हैं।

भूतल पर जो गिरते हैं, उनमें पत्थर साधारणतः और लोहा कभी-कभी पाया जाता है। परंतु दोनों रूपों में ये ठोस घन पदार्थ होते हैं, जिससे यह भी अनुमान किया जाता है कि जो ऊपर ही हवा में नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं, उनकी रचना भी इन्हीं पदार्थों से होती है।

---

* दिविभुक्तशुभफलानां पततां रूपाणि यानि तान्युल्काः ;
धिष्ण्योल्काशनिविद्युत्तारा इति पञ्चधा भिन्नाः।
वाराहीसंहिता पृष्ठ १६१, अध्याय ३३
(नवलकिशोर-प्रेस)

यदि दो-तीन या अधिक दर्शक भिन्न-भिन्न स्थानों से एक ही टूटनेवाले तारे को देखें, तो यह सहज ही जाना जा सकता है कि ये किस मार्ग से चलते हैं, इनकी क्या गति होती है, कितने ऊपर से ये चमकने लगते और कहाँ आकर ग़ायब हो जाते हैं इत्यादि। इसी प्रकार की परीक्षा से जाना गया है कि जब ये पचास से सौ मील तक ऊपर रहते हैं, तब इनमें चमक उठती है, और दस से चालीस मील तक नीचे आते-आते अधिकांश नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। इनकी गति बड़ी तीव्र होती है। मध्यम गति २५ मील * प्रति सेकिंड आँकी गई है।

इसके संबंध में एक बहुत ही रोचक वाद-विवाद आक्सफ़ोर्ड के प्रोफ़ेसर लिंडमैन ने प्रकाशित किया है। उन्होंने अर्वाचीन भौतिक विज्ञान के सिद्धांतों के अनुसार इन गतियों का संतोषजनक कारण ढूँढ़ निकाला है। जब कोई छोटी, घनी और तीव्र वेग से चलनेवाली वस्तु हमारे वातावरण के ऊपरी भाग में प्रवेश करती है, जहाँ हवा के अणु एक दूसरे से बहुत दूर रहते हैं, तब जिन अणुओं को धक्का लगता है, वे भागकर दूर चले जाते हैं। परंतु जब घनी हवा राह में मिलती है, तब पहले के धक्के खाए हुए अणु घनी हवा के अणुओं से दबाए जाकर फिर उल्का के पास जा पहुँचते हैं, और उसके अग्रभाग को दबाकर दबी हुई हवा की टोपी-सी बना लेते हैं। दबने से हवा और उल्का का अगला भाग बहुत गरम हो जाता है। लिंडमैन का अनुमान है, इस प्रतिक्रिया में तापक्रम २२००° † शतांश तक पहुँच जाता है, जिससे पत्थर और लोहा पिघल ही नहीं जाते, वरन् उड़कर भाप के रूप में बदल जाते हैं। इस प्रकार यदि उल्का छोटी हुई, तो उड़कर हवा में मिल जाती है, और यदि बड़ी हुई, तो प्रत्याघात करते-करते उसकी गति इतनी मंद पड़ जाती है कि वह ठंडी होकर पृथ्वी-माता की गोद में आ जाती है।

जिस समय उल्का के सिर पर दबी हुई हवा की टोपी बन जाती है, उसी समय से आगे पड़नेवाली हवा का विरोध बढ़ने के साथ-साथ चमक भी बढ़ने लगती है। पहले हवा इतनी पतली होती है कि आगे बढ़ते हुए तारे को रुकावट बहुत कम होती है; परंतु ज्यों ही अपनी ही जाति के हाथों अपमानित और धक्का देकर मार भगाई गई हवा की मोटी चादर उसे मिल जाती है, त्यों ही अधिक परिमाण में प्रतिक्रिया का आरंभ हो जाता है, जिससे उल्का बहुत गरम हो जाती है। इस गरमी से शायद उसको उतना प्रकाश नहीं मिलता, जितना इसके भीतर के अणुओं ही में रगड़-झगड़ पैदा हो जाने से मिलता है। बात यह है कि हवा के बढ़ते हुए प्रतिरोध के कारण उल्का के अणु इतने विचलित हो जाते हैं कि उनके विद्युत्कण अलग-अलग हो जाते हैं, बिजली की धारा पैदा हो जाती है, और नए प्रकार का संयोग होने लगता है। इस संयोग ही से प्रकाश उत्पन्न होता है। लिंडमैन का मत है कि वेग-शक्ति का बहुत-सा भाग इसी प्रकार प्रकाश के रूप में बदल जाता है।

उल्का के प्रकाश को नापकर यह जाना जा सकता है कि उसमें कितनी प्रकाश-शक्ति है। यह जान लेने पर उसकी आरंभिक वेग-शक्ति मालूम हो सकती है, और उससे उसके द्रव्य का परिमाण (mass) भी जाना जा सकता है। उदाहरण के लिये लिंडमैन महाशय ऐसी उल्का लेते हैं, जो ६२ मील की उँचाई पर चमकने लगती और तिर्यक् गति से ४० मील की राह चलकर ५० मील की उँचाई पर अदृश्य हो जाती है। यदि ऐसी उल्का ६० मील दूर से देखनेवाले को प्रथम श्रेणी के तारे की तरह चमकीली देख पड़े, तो यह सहज ही जाना जा सकता है कि इस थोड़ी-सी अवधि में उसने ४ अश्वबल * के समान शक्ति लगाई है।

उल्का के समान वेग से चलनेवाला बहुत थोड़ी मात्रा का द्रव्य भी इतनी शक्ति उत्पन्न कर सकता है। एक माशे के दसवें भाग (१ रत्ती से भी कम) लोहे में भी इतनी शक्ति उत्पन्न हो सकती है। केवल १ छटाँक

* ओ० आर० रेलवे की डाकगाड़ी घंटे में ४० मील चलती है। इस गाड़ी की गति से सवा दो हज़ारगुनी टूटनेवाले तारे की मध्यम गति होती है।

† इस तापक्रम का अनुमान इस प्रकार किया जा सकता है—ताँबा और सोना ११००° शतांश पर पिघल जाते हैं, चाँदी ९८५° शतांश पर गल जाती है, और जस्ता ९१६° शतांश पर उड़ जाता है।

* यदि ५५० पौंड या २६८०३ सेर का बोझ एक सेकिंड में १ फुट ऊपर उठाया जाय, तो उसमें १ अश्वबल की शक्ति ख़र्च होती है।

का टुकड़ा बड़ा भारी आग का गोला बन सकता है, जिससे १०० मील लंबा-चौड़ा मैदान इतना प्रकाशित हो सकता है, मानो चंद्रमा निकल आया हो। ये अनुमान बहुत अद्भुत जान पड़ते हैं, परंतु मन-गढ़ंत नहीं हैं; गणित से इनकी शुद्धता जाँची गई और ठीक निकली है। अनुभव भी इस बात की गवाही देता है; क्योंकि जो उल्का-खंड रात को पृथ्वी पर गिरे हुए पाए गए हैं, वे आकाश में आग के गोले की ही तरह देख पड़े थे।

उल्का के बड़े-बड़े खंड इतने वेग से चलते हुए राह में कई रूप बदल सकते हैं। जब ये घनी हवा में प्रवेश करते हैं, तब हवा का झोंका इतना अधिक हो सकता है कि पिघली हुई उल्का पानी की बूँदों की तरह फैल जाय, और उससे प्रकाश की पूँछ-सी बन जाय। यदि प्रतिरोध विषम हुआ, तो उल्का लट्टू की तरह इतने वेग से घूमने लग सकती है कि फटकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाय, जैसा कि बहुत-से गिरते हुए आग के गोलों में देखा गया है। अंत में यदि वेग ८-१० मील प्रतिसेकिंड से भी कम हो जाता है, तो उल्का-तल का प्रकाश मंद पड़ जाता है, उल्का ठंडी पड़ जाती है, और भूपृष्ठ पर तोप के शिथिल गोले की तरह पहुँचती है। यदि खंड छोटे हुए, तो गति मंद होने के पहले ही, ऊपर ही, वे हवा में विलीन हो जाते हैं। इन्हीं भिन्न रूपों को वराहमिहिर ने ५ श्रेणियों में विभाजित किया है।

लिंडमैन महाशय का यह भी अनुमान है कि ६० मील की उँचाई पर, जहाँ बहुत-से उल्का प्रकाशमान होते हैं, वातावरण का घनत्व भूतल की हवा के घनत्व का $\frac{1}{1,20,000}$ भाग होता है, और ऐसी पतली हवा में भी इतने अणु होते हैं कि वे एक घन-इंच में १ शंख (10^{18}) तक आँके गए हैं। इस कारण उल्का पर प्रभाव डालने के लिये इतनी उँचाई पर भी द्रव्य पर्याप्त मात्रा में रहता है।

भूतल से इतनी उँचाई पर हवा कितनी घनी है, इसका हिसाब पहले भी लगाया गया था, जिससे सिद्ध हुआ कि हवा इससे कहीं अधिक पतली है। इस अंतर का कारण यह जान पड़ता है कि इतनी उँचाई पर हवा जितनी ठंडी समझी गई थी, उससे कहीं अधिक वह गरम है। संभव है, उसका तापक्रम भूतल की हवा के तापक्रम के समान हो, और शून्य से ६०° शतांश नीचे न हो, जैसा कि १० से २० मील की उँचाई तक नापा गया है। लिंडमैन महाशय कहते हैं—इस गरमी का कारण यह है कि इतनी उँचाई पर 'ओज़ोन' बहुत होती है। इसमें तो संदेह नहीं कि ओज़ोन बहुत ऊपर होती है; क्योंकि सूर्य और तारों से आनेवाले प्रकाश के उस भाग को, जो बैंजनी रंगवाले प्रकाश (Ultraviolet) से भी परे है, ओज़ोन ही ऊपर सोख लेती है, जिससे सूर्य-रश्मि के परीक्षकों को बड़ी कठिनाई पड़ती है। ऊँचे-से-ऊँचे गुब्बारों के चढ़नेवालों को भी ओज़ोन का पता नहीं मिला। इससे भी प्रकट होता है कि ओज़ोन बहुत ऊपर होती है। इसलिये ओज़ोन-मिश्रित हवा सूर्य की गरमी को ऊपर ही सोखकर ऊपर की हवा को बीचवाली हवा की अपेक्षा अधिक गरम रखती है।

महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

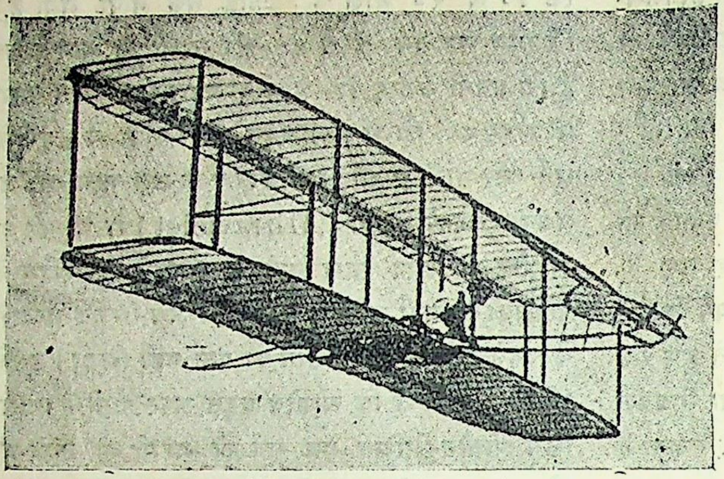
× × ×

२. राक्षस-वायुयान

यूनाइटेड स्टेट तथा जर्मनी की एक कंपनी ने मिलकर एक राक्षस-वायुयान बनाया है। वह इतना बड़ा है कि उसके उदर में आजकल का सबसे बड़ा जहाज़ आसानी से आ जायगा। फिर भी पाठक यह न समझें कि उसे अजीर्ण होगा; साँस लेने के लिये भी काफ़ी जगह रहेगी। उसका नाम ZR—3 दिया गया है। उसके विषय में कवि की यह उक्ति ठीक है कि "Monarch of all she surveys." इसके कल-कब्ज़े भी मामूली नहीं हैं—विशेष रूप से इसी के लिये बनाए गए हैं।

'मैजेस्टिक' की, जो आजकल का सबसे बड़ा जहाज़ है, लंबाई ९५६ फ़ीट, चौड़ाई १०० फ़ीट और गहराई १०२ फ़ीट है। किंतु ZR—3 की लंबाई ६८५ फ़ीट, चौड़ाई १२५ फ़ीट और गहराई १३१ फ़ीट है। इससे जाना जाता है कि पानी का राक्षस हवा के राक्षस से छोटा है।

ऐसा वायुयान बनाने के लिये जर्मनी की जितनी तारीफ़ की जाय, थोड़ी है। जहाँ पर यह राक्षस-वायुयान बना है, वह स्थान बहुत बड़ा है। इसी स्थान पर जर्मनी युद्ध के समय ज़ेपलिन नाम के हवाई जहाज़ बनाता था; उस समय शायद लड़ाई में फँसे रहने के कारण उसने ऐसा वायुयान नहीं बनाया।



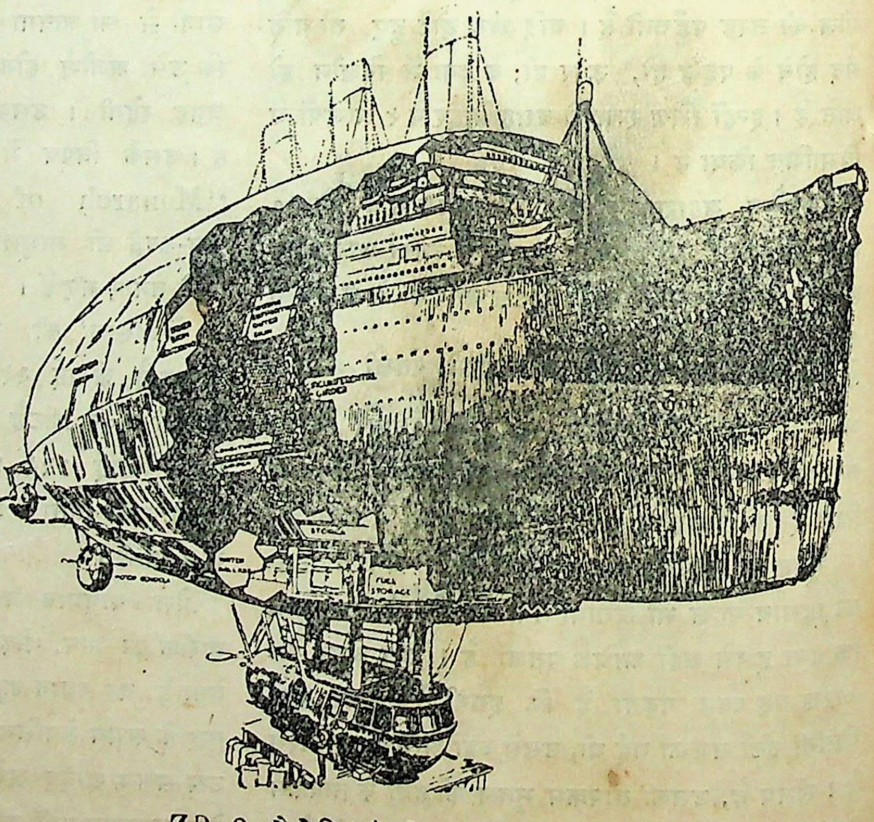
राइट का प्रथम वायुयान

१८९६ ई० में प्रो० लैंगली का 'एरोड्रोम' ४ फ़र्लांग उड़ा था । १९०५ ई० में राइट-भ्राता २४½ मील उड़े और आकाश में प्रायः आधघंटे तक रहे । १९१९ ई० में एक अमेरिकन एरोप्लेन ने अटलांटिक समुद्र को पार किया । इस प्रथम वायुयान से राक्षस-वायुयान की तुलना कर देखिए ज़मीन, आसमान का फ़र्क़ है !

इसे केवल हवा में उठाए रखने के लिये ७०,००० घन-मिटर हाइड्रोज़न गैस की आवश्यकता होती है । यात्रियों के लिये जितने सुबीते चाहिए, सब इसमें रक्खे गए हैं । उनके घर साफ़-सुथरे हैं ; रसोईघर बिजली के चूल्हों से सुसज्जित हैं । यह राक्षस पाँच 'मे-वैच' मोटरों द्वारा चलता, ३३ टन पेट्रोल अपने उदर में रख सकता, और आवश्यकता पड़ने पर ऊँट की तरह अपनी प्यास उसी से बुझाता है ।

खाने, पीने, सोने और यात्रियों को आराम देने के लिये ZR—3 प्रसिद्ध नहीं है । उसकी चाल, मज़बूती तथा दीर्घ शरीर उसके नाम को विख्यात बना रहे हैं । इतना विशालकाय होते हुए भी वह घंटे में ८० मील की चाल से चल सकता है । यह जर्मनी के जिस स्थान (Friendrichshafen) में बना है, वहाँ से न्यूयार्क जाने में इसे ७५ घंटे लगेंगे । 'मैजेस्टिक' जिस चाल से चलता है, उससे तुलना करने पर जान पड़ेगा कि इसकी चाल अपेक्षाकृत उससे अधिक है । अन्यान्य द्रुतगामी वायुयानों की तुलना में इसकी चाल धीमी है । परंतु ज़रा इसके शरीर पर भी ध्यान रखिए ।

बड़े-बड़े वायुयानों के गिरने का बड़ा डर रहता है । इसके पहले एक बड़ा वायुयान ZR—2 इँगलैंड ने अमेरिका के लिये बनाया था । 'डल'-नामक स्थान पर वह गिरकर बेकार हो गया । इंजीनियरों ने उसके गिरने के कारणों का पता लगाकर इस बार उनसे बचे रहने की सभी चेष्टाएँ की हैं । इसकी हड्डियाँ (ribs) सबसे मज़बूत और दामी इस्पात की बनी हैं ।



ZR–3 'मैजेस्टिक' को उदर-ग्रस्त कर रहा है

इसे ऐसा बनाया गया है कि इसके शरीर पर हवा-पानी का असर न हो सके।

यह विशालकाय राक्षस जिस दिन उड़ेगा, उस दिन आकाश में हलचल-सी मच जायगी।

× × ×

३. नक़ली वज्र

जिस दिन अमेरिका की जेनरल इलेक्ट्रिकल कंपनी के इंजीनियरों ने बीस लाख वोल्ट की विद्युत् तैयार करके लोगों को दिखलाई, उस दिन कुछ लोग कह उठे—"अब क्या, अब तो प्रकृति पर लोगों का आधिपत्य होने में कुछ भी संदेह नहीं है।" इसके आविष्कर्ता फ्रैंक विलियम पीक का कहना है—"कुछ दिन पहले जिसे लोग असंभव समझते थे, वह आज संभव हो गया है। आज के पहले मनुष्यों ने दस लाख वोल्ट से अधिक वैद्युतिक शक्ति का व्यवहार नहीं किया था; किंतु अब वे उसकी दूनी शक्ति को आसानी से परिचालित कर रहे हैं। आशा की जाती है कि थोड़े ही दिनों में मनुष्य प्रकृति की सारी शक्तियों को अपने अधिकार में कर लेगा। उस शक्ति के द्वारा बड़े-बड़े पर्वतों को सम भूमि में परिणत करना, जल-पूर्ण नदी को सुखा देना, पानी बरसाना आदि संभव है। बात-की-बात में बड़े-बड़े शहरों को भूमिसात् किया जा सकता है। शत्रु-पक्ष की विराट् सेना को देखते-ही-देखते यह शक्ति नष्ट कर देगी। शीत-प्रधान देशों में सूर्य की गरमी पहुँचाकर उन्हें गरम रखना इस वज्र ही का काम है। बड़े-बड़े जंगलों को जलाकर राख में परिणत करना तो इसके बाएँ हाथ का खेल है।"

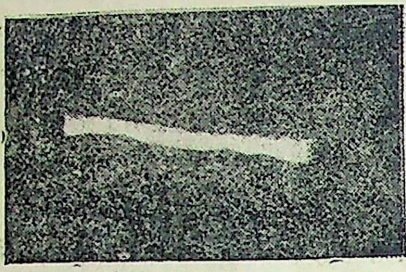
वैज्ञानिकों की धारणा है कि सभी पदार्थ बहुत छोटे-छोटे कणों (Electron) द्वारा बने हुए हैं। ये 'इलेक्ट्रोन' शक्ति के भांडार हैं। इस शक्ति को मुक्त कर देने से सभी पदार्थ अपनी असली हालत में हो जायँगे। तब एक पदार्थ को दूसरे में परिवर्तित करने में मनुष्य कृतकार्य होंगे। इसी शक्ति के बदौलत मनुष्य लोहे को सोना बना सकेगा; अर्थात् इस शक्ति को मुक्त करना पारस पत्थर की समस्या को हल करना है।

लकड़ी के एक टुकड़े से शक्तिशाली विद्युत् चालित हुई थी। इससे जो फल निकला, उसे देखकर वैज्ञानिक बड़े आनंदित हुए। लकड़ी के दो टुकड़े हो गए; किंतु उनमें एक छिद्र बन गया। वह छिद्र वैसा ही था, जैसा घुन लकड़ी में बनाते हैं। अंतर केवल यही था कि वह घुन के छिद्र से बहुत कुछ सीधा था। आश्चर्य की बात यह है कि छिद्र की लकड़ी क्या हो गई? क्या वह जल गई? नहीं, छिद्र में जलने का निशान नहीं था, और न आसपास राख ही मिली। कील लकड़ी में ठोंकने से कील के आसपास की लकड़ी हटकर कील को स्थान देती है। वह बात भी इस प्रक्रिया में नहीं हुई थी। अब वैज्ञानिक आपस में तर्क करने लगे कि लकड़ी हुई क्या? एक ने कहा—लकड़ी किसी दूसरे पदार्थ में—संभवतः किसी गैस में—परिवर्तित हो गई। कुछ कहने लगे—अणुओं के हेर-फेर से छिद्र हो गया, लकड़ी किसी अन्य पदार्थ में नहीं बदली।

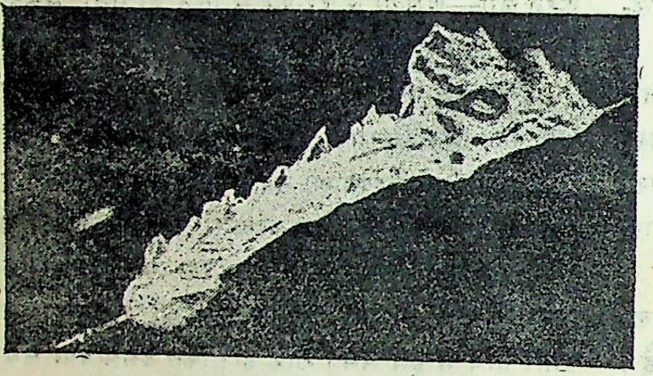
प्रसिद्ध वैज्ञानिक एडिसन के बराबर बैठने की योग्यता रखनेवाले मि० जिनसेपी फ्रैसिओली कहते हैं—"हम लोग अभी से भविष्यवाणी नहीं कर सकते; किंतु यदि एक पदार्थ का रूपांतर ग्रहण करना संभव है, तो वह महती शक्ति ही के द्वारा। बहुत संभव है कि प्रबल शक्ति तुरंत ही एक पदार्थ के कणों को दूसरे पदार्थ के कणों में बदल दे। हमारे हाथ में इस समय शक्ति है; किंतु उससे क्या सध सकता है, यह भविष्य ही बतलावेगा। हम लोग उसके द्वारा कोयला, हीरा, सोना और चाँदी ही नहीं, किंतु सब कुछ बना सकेंगे।"

इस्पात के बने हुए एक घर में इस शक्ति की परीक्षा हुई थी। घर ऐसा बनाया गया था कि शक्तिशाली विद्युत् के परिचालन से बाहर खड़े हुए दर्शकों को कोई हानि या कष्ट न पहुँचे। परीक्षा के समय दर्शक उस स्थान पर हटा दिए गए, जहाँ से विद्युत्-संचालन होता था, और जो यथेष्ट निरापद था। सब ठीक हो जाने के बाद बत्ती बुझा दी गई, और विद्युत् की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाई जाने लगी। बिजली एकाएक दस लाख से बीस लाख वोल्ट हो गई। बीच का ख़ाली स्थान तथा तार चमकने लगे। वैज्ञानिकों ने बतलाया कि तार से निकलनेवाले इलेक्ट्रोन ही इसका कारण थे। सच्ची बात ईश्वर ही जाने।

इस विद्युत्-शक्ति की परीक्षा करने के लिये एक जन-शून्य नक़ली ग्राम भी बना था। इतनी शक्ति की विद्युत् इसके पहले मनुष्य द्वारा नहीं उत्पादित हुई थी। एक करोड़



जिस तार से होकर प्रबल-शक्ति-संपन्न विद्युत् प्रवाहित होती है, रात के समय उसका प्रकाश इसी प्रकार का हो जाता है, क्योंकि अतिरिक्त विद्युत् उसके ऊपर भी छा जाती है



नक़ली वज्र का प्रतिरूप

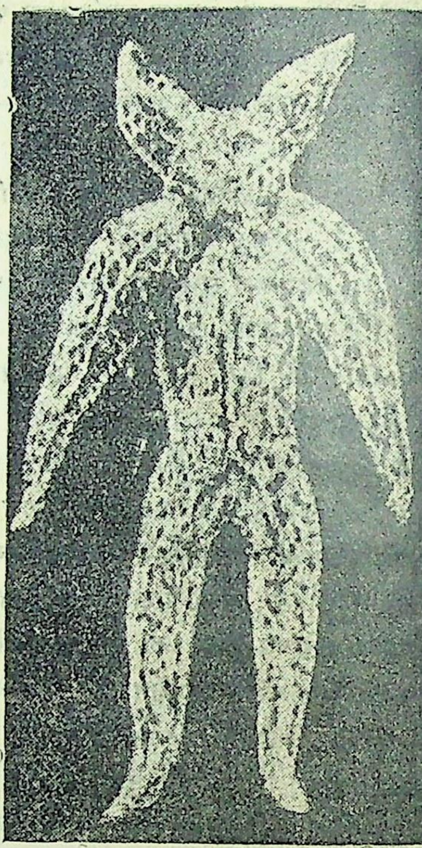
घोड़े की शक्तिवाला तथा बीस लाख वोल्ट का यह वज्र इंद्र के वज्र से किसी अंश में कम नहीं है।

× × ×

४. मनुष्य के पूर्वज क्या मछलियाँ हैं ?

बृटिश गायना के जंगलों में, समुद्र के किनारे, जहाँ बहुत कम मनुष्य आ-जा सकते हैं, एक प्रकार की मछलियाँ पाई जाती हैं। प्रो० विलियम वीव ने उनका आविष्कार किया है। ये ज़मीन पर भी रहती हैं, और पानी में भी। ये अपने डैनों (Fins) से इस प्रकार खड़ी होकर चलती हैं, जैसे कोई मनुष्य चले। ये दूर-दूर का सफ़र इसी अवस्था में तय करती हैं।

इस आश्चर्य-जनक आविष्कार से यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ है कि मनुष्य के पूर्वज कौन थे ? प्रो० वीव ने दक्षिण-अमेरिका के जंगलों में जिस जीव को देखा है, वह प्रमाणित करता है कि ज़मीन पर रहनेवाले सभी जानवर पहले पानी में रहा करते थे। धीरे-धीरे उनका विकास हुआ, और वे ज़मीन पर आने लगे। वे कभी जल में और कभी स्थल पर रहकर अपना समय बिताते थे। अंत में वे स्थल के पशु बन गए। जिस प्रकार यह मछली अपने डैनों को चलने के काम में लाती है, उसी प्रकार आरंभ में अन्यान्य पशु भी, जो पहले जल-पशु थे, अपने अंगों का ज़मीन पर चलने में व्यवहार करते थे, और उनके वे ही अंग अवस्थानुसार बदलकर पैर बन गए।



मनुष्याकृति मत्स्य

प्रो० वीव का कहना है कि ये मछलियाँ ज़मीन पर तब तक चलती रहती हैं, जब तक इन्हें कोई बाधा नहीं



ह्वेल मनुष्य

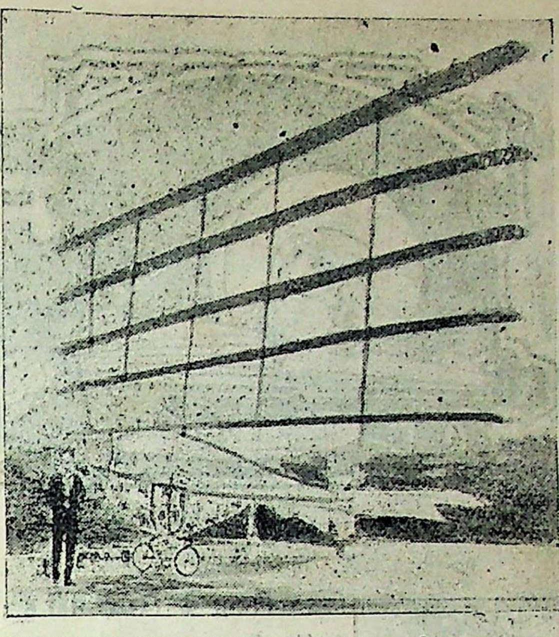
मिलती। बाधा मिलते ही ये उसे पूँछ से जकड़ लेती और ज़मीन पर गिर जाती हैं। जंगलों में, झुरमुट में, छिपकर रहना ये पसंद करती हैं। जब कभी कोई कीड़ा उधर से आ निकलता है, तो ये उस पर टूट पड़ती और उसे पकड़कर निगल जाती हैं। इस प्रकार की कई मछलियों को प्रो० बीत्र ने नव दिन तक ज़मीन पर रहते देखा है। ये पानी से ३००-४०० फ़ीट की दूरी तक चली जाती हैं।

आफ़्रिका की कुछ मछलियाँ पेड़ पर, अपने आहार की खोज में, चढ़ जाती हैं; किंतु यह ज़मीन पर की मछली उन सभी से बढ़-चढ़कर है। वैज्ञानिकों का कहना है कि पहले यह मछली केवल थोड़े समय के लिये पानी छोड़कर ज़मीन पर आती थी। क्रमशः यह उस समय को बढ़ाने लगी। अब इसको नव दिन तक पानी के बाहर रहने में भी तकलीफ़ नहीं होती। मनुष्य भी एक दिन जल-पशु थे; किंतु बहुत वर्षों के बाद—जिनका अनुमान करना मनुष्य की शक्ति के बाहर की बात है—उन्होंने मनुष्य-शरीर पाया, और वे ज़मीन पर रहने लगे। वैसे ही यह भी संभव है कि ये मछलियाँ भी विकासवाद के स्रोत में पड़कर किसी-न-किसी दिन मनुष्य या उसी का कोई प्रतिद्वंद्वी प्राणी हो जायँ। किंतु यह कहना भी कठिन है कि उस समय तक मनुष्यों का अस्तित्व इस पृथ्वी पर रहेगा या नहीं।

× × ×

५. हवा में उड़नेवाली साइकिल

ज़मीन पर चलनेवाली साइकिलें प्रायः सभी ने देखी हैं। जल पर चलनेवाली साइकिल को बने भी अभी कुछ ही दिन हुए हैं। इसी बीच में हवा म उड़नेवाली साइकिल—वायुयान की बात मैं नहीं कहता—बनाने का गौरव मि० डब्लू० एफ़० गहर्ट महाशय को प्राप्त हुआ है। यह साइकिल भी पैरों से चलाई जाती और ज़मीन से ऊपर उठकर अधर में चलती है। इस मशीन की जो प्रथम परीक्षा हुई थी, उसमें इसने ज़मीन से तीन इंच ऊपर उठकर प्रायः बीस फ़ीट की दौड़ लगाई थी। यद्यपि इस सफलता को काफ़ी नहीं कह सकते, किंतु इसके आविष्कर्ता महाशय का कहना है कि इस परीक्षा ने लोगों को यह प्रमाणित कर दिखलाया है कि ऐसी भी साइकिल बन सकती है, जो हवा में उड़े, और जिस-

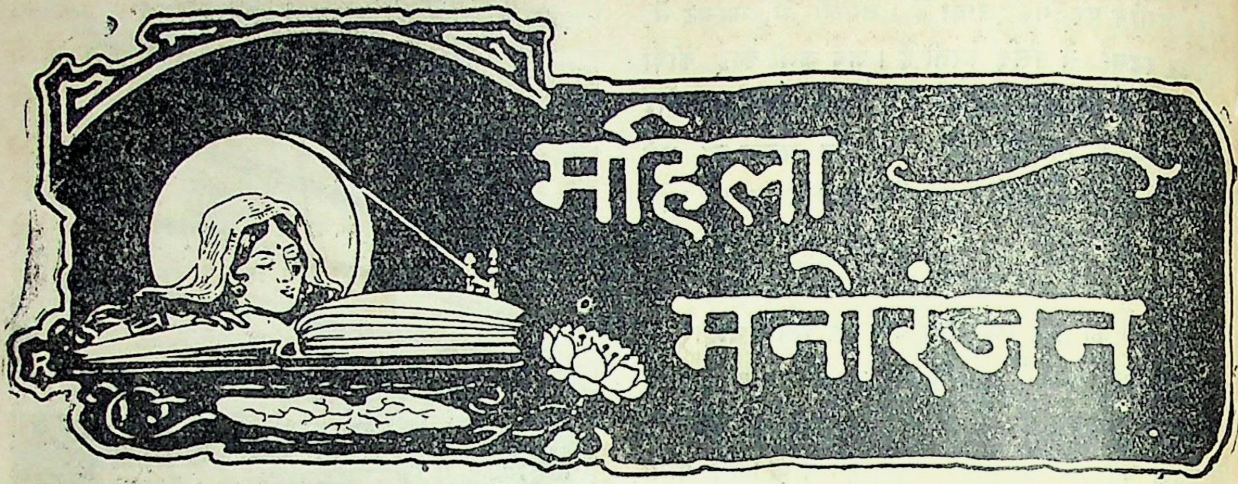


हवा में उड़नेवाली पहली साइकिल
(यह मनुष्य के पैर द्वारा चलाई जाती है)

के उड़ने के लिये मनुष्य के पैरों की शक्ति के अतिरिक्त अन्य किसी शक्ति की आवश्यकता न हो। यह साइकिल उस मशीन का पथ-प्रदर्शक है, जो थोड़ी ऊँचाई पर तेज़ी के साथ हवा में चल-फिर सकेगी। यह आकाश में उड़ने के लिये या विमानों की प्रतियोगिता करने के लिये नहीं बनाई गई है। पाश्चात्य जगत् के बड़े-बड़े शहरों में मामूली साइकिलों पर चढ़कर निकलना टेढ़ी खीर है। इसलिये एक ऐसी साइकिल या सवारी की आवश्यकता है, जो एक ही मनुष्य को शहर के एक हिस्से से दूसरे हिस्से में पहुँचा दे। 'साइकिल-प्लेन' उस सवारी की कमी को पूरी करेगी।

इसमें तीन डैने रहते हैं, जिनकी सहायता से वह हवा में उड़ सकती है। हरएक डैना दो फ़ीट चौड़ा और तीन इंच मोटा होता है। साधारण साइकिल में जैसे ज़ंजीर और पैर मारने का पैडल होता है, वैसे इसमें भी। यह साइकिल लंबी-चौड़ी भी ख़ूब है। इसकी लंबाई २० फ़ीट और उँचाई ३० फ़ीट है। जब बचपन ही में यह इतनी बड़ी है, तब बड़ी होने पर इसकी क्या अवस्था होगी! इसके प्रचार में इसका आकार ही बाधक हो सकता है।

रमेशप्रसाद



१. विधवा-विवाह

मैं विधवा-विवाह के विरुद्ध नहीं हूँ; किंतु जिस प्रकार इसका प्रचार किया जा रहा है, वह मेरी समझ में नहीं आता। मुझे तो उसका प्रचार करनेवालों के हृदयों में स्त्री-जाति की कुछ भी इज़्ज़त नहीं दिखाई देती। मुझे ऐसा मालूम होता है कि वे स्त्री को कोई ऐसी वस्तु समझते हैं, जो किसी-न-किसी पुरुष की गाँठ से बँधी रहनी चाहिए। उसे वे अपनी तरफ़ से अपने बारे में कुछ सोचने देने के वास्ते तैयार नहीं मालूम होते, न वे उसे इस क़ाबिल ही समझते हैं। वे लोग मुझे तो स्त्री की दशा सुधारनेवाले नहीं मालूम होते, बरन् उसे और भी बिगाड़ते देख पड़ते हैं।

मैं विधवा का विवाह होना बुरा नहीं समझता। यदि वह विवाह करना चाहे, तो उसे अवश्य करने दो; किंतु उसे इस लायक़ तो होने दो कि वह विवाह की अच्छाई-बुराई को समझे। दुर्भाग्य से हमारे देश में छोटी-छोटी बच्चियों का विवाह कर दिया जाता है, और फल-स्वरूप प्रतिवर्ष हज़ारों ही विधवा हो जाती हैं, विधवा-विवाह के पक्षपाती तुरंत ही उसके पुनर्विवाह का उद्योग करने लगते हैं, और बहुधा सफल भी होते हैं। पर इससे क्या फ़ायदा हुआ? उस बच्ची को कुछ ख़बर नहीं कि क्या हो रहा है। न उसे पहले यह मालूम हुआ था, और न दुबारा ही मालूम हुआ। यदि उसे पूरी युवावस्था तक पहुँचने दें, और जब वह चाहे, तब उसे विवाह करने दें, तो असल सुधार हो सकता है। किंतु कितने ही तो उसके यह दावा करते ही उसे बदमाश कहने लगेंगे। मैं सुधार का यह अर्थ नहीं मानता कि एक विधवा सधवा बना दी गई, किंतु यह अर्थ मानता हूँ कि समाज इस बात की इजाज़त दे दे कि स्त्री अपनी इच्छा से अपना इंतज़ाम करे।

इस लेख में हमें यह देखना है कि विधवा-विवाह बज़ात ख़ुद कोई सुधार है या नहीं? मैं कहूँगा कि हरगिज़ नहीं। यदि आजकल के पुनर्विवाह से स्त्री की दशा में कोई बेहतरी हो जाती, तो शायद मैं यह मानता कि वह सुधार है। मैं तो यह देखता हूँ कि विवाह कर देने से सिवा इसके कि वह एक घर के दासत्व से छूटकर किसी दूसरे के दासत्व में चली जाय, उसे और कोई लाभ नहीं होता। मनुजी भी तो उसके वास्ते यही कह गए हैं। फिर जब पहले ही विवाह में उसके वास्ते कोई सुधार नहीं है, तो दूसरे में कैसे हो सकता है?

औरत की दशा निकृष्ट है। उसके वास्ते सदा किसी-न-किसी की अधीनता बताई गई है, और शास्त्रों के इस सिद्धांत पर पूरी तरह अमल भी होता है। इस दशा को दूर करना अवश्य सुधार कहा जा सकता है। किंतु इस दशा को दूर करना तो दूर रहा, उस तरफ़ ख़याल तक न ले जाना और केवल कहीं-न-कहीं से उसे पति ढूँढ़ देना सुधार कैसे माना जा सकता है? मान लो, कोई औरत आज़ाद रहना चाहती है। क्या उसका विवाह करा देना उसकी दशा सुधारेगा?

विधवा-विवाह के पक्षपाती बड़े ज़ोर-शोर से विज्ञापन दिया करते हैं कि उन्होंने प्रतिमास इतनी विधवाओं को सधवा बनाया। यह कभी नहीं लिखते कि उनमें से एक ने भी अपनी मरज़ी ज़ाहिर की थी, या एक भी इस योग्य थी, जो विवाह के मतलब जान सके। सुधार तो वह तब हो, जब उस लड़की ने समझ-बूझकर अपनेको उस जाल में फँसाया हो। यदि वह सब बातें जानते-बूझते फँसे, तो सुधारक का कोई क़सूर नहीं। हज़ारों पुरुष अपनी ख़ुशी से अविवाहित रह जाते हैं, हज़ारों दुबारा विवाह नहीं करते; किंतु कोई सुधारक उनके वास्ते नहीं पैदा होते। स्त्री और पुरुष में ऐसा भेद क्यों किया जाता है? यदि विधवा के लिये विवाह अच्छा है, तो रँडुए के लिये भी अच्छा होगा। कोई सभा इस वास्ते भी स्थापित होनी चाहिए कि वह ढूँढ़-ढूँढ़कर रँडुओं के ब्याह करावे। यह कहना काफ़ी नहीं है कि बहुतेरे रँडुए आप ही समाज की मंज़ूरी से दूसरा, तीसरा, चौथा या दसवाँ विवाह कर लेते हैं। यदि यह भलाई का काम है, तो कुछ पुण्यात्मा सज्जनों को इसवास्ते भी उठ खड़ा होना चाहिए कि कोई पुरुष रँडुआ न रहने पावे।

सच तो यह है कि परमेश्वर उन्हीं की सहायता करता है, जो स्वयं अपनी सहायता करते हैं। पुरुष-समाज स्त्री की दशा सुधारने की चाहे कितनी ही कोशिश करे, वह अपने उन अधिकारों को, जो उसने स्त्री पर हासिल कर लिए हैं, बचाए ही रहेगा। उसने स्त्री की दशा पर बहुत तरस खाया, तो उसे किसी-न-किसी मर्द के पल्ले बाँध दिया। अगर वह विधवा हो गई, तो उसे अपना भला-बुरा सोचने का मौक़ा न देकर पुरुष की ओर से फिर कहीं जोत देने की चेष्टा होने लगी।

मेरा यह मतलब न समझा जाय कि मैं उन लोगों की नियत ख़राब समझता हूँ, जो इस 'सुधार' की कोशिश कर रहे हैं। मेरी राय यह है कि वे स्वयं जिस बात को सुधार समझते हैं वह सुधार नहीं है, वह तो स्त्री के हृदय पर और भी पुरुष की श्रेष्ठता का सिक्का जमाना है। वे उसे इस बात का विश्वास दिलाते हैं कि वह किसी-न-किसी की अर्धांगिनी बनकर ही इज़्ज़त से जीवन व्यतीत कर सकती है। यों स्त्री-जाति वह हज़ारों वर्ष से इस बात का सबक़ पढ़ती आई है, अब उसी सबक़ को दूसरे शब्दों में दुहराना क्या ठीक है?

मैं तो सच्चा सुधार तब समझूँगा, जब इस बात का ज़िक्र ही उठ जायगा कि स्त्री के वास्ते ख़ास बात किसी ख़ास तरह की हो। जब वह कुल बातें उसी तरह कर सकेगी, जैसे पुरुष कर सकता है, जब लोग यह न कहेंगे कि फ़लानी बात—जो पुरुष के वास्ते बुरी नहीं—स्त्री के वास्ते बुरी है, तभी सुधार होगा। विना इसके एक दफ़े नहीं, दस दफ़े स्त्री का विवाह कर दो, कोई सुधार न होगा।

मोहनलाल नेहरू

× × ×

२. बच्चों के प्रति मा-बाप के कर्तव्य

बच्चे राष्ट्र (अपने देश) की नींव होते हैं। उनके पालन-पोषण पर यह निर्भर है कि वे भविष्य में राष्ट्र को बनावेंगे या बिगाड़ेंगे। प्रकृति ने बच्चों के पालन-पोषण का भार माता पर डाला है, इसलिये हरएक माता को अपना धर्म समझकर अपने बच्चों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए, जिससे वे अपने राष्ट्र को चमकाने-वाले रत्न निकलें। योरप में इस तरफ़ अर्से से ध्यान दिया जा रहा है। पर भारत में इस ख़याल की बहुत कमी है। योरप में बड़े-बड़े विद्वान् इस कोशिश में रहते हैं कि बच्चों को शिक्षा देने के नए-नए अच्छे तरीक़े निकाल-कर जनता के सामने रक्खे जायँ, जिसमें देश की माताएँ और अध्यापक उन्हीं नियमों से बच्चों को शिक्षा देकर उनके दिमाग़ रौशन करें। आजकल हिंदी के पत्रों और पत्रिकाओं में योरप की सभ्यता और रीतियों की बुराई बहुत पढ़ने में आती हैं। हर देश या समाज की सभ्यता और हर देश की रीतियों में बुराई और अच्छाई, दोनों ही पाई जाती हैं। इसके सिवा किसी वस्तु की हर वक़्त बुराई गाते रहने से हानि यह होती है कि उसके गुण भी दोष जान पड़ने लगते हैं। इससे तो यह अधिक अच्छा हो कि लेखक लोग अन्य सभ्यताओं की अच्छाइयाँ दिखाकर अपने लोगों को उन्हें अपनाने का उपदेश दें। यदि हमारी माताएँ भी योरप और अमेरिका की माताओं के समान अपने बच्चों की देख-भाल करें, उनके स्वास्थ्य और शिक्षा की ओर ध्यान दें, तो हमारे बच्चे भी किसी बात में किसी अन्य देश के बच्चों से कम न पाए जायँ।

संतान का उत्पन्न होना प्रकृति का एक अटल नियम

है । इसलिये प्रकृति यह कहती है कि बच्चे के जन्म लेने से माता के स्वास्थ्य और शरीर में कोई अंतर न आना चाहिए । परंतु हमारी रहन-सहन इतनी ख़राब हो गई है कि कम-से-कम हिंदोस्तान में शिशु का जन्म लेना क्या है, उसके और उसकी माता के लिये प्राण-घातक नहीं, तो स्वास्थ्य-नाशक अवश्य है । इसके कई कारण हैं । एक तो माता, परदे के कठोर बंधन में रहने और गंदी हवा तथा असार आधे पेट आहार ग्रहण करने के कारण, पहले ही से अस्वस्थ होती है । उस पर बच्चा जनवाने के लिये बिलकुल अनपढ़, अधकचरी दाइयाँ बुलाई जाती हैं । वे शारीरक (मनुष्य के अंग-प्रत्यंगों की स्थिति का ज्ञान) तथा और-और अंदरूनी बातों (physiology) के बारे में एक शब्द नहीं जानतीं, केवल दस-बारह ज़च्चाओं को देखकर ही दाई बन बैठती हैं । फल यह होता है कि कमज़ोरी की हालत में वे प्रसूति की उचित सेवा-टहल नहीं कर सकतीं, और इस प्रकार उसका रहा-सहा स्वास्थ्य भी बिगाड़ जाती हैं । सच कहा है—"नीम हकीम ख़तरए जान ।" बालक जनवाने के लिये पढ़ी-लिखी चतुर दाइयों की आवश्यकता है, जो अपने काम में काफ़ी होशियार और तजुर्बेकार हों, जो बिगड़ा हुआ मामला समय पर सँभाल सकें ; ऐसी नहीं कि उनको अच्छी-बुरी अवस्था समझने का भी शऊर न हो । विलायत में, माताओं के आराम के लिये, जगह-जगह पर maternity homes खोल दिए गए हैं । वहाँ बड़े-बड़े अच्छे डॉक्टर और परीक्षा-पास दाइयाँ नौकर रक्खी जाती हैं, जो अपने काम में बहुत होशियार होती हैं । बच्चा पैदा होने के बाद अगर ज़च्चा की ठीक सेवा न हो, तो उसका शरीर फैलकर बिलकुल भद्दा हो जाता है । भीतरी रोग अलग उत्पन्न हो जाते हैं । इसी कारण भारतीय स्त्रियों में अधिकतर देखा जाता है कि दो बच्चे होने के बाद ही उन पर बुढ़ापा सवार मालूम होने लगता है । उधर अँगरेज़ लेडियाँ कई-कई बालकों की मा होने पर भी वैसी ही हृष्ट-पुष्ट बनी रहती हैं, जैसे पहले थीं । माताओं को अपनी तंदुरुस्ती का बड़ा ख़याल रखना चाहिए ; क्योंकि उन्हें बालकों के पालन-पोषण की बड़ी भारी ज़िम्मेदारी पूरी करनी है । याद रहे, रोगी आदमी इतनी बड़ी ज़िम्मेदारी उठा नहीं सकता ।

बच्चे के पैदा होते ही उसके स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना चाहिए । इसके चार उपाय हैं । सफ़ाई, स्वच्छ वायु, उचित खाना और उचित सोना । थोड़े दिन तक तो माता इस योग्य नहीं होती कि बच्चे की देख-भाल कर सके । बच्चा अधिकतर दाई ही के हाथ में रहता है । इसलिये और भी आवश्यक है कि दाई होशियार हो, मूर्ख नहीं । अधिकतर ऐसा देखा जाता है कि बालक को सौर के नहान नहला दिए जाते हैं, फिर उसके नहलाने की कुछ चिंता नहीं रहती । यदि गरमी हुई, तो पाँच-छः दिन बाद नहला दिया । यदि सरदी हुई, तो महीनों की छुट्टी हो गई । गंदगी रोग का घर है । जैसे बड़े आदमी को बिना नहाए आलस घेरे रहता है, तबियत गिरी-सी रहती है, वैसे ही—ख़ासकर गरमी में—बच्चे की दशा होती है । गिरी हुई तबियत रोग को शीघ्र बुलाती है । बच्चे को नित्य स्नान कराना चाहिए, जब तक उसे कोई ऐसी ख़ास बीमारी न हो, जिसमें डॉक्टर नहलाने को मना करे । यदि गरमियाँ हुईं, तो धूप-चढ़े ठंडे पानी से बच्चे को स्नान कराकर कपड़े बदल दिए जायँ, तो उसकी तबियत हरी हो जाती है । शीत-ऋतु में बच्चे को दोपहर के समय गुनगुने पानी से नहलाना उचित है । माताएँ नियम-पूर्वक बच्चों को नित्य स्नान करावें ; फिर देखें, वे कैसे हृष्ट-पुष्ट होते हैं । बच्चों के कपड़े बिलकुल ढीले होने चाहिए, जिसमें पहनाते समय हाथ-पैर खींचने न पड़ें, कपड़े आसानी से चढ़ जायँ । सरदी में छाती ढकने का ख़याल रहे ; मगर सिर ज़्यादा ढकने की आवश्यकता नहीं है । हिंदोस्तानी माताएँ चाहे बच्चे का बदन नंगा रक्खें, परंतु सिर पर कंटोप ज़रूर चढ़ा देती हैं, और सरदियों-भर चढ़ाए रखती हैं । यह बहुत बुरी आदत है । इसका परिणाम यह होता है कि जहाँ बच्चे का सिर खुला, उसे सरदी लग जाती है । यह बचपन की आदत सदा सताती है । सयाने होने पर ऐसे मनुष्य को बिलकुल सरदी की बरदाश्त नहीं होती । साल-भर तक बच्चे को कंटोप पहनाने में कोई डर नहीं है ; पर हर वक़्त नहीं, केवल सुबह और शाम को, ठंडक के वक़्त । यदि बच्चा बहुत ही दुर्बल हो, तो रात को भी पहना देना चाहिए । परंतु धूप चढ़ने के बाद सिर खोल देना ही अच्छा है । साल-भर से बड़े बच्चे को कंटोप के बदले टोपी पहनानी चाहिए—वह भी केवल सुबह-शाम, अधिक ठंडक के समय । गरमियों में सिर खुला ठीक

होता है। अगर हैसियत हो, तो सरदी में बच्चे को मोज़े, जूते अवश्य पहनाने चाहिए। पैरों से ही ठंड चढ़ती है। बहुत-सी माताएँ अँगरेज़ी बच्चों की नक़ल करके अपने बच्चों के लिये फ्रौक सीती हैं। उन्हें ठीक तरह से सीना तो आता नहीं, बहुत ही भद्दे सीकर पहना देती हैं, जो देखनेवाले को भी बुरे मालूम होते हैं। कौआ चला हंस की चाल, अपनी चाल भी भूल गया। बजाय अँगरेज़ी कपड़ों की नक़ल करने के सीधी तरह कुर्ता, पाजामा या धोती पहनाई जाय, तो बच्चा कहीं सुंदर लगे। हमारी माताओं को बच्चे की सुंदरता की पहचान नहीं होती। हो भी कैसे? उन्हें यह डर लगा रहता है कि हमारा बच्चा सुंदर लगेगा, तो उसे नज़र लग जायगी। यह बात केवल अपने दिल की है। आख़िर अँगरेज़ों के बच्चों को नज़र क्यों नहीं लगती? बालक तो सब बालक ही हैं। अँगरेज़-माताएँ अपने बच्चों को ऐसा साफ़ व सुंदर रखती हैं कि अगर नज़र लगनी चाहिए, तो उन्हीं के बच्चों को। इसी से विदित होता है कि नज़र केवल ख़्याल-ही-ख़्याल है, असल में कुछ नहीं। हमारी बहनों को चाहिए कि वे भी अपने बच्चों को साफ़ रक्खें। किसी की नक़ल न करके उन्हें सुंदर-सुंदर, शरीर पर खिलनेवाले, परंतु सादे देसी कपड़े पहनावें। गोटा-चमकी उतनी नहीं खिलती, जितने कि सादे या रंगीन मामूली कपड़े। फिर देखनेवाले भी कहेंगे कि हमारा देश कैसा भाग्यवान् है, जिसमें ऐसे सुंदर बच्चे देख पड़ते हैं।

अधिकतर भारतवासी शहरों के बीच रहते हैं, जहाँ की वायु बहुत गंदी और हानिकारक होती है। पुरुष तो संध्या के समय बाहर चले जाते हैं, स्वच्छ वायु में घूम-फिर आते हैं; पर बेचारी स्त्रियाँ और छोटे बालक चौबीसों घंटे उसी घर में बंद रहकर रोगी हो जाते हैं। स्त्रियों के साथ जो यह अन्याय होता है, उसके बारे में कुछ कहना यहाँ पर उचित नहीं; क्योंकि वह दूसरा ही विषय है। परंतु इतना अवश्य कहूँगी कि कम-से-कम बच्चों को तो संध्या के समय स्वच्छ वायु-सेवन के लिये अच्छे खुलासा स्थान में टहलने को भेज देना परम आवश्यक है। नौकर जहाँ हैं, वहाँ तो नौकर के साथ बच्चे जा सकते हैं; परंतु जहाँ नौकर नहीं हैं, वहाँ पिता को स्वयं अपने साथ बच्चे के तईं ले जाना चाहिए। लोग इस पर चौंकेंगे, मगर क्या पुरुषों का कार्य केवल बच्चे पैदा करना ही है? उन बच्चों के प्रति क्या उनकी कुछ ज़िम्मेदारी या कर्तव्य नहीं है। ज़रा ख़ुदग़र्ज़ी कम करके इस बात को पुरुष सोचें, तो आप उनकी समझ में आ जायगा कि जिन बच्चों को उन्होंने उत्पन्न किया है, उनकी शारीरिक और मानसिक उन्नति में हाथ बटाना उनका कर्तव्य है। इसलिये पुरुषों को यह नियम कर लेना चाहिए कि यदि और कोई न हुआ, तो वे स्वयं बच्चों को स्वच्छ वायु-सेवन करवा लाया करेंगे। या फिर स्त्रियों का परदा हटा दें, जिसमें वे अपने और अपने बच्चों के स्वास्थ्य की रक्षा आप ही कर सकें। इन दो बातों के अलावा बच्चों की तंदुरुस्ती ठीक रखने का तीसरा रास्ता नहीं मिलेगा। इससे यह एक लाभ और होगा कि दिन-भर गृह-कार्यों के करने और बच्चों को खिलाने से थकी हुई माता आराम करने का अवकाश पावेगी, और बच्चे पिता से हिल जायँगे। पिता के अलग-अलग रहने और गृह-कार्यों में मदद न देने से बच्चों के हृदय में उसके प्रति प्रेम कम और भय का भाव अधिक होता है।

अब बच्चों के भोजन को लीजिए। साल-भर तक उनका आहार दूध ही होता है, वह चाहे माता का हो, चाहे ऊपर का। लोग कहते हैं, मा का दूध बच्चे को नुक़सान नहीं करता। हाँ, तभी तक नहीं करता, जब तक आवश्यकता से अधिक न दिया जाय। हिंदोस्तानी माताओं की आदत होती है कि वे हर समय बच्चे को दूध पिलाती रहती हैं, चाहे उसका पेट भरा भी हो। बच्चे का कोमल मेदा ज़रूरत से ज़्यादा दूध नहीं पचा सकता, और प्रायः बच्चों को अपच का रोग सताए रहता है। बच्चे को समय नियत करके दूध देना चाहिए। एक महीने तक तो एक-एक घंटे-भर में दे, फिर दो-दो घंटे में। जब बच्चा पाँच महीने का हो जाय, तब तीन-तीन घंटे पर दे, और ग्यारहवाँ महीना लगते ही चार-चार घंटे पर देना शुरू कर दे। बीच में बच्चा रोवे, तो उसके रोने का कारण खोजना चाहिए, न कि दूध देकर चुप करने की चेष्टा करे। बाज़ समय बच्चे को बीच में भी भूख लग आती है। तब दूध देने में कोई हानि नहीं। माता को इस बात की पहचान होनी चाहिए कि बच्चा भूख से रो रहा है, या किसी और कारण से। भूख का रोना एक ख़ास क़िस्म का होता है,

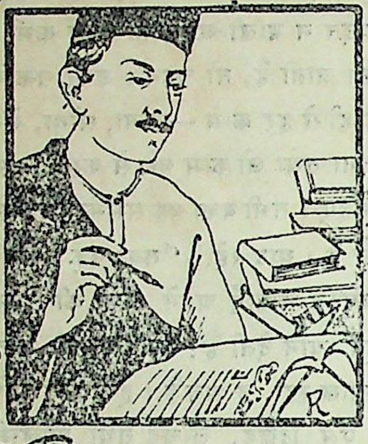
जिसे हरएक माता ज़रा-ध्यान देकर आसानी से पहचान सकती है । मा का दूध तो रात में भी दिया जाता है, पर यदि ऊपर का दूध मिलता हो, तो रात को न देना चाहिए । अगर बहुत छोटा बच्चा हो, तो ग्यारह बजे उठकर पिला दिया, फिर पाँच बजे सबेरे दिया । ९-१० महीने के बच्चे को दस बजे पिला दिया, फिर सुबह तड़के दिया । अगर बच्चा हृष्ट-पुष्ट हो, तो दसवें महीने से ज़रा-सा दाल का पानी देना शुरू करना चाहिए, वर्ना साल-भर तक अन्न न देना चाहिए । ज़्यादा अन्न खिलाने से बच्चे का पेट निकल आता है । शुरू-शुरू में जब अन्न दिया जाय, तब मा को अपना दूध कम कर देना चाहिए । हलके-हलके अन्न बढ़ाते जाओ, और दूध कम करती रहो । सवा बरस—हद डेढ़ बरस—में बच्चे से मा का दूध छुड़ा देना चाहिए । कारण, जब बच्चा नाज खाने लगता है, तब उसे मा के दूध की आवश्यकता नहीं रहती । बड़े बच्चे को दूध पिलाने से मा की ताक़त पर बुरा असर पड़ता है । माता को यह कभी न भूलना चाहिए कि उसका पहला कर्तव्य अपनी तंदुरुस्ती बनाए रखना है । उसे बड़ी ज़िम्मेदारी पूरी करनी है । यदि वह अपनेको निर्बल बना लेगी, तो बच्चों का पालन-पोषण करना कठिन हो जायगा । शुरू-शुरू में सूजी या रवा बालक के लिये बहुत अच्छा होता है । सूजी के बिस्कुट या मठरी बना ले, या बग़ैर घी के सूजी को धीमी-धीमी आँच पर भूनकर सुर्ख़ कर ले, फिर आधी शक्कर मिलावे, और एक छोटे चमचे-भर सूजी का हलवा-सा बनावे । उसे दूध में गहरा-गहरा घोलकर या वैसे ही देने से फ़ायदा होता है । बाज़ बच्चों के दाँत सवा साल या डेढ़ साल तक नहीं निकलते । जब तक दाँत न निकलें, यथासंभव नाज न देना चाहिए । या दे, तो बहुत कम । जब तक कम-से-कम चार दाँत अच्छी तरह न निकल आवें, चावल कभी न दो । मा का दूध छुड़ाने के बाद भी ऊपर का दूध अवश्य देना चाहिए । दो वर्ष की उम्र तक तो दूध ज़्यादा और नाज बिलकुल कम मिलना ठीक है । बच्चे के भोजन के संबंध में एक बात बहुत आवश्यक है । कभी बच्चे को बेवक़्त भोजन न दे । जब बच्चा खाने लगता है, तब माताओं की आदत होती है कि उसे हर वक़्त एक टुकड़ा पकड़ा दिया करती हैं । इससे वह कँगला हो जाता है, हर समय खाने ही में उसका ध्यान लगा रहता है । इससे स्वास्थ्य अलग बिगड़ जाता है । बच्चे को चार-पाँच बार भोजन मिलना चाहिए ; पर वह हो हलका, और जल्द पचनेवाला । आवश्यकता से अधिक सामग्री न हो, और बँधे हुए समय पर दी जाय, तो बच्चा ख़ूब तंदुरुस्त रहेगा । गद्द आहार और मिठाई वग़ैरह बच्चों को न देनी चाहिए । उसके लिये गाय का दूध और थोड़ी-सी खिचड़ी दाल-चावल, सूजी के बिस्कुट, सूजी का हलवा, फलों का रस, ऐसी हलकी-हलकी, जल्दी पचनेवाली चीज़ें लाभदायक होती हैं ।

अंत में बच्चों के सुलाने के बारे में भी कुछ—बहुत थोड़ा—कहना है । बच्चे को अलग खाट पर सुलाना चाहिए । साथ सुलाना स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है । मनुष्य की साँस द्वारा जो वायु शरीर में से निकलती है, वह गंदी और नुक़सान पहुँचानेवाली गैस को साथ लिए रहती है । साथ सुलाने से बच्चे और माता की साँस से साँस मिलती है, और दोनों की हानिकारक गैसें फिर दोनों के शरीरों में चली जाती हैं । अलग-अलग सोने से गंदी गैसें कमरे की स्वच्छ वायु में मिलकर फिर साफ़ हो जाती हैं, और हानि नहीं पहुँचा सकतीं । दिन को थोड़ी देर—दो-ढाई घंटे—अवश्य सुलाना चाहिए । बढ़ती हुई उम्र में बच्चों को यदि काफ़ी आराम नहीं दी जाती, तो वह पनपने नहीं पाता, कमज़ोर हो जाता है । यदि दिन को सुलाने की आदत डाल दी जाय, तो बच्चे को आप ही उस समय पर नींद आने लगती है । जब हम अँगरेज़ बच्चों से अपने बच्चों का मुक़ाबला करती हैं, तो बहुत शोक के साथ कहना पड़ता है कि हमारे बच्चे हर बात में उनसे हीन देख पड़ते हैं । अज्ञान के कारण हमारे यहाँ बुरी रीतियाँ जड़ पकड़ गई हैं, रहन-सहन के नियम इतने ख़राब हो गए हैं । उनसे हमारी माताओं और बालकों को हानि पहुँचती है । यदि इन दो-चार स्थूल नियमों पर, जो ऊपर कहे गए हैं, अमल किया जाय, तो थोड़े ही दिनों में माताओं को अपने बच्चों के स्वास्थ्य में बहुत बड़ा परिवर्तन देख पड़ने लगे ।

बच्चे के जन्म लेते ही उसकी शिक्षा शुरू हो जाती है । वह जो देखता है, वही सीख लेता है । माता-पिता ही को वह अधिकतर देखता और उन्हीं से पहली शिक्षा प्राप्त करता है । माता-पिता को इस बात का ध्यान रख-

कर उसे अच्छी आदतें सिखानी चाहिए। मुँह से कह-भर देने से उतना लाभ नहीं होता, जितना खुद आदर्श या उदाहरण बनकर दिखाने से। जो बात बुरी समझो, वह बच्चों के सामने कभी न करो। झूठ भूले से भी—हँसी में, या बहकाने के लिये—कभी न बोलना चाहिए। हमेशा नहीं, तो एक-न-एक बार बच्चा बात को पकड़ लेगा, और यह समझकर कि मेरे मा-बाप झूठ बोलने में कोई दोष नहीं समझते, तो यह अच्छी बात होगी, आप भी झूठ बोलने लगेगा। बच्चे को प्यार से समझाकर बुरी आदत छुड़ानी चाहिए। मारने-पीटने से वह हठी हो जाता है, और चाहे उस समय डर के मारे वह बुरा काम न करे, बाद को—जब मार का डर निकल जायगा—फिर वही बात करने लगेगा। मगर जो साफ़-साफ़ समझाकर उसे उस बात की बुराइयाँ दिखा दी जायँ, तो वह आप उसे छोड़ देगा। बच्चे को शिक्षा देना बड़े धर्म का काम है। बच्चे को डराना-धमकाना बहुत बुरा है। वह सदा के लिये उसे कायर बना देता है। बालक को समय की पाबंदी का अंदाज़ अवश्य दिलाना चाहिए। बचपन में यह आदत न डाली जाय, तो फिर कभी नहीं पड़ती। यदि डाली जाती है, तो चढ़ती उमर तक साथ रहती है। बचपन ही से हर काम—खाना, सोना, खेलना उठना, बैठना, पढ़ना तथा जो काम बच्चे से करावे—समय बाँधकर कराना चाहिए। तभी बच्चा यह समझेगा कि समय कैसी अमूल्य वस्तु है। याद रहे, "गया वक़्त फिर हाथ आता नहीं।" अँगरेज़-माताएँ अपने बच्चों की शिक्षा में इस बात पर बहुत ध्यान देती हैं; मगर हमारी माताओं को न कभी यह ख़याल रहा, न अब है। इसीलिये अधिकतर भारतवासी ऐसे ढिल्लड़, लीचड़ तथा आलसी हो रहे हैं, समय का मूल्य बिलकुल नहीं जानते।

रूपकुमारी वाँचू



पुस्तक-परिचय

१. शारीरक और चिकित्सा

जननी और शिशु—लेखक, श्रीयुत बा० सूरजभान-(?)जी वकील। आकार मँझोला। छपाई-सफ़ाई, कागज़ उत्तम। पृ० सं० ११७; मूल्य दस आने। प्राप्तिस्थान हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग़, बंबई।

इसमें गर्भ, गर्भिणी, प्रसूता और शिशु के विषय में साधारण ज्ञातव्य बातों का अच्छा सन्निवेश किया है। भाषा सरल, सुबोध है। पुस्तक सर्वसाधारण—विशेषतः स्त्रियों—के लिये उपयोगी है। कुछ बातें इसमें आयुर्वेद से विरुद्ध भी हैं, जैसे 'मासिकधर्म हो चुकने पर सात-आठ दिन तक ही गर्भ रह सकता है'—परंतु ये नगण्य हैं।

× × ×

निघंटु तथा शरीर-रचना—लेखक और प्रकाशक, डॉक्टर केदारनाथ शर्मा वैद्य, कानपुर। आकार मँझोला। सफ़ाई-छपाई आदि उत्तम। पृ० सं० ९६।

इसमें उक्त डॉक्टर-वैद्यजी का कहना है कि उन्होंने कुछ हिंदुस्तानी दवाओं के टिंक्चर होम्योपैथी ढंग से बनाए हैं। उनकी शक्तियों की कल्पना भी आपने उसी तरह की है, जैसे होम्योपैथिक दवाइयों की डिग्रियाँ होती हैं। देने का ढंग भी वही—पानी में १-१ बूँद या Sugar of milk में। आपने अभी थोड़ी ही शक्तियाँ इकट्ठी की हैं। इसमें अडूसा, अर्जुन, अजमोद, अजवाइन आदि ४४ द्रव्यों के गुण भी आपने लिखे हैं। परंतु यह बताने की कृपा नहीं की कि इन शक्तियों की कल्पना किस आधार पर की गई है, और इन द्रव्यों का संग्रह करते समय कौन-सी बात दृष्टि में रक्खी गई है। हम यह नहीं चाहते कि टिंक्चर बनाने की अपनी नवाविष्कृत विद्या को बताकर आप आर्थिक हानि उठावें। हमारा निवेदन तो यही है कि भारतवर्ष में अभी इस ढंग पर श्रद्धा-विश्वास उत्पन्न कराने की आवश्यकता है। आपको कोई ऐसा उपाय अवश्य बताना चाहिए था, जिससे आपकी बातों पर लोग विश्वास कर सकते। आतुर रोगी चाहे विना विशेष विचार के किसी बात की ओर झुक पड़ें, परंतु चिकित्सक-समुदाय और शिक्षित जनता विना उपपत्ति के कोई बात कैसे स्वीकार करेगी?

× × ×

जीवन-विज्ञान—लेखक, "डॉ० शंभूदयाल (?) मिश्र बी० एस्-सी०, एम्० बी० बी० एस्०—", इटावा। आकार छोटा। छपाई-सफ़ाई साधारण। पृ० सं० १८१; मूल्य सवा रुपया। लेखक से प्राप्य।

इसमें डॉक्टरी रीति पर शरीर की रचना का संक्षिप्त, किंतु सुंदर वर्णन है। भोजन के गुण और स्वास्थ्य-रक्षा-संबंधी वर्णन भी है। पुस्तक योग्यता-पूर्वक लिखी गई है। सर्वसाधारण के पढ़ने और संग्रह करने योग्य है। मूल्य यदि कुछ कम होता, तो अच्छा था।

× × ×

स्वरोदय-विज्ञान—लेखक, श्री'सरस्वती सहोदर'जी प्रकाशक, ऋषि-मंडल कार्यालय, अमरावती (बरार)।

संस्कृत में स्वर-विज्ञान (श्वास-प्रश्वास) के संबंध में कई पुस्तकें मिलती हैं। उन्हीं के आधार पर हिंदी में इसकी रचना हुई है। जहाँ-तहाँ मूल श्लोक भी दिए हैं। लेखक का कहना है कि इसमें "स्वरोदय-शास्त्र के द्वारा अनेक रोग नष्ट करने का, शुभाशुभ, हानि-लाभ इत्यादि जानने का आश्चर्य-युक्त प्रामाणिक और सरल उपाय वर्णित है।' जिन्हें अवकाश हो, वे इसका अनुभव कर देखें। इसका आकार छोटा, छपाई, सफ़ाई, और कागज़ उत्तम है। पृ० सं० ७४। मूल्य १) रु० अधिक है।

शालग्राम शास्त्री

× × ×

२. धर्म

ओंकार-जपविधिः—लेखक, मुक्तारामात्मज शिवदत्त शर्मा। प्रकाशक, उपयोगी ग्रंथ-भंडार, गुदड़ीबाज़ार, उज्जैन। पृष्ठ-संख्या ३५; मू० ।); छपाई-सफ़ाई उत्तम।

इस पुस्तिका में लेखक ने बड़ी उत्तमता से ओंकार-जप-विधि को—थोड़े-से चुने हुए शब्दों में—खोल दिया है। वेद, उपनिषत्, पुराण और गीता के प्रमाण देकर प्राणा-याम आदि प्रत्येक विषय का महत्त्व दिखला दिया है। इसमें लिखी हुई सब बातें सुगम और वास्तविक हैं, प्रत्येक आत्मोन्नति-प्रेमी के लिये मनन और कार्य-रूप में परिणत करने योग्य हैं। अवश्य पढ़ना चाहिए।

× × ×

तंत्रकौमुदी, अर्थात् तंत्रशास्त्र पर संक्षिप्त विचार—लेखक, श्रीठाकुर व्रजमोहनसिंह बी० ए०, बैरिस्टर ऐट-ला, विजयराघवगढ़ (मध्य-प्रदेश)। प्रकाशक, लक्ष्मण-साहित्य-मंडार, लखनऊ। पृष्ठ-संख्या २३; मूल्य ।।); प्रकाशक से प्राप्य। कागज़, अक्षर उत्तम।

लेखक महोदय ने यह छोटी-सी, परंतु बड़े ही महत्त्व की, पुस्तिका हमारे प्राचीन तंत्र-शास्त्र पर, बहुत गंभीर और सूक्ष्म विचारों का आश्रयण करके लिखी है। इसके आदि में चौदह पृष्ठों की आलोचना-पूर्ण भूमिका भी है, जिसे पढ़ने से तंत्र-शास्त्र के गौरव, महत्त्व और उसके वास्तविक उद्देशों का यथार्थ पता चलता है। सच तो यह है कि लेखक महोदय ने इस शास्त्र की जो मौलिक बातें लिखी हैं, उनको समझनेवाले ही समझ सकते हैं। इस शास्त्र के व्यापक स्वरूप का ज्ञान, मेरे विचार से, इने-गिने तांत्रिकों को ही संभवतः होगा, दुरभिमानियों को नहीं। इधर समय के परिवर्तन से विपक्षियों का विषम कुठाराघात चिरकाल से चला ही आता है। उसने सब सत्यानाश करके परम पवित्र दिव्य ज्ञान का दीपक ही बुझा दिया है। उस मार्ग के पथिक ही न रह गए—कौन खोज करे, और कौन उनका पथ-प्रदर्शक हो?

मैं प्रत्येक दार्शनिक, तांत्रिक और विज्ञान के अनन्य भक्त से अनुरोध करता हूँ कि वह इस तंत्रकौमुदी की कौमुदी से अपना अंतःकरण शुद्ध करने का प्रयत्न करे। साथ ही अपने पूज्य ऋषि-मुनियों की असीम ज्ञान-गरिमा का अनुभव करके कृतार्थ हो।

× × ×

सरल भगवद्गीता—अनुवादक, बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री। प्रकाशक, सिद्धेश्वर-स्टीम-प्रेस, बनारस। पृष्ठ-संख्या १८५; मूल्य १) है।

यह भगवद्गीता का सरल, सुबोध हिंदी-अनुवाद है। पत्राकार पुराने ढंग की चौपती पोथी है। श्लोकों की संख्या-मात्र देकर केवल अर्थ लिखा है। आदि में तीन पृष्ठ की प्रस्तावना भी जोड़ दी गई है, जिसको पढ़ने से मालूम होता है कि अनुवादक के पूज्य पिता—बाबू गोपाललालजी—८१ वर्ष की अवस्था में आपको गीता पढ़ने की आज्ञा देकर स्वर्गवासी हुए थे। अनुवादक का पूरा नाम और पता है—अयोध्याप्रसाद खत्री, उपनाम रसिकलाल भंडारी, मुज़फ़्फ़रपुर।

× × ×

श्रीइष्टोपदेश टीका—संपादक, जैनधर्मभूषण, ब्रह्मचारी शीतलाप्रसादजी। लखनऊ-निवासी लाला बरातीलालजी की ओर से उनके पूज्य पिता लाला दामोदरदासजी के स्मरणार्थ 'जैनमित्र' के २३वें वर्ष के ग्राहकों को भेंट। स्कूली साइज़। पृष्ठ-संख्या २५६। छपाई, कागज़ उत्तम। मूल्य १।) है। मिलने का पता—मैनेजर, दिगंबर-जैन-पुस्तकालय, सूरत।

जैनियों में कोई पूज्यपाद स्वामी हुए हैं। उन्होंने जैन-वेदांत पर संस्कृत के अनुष्टुप्-छंद में 'इष्टोपदेश'-नामक ग्रंथ की रचना की है। प्रस्तुत ग्रंथ उसी की हिंदी-टीका है। इसमें उत्थानिका, सामान्यार्थ, विशेषार्थ, भावार्थ और बीच में दोहा आदि प्रमाण-स्वरूप देकर खूब विस्तार से जैन-सम्मत आध्यात्मिक विषयों का विवरण दिया है। दर्शन-प्रेमियों के पढ़ने योग्य है। ग्रंथ के आदि में श्रीमान् लाला बरातीलालजी का फ़ोटो भी है। भूमिका

में आपके स्वर्गीय पिता लाला दामोदरदासजी की जीवनी और उनके प्रसिद्ध महाजनी कार्यों का परिचय भी है। आप लखनऊ के प्रसिद्ध श्रीमानों में परिगणित हैं।

× × ×

सप्तखंडी-जाति-निर्णय (प्रथम भाग)—रचयिता और प्रकाशक, जाति-अन्वेषण-कर्ता श्रोत्रिय पंडित छोटेलाल शर्मा, महामंत्री हिंदू धर्म-वर्ण-व्यवस्था-मंडल, फुलेरा, जिला जयपुर। पृष्ठ-संख्या १८२। छपाई और कागज़ साधारण। मूल्य १॥)

इस पुस्तक के कर्ता श्रोत्रियजी ने जब से 'जाति-अन्वेषण'-नामक ग्रंथ को उत्तम रीति और व्यवस्था से प्रकाशित किया है, तब से आपका नाम धार्मिक संस्थाओं में भली भाँति सुप्रसिद्ध है। आपने इस ग्रंथ में जो लिखा है, उसका खुलासा आप ही के शब्दों में इस प्रकार है—'वर्णव्यवस्था कमीशन के २४१ प्रश्न तथा नाई-जाति-वर्ण-निर्णय का अपूर्व संग्रह, नाई-जाति के ब्राह्मण बनने की नवीन चाल का खंडन, तथा शूद्रत्व-मंडन, हिंदू-जाति के अपमान का प्रत्युत्तर, नाइयों की 'ब्राह्मणों को गालियों का समाधान तथा नाई-छल-रूपट का ख़ाका है।' समय का विचित्र परिवर्तन है। अभी न-मालूम क्या-क्या अचिंतित कार्य हों। समझ में नहीं आता कि सब ब्राह्मण बनकर वैदिक ऋषि किंवा शाखा-प्रवर्तक होना चाहते हैं, या होता, अध्वर्यु, उद्गाता आदि पदवियों के भूखे हैं, अथवा स्मृतियों और पुराणों का नवीन संस्करण करके उन्हें परिमार्जित रूप देना चाहते हैं, किंवा वेदव्यास की गद्दी पर बैठकर सर्व-साधारण को भागवतामृत पिलाकर अजरामर करना चाहते हैं? जो हो, कहना यही पड़ता है कि हमारी धार्मिक संस्थाओं की शृंखला, प्रतिवर्ष नवीन आंदोलनों के होते हुए भी, शिथिल रूप ही धारण किए हुए है। जो चाहता है, ज़रा-सी बात में उसको इधर-उधर लुढ़का देता है। उसके लिये तो 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्', यह गीता-वचन ही सांप्रत में चरितार्थ हो रहा है। त्रायस्व भगवन्!

गिरिजाप्रसाद द्विवेदी

× × ×

३. उपन्यास

अहंकार—फ्रांस के प्रसिद्ध उपन्यासकार 'एनाटोली फ्रांस' की 'थायस'-नामक पुस्तक का अनुवाद। अनुवादक, श्रीप्रेमचंद। सुलभ साहित्य-सीरीज़ की संख्या ४। प्रकाशक, हिंदी-पुस्तक-भवन, १८१ हरीसन रोड, कलकत्ता। छपाई, कागज़ साधारण। पृष्ठ-संख्या १२+२२६। मूल्य ॥)

आधुनिक योरप का साहित्य बड़ी उन्नत अवस्था में है। परंतु उस साहित्य को अपनाने के लिये हिंदी-लेखक पूर्णतया सचेष्ट नहीं हैं। बहुधा हिंदी-लेखकों की दौड़ बँगला-साहित्य तक है। इसके कारण हो सकते हैं, और हम उच्च कोटि की बँगला-पुस्तकों के अनुवादों का स्वागत भी करते हैं। परंतु उच्च श्रेणी के योरप के साहित्य को अपनाने के लिये भी हमें अधिकाधिक यत्नशील रहना चाहिए। प्रस्तुत प्रयास इसी प्रकार का है।

'एनाटोली फ्रांस' फ्रांस के एक प्रसिद्ध साहित्यिक हैं। उनकी गणना संसार के बड़े-बड़े लेखकों में है। आपको साहित्य के निमित्त नोबेल-पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है। अपनी भाषा में आप गद्य के उस्ताद माने जाते हैं। आप ऐसे सिद्धहस्त और निपुण लेखक हैं कि आपकी रचनाओं पर क़लम चलाने की योग्यता रखनेवाले कम हैं। योरप की प्रायः सभी मुख्य भाषाओं में आपके ग्रंथों के अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं।

'थायस' आपकी एक उत्कृष्ट रचना है। जिस समय यह पुस्तक प्रथम प्रकाशित हुई थी, उस समय पेरिस में सनसनी फैल गई थी। इसका प्रकाशन एक महत्त्व-पूर्ण घटना थी। कुछ समालोचकों का कहना है कि इस पुस्तक में लेखक की कल्पना तथा शैली का सर्वोच्च उदाहरण मिलता है। यह पुस्तक साहित्यिक अंग-विन्यास का आदर्श मानी जाती है। साहित्य के क्षेत्र में, वास्तव में, यह रचना एक दुर्लभ वस्तु है।

कथा बहुत प्राचीन है, दूसरी शताब्दी ईसवी की। उस काल का प्रसंग उठा लेने में 'एनाटोली फ्रांस' ने एक बड़ा उत्तरदायित्व-पूर्ण काम उठाया था। इसका कारण यह है कि उस काल के संबंध की ऐतिहासिक सामग्री, लिखित तथा अलिखित, ईसाइयों की तथा ग़ैर ईसाई जातियों की, सभ्य संसार को बहुत कम प्राप्त है। जिस समय के संबंध में हमें लेख अधिकता से प्राप्त होते हैं, उस समय की कथा की कल्पना कम कठिन होती है। 'एनाटोली फ्रांस' को ऐसी सुविधा प्राप्त न थी। इस बात का ध्यान रखना भी उनके लिये आवश्यक था कि

उनकी कल्पना ऐतिहासिक कसौटी पर पूरी उतरे। उनकी रचनाएँ ऐतिहासिक प्रमाद (anachronism) से शून्य रहने के लिये प्रशंसित हैं। कल्पना के अतिरिक्त इस रचना के लिये 'एनाटोली फ्रांस' को उतना ही ऐतिहासिक अनुसंधान तथा मनन करना पड़ा है, जितना किसी पुरातत्त्व-विज्ञान के विद्वान् को करना पड़ता। लेखक ने हमारे सम्मुख एक अल्पज्ञात युग की ऐसी जीती-जागती तसवीर खींच दी है, जिसका खींचना केवल एक पुरातत्त्वज्ञ विद्वान् की शक्ति के बाहर है, और जो हमें इस बात का स्मरण दिलाती है कि एक साहित्यिक की महिमा और ही है। उस काल के मिश्र और यूनान एक बार पुनरुज्जीवित हो उठते हैं। उस समय के ईसाई तथा ग़ैर ईसाई समाजों की रहन-सहन, व्यवहार, आचार और विचार के संबंध में ज्ञान प्राप्त करने में कितना श्रम लेखक को करना पड़ा होगा! एक समालोचक ने यथार्थ कहा है कि "इस रचना ने अतीत काल पर विजय प्राप्त कर ली है।" जिस समय यह प्रकाशित हुई थी, उस समय विद्वानों ने खूब अनुसंधान-पूर्वक इसकी आलोचनाएँ की थीं। परंतु कठिनतम परीक्षाओं में भी यह पूरी उतरी, और दोषहीन ठहराई गई। यह कहना कदापि अत्युक्ति नहीं कि पुस्तक सर्वांग-पूर्ण है।

इस पुस्तक की कथा एक प्रेम-कथा—बड़ी अद्भुत प्रेम-कथा है। किस प्रकार एक अहंकारयुक्त तपस्वी कठिनतम तपस्या और आत्मनिग्रह के प्रयत्न के अनंतर भी अपनी काम-वासना से पराभूत होकर लज्जास्पद होता है, किस प्रकार एक नाट्य-शाला की नटी भी श्रद्धा और विश्वास को अपने अंतस्तल में स्थान देने के कारण अंतकाल में परम शांति का अनुभव करती है, संक्षेप में यही इस कथा का विषय है। परंतु कथा की रोचकता तथा महत्त्व का ज्ञान पढ़ने ही से हो सकता है। नायक-नायिका के चरित्रों के अतिरिक्त जितने अन्य चरित्र आए हैं, उन सभी के चित्रण में लेखक ने समान रूप से कमाल कर दिया है। किसी भी चरित्र से एक बार परिचय कर लीजिए, फिर उसे आप न भूलेंगे। कथा-कल्पना तथा चरित्र-चित्रण, दोनों ही की दृष्टि से अद्वितीय है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि लेखक ने एक अतीत युग का सजीव चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित कर दिया है।

यह तो हुई मूल-पुस्तक की बात। अब अनुवाद के विषय में भी कुछ कहना आवश्यक है। कहा ही जा चुका है कि इसके अनुवादक हिंदी-भाषा के सुपरिचित लेखक श्रीप्रेमचंदजी हैं। उचित ही था कि ऐसी महान् पुस्तक का अनुवाद आप ही करते। यदि हिंदी-जगत् में इस पुस्तक का अनुवाद करने का कोई अधिकारी है, तो आप ही। परंतु खेद है कि इस अनुवाद के विषय में हम उतना ही उत्साह नहीं प्रकट कर सकते, जितना कि मूल-पुस्तक के विषय में। पुस्तक वास्तव में अनुवाद का अनुवाद है; क्योंकि यह अनुवाद स्वयं एक अँगरेज़ी-अनुवाद पर आश्रित है। मैंने भी अर्नेस्ट टिस्टन का किया हुआ अँगरेज़ी-अनुवाद पढ़ा है। उसमें मुझे मौलिक पुस्तक का-सा आनंद आया। यद्यपि अँगरेज़ी से हिंदी में अनुवाद करने में अनेकों कठिनाइयाँ हैं, तथापि मेरी समझ में हिंदी में इससे अच्छा अनुवाद हो सकता था। यही मेरी शिकायत है। 'एनाटोली फ्रांस' के अनुवादक पर एक विशेष उत्तरदायित्व है। फिर जब वह अनुवादक अपने साहित्य में वैसा प्रतिष्ठित हो, जैसे हिंदी में प्रेमचंदजी हैं, तो वह उत्तरदायित्व और भी गुरुतर हो जाता है। प्रेमचंदजी ही विशेष सावधानी से काम लेने पर इससे अच्छा अनुवाद कर सकते थे, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है। मूल-लेखक की योग्यता, सावधानी तथा श्रम को देखते हुए यह देखकर क्षोभ होता है कि अनुवादक ने अपनी संपूर्ण शक्ति क्यों नहीं ख़र्च कर दी। मैं यह मानने के लिये तैयार हूँ कि अनुवाद बहुधा उतने सुंदर नहीं होते, जितने कि मूल-ग्रंथ (यद्यपि मुझे थायस के अँगरेज़ी-अनुवाद ने ही मुग्ध कर दिया है), तथापि यह निश्चय है कि हिंदी में इससे अच्छा अनुवाद हो सकता था, और प्रेमचंदजी ही इससे अच्छा अनुवाद कर सकते थे। जब निवार्य दोषों को ढकने के लिये बड़े लेखक इस कथन की शरण लेते हैं कि अनुवाद अनुवाद ही है, तो खेद उत्पन्न होता है। अनुवाद बहुत चलता हुआ है, अधूरा है। बहुत-से सूक्ष्म भाव, जो व्यक्त किए जा सकते थे और किए जाने चाहिए थे, अव्यक्त रह गए हैं, कहीं-कहीं अशुद्ध रूप से व्यक्त किए गए हैं। भाषा भी बहुत शिथिल हो गई है। कहीं-कहीं व्याकरण के दोष भी रह गए हैं। ये सब दोष विशेष सावधानी से काम लेने पर दूर हो सकते थे। इतने बड़े

लेखक की पुस्तक का ऐसी असावधानी के साथ अनुवाद करना उसके साथ अन्याय करना है। ऊपर बताए हुए कारणों से कथा की रोचकता पर बुरा असर पड़ना स्वाभाविक है; तथापि, इस अनुवाद से भी, हमें मूल-पुस्तक के महत्त्व का अंदाज़ मिल ही जायगा। फिर मैं यह भी न कहूँगा कि अनुवाद आद्यंत दोष-पूर्ण है। बहुत-से अंशों का अनुवाद जैसा होना चाहिए, वैसा ही हुआ है, और दो-चार स्थलों पर तो मूल-पुस्तक का आनंद आ जाता है। मतलब यह कि भिन्न-भिन्न अंशों के अनुवाद भिन्न-भिन्न श्रेणी के हुए हैं।

प्रेमचंदजी ने इस पुस्तक की जो प्रशंसा अपनी भूमिका में की है, वह यथार्थ ही है। आपने बताया है कि 'सत्यं शिवं सुंदरम्' तीनों गुणों का समावेश इसमें है। पुस्तक आपको भी सर्वांग-सुंदर प्रतीत हुई है। परंतु यह लिखते हुए भी चरित्र-चित्रण के संबंध में कुछ नुक़्ताचीनी आपने कर ही दी है। मेरा कहना है, और मैं दिखाऊँगा कि इस प्रकार का छिद्रान्वेषण व्यर्थ है।

कथा की नायिका के चरित्र-चित्रण पर आप हृदय से मुग्ध हैं। आप लिखते हैं कि "अनाटोली महाशय ने थायस के चित्रण में स्त्री-मनोभाव का जैसा सूक्ष्म परिचय दिया है, वह साहित्य में एक दुर्लभ वस्तु है।" परंतु दो ही पृष्ठों के बाद आप अपनी असंतुष्टि भी प्रकट करते हैं। आपको यह आपत्ति है कि "लेखक ने थायस को अत्यंत भीरु बना दिया है। यहाँ तक कि जब उसे पापनाशी के विषय में यह पूर्ण विश्वास हो जाता है कि वह मुझे अनंत जीवन प्रदान कर सकता है, अर्थात् वे औषधियाँ जानता है, जिनके सेवन से वृद्धावस्था पास न आवे, तो वह कुछ भय से, कुछ उसे लुब्ध करने के लिये, उसके साथ संभोग करने को प्रस्तुत हो जाती है।...... वेश्याएँ भी यों सबके साथ अपनी लाज नहीं खोया करतीं; उनमें भी आत्माभिमान की मात्रा होती है, विशेषतः जब कि वे थायस की भाँति विपुल धन-संपन्न हों।" मुझे तो थायस के चित्रण में कोई बात अस्वाभाविक नहीं जान पड़ती। उसका व्यवहार उसके तत्कालीन चरित्र के अनुरूप ही हुआ है। प्रेमचंदजी को निम्न-लिखित बातें स्मरण रखनी चाहिए।

पहली बात तो यह है कि 'वेश्याएँ भी' का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। वेश्या तो वह थी ही। यदि विशेष कारणों से वह आत्मसमर्पण करने के लिये प्रस्तुत हुई, तो आश्चर्य ही क्या? दूसरी बात यह कि ये कारण उपेक्षणीय नहीं हैं। भय और लोभ मानव-हृदय के ऐसे विकार हैं, जो मनुष्य से क्या नहीं करा डालते? यहाँ पर तो दोनों विकारों की प्रेरणा थायस को विवश कर रही थी। तीसरी बात यह है कि पैफ़नूटियस कोई साधारण मनुष्य नहीं था। चौथी यह कि थायस के विपुल धन का निहोरा तो उस समय दे सकते थे, जब वह धन-लालसा से प्रेरित होकर आत्मसमर्पण करने को उद्यत होती। यदि प्रेमचंदजी को थायस की भीरुता अस्वाभाविक जान पड़ती है, तो मैं आदर-पूर्वक कहूँगा कि वह इस अद्वितीय चरित्र की ठीक मीमांसा नहीं कर सके हैं। थायस के चरित्र में, वास्तव में, भीरुता का बड़ा भारी अंश था। वह मृत्यु से, वृद्धावस्था से, सभी रहस्यमय (mysterious) बातों से कितना डरती थी, इसका परिचय तो प्रेमचंदजी को कई स्थानों पर स्वयं मिला होगा। ओझों के टोने-टोटकों में उसका कितना अंध-विश्वास था! और पैफ़नूटियस को, अपने आत्मसमर्पण के समय, तथा बाद भी, वह एक देवी और रहस्यमय व्यक्ति समझती थी। उसके विचारों तथा मनोविकारों की ओर देखते हुए क्या हम उसके चरित्र-चित्रण को कदापि अस्वाभाविक समझ सकते हैं?

पैफ़नूटियस के चरित्र-चित्रण पर प्रेमचंदजी का आक्षेप है। उसके चित्रण में आपको "जो बात खटकती है, वह अनैसर्गिक विषयों का समावेश है।" आपने तीन उदाहरण इस शंका की पुष्टि में दिए हैं, यद्यपि स्वयं इन शंकाओं का समाधान करने का भी प्रयत्न किया है। तथापि उनके मन में 'खटक' तो है ही, जिसके कारण उन उदाहरणों का उल्लेख हुआ है। विस्तार-भय से मैं केवल संक्षेप में तीनों शंकाओं का उत्तर देने की चेष्टा करूँगा—

(१) "जब वह थायस का उद्धार करने के लिये इस्कंदिया पहुँचता है, उस समय उसे एक स्वप्न दिखाई देता है, जो उसके स्वर्ग-नरक के सिद्धांत को भ्रांति में डाल देता है।" इसमें क्या बात अनैसर्गिक है, मैं समझ

नहीं सका। स्वप्न देखना तो शायद ही अनैसर्गिक घटना कही जाय। जिस प्रकार का स्वप्न देखा, वह भी असंभव नहीं ज्ञान पड़ता। फिर स्वप्न का संसार ही दूसरा है, जिसमें असंभाव्य बातों का दिखाई न पड़ना ही आश्चर्य-जनक होगा। रहा स्वप्न का प्रभाव। उसके बारे में यह स्मरण रखना चाहिए कि पैफ़नूटियस शक्की हृदय का व्यक्ति था। ज़रा-ज़रा-सी बात में उसे सगुन-असगुन की संभावना होने लगती थी, और दैवी आदेश जान पड़ने लगता था।

(२) थायस को आश्रम में पहुँचाकर अपने आश्रम में आने पर उसकी कुटी में जो गीदड़ों की भरमार होने लगी थी, वह तो स्पष्टतया रूपक(allegorey)-मात्र है।

(३) स्तंभ पर तपस्या करते समय जो आवाज़ उसके कानों में आई थी, वह केवल उसके अहंकारमय हृदय की प्रेरणा थी, जैसा कि प्रेमचंदजी को स्वयं भासित होता है।

मैंने अँगरेज़ी में यह पुस्तक कई बार पढ़ी है। छिद्रान्वेषण की दृष्टि से भी संपूर्ण पुस्तक ध्यान-पूर्वक पढ़ी है। परंतु मैं फिर कहता हूँ कि मैंने पुस्तक को नितांत दोष-रहित पाया है।

चरित्रों के नामकरण के संबंध में भी मेरा कुछ वक्तव्य है। कुछ लोगों की यह सम्मति है कि अनुवाद करने में नामों को भी स्वजातीय रूप दे देना चाहिए। प्रेमचंदजी ने अपनी भूमिका में इस मत का विरोध किया है। जिस देश की कथा हो, उसी देश के नाम अगर न हों, तो कथा की नैसर्गिकता में भेद पड़ जाता है। अथवा जैसा कि प्रेमचंदजी ने एक सुंदर वाक्य में लिखा है—"मिश्र की मरुभूमि में जो वृक्ष फलता-फूलता है, वह मानसरोवर के तट पर नहीं पनप सकता।" मैं भी प्रेमचंदजी से सहमत हूँ; विदेशीय कथा के विदेशीय नामों को अपनाने के पक्ष में नहीं हूँ। परंतु आश्चर्य की बात है कि प्रेमचंदजी ने अपने ही सिद्धांत का प्रयोग द्वारा प्रतिवाद किया है। कई नामों को उन्होंने स्वजातीय रूप देने का प्रयत्न किया है। पैफ़नूटियस को 'पापनाशी' कर दिया है, यद्यपि उसका चरित्र देखते हुए यह नामकरण अनुपयुक्त प्रतीत होता है। प्रेमचंदजी कहते हैं कि सरलता के विचार से ऐसा रूपांतर किया गया है। जब एक सिद्धांत ही स्थिर कर दिया गया, तो सरलता का लिहाज़ कैसा? क्या और नामों का, विशेषकर यूनानी दार्शनिकों के नामों का; सरल रूपांतर नहीं हो सकता था? फिर यही एक नाम होता, तो मैं मान भी लेता। आपने बहुत-से और भी नाम अपना लिए हैं, जिनके विषय में आप मौन हैं। मेकेरियस को आपने 'मकर' ऋषि बना दिया है। ऐसे ही एमेथस को 'अमात्य', फ़्लेवियस को 'फलदा', 'पैलमन' को 'पालम' कर दिया है। ऐसा करने का आप क्या कारण बतलावेंगे? या तो सभी नाम समान रूप से अपनाते, या सभी को ज्यों-का-त्यों रहने देते। मेरी सम्मति में भी पिछली ही बात अच्छी होती।

पुस्तक का मूल्य सुलभ रक्खा गया है। प्रकाशकों का साहित्य को सुलभ करने का प्रयास प्रशंसनीय है। हाँ, पुस्तक में जो छापे की ढेरों अशुद्धियाँ रह गई हैं, उनका दोष तो प्रकाशकों ही के सिर मढ़ना पड़ेगा। ऊपर बताई गई त्रुटियों के रहते हुए भी पुस्तक संग्रह-योग्य है। मेरा अनुरोध है कि जो सज्जन मूल-पुस्तक अथवा उसका अँगरेज़ी-अनुवाद नहीं पढ़ सकते, वे हिंदी-भाषा ही में उसका परिचय प्राप्त करने से न चूकें।

रामचंद्र टंडन

× × ×

चतुर्वेद—लेखक, प्रोफ़ेसर योगींद्रनाथ समाद्दार, पटना-कॉलेज। प्राप्ति-स्थान, सरस्वती-भंडार, मुरादपुर, पटना। पृष्ठ-संख्या १६०, मूल्य ।।।=)

प्रोफ़ेसर समाद्दार अँगरेज़ी और बँगला के प्रसिद्ध लेखक हैं। इनके लेख 'भारतवर्ष', 'मॉडर्नरिव्यू' आदि मासिक पत्रों में प्रायः देखने में आते हैं। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि अब आपने अपने अपनाए हुए प्रांत की भाषा—हिंदी—की ओर दृष्टि फेरी है। आशा है, आप और भी पुस्तकें लिखकर हिंदी की श्री-वृद्धि करेंगे। पुस्तक में चार उत्तम गल्पें हैं, जिनमें उत्तम-उत्तम उपदेशों का समावेश है। कहानियाँ मनोहर और सबके पढ़ने योग्य हैं। छापे की अशुद्धियाँ यत्र-तत्र रह गई हैं, जो अगले संस्करण में अवश्य दूर हो जानी चाहिए।

गुप्तेश्वरनाथ

× × ×

४. कृषि

खेती ; पौंड़ा, गन्ना, ऊख—प्रकाशक, कार्याध्यक्ष कृषि-भवन, इलाहाबाद। लेखक, श्रीमान् ठाकुर रामनरेशसिंह साहब, ईशनपुर, ज़िला प्रतापगढ़। आकार २०×३० सोलह-पेजी। काग़ज़, छपाई-सफ़ाई अच्छी। पृष्ठ-संख्या ८६। मूल्य आठ आने।

भारत कृषि-प्रधान देश है। इस देश की अधिकांश जनता खेती ही से अपनी जीविका चलाती है। परंतु कई कारणों से किसानों की दशा आजकल दिन-पर-दिन ख़राब होती जाती है। उनकी दशा बिना सुधरे देश की दशा नहीं सुधर सकती। उनकी दशा सुधारने के लिये खेती करने के लाभदायक नए तरीक़ों के ज्ञान का प्रचार करना बहुत आवश्यक है। खेद है, इस पवित्र कार्य की ओर सरकार और देश-हितैषी सज्जनों का बहुत कम ध्यान आकृष्ट हुआ है। हिंदी में कृषि-संबंधी पुस्तकों की बहुत कमी है। ख़ासकर ऐसी पुस्तकों का तो अभाव ही है, जिनमें लेखक के अनुभव के आधार पर खेती की लाभदायक विधियों का विवेचन, सरल और सुबोध भाषा में, किया गया हो।

हमें हर्ष है कि प्रयाग का कृषि-भवन इस अभाव को कुछ अंश में दूर करने का प्रयत्न कर रहा है। समालोच्य पुस्तक 'कृषि-उपयोगी पुस्तकमाला' का सातवाँ ग्रंथ है। इसके लेखक के पिता प्रतापगढ़-ज़िले के उत्साही ताल्लुक़ेदार हैं, और मालूम होता है कि नए तरीक़ों से पौंड़ा, गन्ना तथा ऊख की खेती करने में उन्हें अच्छी सफलता मिली है। यह पुस्तक पिता और पुत्र के इसी अनुभव के आधार पर लिखी गई है।

पुस्तक के आरंभ में गन्ना, पौंड़ा और ऊख की भिन्न-भिन्न जातियाँ बतलाते हुए यह समझाया गया है कि उनके लिये खेत किस तरह से तैयार करना चाहिए, और उनके बीज कब और किस तरह से बोना चाहिए। इसके बाद गुड़ाई, निराई, आबपाशी और तरह-तरह की खादें देने के लाभदायक नए तरीक़े बतलाए गए हैं। अंत में ऊख की बीमारियाँ दूर करने के लिये अनुभव-सिद्ध उपाय समझाते हुए रस, राब, गुड़, शक्कर और मिसरी के उपयोग से जो लाभ होते हैं, उनका दिग्दर्शन कराया गया है।

गन्ने की खेती से लाभ के संबंध में लेखक महाशय लिखते हैं कि यदि एक एकड़ खेत में गन्ना बोया जाय, तो ७०-८० रुपए ख़र्च होते हैं; जिससे ६०० मन गन्ना उत्पन्न होगा। उसमें ३५० मन रस निकलेगा; और ७० मन गुड़ तैयार होगा। वह ५) रु० फ़ी मन के भाव से ३५०) का हुआ। ख़र्च निकालकर कम-से-कम २५०) रु० बचे। इसी प्रकार नए उत्तम ढंगों से १० एकड़ खेत में गन्ना बोकर दो हज़ार रुपए सालाना नफ़ा मिल सकता है। इसी प्रकार पौंड़े की खेती १० एकड़ ज़मीन में करने से ६०००) रुपयों का वार्षिक लाभ आसानी से हो सकता है। इससे स्पष्ट है कि गन्ने और पौंड़े की खेती करना कितना लाभदायक है। देश के पढ़े-लिखे उत्साही नव-युवकों को अब खेती की तरफ़ ध्यान देना चाहिए। इधर-उधर नौकरी के लिये न भटककर खेती का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर उसके नए तरीक़ों से खेती करने में दत्त-चित्त होकर प्रयत्न करना चाहिए। इससे उनको तो लाभ होगा ही, साथ ही देश को भी बड़ा लाभ पहुँचेगा।

मालूम नहीं, उपर्युक्त लाभ का लेखा लेखक के अनुभव के आधार पर दिया गया है, या किसी सरकारी रिपोर्ट से लिया गया है। यदि लेखक महाशय अपनी गन्ने की खेती के चार-पाँच वर्षों के आय-व्यय का पूरा-पूरा लेखा इस पुस्तक में दे देते, तो उसका प्रभाव नए तरीक़ों से खेती करने की इच्छा रखनेवाले व्यक्तियों पर अच्छा पड़ता। यह पुस्तक पहले उर्दू में लिखी गई थी, और अब लेखक द्वारा हिंदी में अनूदित हुई है। अनुवाद करते समय लेखक महाशय यदि शुगर-कमेटी की महत्त्व-पूर्ण सिफ़ारिशों का भी इसमें समावेश कर देते, तो इसकी उपयोगिता बहुत बढ़ जाती। पुस्तक के आरंभ में विषय-सूची भी देनी चाहिए थी।

पुस्तक कृषकों के लिये अत्यंत उपयोगी है। प्रत्येक ग्रामीण शाला में कम-से-कम एक प्रति इस पुस्तक की अवश्य रहनी चाहिए। गन्ने की खेती करनेवालों को तो इसे अवश्य ही ख़रीदना चाहिए। यदि कोई दानवीर सज्जन इस पुस्तक को गन्ने की खेती करनेवाले ग़रीब किसानों में बिना मूल्य बाँटने की व्यवस्था कर दें, तो बड़ा लाभ हो।

दयाशंकर दुबे

× × ×

भारत में कृषि-सुधार (सचित्र)—लेखक, श्रीयुत पंडित दयाशंकरजी दुबे एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, अध्यापक लखनऊ-विश्वविद्यालय । प्रकाशक, हिंदी-पुस्तक-एजेंसी, १२६, हैरीसन-रोड, कलकत्ता । पृष्ठ-संख्या २३७ । मूल्य १॥।) । वी० पी०-चार्ज सहित २ॾ) है ।

विद्वज्जनों की सम्मति है कि पाश्चात्य जगत् में जब से संपत्ति-शास्त्र का जन्म और उन्नति हुई है, तभी से उस देश की उन्नति का आरंभ हुआ है । भारत के दूरदर्शी प्राचीन आर्यगण संपत्ति-शास्त्र के सिद्धांतों से भली भाँति परिचित थे । वे अपने उत्तरवर्ती लोगों को बता गए हैं कि वे चाहे जो व्यवसाय करें, उसके विषय में सदा यह बात ध्यान में रक्खा करें कि उसका व्यय उसकी आय से बढ़ने न पावे (आयादल्पतरो व्ययः) । खेद का विषय है कि आजकल भारत की कृषि एकदम निरक्षर लोगों के हाथों में है । वे दुखिया सौ तक संख्या गिनना भी नहीं जानते, तब फिर किसानी-जैसे जटिल व्यवसाय का लेखा कैसे रख सकते हैं ? हमारे किसान-भाई संपत्ति-शास्त्र तथा कृषि-विज्ञान की मोटी-मोटी बातें भी अपनी निरक्षरता के कारण नहीं जान सकते । इसी कारण उनका दिनोदिन ह्रास हो रहा है, और उनके साथ-साथ भारत की शक्ति भी क्षीण हो रही है । यह बात आज के हमारे समालोच्य ग्रंथ में उसके विद्वान् लेखक ने बड़ी मार्मिकता के साथ, अकाट्य युक्तियों द्वारा, प्रमाणित की है । भारत-सरकार प्रति वर्ष, या दस-पाँच वर्ष में, कृषि-विषय के जो विवरण और लेख तैयार कराती है, उनकी दुबेजी ने खूब छान-बीन की है । साथ ही विदेशी तथा देशी सज्जनों ने भारत की कृषि से संबंध रखनेवाले जो ग्रंथ लिखे हैं, उनका भी आपने पर्याप्त अध्ययन किया है । उक्त सामग्री तथा अपनी कुशाग्र बुद्धि से काम लेकर आपने यह ग्रंथ तैयार किया है ।

सरकारी रिपोर्टों के आधार पर दुबेजी ने लिखा है कि भारत प्रति वर्ष जो अन्न उत्पन्न करता है, उसमें सत्तर करोड़ मन की कमी अच्छी फ़सल के सालों में भी रहा करती है । अकाल या दुर्भिक्ष के समय वह कमी अड़सठ करोड़ मन तक पहुँच जाती है ! कुछ ठिकाना है इस कमी का ! जिस भारत में वस्तु-स्थिति जाननेवाले लोगों के परिश्रम और अध्यवसाय से घी और दूध की नहरें बहती थीं, उसी भारत के निवासी आज उसकी धरती से पेट-भर रूखा-सूखा अन्न तक नहीं पा सकते ! यह सब क्यों हो रहा है ? इसका संक्षिप्त किंतु स्पष्ट उत्तर यही है कि यह सब भारत के वर्तमान धनी, ज्ञानी लोगों की स्वार्थांधता ही से हो रहा है । जो धनी भारत की संपत्ति को बाहर फेककर उसकी जूठन से अपनेको धनी बनाने का मार्ग पा गया है, वह उसी मार्ग के पाप-पंक में दिनों-दिन डूबता जाता है । वह समझता है कि वह तो धनाढ्य होता जाता है; उसके पड़ोसी यदि हज़ारों की संख्या में भूखों मरते हैं, तो मरा करें, उसकी बला से ! उसी प्रकार जो ज्ञानी अपने ज्ञान की तीव्र छुरी से अबोध भाइयों के गले काट-काटकर जेब भरने में लगा है, वह उसी में मग्न रहता और रात-दिन अपने पाप की गठरी को बढ़ाता जाता है । यह सब भारत के खोटे दिनों का फेर है । भारत में दुबेजी-जैसे सच्चे विद्वानों की संख्या यदि दस-पाँच ही हो जाय, तो वे भारत की रक्षा करने में समर्थ हो सकेंगे ।

यदि भारत के धनी, ज्ञानी लोगों में देश की यथार्थ भलाई समझने की पर्याप्त क्षमता होती, तो आज दिन भारत के प्रत्येक प्रांत में दुबेजी द्वारा सूचित योजना को काम में लाने के लिये वहाँ के धनी लाखों का दान दे डालते, और विद्वान् लोग उस दान की रक़म से किसानों में कृषि-विज्ञान के प्रचार तथा अज्ञान को दूर करने का काम शुरू कर देते ।

ऐसा उत्तम और उपयोगी ग्रंथ लिखने के लिये हम दुबेजी को बधाई देते हैं । हम आशा करते हैं कि दुबेजी की योजना को काम में लानेवाला कोई भारत का लाल शीघ्र ही प्रकट होगा ।

गंगाप्रसाद अग्निहोत्री

× × ×

५. बालकोपयोगी

हिंदी आशुबोध (प्रथम भाग)—लेखक और प्रकाशक, बाबू हरनंदराय गुप्त, अध्यापक नार्मल-स्कूल, मुलतान । विक्रेता, श्रीयुत नारायणप्रसाद बेताब, बेताब-प्रिंटिंग-वर्क्स, चाह-रहट, देहली । क्राउन सोलह-पेजी के ६० पृष्ठ । मूल्य ॾ)॥ है ।

इस पुस्तक में हिंदी-भाषा सिखलाने की नवीन विधि बतलाने की चेष्टा की गई है । आरंभ में एक विस्तृत भूमिका है, जिसमें इस नवीन विधि की खूबियाँ बतलाई गई हैं । शिक्षा-शैली में परिवर्तन चाहनेवाले

लोगों का अवश्य ही यह पुस्तक देखनी चाहिए। श्रीमती ब्रिग्स ने इसी से मिलती-जुलती एक पद्धति (बीकन-पद्धति) निकाली थी ; किंतु वह सफल नहीं समझी गई। सच बात तो यह है कि यदि छोटे-छोटे बच्चे अच्छे अध्यापकों के अधीन कर दिए जायँ, तो वे सभी शिक्षा-शैलियों से लाभ उठा सकते हैं। अयोग्य अध्यापक के हाथ में पड़ जाने पर अच्छी-से-अच्छी शिक्षा-प्रणाली असफल हो जाती है। पुस्तक की भाषा हिंदी आरंभ करनेवालों के लिये क्लिष्ट है।

× × ×

हिंदी की पहली, दूसरी और तीसरी पुस्तक—लेखक, पं० रामनरेश त्रिपाठी। प्रकाशक, हिंदी-मंदिर, प्रयाग। पहली, दूसरी और तीसरी पुस्तक की पृष्ठ-संख्या क्रमशः २८, ४६, ९२ और मूल्य भी क्रमशः =), ≡) और ।) है। छपाई बहुत अच्छी।

ये रीडरें राष्ट्रीय विद्यालयों के लिये तैयार की गई हैं। पाठों के विषयों का चुनाव समझ-बूझकर किया गया है। भाषा अच्छी है। राष्ट्रीय विद्यालयों में इनको अवश्य पढ़ाना चाहिए। पाठों के अंत में कुछ प्रश्न आदि दे देने से पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ जाती।

× × ×

बाल-कथा-कहानी (पहला और दूसरा भाग)—लेखक, पं० रामनरेश त्रिपाठी। प्रकाशक, हिंदी-मंदिर, प्रयाग। मूल्य पहले भाग का ।), और दूसरे भाग का ।–) है।

इसमें बालकों के योग्य मनोरंजक कहानियाँ लिखी गई हैं। छोटे बालक पशु आदि की कहानियाँ अधिक पसंद करते हैं। इनमें उनकी रुचि की बहुत सी कहानियाँ मिलेंगी।

× × ×

बालोपदेश—लेखक, पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए०, वर्तमान हेड-मास्टर सेंट्रल हिंदू-कॉलिजिएट स्कूल, बनारस। प्रकाशक, लहरी-बुकडिपो, बुलानाला, बनारस। पृष्ठ-संख्या ७२। मूल्य ।) है।

यह पुस्तक मिश्रजी ने उस समय लिखी थी, जिस समय वह हरिश्चंद्र-हाईस्कूल के हेडमास्टर थे। प्रत्येक दिन स्कूल का कार्य आरंभ होने के पहले बालकों को कुछ उपदेश दिया जाता था। इस पुस्तक में उन्हीं उपदेशों का संग्रह है। ये उपदेश छोटे, किंतु मनोरंजक और सरल भाषा में लिखे गए हैं। विषयों का चुनाव भी अच्छा है। हमारी सम्मति में यह पुस्तक ऐसी है, जो बालकों के हाथों में अवश्य देनी चाहिए। यह इसका तीसरा संस्करण है ; किंतु खेद है कि इसमें भी बहुत-सी अशुद्धियाँ रह गई हैं।

श्रीनारायण चतुर्वेदी

× × ×

लल्लू-लुग़त और स्कूली बारहमासा—लेखक और प्रकाशक, श्रीयुत बाबूराम शुक्ल, टीचर हरनंदराय-पाठशाला, फ़र्रुख़ाबाद। आकार २०×३० सोलह-पेजी। पृष्ठ-संख्या ५२; कागज़, छपाई-सफ़ाई साधारण, और मूल्य ।–) है।

यह अँगरेज़ी शब्दों का अपने ढंग का एक नया कोश है। इसमें अँगरेज़ी के दैनिक व्यवहारोपयोगी शब्दों का अर्थ हिंदी की तुकबंदियों में दिया गया है, जिन्हें स्कूलों में प्रारंभिक श्रेणियों के विद्यार्थी कंठाग्र करके अँगरेज़ी शब्दों का अच्छा प्रारंभिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

× × ×

६. विविध

प्राण-विनिमय—प्रकाशक, हिमालय-डिपो, मुरादाबाद के अध्यक्ष पं० हरिशंकर-शिवशंकरजी। मोटा टाइप। पृष्ठ२८१, और मूल्य १।।) है।

इसमें, प्रारंभ में, समय को उसकी परिवर्तनशीलता के कारण फटकारते हुए 'हाय भारत, हाय भारत' की तान छेड़ दी गई है; अर्थात् पहले हम क्या थे, और अब क्या हो गए आदि। इसी 'हाय-हाय' में दुनिया-भर की बहुत-सी बातें कह डाली गई हैं। यहाँ तक कि फ़्रेंच रिवोल्यूशन का भी ज़िक्र आ गया है! पुस्तक का विषय मेसमेरिज़्म है। इस पुस्तक को पढ़ने पर पाठक को ज्ञात हो सकेगा कि 'इस विद्या को भारतवर्ष के बंदर तक जानते थे।' कुछ ऐसी बातें भी कही गई हैं, जो आज तक और किसी को नहीं सूझी थीं। उदाहरण लीजिए—"भगवान् शंकर ने उस धनुष में भी मेसमेरिज़्म भर दिया था... इसलिये ही वह रावण तथा बाणासुर-सरीखे पहलवानों से भी नहीं उठ सका। क्योंकि वे लोग इस विद्या के भली भाँति जानकार नहीं थे। किंतु श्रीरामचंद्रजी इसके पूर्ण ज्ञाता थे ×××", "अनसूयाजी ने ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव पर मेसमेरिज़्म द्वारा मंत्रित जल के

छींटें देकर उनको बालक बना दिया था ×××", "भगवान् शंकर के जिस धनुष को बड़े-बड़े योधा भी नहीं उठा सके थे, उससे श्रीमती सीताजी खेला करती थीं।" इससे उनका भी मेसमेरिज़म-विद्या में प्रवीण होना स्पष्ट प्रमाणित होता है।" यह सब तो ठीक, परंतु यह कैसे मालूम हो कि मेसमेरिज़म-विद्या में प्रवीण होते हुए भी उन्होंने इस विद्या में अधकचरे रावण के द्वारा अपना हरा जाना क्या सोचकर सहन किया? अच्छा साहब, हमने, जैसा कि आप चाहते हैं, यह मान लिया कि मेसमेरिज़म-विद्या भारतवर्ष ही से निकली है; परंतु क्या पहले इसके आचार्य भी 'नरवोटिल', 'ओडायल', 'नरवस', 'फ़्लूड', 'गालवेनिक' आदि शब्दों का प्रयोग उसी प्रकार उनके अंजर-पंजर ढीले करके किया करते थे, जिस प्रकार आपने किया है? आख़िर कोई देसी शब्द भी इनके लिये कहीं, किसी पुस्तक में लिखे मिलते हैं? मतलब यह कि बात थोड़ी कही गई है, शाब्दिक लबड़धोंधों अधिक है। खेद है, इस संबंध में जो नई खोजें अब तक हो चुकी हैं, उनका पुस्तक में कहीं उल्लेख नहीं किया गया। ऐसा ज्ञात होता है कि लेखक महोदय (श्रीयुत गौरीशंकरजी) उनके क़ायल नहीं हैं। अमेरिका के डॉक्टर लीसेज़ तथा दूसरे आचार्यों की पुस्तकों से यदि इस पुस्तक की तुलना की जाय, तो उनमें हद दरजे की सरलता तथा इस पुस्तक में विचित्र गड़बड़झाला मिलेगा। ये ही बातें यदि सरलतापूर्वक समझाई जातीं, तो पाठकों को विशेष लाभ होता। अस्तु। पुरानी चाल से जिन लोगों को मेसमेरिज़म सीखना हो, अथवा भूत-विद्या (स्पिरिचुएलिज़म) का कुछ हाल जानना हो, उनकी ज्ञान-वृद्धि में यह पुस्तक, संभव है, कुछ सहायक हो। लेखक महोदय से हमारी प्रार्थना है कि वह जो कुछ शिक्षा पाठकों को देना चाहें, आकर्षक, सरल और सुबोध भाषा में दें। आशा है, अगले संस्करण में इस बात पर ध्यान रक्खा जायगा।

भरतानंद भारती

× × ×

संकेत-विद्या (अर्थात् इशारे से बातचीत करने का नया उपचार)—लेखक, पंडित मुंशीलाल। मिलने का पता—बाबू श्यामाचरण झा, २९० अहियापुर, इलाहाबाद। पृष्ठ-संख्या ४४। ४० उत्कृष्ट चित्र भी हैं। मूल्य ।।) है।

इस पुस्तक में इशारे से बातचीत करने की कई तरकीबें लिखी गई हैं। अधिकांश तरकीबें, हमारी समझ में, अव्यावहारिक हैं। इशारे से बातचीत करने में वे उपाय लाभदायक होते हैं, जो सरल हों, जिनमें कम समय लगे, और जिनके साधन बिना अधिक झंझट के मिल सकते हों। इस पुस्तक में जो इशारे दिए हैं, उनमें ये गुण विद्यमान नहीं हैं। फिर भी संभव है कि लड़के इन इशारों को पसंद करें। किंतु यदि वे इन्हें याद करने की चेष्टा करेंगे, तो उनका समय व्यर्थ ही जायगा। हाँ, लेखक ने हिंदी में इशारों को बनाने का जो उद्योग किया है, वह सराहनीय है। यदि वह अपने इन इशारों को अधिक सरल बना सकें, तो वे लाभदायक हो सकते हैं।

× × ×

फ़ोटोग्राफ़ी-शिक्षा—लेखक तथा प्रकाशक, पं० क्षेत्रपाल शर्मा, मालिक सुख-संचारक कंपनी, मथुरा। पृष्ठ-संख्या १७५। मूल्य १)। काग़ज़ तथा छपाई साधारण।

पुस्तक फ़ोटोग्राफ़ी सीखनेवालों के काम की है। गुण-दोष की परख तो फ़ोटोग्राफ़र ही कर सकते हैं, परंतु इतना हम भी कह सकते हैं कि यदि लेख के साथ चित्र भी होते, तो पुस्तक की उपयोगिता बढ़ जाती।

कालिदास कपूर

× × ×

७. पत्र-पत्रिकाएँ

विश्व-ज्योति—गुजराती मासिक। संपादक, श्रीयुत प्रभूशंकरनिरमेराम व्यास (स्थापक) तथा रमणिकलाल-गिरधरलाल मोदी एम्० ए०। प्रकाशक, विश्वज्योति-कार्यालय, प्रगति-मंदिर, अडाजण, सूरत। आकार २०×२६ अठ-पेजी, पृष्ठ-संख्या ३२, छपाई-सफ़ाई अच्छी। वार्षिक मूल्य ३।) रु० है।

इसका संपादन अच्छा होता है। इस अंक में कुल १४ लेख हैं। उनमें तीन लेख तथा एक कविता संपादक महाशय की रचना हैं। लेख सभी सरस हैं। टाइटिल पर एक सादा 'ज्योति' का चित्र है। लेखों में धार्मिक भाव अधिक रहते हैं। गुजराती-भाषा से प्रेम रखनेवाले पाठकों को इसे अवश्य मँगाना चाहिए।

× × ×

गुणसुंदरी अने स्त्री-हितोपदेश ('दीपमालिका का विशेषांक)—संपादक, जयकृष्णदास-नागरदास वर्मा तथा

हीरालाल-हरजीवन गणात्रा। व्यवस्थापक, चुन्नीलाल-कुबेरदास शाह, ५१ चौथी खेतबाड़ी, बंबई नं० ४। आकार १८×२२ अठपेजी। पृष्ठ-संख्या ८०; छपाई-सफ़ाई सुंदर; वार्षिक मूल्य ३॥) रु०। इस अंक का मूल्य ।।=) है।

यह स्त्रियों के लिये उपयोगी गुजराती मासिक पत्रिका तीन मास से प्रकाशित होने लगी है। इसमें धार्मिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक लेख अच्छे रहते हैं। संपादकीय टिप्पणियाँ भी सामयिक तथा उपयोगी हैं। माधुरी में प्रकाशित प्रेमचंदजी की 'आभूषण' नाम की कहानी का अनुवाद इसमें सचित्र प्रकाशित हुआ है। गुजराती जाननेवाली स्त्रियों के लिये यह पत्रिका बड़े काम की चीज़ है।

× × ×

बालजीवन (विशेषांक)—संपादक, रमणलाल-नानालाल शाह तथा चुन्नीलाल-कुबेरदास शाह। व्यवस्थापक, नागरदास इ० पटेल, जेकब बिल्डिंग, साकली स्ट्रीट, भायखला, बंबई नं० ८। आकार १८×२२ अठपेजी। पृष्ठ-संख्या ६५। छपाई-सफ़ाई सुंदर। वार्षिक मूल्य ३) रु०, और इस संख्या का ।।।) है।

यह एक बालोपयोगी गुजराती मासिक पत्र है। संपादन अच्छे ढंग से होता है। इस अंक में कई उत्तम लेखों और कविताओं के अतिरिक्त कोई ७५ सादे चित्र हैं। गुजराती-भाषा-भाषी बालकों को इसे अवश्य अपनाना चाहिए। धार्मिक, ऐतिहासिक लेखों से तो लाभ होगा ही, उनका मनोरंजन भी काफ़ी होगा। कारण, इसमें हास्य-विनोद की भी अच्छी सामग्री रहती है। संपादक महोदय ने बालकों की प्राइमरी रीडरों से कुछ कहानियाँ ज्यों-की-त्यों उठाकर रख दी हैं। पर नाम नहीं दिया।

श्रीधर-नारायणदास मेहता

× × ×

मित्रम्—संपादक, गो० भैरवगिरिजी। प्रकाशक, श्री० नर्मदेश्वर ओझा। वार्षिक मूल्य २) है। मुजफ़्फ़रपुर से निकलता है।

गत आषाढ़ की अमावास्या से यह संस्कृत का पाक्षिक पत्र निकलने लगा है। इसके तीन मास के अंक हमारे सामने हैं। विद्यार्थियों को आधे दामों में ही मिल सकता है। इस पुण्य-कार्य के लिये उक्त पत्र के प्रकाशक को अनेक धन्यवाद!

हमारी धारणा है कि प्रत्येक भारतीय को कुछ-न-कुछ संस्कृत अवश्य जाननी चाहिए। ब्राह्मण हो, चाहे चांडाल; श्रोत्रिय हो या भील, भारतीय होने के नाते उसे थोड़ा-बहुत संस्कृतज्ञ अवश्य होना चाहिए। हमारी सम्मति में भारत और भारतीयता की श्वास-नली में संस्कृत-भाषा ही प्राणप्रद वायु का स्थान ग्रहण कर सकती है। भारतीयत्व के जीवन-मरण का सूत्र संस्कृत के साथ अति घनिष्ठ रूप से संबद्ध है। अतएव हम सदा सतृष्ण नेत्र और उत्कंठापूर्ण अधीर हृदय से भारतवर्ष में संस्कृत के प्रचार की प्रतीक्षा किया करते हैं। संस्कृत के समाचारपत्र को देखकर हमे अत्यंत आह्लाद होता है। 'सूनृतवादिनी' और 'संस्कृतचंद्रिका' की अब भी हमें रह-रहकर याद आती है।

परंतु संस्कृत के पत्रों में हम एक त्रुटि बराबर देखते रहे हैं। समाचारपत्र या मासिक पत्रों के संपादन के लिये जिस सामयिक ज्ञान की आवश्यकता है, संस्कृतज्ञ विद्वान् प्रायः उससे बिलकुल कोरे होते हैं; और जिन्हें यह ज्ञान है, उन्हें संस्कृत-भाषा पर यथेष्ट अधिकार नहीं। ऐसे विद्वानों के नामों से उँगलियों की संख्या भी पूरी नहीं होती, जो अच्छे संपादक होने की योग्यता रखते हुए संस्कृत के भी विशेषज्ञ हों। प्रायः इसी कारण संस्कृत के पत्रों की अकाल-मृत्यु होती है, और दोष रक्खा जाता है बेचारे ग्राहकों के सिर! 'देवो दुर्बलघातकः!'

हम 'मित्रम्' के संपादक महाशय की सेवा में एक नम्र निवेदन करना चाहते हैं। हमारी राय में सामयिक शब्दों का संस्कृत-अनुवाद करते समय अर्थ की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए, और शब्द-सारूप्य की ओर उससे कम। केवल शब्द-सारूप्य के नाम पर अर्थ का अनर्थ कर डालना उचित नहीं है। "मालवीयमहोदयानां जोरधार (ज़ोरदार) भाषणम्" "वृत्तिशशल्यकारः" (ब्रिटिश सरकार) "शल्यकारस्य दृष्टिर्दलिता विद्यते" "शल्यकारस्य हारो (हार) ऽभविष्यत्" "महिलासु जोषः" (जोश) "स्त्रियः पेटे (पेट में) पीडा" (१५ आषाढ़ की संख्या में) इत्यादिक रूपों से हम सहमत नहीं हैं। क्या 'ज़ोरदार' के लिये संस्कृत में कोई शब्द नहीं है? क्या 'जोरधार' से अभीष्ट अर्थ निकलता है? क्या 'ज़ोर'-शब्द बनाने में व्याकरण-संबंधी कठिनता नहीं है?

फिर इस शब्द की कल्पना करने का प्रयोजन ? क्या 'शल्यकार' का अर्थ 'सरकार' हो सकता है ? यदि कांग्रेस की सरकार स्थापित हुई, तो क्या आप उसे भी 'शल्यकार' ही कहेंगे ? क्या बदलना, हार, जोश और पेट के लिये संस्कृत में शब्द नहीं हैं ? यदि हैं, तो ऐसे वाहियात (बदलिता, हारः, पेटे, जोषः) शब्द गढ़ने की क्या आवश्यकता ? प्रसिद्ध संज्ञा-शब्दों का ऐसा रूपांतर करना भी हम अनुचित समझते हैं, जिससे व्यवहार में अड़चन पड़े। दौलतराम को संपत्ति-राम, खुदाबख़्श को ईश्वरदत्त और पीलीभीत को पीत-भित्ति लिखना हम पसंद नहीं करते। हमें याद है, एक बार संस्कृतचंद्रिका के संपादक ने सूचना निकाली थी कि लोग अपने पतों का संस्कृत-अनुवाद करके न लिखा करें; इससे चिट्ठी पहुँचना असंभव हो जाता है। 'मित्रम्' के मुखपृष्ठ पर मुज़फ़्फ़रपुर के बजाय 'मोदफल-पुरम्' लिखा देखकर हमें वही बात याद आ गई।

हमारी सम्मति में तो इस समय संस्कृत का एक ऐसा कोष बनने की आवश्यकता है, जिसमें नवीन व्यावहारिक शब्दों का ठीक-ठीक अनुवाद हो, और प्राचीन विद्यमान शब्दों का दिग्दर्शन। यदि श्रीयुक्त मालवीय-जी हिंदू-विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग से इस कार्य को पूरा करावें, तो एक गौरवास्पद उपयोगी कार्य की पूर्ति हो। हमारा मतलब यह नहीं है कि जो कुछ सामग्री आपके यहाँ मौजूद है, उसी से जैसे-तैसे इसे पूरा कर डालें। यदि आप आवश्यकता समझें, तो काशी तथा अन्यत्र के विद्वानों से सहायता लेकर इसे पूरा करें; परंतु कार्य ऐसा हो, जिसे लोग प्रतिष्ठा और आदर की दृष्टि से देख सकें। यद्यपि 'अखिल भारतवर्षीय संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन' के लिये भी यह एक गौरव-पूर्ण कर्तव्य था, परंतु उसे इतनी फ़ुरसत ही कहाँ, जो ऐसी बातों की ओर आँख उठाकर देख भी सके।

हम हृदय से इस पत्र की उन्नति चाहते हैं।

× × ×

संस्कृत-रत्नाकर—संस्कृत का प्रसिद्ध मासिक पत्र। वार्षिक मूल्य ३) । विद्यार्थियों और संस्कृत-सम्मेलन के सदस्यों से २॥) । नमूने की प्रति का मूल्य चार आने। मिलने का पता—श्रीचंद्रशेखर शास्त्री, एग्ज़िबिशन रोड, पटना।

सं० १९६१ में यह पहले जयपुर से प्रकाशित हुआ था, और दस वर्ष तक बराबर निकलता रहा। संस्कृत और हिंदी-जगत् के सुपरिचित, प्रगल्भ विद्वान् पं० गिरधर शर्मा शास्त्री, व्याकरणाचार्य के संपादकत्व में इसने अच्छी प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा प्राप्त की। दुर्दैववश कुछ समय से यह अंतर्द्धान हो गया था। रत्नाकर को रेगिस्तान में सूखता देख सरस-हृदय संस्कृतानुरागियों के मानस-मीन तड़पने लगे थे। हमें यह सूचित करते हुए हर्ष होता है कि अब 'संस्कृत-सम्मेलन' के मुखपत्र के रूप में रत्नाकर ने फिर दर्शन दिए हैं। संस्कृत मासिक पत्रिका 'शारदा' के संपादक, प्रसिद्ध और अनुभवी विद्वान् पं० चंद्रशेखरजी शास्त्री के संपादकत्व में पटने से अब फिर यह प्रकाशित होने लगा है। गत आश्विन की प्रथम संख्या हमारे सामने है। इसमें संपादकीय टिप्पणियों और छोटी-छोटी कविताओं के अतिरिक्त ३ लेख प्रधान हैं—एक तो संस्कृत-साहित्य-सम्मेलन के गत काशीवाले अधिवेशन की स्वागत-समिति के सभापति, महामान्य श्रद्धेय पं० मदनमोहन मालवीयजी का, दूसरा कविरत्न पं० अखिलानंदजी शास्त्री का, और तीसरा श्रीमती श्याम-सुंदरीदेवी स्मृति-तीर्थ, साहित्य-सरस्वती, विद्याभूषण, विशारद का। लेख सब एक-से-एक बढ़कर हैं।

श्रद्धास्पद श्रीमालवीयजी के लेख के संबंध में कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाना है। अँगरेज़ी और हिंदी के समान ही आपको संस्कृत-भाषा पर भी आधिपत्य प्राप्त है। भावों के प्राचुर्य के लिये सरस्वतीजी सदा आपके अनुकूल रहा करती हैं। दूसरा लेख संस्कृत-साहित्य और उसके लालित्य पर है। यद्यपि इसमें संस्कृत के लालित्य के संबंध में बहुत कम कहा गया है, तथापि यह लेख आद्यंत लालित्य का नमूना है। सुंदर गद्य-पद्यमय है। अंतिम लेख के संबंध में इतना कहना ही पर्याप्त है कि इसके लिये इसकी लेखिका श्रीमती श्याम-सुंदरीदेवीजी को संस्कृत-सम्मेलन की ओर से गत वर्ष सुवर्ण-पदक दिया गया है। इस लेख से उत्कृष्ट संस्कृतज्ञता के साथ-साथ देवीजी की प्रतिभा-संपत्ति और विवेचना-शक्ति का भी अच्छा परिचय मिलता है। श्रीपं० रामावतार शर्मा साहित्याचार्य, एम्० ए० का भी कोष-विषयक एक महत्त्व-पूर्ण लेख इसमें है। परंतु वह अभी अपूर्ण है। संस्कृतज्ञ जनता को इसे अवश्य अपनाना चाहिए।

शालग्राम शास्त्री



इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों के सुबीते के लिये प्रति मास नई-नई उत्तमोत्तम हिंदी-पुस्तकों के नाम देते रहते हैं। गत मास में नीचे-लिखी पुस्तकें अच्छी प्रकाशित हुईं—

(१) "सती रुक्मिणी", श्रीनवजादिकलाल श्रीवास्तव-लिखित सचित्र पौराणिक उपाख्यान। मूल्य २); रेशमी जिल्ददार २॥)

(२) "हिंदी-खिलौना", पं० रामजीलाल शर्मा द्वारा प्रकाशित सचित्र हिंदी-बाल-कहानी। मूल्य ॥=)

(३) "सुयेनच्वांग", श्रीजगन्मोहन वर्मा-लिखित चीनी-यात्री का भारत-यात्रा-वर्णन। मूल्य १).

(४) "सती दमयंती", श्रीमती लीलावतीदेवी-लिखित शिक्षाप्रद, सचित्र धार्मिक कहानी। मूल्य ॥=)

(५) "चिकित्सा-चंद्रोदय (पाँचवा भाग)", श्रीहरिदास वैद्य-लिखित चिकित्सा का ग्रंथ। मूल्य ५), जिल्ददार का ५॥)

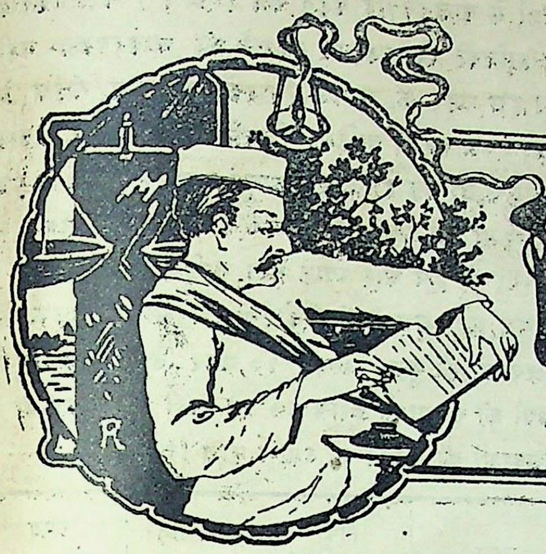
(६) "बाल-रामायण", श्रीगिरिजाकुमार घोष-लिखित बालकों का मन बहलानेवाली और शिक्षाप्रद पुस्तक। मूल्य ॥-)

(७) "व्रत-कथा", पं० चंद्रशेखर पाठक-लिखित। सचित्र धार्मिक कथाएँ। मूल्य १॥), रेशमी जिल्द २)

(८) "चंद्रहास", बाबू मैथिलीशरण गुप्त-लिखित पौराणिक रूपक। द्वितीय संस्करण। मूल्य ॥)

(९) "मौलाना रूम और उनका काव्य", लेखक, श्रीजगदीशचंद्र वाचस्पति। आलोचनात्मक पुस्तक। मूल्य १)

(१०) "वीर अभिमन्यु", पं० राधेश्याम-लिखित नाटक। तृतीय संस्करण। मूल्य १)



विविध विषय

१. लखनऊ में एक सार्वजनिक बृहत् हिंदी-पुस्तकालय की आवश्यकता

लखनऊ एक ऐसी जगह है, जिसे उर्दू का गढ़ कहा जाता है। बात है भी बहुत कुछ सच। यहाँ कुछ दिन पहले लोग हिंदी का पढ़ना-लिखना अथवा अपने लड़कों को हिंदी पढ़ाना अपने लिये लज्जा की बात समझते थे। स्कूलों में हिंदी-पढ़नेवाले लड़कों से उर्दू-पढ़नेवाले लड़कों की संख्या कहीं अधिक होती थी। लखनऊ में हिंदी-प्रेमियों की संख्या इतनी कम थी कि वह उँगलियों पर गिनी जा सकती थी। हिंदी-पुस्तकों का सिर्फ़ एक प्रकाशक—नवलकिशोर-प्रेस—था, जिसने एक ज़माने में हिंदी की अनेक उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित करके सुलभ मूल्य में बेचीं; लेकिन उसका ध्यान भी विशेष रूप से उर्दू ही की ओर था। हिंदी की उत्कृष्ट, सुंदर छपी हुई और समयानुकूल (up-to-date) पुस्तकों के प्रकाशन की कौन कहे, अन्यत्र प्रकाशित हिंदी-पुस्तकों के मिलने का भी कोई प्रबंध लखनऊ में नहीं था। यद्यपि समय-समय पर कई सज्जनों ने पुस्तकों के प्रकाशन और विक्रय का कार्य लखनऊ में शुरू किया अवश्य, लेकिन यहाँ यथेष्ट ग्राहक न मिलने के कारण उन्हें इसमें सफलता नहीं मिली—विवश होकर उन्हें अपना यह कार्य बंद कर देना पड़ा। उत्कृष्ट, उपयोगी और सुंदर पुस्तकों के प्रकाशन और विक्रय के प्रबंध का अभाव तो था ही, साथ ही यहाँ कुछ दिन पहले कोई अच्छा प्रभावशाली पत्र भी नहीं निकलता था। हर्ष की बात है कि अब ईश्वर की कृपा से यह बात नहीं है। गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय के स्थापित होने और माधुरी के निकलने से इस दिशा में बहुत कुछ कार्य अग्रसर हो गया है, यद्यपि अब भी ज़ोरदार साप्ताहिक और दैनिक पत्र का अभाव बना हुआ है।

सर्वसाधारण में किसी भाषा या भाव का प्रचार करने के मुख्य साधन दो ही माने जाते हैं—पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तकें और व्याख्यान। जब से यहाँ सम्मेलन का अधिवेशन हुआ, उसमें स्वर्गीय राय देवीप्रसादजी-जैसे विद्वानों के हिंदी की उपयोगिता पर विद्वत्ता-पूर्ण भाषण हुए, तब से यहाँ की जनता में हिंदी का प्रेम बढ़ने लगा है। यहाँ से निकलनेवाले सहयोगी आनंद, नामशेष अवध-समाचार (नवलकिशोर-प्रेस द्वारा प्रकाशित), नागरी-प्रचारक, अवधवासी और लक्ष्मण आदि पत्रों ने भी समय-समय पर अच्छा काम किया है। माधुरी और गंगा-पुस्तकमाला के द्वारा लखनऊ में हिंदी-प्रचार का कार्य काफ़ी तौर से हो रहा है। परंतु एक साधन की कमी अब भी बनी हुई है, और वह कमी बहुत बड़ी है। जो लोग धनी हैं, वे पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों को ख़रीदकर पढ़ सकते हैं; पर निर्धन जनता—जिसकी संख्या बहुत अधिक है—धनाभाव के कारण, शौक़ होने पर भी, मन मारकर रह जाती है। वह न तो पुस्तकें ही मँगा सकती है, और न पत्र-पत्रिकाएँ ही। अगर ऐसे लोग पेट मारकर कुछ ख़र्च भी करें, तो अधिक-से-अधिक एक-आध पत्र और पुस्तक ख़रीद सकते हैं। इन लोगों

में हिंदी का प्रेम और ज्ञान बढ़ाने का एक-मात्र साधन सार्वजनिक पुस्तकालय ही है। हमारे इतने बड़े लखनऊ-शहर में अच्छी पब्लिक-लाइब्रेरी का न होना यहाँ के धनी-मानी हिंदी-प्रेमियों के लिये कलंक और लज्जा की बात है। हिंदी-सभा और प्रबोधिनी-परिषद् आदि संस्थाएँ इस क्षेत्र में जो कुछ यथाशक्ति कर रही हैं, वह प्रशंसनीय होने पर भी यथेष्ट नहीं है। लखनऊ में एक बृहत् सार्वजनिक पुस्तकालय की बहुत बड़ी आवश्यकता है। हम लखनऊ के हिंदी-प्रेमी कार्य-कर्ताओं से अपील करते हैं कि वे यथासंभव बहुत शीघ्र यह काम शुरू कर दें। चेष्टा करने से यहाँ के धनी रईसों तथा ताल्लुक़ेदारों से यथेष्ट धन की सहायता मिल सकती है। हमें आशा है, बहुत शीघ्र लखनऊ में हिंदी के एक बृहत् सार्वजनिक पुस्तकालय की स्थापना का सुसमाचार प्रकाशित करने का सौभाग्य हमें प्राप्त होगा।

× × ×

२. लखनऊ में बाल-विवाह और विधवाओं की संख्या

सन् १९२१ ई० की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट से मालूम होता है कि लखनऊ में बाल-विवाह की प्रथा खूब प्रचलित है, और विधवाओं की संख्या भी कुछ कम नहीं है। नीचे के कोष्ठक में १५ वर्ष तक के विवाहित लड़कों और दस वर्ष तक की विवाहित लड़कियों की संख्या दी जाती है—

धर्म	१५ वर्ष तक के विवाहित लड़कों की संख्या	१५ वर्ष तक के कुल लड़कों में से फ़ी सैकड़ा कितने विवाहित हैं?	१० वर्ष तक की विवाहित लड़कियों की संख्या	१० वर्ष तक की कुल लड़कियों में से फ़ी सैकड़ा कितनी विवाहित हैं?
हिंदू	८८०	४·४	३११	२·३
मुसलमान	७५५	४·७	१५०	१·५
अन्य	२९	२·५	७	१·०
जोड़	१,६६४	४·४	४६८	१·९

इस कोष्ठक से मालूम पड़ता है कि इस शहर में लड़कों का बाल-विवाह मुसलमानों में अधिक होता है, और लड़कियाँ हिंदुओं में कम उमर में अधिक संख्या में ब्याही जाती हैं। ईसाइयों और आर्यसमाजियों में बाल-विवाह बहुत कम होता है। बाल-विवाह की हानियों को यहाँ पर दुहराने की आवश्यकता नहीं है। इस शहर के समाज-सुधारकों को इस संबंध में ऐसा प्रयत्न करना चाहिए, जिसमें यहाँ पर बाल विवाह बिलकुल ही बंद हो जाय। क़ानून द्वारा भी बाल-विवाह बंद किया जा सकता है। नवीन व्यवस्थापक-सभा के सदस्यों को इस ओर ध्यान देना चाहिए।

गत मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट के अनुसार लखनऊ में विधवाओं की कुल संख्या १७,८८२ है, जो कि संपूर्ण स्त्रियों की संख्या के क़रीब १७ फ़ी सदी के बराबर है। विधवाओं की संख्या का ब्योरा नीचे दिया जाता है—

उमर	हिंदू-विधवाएँ	मुसलमान-विधवाएँ	अन्य विधवाएँ
० से ५ वर्ष	१	१	×
५ से १० ,,	२०	१९	×
१० से १५ ,,	६४	२६	१
१५ से ३० ,,	७९३	८०३	४७
३० से ऊपर	९,७४५	६,०८०	२८२
मीज़ान	१०,६२३	६,९२९	३३०
फ़ी सैकड़े कितनी स्त्रियाँ विधवा हैं	१८	१६	११

ऊपर दिए हुए कोष्ठक से मालूम होता है कि विधवाओं की संख्या हिंदुओं ही में सबसे अधिक है। हिंदू-बाल-विधवाओं की संख्या, अर्थात् ऐसी विधवाओं की संख्या, जिनकी उमर १५ वर्ष से भी कम है, ८५ है। इनमें से २१ ऐसी हैं, जिनकी उमर १० वर्ष से भी कम है, और एक अभागी तो ऐसी, जिसकी उमर पाँच वर्ष भी नहीं है। समाज-सुधारकों को इन विधवाओं की दशा सुधारने की ओर शीघ्र ही यथेष्ट ध्यान देना चाहिए।

× × ×

३. चतुर्दश हिं० सा० स० के सभापति

हमारे पाठकों को यह मालूम ही हो चुका है कि हिं० सा० स० के आगामी, चतुर्दश, वार्षिक अधिवेशन का सभापतित्व माननीय द्विवेदीजी ने स्वीकार नहीं किया। शरीर निर्बल और रोग-ग्रस्त होने के कारण ही आप

अपने भक्तों को निराश करने के लिये विवश हुए। हमारा और अन्य बहुत-से लोगों का यह ख़याल था कि हिंदी के अनन्य ऐतिहासिक लेखक, विद्वद्वर पं० गौरीशंकर-हीराचंद-जी ओझा को ऐतिहासिक नगरी दिल्ली के अधिवेशन में सभापति बनाना उचित होगा। परंतु जब समाचार मिला कि ठेठ हिंदी का ठाठ, अधखिला फूल, प्रिय-प्रवास आदि गद्य-पद्य-पुस्तकों के प्रणेता, कविवर पं० अयोध्या-सिंहजी उपाध्याय "हरिऔध" सभापति चुन लिए गए, और उन्होंने सभापति बनना स्वीकार भी कर लिया, तब भी हमें संतोष ही हुआ। हरिऔधजी सर्वथा इस सम्मान के योग्य हैं। अगली संख्या में हम आपका चित्र और परिचय प्रकाशित करेंगे। हमें आशा है, आपके सभापतित्व में दिल्ली का अधिवेशन अच्छी सफलता प्राप्त करेगा, और आपके भाषण में हिंदी-साहित्य-सेवियों को नई और महत्त्व की बातें सुनने को मिलेंगी।

× × ×

४. काकिनाड़ा का विशेषाधिवेशन

काकिनाड़ा में हिं० सा० स० का विशेष अधिवेशन सकुशल समाप्त हो गया। उत्तर-भारत के प्रतिनिधि बहुत कम पहुँच सके थे, फिर भी दक्षिण-भारत के उत्साही हिंदी-प्रेमियों की उपस्थिति अच्छी रहने से ख़ासी चहल-पहल रही। निर्वाचित सभापति श्रीमान् बाबू राजेंद्र-प्रसादजी अचानक अस्वस्थ हो जाने के कारण उपस्थित नहीं हो सके। आपकी जगह पर प्रसिद्ध देश-भक्त श्रीयुक्त जमनालालजी बजाज ने सभापति का सब काम किया। सम्मेलन में कुल आठ प्रस्ताव पास हुए। पहले प्रस्ताव में मुंशी देवीप्रसादजी मुंसिफ़, पं० प्रतापनारायणजी वाजपेयी, पं० गोविंदनारायणजी मिश्र, पं० प्यारेलालजी मिश्र बार-ऐट-ला, श्रीयुत कोमाराजु लक्ष्मणराव एम्० ए० आदि हिंदी-प्रेमी, साहित्य-सेवी सज्जनों की मृत्यु पर शोक और उनके कुटुंब के साथ सहानुभूति प्रकट की गई। यह प्रस्ताव सभापति ने पेश किया था। दूसरे प्रस्ताव में सम्मेलन की ओर से आंध्र, तामिल, केरल और कर्नाटक-प्रांतों के निवासियों से यह अनुरोध किया गया कि वे लोग अपने बालकों को मातृभाषा के साथ ही राष्ट्र-भाषा पढ़ाने का भी प्रबंध करें। प्रस्ताव श्रीयुत रंगैया ने, अनु-मोदन श्रीयुत कृष्णवर्मा ऐयंगर ने और समर्थन श्रीयुत राधामोहन-गोकुलजी ने किया। तीसरे प्रस्ताव में मैसूर और हैदराबाद के विश्वविद्यालयों और आंध्र-देश के भावी विश्वविद्यालय के अधिकारियों से यह प्रार्थना की गई कि वे अपने पाठ्य-क्रम में हिंदी को भी स्थान दें, और उसके पठन-पाठन का उचित प्रबंध करें। प्रस्ताव श्रीनागेश्वरजी ने और अनुमोदन प्रो० जगत्नारायणलालजी ने किया। चौथे प्रस्ताव के दो अंश थे। पहले अंश में कांग्रेस से प्रार्थना की गई कि वह देश की पूर्ण स्वतंत्रता को लक्ष्य में रखकर और अँगरेज़ी-भाषा की गुलामी को तुरंत छोड़कर राष्ट्र-भाषा में अपनी कुल कारवाई करने का प्रबंध करे, और इस प्रकार देश के इस कलंक को मिटाकर वह भाषा-संबंधी स्वतंत्रता के विषय में देश के लिये पथ-प्रदर्शक बने। दूसरे अंश में कांग्रेस के सभी सदस्यों से प्रार्थना की गई कि वे जैसे खद्दर-धारण को अपना कर्तव्य समझते हैं, वैसे ही राष्ट्र-भाषा के व्यवहार को भी अपना कर्तव्य समझें। प्रस्ताव श्रीरामदास गौड़ ने और अनुमोदन प्रो० जगत्नारायणलालजी ने किया। पाँचवें प्रस्ताव में मदरास-प्रांत की म्युनिसिपल कौंसिलों, ज़िला-बोर्डों तथा अन्य संस्थाओं से अनुरोध किया गया कि वे अपने स्कूलों में राष्ट्र-भाषा को दूसरी भाषा के तौर पर पढ़ाने का प्रबंध करें। प्रस्ताव श्रीनरसिंहराव ने और अनुमोदन श्रीपति वेंकटनरसिंहमाचार्यजी ने किया। छठे प्रस्ताव में दक्षिण-प्रांत की ज़िला कांग्रेस-कमेटियों तथा ताल्लुक़ा-कांग्रेस-कमेटियों से उन संस्थाओं की सहायता करने का अनुरोध किया गया, जिनका उद्देश हिंदी-प्रचार है। प्रस्ताव श्रीयुत हरिहर शर्मा ने, अनुमोदन श्रीरामानंद शर्मा ने और समर्थन श्रीनागेश्वर-रावजी ने किया। सातवें प्रस्ताव में आंध्र, तामिल, नाड़, केरल और कर्नाटक के निवासियों से अनुरोध किया गया कि वे अपने-अपने प्रांत में राष्ट्र-भाषा का प्रचार करने के लिये प्रांतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन स्थापित करने की व्यवस्था करें। प्रस्ताव देश-भक्त कोंडावेंकटप्पैयाजी ने किया। आठवें प्रस्ताव में पिछले छः वर्षों में सम्मेलन की ओर से दक्षिण-भारत में किए गए हिंदी-प्रचार पर, और दक्षिण-भारत की जनता ने उक्त कार्य का आदर करते हुए जो सहयोग किया—सहायता दी, उस पर संतोष प्रकट किया गया, और सब प्रचारकों तथा सहायकों को धन्यवाद दिया गया। प्रस्ताव श्रीयुत सुंदर-लालजी ने, अनुमोदन श्रीयुत माखनलालजी चतुर्वेदी ने

और समर्थन श्रीयुत मथुराप्रसादजी ने किया। इसमें संदेह नहीं कि यह विशेष अधिवेशन जिस उद्देश्य को लेकर किया गया था, उसकी पूर्ति इन प्रस्तावों से अच्छी तरह होती है। जिन उत्साही कार्यकर्ताओं के अनवरत परिश्रम से मदरास में हिंदी और हिंदी-प्रेम का ऐसा प्रचुर प्रचार हुआ है कि कांग्रेस के अधिवेशन में भिन्न-भाषा-भाषी श्रीयुत कोंडावेंकटप्पैयाजी के मुख से हिंदी में भाषण सुनने को मिला, वे वास्तव में हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं। सम्मेलन का यह विशेषाधिवेशन सफलता के साथ संपन्न हुआ। हम आशा करते हैं कि शीघ्र ही मदरास-प्रांत में सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन धूमधाम के साथ होगा।

× × ×

५. स्वागत-समिति के सभापति का भाषण

हिं० सा० स० के विशेषाधिवेशन में स्वागत-समिति के सभापति श्रीयुत नागेश्वररावजी का भाषण छोटा, मगर मार्के का हुआ। आपने राष्ट्र के लिये एक राष्ट्र-भाषा और एक राष्ट्र-लिपि होने की आवश्यकता पर बड़ा ज़ोर दिया। आपका संपूर्ण भाषण छापने के लिये स्थान नहीं है। अतएव उसके कुछ ही मार्के के ख़ास-ख़ास अंश हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

"सामान्य संस्कार में लगे हुए भारतवासियों के लिये स्वदेशी हिंदी—हिंदुस्थानी—का सामान्य भाषा होना जैसे आसान है, वैसे विदेशी अँगरेज़ी-भाषा का होना आसान नहीं है। लोगों के सामान्य संस्कार में लगे रहने के अलावा भाषा के बंधुत्व के ख़याल से भी हिंदी—हिंदुस्थानी—ही सामान्य भाषा होने लायक़ प्रतीत होती है।"

"भारत को एक राष्ट्र बनाने के लिये भाषा की तरह एक लिपि का होना भी ज़रूरी है। वह लिपि वही हो सकती है, जिसमें सभी शब्द आसानी से और ठीक-ठीक लिखे जा सकें। ऐसी लिपि मेरी समझ में नागरी ही है। महात्माजी की इच्छा है कि हिंदू संस्कृत के साथ उर्दू और मुसलमान उर्दू के साथ नागरी सीखकर भाषा का प्रचार और हिंदी तथा उर्दू में मेल बढ़ावें। दक्षिणवासी हम लोगों को संस्कृत और हिंदी का अभ्यास करने के लिये नागरी-लिपि का अभ्यास कर लाभ उठाना है—चाहे हम उर्दू न भी सीखें।"

"हिंदी—हिंदुस्थानी—भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा है। यह देश-भर में आसानी से समझी जाती है। ३० करोड़ में २५ करोड़ भारतवासी इस भाषा को आसानी से समझ लेते हैं। इतने लोगों से समझी जानेवाली इस भाषा को भगवान् ही ने राष्ट्र-भाषा बनाया है। अँगरेज़-सरकार करोड़ों रुपए ख़र्च करके डेढ़ सौ वर्ष में भारतवर्ष के १,००० में केवल ६ ही लोगों को अँगरेज़ी सिखा सकी है। हज़ारों वर्ष प्रयत्न करने से भी अँगरेज़ी कभी राष्ट्र-भाषा नहीं हो सकती। आज तक जो अँगरेज़ी सिखाई गई, वह भी विज्ञान के लिये नहीं, काम-धंधों ही के लिये। अँगरेज़ी को राष्ट्र-भाषा बनाने के प्रयत्न निरर्थक होकर भारत के विकास के नहीं, किंतु भारत के बंधन को मज़बूत बनाने में सहायक बने हैं। पाश्चात्य संबंध ने हमारे जीवन-प्रवाह को धीमा बनाया। भाषा, भाव, विज्ञान, रहन-सहन, इन सबमें हम पराधीन हो गए। हमारा लक्ष्य पाश्चात्य रीति, पाश्चात्य सभ्यता ही है। विना इसके हमारा जीना ही मानो असाध्य है। मिल्टन, बर्न आदि पर हमारी जो श्रद्धा है, वह आंध्र-कवि पोतना, भारतीय कवि तुलसीदासजी आदि महानुभावों पर नहीं है। घरबार बेचकर बीसों वर्ष के अभ्यास से हम जिस भाषा का अभ्यास करते हैं, उससे हमारे विज्ञान और आत्मोद्धार की नहीं, किंतु पराधीनता और बंधन की पुष्टि होती है।"

"आंध्र-नवयुवकों में हिंदी के प्रति जो प्रेम है, वही इस विशेषाधिवेशन का कारण है। भाषा के आधार पर भारतवर्ष का जो प्राकृतिक विभाग था, उसे निकालकर इस अँगरेज़ी सरकार ने देशी भाषाओं को कमज़ोर बना दिया। एक ही प्रांत में तीन-तीन, चार-चार भाषाएँ हों, तो किसी भी भाषा की उन्नति होना कैसे संभव है? इसी से क़रीब-क़रीब सभी भाषाएँ क्षीण दशा को प्राप्त हुईं। गाँधीजी ने कांग्रेस द्वारा फिर से भाषा के अनुसार ही राष्ट्र का विभाग कराकर प्रजा-जीवन को उत्तेजित किया। जनता को मातृभाषा द्वारा ही काम चलाने का ढंग मालूम हुआ। 'अँगरेज़ी के विना काम ही न चलेगा,' ऐसा ख़याल ही उठ गया। आंध्र-देश में तो बहुत दिनों से ही मातृभाषा द्वारा काम चलाने का क्रम जारी है। कांग्रेस ने आंध्र-देश को अलग एक प्रांत माना। इसी से आज कांग्रेस का और इस सम्मेलन के विशेषाधिवेशन का काकिनाड़ा में होना संभव हुआ।"

"हिंदी-प्रचार के काम में कुछ बातें सोचने की हैं। यद्यपि भाषा-प्रचार और साहित्य-प्रचार में संबंध अवश्य है, तथापि उत्तर की तरह दक्षिण में भी भाषा और साहित्य, दोनों का प्रचार होना मुश्किल है। दक्षिण में हिंदी-भाषा का प्रचार व्यवहार की व्यापकता के लिये आवश्यक है, न कि साहित्य की व्यापकता के लिये। आंध्र-देश में साहित्य की व्यापकता मातृभाषा—आंध्र-भाषा—द्वारा ही होना चाहिए। इस लक्ष्य को दूर करने से जो बुरे नतीजे निकलते हैं, वे अँगरेज़ी के प्रचार से हमें अच्छी तरह मालूम हो गए हैं।"

"हिंदू और मुसलमान का मेल, भारत की सब जातियों की एकता, स्वधर्म की रक्षा और स्वाधीनता, इन सबका साधन है हिंदी का प्रचार। × × × महात्माजी ने कहा है कि राष्ट्रीयता का आधार चर्ख़ा और हिंदी हैं। एक बाह्य बंधन को और दूसरा भीतरी बंधन को तोड़नेवाला है। जब तक हम इन दोनों बंधनों से छुटकारा न पावें, तब तक स्वराज्य-सुखानुभव के पात्र हम नहीं हो सकते।"

× × ×

६. सभापति का भाषण

सभापति बाबू राजेंद्रप्रसाद का भाषण अत्यंत मनोहर और सारगर्भित है। उसमें विचारने, मनन करने और सीखने की यथेष्ट सामग्री है। भाषण राष्ट्रीयता की भावना से शराबोर है। आपका मत है, और उसे आपने अच्छी तरह प्रमाणित किया है, कि राष्ट्रीयता के विकास से ही किसी भाषा के साहित्य की उन्नति होती है। इस बात को आपने योरप के, ग्रीस के और इस्लाम के इतिहास से पुष्ट किया है। भारत के भूत-काल और योरप तथा अमेरिका के वर्तमान-काल से भी आपने इसे सिद्ध किया है। आपका मत है कि मातृभाषा या राष्ट्र-भाषा के पतन से ही पराधीनता और उसके पुनरुज्जीवन से स्वतंत्रता का जन्म होता है। इसी प्रसंग में आप लिखते हैं—

"यह एक जानी हुई बात है कि जब एक देश दूसरे देश पर अपना आधिपत्य जमा लेता है, तब उस आधिपत्य को स्थायी बनाने के लिये वह विजित प्रजा के विचारों तथा भावों को इस प्रकार बदल देना चाहता है, जिसमें वह अपने गौरव को भूल जाय और केवल विजेता के ही गौरव तथा महत्ता की स्मृति रख सके। इसके उदाहरण सभी विजित जातियों के इतिहासों में पाए जाते हैं। भारतवर्ष भी मुसलमानी आधिपत्य-काल से आज तक इसी नीति का शिकार बनता चला आया है। × × × अँगरेज़ी-राज्य ने अपना प्रभाव हमारे जीवन के हरएक कोने-कोने में पहुँचाया। यद्यपि अँगरेज़ी-शिक्षा और अँगरेज़ी-भाषा का विस्तार इतना अधिक नहीं हुआ है, जितना हो सकता था, फिर भी उनका प्रभाव बहुत गहरा पड़ा। उसी का फल यह है कि आज अँगरेज़ी-शिक्षित समाज दुर्बल और परावलंबी हो रहा है। वह अँगरेज़ी सभ्यता अँगरेज़ी प्रतिभा, अँगरेज़ी शक्ति, अँगरेज़ी साहित्य और अँगरेज़ी गौरव के भार से इतना दब गया है कि वह अपने देश के इतिहास, साहित्य और शक्ति पर भरोसा नहीं कर सकता। हाल का दूसरा उदाहरण एक छोटी-सी घटना में पाया जाता है। युरोपीय महासमर के बाद जब सुलह की बात हो रही थी, तब फ़्रांस ने सीरिया पर अपना आधिपत्य क़ायम रखने के सबूत में यह भी कहा कि उसने उस देश में बहुतेरे विद्यालय स्थापित कर दिए हैं। इसका अर्थ यही हो सकता है कि फ़्रांस ने मानसिक आधिपत्य जमाना आरंभ कर दिया है, इसलिये उसे राजनीतिक आधिपत्य भी प्राप्त करने का हक़ हो गया। इसीलिये विजित जातियों ने स्वराज्य के संग्राम में पहले विजेता के मानसिक आधिपत्य से अपनेको छुड़ाने का प्रयत्न किया है।"

इसके उदाहरण में हमारा और आयर्लैंड का इतिहास पेश करके आयर्लैंड की गेलिक-भाषा-प्रचारिणी सभा का ज़िक्र करते हुए आपने टामस डेविस के जो वाक्य उद्धृत किए हैं, वे प्रत्येक भारतवासी के लिये विचार-णीय हैं। वे वाक्य ये हैं—"मातृभाषा-हीन जाति जाति नहीं कही जा सकती। मातृभाषा की रक्षा देश की सीमा की रक्षा से भी अधिक आवश्यक है; क्योंकि यह पर्वत और नदी से भी अधिक बलवती है। जब तक भाषा आयरिश रहेगी, हृदय और मर्म भी आयरिश रहेगा। यह निश्चय जान रक्खो कि आयरिश-भाषा-भाषी आयर्लैंड सर्वदा स्वतंत्र रहेगा। क्या तुम जानते हो कि हमारी मातृभाषा क्या है? यह निर्जीव शब्दों का कोष भी है, अपरिचित चिह्नों का भांडार भी है। यह जाति के जीवन की साक्षात् मूर्ति है। यह जातीय शक्ति की वह प्रतिभा

है, जो जाति के विचारों और उसके हृदय-स्थित भावों को सुरक्षित रखकर उन्हें दूसरों पर प्रकट करती है। हमारे इतिहास, विचार और प्राचीन साहित्य-भांडार की यह कुंजी है। इससे भी अधिक यह उस प्रभावशाली साहित्य का दिग्दर्शन कराती है, जो माननीय विचारों और प्रबल वासनाओं से परिपूर्ण है। हा! उसी को हम भुलाना चाहते हैं। वास्तव में आयर्लैंड का भावी साहित्यिक और मानसिक गौरव मातृभाषा के भविष्य पर ही निर्भर है। × × × हमारी संतान के लिये मस्तिष्क की स्फूर्ति को बढ़ाने का उपाय मातृभाषा के अध्ययन से बढ़कर दूसरा नहीं है। × × × यह भाषा हृदय को उत्तेजित करती है, मन को दृढ़ बनाती है, आत्मा को शुद्ध रखती है। × × × इससे मन के विचार उन्नत होंगे, मन और आत्मा में बल आवेगा। × × × हमारी मातृभाषा हमें अपने जातीय गौरव की ओर आकर्षित कर पुनः आयरिश बनावेगी। हममें वह फिर से आत्म-गौरव, शक्ति तथा भक्ति-भाव का संचार करेगी, जिसकी समुपस्थिति गिरी हुई जाति के हृदय में अपने जातित्व के भावों को उत्पन्न करती है, और साथ-ही-साथ सांसारिक विभव के मार्ग को भी खोल देती है।"

एक आयरिश देश-भक्त के ये उद्गार हमें बहुत बड़ी उच्च शिक्षा देते हैं। ये उद्गार केवल आयरिशों ही के काम के नहीं हैं, हरएक पराधीन जाति के लिये बहुमूल्य हैं। इसके बाद सभापतिजी कहते हैं—"क्या हम भारत-वासी इन भावों को समझ सकते हैं? क्या आज आयर्लैंड की स्वतंत्रता इसी प्रचार का फल-स्वरूप नहीं है? केवल आयर्लैंड की भाषा का ही पुनरुत्थान नहीं हुआ, बल्कि उसके साहित्य की भी वृद्धि हुई, और राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ-इस वर्ष आयर्लैंड के कवि येट्स ने संसार के सर्वोच्च पुरस्कार (नोबेल प्राइज़) को भी अपनी कविता के लिये प्राप्त किया है।"

इसके बाद आपने यह सिद्ध किया है कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता एकता के विना नहीं हो सकती, और उस एकता का एक-मात्र साधन एक राष्ट्र-भाषा का होना है। सब प्रांतों के लोग अपनी प्रांतीय भाषाओं में ही साहित्य का निर्माण करें। केवल राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रिय कामों में एक सर्वव्यापी भाषा—राष्ट्र-भाषा—का उपयोग किया जाय। सब प्रांत परस्पर भावों के आदान-प्रदान में माध्यम-स्वरूप राष्ट्र-भाषा का व्यवहार करें। जो काम अब तक अँगरेज़ी की सहायता से किया जाता था, वह अब हिंदी के द्वारा किया जाय। यहाँ पर आपने यह सिद्ध किया है कि इस काम के लिये अँगरेज़ी नहीं, हिंदी ही उपयुक्त है। आपने यह भी स्पष्ट कह दिया है कि कांग्रेस अगर अब तक अँगरेज़ी की जगह हिंदी का व्यवहार करती, तो आज उसका आंदोलन देश-भर में—अपढ़ किसानों तक में—फैल गया होता, और अपूर्व सफलता के साथ ही उसको शक्ति भी और अधिक मात्रा में प्राप्त हो चुकी होती। इसके बाद आपने यह दिखलाया है कि हिंदी का सीखना बहुत सहज और सुगम है। आगे चलकर आप हिंदी-भाषा बोलनेवालों और साहित्यिकों से कहते हैं कि वे हिंदी को व्याकरण के बंधन से कुछ-कुछ मुक्त कर दें। उसकी आधुनिक रचना-प्रणाली और वाक्य-विन्यास में भी आवश्यकतानुसार क्लिष्टता का परिहार किया जाय। उसमें आवश्यकतानुसार नए शब्द और मुहावरे भी गढ़े जायँ। अन्य भाषाओं के शब्द भी ले लिए जायँ। कठिन संस्कृत-शब्द ठूँसना भी ठीक न होगा। बहु-प्रचलित अन्य भाषाओं के शब्द न निकाल डाले जायँ। इसके बाद आपने हिंदी-प्रचार के कुछ उपाय बतलाए हैं; आधुनिक विश्वविद्यालयों में हिंदी को स्थान मिलने की सिफ़ारिश की है; जिन भिन्न-भाषा-भाषी प्रांतों में अभी हिंदी-प्रचार की चेष्टा नहीं की जा सकी, वहाँ हिंदी-प्रचार पर ध्यान देने की बात कही है। मतलब यह कि आपके भाषण का प्रत्येक शब्द ध्यान देने योग्य है। भाषण सुंदर, संक्षिप्त, सुबोध और विद्वत्तापूर्ण है। राष्ट्रीयता की दृष्टि से ऐसा उत्तम भाषण अभी तक हिं० सा० स० के मंच पर से नहीं दिया गया था। हमें खेद है कि हम स्थानाभाव के कारण आपका संपूर्ण भाषण नहीं छाप सके। हम अपने पाठकों से अनुरोध करते हैं कि वे अन्य दैनिक या साप्ताहिक पत्रों में यह भाषण आद्योपांत अवश्य पढ़ें।

× × ×

७. एक बंगाली लेखक का भ्रम

बँगला-भाषा की मासिक पत्रिका भारती ४७ वर्ष की पुरानी मासिक पत्रिका है। इसका संपादन योग्यता-पूर्वक किया जाता है। इसमें प्रायः सभी अच्छे बँगला के लेखक लिखा करते हैं। इसकी पौष की संख्या में

श्रीसूर्यप्रसन्न वाजपेयी चौधुरी महाशय का एक छोटा-सा, डेढ़ पृष्ठ का, लेख निकला है, जिसका शीर्षक है "हिंदी-भाषा श्रो साहित्य"। इतनी व्यापक भाषा और उसके साहित्य की आलोचना क्या, उल्लेख भी इतने छोटे लेख में नहीं किया जा सकता। मालूम नहीं, उक्त लेखक ने क्यों यह व्यर्थ प्रयास किया है। उनको अगर हिंदी-भाषा और उसके साहित्य की इतनी जानकारी है कि वह उस पर कुछ लिख सकें, तो उन्हें एक विस्तृत प्रबंध लिखना चाहिए। आपने एक बात ठीक नहीं लिखी। आपने लिखा है कि बाबू मैथिलीशरण गुप्तजी 'सनेही' के छद्म नाम से कविता करते हैं। यह हिंदी के पाठकों से छिपा नहीं है कि बाबू साहब प्रायः अपनी कविता किसी उपनाम से नहीं करते। हाँ, 'मधुप' नाम से उनकी कुछ अनुवाद-रचनाएँ निकली हैं। 'सनेही'जी हैं पं० गयाप्रसादजी शुक्ल, जो दूसरे 'त्रिशूल'-उपनाम से राष्ट्रीय कविताएँ करते हैं। आशा है, भारती के संपादक महोदय आगामी संख्या में यह भूल सुधार देंगे। इसके अलावा उक्त लेखक ने हिंदी के वर्तमान बड़े लेखकों और कवियों के नाम भी उद्धृत किए हैं। यह नामावली इतनी अपूर्ण है कि इसका उल्लेख न होना ही अच्छा था। जान पड़ता है, लेखक ने सरस्वती की कोई एक संख्या सामने रखकर यह नामावली लिखी है। इससे बंगाली पाठकों में यह भ्रांत धारणा फैल सकती है कि हिंदी में अच्छे लेखक केवल १०-२० ही हैं, और वे हिंदी-जगत् को तुच्छ दृष्टि से देख सकते हैं। इस समय हिंदी में उच्च कोटि के लेखकों और कवियों की संख्या १००-१५० से कम न होगी।

× × ×

८. कुछ जानने लायक बातें

१—हाल में विलायत के ग्रीनविच शहर की आबज़र्वेटरी में हिसाब करके यह बतलाया गया है कि आकाश में अंदाज़न् एक अरब साठ करोड़ नक्षत्र हैं। उनमें से सिर्फ़ ३-४ हज़ार नेत्र-गोचर होते हैं। कुछ दिन पहले फ़ैंकलिन आदम्स ने आकाश की २०६ फ़ोटो लेकर देखा था कि उनमें साढ़े पाँच करोड़ नक्षत्रों का पता लगता है।

२—लकड़ी का बुरादा प्रायः फेंक ही दिया जाता है। किंतु आरे से चीरी गई लकड़ी का बुरादा अगर गऊ को सानी में एक-तिहाई खाने को दिया जाय, तो उसका दूध गाढ़ा होता है, और अधिक भी निकलता है। इस विषय में कृषि-विभाग की रिपोर्ट इस प्रकार है—७० दिन तक कुछ गउओं को यह बुरादा (पाइन-लकड़ी का) कटिया या भूसे और खली के साथ दिया गया, और उसे गउएँ मज़े से खा गईं। किंतु एक-तिहाई से अधिक बुरादा मिलाने से गउएँ उसे शौक़ से नहीं खातीं। बुरादा खिलाने से दूध अधिक और गाढ़ा हुआ।

३—हाल में अमेरिका—केलीफ़ोर्निया—में एक झील का पता लगा है। वैज्ञानिकों का कहना है कि उससे सोना निकल सकता है। उस झील का नाम है 'मानो-लेक'। झील के चारों ओर पहाड़ है। दक्षिण और पूर्व में बहुत लंबा-चौड़ा समतल मैदान है। दक्षिण ओर कुछ दूर पर ज्वालामुखी के चिह्न भी देखे जाते हैं। झील का आकार गोल है। उसके भीतर कई छोटे-छोटे टापू भी हैं। लेकिन उनमें कोई आदमी नहीं बसता। झील के पानी में अलकालिन साल्ट (खार) इतना अधिक है कि वह पानी मुँह से लगाया नहीं जा सकता। एक ज़माने में इसके आसपास खान थी; इस समय उसका ध्वंसावशेष-मात्र है। वैज्ञानिकों ने हिसाब लगाकर बतलाया है कि इस झील में ९ करोड़ टन पानी है, और उसमें स्वर्णरेणु १०० टन में ४० भाग है। अर्थात् इस झील के पानी में २ अरब पौंड क़ीमत का सोना है। ५० साल तक जल निकालने से १०० में १० हिस्सा पानी घटेगा। सौ प्लैंटों (ज़मीन के टुकड़ों) में इसका काम करने से साल में १० लाख पौंड क़ीमत का सोना मिल सकता है। वहाँ के वैज्ञानिक और व्यवसायी लोग मिलकर यह सोना निकालने का उद्योग कर रहे हैं।

४—विलायत में बड़े-बड़े वैज्ञानिक डॉक्टरों ने जाँच करके राय दी है कि मनुष्य को आरोग्य होने के लिये अब दवा खाने की ज़रूरत न होगी। रोग चाहे जैसा असाध्य और बड़ा हो, वह केवल घाम में बिठलाकर दूर किया जा सकता है। सबेरे सूर्योदय होते ही रोगी को बाहर बिठला दो। जब तक सूर्य की किरणें असह्य न हो उठें, तब तक घाम में रहना चाहिए। घाम की तेज़ी में रोग-नाशक गुण नहीं है, बाल-सूर्य की आभा में ही यह गुण है। समुद्र के किनारे खुली हवा में सबेरे २-३ घंटे रोगी को बिठलाकर छः महीने में क्षय-रोग अच्छा

किया गया है। इसी कारण तो हमारे यहाँ प्रातःकाल सूर्योदय के समय संध्योपासन करने का विधान है। पर आजकल संध्या-उपासना सब ढोंग और मूर्ति-पूजकता का कुसंस्कार समझी जाती है।

५—विलायत में एक ऐसी सवारी बनी है, जो जल, स्थल और आकाश में समान-रूप से काम देती है। वह एकसाथ हवाई जहाज़, नाव, और गाड़ी है। एक वैज्ञानिक ने इसे 'पहिया-पंखवाली नाव' कहा है। यह पहियों से स्थल में दौड़ सकती है, उचककर नदी में नाव की तरह चल सकती है, और पक्षियों की तरह पंख फैलाकर आकाश में उड़ सकती है। (भारती)

६—विलायत का लंदन-गज़ट २५८ वर्ष का पुराना पत्र है। द्वितीय चार्ल्स के समय में इसका जन्म हुआ था।

७—न्यूयार्क के पास एक गिर्जे की मरम्मत की जा रही है। उसकी सब महिला-मेंबरों ने यह काम अपने ऊपर ले लिया है। इस गिर्जे की एक ७५ फ़ीट ऊँची दीवार पर तरह-तरह के चित्र अंकित करने का काम जिस औरत ने अपने हाथ में लिया है, उसका अभी विवाह हुआ है, और अवस्था केवल २० वर्ष की है! (शिशिर)

८—प्राणदंड जिन अपराधियों को मिलता है, उनकी हत्या करने की प्रथा भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार की थी। कहीं फाँसी पर चढ़ाते थे, कहीं गोली मार देते थे, कहीं ज़हर दे देते थे इत्यादि। किंतु सभ्यता की वृद्धि के साथ ही कई देशों में प्राणदंड बंद करने की चेष्टा हो रही है। कहीं सफलता मिली है, और कहीं नहीं मिली। किंतु यह चेष्टा प्रायः सभी सभ्य-देशों में हो रही है कि प्राणदंड-प्राप्त असामी की मृत्यु सुख की हो, अर्थात् उसे मरते समय कष्ट न हो। इस सुख-मृत्यु की सबसे अच्छी व्यवस्था नेवादा-राज्य में की गई है। वहाँ अपराधी जिस समय निद्रित होता है, उस समय उसके घर में ज़हरीली गैस भरकर वह मार डाला जाता है। उसे मालूम भी नहीं होता।

९—विलायत में विज्ञापन के नए-नए ढंग ईजाद किए जाते हैं। विज्ञापन में वहाँ के लोग बेशुमार रक़म ख़र्च करते हैं। हाल में, विलायत में, एक कोयले के व्यापारी ने एक नया ढंग निकाला है। उसने चार ज़िंदा कछुओं की पीठ पर C.O.K.E., ये चार अँगरेज़ी के अक्षर अलग-अलग लिखकर उन्हें एक जगह रख दिया है, और घोषणा कर दी है कि जो कोई इन चारों कछुओं को मिलाकर एक लाइन में इस क्रम से खड़ा कर देगा कि 'Coke'-शब्द कंपोज़ हो जाय, उसे एक मन कोयला मुफ़्त दिया जायगा। नतीजा यह हुआ कि उसकी दूकान पर हर वक़्त भीड़ लगी रहती है, और मुफ़्त में नोटिस होता है। अब तक एक मनुष्य को सफलता मिली है, और वह तत्काल एक मन कोयला मुफ़्त पा गया। (बिजली)

× × ×

९. भिन्न-भिन्न जातियों की आयु का परिमाण

अभी हाल में प्रवासी प्रो० तारकनाथदास ने अमेरिका—शिकागो—के 'नेशनल् हेल्थ'-नामक पत्र में एक सूची प्रकाशित की है। उसमें पृथ्वी के बड़े-बड़े भिन्न-भिन्न देशों के निवासियों की आयु की परस्पर तुलना की है। इस लेख के मूल-लेखक हैं डॉक्टर डबालिन। वह सूची इस प्रकार है—

देश का नाम	सन्	पुरुष की आयु	स्त्री की आयु
न्यूज़ीलैंड	१९०६—१०	...५९·१७ ...	६१·७६
आस्ट्रेलिया	१९०१—१०	...५५·२० ...	५८·५४
डेन्मार्क	१९०६—१०	...५४·९० ...	५७·९०
नार्वे	१९०१—१०	...५४·८४ ...	५७·७२
स्वीडन	१९०१—१०	...५४·५३ ...	५६·९८
हालैंड	१९००—०९	...५१·०० ...	५३·४०
अमेरिका (यु० प्र०)	१९००—१०	...४६·३२ ...	५२·५४
स्विटज़रलैंड	१९०१—१०	...४९·२५ ...	७२·१६
इँगलैंड	१९०१—१०	...४६·५३ ...	५२·३८
फ़्रांस	१८९८—१९०३	...४५·७४ ...	४९·१३
जर्मनी	१९०१—१०	...४४·८२ ...	४८·३३
इटली	१९०१—१०	...४४·२४ ...	४४·८३
जापान	१८९३—१९०३	...४३·९७ ...	४४·८५
भारत	१९०१—१०	...२२·५९ ...	२३·३१

डॉक्टर डबलिन की राय है कि हरएक देश की जातीय, सामाजिक, आर्थिक और स्वास्थ्य की अवस्था के अनुसार वहाँ के लोगों की आयु कम या अधिक हुआ करती है। ऊपर की सूची से भी यही बात सिद्ध होती है। पृथ्वी के सब सभ्य-देशों के मुक़ाबले में हम भारतीयों की आयु बहुत ही कम है। न्यूज़ीलैंड से लेकर हालैंड तक के लोगों की आयु ५० के भीतर है। अमेरिका (यु० प्र०), जर्मनी,

इँगलैंड, फ़्रांस आदि देशों के लोगों की आयु ४० के औसत में है। किंतु भारतवासियों की आयु एकदम २० की संख्या पर टिकी हुई है। इसका अर्थ यह है कि हम अन्य-देशवासियों की अपेक्षा आधी ही आयु पाते हैं। क्या यह स्थिति शोचनीय और भयानक नहीं है? आयु की इस कमी का कारण स्पष्ट है। हमारे यहाँ असंख्य भाई और बहनें भूखी ही सो रहती हैं। उन्हें रूखा-सूखा मोटा नाज भी नहीं नसीब होता। उधर जो संपन्न हैं, वे नशा खा-पीकर, दुराचार करके रोगों को बुलाते और असमय में ही कूच कर जाते हैं। इसी तत्त्व को समझकर महात्माजी ने एक ओर चर्ख़ा चलाकर ग़रीबों की जीविका चलाने का उपाय निकाला था, और उधर पंचायत प्रचार करके, नशे को नेस्तनाबूद करके, समाज से दुराचार उठाकर अपमृत्यु, रोग आदि का रास्ता बंद करना चाहा था। पर देश के दुर्भाग्य से आज उनका नाम लेकर लड़नेवाले बहुत हैं, मगर उनका काम लेकर आगे बढ़नेवाले नज़र नहीं आते। अगर यही हाल रहा, तो भारतवासियों की आयु का औसत १०-१५ रह जायगा, और वे दिन-दिन विनाश के मुख में अग्रसर होते जायँगे।

× × ×

१०. भारत की मुख्य जातियों की संख्या

भारत-सरकार ने एक पुस्तक प्रकाशित की है। उसमें 'भारत की मुख्य जातियाँ' नाम का एक परिच्छेद है, जिसमें सन् १९२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार निम्नलिखित सूची प्रकाशित हुई है—

जाति	संख्या
अहीर	९०,३२,८६१
बनिए (अग्रवाल समेत)	२७,२५,७१३
बढ़ई	९,९६,०४७
ब्राह्मण (सब)	१,४२,५४,९९१
भूमिहार	११,६७,३७३
भील	१७,९५,८०८
चमार	१,१२,२४,५५७
धोबी	२०,१९,८५४
डोम	४,२४,९५०
दुसाध	११,६७,६८६
गड़रिया	१२,९९,७७०
गोंड़	२९,०२,५९२
गूजर	२१,७९,४८५
नाई	२८,६१,७७४
जाट	७३,७४,८१७
जोगी	६,६१,४६०
काछी	१२,३५,९५५
कहार	१७,०७,२२३
कलवार	९;६६,१३१
कायस्थ	२३,१२,२३५
केवट	११,५०,४२७
कोइरी	१६,८०,६१५
कोली	२४,९९,०१४
कुम्हार	३३,५३,०२९
कुनबी	३१,८९,७९६
कुर्मी	३७,८५,९९८
लोहार	१५,४४,७०२
माहर	३०,०२,५१६
माली	१८,७५,६१०
मोची	९,२३,७१४
नमःशूद्र	२१,७२,८२३
नायर	१३,११,११२
पासी	१४,८८,५८२
राजपूत	८७,७२,५१८
संथाल	२२,६५,२८२
सुनार	११,३७,६११
ताँती	९,९८,४७६
तेली	४१,५७,८४०
पठान	६५,४७,८६८
सैयद	१४,६०,७४८
शेख़-जुलाहा	३,६०,५७,८७९
कसाई	२,३६,७५८

इस सूची को देखने से तीन जातियों की संख्या क्रमशः सबसे अधिक देख पड़ती है। शेख़ों, ब्राह्मणों और चमारों की। किंतु शेख़ों में जितना एका है, परस्पर सहानुभूति है, उतनी ब्राह्मणों में नहीं है। ये गुण तो ब्राह्मणों की अपेक्षा चमारों में भी अधिक हैं। ब्राह्मण—सब देशों के ब्राह्मण—अगर मिलकर मेल और सहानुभूति के उपासक बन जायँ, तो उनकी

सम्मिलित शक्ति इस अवनति के ज़माने में भी बहुत कुछ अपना और देश का उपकार कर सकती है। परंतु सभी ब्राह्मणों में एकता होने की बात तो सुदूर-पराहत है, उनके भिन्न-भिन्न विभागों में भी मेल नहीं नज़र आता। कान्यकुब्ज कान्यकुब्ज की उन्नति नहीं देख सकता, गौड़ गौड़ का शत्रु हो रहा है, सारस्वत सारस्वत पर वार करने को तैयार है। ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा-प्रतिपत्ति, उन्हीं की करतूतों से, दिन-दिन नष्ट होती जा रही है। अगर समग्र ब्राह्मण-जाति परस्पर एकता-बद्ध होकर अपना संशोधन और उद्धार नहीं करेगी, तो वह और भी लोगों की नज़रों से गिरती चली जायगी। चमार-जाति भी संख्या में बड़ी है। हर्ष की बात है कि अब उच्च जाति के हिंदू उन्हें सामाजिक सुविधाएँ देकर—अपना कर—हिंदू-समुदाय को सुसंगठित और शक्तिशाली बनाने के लिये तैयार देख पड़ते हैं। ऊपर की सूची में खत्रियों का उल्लेख नहीं देख पड़ता। क्या खत्री-जाति मुख्य जाति नहीं है? रस्तोगी, तमोली, हलवाई, लोधे, बारी आदि जातियों की भी संख्याएँ नहीं दी गई हैं। यदि इनका मुख्य जातियों में शुमार नहीं किया गया, तो दुसाध, गड़रिया, जोगी आदि का क्यों उल्लेख है?

× × ×

११. भारतीयों का प्रवास-प्रेम

जो जातियाँ उन्नति की इच्छा रखती हैं, उद्योग के द्वारा अपनी आर्थिक स्थिति अच्छी बनाना चाहती हैं, उनके लिये अपना जन्म-स्थान छोड़कर प्रवास करना अनिवार्य है, ख़ासकर इस प्रतियोगिता के युग में। भारत में शिल्प-वाणिज्य का अभाव-सा है। यहाँ खेती या नौकरी, ये ही दो आय के मार्ग हैं। किसानों को तो प्रवास की आवश्यकता नहीं होती, मगर नौकरी-पेशा लोगों को जीविका की खोज में अक्सर बाहर जाना पड़ता है। उनके अलावा अनेक आदमी दूकानदारी के लिये भी प्रवास करते हैं। पहली श्रेणी के लोगों में बंगाली और दूसरी श्रेणी के लोगों में मारवाड़ी मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त अन्य जातियों के लोगों में प्रवास का प्रेम बहुत कम पाया जाता है। हमारे लखनऊ-शहर का नंबर तो इस बात में बहुत ही बढ़ा-चढ़ा हुआ है। यहाँ ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत अधिक है, जो लखनऊ-शहर या लखनऊ ज़िले में पैदा हुए हैं। नीचे के कोष्ठक में यह दिखलाया गया है कि लखनऊ के निवासियों में से कितने लखनऊ-ज़िले अथवा युक्त-प्रांत के अन्य ज़िलों में, कितने भारत के अन्य भागों में और कितने विदेश में उत्पन्न हुए हैं—

जन्म लेने का स्थान	पुरुष (हज़ार)	स्त्री (हज़ार)	जोड़ (हज़ार)	फ़ी सैकड़ा
(१) लखनऊ-ज़िले में पैदा हुए	१००.०	८५.६	१८५.६	७७.२
(२) लखनऊ के आस-पास के १२ ज़िलों में पैदा हुए	२०.८	११.५	३२.३	१३.४
(३) युक्त-प्रांत के अन्य ज़िलों में पैदा हुए	७.१	४.४	११.५	४.८
(४) भारत के अन्य प्रांतों में पैदा हुए	४.८	२.८	७.६	३.१
(५) भारत के बाहर अन्य देशों में पैदा हुए	२.८	०.६	३.४	१.५
कुल	१३५.५	१०४.९	२४०.४	१००.०

इस कोष्ठक से मालूम होता है कि लखनऊ में युक्त-प्रांत में जन्म लिए हुए व्यक्तियों की संख्या फ़ी सैकड़े ९५ से भी अधिक है। इनमें से ७७ फ़ी सैकड़े व्यक्ति ऐसे हैं, जिनका जन्म लखनऊ-ज़िले में ही हुआ है। यहाँ अन्य स्थानों के लोगों की कमी का एक कारण यह भी है कि लखनऊ में कानपुर का-सा रोज़गार नहीं है, और नौकरी की भी कम गुंजाइश है। यदि कानपुर की तरह लखनऊ भी औद्योगिक शहर होता, तो शायद बहुत-से लोग बाहर से यहाँ आकर बसे होते। भारत के अन्य प्रांतों से आए हुए व्यक्तियों में बंगालियों की संख्या ही सबसे अधिक है। अन्य देशों से आए हुए व्यक्तियों में अँगरेज़ों की संख्या अधिक है। इनमें से अधिकांश सरकारी नौकर, फ़ौज के सिपाही और रेलवे के नौकर हैं।

× × ×

१२. "बिहारी-रत्नाकर"

हिंदी-संसार को—विशेषकर बिहारी-सतसई के प्रेमियों को—यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि बिहारी-सतसई की जिस उत्कृष्ट टीका—"बिहारी-रत्नाकर"—को प्रकाशित देखने के लिये वे एक वर्ष से लौ लगाए हुए हैं, उसका छपना शुरू हो गया है। हमारे पास ऐसे ढेरों पत्र आए हैं और आ रहे हैं, जिनमें बिहारी की कविता के रसिक पाठकों ने पूछा है कि यह पुस्तक कब तक प्रकाशित होगी, कहाँ से प्रकाशित होगी, छपने पर मूल्य क्या होगा इत्यादि। उन सबको अलग-अलग उत्तर देना असंभव है। अतः हम उसके संबंध में यह नोट लिखकर एकत्र सबको उत्तर देना ठीक समझते हैं।

इसमें संदेह नहीं कि "बिहारी-रत्नाकर" टीका बिहारी-सतसई की अब तक प्रकाशित सब टीकाओं से श्रेष्ठ होगी। इसमें कविवर बाबू जगन्नाथदासजी "रत्नाकर" ने बहुत परिश्रम किया है। वैसे तो २१ वर्ष से भी पहले स्व० पं० अंबिकादत्त व्यास ने अपने "बिहारी-बिहार"-की भूमिका में इस पुस्तक के शीघ्र छपने की घोषणा की थी, परंतु उस समय जो कुछ लिखा गया था, वह नष्ट हो जाने से इतनी देर हो गई। बिहारी-सतसई पर रत्नाकरजी को फिर से परिश्रम करना पड़ा है। इसमें प्रत्येक दोहों के विशेष शब्दों की व्याख्या की गई है और दोहों पर अवतरण (Context), अर्थ, और नोट दिए गए हैं। दोहों के पाठ पाँच प्राचीनतम पुस्तकों से, जो कि बड़ी कठिनता से प्राप्त की गई हैं, शुद्ध किए गए हैं। यह बात निस्संकोच कही जा सकती है कि बिहारी-सतसई के ऊपर जितना परिश्रम रत्नाकरजी ने किया है, उतना आज तक किसी भी टीकाकार ने नहीं किया। आधे से भी अधिक दोहों के अर्थों में और टीकाकारों की अपेक्षा विशेषता है।

माधुरी की पिछली संख्याओं में इस टीका का कुछ नमूना निकल चुका है। उसी से पाठकों को इसकी उत्कृष्टता और उपयोगिता का पता लग गया होगा। टीका नवलकिशोर-प्रेस में, बढ़िया टाइपों में, सुंदर ऐंटिक काग़ज़ पर, बड़ी सज-धज के साथ छप रही है; अंदाज़न् ५-६ महीने में छपकर तैयार हो जायगी। इसमें कई रंगीन और सादे चित्र रहेंगे, जिनमें बिहारी और उनके आश्रयदाता जयशाह के, बहुत परिश्रम से प्राप्त, असली चित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। माधुरी के आकार के ४-५ सौ पृष्ठों के, सुंदर रेशमी जिल्द-सहित, इस भारी ग्रंथ का मूल्य भी यथा-संभव सुलभ रक्खा जायगा। वह ५) से अधिक न होगा। जो सज्जन इसके ग्राहक होना चाहें, वे एक कार्ड मैनेजर गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय को भेजकर सूचना दे दें; क्योंकि यह ग्रंथ वहीं से प्रकाशित हो रहा है।

× × ×

१३. गत राष्ट्रीय सप्ताह में भिन्न-भिन्न सभाएँ

प्रत्येक वर्ष कांग्रेस के अवसर पर अनेक सभा-समितियों के अधिवेशन हुआ करते हैं। इस बार भी हुए थे। पाठकों की जानकारी के लिये प्रत्येक सभा, उसके सभापति और स्वागत-समिति के सभापति का नाम नीचे लिखा जाता है। कांग्रेस के सभापति मौलाना महम्मदअली, स्वा०-स० के सभापति श्रीयुत कौंडावेंकटप्पैयाजी। ख़िलाफ़त-कानफ़रेंस के सभापति मौलाना शौक़तअली और स्वा०-स० के सभापति नाकुंडा मालिम बादशाह। जमैयतुलउल्मा के सभापति मौलाना हुसैन अहमद और स्वा०-स० के सभापति मौलाना महम्मद उमर। इंडियन सोशल-कानफ़रेंस के सभापति सर टी० सदाशिव ऐयर और स्वा०-स० के सभापति मि० सोमनाथ राव। अखिल भारतीय विद्यार्थी-कानफ़रेंस के सभापति श्रीयुत सी० आर० दास। एकेश्वरवादी सम्मेलन के सभापति पं० वेणीमाधवदासजी। अखिल भारतवर्षीय ज्योतिषी-सम्मेलन के सभापति पं० बेराइया-जी। अखिल भारतवर्षीय पुस्तकालय-कानफ़रेंस के सभापति मि० एम्० आर० जयकर और स्वा०-स० के सभापति मि० धर्मराव। हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति श्रीयुत बाबू राजेंद्रप्रसादजी, स्थानापन्न सभापति श्रीयुत जमनालालजी बजाज़ और स्वा०-स० के सभापति श्रीयुत नागेश्वररावजी। अखिल भारतीय स्वेच्छासेवक-सम्मेलन के सभापति पं० जवाहरलाल-जी नेहरू और स्वा०-स० के सभापति श्रीयुत नागेश्वर-रावजी। अखिल भारतीय आध्यात्मिक सम्मेलन के सभापति वी० डी० ऋषि। अखिल भारतीय संगीत-सम्मेलन के सभापति मि० विष्णुदिगंबरजी। खादी-शिल्प-प्रदर्शिनी के सभापति आचार्य प्रफुल्लचंद्ररायजी। स्वराज्य-पार्टी-सम्मेलन के सभापति मि० सी० आर०

दास । इनके अलावा अखिल भारतीय महिला-सभा आदि कई संस्थाओं के भी अधिवेशन हुए थे ।

× × ×

१४. राजा परमानंदजी का स्वर्गवास

राजा परमानंदजी का नाम उनके मंत्री होने के बाद से बहुत प्रसिद्ध हो गया था । आप उदार विचार के ज़मींदार थे । पहले आप ख़फ़ीफ़ा के जज लखनऊ में रह चुके थे । फिर क्रमशः काश्मीर-राज्य तथा इंदौर-राज्य के प्रधान जज हुए । इधर मई मास में युक्त-प्रांत की गवर्नमेंट ने आपको शिक्षा और स्वायत्त शासन-विभाग के मंत्री का पद देकर आपका सम्मान किया था। खेद है कि आप इस पद पर बहुत दिन तक काम नहीं कर सके । गत २६ दिसंबर, बुधवार को प्रातःकाल आपकी मृत्यु हो गई । आपको न्युमोनिया-रोग हो गया था । आप मुरादाबाद के राजा जयकृष्णदास सी० आई० ई० के पुत्र थे, और आपने अलीगढ़ में शिक्षा प्राप्त की थी । २७ दिसंबर के प्रांतीय सरकारी गज़ट का एक विशेष अंक निकालकर गवर्नर साहब ने आपके लिये शोक प्रकट किया है । राजा परमानंदजी ने सभी पदों पर योग्यता के साथ अपना कार्य किया । हम ईश्वर से आपकी आत्मा के लिये शांति की प्रार्थना करते हुए आपके परिवार से सहानुभूति प्रकट करते हैं । आपकी जगह राय राजेश्वर बली मंत्री नियुक्त हुए हैं, जो हिंदी-प्रेमी और उच्च शिक्षा-प्राप्त ज़मींदार हैं ।



स्वर्गीय राजा परमानंद

× × ×

१५. पं० प्रतापनारायणजी वाजपेयी का वैकुंठवास

बड़े खेद की बात है कि इन होनहार नवयुवक देशभक्त की मृत्यु केवल २८ वर्ष ही की आयु में, नौकरशाही की निर्दयता के कारण, हो गई । वाजपेयीजी का जन्म पटने में हुआ था । आप कुलीन कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । १६ वर्ष की अवस्था से ही आप देश-सेवा के काम में लग गए थे । सा० स० के इंदौरवाले अधिवेशन में सभापति महात्माजी ने दक्षिण-भारत में हिंदी-प्रचार की आवश्यकता बतलाई । महात्माजी ने सम्मेलन के निश्चया-

नुसार अपने सुपुत्र श्रीयुत देवदासजी गाँधी और स्वामी सत्यदेवजी को इस कार्य के लिये मदरास भेजा। सन् १९१९ में—अर्थात् अगले वर्ष—महात्माजी की आज्ञा से वाजपेयीजी भी मदरास में हिंदी-प्रचार के लिये गए। तब से बराबर आप वहीं काम करते रहे। त्रिचिनापल्ली आपके कार्य का केंद्र-स्थान थी। आप अनेक प्रकार के कष्टों का सामना करते हुए सच्चे वीर की तरह कर्तव्य के मैदान में डटे रहे। आपने 'हिंदी का हार' नाम की एक हिंदी-अँगरेज़ी की पुस्तक भी हिंदी सीखने की इच्छा रखनेवाले मदरासियों के लिये लिखी थी। आप शरीर के दुबले-पतले होने पर भी हृदय के वीर थे। आपकी आत्मा में बल, आत्म-विश्वास और दृढ़ता थी। १९२२ में महात्माजी की गिरफ़्तारी होने पर आपने त्रिचिनापल्ली में एक व्याख्यान दिया। उसे राजद्रोह-पूर्ण समझकर सरकार ने आपको एक साल की कड़ी सज़ा दी। जेल में भी आप अनेक क़ैदियों को हिंदी सिखाकर अपना पुनीत कार्य करते ही रहे। गत एप्रिल में आप जेल से छूटे। छूटते ही आपने फिर एक व्याख्यान दिया, जिससे चिढ़कर सरकार ने आपको फिर एक साल की कड़ी सज़ा दे दी। आपका स्वास्थ्य पहले ही से ठीक न था। अब की विशेष रूप से स्वास्थ्य बिगड़ गया। आपको क्षय-रोग हो गया। समाचार-पत्रों ने आपकी रिहाई के लिये आंदोलन भी किया, पर सरकार ने ध्यान नहीं दिया। आपसे क्षमा-प्रार्थना के लिये कई बार कहा गया, पर आपने घृणा के साथ अस्वीकार कर दिया। अंत को छः महीने बाद, ३ सितंबर की शाम को, आप बिना किसी शर्त के छोड़ दिए गए। शायद उन्हें मृतप्राय देखकर ही सरकार ने छोड़ा था। अंत को ५ दिसंबर के दिन एक बजे आपका प्राणांत हो गया। आपके एक छः वर्ष का बालक है, जो कि मातृहीन भी है। ईश्वर उसे चिरंजीवि और अपने पिता का अनुयायी बनावें। वाजपेयीजी की आत्मा के लिये शांति की प्रार्थना व्यर्थ है। वह अगर शांति के अधिकारी न होंगे, तो और कौन होगा? वाजपेयीजी ने जीवन-भर अपने कर्तव्य का पालन किया, अब हिंदी-संसार को भी उनके प्रति अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। हमारी राय में उनके स्मारक-स्वरूप एक बृहत् हिंदी-पुस्तकालय की स्थापना होनी चाहिए, जिससे उनका प्रिय हिंदी-प्रचार का कार्य होता रहे। अगर सम्मेलन अपने भावी बृहत् संग्रहालय के साथ वाजपेयीजी के नाम को संयुक्त कर दे, तो बहुत अच्छा हो।

× × ×

१६. झूठे विज्ञापन

विज्ञापन देना या लिखना भी एक कला है। विलायत में विज्ञापन लिखने की शिक्षा ही अलग, ख़ास तौर पर, दी जाती है। विज्ञापन का उद्देश्य है जनता में अच्छी और उपयोगी वस्तुओं का प्रचार करके लाभान्वित होना। एक रुपए की चीज़ के १०) रु० दाम रखकर या निकम्मी चीज़ को काम की बतलाकर, झूठी प्रशंसा से, जनता को ठगना जालसाज़ी ही में दाख़िल है। हम यह नहीं कहते कि विलायत में ऐसे ठग विज्ञापन-दाता नहीं हैं। वहाँ भी होंगे, पर कम। इधर हमारे पास कई विज्ञापन-दाताओं के बारे में शिकायतें आई हैं कि उनके विज्ञापन झूठे हैं, वे ग़लत बातें लिखकर जनता को ठगते हैं, रुपए के माल के चार-चार रुपए वसूल करते हैं, और शिकायत करने पर चुप्पी साध जाते हैं। हम अपने देश के ऐसे विज्ञापन-दाताओं से प्रार्थना करते हैं कि वे अपनी यह ठग-विद्या छोड़ दें। उनके कारण सच्चे विज्ञापन देनेवालों को भी हानि पहुँचती है। फिर क़लई खुल जाने पर उनको भी कोई नहीं पतियायगा। कुछ लोग पत्र-संचालकों को इसके लिये दोष देते हैं कि वे क्यों झूठे विज्ञापनों को स्थान देते हैं। हमारी राय में पत्र-संचालकों का इसमें उतना दोष नहीं है। वे सर्वज्ञ नहीं हैं, जो जान लें कि अमुक विज्ञापन झूठा है। देशी पत्रों को तो विशेष रूप से देशी दूकानदारों, डॉक्टरों और व्यापारियों का ही भरोसा है। विदेशी व्यापारी, डॉक्टर आदि उन्हें विज्ञापन नहीं देते। वे अपने भाई-बंधुओं ही के पत्रों में विशेष रूप से विज्ञापन दिया करते हैं। देशी पत्र बिना विज्ञापन की आय के और भी नहीं चल सकते, यद्यपि उन्हें अब भी इतने विज्ञापनों से यथेष्ट आय नहीं होती। डॉ० एस्० के० बर्मन्, सुख-संचारक कंपनी, अमृतधारा, नगेंद्रनाथ सेन इत्यादि २०-२५ देशी विज्ञापन-दाता ही ऐसे हैं, जो सभी पत्रों में विज्ञापन छपाते हैं। इन लोगों के विज्ञापन भी विश्वास-योग्य हैं। ऐसी दशा में देशी पत्र बेचारे, घाटे की मात्रा घटाने के विचार से, जो विज्ञापन

पाते हैं, उसी को छाप देते हैं। तथापि हम उनसे यह कहेंगे कि वे कोकशास्त्र, स्तंभन आदि के अश्लील विज्ञापन छापना क़तई बंद कर दें। इसके अलावा जिन विज्ञापन-दाताओं के ठग होने की सूचना ग्राहकों से मिले, उनके विज्ञापन भी बंद कर दिए जायँ। घाटा हो, या अंत ही हो जाय, पर अपकीर्ति का काम न करना चाहिए। हमारे मैनेजर के पास भी कई विज्ञापन-दाताओं की शिकायतें आई हैं, और वह उनके विज्ञापन बंद कर रहे हैं। ऐसा करने से, संभव है, झूठे विज्ञापन देनेवाले अपना सुधार करने को विवश हों।

× × ×

१७. 'नवरोज़' का विशेषांक

गुजराती के साप्ताहिक सहयोगी नवरोज़ का दीपावली-विशेषांक हमें यथासमय प्राप्त हुआ था। इसमें लगभग सौ पृष्ठ हैं। ऊपर श्रीयुत पी० घोष का बनाया हुआ वीणा-वादिनी का सुंदर, दर्शनीय, रंगीन चित्र है। चित्र में प्राकृतिक सौंदर्य का निदर्शन भी बहुत सुंदर है। भीतर भी कई सादे और व्यंग्य-चित्र उत्तम हैं। इसमें अँगरेज़ी और गुजराती के कई उत्तम लेख हैं। मनोरंजन, कहानी आदि का भी समावेश है। कविताएँ भी उत्कृष्ट हैं। नूतन वर्षाभिनंदनम् नाम की एक संस्कृत-कविता और दो हिंदी-कविताएँ भी हैं। बैंकिंग इन इंडिया, प्राब्लम ऑफ़ ए वर्ल्ड लैंगवेज, दि अननोन गॉड, व्यापार अने सट्टो, सीक्रेट ऑफ़ सक्सेस, आँख तेनी रचना अने व्याधीओ, हुंडीयामण, फतेहनो भेद आदि लेख पढ़ने योग्य हैं। ख़ासकर 'बंगाली माँथी गुजराती माँ थएला भाषांतरो' नाम का लेख हिंदी-भाषा-भाषियों के पढ़ने और ध्यान देने योग्य है। जो लोग आँख मूँदकर हरएक बँगला-पुस्तक का अनुवाद करने को तैयार हो जाते हैं, उन्हें तो यह लेख अवश्य पढ़ना चाहिए। मतलब यह कि यह विशेषांक सर्वथा सुंदर और उपयोगी है। हम अपने गुजराती जाननेवाले हिंदी-भाषा-भाषी भाइयों से इस पत्र का ग्राहक होने के लिये अनुरोध करते हैं। यह पत्र ७ वर्ष से निकलता है। इसके स्वामी और संपादक हैं श्रीयुत ई० एन्० कांगाजी। मिलने का पता है २९-३० एज़्रा-स्ट्रीट, कलकत्ता। वार्षिक मूल्य नहीं लिखा, ≈) कॉपी फुटकल मूल्य लिखा है। विशेष अंक का भी मूल्य नहीं लिखा।

× × ×

१८. डाक और तार-विभाग की रिपोर्ट

भारत के डाक-तार-विभाग का, सन् १९२२-२३ का, वार्षिक विवरण उक्त विभाग के डाइरेक्टर जनरल की ओर से हाल में प्रकाशित हुआ है। उसमें लिखा है कि इस साल इंचकेप-कमेटी की सिफ़ारिश के अनुसार यथासंभव व्यय घटाने से इस वर्ष गत वर्ष की अपेक्षा ८६ लाख रुपए की बचत हुई है। इस साल डाक-तार-विभाग में १,०७,०६७ अफ़सर थे। डाकख़ानों की संख्या १९,६१० थी। १,५९,६४८ मील की लाइन में इस विभाग का काम होता रहा। १ अरब १८ करोड़ ६५ लाख चिट्ठियाँ, पार्सल आदि रवाना की गईं। उनमें ४ करोड़ ४० लाख रजिस्टर्ड थीं। ५ करोड़ ३० लाख रुपए के टिकट बिके। ३ अरब २३ करोड़ २० लाख मनीऑर्डर (५ करोड़ ३० लाख रुपए के) भेजे गए। लोगों ने २३ करोड़ ७० लाख रुपए के वी० पी० मँगाए। ५० लाख बीमे भेजे गए, जो १ अरब ५१ करोड़ २० लाख रुपए के थे। विदेशी पत्रों और पार्सलों द्वारा ७७½ लाख रुपए डाक-महसूल के वसूल हुए। भारत के फ़ौजी पेंशनरों को १ करोड़ ६० लाख रुपए पेंशन के दिए गए। १४,८६१ पौंड कुनैन बेची गई। वर्ष के अंतिम दिन सेविंग्स बैंकों में २३ करोड़ ५० लाख रुपए के २०,४३,५०२ हिसाब खुले हुए थे। ६ करोड़ ५५ लाख रुपए की जीवन-बीमा-पालिसी भी थीं। डाइरेक्टर जनरल की राय है कि डाक-विभाग में चिट्ठियों ही से अधिक आमदनी होती है। डाक-महसूल बढ़ाने से अच्छा लाभ हुआ। अगर चिट्ठियों का महसूल न बढ़ाया जाता, तो बड़ा घाटा होता। पोस्टेज बढ़ाकर इस विभाग ने पबलिक के लिये इतना सुबीता भी कर दिया है कि अब एक आने में २½ तोले तक वज़न का लिफ़ाफ़ा जा सकता है। पहले आध आने में सिर्फ़ ६ माशे वज़न का लिफ़ाफ़ा ही जा सकता था। इस साल फ़ारस-खाड़ी के ब्रिटिश-इंडियन डाकख़ाने—बंदर अब्बास, बुशाइर, जश्क, चहबार, हेंजाम और लिंगा—बंद कर दिए गए। इस साल ५२ स्टीमर विलायत से डाक लेकर भारत को रवाना हुए, और ५३ स्टीमर बंबई से डाक लेकर विलायत को। इन डाक-स्टीमरों को लंदन से बंबई पहुँचने में १५ दिन और बंबई से लंदन पहुँचने में १५ दिन १९ घंटे लगे। पहले इनके आने-जाने में क्रमशः १५ दिन २० घंटे और

१६ दिन ११ घंटे लगते थे। गत महायुद्ध के समय भारत के लिये मिसर, शाम, फ़िलस्तीन, सलोनिका और काले सागर के तट पर डाकख़ाने खोले गए थे। सन् १६२२ में वे बंद कर दिए गए। उनकी संख्या १० थी, और उनमें २१६ अफ़सर काम करते थे। इस वर्ष ३१ दफ़े डाक लूटी गई; किंतु पहले साल ४७ दफ़े लूटी गई थी। बिहार-उड़ीसा-प्रांत इस कलंक से मुक्त रहा। इस वर्ष इस विभाग की आय ६ करोड़ ४६ लाख ६१ हज़ार ७६ रु० और ख़र्च ६ करोड़ २६ लाख ८४ हज़ार ८११ रु० हुआ। भारत-सरकार की आय के खाते में डाक-विभाग के नाम ४२,४२६) जमा करने और फ़्री सर्विस का साधारण जमा-ख़र्च हो जाने के बाद २६ लाख ६७ हज़ार १८० रुपए की बचत रही। परसाल ४७ लाख ७१ हज़ार ८६६ रुपए का घाटा रहा था। पहले घाटा होने का कारण कर्मचारियों के वेतन की वृद्धि और स्टोर-सामान का महँगा होना बतलाया गया है। चिट्ठियों का महसूल बढ़ाने से १ करोड़ ६२ लाख रुपए की अधिक आमदनी सोची गई थी, मगर व्यापार के सुस्त रहने से ७३ लाख रुपए ही की अधिक आमदनी हुई। पश्चिमोत्तर सीमा-प्रांत की ओर, रुपए की कमी से, केवल ४८ पोस्ट-टेली-ग्राफ़-ऑफ़िस खोले गए। २६ तारघर आमदनी कम होने से बंद कर दिए गए। फ़ंड में रुपए यथेष्ट होने पर कुछ अच्छी जगहों में नए तारघर खोले जायँगे। इस साल ६११ तारघरों की दुरुस्ती की गई। तार-विभाग में काफ़ी किफ़ायत की गई है। इस साल ट्रंक-टेलीफ़ोन में २,१०० मील अधिक तार बढ़ाया गया है। पंजाब तथा यू० पी० का ट्रंक-टेलीफ़ोन दिल्ली तक मिला है। व्यापार की स्थिति सुधरने पर और भी टेलीफ़ोन बढ़ेगा। इस साल ट्रंक-टेलीफ़ोन में २,४८,४४८ आदमियों ने काम किया। उससे इस विभाग को ४,२६,४२७) रुपए प्राप्त हुए। सब तरह के टेलीफ़ोन से इस साल ४८,४२,४३२) रुपए की आमदनी हुई। परसाल ४१,६६,००४) रुपए की आमदनी हुई थी। इस साल ३½ करोड़ शब्दों के ३० लाख विदेशी तार गए। गत वर्ष की अपेक्षा इस साल विदेशी तार संख्या में ३ फ़ी सदी बढ़े, मगर उनके शब्दों में १४ फ़ी सदी कमी रही। सरकारी तारों की संख्या घटी, और शब्द भी घटे—३२ फ़ी सदी तार और ४७ फ़ी सदी शब्द कम रहे। प्राइवेट तार संख्या में ८ फ़ी सदी बढ़े, पर उनके शब्द ६ फ़ी सदी घट गए। अख़बारों के तारों की संख्या बढ़ी, पर उनके शब्द घट गए। गत वर्ष १,४७६ तार के मनीऑर्डर विलायत गए थे; इस साल उनकी संख्या २,१३५ रही। लंका, फ़ारस की खाड़ी और अदन आदि स्थानों में तार से भेजे गए मनीऑर्डरों की संख्या इस साल ६३,८७० रही; परसाल ५०,३७६ ही थी। बेतार के तार की अच्छी उन्नति हुई है। किफ़ायत-कमेटी की सिफ़ारिश से इधर यह उन्नति का काम ढीला पड़ गया है। केवल मदरास-रंगून की स्पीड उच्च रक्खी गई है। जुतोग, प्रयाग, पूने और कलकत्ते में विलायती-ख़बर पाने के लिये विशेष बेतार के तार के यंत्र लगाए गए हैं। रूटर और कई अँगरेज़ी के दैनिकों की सुविधा के लिये, उनके अनुरोध से, भारत में बेतार के तार के ज़रिए विदेशों से ख़बरें मँगाई जाने लगी हैं। संक्षेप में यही डाक-तार-विभाग के इस वर्ष का ब्योरा है।

× × ×

१९. हिंदू-संगठन क्यों आवश्यक है?

देश की विचित्र स्थिति हो रही है। स्वार्थपरता का साम्राज्य इतना बढ़ गया है कि न्याय, त्याग, विश्वास या इंसानियत के लिये स्थान ही नहीं रहा। धर्म-मत डाकुओं और ख़ूँख़्वारों के अत्याचारों का आधार बन रहे हैं। इस युग में निर्बल की ख़ैर नहीं। उसके आदमी छिन जाते हैं, उसकी स्त्रियाँ ईसाई-मिशनरियों के आश्रय में भेज दी जाती हैं, कहीं भी उसकी फ़र्याद नहीं सुनी जाती। लुटेरे धार्मिक उत्तेजना फैलाकर जब बलवा मचाते हैं, तब निर्बल ही पिटते, लुटते और मरते हैं। हमारे इस कथन के लिये प्रमाण ढूँढ़ने की ज़रूरत नहीं है। गत १०-१२ महीनों के इतिहास में इन सब आपत्तियों की कई बार कई जगह पुनरावृत्ति हो चुकी है। अभी हाल में, कलकत्ते में, तीन ब्राह्मणियाँ पुलीस की ख़ैरख़्वाही से मिशनरियों के फंदे में जा फँसी थीं। अंत को हिंदू-सभा के उद्योग से उनका छुटकारा हुआ। उस दिन नागपुर में कोई राक्षस गऊ के कटे पैर डाल गया था, मगर हिंदू बेचारे मन मसोसकर रह गए। इधर हबड़े में कोई सुअर की लाश से मसजिद को अपवित्र कर गया। मालूम नहीं, किसका यह कुकृत्य था। परंतु मुसलमानों ने बिगड़कर बिजन बोल दिया।

बेचारे दुसाध और अन्य जनता लूटी गई, पीटी गई। इसका क्या कारण है ? वही दुर्बलता। शारीरिक दुर्बलता तो हिंदुओं में है ही, उनकी आत्मिक दुर्बलता और भी ग़ज़ब ढा रही है। इसी के लिये हिंदुओं को अपना संगठन करने की सख़्त ज़रूरत है। किसी से लड़ने या किसी पर हमला करने के लिये नहीं, औरों के हमले और वार से आत्मरक्षा करने के लिये हमें हिंदू-जाति-मात्र में ऐसा हार्दिक संबंध पैदा कर देना चाहिए कि किसी और कहीं के हिंदू पर आपत्ति आने से एक छोर से दूसरे छोर तक सारे भारत का हिंदू-समाज उससे विचलित हो उठे, हृदय में उसका अनुभव करे, और तत्काल तत्परता के साथ उसके प्रतिकार में लग जाय। आज हमको अच्छी तरह अछूतों के साथ आत्मीयता के अभाव की बुराइयाँ स्पष्ट देख पड़ने लगी हैं, और हम अछूतों को अपनाने के लिये अधिकाधिक अग्रसर हो रहे हैं। हिंदू-संगठन की यह पहली सीढ़ी है ; इसी की मज़बूती पर सारी इमारत की पाएदारी है। संगठन-प्रेमियों को स्थान-स्थान पर आसपास १०-२० कोस तक अछूतों के संगठन का काम बहुत जल्द शुरू कर देना चाहिए। इस काम में कोई बड़ी कठिनाई नहीं है। आसानी से शुरू किया जा सकता है। साप्ताहिक या मासिक सभाएँ करके सिद्धांत का प्रचार करने की आवश्यकता है। संगठन के कार्यकर्ताओं को कई काम करने पड़ेंगे। अभी कलकत्ते में घुड़दौड़ का मैदान चौड़ा करने के लिये मंदिर खोद डाला जा रहा था। साधारण संगठन से ही वहाँ सफलता मिल गई। बेलूड़-मठ की ज़मीन रेल-कंपनी ले लेना चाहती है। लोग प्रतिकार का उद्योग कर रहे हैं। हमारे मंदिरों, देवालयों और धार्मिक स्थानों पर ऐसी धाँधली करने का साहस क्यों किया जाता है ? यही समझकर कि हिंदू-जाति में एकता नहीं है, हिंदू-जाति का उत्साह और उत्तेजना क्षणिक समझी जाती है। शायद ईश्वर इसीलिये ऐसी घटनाएँ घटित कर रहे हैं कि हिंदुओं को होश हो। हिंदू-महासभा ने विवाद-ग्रस्त विषयों के निर्णयार्थ, मालवीयजी की अध्यक्षता में, ७५ सदस्यों की एक विद्वत्परिषद् संगठित कर ली है। सभा का विशेषाधिवेशन भी अर्द्धकुंभी के सुअवसर पर, प्रयागराज में, किया जायगा। हिंदू-सेवक-दल के संगठन के लिये नियम भी बने और स्वीकृत हो चुके हैं। हिंदू-धर्मोपदेशक भी नियुक्त होंगे। उनकी शिक्षा के लिये २,४००) रु० देने का वचन भी मिल गया है। महासभा ने संथालों के लिये एक मंदिर बना देने की प्रार्थना भी मंज़ूर कर ली है। गोरक्षा-उपसमिति की भी एक बैठक की गई थी। उसमें निर्णय हुआ कि भारत में सर्वत्र गोचर-भूमि का प्रबंध किया जाय।

× × ×

२०. गोरक्षा

गोरक्षा हिंदू-मात्र के लिये एक विशेष कर्तव्य है। गऊ हमें पौष्टिक पदार्थ देती है। अन्न भी उसी के सुपुत्रों के चरणों की कृपा से नसीब होता है। इस दृष्टि से वह मुसलमानों से भी सहानुभूति और दया पाने का अधिकार रखती है। पर हमारे बहुत-से मुसलमान भाई केवल मांस-भोजन की आदत से लाचार होकर, सस्ता होने के कारण, गोमांस छोड़ने के लिये तैयार नहीं हैं। एक सहयोगी की इस सम्मति से हम भी सहमत हैं कि जिसमें बकरे का मांस सस्ता मिलने लगे, इसलिये हिंदुओं को मांस-भोजन छोड़ देना या कम कर देना चाहिए। कारण, हिंदुओं में शायद सौ में नब्बे ऐसे आदमी निकलेंगे, जिनके मुँह में मांस के बिना कौर न पैठता हो। इधर अख़बारों में देख पड़ा कि किसी मारवाड़ी सज्जन ने जोश में आकर, मौलाना शौकतअली के पैरों से लिपटकर, यह प्रार्थना की थी कि मैं आपको एक करोड़ रुपए देता हूँ, आप गोवध बंद करा दीजिए। हमारी समझ में वह जोश उतना सच्चा नहीं था, या उक्त सज्जन इतना नहीं समझ सकते थे कि एक मौलाना में इतनी बड़ी क्षमता कैसे संभव हो सकती है कि वह देश-भर में गोवध बंद करा सकें। अगर उक्त सज्जन वास्तव में गोभक्त हैं, और गोरक्षा में एक करोड़ रुपए ख़र्च करने को उद्यत हैं, तो उन्हें चाहिए कि उस रुपए से देश में सौ जगह डेरीफ़ार्म खुलवा दें। उनमें दूध देनेवाली अच्छी गउएँ रक्खी जायँ। उनका दूध, घी, कंडे वग़ैरः बेचे जायँ। मतलब यह कि रोज़गार के तौर पर काम किया जाय। मुनाफ़ा गोरक्षा में ही लगाया जाय। दूध देनेवाली गउओं के साथ बुड्ढी, दूध न देनेवाली गउएँ भी यथेष्ट पाली जा सकेंगी। जो बैल पैदा हों, वे किसानों के हाथ बेचे जायँ। इससे एक लाभ पब-लिक को ... दूध और घी खाने

को मिलेगा। इस कारण पब्लिक की पूरी सहानुभूति रहेगी। एक करोड़ रुपए की पूँजी से लाखों गउएँ पलेंगी। हमारी राय में तो उस तरीक़े से कि गोशाला चंदे से चलाई जायँ, यह तरीक़ा बहुत अच्छा है। पब्लिक अगर अपने-अपने शहर में १-२ ऐसी व्यापारिक गोशालाएँ स्थापित कर ले, तो अधिकांश में गोरक्षा हो सकती है। मौ० महम्मद अली ने अपने भाषण में एक बात बड़े मार्के की कही है, और हिंदुओं के पास उसका कुछ उत्तर नहीं है। आप कहते हैं—गउएँ तो हिंदू ही अधिकतर पालते हैं, और वे ही उन्हें मुसलमानों या कसाइयों के हाथ बेचते भी हैं। अगर हिंदू मालिक दूध न देनेवाली गऊ को न बेचें, तो गोहत्या बहुत कुछ रुक जाय; यहाँ तक कि बिलकुल बंद भी हो सकती है। हिंदुओं को इस उपदेश पर पूरा ध्यान देना चाहिए। अगर हिंदुओं में सच्ची गोभक्ति है, तो उन्हें शीघ्र ही गोरक्षा का कोई समयानुकूल, सच्चा काम शुरू कर देना चाहिए। इसका प्रबंध तो सबसे पहले होना चाहिए कि हिंदू लोग अपनी गउएँ मुसलमानों या अपरिचितों के हाथ न बेचा करें।

× × ×

२१. हिंदू-मुसलिम-समझौता

जब से जगह-जगह हिंदू-मुसलमानों में धर्म की आड़ लेकर मार-पीट और लूट होने लगी, जगह-जगह हिंदू-जाति ने हानि उठाई, तब से देश के नेता लोगों को हिंदू-मुसलिम-समझौते की सूझी है। पहले ही से माननीय लाला लाजपतरायजी और डॉक्टर अनसारी मिलकर एक समझौते का संधि-पत्र तैयार कर रहे थे, इधर बीच में बंगाल के स्वराज्य-दल ने सफलता पाने के बाद पहला काम यही कर डाला कि हिंदू-मुसलमानों के लिये कुछ नियम बना डाले। ख़ैर, इसमें कोई हर्ज न था। भूल तो यह की कि हिंदू-धर्म के जानकार ज़िम्मेदार लोगों में से किसी की सलाह नहीं ली गई। अगर समझौते में नौकरियों का बटवारा या राजनीतिक शर्तें ही होतीं, तो शायद उसका इतना भारी प्रतिवाद देश की ओर से न किया जाता। उसमें तो धार्मिक तत्वों का भी समावेश कर दिया गया था। उसकी शर्तों में एक शर्त यह भी थी कि मसजिद के सामने जलूस में बाजा न बजाया जाय, धार्मिक कार्य में गऊ की क़ुर्बानी न रोकी जाय, और खाने के लिये गोहत्या न करने का प्रस्ताव भी कौंसिल में न किया जाय। इस प्रकार जनता से राजनीतिक अधिकार पाकर जब धार्मिक अधिकार पर भी स्वराज्य-दल ने हाथ बढ़ाया, तब लोग चौंके, और बिगड़ पड़े। यद्यपि ये शर्तें केवल बंगाल के लिये थीं, स्वराज्य पाने पर काम में लाई जातीं, और कांग्रेस ने इस समझौते को अस्वीकृत भी कर दिया है, फिर भी इससे यह बुराई पैदा हो गई कि मुसलमान मचलने लगे हैं। वे कहते हैं, बस, बंगाल का पैक्ट ही न्यायानुकूल है; ये अधिकार मुसलमानों को मिलने ही चाहिए। आज तक मसजिद के सामने किसी समय बाजा न बजाने देने का अनुचित हठ कभी नहीं किया गया। आज यह बेजा तौर से हिंदुओं पर दबाव डाला जा रहा है। सहयोगी तेज ने लिखा है कि किसी जगह (नाम स्मरण नहीं) के मुसलमान कहते हैं कि कोई हिंदू घर के भीतर भी शंख न बजावें। यह क्या सरासर अंधेर नहीं है? हिंदू शुद्धि बंद कर दें, अपना संगठन न करें, सरकारी नौकरियाँ अयोग्य मुसलमानों को भी बराबर बाँट दें, उधर मुसलमानों को विदेशी मुसलमानों तक के साथ अपना संगठन मज़बूत बनाने दें—चूँ न करें, अपने धार्मिक अधिकारों को छोड़ दें, अछूतों को उनके न्यायसिद्ध अधिकार न दें; नहीं तो मेल न होगा, मार डालेंगे, लूट लेंगे, मा-बहनों को बेइज़्ज़त करेंगे। भला यह कैसे हो सकता है? अगर मुसलमान भाइयों को भी स्वराज्य अभीष्ट है, अगर हिंदुओं के साथ मेल करने से उनका भी कुछ स्वार्थ सिद्ध हो सकता है, अगर वे सच्चे दिल से मेल करने के लिये तैयार हैं, तो इस तरह निकाह की शर्तें पढ़ाने की कोई ज़रूरत नहीं है; जिस तरह महात्माजी के समय में बिना किसी शर्त के दोनों कंधा भिड़ाकर देश के काम में जुट गए थे, उसी तरह अब भी अपने-अपने सच्चे धर्म का पालन करते हुए मित्र-भाव से रहें, और देश की दुर्दशा दूर करने का प्रयत्न करें। अगर वे ऐसा नहीं करेंगे, तो इस आपस की फूट का कड़वा फल उन्हें भी चखना पड़ेगा। हिंदुओं के साथ रहने से उनका पल्ला जितना भारी रहेगा, उतना अकेले रहने से कभी नहीं। वे कोई राजनीतिक लाभ नहीं उठा सकते। उन्हें मुसलमानी सल्तनत फिर से क़ायम होने का सपना न देखना चाहिए। अब भारत में हिंदू या मुसलमान

राज्य नहीं करेंगे, अगर कभी स्वराज्य हुआ, जिसकी बहुत कुछ आशा है, तो यहाँ प्रजातंत्र ही की स्थापना होगी।

× × ×

२२. समालोचना का अधिकार

एक नामी अँगरेज़ साहित्यिक कहता है—"समालोचना एक ऐसा काम है कि इसके द्वारा आदमी बहुत थोड़ा परिश्रम करके, बहुत कम कष्ट उठाकर, नाम पैदा कर लेता है, और भयानक हो उठता है। प्रकृति-देवी ने बहुत ही कम लोगों को सृष्टि करने की क्षमता दी है। जो विद्याएँ केवल परिश्रम ही से प्राप्त हो सकती हैं, उनको प्राप्त करने के लिये इतना अधिक परिश्रम करना पड़ता है कि कोई इच्छापूर्वक उसे बरदाश्त करने के लिये राज़ी न होगा। तथापि देखा जाता है कि हरएक आदमी दूसरे आदमी की रचना पर एक राय ज़ाहिर कर सकता है। प्रकृति ने जिसे दुर्बल बनाया है, और आलसी स्वभाव ने जिसे मूढ़ बना रक्खा है, वह भी समालोचक बनकर अपने योग्यताभिमान को अखंडित बनाए रख सकता है।" असल में समालोचक का काम और कर्तव्य बड़ा टेढ़ा है—'तरवार की धार पै धावनो है।' आजकल हिंदी-जगत् में भी 'खरी कहनेवाले' बहुत नज़र आ रहे हैं। जिसने अभी साहित्य-मंदिर की दहलीज़ पर पैर ही रक्खा है, वह भी 'मुलाहिज़े से मुँह मोड़कर' कर्तव्य-पालन के लिये क़लम उठा लेता है, और अपनी सचाई का सबूत देता हुआ पुराने साहित्य-सेवियों की पगड़ी पर हाथ लपकाता है। ऐसे उदीयमान समालोचकों की जासूसी करने पर पता लगता है कि इनमें से अधिकांश ऐसे हैं, जो किसी व्यक्तिगत कारण से जले फफोले फोड़ने लगते हैं। कोई महाशय आपके यहाँ नौकरी के लिये आए, आपने विमुख कर दिया। बस, होने लगी खरी समालोचना। किसी ने अपनी पुस्तक समालोचना के लिये आपके पास भेजी, आपने जी खोलकर प्रशंसा नहीं की, या कुछ कोर-कसर बतला दी। होने लगी आपकी खरी समालोचना। इसी तरह आपने किसी की कविता नहीं छापी, किसी की कहानी वापस कर दी, किसी को सरस्वती का वरपुत्र कहने में आप चूक गए, तो आपकी ख़ैर नहीं। ऐसे ही समालोचकों की बदौलत समय-समय पर कुछ काल के लिये कोई-कोई पत्र-पत्रिकाएँ कटु, कुत्सित वाक्यावली से कलुषित और कलंकित हो जाती हैं। कुछ स्वयंसिद्ध समालोचक-प्रवर रेल के उन यात्रियों के समान, जो धक्के दे-देकर आगे के आदमियों को हटाकर अपने लिये जगह कर लेना चाहते हैं, साहित्यिक मैदान में पुराने साहित्य-सेवियों को, अज्ञता का सार्टीफ़िकट देते हुए, स्थान-च्युत कर अपने लिये स्थान कर लेना चाहते हैं। ऐसे लोग जब समालोचना करने बैठते हैं, तब छापे की भूल तक को क्षमा नहीं करते। वे एक 'भी', 'तक' या अनुस्वार-विसर्ग इधर से उधर होने से लेखक की सारी योग्यता पर पानी फेर देते हैं। ये लोग अपने कथन को वेदवत् आप्त-वाक्य मान लेते हैं। ऐसे लोगों को अगर उपेक्षापूर्वक प्रश्रय दिया जाता है, तो वे और भी सिर चढ़ते हैं। जिन्हें दस लाइन भी शुद्ध लिखना नहीं आता, जो साहित्य के रंगरूट होने पर भी अपने-को उस्ताद माने बैठे हैं, ऐसे कच्चे समालोचकों को समालोचना के पवित्र नाम पर उछल-कूद करने का अधिकार कदापि नहीं है। सच्चे समालोचकों को तत्काल इनके कान मलकर शिष्टता का पाठ पढ़ाना चाहिए, तभी साहित्य की ख़ैर है।

× × ×

२३. कांग्रेस की बायकाट-कमेटी की रिपोर्ट

कांग्रेस ने एक बायकाट-कमेटी संगठित की थी। उसके सदस्य पं० मोतीलालजी नेहरू, मौ० महम्मद अली, श्रीयुत बिट्ठलभाई पटेल, श्रीयुत मेहता, श्रीसुभासचंद्र वसु, सेठ उमर सोभानी, डॉक्टर किचलू, श्रीयुत एन्० सी० केलकर और बा० गोपालकृष्ण थे। इनमें से उमर सोभानी, जे० मेहता, पटेल और गोपालकृष्णजी ने रिपोर्ट पर हस्ताक्षर किए हैं। रिपोर्ट में कहा गया है कि कांग्रेस को शीघ्र ही बायकाट जारी करना होगा। हाँ, यह बहिष्कार धीरे-धीरे होगा, अर्थात् बहिष्कार के लिये चुनी गई सभी चीज़ें एकसाथ नहीं छोड़ी जा सकतीं। दवा, शिक्षा, रेल की सवारी और अन्य सब बहुत ज़रूरी चीज़ें वग़ैरह नहीं छोड़ी जा सकतीं। विलायती कपड़ों का बायकाट इस समय भी पूर्ण रूप से किया जा सकता है। खद्दर और देशी मिलों के बने कपड़ों से हमारी आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है। कमेटी ने इन चीज़ों का बहिष्कार फ़ौरन् करने की सलाह दी है—चमड़े का सामान, रासायनिक पदार्थ, साइकिल और मोटर-गाड़ी, सब तरह की घड़ियाँ, दवाएँ,

रस्सी-डोरी वग़ैरह, जूते, खाने-पीने की चीज़ें, चीनी, छुरी, क़ैंची, काँच का सामान, गहने की क़िस्में, पालिश, नमक, साबुन, श्वेतसार-जातीय पदार्थ, रंग और चमड़ा सफ़ा करने और रँगने के मसाले, हाथीदाँत तथा इसी क़िस्म की हड्डियों की बनी चीज़ें, बिसाती बाना, गाने-बजाने के यंत्र, खिलौने, ज़री का काम और पोशाक वग़ैरह, बटन, लालटेनें और लैंप वग़ैरह और 'पाट' का बना सामान। ये सब चीज़ें विलायत तथा अन्य विदेशों से भारत में कितने मूल्य की आती हैं, इसका विवरण भी रिपोर्ट में है। स्थानाभाव से वह हिसाब हम यहाँ नहीं दे सके। कमेटी की राय में कल-पुर्ज़ों अथवा शिल्प-संबंधी कामों में जो चमड़े की सामग्री आवश्यक होती है, वह विदेशी लगाई जा सकती है। शराब, तंबाकू, चुरट वग़ैरह मँगाना एकदम बंद कर दिया जाय। इस बहिष्कार को कार्य-रूप में परिणत करने और आंदोलन को सफल बनाने के लिये बंबई में एक स्थायी कार्यालय रहेगा। उसमें एक मंत्री और कुछ कर्मचारी वैतनिक रहेंगे। बंबई की प्रांतीय कांग्रेस-कमेटी के ऑफ़िस ही में यह ऑफ़िस भी रहेगा। यह कमेटी भारत में बननेवाली सब चीज़ों की सूची-स्वरूप एक डाइरेक्टरी प्रकाशित करेगी। इस संबंध के आंदोलन और समाचारों का प्रचार करने के उद्देश्य से हैंडबिल और पैंफ़्लेट निकला करेंगे। यह कमेटी कांग्रेस से संयुक्त हरएक संस्था को बतलावेगी कि किन उपायों से यह नीति सफल बनाई जा सकती है। हो सका, तो एक साप्ताहिक बुलेटिन भी प्रकाशित होगा। इसके ख़र्च के लिये पहले साल ४५,०००) रुपयों की आवश्यकता होगी। हर गाँव और हर शहर में एक बहिष्कार-कमेटी क़ायम की जायगी। वहाँ खद्दर और तरह-तरह के देशी सामान भी रहेंगे—बिकेंगे। यह चेष्टा करनी होगी कि म्युनिसिपलिटी, लोकल बोर्ड, ज़िला-बोर्ड वग़ैरह में बहिष्कार-नीति स्वीकृत हो। उद्योग बहुत बड़ा, उपयोगी और उत्तम है, इसमें संदेह नहीं। तत्परता के साथ काम करने से सफलता होना भी कुछ असंभव नहीं है।



चित्र-चर्चा

१. रंगीन चित्र

पहला चित्र "भारत-माता" का है। इसके चित्रकार श्रीयुत शारदाचरणजी हैं। आपने भारत-माता के हाथ में गुजरात को शंख के रूप में दिखलाया है, जिसका अर्थ यह है कि वह धन-संपन्न देश है। कंठ में कमल का पुष्प है, जो ज्ञान का परिचायक है। भारत की राजधानी दिल्ली के कुतुब मीनार का आश्रय लिए हुए भारत-माता दिखलाई गई हैं। इस चित्र को ध्यानपूर्वक देखने से बहुत-सी खूबियाँ देख पड़ेंगी।

दूसरा चित्र है "अब मैं कहाँ खोजूँ ?" इसके चित्रकार हैं हमारे पाठकों के सुपरिचित श्रीयुत काशिनाथ-गणेशजी खातू। चित्र का भाव यह है कि श्रीराधिकाजी प्रेम से हार बनाकर कृष्णचंद्र को देने के लिये आ रही हैं। परंतु कृष्णचंद्र का कहीं पता नहीं लगता। श्रीराधिकाजी हार लिए हुए विचार कर रही हैं कि अब मैं कहाँ खोजूँ ?

तीसरा चित्र है 'विस्मय'। यह चित्र पुरानी कारीगरी का नमूना है। इसका भाव यह है कि कोई गोपी घर के भीतर प्रवेश कर रही हैं, इसी समय कृष्णचंद्र की वंशी बज उठी। असमय में, एक नवीन स्थान में, वंशी की आवाज़ सुनकर विस्मय-चकित होकर गोपी पीछे फिरकर देख रही हैं। विस्मित, चकित होने का भाव चित्रकार ने बड़ी खूबी के साथ दिखलाया है।

२. व्यंग्य-चित्र

पहला व्यंग्य-चित्र है "बुढ़ापे का ब्याह।" इसके चित्रकार हैं श्रीयुत रामेश्वरप्रसादजी वर्मा। एक बूढ़ा आदमी वर बनकर घोड़े पर सवार ब्याह करने जा रहा है। साथ में लड़के मुँह चिढ़ाते जा रहे हैं। बुढ़ापे में भी बालिका ब्याह लाने के लिये तैयार आदमियों का ख़ाका खींचा गया है।

दूसरा व्यंग्य-चित्र है "बेढब लेखक की उग्र मूर्ति।" इसके चित्रकार हैं श्रीयुत मोहनलाल महत्ता गयावाल। इस चित्र में दिखलाया गया है कि कुछ लेखक इधर-उधर से अन्य लेखकों के लेख और कविताएँ चुराकर खटाखट लेख और कविताएँ लिखते और निरंतर पत्रों को भेजा करते हैं। अधिक पढ़े-लिखे न होने पर भी प्रतिभाशाली बननेवाले, रंगरूट लेखकों को इस चित्र से अवश्य अच्छी शिक्षा प्राप्त होगी।

Registered No. A. 1127.

Printed and Published by K. D. Seth, at the Newul Kishore Press, Lucknow.